१ੴ सतिगुर प्रसादि ॥

श्री

दसम ग्रंथ साहिब

(हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण)

(पहली सैंची)

अनुवाद—

डॉ० जोधसिंह

एम०ए०, पीएच्०डी०, साहित्य रत्न

प्रकाशक

भुवन वाणी ट्रस्ट

मौसमबाग़ (सीतापुर रोड) लखनऊ—२२६ ०२०

'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की वानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी॥'

द्वितीय संस्करण— १९९० ई०

आकार— २२×३६÷१६ (डबल डिमाई)

पृष्ठसंख्या — ८२०

मूल्य ११०.०० रुपया

वितरक :
लखनऊ किताबघर
मौसमबाग (सीतापुर रोड), लखनऊ-२२६ ०२०

मुद्रक
वाणी प्रेस
मौसमबाग (सीतापुर रोड), लखनऊ-२२६ ०२०

विश्वनागरी लिपि

॥ ग्रामे-ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे-ग्रामे कथा शुभा ॥

सब भारतीय लिपियाँ सम-वैज्ञानिक हैं !

All the Indian Scripts are equally scientific !

भारतीय लिपियों की विशेषता ।

संसार की लिपियों में नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक है। यह कथन बिलकुल ठीक है । परन्तु यह कहते समय हमें याद रखना चाहिए कि वह सर्वाधिक वैज्ञानिकता, केवल हिन्दी, मराठी, नेपाली, लिखी जानेवाली लिपि में नहीं, वरन् समस्त भारतीय लिपियों में मौजूद है। क, च, त, प आदि के रूपों में कोई वैज्ञानिकता नहीं है। वैज्ञानिकता है लिपि का ध्वन्यात्मक होना। नियमित स्वरों का पृथक् होना। अधिक से अधिक व्यंजनों का होना। सबको एक 'अ' के आधार पर उच्चरित करना। ['अ' अक्षर-स्वर, सकल अक्षरों का उस भाँति मूल आधार। सकल विश्व का जिस प्रकार 'भगवान्' आदि है जगदाधार।] एक अक्षर से केवल एक ध्वनि। एक ध्वनि के लिए केवल एक अक्षर। जैसा लिखना वैसा ही बोलना, वैसा ही अक्षर का एकाक्षरी नाम। उच्चारण-संस्थान के अनुसार अक्षरों का कवर्ग, चवर्ग आदि में वर्गीकरण। फिर प्रत्येक वर्ग के अक्षरों का क्रम से एक ही स्थान में थोड़ा-थोड़ा ऊपर उठते हुए अनुनासिक तक पहुँचना- आदि-आदि

पंजाबी (गुरमुखी)-देवनागरी वर्णमाला

ਅ अ   ਆ आ   ਇ इ   ਈ ई   ਉ उ

ਊ ऊ   ਰਿ ऋ   ਏ ए   ਐ ऐ   ਓ ओ

ਔ औ   ਅੰ अं   ਅਃ अः

ਕ क   ਖ ख   ਗ ग   ਘ घ   ਙ ङ

ਚ च   ਛ छ   ਜ ज   ਝ झ   ਞ ञ

ਟ ट   ਠ ठ   ਡ ड   ਢ ढ   ਣ ण

ਤ त   ਥ थ   ਦ द   ਧ ध   ਨ न

ਪ प   ਫ फ   ਬ ब   ਭ भ   ਮ म

ਯ य   ਰ र   ਲ ल   ਵ व   ਸ਼ श

ਸ਼ ष   ਸ स   ਹ ह

ऐसे अनेक गुण हैं जो अभारतीय लिपियों में एकत्र, एकसाथ नहीं मिलते। किन्तु ये गुण समान रूप से सभी भारतीय लिपियों में मौजूद हैं, अत: वे सब नागरी के समान ही 'सर्वाधिक वैज्ञानिक' हैं। सब ब्राह्मी लिपि से उद्‌भूत हैं। ताड़पत्र और भोजपत्र की लिखाई तथा देश-काल-पात्र के अन्य प्रभावों के कारण विभिन्न भारतीय लिपियों के अक्षरों में यत्र-तत्र परिवर्तन, हिन्दी वाली 'नागरी लिपि' को कोई श्रेष्ठता प्रदान नहीं करता। भारत की मौलिक सब लिपियाँ 'नागरी लिपि' के समान ही श्रेष्ठ हैं।

नागरी लिपि को 'भी' अपनाना श्रेयस्कर क्यों ?

"नागरी लिपि" की केवल एक विशेषता है कि वह कमोबेश सारे देश में प्रविष्ट है, जबकि अन्य भारतीय लिपियाँ निजी क्षेत्रों तक सीमित हैं। वहीं यह भी सत्य है कि नागरी लिपि में प्रस्तुत और विशेष रूप से हिन्दी का साहित्य, अन्य लिपियों में प्रस्तुत ज्ञानराशि की अपेक्षा कम और नवीनतर है। अत: समस्त भाषाओं की ज्ञानराशि को, सर्वाधिक फैली लिपि "नागरी" में अधिक से अधिक लिप्यन्तरित करके, क्षेत्रीय स्तर से उठाकर सबको सारे राष्ट्र में, यहाँ तक कि विश्व में ले आना परम धर्म है। विश्व की सब भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान (सत्साहित्य) है आत्मा, और 'नागरी लिपि' होना चाहिए उसका पर्यटक शरीर।

अन्य लिपियों को बनाये रखना भी कर्तव्य है।

वस्तुत: यह परम धर्म है कि समस्त सदाचार साहित्य को नागरी मे तत्परता और प्राचुर्य मे लिप्यन्तरित करना। किन्तु साथ ही यह भी परम धर्म है कि अन्य लिपियों को उत्तरोत्तर उन्नति के साथ बरक़रार रखना। यह इसलिए कि सबका सब कभी लिप्यन्तरित नहीं हो सकता। अत: अन्य लिपियों के नष्ट होने और नागरी लिपि मात्र के ही रह जाने से अलिप्यन्तरित हमारी समस्त ज्ञानराशि उसी प्रकार लुप्त-सुप्त होकर रह जायगी जैसे पाली का वाङ्मय रह गया। हमारा प्राचीन आप्तज्ञान विलुप्त हो जायगा।

नागरी लिपि वालों पर उत्तरदायित्व विशेष !

इन दोनों परम धर्मों की पूर्ति का सर्वाधिक भार नागरी लिपि वालों पर है, इसलिए कि उनको 'सम्पर्क लिपि' का श्रेष्ठ आसन प्रदत्त है। मैं कह सकता हूँ कि उन्होंने अपने कर्तव्य का, जैसा चाहिए था, वैसा निर्वाह नहीं किया। परन्तु उसकी प्रतिक्रिया में अन्य लिपि वालों को भी "अपराध के जवाब में अपराध" नहीं करना चाहिए। 'कोयला' बिहार का है अथवा सिंहभूमि का है, इसलिए हम उसको नहीं लेंगे, तो वह हमारे ही लिए घातक होगा। कोयले की क्षति नहीं होगी। अपनी लिपियों को समुन्नत रखिए, किन्तु नागरी लिपि को भी अवश्य अपनाइए

उपर्युक्त परिवेश में नागरी लिपि का पठन और समग्र श्रेष्ठ साहित्य का नागरी में लिप्यन्तरण तो आवश्यक है ही, किन्तु अन्य लिपियाँ भी अपनी लिपि में दूसरी भाषाओं के सत्साहित्य को लिप्यन्तरित तथा अनूदित कर सकती हैं। 'अधिकस्य अधिकं फलम्।' ज्ञान की सीमा नहीं निर्धारित है। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने भी अवधी के रामचरितमानस को ओड़िआ भाषा मे गद्य एवं पद्य अनुवाद-सहित, ओड़िआ लिपि में लिप्यन्तरित किया है। परन्तु सम्पर्क और एकीकरण की दृष्टि से 'नागरी लिपि' अनिवार्य है।

नागरी लिपि की वैज्ञानिकता मानव मात्र की सम्पत्ति है।

अब एक क़दम आगे बढ़िए। भारतीय लिपियों की सर्वाधिक वैज्ञानिकता युगों की मानव-शृंखला के मस्तिष्क की उपज है। क्या मालूम इस अनादि से चल रहे जगत् में कब, क्यों, किसने उत्पन्न किया ? भारत संयोग से इस समय इस विज्ञान का कस्टोडियन् है, स्रष्टा नही। भारत भी न जाने कब, कहाँ तक और कितना था ? अतः हम भारतीयों को नागरी लिपि के स्वामित्व का गर्व नहीं होना चाहिए। वह आज के मानव के पूर्वजों की देन है, सबकी सम्पत्ति है, सकल विश्व उसका समान गौरव से उपयोग कर सकता है। हमारा 'अहम्' उस लिपि की उपयोगिता को नष्ट कर देगा, जिसके हम सँजोये रखनेवाले मात्र हैं। किन्तु विदेशों में बसनेवाले बन्धुओं को भी नागरी लिपि के गुणों को अपने ही पूर्वजों की उपज मानकर परखना चाहिए। ये गुण इस निबन्ध के प्रथम अनुबन्ध में अधिकांशतः वर्णित हैं। न परखने पर उनकी क्षति है, विश्व की क्षति है। पेट्रोल अरब का है, अतः हम उसको नहीं लेंगे, तो क्षति किसकी होगी ? पेट्रोल की नहीं, अपनी ही।

फिर याद दिला देना जरूरी है कि क, प आदि रूपों में वैज्ञानिकता नही है। वे काफ़, पे और के, पी, जैसे ही रूप रख सकते हैं, किन्तु लिपि मे 'अनुबन्ध प्रथम' में ऊपर दिये हुए गुणों और क्रम को अवश्य ग्रहण करें। और यदि एक बनी-बनाई चीज को ग्रहण करके सार्वभौम सम्पर्क में समानता और सरलता के समर्थक हों, तो 'नागरी लिपि' के क्रम को अपनी पैतृक सम्पत्ति मानकर, ग़ैर न समझकर, मौजूदा रूप में भी ग्रहण कर सकते हैं। वह भारत की बपौती नहीं है। आज के मानव के पूर्वजों की वह सृष्टि है। इससे विश्व के मानव को परस्पर समझने का मार्ग प्रशस्त होगा।

नागरी लिपि में अनुपलब्ध विशिष्ट स्वर-व्यञ्जनों का समावेश।

हर शुभ काम में कजी निकालनेवाले एक दूर की कौड़ी यह भी लाते है कि "नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक होते हुए भी अपूर्ण है और अनेक स्वर-व्यंजनों को अपने में नहीं रखती। उनको कहाँ तक और कैसे समाविष्ट किया जाय ?" यह मात्र तिल का ताड़ है मौजूदा कर्तव्य को टालना है

अल्बत्ता अन्य भाषाओं में कुछ व्यंजन ऐसे हैं जो नागरी में नही है— किन्तु अधिक नहीं। भारतीय भाषा उर्दू की क़ ख़ ग़ ज़ फ़, ये पाँच ध्वनियाँ तो बहुत समय से नागरी लिपि में प्रयुक्त हो रही हैं। दु:ख है कि आज़ादी के बाद से राष्ट्रभाषा के पक्षधर ही उनको ग़ायब करने पर लगे हैं। इसी प्रकार मराठी ळ है। इनके अतिरिक्त अरबी, इब्रानी आदि के कुछ व्यञ्जन हैं, किन्तु उनको नागरी की दैनिक लिपि मे अनिवार्यत: रखना आवश्यक नहीं। विशिष्ट भाषाई कार्यों में उन विशिष्ट भाषाई व्यंजनों को चिह्न देकर दरसाया जा सकता है।

तदर्थ अरबी लिपि का आदर्श सम्मुख।

और यह कोई नयी बात नहीं। नितान्त अपरिवर्तनशील कहे जाने वालों की लिपि 'अरबी' में केवल २७-२८ अक्षर होते हैं। भाषा के मामले मे वे भी अति उदार रहे। "अिलम चीन (अर्थात् दूर से दूर) से भी लाओ"— यह पैग़म्बर का कथन है। जब ईरान में, फ़ारसी की नई ध्वनियों च, प, ग, आदि से सामना पड़ा तो उन्होंने उनको अरबी-पोशाक चे, पे, गाफ़ पहना दी। जब हिन्दोस्तान आये तो ट, ड, ड़ आदि से सामना पड़ने पर अरबी ही जामे में टे, डाल, ड़े आदि तैयार कर लिये। यहाँ तक कि सिन्धी में नागरी के सब महाप्राण और अनुनासिक, तथा सिन्धी के विशिष्ट अन्त:स्फुट अक्षरों को भी अरबी का लिबास पहना दिया गया। फिर 'नागरी' वाले तो औदार्य का दावा करते हैं, उनको परेशानी क्या है? और नागरी में भी तो परिवर्तन होते रहे हैं। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में प्रयुक्त ळ को छोड़ चुके हैं, और ड़, ढ़ आदि को अवर्गीय दशा में जोड़ चुके हैं। नागरी लिपि में कुछ ही व्यंजनों का अभाव है। उनमें से कुछ को स्थायी तौर पर और कुछ को अस्थायी प्रयोग के लिए गढ़ सकते हैं। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने यह सेवा बड़ी सरलता, सफलता और सुन्दरता से की है।

स्वर और प्रयत्न (लहजा) का अन्तर।

अब रहे स्वर। जान लीजिए कि प्रमुख स्वर तीन ही हैं— अ, इ, उ; उनसे दीर्घ, संयुक्त (डिफ्थांग) बनते हैं। अतिदीर्घ, प्लुत, लघु, अतिलघु आदि फिर अनेक हैं जो विश्व में अनेक रूपों में बोले जाते हैं। भारतीय वैदिक एवं संस्कृत व्याकरण में अनेक हैं। वे स्वतंत्र स्वर नही है, प्रयत्न हैं, लहजा हैं। वे सब न लिखे जा सकते हैं, न सब सर्वत्र बोले जा सकते है। डायाक्रिटिकल मार्क्स कोशों में छाप-छापकर चमत्कार भले ही दिखा दिया जाय, प्रयोग में तो, "एक ही रूप में", अपने निजी देशों में भी नही बोले जाते। स्वर क्या, व्यंजन तक। एक शब्द "पहले" को लीजिए। सब जगह घूम आइए, देखिए उसका उच्चारण किन-किन प्रकार से होता है। एक बिहार प्रदेश को छोड़कर कहीं भी "पहले" का

लेखानुरूप शुद्ध उच्चारण सुनने को नहीं मिलेगा। उसी भाँति पंजाब, बंगाल, मद्रास के अंग्रेज़ी के उद्भट विद्वान् अंग्रेज़ी में भाषण देते हैं—उनके लहूजे (प्रयत्न) बिलकुल भिन्न होते हैं। फिर भी न उनका उपहास होता है, न अंग्रेजी भाषा का ह्रास।

शास्त्र पर व्यवहार की वरीयता।

शास्त्र और विज्ञान से हमको विरोध नहीं। उसकी रचना, शोध, परिमार्जन, देश-काल-पात्र के अनुसार करते रहिए, परन्तु व्यवहारिकता को अवरुद्ध मत कीजिए। खाद्यपदार्थ के तत्त्वों का गुण-दोष, परिमाण, संतुलन, न्यूनाधिक्य, और खानेवाले की शक्ति के साथ उनका समन्वय, यह सब स्तुत्य है, कीजिए। किन्तु ऐसा नहीं कि उस समीक्षा के पूर्ण होने तक कोई भूखा रहकर मर ही जाय। थाली रखी है, उसे भोजन करने दीजिए। आज सबसे ज़रूरी है राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का एक-दूसरे की ज्ञानराशि को समझने के लिए एक सम्पर्क लिपि की व्यापकता।

'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने स्थायी और मुक़ामी तौर पर अनेक स्वर-व्यंजनों की सृष्टि की है। दक्षिणी भाषाओं में प्रयुक्त एकार तथा ओकार की ह्रस्व, दीर्घ मात्राएँ हम प्रयोग में ला रहे हैं। पढ़ने दीजिए, बढ़ने दीजिए। समस्त भाषाओं के ज्ञान-भण्डार को निजी क्षेत्रों से उठाकर धरातल तक नागरी लिपि के माध्यम से पहुँचाइए। नागरी लिपि मानव के पूर्वज की सृष्टि है, मानव मात्र की है। यहाँ से योरोप तक उसकी पहुँच है। यूरोपियों की लिपि-शैली नागरी थी। अक्षरों के रूप कुछ भी रहे हों। किन्हीं कारणों से सामीकुलों में भटककर अलफ़ा-बीटा के क्रम को थोड़े अन्तर के साथ अपना लिया। फिर पुराने संस्कारों से याद आया, तो स्वर-व्यंजन पृथक् माने। किन्तु उनके क्रम-स्थान जैसे के तैसे मिले-जुले रहे। सामीकुल की भाषाओं ने भी प्रमुख स्वर तीन ही माने हैं, ज़बर-ज़ेर-पेश (अ इ उ)। ै और ौ का उच्चारण अरबी, संस्कृत, अवधी और अपभ्रंश का एक जैसा है— (अई, अऊ)। किन्तु खड़ी बोली व उर्दू के ऐ, और औ, ऐनक, औरत जैसे। यह स्वरों की भिन्नता नहीं है, वरन् लहजा (प्रयत्न) की भिन्नता है।

पूर्ण वैज्ञानिक कोई वस्तु मनुष्य के पल्ले नहीं पड़ सकती है। "पूर्ण विज्ञान" भगवान् का नाम है। सा-रे-ग-म-प-ध-नी ये सात स्वर; उनमें मध्य, मन्द, तार; कुछ में तीव्र, कोमल—बस इतने में भारतीय संगीत बँधा है। उनमें भी कुछ अदा नहीं हो सकते, अनुभूति मात्र हैं। किन्तु क्या इतने ही स्वर हैं? संगीत के स्वरों का इनके ही बीच में अनंत विभाजन हो सकता है। जैसे अणु से परमाणु का, और उसमें भी आगे किन्तु शास्त्र एक वस्तु है व्यवहार दूसरी व्यवहार में उपर्युक्त षडज से

निषाद तक को पकड़ में लाकर संगीत क़ायम है, क्या उसको रोककर इनके मध्य के स्वरों को पहले तलाश कर लिया जाय ? तब तक संगीत को रोका जाय, क्योंकि वह पूर्ण नहीं है ? क्या कभी वह पूर्ण होगा ? पूर्ण तो 'ब्रह्म' ही है। "बेस्ट् इज् द ग्रेटेस्ट् एनिमी ऑफ़् गुड् !" (Best is the greatest enemy of Good.) इसलिए शग़ल और शोव्दों की आड़ न ली जाय। नागरी लिपि पर्याप्त सक्षम है।

विश्व-व्यापकता के संदर्भ में नागरी लिपि के स्वरों का रूप।

लिखने के भेद— यदि नागरी को हिन्दी क्षेत्र की ही लिपि बनाये रखना है तो इ, उ, ए, ऐ, लिखने के अपने पुरानेपन के मोह में मुग्ध रहिए। और यदि उसे राष्ट्रलिपि अथवा विश्व तक में, यहाँ तक कि सामीकुल में भी आसानी से ग्राह्य बनाना चाहते हैं तो अि, अु, अे, अै लिखिए। किन्तु कोई मजबूर नहीं करता। विनोबा जी ने भी इसका आग्रह नहीं रखा। आकार और रूप का मोह व्यर्थ है। पुराने ब्राह्मी-शिलालेखों को देखिए। आपके मौजूदा रूप वहाँ जैसे के तैसे कहाँ हैं ?

संस्कृत के तिरस्कार से भाषा-विघटन।

मेरा स्पष्ट मत है कि "संस्कृत" को राष्ट्रभाषा होना चाहिए था। वह होने पर, यह भाषा-विवाद ही न उठता। सबको ही (यहाँ तक कि हिन्दी-भाषी को भी) समान श्रम से संस्कृत सीखने से हमारा अपार ज्ञान-भण्डार सबको हस्तामलक होता और हिन्दी की पैठ में भी दिन-ब-दिन प्रगति ही होती। उर्दू-हिन्दी की अपेक्षा, अन्य सभी भारतीय भाषाएँ, सस्कृत के अधिक समीप हैं। किन्तु अब वह बात हाथ से बेहाथ है; और "हिन्दी" ही राष्ट्रभाषा सबको मान्य होना चाहिए। यह इसलिए कि हिन्दी ही एक भारतीय भाषा है जो देश के हर स्थल में कमोबेश प्रविष्ट है।

आज क्या करना है ?

सार यह कि हुज्जत कम, काम होना चाहिए। शास्त्र पर व्यवहार प्रबल है। समय बड़ा बलवान है, वह आवश्यकतानुसार ढलाई कर देता है। हिन्दी-क्षेत्र में ही घूम-घूमकर प्रतिमा-अनावरण, हिन्दी का महिमा-गान, अनुवादों की धूम, अमुक भाषा की हिन्दी को यह देन, अमुक भाषा में हिन्दी की यह छाप— यह सब दिशाविहीनता, क़िलेबन्दी और अभियान त्यागकर नागरी लिपि में विश्व का साहित्य लाइए। टूटी-फूटी ही सही, हिन्दी बोलना भी— (ही नहीं) बल्कि "भी" बोलने का अभ्यास कीजिए। लिपि और भाषा की सार्थकता होगी। मानवमात्र का कल्याण होगा। हमारी एकराष्ट्रीयता चरितार्थ होगी।

—नन्दकुमार अवस्थी

मुख्यन्यासी सभापति भुवन वाणी ट्रस्ट लखनऊ

प्रकाशकीय प्रस्तावना

लोकप्रख्यात धर्मग्रन्थ 'श्री गुरूग्रन्थ साहिब' के हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण के प्रकाशन की योजना सफल सम्पूर्ण हुई। पावन ग्रन्थ ३७६४ पृष्ठों और चार सैंचियों में प्रकाशित होकर हिन्दी जगत के सम्मुख अवतीर्ण हुआ और जनता ने बड़ी उत्कण्ठा और भावावेश में उसका स्वागत किया। इस सोल्लास प्रतिक्रिया से प्रोत्साहित होकर हमने तत्काल श्री दसम गुरूग्रन्थ साहिब के नागरी रूपान्तर की योजना बनायी और उसी के फलस्वरूप श्री दसम गुरूग्रन्थ साहिब की यह प्रथम सैंची पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है। शेष तीन सैंचियाँ मुद्रित हो रही हैं।

भुवन वाणी ट्रस्ट के 'देवनागरी अक्षयवट' की देशी-विदेशी प्रकाण्ड-शाखाओं में, संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, उर्दू, हिन्दी, कश्मीरी, गुरमुखी, राजस्थानी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, कोंकणी, मलयाळम, तमिळ, कन्नड, तेलुगु, ओड़िया, बंगला, असमिया, नेपाली, अंग्रेज़ी, हिब्रू, ग्रीक, अरामी आदि के वाङ्मय के अनेक अनुपम ग्रन्थ-प्रसून और किसलय खिल चुके हैं, अथवा खिल रहे हैं। इस नागरी अक्षयवट की गुरमुखी शाखा में प्रस्तुत यह 'दसम गुरूग्रन्थ साहिब' ग्रन्थ तीसरा पल्लव-रत्न है।

भूमण्डल पर देश-काल-पात्र के प्रभाव से मानव जाति, विभिन्न लिपियाँ और भाषाएँ अपनाती रही है। उन सभी भाषाओं में अनेक दिव्य वाणियाँ अवतरित हैं, जो विश्वबन्धुत्व और परमात्मपरायणता का पथ-प्रदर्शन करती हैं; किन्तु उन लिपियों और भाषाओं से अपरिचित होने के कारण हम इस तथ्य को नहीं देख पाते। अपनी निजी लिपि और अपनी भाषा में ही सारा ज्ञान और सारी यथार्थता समाविष्ट मानकर, दूसरे भाषा-भाषियों को उस ज्ञान से रहित समझते हुए हम भेद-विभेद के भ्रमजाल में भ्रमित होते हैं।

भूमण्डल की बात तो दूर, हमारे अपने देश 'भारत' में ही अनेक भाषाएँ और लिपियाँ प्रचलित हैं। एक ब्राह्मी लिपि के मूल से उत्पन्न होने के बावजूद उन सबसे परिचित न होने के कारण हम अपने को परस्पर विघटित समझने लगते हैं। सारी लिपियाँ और भाषाएँ सीखना-समझना सम्भव भी नहीं है।

सुतरां, यथासाध्य विश्व, और अनिवार्यतः स्वराष्ट्र की सभी भाषाओं के दिव्य वाङ्मय को राष्ट्रभाषा हिन्दी और सम्पर्कलिपि नागरी में सानुवाद लिप्यन्तरित करके क्षेत्रीय स्तर से बढ़ाकर उसको सारे राष्ट्र को सुलभ

कराना, समस्त सदाचार-साहित्य-निधि को सारे देश की सम्पत्ति बनाना, यह संकल्प भगवान की प्रेरणा से सन् १९४७ में मैंने अपनाया, और इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु १९६९ ई० में 'भुवन वाणी ट्रस्ट' की स्थापना हुई। 'श्री गुरुग्रन्थ साहिब' और प्रस्तुत 'श्री दसम गुरुग्रन्थ साहिब' के हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण भी भाषाई सेतुबन्ध की इसी पुष्कल शृङ्खला की कड़ी हैं।

आदिग्रन्थ तथा दशम गुरुग्रन्थ की भाषा

आदि श्री गुरुग्रन्थ साहिब की लिपि गुरमुखी है। पृष्ठ ३ पर प्रस्तुत गुरमुखी-देवनागरी वर्णमाला चार्ट से स्पष्ट है कि गुरमुखी अक्षर प्राय: नागरी लिपि के अनुरूप हैं और सामान्य ध्यान रखने पर गुरमुखी और हिन्दी-भाषी परस्पर दोनो लिपियों का सरलता से पाठ कर सकते है। ग्रन्थ की गुरुवाणियाँ अधिकांश पञ्जाब प्रदेश में अवतरित हैं और इस कारण जन-साधारण उनकी भाषा को पञ्जाबी के सदृश अनुमान करता है; जबकि बात ऐसी नहीं है। श्री गुरुग्रन्थ साहिब की भाषा आधुनिक पञ्जाबी भाषा की अपेक्षा हिन्दी भाषा के अधिक समीप है और हिन्दी-भाषी को पञ्जाबी-भाषी की अपेक्षा गुरु-वाणियों का आशय अधिक बोधगम्य है।

दूसरी ओर यद्यपि श्री दसम गुरुग्रन्थ की भी लिपि गुरमुखी है, परन्तु इसकी भाषा प्राय: अपभ्रंश हिन्दी में कवितावद्ध है। इसकी भाषा पजाबी-भाषियों के लिए और अधिक दुरूह किन्तु हिन्दी-भाषियों के लिए भलीभाँति जानी-पहचानी।

एक और भ्रम !

दूसरी भ्रान्ति है कि सामान्यजन समझते हैं कि ये 'गुरुग्रन्थ' सिक्ख-पन्थ-मात्र के धर्मग्रन्थ हैं, उनमें सिक्ख अनुयायियों के लिए ही विधि-निषेध वर्णित होंगे; जबकि तथ्य यह नहीं है। अलबत्ता यह सही है कि सकट और त्रास के युग में एक संत्रस्त मानव-समूह इन वाणियों के बल पर सगठित हुआ और अपूर्व उत्सर्ग एवं बलिदान द्वारा उसने समाज को परित्राण दिलाया। परन्तु दिव्य गुरुवाणियों में किसी वर्ग-विशेष, पक्ष-विपक्ष, मित्र-शत्रु की झलक मात्र नहीं मिलती। सामाजिक एवं धार्मिक आडम्बरो से बन्धनमुक्त करते हुए, शाश्वत सदाचार और सद्विचार के द्वारा गुरु चिन्तन, आत्म-परमात्म-चिन्तन और मिलन की ओर मानव मात्र को उन्मुख किया गया है। कहीं यह गन्ध भी नहीं मिलती कि कौन उत्पीड़ित है, कौन उत्पीड़क। मानवीय दुर्बलताओ और दुर्वासनाओं को ही शत्रु मानकर साक्षात ईश्वरस्वरूप गुरु की कृपा से उनसे स्वत्राण और अन्तत आवागमन से मुक्ति पाने का नाद ग्रन्थ वाणियो म ओतप्रोत है

गुरमुखी मे प्राप्त ऐसे सार्वभौम दिव्य ग्रन्थों के अनुवाद पंजाबी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में भले ही हुए हैं, किन्तु आम जनता को बोधगम्य हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है। ग्रन्थ साहिब के आंशिक हिन्दी भाष्य तो देखने को मिले; परमानन्द उदासी द्वारा श्री जपुजी की विशद व्याख्या, एवं कई अन्य टीकाएँ भी। किन्तु एक तो वे टीकाएँ समग्र ग्रन्थ की नहीं है, आंशिक हैं, दूसरे वे व्याख्याएँ विस्तर में है और विद्वानों के लिए ही अधिक उपयुक्त हैं। जनसाधारण की सहज पैठ उनमें संभव नहीं। इस विचार से प्रेरित होकर ही श्री गुरुग्रन्थ साहिब एवं श्री दसम गुरू ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण सामान्य जनता के कल्याणार्थ प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

आदि श्री गुरूग्रन्थ साहिब का हिन्दी अनुवाद

वाणी और भाव, दोनों का सही निर्वाह करते हुए अनुवाद का कार्य सरल नहीं था। हिन्दी और गुरमुखी, दोनों भाषाओं में पर्याप्त गति, भावग्राह्यता, और दर्शन के प्रति सहज निष्ठा, इन सबकी जरूरत थी। इसी खोज के दौरान, डॉ० मनमोहन सहगल, एम० ए०, पीएच्० डी०, डी० लिट्, हिन्दी विभागाध्यक्ष, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला से साक्षात् हुआ। ट्रस्ट के पुनीत और गुरुतर कार्य पर प्रसन्न होकर उन्होंने बड़े निस्पृह भाव इस गहन कार्य को सम्हाला। उन्हीं के योगदान से, आदिग्रन्थ का सम्पूर्ण हिन्दी संस्करण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो सका। राष्ट्रभाषा मे यह एक बड़े अभाव की पूर्ति हुई।

श्री दसम गुरूग्रन्थ साहिब का प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद

भुवन वाणी ट्रस्ट के भाषाई सेतु-बन्धन कार्य की यह परम्परा है कि जैसे ही किसी भाषा का एक सानुवाद लिप्यन्तरित अनुपम ग्रन्थ प्रकाश में आता है, बिना विराम उस भाषा के दूसरे ग्रन्थ का प्रकाशन आरम्भ हो जाता है। सुतरां, गुरूग्रन्थ साहिब जैसे विशाल और पुनीत ग्रन्थ की अन्तिम (चौथी) सेंची का मुद्रण समाप्ति के समीप पहुँचते ही, यह उत्कण्ठा थी कि गुरुमुखी का अब कौन अन्य श्रेष्ठ ग्रन्थ आरम्भ किया जाय।

ध्यान श्री दसमगुरू ग्रन्थ साहिब की ओर पहले से था। यह ग्रन्थ भी, आदि गुरूग्रन्थ साहिब की भाँति उतने ही पृष्ठों में पूर्ण है। वही आकार, वही चार सेंची और लगभग उतने ही पृष्ठ सम्भावित हैं। इस ग्रन्थ के प्रणेता श्री गुरु गोविन्दसिंह को देश-विदेश में कौन नहीं जानता ? भारत में तो बच्चा-बच्चा उनके शौर्य और अद्वितीय बलिदान से परिचित है।

संयोग से सुपात्र विद्वान् डॉ० जोधसिंह, एम० ए०, पीएच्० डी०, प्रोफेसर हिन्दू विश्वविद्यालय से परिचय हुआ (अभी ताज़ा समाचार मिला है कि पजाबी विश्वविद्यालय पटियाला मे सिक्ख दर्शन विभाग मे

रीडर के पद पर नियुक्ति उन्होने स्वीकार की है।) अस्तु, इन्होंने श्री दशम गुरुग्रन्थ साहिब के हिन्दी अनुवाद का कार्य-भार सम्हाला। उनके ही निस्पृह-भाव से किये गये श्रम के फलस्वरूप यह प्रथम सैंची हिन्दी जगत् के सम्मुख आज इतना शीघ्र प्रस्तुत है। शेष सैंचियाँ यथाशीघ्र क्रमश: प्रकाशित होती जायँगी। श्री दसम गुरुग्रन्थ साहिब के कुछ अंशों के सम्बन्ध मे समाज में कुछ मतभेद भी हैं। विद्वान् अनुवादक ने अपनी भूमिका में उनका बड़ी योग्यता से समन्वय किया है।

नागरी लिप्यन्तरण

गुरुमुखी पाठ को यथावत् शुद्ध रूप में नागरी लिपि में प्रस्तुत करने के लिए प्रकाशित अब तक के उपलब्ध नागरी लिप्यन्तरणों को हमने आरम्भ में आधार बनाया। किन्तु श्री गुरुग्रन्थ साहिब के गुरमुखी सस्करण से मिलान करने पर विदित हुआ कि नागरी लिप्यन्तरणकार ने गुरमुखी पाठ को नागरी लिपि में रूपान्तरित करते समय, शब्दों को हिन्दी और संस्कृत के समीप पहुँचाने का यत्न हुआ है; जबकि उनको (गुरमुखी पाठ को) केवल नागरी अक्षरो में यथावत् लिख देना चाहिए था।

सभी भारतीय भाषाओं में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का अमित भण्डार है; सुतरां, गुरमुखी में और श्री गुरुग्रन्थ साहिब की (गुरमुखी) भाषा में भी संस्कृत से उद्भूत अनेक तद्भव शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। ज्ञातव्य है कि मूल पोथी के लेख की आर्ष पवित्रता को चिरस्थायी रखने के लिए, आदि पोथी में यदि कोई अशुद्ध शब्द प्रमादवश लिख गया है, तो आज भी, लाखों प्रतियाँ छप जाने पर भी, उन अशुद्धियों को संशोधित रूप में लिखना अमान्य समझा गया। उदाहरण के लिए यदि आदि लेख में 'ओुही', 'गुोविंद', 'गुोपाल' आदि लिख गये हैं, तो उनको आर्ष होने के नाते पूज्य और शाश्वत मानकर जैसे का तैसा ही लिखा जा रहा है; उनको, अगले छापों में, क्रमश: 'ओही', गोबिंद', 'गोपाल' नही सशोधित किया गया।

ऐसी सावधानी का निर्देश रहने पर जो शब्द गुरमुखी पाठ में गुरु ग्रन्थ साहिब की भाषा के अनुरूप शुद्ध लिखे गये है, उनके हिन्दीकरण, अथवा संस्कृतीकरण, अथवा तद्भव से तत्सम बनाने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? उदाहरण के लिए नागरी लिप्यन्तरण में (१) अम्रित को अमृत किया गया है। राग-लय-बद्ध गुरुवाणियों में इन दोनों प्रयोगों मे एक मात्रा का अन्तर पड़ जाता है। 'अम्रित' में चार मात्राओं के स्थान पर 'अमृत' में केवल तीन मात्राएँ रहकर छन्द-दोष उत्पन्न करती हैं। (२) उसी प्रकार 'त्रिस्ना' को 'तृष्णा' लिखा गया है। गुरमुखी में ऋ अक्षर का प्रयोग ही नहीं है फिर यदि तसम रूप ही देना था तो

'तृषा' चाहिए, न कि 'तृखा'। इसी प्रकार 'त्रिसटि', 'द्रिसटि' आदि को 'सृसटि', 'दृसटि' आदि लिखा गया है, जबकि उनके तत्सम रूप 'सृष्टि' और 'दृष्टि' हैं। इस प्रकार प्रचलित नागरी लिप्यन्तरण में अनेक शब्द गुरमुखी मूलपाठ से विकृत हो गये हैं; न अब वे गुरमुखी रहे, न हिन्दी रहे, और न संस्कृत रहे। पावन ग्रन्थ श्री गुरूग्रन्थ साहिब, पवित्र गुरमुखी भाषा में अवतरित है। अतः नागरी लिपि में गुरमुखी पाठ को जैसे का तैसा रूपान्तरित करने मात्र का अधिकार है; उसके हिन्दीकरण या संस्कृतीकरण का नहीं। सुतरां हमने श्री शिरोमणि गुरुद्वारा कमेटी, अमृतसर द्वारा प्रकाशित मूल गुरमुखी लिपि से मिलाकर तद्रूप नागरी मे लिप्यन्तरण किया।

श्री दसम गुरूग्रन्थ साहिब का नागरी लिप्यन्तरण

किन्तु दसम गुरूग्रन्थ में समस्या दूसरी है। इसमें प्राचीन अपभ्रंश-हिन्दी में कवित्तों की रचना है। मूल पाठ गुरमुखी लिपि से पृथक् न हो और काव्य के पढ़ने के धारा-प्रवाह में विघ्न न हो, इसके लिए नागरी लिप्यन्तरण में विशेष सतर्कता रखी गई है। ग्रन्थ का नागरी लिप्यन्तरण ट्रस्ट के कुशल विद्वानों ने बड़े श्रम और अनन्य निष्ठा से किया है।

गुरमुखी एवं नागरी ग्रन्थों के पाठ के मिलान की सुविधा

गुरुमुखी और हिन्दी संस्करण में कौन पाठ एक-दूसरे में कहाँ है, यह जानने के लिए हिन्दी मूल पाठ के बीच में छोटे आकार में पृष्ठ-संख्या दी गई है। उदाहरण— हिन्दी संस्करण का देखिए पृष्ठ ४९८। उसमे मूलपाठ में एक स्थल पर छपा है (मू० ग्रं० २१३)। समझिए कि पृ०४९८ का यह नागरी पाठ गुरमुखी ग्रन्थ में २१३ पृष्ठ पर और गुरुमुखी ग्रन्थ के पृष्ठ २१३ का यह पाठ नागरी ग्रन्थ के ४९८ पृष्ठ पर प्राप्त है।

विश्वबन्धुत्व के सम्बन्ध में ट्रस्ट की अपेक्षाएँ

प्रश्न यह उठता है कि विश्ववाङ्मय के परस्पर लिप्यन्तरण और अनुवाद से मानव मात्र में सद्भावना की उपलब्धि क्या सम्भव है? मेरा नम्र निवेदन है कि यह कठिन है। सृष्टि के आरम्भ से त्रिविध भूखण्डो मे समय-समय पर अवतारी पुरुष और आप्त ग्रन्थ प्रकट होते रहे है। फिर भी संगठन और विघटन, दोनों ही वर्तमान हैं। उनमें चढ़ाव-उतार होता रहता है। तब हमारे टिट्टिभि-प्रयास की क्या बिसात है। साथ ही दूसरा प्रश्न हम रखते हैं कि यह मानते हुए कि विश्व का समस्त वाङ्मय मानव मात्र की सम्पत्ति है, क्या वह समग्र मानव की पहुँच मे न बनाया जाय? किसी एक वाङ्मय को यदि हम ग़ैर मानकर उससे विरक्त रहते है तो हम अपने को निर्धन बनाते हैं। उसी भाँति यदि कोई समूह किसी वाङमय विशेष को अपनी ही पूंजी शेष मानव

समाज को उससे वञ्चित रखता है तो वह व्यक्ति अथवा समूह उस कृपण के सदृश है जो किसी निधि का न स्वयं उपभोग कर पाता है, न किसी अन्य को उपभोग करने देता है ।

ट्रस्ट की यह मान्यता है कि धरातल का समस्त वाङ्मय मानवमात्र की सम्पत्ति है । लिपि और भाषा के पट को अनावृत कर उस सबको सर्वसुलभ बनाना चाहिए । भले ही मानव की पार्थक्य-भावना का मूलनाश न हो, परन्तु एकीकरण की ओर कर्तव्य करते रहना हमारे लिए श्रेयस्कर है । छोटे से भी छोटा सत्कार्य कभी व्यर्थ नहीं जाता, नष्ट नहीं होता—

"पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति ।।"

—गीता ६ : ४०

दश गुरु अवतार

हम इन गुरमुखी के दो पुष्कल ग्रन्थों को नागरी-हिन्दी-जगत् के सम्मुख रखते हुए अपने को कृतकृत्य मानते हैं । दश गुरुओं के अवतरण का महत्त्व और उस समय को देश की अवस्था पर ध्यान दीजिए ।

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।"

—गीता ४ : ७-८

पन्द्रहवीं शताब्दी की बात है, जब भारत एक ओर तो विदेशी आक्रान्ताओं के दमन से त्रस्त था, तो दूसरी ओर उसकी अपनी सामाजिक व्यवस्था दम तोड़ रही थी । रूढ़िवाद; जातिवाद; ऊँच-नीच का भेद; धर्म में नाना प्रकार की मान्यताएँ; पाखण्ड, स्वार्थ, स्पर्धा, ईर्ष्या में डूबा हुआ भारतीय समाज विघटन के कगार पर खड़ा था । सहज़ोर और कमज़ोर सभी किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में थे । ऐसी तमाच्छन्न दशा में गुरु नानकदेव जी महाराज का दिव्य तेज उदय हुआ । उन्होंने क्षेत्र, भाषा, नाना धर्म एवं मान्यताएँ, वर्ण, जाति, सबको एक सूत्र में बँधने और सदाचार तथा परमेश्वर में अटूट श्रद्धा प्राप्त करने का मंत्र फूँका । देश विदेश का पर्यटन कर समस्त भारतीय परिवार को ज्ञान की ज्योति प्रदान की

के स्वार्थ को देखना। श्रेय मार्ग की सिद्धि पर प्रेय तो स्वतःसिद्ध है। इन्हीं श्रेय और प्रेय को श्री गुरुग्रन्थ साहिब में गुरमुख और मनमुख कहकर परमात्मपरायणता और सदाचार का आद्योपान्त उपदेश किया गया है।

ज्योति में ज्योति का सन्निवेश

गुरु नानकदेव महाराज से एक गुरुपरम्परा दश गुरुओं तक चली। अहिंसा और शान्ति के माध्यम से समाज में संगठन, आत्मनिर्भरता और सदैव गुरमुख रहने का भाव उत्तरोत्तर प्रखर होता गया। एक गुरु के निर्वाण होते ही उनका दिव्य तेज दूसरे गुरु-कलेवर में सन्निविष्ट होकर उत्पीड़ित प्रजा और उत्पीड़क, दोनों ही को गुरमुख मार्ग का सदुपदेश करता रहा। उत्पीड़क शासक अथवा उसके कृपापात्र भी गुरुओं के चमत्कार के आगे अनेक अवसरों पर नत हुए। फिर भी नित्य बढ़ते गुरु-परम्परा का प्रभाव और भारतीय समाज में उत्तरोत्तर संगठन का जागरण देखकर शासन कठोरतम होता गया। यह शान्तरस का अभियान श्री गुरु नानकदेव जी महाराज, श्री गुरु अंगददेव जी, श्री गुरु अमरदास जी, श्री गुरु रामदास जी तथा श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज तक चला। गुरु अर्जुनदेव जी महाराज के समय में ही "श्री गुरुग्रन्थ साहिब" का संकलन हुआ। ज्यों-ज्यों गुरु-परम्परा का प्रभाव बढ़ता गया, शिष्यों की संख्या और समाज में संगठन की वृद्धि उत्पन्न होने लगी, त्यों-त्यों उनके विरुद्ध षड्यंत्रकारियो के कुचक्र भी बढ़ते गये। यहाँ तक कि मुग़ल बादशाह जहाँगीर की आज्ञा से पञ्चम गुरु श्री अर्जुनदेव जी महाराज का बलिदान हुआ।

शान्त से वीररस का आविर्भाव

शहीद होते समय गुरु अर्जुनदेव जी महाराज ने शिष्यों और समाज को पहली बार यह उपदेश किया कि परकाष्ठा को पहुँची शान्ति के विफल होने पर अब शक्ति के उपयोग का अवसर आ गया।

यहीं से गुरुपरम्परा और उनके अनुगत समाज में वीररस का भी उदय हुआ। त्याग और तप के अतिरिक्त खड्ग भी उठा और तब से श्री गुरु हरगोविंद साहिब, श्री गुरु हरिराय, श्री गुरु हरिकृष्ण, अनेकों युद्ध एवं छापों में आततायी शासन से मोर्चा लेते, जूझते रहे। नवम गुरु श्री तेग़बहादुर, शहीद हुए।

वीर से रौद्र-रस

गुरु महाराजों की तलवार का लोहा ज्यों-ज्यों प्रखर हो गया, शासन का ज़ुल्म त्यों-त्यों बढ़ता गया। नवम गुरु श्री तेग़बहादुर जी के बलिदान होते ही उनके सुपुत्र श्री गुरु गोविन्दसिंह ने खुलकर शासन के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। रौद्र ने वीररस का स्थान ग्रहण किया। बिजली के सदृश उन्होंने देश के कोने-कोने मे घूमकर अतीत की वीर

गाथाओं और महापुरुषों के पराक्रम एवं ओज के चरित्रों के वीरकाव्य द्वारा समस्त प्रजा में वीर और रौद्ररस को जाग्रत् किया। पग-पग पर छापे और युद्ध— शासन की सेना त्रिकल हो उठी। किन्तु समाज की आवश्यकता तो इस रुद्रावतार की शहीदी की थी। दिव्यतेजस्वरूप गुरु गोविंदसिंह जी अपने चार पुत्रों-सहित दिव्यलोक को पधारे।

दसम गुरूग्रन्थ साहिब

दसमेश इन अन्तिम गुरु श्री गोविंदसिंह जी महाराज के वीरकाव्य का संग्रह श्री दसम गुरूग्रन्थ साहिब का ही हिन्दीस्वरूप आज पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

सुपरिणाम

ये अमर बलिदान तो हुए, परन्तु नृशंस शासन ध्वस्त हो गया। दश गुरुओं का अमर ब्रह्मतेज 'श्री गुरूग्रन्थ साहिब' के रूप में आज भी हमको अलौकिक ज्ञान दे रहा है। वाहगुरू की फ़तह हुई।

गुरुर्ब्रह्मागुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरु ही परमात्मस्वरूप है। गुरु ही सर्वस्व है।

आभार-प्रदर्शन

सर्वप्रथम हम सरदार डॉ० जोधसिंह जी के कृतज्ञ हैं, जिन्होंने निस्पृह भाव से ट्रस्ट के आग्रह पर अनुवाद जैसे जटिल और गहन कार्य को राष्ट्रहित में अति श्रम से पूर्ण किया। सर्वाधिक श्रेय उनको है।

सदाशय श्रीमानों और उत्तरप्रदेश शासन (राष्ट्रीय एकीकरण विभाग) के प्रति भी हम आभारी हैं, जिनकी अनवरत सहायता से 'भाषाई सेतुकरण' के अन्तर्गत अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन चलता रहता है।

सौभाग्य की बात है कि भारत सरकार के राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) तथा शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय ने राष्ट्रभाषा हिन्दी-सहित सभी भाषाओं की समृद्धि और व्यापकता के लिए एक जोड़लिपि "नागरी" के प्रसार पर उपयुक्त बल दिया। उनकी उल्लेखनीय सहायता से हमको विशेष बल मिला है और उसी के फलस्वरूप गुरुमुखी— श्री दसम गुरूग्रन्थ साहिब की पहली सेंची का प्रकाशन प्रस्तुत वर्ष में सम्पूर्ण हो सका है।

विश्ववाङ्मय से निःसृत अगणित भाषाई धारा।
पहन नागरी पट, सबने अब भूतल-भ्रमण विचारा॥
अमर भारती सलिला की 'गुरमुखी' सुपावन धारा।
पहन नागरी पट, 'सुदेवि' ने भूतल-भ्रमण विचारा॥

नन्दकुमार अवस्थी
प्रतिष्ठाता **भुवन वाणी** ट्रस्ट लखनऊ

अनुवादकीय

भारत भूमि पर पिछले हजारों वर्षों के इतिहास में अनेकों ऋषि, तपस्वी, संत, वीर, योद्धा पैदा हुए हैं। वेद-मंत्रों के द्रष्टा ऋषि-मुनियो, दधीचि जैसे त्यागियों, जनक जैसे विदेह पुरुषों, विश्वामित्र, वशिष्ठ, पतंजलि, कपिल, शंकराचार्य जैसे महान् तत्त्वचिन्तकों तथा हरिश्चन्द्र, दशरथ, राम, कृष्ण आदि युगपुरुषों पर भारतवासियों को गर्व है। इन ऐतिहासिक अथवा प्रागैतिहासिक महान आत्माओं के कार्य व जीवनियाँ आज भी भारतीय जनमानस को काफ़ी हद तक प्रभावित कर रही हैं। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर एक-आधे अपवाद को छोड़कर यह पूर्णतया स्पष्ट है कि भारतीय इतिहास में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास लगभग एकांगी ही रहा है, अर्थात् संत, ऋषि आदि केवल अध्यात्म में ही निपुण रहे हैं और योद्धा मात्र रणकौशल, सैन्य-संचालन में ही दक्ष रहे हैं। योद्धा और संत को एक-दूसरे पर आश्रित रहना पड़ा है और कहा जा सकता है कि ऋग्वेद के पुरुषसूक्त के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सूद्र की परमपुरुष के शरीर से उत्पत्ति दिखानेवाले मंत्र की सही व्याख्या न समझाए जा सकने के कारण और लोगों को गुमराह कर इस वर्ण-व्यवस्था को निहित स्वार्थों के लिए कालान्तर में रूढ़ बना दिए जाने के कारण ही भक्ति और शक्ति की धाराएँ भारत में सदैव पृथक्-पृथक् ही चलती रही हैं। परशुराम, द्रोणाचार्य आदि जैसी महान् विभूतियाँ (जो कि जन्म से ब्राह्मण तथा कर्म से क्षत्रिय थे) केवल वीर योद्धा के रूप में ही इतिहास के माध्यम से हमारे सामने उभरी और दूसरी ओर विश्वामित्र (जो कि जन्म से क्षत्रिय थे) जैसे महान पुरुष ब्रह्मर्षि की उपाधि से विभूषित हुए। महाकाव्यों के समय में हम देखते हैं कि ऋषि-मुनि अध्यात्म के महान् स्रोत होने के बावजूद भी यज्ञों की रक्षा में अपने को असमर्थ पाकर राजाओं से सहायता लेते हैं और प्रत्येक राजा आध्यात्मिक और नैतिक बल के लिए ऋषि-मुनियो की कृपादृष्टि पर आश्रित है

गव अध्यात्म के समुद्र, गीता का उपदेश देनेवाले स्थिति-प्रज्ञ ब्रह्मज्ञानी हैं। श्रीकृष्ण का जीवन भारतीय इतिहास में एक विलक्षण एवं अद्भुत जीवन है, जिसमें त्याग, तपस्या, भक्ति एवं शक्ति का अपूर्व सामंजस्य है; परन्तु ध्यान से देखने पर कहा जा सकता है कि कृष्ण के जीवन में भक्ति और शक्ति का मेल होते हुए भी ये धाराएँ स्पष्टत: अलग अलग ही बनी रहती हैं। श्रीकृष्ण जी का वह जीवन, जिसमें वे लीलाएँ करते हैं, दानवों का नाश कर योद्धा-रूप में प्रतिष्ठित होते हैं, एक संत अथवा आध्यात्मिक पुरुष के जीवन के रूप में चित्रित नहीं हुआ है और यह हम स्पष्टत: देखते हैं कि जिस समय महाभारत के युद्ध में वे सम्मिलित हैं और तत्ववेत्ता के रूप में गीता का महान् उपदेश दे रहे हैं, उन्होंने शस्त्र तक न धारण करने की प्रतिज्ञा कर रखी है। महाभारत के युद्ध की तैयारी शुरू होने तक इस महान् पुरुष मे शक्ति और भक्ति के एक ही समय साथ-साथ दर्शन होने की संभावना बनी रहती है, परन्तु युद्ध की तैयारी के लिए पहुँचे अर्जुन एवं दुर्योधन दोनों पाते हैं कि श्रीकृष्ण सक्रिय युद्ध से अपने-आपको अलग ही रखना चाहते हैं।

गुरु गोविंदसिंह जी ने संत सिपाही के रूप में "खालसा" का सृजन कर भारतीय चिंतन और युद्धकौशल में एक अपूर्व योगदान दिया है और भारत में पहली बार भक्ति और शक्ति का अद्भुत मेल प्रस्तुत किया। सिक्ख गुरुओं ने भारतीय जतना पर "खालसा" सृजन का प्रयोग करने मे लगभग ढाई सौ वर्ष का समय लिया और गुरु नानक (जन्म १४६९) से लेकर (बैसाखी १६९९) गुरु गोबिंदसिंह तक पूरे भारतीय जनमानस का मंथन कर शताब्दियों से स्पष्ट रूप से अलग चली आ रही भक्ति और शक्ति की महान् भारतीय परम्परा को एक-दूसरे के संलग्न कर इसे संत सिपाही के रूप में "खालसा" की अवधारणा देकर और संपुष्ट किया। पहले पाँच गुरुओं ने युग की गति को देखते हुए भक्ति के साथ-साथ मानसिक पौरुष को पहले मजबूत आधार के रूप में प्रस्तुत किया और छठवें, सातवें, नौवें तथा दसवें गुरु ने उसी परम्परा को और मजबूत करते हुए एक हाथ मे तलवार और एक हाथ में माला लेकर चलनेवाले "खालसा पंथ" का निर्माण किया।

कुछ लोगों को गुरु नानक, गुरु अंगददेव तथा गुरु अमरदास आदि के भक्तिपूर्ण कार्यों तथा अंतिम गुरु गोविंदसिंह के युद्धपूर्ण जीवन मे सामंजस्य प्रतीत नहीं होता। वे मानते हैं कि गुरु नानक के उद्देश्यो और गुरु गोविंदसिंह के लक्ष्यों में समानता नहीं है। ऐसा मानना उन लोगों के लिए तो उचित है जो गुरुओं के जीवन और गुरुवाणी गुरुग्रंथ साहिब से अनभिज्ञ हैं परन्तु जिन्होंने सिक्ख धर्मग्रंथों का गहन्

किया है वे इस बात को नहीं मान सकते। गुरु नानक बेशक एक महान आध्यात्मिक युगपुरुष थे परन्तु दया, विनम्रता, सेवा, परोपकार के उपदेशो के साथ-साथ वे गुरुग्रंथ में अपने शिष्यों को यह उपदेश भी देते हैं कि यदि तुम्हें राष्ट्र, मानवता, स्वाभिमान आदि से सच्चा प्रेम है तो प्रेम के रास्ते पर चलने के लिए सिर को हथेली पर रखकर चल सकने की अर्थात् प्राणों की भी परवाह न करने की आदत डालनी होगी—

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ।
सिरु धरि तली गली मोरी आउ॥
इतु मारगि पैरु धरीजै।
सिरु दीजै काणि न कीजै॥

[गुरुग्रंथ पृ० १४१२]

गुरु अंगददेव यह स्पष्ट मानते हैं कि योगमार्ग का कर्तव्य, ज्ञानार्जन और ब्राह्मण का कर्तव्य वेदाध्ययन एवं मनन है। क्षत्रियों का धर्म वीरोचित कार्य करना तथा शूद्र का कर्तव्य पर-सेवा करना माना गया है, परन्तु अब वस्तुस्थिति को ध्यान में रखकर सभी का कर्तव्य है कि वे सभी मानवता को, भारतीयता को बंधन-मुक्त करने के लिए संगठित होकर ज्ञान, मनन, क्षत्रियत्व तथा सेवा के व्रत को धारण करें और किसी एक काम को किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार न मानें। गुरु अंगददेव यह कहते हैं, जो इस रहस्य को समझता है मैं उसका दास हूँ—

जोग सबदं गिआन सबदं बेद सबदं ब्राह्मणह।
खत्री सबदं सूर सबदं सूद्र सबदं पराक्रितह॥
सरब सबदं एक सबदं जे को जाणै भेउ।
नानकु ता का दासु है सोई निरंजन देउ॥

[गुरुग्रंथ पृ०४६९]

कबीर की अमर वाणी को सिक्ख-गुरुओं ने गुरुग्रंथ में संकलित किया जिसका संदेश है कि शूरवीर वही है जो असहायों के लिए अपने कर्तव्य का पालन करता हुआ युद्धशील बना रहता है और बेशक शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जायँ वह कभी भी रणक्षेत्र से भागता नहीं—

गगन दमामा बाजिओ परिओ नीसानै घाउ।
खेत जु मांडिओ सूरमा अब जूझन को दाउ॥
सूरा सो पहचानीऐ जु लरै दीन के हेत।
पुरजा पुरजा कटि मरै कबहूं न छाडै खेत॥

[गुरुग्रंथ पृ०११०५]

यह कहा जा सकता है कि गुरु गोविंदसिंह ने संतों को सुख देनेवाली और दुर्मति का नाश करनेवाली "खालसा" रूपी जिस कृपाण का निर्माण किया उसके लिए विनम्रता, सच्चरित्रता एवं दृढ़ता रूपी इस्पात की आपूर्ति गुरु नानक एवं अन्य गुरुजनों ने की।

दशम ग्रंथ के माध्यम से हम देखते हैं कि ग्रंथ के रचयिता का भक्ति और शक्ति के अपूर्व समन्वय का उद्देश्य रहा है। ग्रंथ की जाप, अकाल उसतति, ज्ञान प्रबोध, श्री मुखवाक सवैये आदि अध्यात्मवादी रचनाएँ परमात्मा को सर्वत्र सर्वव्यापक और चक्र-चिह्न-जाति-पाँति तथा कालातीत वर्णित करती हैं तथा उसको अनुभव करने के लिए प्रेमपूर्ण प्रपंच-विहीन तथा स्वाभिमानपूर्ण जीवन जीने का संकेत करती हैं। गुरु गोविंदसिंह मननशील चिंतक, साहित्यमर्मज्ञ एवं राष्ट्र-नायक थे और उनका दशम ग्रंथ राष्ट्रीय एवं युगचेतना से अनुप्राणित ग्रंथ है। दशम ग्रंथ के चौबीस अवतार आदि रचनाओं को देखकर कुछ पाठकों के मन में यह विचार आ सकता है कि अवतारों के विस्तृत वर्णन का उद्देश्य गुरु जी की अवतार-वादी भावना को संपुष्ट करना ही हो सकता है और इस प्रकार शायद गुरु गोविंदसिंह गुरु नानक और गुरु अर्जुनदेव द्वारा प्रतिपादित ओंकार को "अजूनी" और अजन्मा मानने की परम्परा से दूर जाते प्रतीत होते हैं। परन्तु ऐसा वे ही मान सकते हैं जिन्होंने दशम ग्रंथ का अध्ययन न करके केवल ऊपरी तौर पर ही कुछ बातों को जानने का प्रयत्न किया हो। गुरु गोविंदसिंह का सृजन किया हुआ "सिंह समाज" बेशक एक भिन्न वेश-भूषा, संस्कृति और रहन-सहन वाला समाज है परन्तु यह भिन्न होते हुए भी भारतीय संस्कृति एवं उसकी परम्पराओं से विच्छिन्न नहीं, अपितु किसी न किसी रूप में उससे जुड़ा हुआ है। गुरु ग्रंथ साहिब के अध्ययन से भी यही बात उभरकर सामने आती है। दशम गुरु के सामने बड़ी विकट परिस्थिति थी और गुलामी की जड़ें भारत में बड़ी गहरी पैठ चुकी थीं। स्वाभिमान, धार्मिक स्वतंत्रता, जो कि भारतीय संस्कृति का प्राण है, लगभग समाप्तप्राय थी। इतिहास साक्षी है कि स्वधर्म त्यागने की बाध्यता उस समय हर हिन्दू के सिर पर लटकनेवाली तलवार के समान थी और वैचारिक स्वतंत्रता पूर्ण रूप से समाप्त हो चुकी थी। निर्बल भारतीयों को शोषण, अपमान और कटुता से पूर्ण जीवन जीना पड़ रहा था। उस रीतिकालीन समय में जहाँ तथाकथित राजा महाराजा "अली कली ही सो बँध्यों आगे कौन हवाल" आदि पंक्तियों पर मुहरें न्योछावर कर विलासितापूर्ण जीवन जी रहे थे और कवि भी राधाकृष्ण के संयोग-शृंगार के प्रसंगों से आश्रयदाताओं को कामोद्दीप्त कर वाह-वाही लूट रहे थे गुरु गोविंदसिंह ने राम और कृष्ण के युगान्तकारी चरित्रों को अपने काव्य का

विषय बनाकर उनके योद्धास्वरूप की प्रतिष्ठापना की और इन नायकों के जीवन-चरित्र के पुनर्मूल्यांकन की ओर संकेत किया ।

भारतीयता से सदियों से जुड़े चले आ रहे सिक्ख-धर्म के परम उन्नायक गुरु गोविंदसिंह के लिए यह उचित ही था कि वे भारतीयों के शौर्य को ललकारने के लिए भारतीय महापुरुषों के जीवन कथानकों को अपने काव्य का आधार बनाते और जनमानस में एक नई चेतना फूंकते। उनके "खालसा" सृजन के अभियान की पूर्णाहुति सन् १६९९ में वैसाखी वाले दिन हुई और हम देखते हैं कि धोबी, नाई, कहार और जाट तथा क्षत्री सुनिश्चित रूप से भाई-भाई होकर एक-दूसरे के गले मिलने लगे और युद्धक्षेत्र में अपने कमाल दिखाने लगे । एक अन्य तथ्य भी यहाँ दृष्टव्य है । "गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य" के लेखक डॉ० जयभगवान गोयल के शब्दों में "यदि जायसी, कुतबन मंझन जैसे सूफ़ी कवि हिन्दू कहानियों को अपनाने से हिन्दू नहीं हो जाते, बल्कि सूफ़ी (मुसलमान) ही रहते हैं, वरन् उन कथाओं के माध्यम से सूफ़ीमत का प्रचार और प्रसार करने में अधिक सफल रहते हैं तो गुरु गोविंदसिंह अवतार कथाओं का वर्णन करने मात्र से अवतार भावना के पोषक कैसे हो सकते हैं, जबकि इन अवतार कथाओं में भी स्थान-स्थान पर आरम्भ अथवा अन्त में वे इन अवतारों के ब्रह्मत्व का खंडन करते हैं ।" यथा रामावतार के अन्त में रामावतार का कर्ता परमात्मा को संबोधित करता हुआ कहता है—

पाँइ गहे जब ते तुमरे तब ते कोऊ आँख तरे नहीं आन्यो ।
राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहैं मत एक न मान्यो ।।
सिम्रिति शास्त्र वेद सभै बहु भेद कहै हम एक न जान्यो ।
सिरी असिपान क्रिया तुमरी करि मैं न कह्यो सब तोहि बखान्यो ।।

गुरु गोविंदसिंह का "असिपान" (हाथ में शक्ति रूपी कृपाण धारण करनेवाला) परमात्मा के सिवा अन्य कोई नहीं है । इसी परमात्मा को वे अकालपुरुष कहते हैं और "चौबीस अवतार" रचना की प्रारम्भिक चौदहवीं चौपाई में इसी अकाल कर्तापुरुष की अनंतता और सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए गुरु जी कहते हैं—

ब्रह्मादिक सब ही पच हारे ।
बिशन महेश्वर कउन बिचारै ।।
चंद सूर जिन करे बिचारा ।
ता ते जनीयत है करतारा १४

उनकी यह भावना गुरु नानकदेव जी की जपुजी में "एका मा जुगति विआई तिन चेले परवाणु" की भावना से बिलकुल मेल खाती है जिसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों को उस परमतत्त्व से अनभिज्ञ होने की बात कही गई है। फिर दशम ग्रंथ में के अवतार-वर्णन में भी हम देखते हैं कि प्रत्येक अवतार से पहले धरती या संत महात्मा या देवगण "अकाल पुरुष" की आराधना और स्तुति करते हैं और अकालपुरुष प्रसन्न होकर उनके दुःख को दूर करने के लिए विष्णु को आदेश देते हैं। यथा वामन-अवतार-प्रसंग के प्रारम्भ में कवि कहता है—

करी जोग आराधना सरब देवं।
प्रसन्नं भए कालपुरखं अभेवं ॥ २ ॥
दियो आइसं कालपुरखं अपारं।
धरो बावना बिशन अष्टमवतारं ॥
लई बिशन आज्ञा चल्यो धाइ ऐसे।
लह्यो दारदी रूप भंडार जैसे ॥ ३ ॥

पुनः रुद्र-अवतार में भी अकालपुरुष की आज्ञा से विष्णु रुद्रावतार धारण करते हैं—

हस काल प्रसंन्न भए तब ही।
दुख स्रउनन भूम सुन्यो जब ही ॥
ढिग बिशन बुलाइ लयो अपने।
इह भात कह्यो तिहको सु पने ॥ ३ ॥

विष्णु के चौदहवें अवतार का वर्णन करते हुए भी देवी-देवताओं से संबंधित अपनी भावना का वे संकेत देते हैं—

कालपुरख की देहि मों, कोटिक बिशन महेश।
कोटि इंद्र ब्रहमा किते, रवि ससि क्रोर जलेश ॥ १ ॥

अवतारों के वर्णन में कृष्णावतार-वर्णन ने दशम ग्रंथ में सबसे अधिक स्थान घेरा है। रामावतार का वर्णन भी पर्याप्त पृष्ठों में हुआ है। परन्तु हम स्पष्टतः देखते हैं कि इन अवतारों का वर्णन मात्र लोगों में वीर-भावना जगाने के लिए हुआ है। कृष्णावतार में तो यह तथ्य बिलकुल स्पष्ट है। एक ओर तो हम पाते है कि श्रीकृष्ण का युद्ध-प्रबन्ध में चरित्र एक वीर नायक का है जो कि जनसामान्य के लिए एक आदर्श नायक हो सकता है और लोगो को कंस जैसे उत्पाती तथा उसके अनुचरो जैसे छली

व्यक्तित्वों से संघर्ष करने की प्रेरणा दे सकता है, परन्तु साथ-ही-साथ खड्ग सिंह जैसे काल्पनिक पात्र का सृजन कर दशम ग्रंथ के रचयिता ने अवतारों, देवी-देवताओं की तथाकथित शक्ति के भय का खंडन किया है। हम देखते है कि खड्गसिंह को मारने में साक्षात् शिव, ब्रह्मा, श्रीकृष्ण केवल असफल ही नहीं होते प्रत्युत् इनकी सामूहिक शक्ति भी खड्गसिंह की दृढ़ इच्छाशक्ति और परम परमात्मा की भक्ति के सामने उसका कुछ नही बिगाड पाती और ये सब खड्गेश के सामने से कई बार भाग खड़े होते हैं। जहाँ श्रीकृष्ण की सेना में दिखाए काल्पनिक पात्र अजायब खाँ और ग़ैरत खाँ, महाबली अमिटसिंह से मारे जाते दिखाए गए हैं, और जो कि शक्तिहीन हो चुके क्षत्रिय-समाज के मनोबल को उठाने में सहायक तथ्य था, वहीं साथ-ही-साथ देवताओं और गणों की कृपा पर हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहनेवाले भारतीय समाज के लिए यह एक मार्गदर्शन भी था कि हमे अपनी सहायता स्वयं आप करनी है। गुरु गोविंदसिंह के उत्तरवर्ती जीवन में हम इस भावना को जनसामान्य में साकार करने की उनकी सफलता को भी स्पष्ट देखते हैं कि कैसे देखते ही देखते धोबियों, नाइयों, कहारों, बढ़इयों का कायाकल्प हो गया और वे भी खड्गसिंह की तरह परमात्मा के अतिरिक्त किसी भी दैवी शक्ति की परवाह किए बिना युद्ध में जूझने लगे और शत्रुओं के दाँत खट्टे करने लगे।

गुरु गोविंदसिंह पर दूसरा आक्षेप दशम ग्रंथ के माध्यम से देवी-पूजा की उपासना से संबंधित है और इसलिए भी कई विद्वान दशम ग्रंथ को गुरु गोविंदसिंह जी की रचना मानने को तैयार नहीं हैं। इसमें कोई संदेह नही है कि चंडी देवी से संबंधित प्रकरण दशम ग्रंथों में एक से अधिक बार आया है जिसमें कवि देवी के प्रति अपनी विनम्र भावना का परिचय देता है परन्तु इन सब वर्णनों से मान लेना कि ग्रंथ का रचयिता देवी का उपासक रहा होगा सर्वथा भ्रामक है। वैसे भी दार्शनिक दृष्टि-कोण से देखने पर किसी देवी या देवता का मानवीकरण करना तर्कसंगत और उचित नहीं है, परन्तु मानव मन के सामने भी यह कठिनाई बहुत ही वास्तविक है कि स्वयं उस परम सत्ता का एक छोटा सा खंड होकर वह उस सम्पूर्ण सत्ता को कैसे समझे। मन का यह स्वभाव और उसकी यह अक्षमता एक वैज्ञानिक तथ्य है कि वह किसी भी वस्तु को उसकी समग्रता और निरपेक्षता में नहीं ग्रहण कर सकता। वह हर पदार्थों को खंड-खंड करके उन्हें पहले से उपस्थित बिंबों के साथ समायोजित कर आपेक्षित स्तर पर ही समझ सकता है। यह अलग बात है कि मन यह समायोजन इतनी शीघ्रता से करता है कि स्वयं जीव को भी स्पष्ट पता नहीं लग पाता कि खंडों को जोड़ने की प्रक्रिया की जा रही है। आध्यात्मिक क्षेत्र मे प्रचलित शब्द 'सच्चिदानन्द मन

की अपूर्णता और खंड-खंड में ही समझ सकने के तथ्य का द्योतक है। एक ही परम सत्ता को "सत् चित्" और "आनन्द" को अलग-अलग रूपों में ग्रहण कर ही मन उसको सच्चिदानन्द कहता है और उस परम तत्त्व को समग्र रूप, विश्वजनीन रूप से समझने में स्वयं अपूर्ण होने के कारण समझ सकने में असमर्थ पाता है। ये सत्, चित् और आनन्द तो दार्शनिक स्तर पर परमतत्त्व को समझने का प्रयत्न करनेवालों का मानसिक प्रवन्ध है, परन्तु ऐसा ही प्रबन्ध मानसिक रूप से कम विकसित अथवा स्थूल रूप से जानने का आग्रह करनेवालों ने भी किया है। उन्होंने अपने लिए अपनी सख्या और मानसिक धरातल के अनुरूप करोड़ों देवी-देवताओं की रचना परमात्मा के कर्तृत्व के आधार पर कर ली है। कोई उसे सर्जक, कोई सहायक पोषक और कोई उसे विघ्ननाशक गणेश के नाम से जानता है। कोई उसे वरुण, कोई सरस्वती और कोई उसे लक्ष्मी तथा लक्ष्मीपति मानता है। गुरुग्रंथ साहिब में मात्र "सत्य" को ही उसका वास्तविक नाम माना गया है और कहा गया है कि बाकी सभी नाम उसकी सर्वशक्तिसम्पन्नता तथा व्यापकता को सीमित करते हैं :

"किरतम नाम कथे तेरी जिहबा सतनाम तेरा परा पूरबला" (गुरु ग्रंथ) गुरु गोविंदसिंह इसी सत्य को महाकाल, अकालपुरुष निरंकार के नाम से पुकारते हैं और दशम ग्रंथ में स्पष्ट कहते हैं—

जेते बदन स्रिसटि सभ धारे। आपु आपुनी बूझि उचारें॥
तुम सबही ते रहत निरालम। जानत बेद भेद अरु आलम॥
निरंकार निरबिकार निरलंभ। आदि अनील अनादि असंभ॥
ताको करि पाहन अनुमानत। महाँ मूढ़ कछु भेद न जानत॥
महादेव को कहत सदा शिव। निरंकार का चीनत नहि भिव॥
आपु आपनी बुझि है जेती। बरनत भिन्न भिन्न तुहि तेती॥

[दशम ग्रंथ पृ० १२९७]

अपनी-अपनी बुद्धि को ही आधार मान कर सर्वशक्तिमान परमात्मा की शक्ति को ही कुछ लोगों ने चंडी, भवानी, भगवती आदि नाम दिए हैं। यह प्रबन्ध भी परमात्मा को निरपेक्ष सत्ता अथवा शक्ति के रूप में समझ सकने की असमर्थता का परिचायक है। फिर यह भी संभव नहीं कि शक्ति को शक्तिमान से अलग करके देखा या समझा जा सके। शक्ति और शक्तिमान वैसे ही एक हैं जैसे आत्मा शरीर से भिन्न होते हुए भी उसका

निरपेक्ष रूप शरीर से अलग करके दिखाया नहीं जा सकता। स्थूल शरीर दिखाई पड़ता है और यही स्थूल तत्त्वों का यौगिक शरीर इसके साथ सदैव सलग्न सूक्ष्म आत्मा का आभास और विश्वास देता है।

शरीर और आत्मा के संबंध में तो यह मान्य हो सकता है, परन्तु उस सूक्ष्म सर्वशक्तिमान परमात्मा का सामान्य मन कैसे साक्षात्कार करे, इसका प्रबन्ध भी पुराणकारों ने किया है। शिव की धरती पर लेटे हुए और उस पर पाँव रखकर चंडी (काली) के खड़े होने की मूर्ति भारतीय धर्म-साधना में काफ़ी प्रचलित है। शिव और चंडी की इस मुद्रा की दार्शनिक व्याख्या जहाँ यह कहती है कि चंडिका रूपी शक्ति के बिना शिव मात्र शव है और यह शक्ति ही उन्हें शक्तिमान कल्याणकारी शिव बनाती है, वहीं साथ-ही-साथ जो शिव से अलग उनकी शक्ति का दर्शन करना चाहते हैं उनके लिए यह स्थूल परन्तु सुन्दर प्रबंध है। यह सामान्य मन की जिज्ञासा शान्ति का उपाय भर है जो कि भारत में हज़ारों सालों से चलता चला आ रहा है। गुरु गोविंदसिंह के समय में चंडी का यह स्थूल रूप जनसामान्य मे भलीभाँति प्रचारित था। गुरु गोविंदसिंह ने मार्कण्डेय पुराण पर आधृत चंडिका के पूर्व प्रचलित प्रसंगों का यथासंभव कवि-कल्पना का पुट देते हुए अनुवाद भर कर दिया है, जिससे लोक-भावना की अभिव्यक्ति तो चंडी-चरित्र के माध्यम से अवश्य मानी जा सकती है, परन्तु यह नही माना जा सकता कि गुरु गोविंदसिंह किसी स्थूल चंडीदेवी के उपासक थे। यदि ऐसा होता तो दशम ग्रंथ में चंडी की पूजा-अर्चना आदि के विधि-विधानों का भी कवि द्वारा अवश्य वर्णन किया जाता जो कि कहीं नहीं है। कवि ने मात्र चंडिका के युद्धशील रूप का वर्णन किया है जिसमें वह कई बार दैत्यों का नाश करती है। गुरु गोविंदसिंह का अभीष्ट जनसामान्य में अत्याचार के विरुद्ध युद्ध करने की भावना भरना था और इस भावना की संपुष्टि उन्हें जिस भी प्रचलित देवी-देवता के चरित्र में वर्णित मिली उसे ही उन्होंने अपने काव्य का विषय बना लिया। यह आश्चर्य का विषय है कि सूफ़ी संत मियाँ मीर स्वर्ण मंदिर अमृतसर की नींव अपने हाथों से रखने पर भी मुसलमान बने रहते हैं और महाराजा रणजीतसिंह समान भाव से मंदिरों, मस्जिदों और गुरुद्वारों को सोना आदि दान करने पर भी सिक्ख बने रह सकते हैं, परन्तु यदि गुरु गोविंदसिंह ने चंडी-चरित्र आदि लिख दिए तो वे कैसे देवी-देवताओं से संबंधित विचार-धारा के पोषक माने जा सकते हैं।

अतः उनके द्वारा चंडी दी वार तथा चंडी-चरित्र-उक्ति-विलास आदि लिखा जाना कोई अप्रासंगिक और आश्चर्यकारी कार्य न होकर युग की माँग की पूर्ति करने का एक महान कार्य था

इसी प्रकार कई विद्वान उपाख्यान, चरित्र (त्रिया-चरित्र) के आधार पर भी यह कहते हैं कि इसके कामोद्दीपन करनेवाले आख्यान तथा तत्संबंधी तथाकथित अश्लील शब्दावली इस ग्रंथ को गुरु गोविंदसिंह जी की रचना होने में पर्याप्त संदेह उत्पन्न करते हैं।

भारतवर्ष में हज़ारों वर्षों से भिन्न-भिन्न तरीकों से काम के विरुद्ध संघर्ष चलता चला आ रहा है। हज़ारों-लाखों तपस्वी, मुनि, संन्यासी हो गुज़रे है, परन्तु शायद कोई एक-आध ही अकाम को प्राप्त हो पाया हो। आज किसी भी तथाकथित धार्मिक व्यक्ति के साथ कामवृत्ति को जोड़ना अशोभनीय ही नहीं माना जाता प्रत्युत् असंभव भी माना जाता है। फलस्वरूप अपने-आपको धार्मिक समझने या समझानेवाला व्यक्ति भी काम के प्रति अपनी घृणा को आत्मतुष्टि और दूसरों का आदर जीतने के लिए खुलकर प्रकट करने में संकोच का अनुभव नहीं करता। मन की गहराई में प्रत्येक व्यक्ति कामवासना के अस्तित्व को और उसकी उपयोगिता को किसी-न-किसी रूप मे अवश्य स्वीकार करता है। वास्तव में जीवन को गंभीरता के लबादे को ओढ़कर जीनेवालों ने काम की स्वाभाविक वृत्ति को विकृत करने में काफ़ी योगदान दिया है। काम एक शक्ति है जिसको जितने ज़ोर से दबाया जायेगा वह उतने ही वेग के साथ प्रतिघात करेगी और व्यक्ति को कई गुना अधिक कामुक बना देगी। इस ऊर्जा को रोक कर रखने के लिए हमें अपनी सम्पूर्ण चेतना को इसी में उलझा देना पड़ता है और हम पूर्ण रूप से काममय हो जाते हैं। तथाकथित ब्रह्मचारियों के निकृष्ट रूप से पथ-भ्रष्ट होने के पीछे यही एक कारण है। अब व्यक्ति सन्यास लेकर कम अन्न, जल खाकर इस ऊर्जा को कम पैदा करने की दिशा मे अग्रसर होता है, परन्तु यह और भी दु:खद स्थिति है। गृहस्थ तो काम-शक्ति पैदा करता है और उसका अधिकांश भाग नष्ट कर देता है अर्थात् उसकी ऊर्जा का निष्कासन कर्मेन्द्रियों के माध्यम से होता रहता है। अब जिसकी ऊर्जा बाहर जा रही है उसका तो अन्दर की ओर बहने का मौका कभी-न-कभी आ सकता है, परन्तु जो ऊर्जा को न बनने देने के लिए ही प्रयत्नशील है उसके लिए तो अन्तर्यात्रा का कोई प्रश्न ही नहीं है। अत: कामवासना को मारनेवाले साधु-सन्त निश्चित रूप से बुरी अवस्था में हैं। गुरु गोविंदसिंह किसी को भी साधु-संन्यासी होने की सलाह नहीं देते और गृहस्थ-धर्म के पालन की प्रेरणा देते हैं। वे स्वयं गृहस्थ थे और उनके चार पुत्र थे जो बाद में तत्कालीन शासकों द्वारा मार डाले गए थे।

"काम" और व्यवहार में सामंजस्य लाने के लिए ही गुरु गोविंदसिंह ने ों की रचना की और इनके माध्यम से काम की तीव्रता,

अल्प दृष्टि, प्रवचना और धूर्तताओ को दिखाते हुए अपने अनुगामियो को चेतावनियाँ दी हैं।

एक बात और भी दृष्टव्य है कि स्त्रियों के कामान्ध रूपों का वर्णन करनेवाली कहानियों को गुरु गोविंदसिंह "चरित्र" शब्द के साथ सबोधित करते हैं। चरित्र हमेशा वे आख्यान होते हैं जिनमें कुछ शिक्षा उपयोगितावादी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर निहित होती है। ऐसे आख्यानों वाला काव्य उपयोगी तो अवश्य होता है परन्तु उसमें सृजनात्मक तत्त्व यदा-कदा ही दिखाई देते हैं। सृजन और निर्माण का अन्तर ही यह है कि सृजन एक लीला है, एक खेल है, जिसमें खेल-खेल ही में सब कुछ प्राप्त हो जाता है और लीला में किसी भौतिक सुख की अपेक्षा नहीं होती। परन्तु निर्माण में यह बात नहीं है। निर्माण निश्चित रूप से उपयोगितावाद के आधार पर खड़ा होता है। हम कपड़ा खरीदते हैं तो लीला या खेल के लिए नहीं खरीदते वरन् उपयोगिता को ध्यान में रखकर खरीदते हैं परन्तु हम वीणा-वादन या बाँसुरी-वादन करते या सुनते हैं तो एक आत्मिक आनंद के लिए, और इस क्रिया मे ही हमें अपार आनंद रूपी संपत्ति की प्राप्ति हो जाती है। पहले प्रकार के कार्य को हम निर्माण-कार्य और दूसरे प्रकार के कार्यों को सृजन कह सकते हैं। ये दोनों प्रकार की कलाएँ अलग-अलग होते हुए भी एक-दूसरे की पूरक भी हो सकती हैं और जीवन को पूर्ण संतुलित बना सकती हैं। भारतीय चिंतन और इतिहास में भी यह स्पष्ट है कि हम राम के जीवन को चरित्र (चरित) के नाम से और श्रीकृष्ण के जीवन को लीला के रूप में जानते हैं। राम के जीवन से हमें व्यावहारिक जीवन की मर्यादा, गंभीरता की शिक्षा तथा श्रीकृष्ण के जीवन से जीवन को सहज रूप में लीला रूप में लेने की प्रेरणा मिलती है। यहाँ हमें केवल इतना ही कहना है कि गुरु गोविंदसिंह द्वारा रचित चरित्रोपाख्यान जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणों, दु:साहसिक चरित्रों और कामोशक्ति के गंभीर क्षणो के प्रति सावधान करनेवाली कृति है जिसे शुद्ध उपयोगितावाद को ध्यान में रखकर लिखा गया है। यही बात "चंडीचरित्र-उक्ति-विलास' आदि रचनाओं पर भी लागू हो सकती है। अन्त में चरित्रोपाख्यान रचना के उद्देश्य से संबंधित डॉ० हरिभजन सिंह के मत को उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा।

"इन कथाओं की रचना सं० १७५३ वि० में आनन्दपुर में हुई। इस समय गुरु गोविंदसिंह धर्मयुद्ध के लिए सेना संगठन कर रहे थे। इनकी श्रोतामंडली अधिकांशत: धर्मयुद्ध के सेनानियों की ही रही होगी, ऐसा अनुमान लगाना उचित ही होगा कथाओं को अपने श्रोताओं के लिए सहज ग्राह्य बनाने के लिए कवि ने कई एक स्थानो पर कथन और वर्णन में

सुसस्कृत शैली की आवश्यकताओं की ओर ध्यान नहीं दिया। अतः कुछ स्थानों पर काम-क्रीड़ा का नग्न-चित्रण उपस्थित हो गया है, जो शिष्ट-सस्कारों पर आघात करता है। सेनानियों के लिए नारी-चरित्र का, विशेषतः उनकी कामपरकता और धूर्तता का अतिरंजित चित्र उपस्थित करने का दायित्व उन परिस्थितियों पर है जिनमें इस ग्रंथ को संगठन के सदस्यों के लिए गृहस्थ के मोह का त्याग बहुत आवश्यक था। गुरु गोविंद सिंह से पहले गुरु तेगबहादुर द्वारा भी इसी त्याग का प्रचार प्रारम्भ हो चुका था। दूसरा कारण इस संगठन की भौगोलिक परिस्थिति में निहित था। आनन्दपुर शिवालिक पर्वतमाला की तलहटी में बसा हुआ एक नगर है। यहीं बैठकर गुरुजी को मुगल सत्ता के विरुद्ध धर्मयुद्ध का सचालन करना था। यहाँ युद्ध के साथ धर्म शब्द का प्रयोग साभिप्राय है। वे अपने सेनानियों के युद्ध-कर्म को जितना महत्त्व देते थे, उतना ही उनके धर्म, उनके नैतिक विकास के लिए भी सतर्क थे। इन सेनानियों के मार्ग में नारी एक बहुत बड़ा प्रलोभन थी। गृहस्थ से दूरी, पार्वत्य क्षेत्र में नैतिकता का पतनशील स्तर और युद्धों में शत्रुओं की नारी पर बलात्कार करने की छूट —ये सब परिस्थितियाँ उपर्युक्त प्रलोभनों को बहुत कुछ यथार्थ रूप प्रदान कर रही थीं। गुरु गोबिंदसिंह ने उपदेश और व्याख्यान, दोनों रीतियों से अपने अनुयायियों को इस प्रकार के प्रलोभन के प्रति सावधान किया। उन्होंने अपने सैनिकों को जिन चार 'बज्जर कुरैहतों'— बज्र कुरीतियों अथवा घातक अपराधों से बचने का उपदेश बड़ी कड़ाई से दिया उनमें से एक था 'परस्त्री-गमन'। इसी उपदेश को सेनानियों के हृदय में बैठाने के लिए चरित्रोपाख्यानों की रचना हुई, ऐसा अनुमान सहज में ही किया जा सकता है[1]।"

दशम ग्रंथ का अनुवाद-कार्य मेरे लिए कुछ अर्थों में श्री गुरुग्रथ साहिब के अनुवाद-कार्य से कठिनतर कार्य था, परन्तु भुवन वाणी ट्रस्ट के प्रमुख न्यासी श्री नन्दकुमार अवस्थी जी की सतत् प्रेरणा और उत्साहवर्द्धन के कारण यह गुरुतर कार्य काफ़ी हद तक सरल हो गया और फलस्वरूप यह अनुवाद पाठकों की सेवा में उपस्थित है। मैं श्री अवस्थी जी का आभारी हूँ। अनुवाद को जहाँ सरल सर्वग्राह्य बनाने की चेष्टा की गई है वहीं साथ-ही-साथ यह भी ध्यान रखा गया है कि यह अनुवाद किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रहों से मुक्त बना रहे और मूल रचनाकार का भाव ज्यों का त्यों बना रहे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दर्शन-विभाग में कुछ ही समय पूर्व विजिटिंग प्रोफ़ेसर के रूप में आये पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ से सम्बद्ध सिक्ख-धर्म एवं दर्शन के प्रख्यात विद्वान डॉ० अत्तरसिंह के

१ देखिए पुस्तक गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य पृष्ठ ४१२ ।३

विचार-विमर्श से भी मैंने इस कार्य को हाथ में लेने की प्रेरणा ली है। इस कार्य की पाण्डुलिपि तैयार करने में मुझे मेरे पुराने सहकर्मियों— सर्वश्री जगदीशनाथ श्रीवास्तव (हिन्दी अधीक्षक), रामनारायण पाण्डेय (हिन्दी अधीक्षक) एवं टी० पी० श्रीवास्तव (प्रधान हिन्दी अनुवादक), डी० रे० का०, वाराणसी ने वांछित सहयोग दिया है। स्व० प्रो० साहिबसिंह की रचनाओं से भी मैं लाभान्वित हुआ हूँ। मैं इन सभी महानुभावों का हृदय से आभारी हूँ।

दर्शन-विभाग, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी
दिनांक १-३-८३

जोध सिंह
एम० ए०, पीएच्० डी०, साहित्य रत्न

विषय-सूची

अथ चंडीचरित्र उकति बिलास १९९-२९२ ।

विषय | पृष्ठ

विषय पृष्ठ

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥

स्री

दसम ग्रंथ साहिब

नागरी लिप्यन्तरण

तथा

हिन्दी अनुवाद

(प्रथम सैंची)

(मूल ग्रन्थ के पृष्ठ १–३६७)
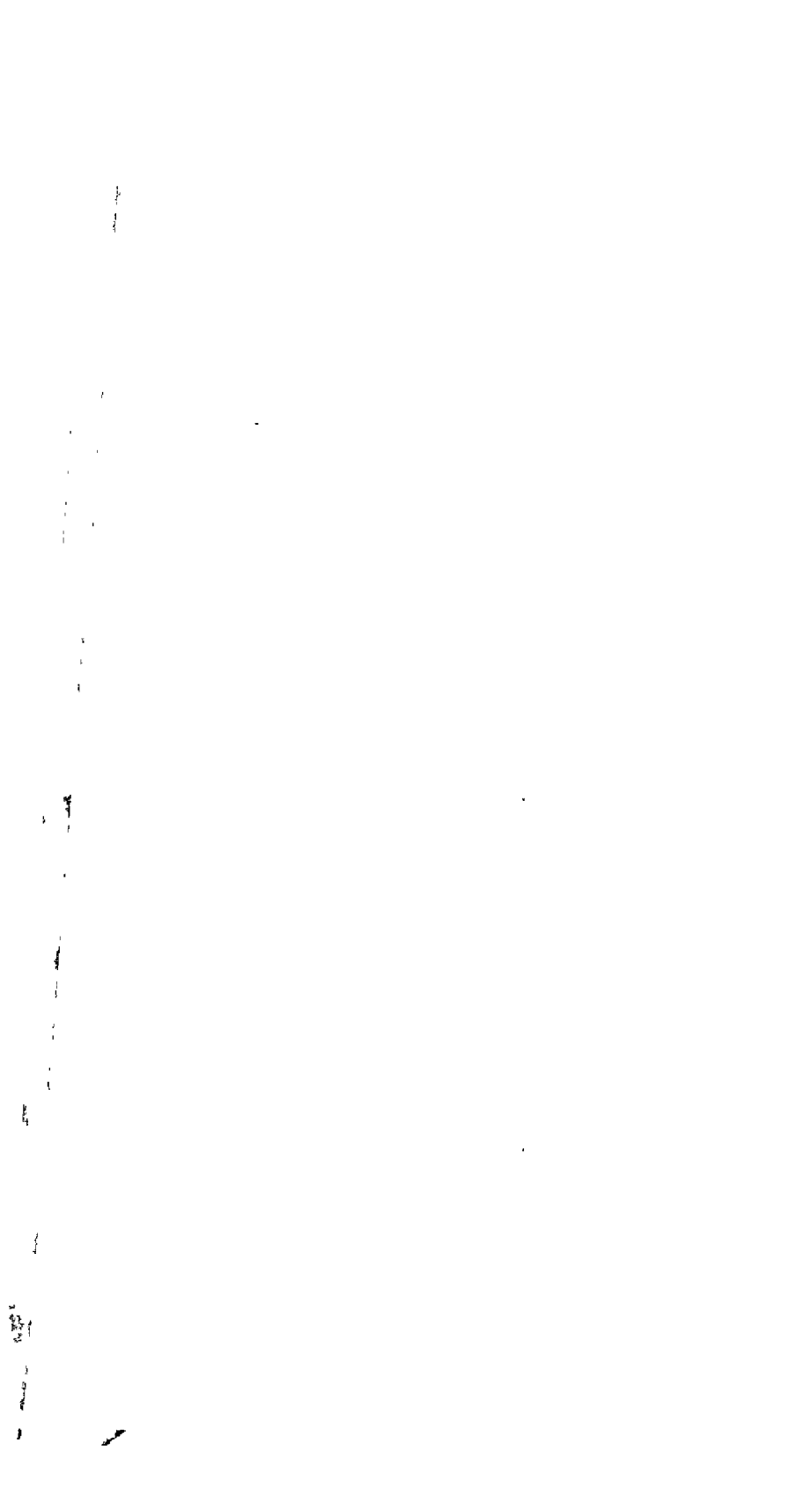
१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥

स्री वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

श्री दसम ग्रंथ साहिब

(नागरी लिपि में)

हिन्दी व्याख्या सहित

जापु

स्री मुखवाक पातिशाही १० ॥

॥ छपै छंद ॥ त्व प्रसादि[1] ॥ चक्र चिहन[2] अरु बरन जाति अरु पाति[3] नहिन जिह । रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकति किह । अचल[4] मूरति अनुभव प्रकाश अमितोज[5] कहिज्जै । कोटि इंद्र इंद्राणि साहि साहाणि गणिज्जै । त्रिभवण[6] महीप सुर नर असुर नेति नेति बन त्रिण कहत । तव सरब नाम कथै कवन करम नाम बरनत सुमति ॥ १ ॥ ॥ भुजंग

॥ छप्पय छंद ॥ तेरी कृपा से ॥ जिस प्रभु का न तो कोई आकार-विशेष है, न ही वर्ण, जाति तथा कुल-विशेष है, उसके रूप, रंग, आकार एवं वेश आदि का भला कोई क्या वर्णन कर सकता है। वह (प्रभु) सदैव स्थिर रहनेवाला, स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित अनंत बलशाली कहा जाता है और वही करोड़ों राजाओं का राजा और इन्द्रों का भी इंद्र माना जाता है। (हे प्रभु !) तुम तीनों लोकों के सम्राट् हो तथा देव, दानव, मनुष्य, वनस्पतियाँ सभी तुम्हें अद्वितीय मानते हैं। तेरे सभी नामों का वर्णन कौन कर सकता है ? विद्वानों ने अपनी सुमति के अनुसार केवल तेरे (इष्ट) कार्यों के आधार पर तेरे (कुछ) नामों का (ही) वर्णन किया है १ भुजंग प्रयात छंद (हे) कालातीत, कृपालु,

प्रयात छंद ॥ नमसत्वं अकाले । नमसत्वं क्रिपाले । नमसत्वं अरूपे । नमसत्वं अनूपे ॥ २ ॥ नमसतं अभेखे । नमसतं अलेखे । नमसतं अकाए । नमसतं अजाए ॥ ३ ॥ नमसतं अगंजे । नमसतं अभंजे । नमसतं अनामे । नमसतं अठामे ॥४॥ नमसतं अकरमं । नमसतं अधरमं । नमसतं अनामं । नमसतं अधामं ॥ ५ ॥ नमसतं अजीते । नमसतं अभीते । नमसतं अबाहे । नमसतं अढाहे[1] ॥ ६ ॥ नमसतं अनीले[2] । नमसतं अनादे । नमसतं अछेदे[3] । नमसतं अगाधे[4] ॥ ७ ॥ नमसतं अगंजे । नमसतं अभंजे । नमसतं उदारे । नमसतं अपारे ॥८॥ नमसतं सु एकै । नमसतं अनेकै । नमसतं अभूते । नमसतं अजूपे ॥ ९ ॥ नमसतं न्रिकरमे । नमसतं न्रिभरमे । नमसतं न्रिदेसे । नमसतं न्रिभेसे ॥ १० ॥ नमसतं न्रिनामे । नमसतं न्रिकामे । नमसतं न्रिधाते । नमसतं न्रिघाते ॥ ११ ॥ नमसतं न्रिधूते । नमसतं अभूते । मू०ग्रं०१* नमसतं अलोके । नमसतं असोके ॥ १२ ॥ नमसतं न्रितापे । नमसतं अथापे ।

निराकार, अनुपम प्रभु ! तुझे मेरा नमस्कार है ॥ २ ॥ (हे) निर्वेश, अलक्ष्य, कायातीत (निराकार), अजन्मा, तुझे प्रणाम है ॥ ३ ॥ सर्वजेता, अभंजनशील, अनाम और किसी एक स्थान-विशेष में ही न रहनेवाले हे प्रभु ! तुझे प्रणाम है ॥ ४ ॥ कर्मों से परे, वर्णाश्रम धर्मों से परे, नामों से परे, धामों से परे रहनेवाले हे प्रभु, तुझे नमस्कार है ॥ ५ ॥ परास्त न हो सकनेवाले, निर्भय, अचल एवं कभी भी शौर्य-विहीन न होनेवाले प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ॥ ६ ॥ (प्राण) वायु-रूप में जीवों के आधार, अनादि, अछिद्र एवं अगाध प्रभु, तुझे मेरा नमस्कार है ॥ ७ ॥ सर्वाग्रणी, अभंजनशील, उदार एवं अनन्त प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ॥ ८ ॥ एक अनेक, (पंच) भूतों से परे, बंधनातीत हे प्रभु, तुझे मेरा नमस्कार है ॥ ९ ॥ कर्मकांडों से परे, भ्रमों से दूर, देशों और वेशों से अतीत हे प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ॥ १० ॥ हे नामातीत, कामनाओं से विहीन, समस्त तत्त्वों से परे बसनेवाले एवं आघातों से सुरक्षित प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ॥ ११ ॥ अचल, अभूत, अदृष्ट एवं शोकरहित हे प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ॥ १२ ॥ तीनों तापों (आध्यात्मिक, दैविक एवं भौतिक) से विहीन,

---

१ जो ढह (गिर) न सके । २ उज्ज्वल । ३ जिसका छेदन न हो सके । ४ महा गंभीर । * मू० ग्रं० के पाठ १ का गुरमुखी पाठ यहाँ समाप्त होता है । उसकी पहचान के लिए ऐसे ही छोटे अंक सर्वत्र निर्धारित किये गये हैं ।

नमसतं त्रिमाने[1] । नमसतं निधाने[2] ॥१३॥ नमसतं अगाहे । नमसतं अबाहे । नमसतं त्रिबरगे । नमसतं असरगे[3] ॥ १४ ॥ नमसतं प्रभोगे । नमसतं सुजोगे । नमसतं अरंगे । नमसतं अभंगे ॥ १५ ॥ नमसतं अगंमे । नमसतसतु रंमे । नमसतं जलास्रे । नमसतं निरास्रे ॥१६॥ नमसतं अजाते । नमसतं अपाते । नमसतं अमजबे[4] । नमसतसतु अजबे ॥ १७ ॥ अदेसं अदेसे । नमसतं अभेसे । नमसतं न्रिधामे । नमसतं न्रिबामे[5] ॥ १८ ॥ नमो सरब काले । नमो सरब द्याले । नमो सरब रूपे । नमो सरब भूपे ॥ १९ ॥ नमो सरब खापे । नमो सरब थापे । नमो सरब काले । नमो सरब पाले ॥ २० ॥ नमसतस्सतु देवै । नमसतं अभेवै । नमसतं अजनमे । नमसतं सुबनमे ॥ २१ ॥ नमो सरब गउने[6] । नमो सरब भउने । नमो सरब रंगे । नमो सरब भंगे ॥ २२ ॥

जिसे किसी विशिष्ट स्थान पर स्थापित नहीं किया जा सकता, तीनों लोकों में मान्य एवं सभी गुणों के कोष प्रभु, तुझे मेरा नमस्कार है ॥ १३ ॥ समुद्र के समान जिसकी थाह न पाई जा सके, जिसे हिलाया न जा सके, जिससे त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की प्राप्ति होती है तथा जो स्वयं अपना रचयिता आप है, ऐसे प्रभु को मेरा नमस्कार है ॥ १४ ॥ विश्व जिसकी भोग-सामग्री है, विश्व जिसमें पूर्णरूप से संयुक्त है, जिसका कोई वर्ण-विशेष नहीं है तथा जो अविनाशी है, उस प्रभु को मेरा नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे अगम्य, समस्त लोकों में रमण करनेवाले जीवन के आधार, किसी भी आश्रय की अपेक्षा न रखनेवाले प्रभु, तुझे मेरा नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे अजात, पतनविहीन, मत-मतान्तरों से परे आश्चर्यस्वरूप प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ॥१७॥ हे प्रभु, तुझे प्रणाम है । तेरा कोई देश या वेश नहीं । तेरा कोई विशेष घर नहीं और न ही तूने स्त्री से जन्म लिया है ॥ १८ ॥ सभी के काल, सभी पर दया करनेवाले, सभी के स्वरूप अर्थात् सभी में निहित और सभी के सम्राट् हे प्रभु, तुझे प्रणाम है ॥ १९ ॥ सभी जीवों का संहार करने, सभी को स्थापित करनेवाले सर्वकाल एवं सर्व प्रतिपालक प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ॥२०॥ हे पूज्य, रहस्यमय, सुवर्णमय, अजन्मा प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ॥ २१ ॥ सर्वलोकों में गमन करनेवाले, सभी भुवनों में व्याप्त, सभी रंगों की शोभास्वरूप तथा सभी का संहार करनेवाले हे प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ॥ २२ ॥ काल के भी काल, दया

---

१ तीन [illegible] रूप ब्रह्मा विष्णु और शिव २ भंडार ३ उत्पत्ति रहित ४ धर्म का [illegible] से रहित ५ पत्नी रहित ६ भ्रमण करनेवाले

नमो काल काले। नमसतसतु द्रिआले। नमसतं अबरने। नमसतं अमरने॥ २३॥ नमसतं जरारं। नमसतं क्रितारं। नमो सरब धंधे। नमो सत अबंधे॥२४॥ नमसतं न्रिसाके[1]। नमसतं न्रिबाके। नमसतं रहीमे। नमसतं करीमे॥ २५॥ नमसतं अनंते। नमसतं महंते। नमसतसतु रागे। नमसतं सुहागे[2]॥ २६॥ नमो सरब सोखं[3]। नमो सरब पोखं[4]। नमो सरब करता। नमो सरब हरता॥ २७॥ नमो जोग जोगे। नमो भोग भोगे। नमो सरब द्रिआले। नमो सरब पाले॥२८॥ ॥ चाचरी छंद॥ त्व प्रसादि॥ अरूप हैं। अनूप हैं। अजूप हैं। अभूप हैं॥ २९॥ अलेख हैं। अभेख हैं। अनाम हैं। अकाम हैं॥ ३०॥ अधेय हैं। अभेय हैं। अजीत हैं। अभीत हैं॥ ३१॥ त्रिमान हैं। निधान हैं। त्रिबरग हैं। असरग हैं॥ ३२॥ अनील हैं। अनादि हैं। अजेय हैं। अजादि हैं॥ ३३॥ अजनम हैं। अबरन हैं। अभूत हैं। अभरन हैं॥३४॥ मू०ग्रं०२

के घर, अवर्ण एवं अमर परमात्मा, तुझे मेरा प्रणाम है॥ २३॥ वृद्धावस्था जिसके पास नहीं आती, जगत के कर्ता, सांसारिक व्यवहारों को चलाए रखनेवाले बंधन-मुक्त हे प्रभु, तुझे मेरा नमस्कार है॥ २४॥ हे प्रभु, तुझे प्रणाम है; तेरा कोई संबंधी-विशेष नहीं, तू निर्भय है; तू सब पर दया करनेवाला है और सब पर कृपा करनेवाला है॥ २५॥ हे अनंत प्रभु, तुझे प्रणाम है। तू सबसे बड़ा है, तुझे नमस्कार है। हे प्रभु, तू प्रेमस्वरूप और महाप्रतापी है॥ २६॥ सबके संहारक, पोषक, सर्जक एवं नाश करनेवाले प्रभु, तुझे नमस्कार है॥ २७॥ योगियों में योगी, भोगियों में भोगी, सभी पर दयालु एवं सबके पालनहार प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है॥ २८॥ ॥ चाचरी छंद॥ त्व प्रसादि (तेरी कृपा से)॥ हे प्रभु, तुम अरूप हो, अनुपम हो, अचल एवं अजन्मा हो॥२९॥ तुम अदृष्ट हो, वेशातीत हो; अनाम हो, अकाम हो॥ ३०॥ तुम चिन्तन से परे हो, तुम्हारा रहस्य नहीं जाना जा सकता, तुम अजेय एवं अभय हो॥ ३१॥ तुम तीनों लोकों में मान्य हो, कोषागार, धर्म, अर्थ, काम के भंडार हो तथा तुम किसी के द्वारा पैदा नहीं होते॥ ३२॥ तुम (प्राण) वायु हो, अनादि हो, अजेय तथा अजात हो॥ ३३॥ हे प्रभु, तुम जन्म धारण नहीं करते, तुम वर्णों से, भूतों से परे हो। पोषण के लिए तुम किसी पर आश्रित नहीं हो॥ ३४॥ तुम अजेय एवं अभंजनशील हो।

---

१ सम्बन्धी-रहित। २ ३ सुखानेवाला ४ ।

अगंज हैं। अभंज हैं। अझूझ हैं। अझंझ हैं॥ ३५॥ अमीक हैं। रफीक[1] हैं। अधंध[2] हैं। अबंध[3] हैं॥३६॥ निबूझ हैं। असूझ हैं। अकाल हैं। अजाल हैं॥३७॥ अलाह[4] हैं। अजाह हैं। अनंत हैं। महंत हैं॥३८॥ अलीक[5] हैं। निस्रीक हैं। निलंभ हैं। असंभ हैं॥३९॥ अगंम हैं। अजंम हैं। अभूत हैं। अछूत हैं॥ ४०॥ अलोक[6] हैं। अशोक हैं। अक्रम हैं। अभ्रम हैं॥४१॥ अजीत हैं। अभीत हैं। अबाह हैं। अगाह हैं॥४२॥ अमान[7] हैं। निधान हैं। अनेक हैं। फिरेक[8] हैं॥ ४३॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद॥ नमो सरब माने। समसतो निधाने। नमो देव देवे। अभेखी अभेवे॥४४॥ नमो काल काले। नमो सरब पाले। नमो सरब गउणे। नमो सरब

तुम्हारा मुक़ाबला कोई नहीं कर सकता तथा तुम झमेलों, झंझटों से परे हो॥ ३५॥ तुम अथाह हो, सबके साथी हो, परन्तु जगत के प्रपंचों तथा (माया के) बंधनों से मुक्त हो॥ ३६॥ तुम्हारे गहरे भेदों को जाना नहीं जा सकता है, तुम मानव-बुद्धि की पहुँच से परे हो। तुम काल-रहित हो और किसी जाल में फँस नहीं सकते॥ ३७॥ हे प्रभु, तुम्हें किसी एक स्थान-विशेष में नहीं पाया जा सकता, (क्योंकि) तुम स्थानातीत हो। तुम अनन्त एवं सबसे बड़े हो॥ ३८॥ तुम असीमित हो, तुम्हारे जोड़ का कोई दूसरा नहीं है। तुम निरालम्ब हो तथा सब संभावनाओं से परे हो॥ ३९॥ हे अगम्य प्रभु, तुम अजन्मा, अभूत एवं स्पर्श से परे हो॥ ४०॥ हे प्रभु, तुम अदृश्य हो, चिन्ताओं से परे हो, कर्म-कांडों से दूर हो और भ्रमों से मुक्त हो॥ ४१॥ हे प्रभु, तुम्हें कोई नहीं जीत सकता, तुम्हें किसी का डर नहीं है, तुम उस पर्वत के समान हो जिसे हिलाया न जा सके। तुम (समुद्र की तरह) अथाह हो॥ ४२॥ तुम्हें किसी भी नाप तोल से आँका नहीं जा सकता, तुम (सब गुणों के) भंडार हो; तुम एक हो और अपने एक स्वरूप से ही तुमने अनेकों रूप बनाए हैं, परन्तु अनेक होते हुए भी आप एक ही हैं॥ ४३॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद॥ हे सर्वमान्य, समस्त गुणों के भंडार, देवों के भी देव, रहस्यों और वेशों से भी परे प्रभु, तुम्हें (मेरा) प्रणाम है॥ ४४॥ तुम काल के भी काल हो, सब जीवों के पालनकर्ता हो। सर्वव्यापक एवं सभी भुवनों में गमन कर सकनेवाले प्रभु, तुम्हें मेरा प्रणाम

१ साथी। २ धन्धों से रहित। ३ बन्धन मुक्त। ४ वाहिगुरु-वाचक नाम है। ५ चिह्न-रहित ६ अगोचर ७ माप और तोल से रहित ८ फिर एक रूप हैं।

भउणे ॥ ४५ ॥ अनंगी[1] अनाथे । न्रिसंगी प्रमाथे[2] । नमो भान भाने । नमो मान माने ॥४६॥ नमो चंद्र चंद्रे नमो भान भाने । नमो गीत गीते नमो तान ताने ॥ ४७ ॥ नमो न्रित्त न्रित्ते नमो नाद नादे । नमो पान पाने नमो बाद बादे ॥ ४८ ॥ अनंगी अनामे समसती सरूपे । प्रभंगी प्रमाथे समसती बिभूते ॥ ४९ ॥ कलंकं बिनाने कलंकी सरूपे । नमो राज राजेश्वरं परम रूपे ॥ ५० ॥ नमो जोग जोगेश्वरं परम सिद्धे । नमो राज राजेश्वरं परम ब्रिद्धे ॥५१॥ नमो शसत्र पाणे । नमो असत्र माणे । नमो परम ग्याता । नमो लोक माता ॥ ५२ ॥ अभेखी अभरमी अभोगी अभुगते । नमो जोग जोगेश्वरं परम जुगते ॥ ५३ ॥ नमो नित्त नाराइणे क्रूर करमे । नमो प्रेत अप्रेत देवे सुधरमे ॥ ५४ ॥ नमो रोग

है ॥ ४५ ॥ हे निराकार, स्वयं स्वामी, तेरी बराबरी वाला कोई नहीं है, तू सर्वसंहारक है । तुम्हें मेरा नमस्कार है । तू सूर्यों का भी सूर्य है और बड़े-बड़े आदरणीय भी तेरी पूजा करते हैं ॥ ४६ ॥ हे चंद्रमाओं को प्रकाशित करनेवाले, सूर्यों के भी सूर्य, गीतों के भी गीत एवं सुरों के भी स्वर प्रभु, तुम्हें (मेरा) प्रणाम है ॥ ४७ ॥ तुम नृत्यों के भी आधार नृत्य हो, नादों के भी नाद हो । तुम्हें मेरा प्रणाम है । तुम एक महान नगारची हो (जिसने अपने ढोल की आवाज़ पर संसार रूपी मेला इकट्ठा किया हुआ है) ॥ ४८ ॥ हे प्रभु, तुझे नमस्कार है । तेरा न तो कोई अंग-विशेष है, न ही तेरा कोई एक नाम है । सब (जीव) तेरा ही स्वरूप हैं । तू ही प्रलय है, सर्वसंहारक है तथा सभी जीवों में विभूतिस्वरूप भी तू ही है ॥ ४९ ॥ तू विकार-रहित निष्कलंकस्वरूप है । हे राजाओं के सम्राट् और सभी के परम रूप प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ॥ ५० ॥ हे योगियों के योगीराज परमसिद्ध पुरुष, राजाओं के राजा, परम बृहद् प्रभु, तुझे प्रणाम है ॥ ५१ ॥ हे शस्त्रों को धारण करनेवाले अस्त्रयुक्त, परम ज्ञाता एवं सभी लोकों का मातृस्वरूप में पालन करनेवाले प्रभु, तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥ ५२ ॥ वेशों, भ्रमों, भोगों से परे रहनेवाले स्वयं कभी भी न भोगे जा सकनेवाले योगीश्वर तथा सभी युक्तियों की परम-युक्तिस्वरूप प्रभु, तुम्हें (मेरा) प्रणाम है ॥ ५३ ॥ हे प्रभु, तुम्हें मेरा नमस्कार है, तू सदा जीवों की रक्षा करनेवाला और हिंसा करने (मारने) वाला भी है । प्रेतात्माओं और अच्छी आत्माओं अर्थात् सबका तू ही स्वामी है तथा तू ही इस सारे संसार का धर्मानुसार पोषण कर

१ अंग-रहित २ नष्ट करनेवाला

हरता नमो राग रूपे। नमो शाह शाहं नमो भूप भूपे ॥ ५५ ॥ नमो दान दाने नमो मान माने। नमो रोग रोगे नमसतं शनाने ॥ ५६ ॥ नमो मंत्र मंत्रं नमो जंत्र जंत्रं। नमो इषट इषटे नमो तंत्र तंत्रं ॥ ५७ ॥ सदा सच्चिदानंद सरबं प्रणासी। अनूपे अरूपे समसतुलि निवासी ॥५८॥ सदा सिद्‌ध दा बुद्‌ध दा ब्रिद्‌ध करता। अधो उरध अरधं अघं ओघ हरता ॥ ५९ ॥ पू०१०३ परम[1] परम[2] परमेस्वरं प्रोछ पालं। सदा सरब दा सिद्‌ध दाता दयालं ॥ ६० ॥ अछेदी अभेदी अनामं अकामं। समसतोपराजी समसतसतु धामं ॥ ६१ ॥ ॥ तेरा जोरु[3] ॥ ॥ चाचरी छंद ॥ जलेय हैं। थलेय हैं। अभीत हैं। अभेय हैं ॥६२॥ प्रभूअ हैं। अजूअ[4] हैं। अदेस हैं। अभेस हैं ॥ ६३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ त्व प्रसादि ॥

रहा है ॥ ५४ ॥ हे प्रभु, तू सभी जीवों के रोग दूर करनेवाला, प्रेमस्वरूप है। सम्राटों के सम्राट्, राजाओं के भी राजा प्रभु, तुम्हें मेरा प्रणाम है ॥ ५५ ॥ दानियों के भी दानी प्रभु, संसार में समादृत व्यक्ति भी तेरी पूजा करते हैं। रोगों के नाशक परम स्नान-रूप-प्रभु, तुम्हें मेरा प्रणाम है ॥ ५६ ॥ हे प्रभु, तेरा नाम ही सभी मंत्रों का परम मंत्र है, सबसे बड़ा यंत्र है और परम तंत्र है। इष्टों (देवी-देवताओं) के भी इष्ट परमात्मा, तुम्हें मेरा प्रणाम है ॥ ५७ ॥ हे प्रभु, तुम सत्, चित्, आनन्द, सर्वसंहारक, अनुपम स्वरूप एवं सर्वव्यापी हो ॥ ५८ ॥ हे प्रभु, तुम सदैव सिद्धिदाता, बुद्धिदाता एवं वृद्धिकर्ता हो। पाताल, आकाश एवं इन दोनों के बीच में तुम्हीं व्याप्त हो तथा तुम ही जीवों के अनन्त पापों का नाश करनेवाले हो ॥ ५९ ॥ हे प्रभु, तुम बड़े स्वामी हो, जीवों की दृष्टि से अदृश्य रहकर भी तुम उनका पोषण कर रहे हो। हे दयालु, तुम ही जीवों को सिद्धियाँ देनेवाले हो ॥ ६० ॥ तुम्हें न तो कोई तोड़ सकता है, न कोई तुम्हारा भेदन कर सकता है। तुम अनाम, अकाम, सबको पराजित करनेवाले सभी जीवों के निवास हो ॥ ६१ ॥ तेरा जोर ॥ ॥ चाचरी छंद ॥ हे प्रभु, जल में, स्थल में तू ही है। तू अभय है और तेरे रहस्य को समझा नहीं जा सकता ॥ ६२ ॥ तू सबका स्वामी है, अचल है; तेरा कोई एक देश नहीं, तेरा कोई एक वेश नहीं ॥ ६३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ तेरी कृपा से ॥ हे प्रभु, तू अथाह है, तेरे रास्ते

---

१ आदि २ । ३ तेरा बस तेरी ताक़त इसका भाव यह है कि मैं जो कुछ कथन करता हूँ सब तेरी ताक़त है ४ जन्म-रहित।

अगाधे अबाधे। अनंदी सरूपे। नमो सरब माने। समसती निधाने ॥६४॥ नमसत्वं न्रिनाथे। नमसत्वं प्रमाथे। नमसत्वं अगंजे। नमसत्वं अभंजे ॥ ६५ ॥ नमसतं अकाले। नमसतं अपाले। नमो सरब देसे। नमो सरब भेसे ॥ ६६ ॥ नमो राज राजे[1]। नमो साज साजे। नमो साह साहे। नमो माह माहे[2] ॥६७॥ नमो गीत गीते। नमो प्रीत प्रीते। नमो रोख रोखे। नमो सोख सोखे ॥ ६८ ॥ नमो सरब रोगे। नमो सरब भोगे। नमो सरब जीतं। नमो सरब भीतं ॥ ६९ ॥ नमो सरब ज्ञानं। नमो परम तानं। नमो सरब मंत्रं। नमो सरब जंत्रं ॥ ७० ॥ नमो सरब द्रिस्सं। नमो सरब क्रिस्सं। नमो सरब रंगे। त्रिभंगी अनंगे ॥ ७१ ॥ नमो जाव जीवं नमो बीज बीजे। अखिज्जे अभिज्जे समसतं प्रसिज्जे[3] ॥ ७२ ॥

में कोई रुकावट नहीं डाल सकता। तुम आनन्दस्वरूप हो; सब जीव तुझे मानते हैं और तुम समस्त गुणो के भण्डार हो ॥ ६४ ॥ हे प्रभु, तेरा कोई स्वामी नहीं, तुम सबके संहारक हो, अजेय हो तथा अभंजनशील हो। तुम्हें मेरा प्रणाम है ॥ ६५ ॥ मृत्यु तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकती, अतः तुम्हें किसी रक्षक की आवश्यकता नहीं। हे प्रभु, तुम्हें प्रणाम है; तुम सभी देशों और वेशों में व्याप्त हो ॥ ६६ ॥ तुम राजाओं में महाराजा हो, साजों में भी सर्वोत्तम साज हो, हे प्रभु, तुम्हें नमस्कार है। तुम शाहों में भी शहंशाह हो, चाँदों में महाचन्द्रमा हो, तुम्हें नमस्कार है ॥ ६७ ॥ गीतों के भी गीत, परमप्रेमस्वरूप तुम्हें प्रणाम है। तुम भयानक क्रोधस्वरूप (भी) हो और (भारी सृष्टि को) अपने में समाहित कर लेनेवाले भी हो ॥ ६८ ॥ हे प्रभु, तुम्हें मेरा प्रणाम है। तुम सर्व जीवों की मृत्यु का कारण हो और तुम्हीं सभी जीवों में व्याप्त हो जगत के पदार्थों का भोग कर रहे हो। सबको जीतनेवाले और सभी को भयभीत कर रखनेवाले भी तुम्हीं हो ॥६९॥ हे प्रभु, तुम सर्वज्ञ हो, प्रपंच-विस्तार हो, सबको वश में कर लेनेवाले मंत्र तथा यंत्र हो। तुम्हें (मेरा) प्रणाम है ॥ ७० ॥ हे प्रभु, तुम सबके पर्यवेक्षक हो, सबको अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले हो। सभी वर्णों में भी व्याप्त तीनों लोकों के संहारक परन्तु (फिर भी) निराकार हो। तुम्हें मेरा प्रणाम है ॥ ७१ ॥ हे प्रभु, तुम्हें प्रणाम है। तुम जीवों के प्राणाधार हो, सबका मूल कारण हो। तुम दुःखों और भेदों से परे सब पर कृपा करनेवाले हो ॥ ७२ ॥ हे प्रभु

१ राजाओं के राजा २ चन्द्रमाओं के चन्द्रमा। ३ सब पर प्रसन्न होनेवाले

क्रिपालं सरूपे कुकरमं प्रणासी। सदा सरबदा रिद्धि सिद्धं निवासी॥ ७३ ॥ ॥ चरपट छंद ॥ त्व प्रसादि ॥ अंम्रित करमे। अंम्रित धरमे। अखल जोगे। अचल भोगे॥७४॥ अचल[1] राजे। अटल साजे। अखल धरमं। अलख करमं॥ ७५ ॥ सरबं दाता। सरबं ग्याता। सरबं भाने। सरबं माने॥७६॥ सरबं प्राणं। सरबं त्राणं। सरबं भुगता। सरबं जुगता॥७७॥ सरबं देवं। सरबं भेवं। सरबं काले। सरबं पाले॥ ७८ ॥ ॥ रूआल छंद ॥ त्व प्रसादि ॥ आदि रूप अनादि मूरति अजोनि[2] पुरख अपार। सरब मान त्रिमान देव अभेव आदि उदार। सरब पालक सरब घालक सरब को पुनि काल। जत्र तत्र बिराजही अवधूत रूप रसाल॥ ७९ ॥ नाम ठाम न जात जाकरि रूप रंग न रेख। आदि पुरख[3] उदार

तुम दया के घरस्वरूप हो तथा कुकर्मों के विनाशक हो। सब ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ तुझमें बसती हैं॥ ७३ ॥ ॥ चरपट छंद ॥ तेरी कृपा से ॥ हे प्रभु, तेरे कार्य अमित्य हैं और तेरे विधान को कोई टाल नहीं सकता। अखिल विश्व में तू संयुक्त है और तेरा शासन सदा चलनेवाला है॥ ७४ ॥ हे प्रभु, तेरा शासन चिरन्तन है और तेरी सृष्टि टल नहीं सकती। तेरे नियम संपूर्ण हैं और तेरे कर्म अदृश्य हैं॥ ७५ ॥ हे प्रभु, तुम सब जीवों के दाता हो; तुम सबके हृदय की बात जाननेवाले हो; सबको प्रकाशित करनेवाले हो तथा सभी तुम्हारी पूजा करते हैं॥ ७६ ॥ हे प्रभु, तुम सबके प्राण हो, सबके रक्षक एवं शासक हो। तुम्हीं सबमें संयुक्त हो॥ ७७ ॥ सबके देव एवं सबके हृदयों के रहस्यों को जाननेवाले तुम ही हो। तुम ही सबके काल हो तथा तुम ही सबके पालनहार हो॥७८॥ ॥ रूआल छंद ॥ तेरी कृपा से ॥ (हे प्रभु!) तेरा अस्तित्व सबसे पहले है; तेरे स्वरूप के मूल के बारे में कोई नहीं बता सकता। हे परमपुरुष! तुम अयोनि एवं अनन्त हो। सभी जीव तेरे समक्ष नमन करते हैं। तुम प्रकाशस्वरूप हो, तेरा रहस्य कोई नहीं जान सका। हे उदार पुरुष! तुम सबके मूल हो। सब जीवों के रक्षक, संहारक एवं कालस्वरूप तुम ही हो। हे प्रभु! तुम सर्वत्र अवस्थित हो, सभी रसों के भंडार हो, परन्तु रसों के बंधनों से अतीत हो॥ ७९ ॥ हे प्रभु, तुम्हारा न तो कोई एक नाम है, न एक स्थान है, न रूप है, न रंग है और कोई प्रतीक विशेष है। तुम सबके मूल हो, सबमें मौजूद हो, उदारता तेरा स्वरूप है, तुम जन्म नहीं लेते, तुम

१ पर्वत-सम स्थिर २ योनि-रहित ३ परब्रह्म वाहगुरु।

मूरति अजोनि आदि असेख । देस मु०ग्रं०४ अउर न भेस जाकरि रूप रेख न राग । जत्र तत्र दिसा[1] विसा[2] हुइ फैलिओ अनुराग[3] ॥८०॥ नाम काम बिहीन पेखत धाम हूँ नहि जाहि । सरब मान सरबत्र मान सदैव मानत ताहि । एक मूरति अनेक दरशन कीन रूप अनेक । खेल खेल अखेल खेलन अंत को फिर एक ॥८१॥ देव भेव न जानई जिह बेद अउर कतेब । रूप रंग न जाति पाति सु जानई[4] किह जेब । तात[5] मात न जात जाकरि जनम मरन बिहीन । चक्र बक्र फिरै चत्र चक्क मानई पुर तीन[6] ॥ ८२ ॥ लोक चउदह के बिखै जगु जापई जिह जाप । आदि देव अनादि मूरति थाप्यो सबै जिह थाप । परम रूप पुनीत मूरति पूरन पुरखु अपार । सरब बिस्व रचिओ सुयंभव[7] गड़न भंजनहार ॥ ८३ ॥ काल हीन कला

आदि हो और कभी समाप्त नहीं होते । तुम्हारा कोई एक देश, वेश, रूप और आकार नहीं । न ही तुम्हें कोई मोह है । हे प्रभु, तुम सर्वत्र प्रेम-रूप होकर फैले हुए हो ॥ ८० ॥ नाम-काम विहीन प्रभु का कोई एक धाम दृष्टिगोचर नहीं होता । उसी प्रभु के समक्ष सभी जीव झुकते हैं और वही सर्वत्र पूज्य है । वह आप अकेला है, परन्तु अनेक स्वरूपों (जीवों) में प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है । संसार-रचना के खेल के बाद प्रलय के खेल के साथ सभी जीव पुन: उसी एक रूप (परमात्मा) में अवस्थित हो जाते हैं ॥ ८१ ॥ वह प्रभु ऐसा है, जिसका रहस्य न तो देवतागण जानते हैं, न ही हिन्दुओं की धार्मिक पुस्तकें (वेदादि) तथा न ही सामी धर्मों की धार्मिक पुस्तकें (कतेबादि) उसके रहस्य को जानती हैं । उसका स्वरूप क्या है, कोई नहीं जानता । उसका न कोई पिता है, न जननी है; न जाति है, न कुल है । न वह आवागमन में आता है । उस प्रभु का ही (काल-रूप) भयानक चक्र चारों दिशाओं में घूम रहा है और तीनों लोकों में सभी उसके समक्ष नमन करते हैं ॥ ८२ ॥ जिस प्रभु का जाप चौदह लोकों के समस्त जगत में चल रहा है, जो सर्वप्रथम पूज्य है, जिसका स्वरूप अनादि है और जो समस्त सृष्टि का कर्ता है, वह प्रभु सबका परमस्वरूप पवित्र, पूर्ण, सर्वव्यापक एवं अनन्त है । अखिल विश्व का कर्ता वही स्वयंभू (अपने-आप से उत्पन्न) प्रभु है जो जगत का रचयिता एवं संहारक भी

१ चार दिशा (पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) । २ चार उपदिशा (आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान) में । ३ प्रेम । ४ जानते हैं । ५ पिता । ६ तीनों लोक । ७ अपने-आप उत्पन्न

संजुगति अकाल पुरख अदेस । धरम धाम सु भरम रहत अभूत अलख अभेस । अंग राग न रंग जाकह जाति पाति न नाम । गरब गंजन दुसट भंजन मुकति दाइक काम ।। ८४ ।। आप रूप अमीक[1] अन उसतति[2] एक पुरख अवधूत । गरब गंजन सरब भंजन आदि रूप असूत[3] । अंग हीन अभंग अनातम एक पुरख अपार । सरब लाइक सरब घाइक सरब को प्रतिपार ।। ८५ ।। सरब गंता सरब हंता सरब ते अनभेख । सरब सासत्र न जानई जिह रूप रंग अरु रेख । परम बेद पुरान जाकहि नेति भाखत नित्त । कोटि सिम्रिति पुरान सासत्र न आवही वहु चित्ति ।। ८६ ।। ।। मधुभार छंद ।। त्व प्रसादि ।। गुन गन उदार । महिमा अपार । आसन अभंग । उपमा अनंग ।। ८७ ।। अनभउ प्रकास । निस दिन अनास ।

है ।। ८३ ।। प्रभु कालातीत, कलाओं से युक्त, सर्वव्यापक एवं किसी एक निश्चित स्थान-विशेष में रहनेवाला नहीं है । प्रभु ही धर्म का स्रोत है तथा भ्रमों से परे, पाँचों तत्वों से दूर अदृष्ट एवं वेशहीन है । उसे शारीरिक मोह नहीं, न ही उसका कोई रंग, जाति, कुल अथवा नाम है । वह प्रभु अहंकारियों का अहम् चूर करनेवाला, दुष्टों का दमन करनेवाला, मुक्ति-प्रदाता तथा कामनाओं की पूर्ति करनेवाला है ।। ८४ ।। वह स्वयं अपने स्वरूप से बना अतिगहन, स्तुति से परे, माया के बंधनों से दूर केवल एक (महान) पुरुष है । वह अहंकारियों के अहंकार का नाश करनेवाला अजन्मा आदिपुरुष है । शरीर-रहित अविनाशी प्रभु में सभी जीवों के विभिन्न अस्तित्व हैं, क्योंकि वह एक ही एक स्वयं है और सभी जीवों में उपस्थित है । प्रभु सब कुछ करने में समर्थ है । सबका पोषण एवं संहार करनेवाला है ।। ८५ ।। प्रभु की गति सब जीवों तक है, वह सर्वसंहारक है तथा उसका वेश सबसे निराला है । सभी शास्त्र उसके रूप-रंग और आकार को नहीं जानते । वेद एवं पुराण सभी, सदैव उसे सर्वोच्च के रूप में वर्णन करते हैं । करोड़ों स्मृतियों, पुराणों और शास्त्रों के माध्यम से भी उसका वास्तविक स्वरूप समझ में नहीं आ सकता ।। ८६ ।। ।। मधुभार छंद ।। ।। तेरी कृपा से ।। हे प्रभु, तुम उदार हो तथा अनंत गुणों के स्वामी हो । तुम्हारी महिमा अपरंपार है, तेरा आसन स्थिर है और तुम्हारी उपमा किसी से नहीं दी जा सकती ।। ८७ ।। हे प्रभु, तुम अपने ज्ञान प्रकाश से प्रकाशित हो और सदैव बने रहनेवाले अविनाशी हो ।

१ गंभीर अथाह । २ बिना बड़ाई । ३ जन्म-रहित ।

आजान बाहु[1] । साहान साहु ॥८८॥ राजान राज । भानान भान[2] । देवान देव उपमा महान ॥८९॥ इंद्रान इंद्र बालान बाल । रंकान रंक कालान काल ॥ ९० ॥ अनभूत अंग । आभा अभंग । गति मिति अपार । गुन गन उदार ॥ ९१ ॥ मुनि गनि प्रनाम । निरभै न्रिकाम । अति दुति प्रचंड । मिति गति अखंड ॥ ९२ ॥ आलिस्य करम । आद्रिस्य धरम । सरबा भरणाढ्य । अनडंड बाढ्य मू०ग्रं०५ ॥९३॥ ॥ चाचरी छंद ॥ त्व प्रसादि ॥ गुबिंदे । मुकंदे । उदारे । अपारे ॥९४॥ हरीअं[3] । करीअं । न्रिनामे । अकामे ॥९५॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ चत्रु चक्र[4] करता । चत्रु चक्र हरता ।

तेरे हाथ बहुत लम्बे हैं अर्थात् हे शहंशाह, सृष्टि-रचना के सभी साधन तेरे वश में हैं ॥ ८८ ॥ तुम राजाओं के राजा तथा सूर्यों के भी सूर्य हो । हे प्रभु, तुम देवों के भी देव हो, तुम्हारा बड़प्पन महान् है ॥ ८९ ॥ (चपल बुद्धि) इंद्रों का भी तू इन्द्र है, परन्तु (सरलता में) तू बच्चों से भी (सरल) बच्चा है । विनम्र लोगों (गरीबों) में भी तू सिरमौर है और (रौद्र-रूप) काल का भी तू काल है ॥ ९० ॥ तेरा आकार जगत-रचना के तत्त्वों से निराला है और तेरी आभा अक्षय है । हे प्रभु, तेरी गति और सीमा अपार है । अनन्त गुणों के स्वामी प्रभु, तुम उदार हो ॥ ९१ ॥ अनन्त मुनिगण तुझे प्रणाम करते हैं । तुम अभय एवं निष्काम हो । हे प्रभु, तुम्हारा अद्वितीय तेज किसी से सम्हाला नहीं जाता और तुम्हारी गति और सीमा अखण्ड है ॥ ९२ ॥ हे प्रभु, तुम्हारे सभी कार्य स्वाभाविक रूप से होते हैं और तेरा धर्म-पालन एक आदर्श है । संसार के सभी गहने (आकर्षण) तुझमें हैं, परन्तु निश्चित रूप से कोई तुमहारी ओर आँख उठाकर देख नहीं सकता ॥ ९३ ॥ ॥ चाचरी छंद ॥ तेरी कृपा से ॥ हे प्रभु, तू धरती के (जीवों के) रहस्य जाननेवाला मुक्ति-प्रदाता, उदार-हृदय एवं अनंत है ॥ ९४ ॥ हे प्रभु, तू जीवों का नाश करनेवाला, उनका पोषण करनेवाला अनाम है तथा तुझे कोई कामना छू भी नहीं सकती ॥ ९५ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ हे प्रभु, तुम चारों दिशाओं (के जीवों) के कर्ता और संहारक हो । तुम ही सबको दान देनेवाले हो तथा तुम्हीं (सबके हृदय की) बातों को जाननेवाले हो ॥ ९६ ॥ तुम ही चारों दिशाओं में व्याप्त हो और चारों दिशाओं के पोषक हो । चारों दिशाओं

---

१ जिसका हाथ पैर तक हो । २ सूर्यों के सूर्य । ३ मारनेवाला । ४ चारों दिशाओं के

चत्रु चक्र दाने । चत्रु चक्र जाने ।। ९६ ।। चत्रु चक्र वरती । चत्रु चक्र भरती । चत्रु चक्र पाले । चत्रु चक्र काले ।। ९७ ।। चत्रु चक्र पासे । चत्रु चक्र वासे । चत्रु चक्र मान्यै । चत्रु चक्र दान्यै[1] ।। ९८ ।। ।। चाचरी छंद ।। न सत्रै । न मित्रै । न भरमं । न भिन्नै ।। ९९ ।। न करमं । न काए । अजनमं । अजाए ।।१००।। न चित्रं । न मित्रै । परे है । पवित्रं ।।१०१।। प्रिथीसै । अबीसै । अद्रिस्सै । अक्रिस्सै[2] ।।१०२।। ।। भगवती छंद ।। त्व प्रसादि कथते ।। कि आछिज्ज देसै । कि आभिज्ज भेसै । कि आगंज करमै । कि आभंज भरमै ।। १०३ ।। कि आभिज्ज लोकै । कि आदित्त सोकै । कि अवधूत बरनै । कि बिभूत करनै ।। १०४ ।। कि राजं प्रभा हैं । कि धरमं धुजा हैं । कि आशोक बरनै । कि सरबा अभरनै ।। १०५ ।। कि जगतं क्रिती हैं । कि छत्रं छत्री हैं । कि ब्रहमं सरूपै । कि

(के जीवों) की रक्षा करनेवाले भी तुम हो और सबका संहार करनेवाले भी तुम हो ।। ९७ ।। चारों तरफ़ तुम ही व्याप्त हो और प्रत्येक स्थान पर जीव तेरी ही पूजा कर रहे हैं । हे प्रभु, तुम ही सबको देनेवाले भी हो ।। ९८ ।। ।। चाचरी छंद ।। हे प्रभु, न तो कोई तेरा दुश्मन है, न मित्र (तुम सबसे ऊँचे हो) । न तो तुम्हें कोई संदेह है, न तुम द्वैतभावना से ग्रस्त हो ।। ९९ ।। न तुम कर्म (कांड) के वश में हो, न शरीर हो और न ही जन्म धारण करते हो ।। १०० ।। हे प्रभु, न तो तुम्हारा कोई चित्र (बना सकता) है, न कोई मित्र । तुम सबसे परे हो तथा पवित्र हो, शुद्धोत्तम हो ।। १०१ ।। तुम धरती के मालिक हो, अदृष्टा हो और हे प्रभु, तुम कभी भी दुर्बल नहीं होते ।। १०२ ।। ।। भगवती छंद ।। तेरी कृपा से ।। हे प्रभु, तेरा स्थान कभी नष्ट न होनेवाला है और तेरा वेश भी नाशवान नहीं है; तुम सब कर्मकांडों से परे हो और सभी भ्रमों को तोड़नेवाले हो ।। १०३ ।। हे प्रभु, तेरा लोक अविनाशी है तथा तुम सूर्य के तेज को भी नष्ट कर सकते हो । तुम अवधूत हो अर्थात् माया की लिप्तता से परे हो, परन्तु सभी विभूतियों, ऐश्वर्य के कर्ता हो ।। १०४ ।। राजाओं का तेज तुम ही हो, धर्मों का अलंकार तुम हो । तेरा स्वभाव (स्वरूप) चिंताओं से मुक्त है और सभी जीवों के सौंदर्य का मूल हो ।। १०५ ।। हे प्रभु, तुम जगत-कर्ता हो, वीरों के भी हो । तुम सौन्दर्य के आधार हो एवं तुम्हारा अनुभव अनुपम है ।। १०६ ।। हे प्रभु,

१ दाता । २ कमज़ोर नहीं ।

अनभउ अनूपै ॥ १०६ ॥ कि आदि अदेव हैं। कि आपि अभेव हैं। कि चित्रं बिहीनै। कि एकै अधीनै ॥१०७॥ कि रोजी रजाकै। रहीमै रिहाकै। कि पाक बिऐब हैं। कि गैबुल गैब हैं ॥ १०८ ॥ कि अफ़वुल[1] गुनाह हैं। कि शाहान शाह हैं। कि कारन कुनिंद[2] हैं। कि रोजी दहिंद[3] हैं ॥१०९॥ कि राजक रहीम हैं। कि करमं करीम हैं। कि सरबं कली हैं। कि सरबं दली हैं ॥ ११० ॥ कि सरबत्र[4] मान्यै। कि सरबत्र दान्यै। कि सरबत्र गउनै[5]। कि सरबत्र भउनै ॥१११॥ कि सरबत्र देसै। कि सरबत्र भेसै। कि सरबत्र राजै। कि सरबत्र साजै ॥ ११२ ॥ कि सरबत्र दीनैं। कि सरबत्र लीनैं। कि सरबत्र जाहो[6]। कि सरबत्र भाहो[7] ॥ ११३ ॥ कि सरबत्र देसै। कि सरबत्र भेसै। कि सरबत्र कालै। कि सरबत्र पालै ॥ ११४ ॥ कि सरबत्र हंता[8]। कि सरबत्र

तुम सर्वोपरि आदिदेव हो। तुम्हारा रहस्य कोई नहीं जानता। तुम्हारा कोई चित्र नहीं (बना सकता) है। तुम अपने ही स्वयं के वश में हो ॥ १०७ ॥ हे प्रभु, तुम सबको जीविका देनेवाले, सब पर कृपा करनेवाले हो। तुम निष्कलंक हो एवं पवित्र हो तथा पूर्ण रूप से गुप्त हो ॥ १०८ ॥ तुम सबके पापों को माफ़ करनेवाले, सम्राटों के भी सम्राट् हो। तुम सभी कारणों के मूल हो एवं हे प्रभु, तुम ही सबको रोजी देनेवाले हो ॥ १०९ ॥ तुम सबका पालन करनेवाले कृपालु हो और सब कर्मों के कर्ता हो। सभी ताक़तों के मालिक प्रभु, तुम ही सभी जीवों का संहार करनेवाले हो ॥ ११० ॥ सर्वत्र तुम्हारी ही पूजा होती है और सर्वत्र तुम ही दान देनेवाले हो। सभी स्थानों पर गमन करनेवाले सभी लोकों में, हे प्रभु, तुम ही मौजूद हो ॥ १११ ॥ हे प्रभु, सभी देशों और वेशों में तुम ही अवस्थित हो। सभी जगह तुम्हारा ही तेज प्रताप है और हर स्थान पर तेरी ही सृष्टि है ॥ ११२ ॥ हे प्रभु, तूने ही सर्वत्र दान दिया है और तुम ही सर्वत्र रमे हुए हो। हर जगह तेरा ही तेज है और हर स्थान पर तेरा ही प्रकाश है ॥ ११३ ॥ हर देश और वेश में, हे प्रभु, तुम ही मौजूद हो। तुम ही सबका काल हो और तुम ही सबका पोषण करनेवाले हो ॥ ११४ ॥ हे प्रभु, तुम सबके संहारक हो और तुम्हारी पहुँच हर स्थान पर है। तुम ही सभी वेशों

---

१ माफ़ करनेवाला। २ मूल, जड़ ३ देनेवाला। ४ सर्वत्र। ५ सर्वत्र गमन करनेवाले ६ तेज ७ प्रकाश। ८ संहारक।

गंता । कि सरबत्र भेखी । कि सरबत्र पेखी ॥ ११५ ॥ कि सरबत्र मू०ग्रं०६ काजै । कि सरबत्र राजै । कि सरबत्र सोखैं । कि सरबत्र पोखैं[1] ॥ ११६ ॥ कि सरबत्र त्राणै । कि सरबत्र प्राणै । कि सरबत्र देसै । कि सरबत्र भेसै ॥ ११७ ॥ कि सरबत्र मान्यैं । सदैवं प्रधान्यैं । कि सरबत्र जाप्यैं । कि सरबत्र थाप्यैं[2] ॥ ११८ ॥ कि सरबत्र भानै । कि सरबत्र मानैं । कि सरबत्र इंद्रै । कि सरबत्र चंद्रै ॥ ११९ ॥ कि सरबं कलीमैं[3] । कि परमं फहीमै । कि आकल[4] अलामै । कि साहिब कलामैं ॥ १२० ॥ कि हुसनुल वजू[5] हैं । तमामुल रुजू हैं । हमेसुल सलामैं । सलीखत मुदामै ॥ १२१ ॥ ग़नीमुल[6] शिकसतै । ग़रीबुल परसतै । बिलंदुल मकानैं । ज़िमीनुल

में हो और सब स्थानों पर तुम ही प्रेक्षक हो ॥ ११५ ॥ हे प्रभु, सभी स्थानों में तुम ही कार्य-रूप में प्रकट हो और सभी स्थानों में तुम ही शोभायमान हो। सर्वत्र तुम ही संहारक हो तथा सर्वत्र तुम ही सबका पोषण करनेवाले हो ॥ ११६ ॥ सभी स्थानों में दुःखों के हर्ता तुम ही हो और सर्वत्र तुम ही प्राणस्वरूप उपस्थित हो। सभी स्थानों में तुम मौजूद हो और प्रत्येक स्थान में हर वेश में तुम ही उपस्थित हो ॥ ११७ ॥ हे प्रभु, सब स्थानों में (सब जीव) तेरी ही पूजा कर रहे हैं। सदैव तू ही (सब देश-कालों में) प्रधान है। हर स्थान पर तेरा ही जाप चल रहा है और सब जगह तुम ही उपस्थित हो ॥ ११८ ॥ हे प्रभु, प्रत्येक स्थान में सूर्य की भाँति तुम ही तेजवान हो और जीव (अजीव सभी) हर स्थान पर तेरी ही पूजा कर रहे हैं। हर स्थान पर तुम ही सब जीवों के राजा हो और प्रत्येक स्थान में चन्द्रमा (की कोमल चाँदनी) के रूप में तुम ही विराजमान हो ॥ ११९ ॥ हे प्रभु, सब जीवों की वाणी (भी) तुम ही हो और समस्त जीवों में परम बुद्धिमान भी तुम ही हो। तुम बुद्धि एवं ज्ञान के भण्डार हो तथा वाणी के सम्राट् हो ॥ १२० ॥ हे प्रभु, तुम सौन्दर्य की मूर्ति हो। सभी जीवों की ओर तुम्हारा ही ध्यान है! तुम हमेशा बने रहनेवाले हो और सृष्टि-रचना की तुम्हारी युक्ति चिरन्तन रूप से चली आ रही है ॥ १२१ ॥ हे प्रभु, तुम शत्रुओं को पराजित करनेवाले हो; ग़रीबों को पालनेवाले हो। हे परमात्मा, तेरा निवास सबसे ऊँचा है और तू सब स्थानों में मौजूद

---

१ पालक। २ सर्वत्र उपस्थित है। ३ वक्ता। ४ विद्वान्। ५ महान् सुन्दर। ६ दुश्मनों को हरानेवाला

जमानैं ॥१२२॥ तमीजुल[1] तमामै । रजूअल निधानैं । हरीफुल अजीमै । रजाइक यकीनैं ॥१२३॥ अनेकुल तरंग हैं । अभेद हैं अभंग हैं । अजीजुल[2] निवाज हैं । गनीमुल खिराज हैं ॥१२४॥ निरुकति सरूप हैं । त्रिमुकति बिभूत हैं । प्रभुगति प्रभा[3] हैं । सु जुगति सुधा हैं ॥१२५॥ सदैवं सरूप हैं । अभेदी अनूप हैं । समसतो पराज हैं । सदा सरब साज हैं ॥ १२६ ॥ समसतुल सलाम हैं । सदैवल अकाम हैं । न्रिबाध सरूप हैं । अगाधि अनूप हैं ॥ १२७ ॥ ओअं[4] आदि रूपे । अनादि सरूपै । अनंगी अनामे । त्रिभंगी त्रिकामे ॥१२८॥ त्रिबरगं त्रिबाधे । अगंजे

है ॥ १२२ ॥ हे प्रभु, तुम सब जीवों की पहचानस्वरूप हो और तुम सबके ध्यान का भण्डार हो अर्थात् तुम जीवों का इतना ध्यान रखते हो, परन्तु फिर भी तुम इस गुण के भण्डार हो और यह गुण तुम्हारे मे से कभी समाप्त नही होता । हे प्रभु, (दुश्मनों का) तू बड़ा दुश्मन है और यक़ीनन् तू ही सबको रोजी देता है ॥ १२३ ॥ हे प्रभु, (तुम एक बड़े समुद्र हो और जगत के सारे जीव) तुम्हारी अनेक तरंगें हैं। तुम्हारा रहस्य नहीं समझा जा सकता, तुम नाशरहित हो। हे प्रभु, जो तुम्हें प्यारे हैं, तुम उन्हें सम्मान प्रदान करते हो, परन्तु शत्रुओं से तुम कर वसूल करते हो अर्थात् जो तुम्हारे सामने अकड़ते हैं, उन्हें तुम अवश्य नष्ट कर देते हो ॥ १२४ ॥ हे प्रभु, तेरा स्वरूप उक्ति-कथन के बाहर है; तेरा तेजप्रताप माया के तीनों गुणों से परे है। (जगत के सारे जीव) तेरे ही प्रकाश का उपभोग कर रहे हैं। हे प्रभु, तुम अमृतस्वरूप हो और सारे जीवों में भलीभाँति मिले हुए हो ॥ १२५ ॥ हे प्रभु, तुम्हारा स्वरूप सदैव स्थिर है। तेरे जैसा अन्य कोई दूसरा नहीं है। तुम सबको जीतनेवाले हो और सदा सभी जीवों का सृजन करनेवाले हो ॥ १२६ ॥ हे प्रभु, तुम सभी जीवों की सुरक्षा का मूल हो और सदा ही कामनाओं से मुक्त हो। प्रभु, कोई बाधा आपके सामने आ नहीं सकती और तुम्हारा पारावार पाया नहीं जा सकता ॥ १२७ ॥ हे ओंकार-स्वरूप परब्रह्म, तुम ही सबका आदि-कारण हो। अनादि-स्वरूप हो। हे प्रभु, तेरा कोई अंग नहीं और तुम अनाम हो। तीनों लोकों का नाश करनेवाले और तीनों भुवनों के जीवों की मनोकामनाओं को पूर्ण करनेवाले तुम ही हो ॥ १२८ ॥ हे प्रभु, तुम्हारे अंदर संसार के तीनों पदार्थ (धर्म-अर्थ-काम) मौजूद हैं।

---

[1] पीछा करनेवाला। [2] प्यारा। [3] विशेष शोभा वाला। [4] अकाल-पुरुष अर्थात् ईश्वर।

अगाधे। सुभं सरब भागे। सु सरबानुरागे ॥ १२९ ॥ त्रिभुगत सरूप हैं। अछिज्ज हैं अछूत हैं। कि नरकं प्रणास हैं। प्रिथीउल प्रवास हैं ॥ १३० ॥ निरुकति प्रभा हैं। सदैवं सदा हैं। बिभुगति सरूप हैं। प्रजुगति अनूप हैं ॥ १३१ ॥ निरुकति सदा हैं। बिभुगति प्रभा हैं। अनुकति सरूप हैं। प्रजुगति अनूप हैं ॥ १३२ ॥ ॥ चाचरी छंद ॥ अभंग हैं। अनंग हैं। अभेख हैं। अलेख हैं ॥ १३३ ॥ अभरम हैं। अकरम हैं। अनादि हैं। जुगादि हैं ॥ १३४ ॥ अजै हैं। अबै हैं। अभूत हैं। अधूत हैं ॥ १३५ ॥ अनास हैं। उदास हैं। अधंध हैं। अबंध हैं ॥ १३६ ॥ अभगत हैं। बिरकत हैं। अनास हैं। प्रकाश हैं मू०ग्रं०७ ॥ १३७ ॥

तुम्हारा अंकुश तीनों लोकों के जीवों पर है। तुम अजेय और अथाह हो। हे प्रभु, तुम्हारे सभी अंग मनोरम हैं और तुम सभी जीवों को प्यार करनेवाले हो ॥ १२९ ॥ हे प्रभु, तेरा स्वरूप ऐसा है जिससे सभी जीव आनंदित हैं। तेरा अस्तित्व सदैव नव-नवीन है, तुम्हें कोई छू नहीं सकता। प्रभु, तुम नरकों के नाशक हो और प्रवासी के रूप मे धरती पर (जीव भी) तुम ही हो ॥ १३० ॥ हे प्रभु, तेरा तेज ऐसा है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। तुम सदा वर्तमान हो। हे प्रभु, तुम्हारे अस्तित्व के कारण ही सभी आनंदित होते हैं, तुम सबमें संयुक्त हो और तुम्हारे जैसा सुन्दर अन्य कोई नहीं है ॥ १३१ ॥ हे प्रभु, तुम सदैव उक्तियों के वर्णन से परे हो। तुम्हारा प्रकाश सबको प्रसन्न करने वाला है। तेरा स्वरूप अकथनीय है। तुम सभी जीवों में मिले हुए हो, परन्तु तुम्हारे जैसा अन्य सुन्दर कोई नहीं है ॥ १३२ ॥ ॥ चाचरी छद ॥ हे प्रभु, तुम नाश नहीं हो सकते, क्योंकि तुम्हारा कोई अंग नहीं है। तुम्हारा कोई वेश नहीं है, अत: तुम चित्रों में नहीं (बाँधे जा सकते) हो ॥ १३३ ॥ तुम भ्रमों से परे हो, अत: कर्मकांडों से दूर हो। तुम अनादि हो और युगों के प्रारम्भ से भी पहले के हो अर्थात् समय की गणना से ऊपर हो ॥ १३४ ॥ हे प्रभु, तुम अजय हो, शाश्वत हो, पाँचों तत्त्वों से परे अचल हो ॥ १३५ ॥ हे प्रभु, (संसार तो नाशवान है, परन्तु) तुम स्वयं नाश से परे हो, तटस्थ हो, जगत की चिंताओं से मुक्त एवं बंधनों से दूर हो ॥ १३६ ॥ हे प्रभु, तुम मोहातीत हो, विरक्त हो, नष्ट नहीं हो सकते तथा प्रकाश-स्वरूप हो अर्थात् मोह आसक्ति आदि का अँधेरा तुम्हारे सामने ठहर नहीं सकता १३७ सासारिक कार्य व्यापारों को

निंचित हैं। सुनित हैं। अलिक्ख हैं। अदिक्ख हैं ॥ १३८ ॥ अलेख हैं। अभेख हैं। अढाह हैं। अगाह हैं ॥ १३९ ॥ असंभ हैं। अगंभ हैं। अनील हैं। अनादि हैं ॥ १४० ॥ अनित्त हैं। सुनित्त हैं। अजाति हैं। अजादि हैं ॥ १४१ ॥ ॥ चरपट छंद ॥ त्व प्रसादि ॥ सरबं हंता। सरबं गंता। सरबं ख्याता। सरबं ज्ञाता ॥ १४२ ॥ सरबं हरता। सरबं करता। सरबं प्राणं। सरबं त्राणं ॥ १४३ ॥ सरबं करमं। सरबं धरमं। सरबं जुगता। सरबं मुकता ॥ १४४ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ त्व प्रसादि ॥ नमो नरक नासे। सदैवं प्रकासे। अनंगी सरूपे। अभंगी बिभूते ॥१४५॥ प्रमाथं प्रमाथे। सदा सरब साथे। अगाधि

होकर भी) तुम्हें कोई घबराहट नहीं, तुम नित्य हो, किसी भी लेखे-जोखे से परे हो। हे प्रभु, तुम्हें (इन आँखों से) देखा नहीं जा सकता है ॥ १३८ ॥ कोई तुम्हारा चिह्न नहीं, कोई विशेष वेश नहीं, कोई तुम्हें गिरा नहीं सकता; और तुम इतने विशाल हो कि कोई तुम्हारा अन्त नहीं जान सकता ॥ १३९ ॥ हे प्रभु, जीवों के लिए तुम तक पहुँचना असंभव है, (क्योंकि) तुम अगम्य हो। (परन्तु फिर भी) तुम वायु-स्वरूप होकर जीवों का प्राण हो तथा (युगों-युगांतरों के भी) पहले से हो ॥ १४० ॥ हे प्रभु, तुम नाशमान पदार्थों की तरह अनित्य नहीं हो प्रत्युत् सदैव स्थिर हो। तुम जन्म-मरण के चक्र से परे हो और सब जीवों के मूल हो ॥ १४१ ॥ ॥ चरपट छंद ॥ तेरी कृपा से ॥ तुम सभी जीवों को मारनेवाले तथा सभी जीवों में गमन करनेवाले हो। सभी (जीवों) में तेरी ही प्रसिद्धि है और तुम ही सबके दिल की जाननेवाले हो ॥ १४२ ॥ हे प्रभु, तुम ही सबका जीवन लेनेवाले और सबको पैदा करनेवाले हो। तुम ही सबके जी-जान हो और सबको कष्टों से छुड़ानेवाले हो ॥ १४३ ॥ (हे प्रभु!) सभी जीवों में रमण करते हुए तुम स्वयं ही सब कर्म करते हो और तुम स्वयं ही सब कर्तव्यों (धर्मों) का पालन करनेवाले हो। सभी में संयुक्त होता हुआ भी हे प्रभु, तू सबसे अलग है ॥ १४४ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ तेरी कृपा से ॥ हे नरकों का नाश करनेवाले प्रभु, तुम्हें मेरा प्रणाम है। तुम सदैव ही प्रकाशस्वरूप हो। तुम अंगों से रहित हो और तुम्हारी विभूतियाँ हमेशा विराजमान हैं ॥ १४५ ॥ तुम अत्याचारों के भी नाशक हो और सबके (दुर्बलों के भी) साथी हो। तेरा स्वरूप अन्तहीन है और तुम बाधाओं रहित सभी विभूतियों के स्वामी हो १४६ हे वर्गों और

सरूपे । न्रिबाधि बिभूते ॥ १४६ ॥ अनंगी अनामे । त्रिभंगी त्रिकामे[1] । न्रिभंगी सरूपे । स्रबंगी अनूपे ॥ १४७ ॥ न पोत्रै न पुत्रै । न सत्रै न मित्रै । न तातै न मातै । न जातै न पातै ॥ १४८ ॥ न्रिसाकं[2] सरीक हैं । अमितो अमीक हैं । सदैवं प्रभा हैं । अजै हैं अजा हैं ॥ १४९ ॥ ॥ भगवती छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ कि जाहिर जहूर हैं । कि हाजर हजूर हैं । हमेसुल सलाम हैं । समसतुल कलाम हैं ॥ १५० ॥ कि साहिब दिमाग़ हैं । कि हुसनुल चराग़ हैं । कि कामल करीम हैं । कि राजक रहीम हैं ॥ १५१ ॥ कि रोजी दहिंद हैं । कि राजक रहिंद हैं । करीमुल कमाल हैं । कि हुसनुल जमाल हैं ॥ १५२ ॥ ग़नीमुल खिराज़ हैं । ग़रीबुल निवाज़ हैं । हरीफुल[3] शिकंन[4] हैं । हिरासुल फिकंन[5] हैं ॥ १५३ ॥ कलंकं प्रणास हैं । समसतुल निवास हैं । अगंजुल ग़नीम हैं ।

नामों से परे प्रभु, तुम ही तीनों भुवनों का नाश करनेवाले और तीनो भुवनों के जीवों की कामनाएँ पूर्ण करनेवाले हो । (हे प्रभु !) तेरा स्वरूप नाश-रहित है, तुम सर्वांग संपूर्ण हो ॥ १४७ ॥ (हे प्रभु !) न तेरा कोई पुत्र है, न पौत्र; न शत्रु, न मित्र । न तेरा कोई पिता है, न माता तथा न कोई तेरी जाति है और न ही तेरा कुल या वंश है ॥ १४८ ॥ (जीवों की तरह) न कोई तेरा संबंधी है, न ही तेरा कोई पट्टीदार है । तुम अपरिमित रूप से गहन हो । (हे प्रभु !) तुम सदैव ही प्रकाश हो और हमेशा ही अजेय तथा अजन्मा हो ॥ १४९ ॥ ॥ भगवती छंद ॥ तेरी कृपा से ॥ हे प्रभु, तुम्हारा तेज प्रत्यक्ष है; तुम सबके साथ विराजमान हो । तुम हमेशा स्थिर रहनेवाले हो और तुम ही सबकी वाणी का विषय हो ॥ १५० ॥ तुम सर्वोच्च बुद्धि के स्वामी हो और (हे प्रभु !) तुम ही सारे सौंदर्य के मूलस्रोत (दीपकस्वरूप) हो । तुम ही सभी जीवों पर कृपा करनेवाले हो तथा तुम ही सबका रोज़गार जुटानेवाले हो ॥ १५१ ॥ सबको रोज़ी देनेवाले तुम ही हो और सबके मुक्ति-दाता भी तुम ही हो । तुम्हारी कृपा की सीमा अपार है तथा तुम्हारा सौन्दर्य (जमाल) भी अनुपम है ॥ १५२ ॥ (हे प्रभु !) तुम (दुर्जेय) शत्रुओं से भी कर वसूलनेवाले अर्थात् उनका दमन करनेवाले हो और ग़रीबों को शरण देनेवाले हो । शत्रुओं का नाश करनेवाले (प्रभु !) तुम अभय हो अर्थात् डर तुमसे दूर रहता है ॥ १५३ ॥ हे प्रभु, तुम (अपने भक्तों की) ग्लानि (पूर्ण

१ तीन लोकों के प्रिय । २ बिना सम्बन्धी के । ३ नास्तिकों के । ४ मारने वाला । ५ भय-रहित ।

रजाइक रहीम हैं ॥ १५४ ॥ समसतुल जुबा[1] हैं। कि साहिब किरा[2] हैं। कि नरकं प्रणास हैं। बहिशतुल निवास हैं ॥ १५५ ॥ कि सरबुल गवंन हैं। हमेसुल रवंन हैं। तमामुल तमीज हैं। समसतुल अजीज[3] हैं ॥१५६॥ परं परम ईस हैं। समसतुल अदीस हैं। अदेसुल अलेख हैं। हमेसुल अभेख हैं ॥ १५७ ॥ जिमीनुल जमा हैं। अमीकुल इमा हैं। करीमुल कमाल हैं। कि जुरअति जमाल हैं मू०ग्रं०८ ॥ १५८ ॥ कि अचलं प्रकास हैं। कि अमितो सुबास हैं। कि अजब सरूप हैं। कि अमितो बिभूत हैं ॥ १५९ ॥ कि अमितो पसा हैं। कि आतम प्रभा हैं। कि अचलं अनंग हैं। कि अमितो अभंग हैं ॥ १६० ॥ ॥ मधुभार छंद ॥ त्व प्रसादि ॥ मुनि मन

स्थिति) का नाश करनेवाले हो तथा सब जीवों में व्याप्त हो। दुश्मनों के लिए तुम अजेय हो; सबको रोजी देनेवाले (हे प्रभु!) तुम सब पर कृपा करनेवाले हो ॥ १५४ ॥ हे प्रभु, तुम सभी जीवों की जबान हो अर्थात् सबके अन्दर तुम ही बोल रहे हो और तुम्हारा प्रताप महान है। तुम नरकों (जैसी स्थितियों) का नाश करनेवाले हो तथा तुम्हारा सब जगह होना स्वर्ग के समान सुख देनेवाला है अर्थात् जहाँ तुम हो (तुम्हारा गुणानुवाद हो) वहाँ स्वर्ग है ॥ १५५ ॥ हे प्रभु, तुम सर्वत्र गमन करने में समर्थ हो और हमेशा रमणीक (आनन्द) हो। तमाम जीवों की पहचान करने (पोषण करने) वाले तुम हो तथा सभी के प्यारे भी तुम ही हो ॥ १५६ ॥ हे प्रभु, जगत के तुम ही परम स्वामी और आदिकाल से सबके ईश्वर हो। तुम किसी भी क़िस्म के आलेख (चित्र) से परे हो और सब वेशों से भी तुम ऊपर हो ॥ १५७ ॥ हे प्रभु, तुम धरती पर और हर स्थान पर उपस्थित हो और तुम्हारा रहस्य बहुत ही गहन-गंभीर है अर्थात् कोई तुम्हारा रहस्य समझ नहीं सकता। तुम पूर्णकृपालु हो तथा तुम्हारा शौर्य ही तुम्हारा सौंदर्य है ॥ १५८ ॥ हे प्रभु, तुम्हारी ज्योति कभी भी बुझनेवाली नहीं तथा तुम्हारी सुगंधि भी अपरिमित है अर्थात् तुम्हारे उपकार भी अनन्त हैं। तुम्हारा स्वरूप आश्चर्यमय है और तुम्हारी विभूतियों की कोई गिनती नहीं की जा सकती ॥ १५९ ॥ तुम अनन्त जगत के अनन्त प्रसार हो तथा स्वयं के प्रकाश से स्वयं प्रकाशित हो। तुम स्थिर हो और अशरीर हो। हे प्रभु, तुम अनन्त हो और अविनाशी हो ॥ १६० ॥ ॥ मधुभार छंद ॥ तेरी कृपा से ॥ हे प्रभु, तपस्वियों

१ जबान (वाणी) २ महाप्रतापी। ३ प्रिय

प्रनाम । गुनि गन मुदाम[1] । अरि बर[2] अगंज । हरि नर प्रभंज ॥ १६१ ॥ अन गन प्रनाम । मुनि मन सलाम । हर नर अखंड । बर नर अमंड ॥ १६२ ॥ अनुभव अनास । मुनि मन प्रकास । गुन गन प्रनाम । जल थल मुदाम ॥१६३॥ अनछिज्ज अंग । आसन अभंग । उपमा अपार । गति मिति उदार ॥ १६४ ॥ जल थल अमंड[3] । दिस विस अभंड । जल थल महंत । दिस दिस बिअंत ॥ १६५ ॥ अनुभव अनास । ध्रित धर धुरास । आजान बाहु । एकै सदाहु ॥ १६६ ॥ ओअंकारि आदि । कथनी अनादि । खल खंड ख्याल । गुर बर अकाल ॥ १६७ ॥ घर घर प्रनाम ।

का मन-ही-मन किया हुआ प्रणाम भी तुम ही हो; तुम सदैव (सभी) गुणों के स्वामी हो । भयंकर शत्रुओं के लिए भी तुम अजेय हो तथा सभी मनुष्यों के स्वामी और संहार करनेवाले भी तुम ही हो ॥ १६१ ॥ असंख्य जीव तुम्हें प्रणाम करते हैं; मुनि लोग तुम्हें मन-ही-मन नमस्कार करते हैं । इस अखिल विश्व में हे हरि, तुम महानतम हो तथा हे नर-श्रेष्ठ, तुम्हारे सौंदर्य को किसी सुन्दरता की आवश्यकता नहीं ॥ १६२ ॥ हे प्रभु, तुम स्वयं ज्ञानस्वरूप हो और मुनियों के मन का प्रकाश भी तुम ही हो । हे सर्वगुण प्रभु, तुम्हें मेरा प्रणाम है । तुम ही जल-स्थल में सदैव विराजमान हो ॥ १६३ ॥ तुम्हारा स्वरूप कभी पुराना होनेवाला नहीं और तुम्हारा आसन भी अचल है । तुम इतने अपरंपार हो कि किसी से तुम्हारी तुलना नहीं की जा सकती, परन्तु तुम फिर भी इतने विनम्र हो कि तुम्हारी क्रियाएँ और मानदण्ड अत्यन्त उदार हैं ॥ १६४ ॥ हे प्रभु, बिना किसी प्रकार के विशेष आडंबर के, तुम जल, स्थल (सब जगह) विराजमान हो; हे अयोनि प्रभु, तुम सभी दिशाओं में उपस्थित हो । जल-स्थल के स्वामी प्रभु, हर दिशा में तुम व्याप्त हो, तुम्हारा अन्त नहीं पाया जा सकता ॥ १६५ ॥ हे अविनाशी प्रभु, तुम स्वयं ज्ञानस्वरूप हो और इस धरती का आधार हो । हे आजानबाहु, सभी साधन तेरे वश में हैं और तुम सदैव एक ही एक हो ॥ १६६ ॥ हे ओंकार (सभी स्थानों में सम रूप से व्याप्त) प्रभु, तुम सृष्टि का आदि मूल हो, तुम्हारा वर्णन कथन से परे है । हे प्रभु, तुम विचार आते ही सृष्टि को खंड-खंड कर सकते हो, परन्तु तुम सबसे बड़े और कालातीत हो ॥ १६७ ॥ (हे परमात्मा !) घर-घर में जीव तुझे प्रणाम करते हैं और प्रत्येक जीव के चित्त में तेरे चरणों और नाम का निवास

१ सदैव (नित्य) । २ बड़ । ३ [illegible] ।

खित चरन नाम । अनछिज्ज गात । आजिज्ज न बात ॥१६८॥ अनझंज गात । अनरंज बात । अनटुट भंडार । अनठट अपार ॥ १६९ ॥ आडीठ धरम । अति ढीठ करम । अणब्रण अनंत । दाता महंत ॥ १७० ॥ ॥ हरि बोलमना छंद ॥ त्व प्रसादि ॥ करुणालय हैं । अरि घालय हैं । खल खंडन हैं । महि मंडन हैं ॥ १७१ ॥ जगतेस्वर हैं । परमेस्वर हैं । कलि कारन हैं । सरब उबारन हैं ॥ १७२ ॥ ध्रित धारन हैं । जग कारन हैं । मन मानय हैं । जग जानय हैं ॥ १७३ ॥ सरबं भर हैं । सरबं कर हैं । सरब पासिय हैं । सरब नासिय हैं ॥ १७४ ॥ करुणा कर हैं । बिस्वंभर हैं । सरबेस्वर हैं । जगतेस्वर हैं ॥ १७५ ॥ ब्रहमंडस हैं । खल खंडस हैं । पर ते पर हैं । करुणा कर हैं ॥ १७६ ॥

है। हे प्रभु, तेरा शरीर कभी नष्ट होनेवाला नहीं और किसी भी कार्य के लिए तू किसी का मोहताज नहीं ॥ १६८ ॥ हे प्रभु, तुम सब झंझटों से परे हो तथा किसी भी बात पर क्रोधित होनेवाले नहीं हो। तुम्हारे भंडार अक्षय हैं और तुम्हारी अनन्तता को (मूर्तियों के माध्यम से मंदिरों आदि में) स्थापित नहीं किया जा सकता ॥ १६९ ॥ हे प्रभु ! तुम्हारी कर्तव्यपरायणता अनन्य है तथा तुम्हारे साहसिक कार्य भी कृपा से पूर्ण हैं अर्थात् जगत-प्रपंच के जटिल कामों को भी तू प्रसन्नतापूर्वक कर रहा है। हे प्रभु, तुम्हारे ऊपर कोई चोट नहीं कर सकता; तुम अनन्त हो, दानी हो तथा महान् हो ॥ १७० ॥ ॥ हरिबोलमना छंद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ हे करुणा के घर, शत्रुओं का दमन करनेवाले, दुष्टों को नष्ट करनेवाले प्रभु, तुम ही सम्पूर्ण धरती को (रंग-बिरंगे वातावरण को उपस्थित कर) आकर्षक बनानेवाले हो ॥ १७१ ॥ हे प्रभु, तुम जगत के स्वामी हो, परम ईश्वर हो, सभी द्वन्द्वों के मूल कारण हो तथा सबको बचानेवाले भी तुम ही हो ॥ १७२ ॥ हे प्रभु, तुम धरती के आश्रय हो, जगत के कारण हो; जगत के जीव तुम्हें ही मन में मानते हैं और ससार में तुम्हें ही जानने का प्रयत्न सदैव चलता रहता है ॥ १७३ ॥ हे प्रभु, तुम सबके पोषक एवं कर्ता हो। सभी जीवों के निकट तुम ही हो और सबका संहार करनेवाले भी तुम ही हो ॥ १७४ ॥ तुम करुणा करनेवाले, विश्व का भरण-पोषण करनेवाले हो। हे प्रभु, तुम सर्वेश्वर हो और जगत के स्वामी हो ॥ १७५ ॥ सम्पूर्ण ब्रह्मांड के स्वामी तुम हो, दुष्टों को खंड-खंड करनेवाले तुम हो। परा (विद्या) से भी परे हे प्रभु, तुम ही करुणा करनेवाले हो १७६ हे प्रभु, तुम सबों की

अजपा जप हैं। अथपा थप हैं। अक्रिता क्रित हैं। अम्रिता म्रित हैं ॥ १७७ ॥ अम्रिता म्रित हैं। करुणा क्रित हैं। अक्रिता क्रित हैं। धरणी ध्रित हैं ॥ १७८ ॥ अमितेस्वर हैं। परमेस्वर हैं। अक्रिता क्रित हैं। अम्रिता म्रित हैं ॥ १७९ ॥ अजबा क्रित हैं। अम्रिता म्रित हैं। पृ०ग्रं०९ नर नाइक हैं। खल घाइक हैं ॥१८०॥ बिस्वंभर हैं। करुणालय हैं। न्रिप नाइक हैं। सब पाइक हैं ॥ १८१ ॥ भव भंजन हैं। अरि गंजन हैं। रिपु तापन हैं। जपु जापन हैं ॥ १८२ ॥ अकलं क्रित हैं। सरबा क्रित हैं। करता कर हैं। हरता हर हैं ॥ १८३ ॥ परमातम हैं। सरबातम हैं। आतम बस हैं। जस के जस हैं ॥ १८४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ नमो सूरज सूरजे नमो चंद्र चंद्रे। नमो राज राजे नमो इंद्र इंद्रे। नमो अंधकारे नमो ते तेजेज। नमो ब्रिंद ब्रिंदे नमो बीज

पहुँच से परे हो और न ही तुम्हें (देवताओं की मूर्तियों की भाँति) स्थापित किया जा सकता है, (क्योंकि) तेरी मूर्ति बनायी नहीं जा सकती। तुम सदैव अमर हो ॥ १७७ ॥ हे अमर प्रभु, तुम दया की मूर्ति हो। तुम्हारी तस्वीर नहीं बनायी जा सकती; तुम धरती के आधार हो ॥ १७८ ॥ हे प्रभु, तुम्हारी सीमा अपरिमित है, तुम सबसे बड़े स्वामी हो। तुम्हारी प्रतिमूर्ति नहीं बनायी जा सकती। तुम अमर हो ॥ १७९ ॥ हे प्रभु, तेरा आश्चर्यजनक स्वरूप है; तुम अमर हो। तुम मनुष्यों को मार्गदर्शन देनेवाले हो तथा दुष्टों का दमन करनेवाले हो ॥ १८० ॥ हे प्रभु, तुम सारे जगत के पोषणकर्ता हो, करुणा के घर हो। तुम ही राजाओं के भी नायक हो तथा सबके रक्षक हो ॥ १८१ ॥ हे प्रभु, तुम आवागमन के चक्र को नष्ट करनेवाले हो, दुश्मनों को जीतनेवाले हो। शत्रुओं में हलचल मचानेवाले तुम ही हो और अपना स्मरण करवानेवाले भी तुम ही हो ॥ १८२ ॥ हे प्रभु, तेरा स्वरूप कलंक-रहित एवं सम्पूर्ण है। (ब्रह्मा आदि) जिसे संसार का कर्ता कहा जाता है उसे बनानेवाले भी तुम ही हो और (शिव आदि) संहारकों को समाहित करनेवाले भी तुम ही हो ॥ १८३ ॥ हे प्रभु, तुम सर्वोच्च आत्मा हो, सर्वजीवों के प्राण हो। तुम (केवल) अपने ही वश में हो और जिस प्रकार के तुम हो वैसे तुम स्वयं ही हो ॥ १८४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ हे सूर्य को भी तेज देनेवाले सूर्य, चंद्रमा को शीतलता प्रदान करने वाले राजाओं के राजा इन्द्रों के इंद्र प्रभु, तुमको नमस्कार है। हे प्रभु, तुम्हे प्रणाम है क्योंकि अंधकार और तेज तुम ही हो तुम ही जीवों का

ओजे ॥ १८५ ॥ नमो राजसं तामसं शांत रूपे । नमो परं तत्तं अतत्तं सरूपे । नमो जोग जोगे नमो ज्ञान ज्ञाने । नमो मंत्र मंत्रे नमो ध्यान ध्याने ॥ १८६ ॥ नमो जुद्ध जुद्धे नमो ज्ञान ज्ञाने । नमो भोज भोजे नमो पान पाने । नमो कलह करता नमो शांत रूपे । नमो इंद्र इंद्रे अनादं बिभूते ॥ १८७ ॥ कलंकार रूपे अलंकार अलंके । नमो आस आसे नमो बांक बंके[1] । अभंगी सरूपे अनंगी अनामे । त्रिभंगी त्रिकाले अनंगी अकामे ॥ १८८ ॥ ॥ एक अछरी छंद ॥ अजै । अलै । अभै । अबै ॥ १८९ ॥ अभू । अजू । अनास । अकास ॥ १९० ॥ अगंज । अभंज । अलक्ख । अभक्ख ॥१९१॥ अकाल । दिआल । अलेख । अभेख ॥१९२॥ अनाम । अकाम । अगाह । अढाह ॥ १९३ ॥ अनाथे ।

समूह हो और तुम ही जगत का अदृश्य सूक्ष्म बीज भी तुम ही हो ॥ १८५ ॥ हे प्रभु, तुझे नमस्कार है । (जगत-रचना के गुण) तमस्, रजस्, सत्त्व सब तुझसे ही उद्भूत हैं (क्योंकि प्रकृति तेरी ही रचना है) । तुम परम आत्मा हो और तुम्हारा स्वरूप इन गुणों से नहीं बना है । तुझे प्रणाम है । हे प्रभु, तुम ही सर्वोच्च योग, ज्ञान, महामंत्र एवं समाधि हो अर्थात् तुम्हारा 'नाम' ही हमारे लिए कठिन तपस्या, ज्ञान, मंत्र एवं समाधि है ॥ १८६ ॥ हे युद्धों के योद्धा, ज्ञान के ज्ञानी, भोज्य पदार्थों के प्राण, सब कुछ अपने ही अधीन रखनेवाले प्रभु, तुम्हें प्रणाम है । संसार के द्वन्द्वों के कारण तथा शांति के पुंज, देवताओं के भी देवता तथा अनादि काल से तेजस्वी प्रभु, तुम्हें प्रणाम है ॥१८७॥ हे सर्वदोषों से परे, सौन्दर्य को भी सुन्दरता प्रदान करनेवाले, सर्व जीवों की आशाओं के केन्द्र अनुपम प्रभु, तुम्हें नमस्कार है । हे अभंजनशील स्वरूपवाले निराकार अनाम प्रभु, तुम ही तीनों भुवनों के संहारक, त्रिकाल (भूत, वर्तमान, भविष्य) में अवस्थित, निराकार हो और तुम ही सर्वकामनाओं से परे हो ॥ १८८ ॥ ॥ एक अछरी छंद ॥ हे प्रभु, तुम अज्ञेय, अविनाशी, अभय और कालातीत हो ॥ १८९ ॥ हे प्रभु, तुम अजन्मा, अचल, अविनाशी और (सबको छत्रछाया देनेवाले) आकाश हो ॥ १९० ॥ तुम अजेय, अभंजनशील, अदृश्य एवं अपने भरण-पोषण की चिन्ता से मुक्त हो ॥ १९१ ॥ हे प्रभु, तुम कालातीत दयालु, गणनाओं से परे और किसी भी वेश से न सबंध रखनेवाले हो ॥ १९२ ॥ हे प्रभु, तेरा कोई (एक) नाम नहीं, तु[illegible] कामनाओं से परे, अजेय एवं अपरम्पार हो ॥ १९३ ॥ हे प्रभु, तुम्हार[illegible]

[1] सुहावने

प्रमाथे। अजोनी। अमोनी ॥ १९४ ॥ न रागे। न रंगे। न रूपे। न रेखे ॥ १९५ ॥ अकरमं। अभरमं। अगंजे। अलेखे ॥ १९६ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ नमसतुल प्रणामे समसतुल प्रनासे। अगंजुल अनामे समसतुल निवासे। न्रिकामं बिभूते समसतुल सरूपे। कुकरमं प्रणासी सुधरमं बिभूते ॥१९७॥ सदा सच्चिदानंद सत्रं प्रणासी। करीमुल कुनिंदा समसतुल निवासी। अजाइब बिभूते गजाइब गनीमे। हरीअं करीअं करीमुल रहीमे ॥ १९८ ॥ चत्र चक्र वरती चत्र चक्र भुगते। सुयंभव सुभं सरबदा सरब जुगते। कुकालं प्रणासी दइआलं सरूपे। सदा अंग संगे अभंगं बिभूते ॥ १९९ ॥ पृ०पं०१०

स्वामी कोई नहीं है, तुम सबको मथ (कर रख दे) सकनेवाले हो। तुम अजन्मा हो तथा (अनंत) मौनस्वरूप हो ॥ १९४ ॥ हे प्रभु, तुम मोह और रंगभेद से दूर, जीवों की भाँति स्वरूप न रखनेवाले सर्व चिह्नों (प्रतीकों) से परे हो ॥ १९५ ॥ तुम कर्मकांडों से और अंधविश्वासों से नहीं पाए जा सकते। तुम अजेय हो और तुम्हारा चित्र या मूर्ति आदि नहीं बन सकती ॥ १९६ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ उस वंदनीय प्रभु को मेरा प्रणाम है जो सभी का संहारक है, अजेय है, नामों से परे है तथा सर्वव्यापक है। निष्काम रूपी विभूति से सुशोभित एवं सारे जीवों के परम स्वरूप प्रभु को मेरा प्रणाम है। वह कुकर्मों को नाश करनेवाला तथा स्वधर्म (कर्तव्य) को निभानेवाला ऐश्वर्ययुक्त प्रभु है ॥ १९७ ॥ हे प्रभु, तुम्हें प्रणाम है; तुम सत् (सदा बने रहनेवाले), चित् (चैतन्य, सर्वज्ञ, सब कुछ जाननेवाले) तथा आनन्दस्वरूप हो। तुम दुष्टों का दमन करनेवाले हो, सब पर कृपा करनेवाले, सबको पैदा करनेवाले तथा सभी जीवों में निवास करनेवाले हो। हे प्रभु, तुम आश्चर्यजनक विभूतियों के स्वामी तथा (मानवता के) शत्रुओं पर ग़जब (क़हर) ढानेवाले हो। तुम स्वयं ही संहारक, सृजनकर्ता एवं कृपा करनेवाले दयालु हो ॥ १९८ ॥ हे प्रभु, तुम्हें प्रणाम है। तुम चारों दिशाओं अर्थात् सारे विश्व में मौजूद हो, चारों ओर तुम्हारा हुक्म ही चल रहा है। तुम स्वयं अपने ही आप द्वारा उद्भूत हो, सौंदर्य हो और सर्वदा सभी जीवों में संयुक्त हो। हे प्रभु, जीवों के काल (आवागमन) का कष्ट दूर करनेवाले भी तुम ही हो और तुम ही साक्षात् दया के स्वरूप हो। तुम सदैव सभी जीवों के अंग-संग हो और तुम्हारी विभूतियाँ (निधियाँ) कभी भी क्षय (समाप्त) होनेवाली नहीं ॥ १९९ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥

उतार खासे दसखत का पातिशाही १० ॥

अकाल पुरख की रच्छा हमनै। सरब लोह दी रच्छिआ हमनै। सरब काल जी दी रच्छिआ हमनै। सरब लोह जी दी सदा रच्छिआ हमनै। आगै लिखारी के दसखत ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ चउपई ॥ प्रणवो आदि एकंकारा। जल थल महीअल कीओ पसारा। आदि पुरख अबिगत अबिनाशी। लोक चत्र दस जोति प्रकाशी ॥१॥ हसत कीट के बीच समाना। राव रंक जिह इकसर जाना। अद्वै अलख पुरख अबिगामी। सभ घट घट के अंतरजामी ॥२॥ अलख रूप अछै अन भेखा। राग रंग जिह रूप न रेखा। बरन चिहन सभहूँ ते न्यारा। आदि पुरख अद्वै अबिकारा ॥३॥ बरन चिहन जिह जात न पाता। सत्र मित्र जिह तात न

पातशाही १० (गुरू गोबिंद सिंह) के हस्ताक्षरित पंक्तियों की प्रतिलिपि ॥ कालातीत पुरुष (परमात्मा) हमारा रक्षक है। सर्वलौह (अभेद्य) हमारा रक्षक है। सबका काल (परमात्मा) हमारा रक्षक है। सर्वलौह (अभेद्य) परमात्मा हमारा सदैव रक्षक है। आगे लेखक (गुरू गोबिंद सिंह) के हस्ताक्षर ॥ तेरी कृपा (से लिखता हूँ) ॥ ॥ चौपाई ॥ मैं उस आदि (पुरुष) ओंकार को प्रणाम करता हूँ, जिसने जल, स्थल एवं आकाश (अर्थात् हर स्थान) में अपने-आपको व्याप्त किया हुआ है। वह आदिपुरुष, अव्यक्त एवं अविनाशी है और उसने चौदह भुवनों को अपनी ज्योति से प्रकाशमान कर रखा है ॥ १ ॥ वह हाथी से लेकर छोटे कीड़े तक में (समान रूप से) समाया हुआ है तथा राजा और भिखारी दोनों उसके लिए एक समान हैं। वह (प्रभु) अद्वितीय है, दिखाई न देनेवाला है तथा प्रत्येक जीव के हृदय तक पहुँच रखनेवाला है ॥ २ ॥ उस (परमात्मा) का रूप वर्णन से परे है, वह अक्षय है, वेश से परे है, मोह से दूर है तथा उसका कोई विशेष चक्र-चिह्न नहीं बताया जा सकता। वह (परमात्मा) वर्ण, चिह्न आदि से न्यारा, सारी सृष्टि का कर्ता, सबमें मौजूद, अद्वैत एव विकारों से रहित है ॥ ३ ॥ जिस परमात्मा का कोई वर्ण चिह्न, जाति शत्रु, मित्र, पिता माता आदि नहीं है, वह सबसे दूर भी है और आत्म

माता। सभ ते दूरि सभन ते नेरा। जल थल महीअल जाहि बसेरा ॥ ४ ॥ अनहद रूप अनाहद बानी। चरन शरन जिह बसत भवानी। ब्रहमा बिशन अंतु नही पायो। नेति नेति मुख चार बतायो ॥ ५ ॥ कोटि इंद्र उपइंद्र बनाए। ब्रहमा रुद्र उपाइ खपाए। लोक चत्र दस खेल रचायो। बहुर आप ही बीच मिलायो ॥ ६ ॥ दानव देव फनिंद अपारा। गंध्रब जच्छ रचै सुभ चारा। भूत भविक्ख भवान कहानी। घट घट के पट पट की जानी ॥ ७ ॥ तात मात जिह जात न पाता। एक रंग काहू नहि राता। सरब जोत के बीच समाना। सभहूं सरब ठौर पहिचाना ॥ ८ ॥ काल रहित अनकाल सरूपा। अलख पुरख अबिगत अवधूता। जाति पाति जिह चिहन न बरना। अबिगत देव अछै अनभरमा ॥ ९ ॥ सभ को काल सभन को करता। रोग सोग दोखन को हरता।

स्वरूप में) सबसे पास भी है। उसका निवास जल, थल, आकाश —सभी स्थानों में है ॥ ४ ॥ उसका स्वरूप सीमाओं से परे है और उसकी वाणी किसी आधार पर आधारित नहीं है। देवी भवानी भी उस परमात्मा के चरणों की शरण में है। ब्रह्मा और विष्णु उसकी सीमा को नहीं जान सके और अपने चारों मुखों से ब्रह्मा ने ही कहा है कि उस (परमात्मा) के समान अन्य कोई दूसरा नहीं है ॥ ५ ॥ उसी (अकालपुरुष) ने करोड़ों इंद्र और उपइंद्रों का सृजन किया; उसी ने ब्रह्मा तथा रुद्र आदि को बनाया तथा उनका संहार किया। उस (प्रभु) ने ही चौदह लोकों का प्रपंच बनाया और (जब चाहा) इस तमाशे को अपने में लीन कर लिया ॥ ६ ॥ उसी (परमात्मा) ने अनेकों दानव, देवता और शेषनाग, गंधर्व, यक्ष आदि का सृजन किया है। भूतकाल, वर्तमान एवं भविष्य की कहानियों का आधार भी वही (प्रभु) है जो प्रत्येक हृदय की तह की प्रत्येक बात बात जानता है ॥ ७ ॥ उसकी कोई माँ, पिता, जाति आदि नहीं है। न ही वह किसी जाति-विशेष अथवा वंश-विशेष से विशिष्ट रूप से संबंधित है। वह (प्रभु) सभी में मौजूद है तथा मैंने उसे सबमें और सभी स्थानों में बसते हुए अनुभव किया है ॥ ८ ॥ वह प्रभु मृत्यु से मुक्त है और उसका अस्तित्व समय के प्रभाव में नहीं आता। वह अव्यक्त, अदृश्य पुरुष माया के प्रभावों से भी परे है। उसका कोई जाति, चिह्न या वर्ण नहीं है तथा वह अव्यक्त देव है अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं के समान नहीं है वह सब प्रकार से अक्षय तथा भ्रमविहीन है। ९ वह प्रभु सबका काल है तथा सभी का कर्ता

एक चित्त जिह इक छिन ध्यायो। काल फास के बीच न आयो ॥१०॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ कबित ॥ कतहूँ सुचेत हुइकै चेतना को चार किओ कतहूँ अचिंत हुइकै सोवत अचेत हो। पृ०पं०११ कतहूँ भिखारी हुइकै माँगत फिरत भीख कहूँ महादानि हुइकै माँगिओ धन देत हो। कहूँ महाराजन को दीजत अनंत दान कहूँ महाराजन ते छीन छित्र लेत हो। कहूँ बेद रीत कहूँ ता सिउ बिपरीत कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुर गुन समेत हो ॥ १ ॥ ११ ॥ कहूँ जच्छ गंध्रब उरग कहूँ बिद्याधर कहूँ भए किनर पिसाच कहूँ प्रेत हो। कहूँ हुइकै हिंदूआ गाइत्री को गुपत जप्यो कहूँ हुइकै तुरका पुकारे बाँग देत हो। कहूँ कोक काब हुइ पुरान को पड़त मत कतहूँ कुरान को निदान जान लेत हो। कहूँ बेद रीत कहूँ ता सिउ बिपरीत कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुर गुन समेत हो ॥ २ ॥ १२ ॥ कहूँ देवतान के दिवान मै बिराजमान कहूँ दानवान को गुमान मत देत हो। कहूँ इंद्र

है। रोग, शोक एवं दुःख को दूर करनेवाला है। जिसने उस प्रभु का स्मरण दत्तचित (एकाग्र) होकर एक क्षण के लिए भी किया है, वह काल के चक्र (आवागमन) में से मुक्त हो गया है ॥ १० ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ कवित्त ॥ हे प्रभु, कहीं तुम पूर्ण चैतन्यस्वरूप होकर चेतना के भी सौंदर्य के रूप में विराजमान हो, परन्तु कहीं पर तुम ही निश्चित होकर (दुनिया के प्रपंचों से बेखबर) सोनेवाले हो। कहीं तुम भिखारी बनकर भिक्षा माँगते हो और कहीं स्वयं ही महादानियों के रूप में माँगा हुआ दान देते हो। कहीं महाराजाओं को भी अनन्त निधियाँ दानस्वरूप देते हो और कहीं महाराजाओं को ही राज्य विहीन कर देते हो। (हे प्रभु, तेरी लीला आश्चर्यजनक है।) कहीं तुम वैदिक कर्मकांडी के रूप में, कहीं बिलकुल उस से उलटा, कहीं तुम तीनों गुणों (रज-तम-सत्त्व) से परे और कहीं देवगुणों से सुशोभित होते हो ॥ १ ॥ ११ ॥ हे प्रभु, यक्ष, गंधर्व, शेषनाग, ज्ञानवान, किन्नर, पिशाच, प्रेत आदि तुम ही हो। कहीं तुम हिन्दू होकर गायत्री का गुप्त जाप करनेवाले हो और कहीं मुसलमान के रूप में (प्रातः) 'अजान' देनेवाले हो। कहीं कवि-रूप में पुराणों के मत को पढ़नेवाले तथा कहीं क़ुर्आन के तत्त्व को समझनेवाले तुम ही हो। कहीं तुम वैदिक कर्मकांडी के रूप में, कहीं बिलकुल उससे विपरीत, कहीं तुम तीनों गुणों से परे और कहीं देवगुणों से शोभायमान होते हो ॥ २ ॥ १२ ॥ (हे प्रभु!) तुम कहीं देवताओं के दरबार की शोभा हो तो कहीं दानवों को अहंकार-बुद्धि

राजा को मिलत इंद्र पदवी सौ कहूँ इंद्र पदवी छपाइ छीन लेत हो। कतहूँ बिचार अबिचार को बिचारत हो कहूँ निज नार पर नार के निकेत[1] हो। कहूँ बेद रीत कहूँ ता सिउ बिपरीत कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुर गुन समेत हो॥ ३॥ १३॥ कहूँ शस्त्रधारी कहूँ बिद्या के बिचारी कहूँ मारत अहारी कहूँ नार के नकेत हो। कहूँ देव बानी कहूँ सारदा भवानी कहूँ मंगला म्रिड़ानी[2] कहूँ स्याम कहूँ सेत हो। कहूँ धरम धामी कहूँ सरब ठउर गामी कहूँ जती कहूँ कामी कहूँ देत कहूँ लेत हो। कहूँ बेद रीत कहूँ ता सिउ बिपरीत कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुर गुन समेत हो॥ ४॥ १४॥ कहूँ जटाधारी कहूँ कंठी धरे ब्रह्मचारी कहूँ जोग साधी कहूँ साधना करत हो। कहूँ कान फारे कहूँ डंडी हुइ पधारे कहूँ फूक फूक पावन को प्रिथीपै धरत हो। कतहूँ सिपाही हुइकै साधत सिलाहन[3] कौ कहूँ छत्री हुइकै अरि मारत मरत हो। कहूँ भूम भार कौ उतारत हो महाराज कहूँ

देनेवाले हो। कही तुम इंद्र को इद्रत्व प्रदान करनेवाले और कहीं उसी इंद्र का पद छीनकर उसे छिपाकर इंद्र को भटकानेवाले हो। कहीं सुविचारों और कुविचारों को धारण करनेवाले, कहीं अपनी स्त्री में रत तथा कहीं पर-नारी के घर की शोभा भी तुम ही हो। कहीं तुम वैदिक कर्मकांडी के रूप मे, कहीं बिलकुल उससे विपरीत; कहीं तुम तीनों गुणों से परे और कहीं देवगुणों से शोभायमान होते हो॥ ३॥ १३॥ हे प्रभु, तुम कहीं पर तो योद्धा, कहीं विद्वान्, कहीं आहार की खोज में निकले शिकारी तथा कहीं स्त्री को भोगनेवाले हो। हे प्रभु, तुम कहीं देववाणी के रूप में, कहीं सरस्वती, दुर्गा, मुर्दों को रौंदनेवाली चंडी के रूप में तथा कहीं श्याम वर्ण के और कहीं सफ़ेद रंग वाले हो। कहीं तुम धर्म के धाम हो, सर्वव्यापक हो, यति हो, कामी हो और कहीं दान देनेवाले तथा कहीं दान लेनेवाले हो। कहीं (हे प्रभु!) तुम वैदिक कर्मकांडी के रूप में, कहीं बिलकुल उससे विपरीत, कहीं तुम तीनों गुणों से परे और कहीं तुम देवगुणों से शोभायमान होते हो॥ ४॥ १४॥ कहीं तुम जटाजूट धारण करने वाले ऋषि, कहीं माला पहननेवाले ब्रह्मचारी, कहीं योग-साधना में लीन योगी हो। कभी तुम (हे प्रभु!) कनफटा योगी बनते हो कहीं दंडी साधु के रूप में पदार्पण करते हो तथा कहीं (जैन साधु के रूप में) फूंक-फूंक कर पैर धरती पर रखते हो। कहीं तुम सिपाही बनकर शस्त्रों की

---

१ घर। २ दुर्गा देवी ३ शस्त्र

सब भूतन[1] की भावना भरत हो ॥ ५ ॥ १५ ॥ कहूँ गीत नाद के निदान को बतावत हो कहूँ न्रितकारी[2] चित्रकारी के निधान हो। कतहूँ पयूख हुइकै पीवत पिवावत हो कतहूँ मयूख ऊख कहूँ मद पान हो। कहूँ महा सूर हुइकै मारत मवासन[3] को कहूँ महादेव देवतान के समान हो। कहूँ महादीन कहूँ द्रपके अधीन कहूँ बिद्या मै प्रबीन कहूँ भूंम कहूँ भान हो ॥ ६ ॥ १६ ॥ मू०पं०१२ कहूँ अकलंक कहूँ मारत मयंक[4] कहूँ पूरन प्रजंक[5] कहूँ सुद्धता को सार हो। कहूँ देव धरम कहूँ साधना के हरम कहूँ कुतसत कुकरम[6] कहूँ धरम के प्रकार हो। कहूँ पउनहारी कहूँ बिद्या के बिचारी कहूँ जोगि जती ब्रहमचारी नर कहूँ नार हो। कहूँ छत्रधारी कहूँ छाला धरे छैल भारी कहूँ छक वारी कहूँ छल के प्रकार

साधना करते हो और कहीं क्षत्री-रूप में मरते-मारते हो। हे महाराजन्, कहीं तुम ही पृथ्वी को अत्याचारियों के भार से मुक्त करते हो और कहीं संसार के जीवों की कामनाओं को पूरा करते हो ॥ ५ ॥ १५ ॥ हे प्रभु, तुम ही कहीं पर सुर और ताल के लक्षणों की व्याख्या करनेवाले हो और तुम ही नृत्यकला और चित्रकला के भंडार हो। कहीं पर तुम ही गाय और बछड़ा बनकर दूध पी और पिला रहे हो (सृष्टि पैदा कर उसका पोषण करनेवाले हो), कहीं तुम ही (सूर्य की) किरणों के पुंज ही अर्थात् सबको जीवन देनेवाले हो तथा कहीं-कहीं तुम ही मद में मस्त दिखाई पड़ते हो। कहीं तुम ही शूरवीर बनकर शत्रुओं का नाश करनेवाले हो और कहीं तुम ही देवताओं के भी देवतुल्य हो। कहीं तुम ही अति विनम्र, अत्यंत अहंकारी तथा विद्या में प्रवीण पंडित हो। हे प्रभु, तुम ही कहीं भूमि हो और कहीं भूमि के मूल स्रोत सूर्य हो ॥ ६ ॥ १६ ॥ तुम कहीं पर निष्कलंक हो, कहीं चंद्रमा को मारनेवाले (गौतम ऋषि) हो, कहीं पूर्ण रूप से शय्या-सुख में लिप्त हो तो कहीं तुम ही शुद्धता के सार तत्त्व हो। तुम ही कहीं पर देवताओं का धर्म (शुभकर्म) हो और कहीं पर तुम ही (आत्मा को ऊँचाइयों पर ले जानेवाली) साधना का घर हो। संसार के कुत्सित कर्म भी तुम ही हो तथा धर्म के विभिन्न रूप भी, (हे प्रभु!) तुम ही हो। तुम ही कहीं पर पवन का आहार करनेवाले, विद्या के विचारक, योगी, यती, ब्रह्मचारी तथा नर एवं नारी हो। कहीं तुम छत्रधारी राजा हो और कहीं तुम ही मृगछाला धारण करनेवाले गुरू हो। कहीं तुम ही

---

१ जीवों की। २ नाच। ३ वैरी। ४ चंद्रमा। ५ स्त्री-समेत सेज-पर्यंक ६ कुत्सित कर्म।

हो ॥ ७ ॥ १७ ॥ कहूँ गीत के गवय्या कहूँ बेन के बजय्या कहूँ न्रित्त के नचय्या कहूँ नर को अकार हो। कहूँ बेद बानी कहूँ कोक की कहानी कहूँ राजा कहूँ रानी कहूँ नार के प्रकार हो। कहूँ बेन के बजय्या कहूँ धेन के चरय्या कहूँ लाखन लवय्या कहूँ सुंदर कुमार हो। सुद्धता की सान हो कि संतन के प्रान हो कि दाता महादान हो न्रिदोखी निरंकार हो ॥ ८ ॥ १८ ॥ निरजुर निरूप हो कि सुंदर सरूप हो कि भूपन के भूप हो कि दाता महादान हो। प्रान के बचय्या दूध पूत के दिवय्या रोग सोग के मिटय्या किधौ मानी महा मान हो। बिद्या के बिचार हो कि अद्वै अवतार हो कि सिद्धता की सूरत हो कि सुद्धता की सान हो। जोबन के जाल हो कि काल हूँ के काल हो कि सत्रन के सूल हो कि मित्रन के प्रान हो ॥ ९ ॥ १९ ॥ कहूँ ब्रह्म बाद कहूँ बिद्या को बिखाद कहूँ नाद को ननाद कहूँ पूरन

छले जानेवाले हो तथा कहीं तुम ही विभिन्न छल रूपों के प्रकार हो ॥ ७ ॥ १७ ॥ हे प्रभु, तुम कहीं गीतों के गायक, कहीं बाँसुरी बजाने वाले (कृष्ण), कहीं नर्तक तथा कहीं नर-रूप में (शोभायमान) हो। (एक ओर) कहीं तुम वेदों का गंभीर ज्ञान हो तो दूसरी ओर रति-रहस्य को बतानेवाले की कहानी भी तुम ही हो। तुम ही स्वयं राजा, रानी तथा नारियों के विभिन्न प्रकार हो। कहीं बाँसुरी बजानेवाले, गायों को चराने वाले (कृष्ण) और लाखों को आकर्षित करनेवाले सुंदर कुमार तुम ही हो। शुद्धता का सौंदर्य भी तुम ही हो, संतों के ध्यान का बिंदु भी तुम ही हो, महादानियों को देनेवाले दाता भी तुम ही हो और हे निर्वैर प्रभु, तुम ही निराकार हो ॥ ८ ॥ १८ ॥ हे प्रभु, (काल के अनन्त प्रवाह के रूप में) तुम हमेशा प्रवाहित होनेवाला एक अरूप झरना हो, सुंदर स्वरूप वाले हो, राजाओं के राजा हो और महादानियों को भी देनेवाले दाता हो। प्राणों के रक्षक, दूध-पुत्र (सांसारिक सुख) देनेवाले, रोग और शोक का नाश करनेवाले तथा कहीं पर अभिमानियों का मान तोड़नेवाले महामानी भी तुम ही हो। विद्याओं का सार तत्त्व तुम ही हो और अद्वैतस्वरूप तुम ही हो। हे प्रभु, तुम ही सिद्धियों की युक्ति हो तथा तुम ही शुद्धता के सौंदर्य हो। यौवन के मोहपाश भी तुम ही हो, काल के भी काल तुम ही हो। शत्रुओं की पीड़ा भी तुम ही हो और मित्रों की मित्रता रूपी प्राण भी तुम ही हो ॥ ९ ॥ १९ ॥ हे प्रभु, तुम कहीं ब्रह्म-आचरण के समान उच्च हो तथा कहीं विद्या दाव-पेचो के कारण विवाद को उत्पन्न करनेवाले हो

भए भूपति अंत कौ नांगे ही पाइ पधारे ॥२॥२२॥ जीत फिरै सभ देस दिसान को बाजत ढोल म्रिदंग मू०ग्रं०१२ नगारे । गुंजत गूड़ गजान के सुंदर हंसत ही हय राज हजारे । भूत भविक्ख भवान के भूपति कउन गनै नही जात बिचारे । स्री पति स्री भगवान भजे बिनु अंत कउ अंत के धाम सिधारे ॥ ३ ॥ २३ ॥ तीरथ न्हान दइआ दम दान सु संजम नेम अनेक बिसेखै । बेद पुरान कतेब कुरान जिमीन जमान सबान के पेखै । पउन अहार जती जत धार सबै सु बिचार हजारक देखै । स्री भगवान भजे बिनु भूपति एक रती बिनु एक न लेखै ॥ ४ ॥ २४ ॥ सुद्ध सिपाह दुरंत[1] दुबाह सु साजि सनाह दुरजान[2] दलैंगे । भारी गुमान भरे मन मै कर परबत पंख हलै न हलैंगे । तोर

से जाना होता है ॥ २ ॥ २२ ॥ यदि कई देश-देशांतरों को जीतकर द्वार पर हमेशा विजयश्री को सूचित करनेवाले नगाड़े बजते हों, सुंदर हाथियों के झुंड-के-झुंड गरजते रहते हों और घुड़शालों में हजारों घोड़े हिनहिनाते रहते हों, तथा इस प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त भूतकाल में भी असंख्य राजा हो चुके हों, वर्तमान में भी हों और भविष्य में भी इतने हों कि अनुमान न लगाया जा सके, तब भी माया के स्वामी प्रभु के स्मरण के बिना ये सब राजा, महाराजा अन्त में यमपुरी को ही प्रयाण करेंगे (तथा सब ऐश्वर्य यहीं धरा-का-धरा रह जायगा) ॥ ३ ॥ २३ ॥ यदि कोई तीर्थों के स्नान, जीव-दया, मन को विकारों की तरफ़ से रोकने के प्रयत्न, दान, पुण्य, मन की एकाग्रता के अन्य साधन अपनाता रहे; वेद-पुराण, क़ुरान आदि धरती के सभी धर्मग्रंथों का पठन-पाठन करे; केवल पवन का आहार करे अर्थात् भूखा रहे, ब्रह्मचर्य पूर्ण जीवन व्यतीत करे तथा अन्य कई ऐसे साधनों के बारे में ही सोचता रहे, तब भी सारी सृष्टि के स्वामी परमात्मा का स्मरण करने के बिना, प्रभु के प्रेम से रहित व्यक्ति का कोई भी साधन किसी काम का नहीं है ॥ ४ ॥ २४ ॥ बहादुर योद्धा जो कि अजेय हो और जिनके तेज को बर्दाश्त न किया जा सके, जो कवच आदि धारण कर युद्धभूमि में दुर्जनों को पददलित कर उनका नाश कर देनेवाले हों; जिनके मन में यह भी गर्व हो कि पर्वत चाहे पंख लगाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए विवश हो जायें पर वे अपने स्थान से नहीं हिलेंगे; जो शत्रुओं को चकनाचूर कर, सामने अड़नेवालों की गर्दन मरोड़कर मस्त हाथियों का भी मद-मर्दन कर सकते हों; ऐसे बहादुर योद्धा भी माया के स्वामी

---

१ । २ वैरी, दुश्म

छीन सरीर मवासन माते मतंगन मान मलैंगे। स्री पति स्री भगवान क्रिपा बिनु त्याग जहानु निदान चलैंगे ॥ ५ ॥ २५ ॥ बीर अपार बडे बरिआर अबिचारहि सार की धार भछय्या। तोरत देस मलिंद मवासन माते गजान के मान मलय्या। गाढ़े गढ़ान के तोड़न हार सु बातन ही चक चार लवय्या। साहिब स्री सभ को सिर नाइक जाचिक अनेक सु एक दिवय्या ॥ ६ ॥ २६ ॥ दानव देव फनिंद¹ निसाचर भूत भविक्ख भवान जपैंगे। जीव जिते जल मै थल मै पल ही पल मै सभ थाप थपैंगे। पुंन प्रतापन बाढत जै धुन पापन के बहु पुंज खपैंगे। साध समूह प्रसंन फिरैं जग शत्र सभै अवलोक चपैंगे ॥ ७ ॥ २७ ॥ मानव इंद्र गजिंद्र नराधिप जौन त्रिलोक को राजु करैंगे। कोटि शनान गजादिक दान अनेक सुअंबर साज बरैंगे। ब्रहम महेशर बिशन सचीपति

परमात्मा की कृपा के बिना अंत समय खाली हाथ ही संसार से विदा होते हैं ॥ ५ ॥ २५ ॥ अनंत शूरवीर, बलशाली योद्धा जो चिन्तामुक्त होकर शस्त्रों के प्रहारों को सहन करते हैं, कई देशों को जीतते हैं, दुर्जेय शत्रुओं को झुका लेते हैं, मस्त हाथियों का मद-मर्दन कर लेते हैं, दुर्भेद्य क़िलों को तोड़ देते हैं और बातों ही बातों में सारी पृथ्वी को जीतने की क्षमता रखते हैं; उस प्रभु-पिता के समक्ष भिखारी हैं, जिन्हें (बल) प्रदान करने वाला माया और जीवों का स्वामी, वह परमात्मा स्वयं ही है ॥ ६ ॥ २६ ॥ जो परमात्मा जल और धरती पर अर्थात् सब जीवों को पैदा करने की क्षमता रखता है, उसका जो भी जीव स्मरण करते रहे, कर रहे हैं अथवा भविष्य में उसका स्मरण करें चाहें वे दैत्य हों अथवा देवता, शेषनाग नाग हो अथवा भूत-प्रेत, उन सबके भले कार्यों और तेज-वृद्धि की जयकार की ध्वनि बढ़ती ही जाती है और उनके द्वारा किए गए बुरे कर्मों के ढेरो के ढेर नाश हो जाते हैं। परमात्मा का स्मरण करनेवाले मनुष्य जगत में प्रसन्न-मन विचरण करते हैं, जबकि विकारी जीव ऐसे लोगों को देखकर तेजहीन होते रहते हैं ॥ ७ ॥ २७ ॥ जो मनुष्य हाथियों का स्वामी होकर, चक्रवर्ती राजा बनकर सारी सृष्टि पर शासन करते हैं; करोड़ों तीर्थों पर स्नान कर हाथी आदि दान कर कई स्वयंबरों में विवाह आदि करते हैं; (इन सबकी तो बात ही छोड़ो) ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा शचीपति इन्द्र आदि भी अन्त में मौत के वश में चले जाते हैं। केवल वही मनुष्य बार-बार जन्म-मरण के चक्र में नहीं पड़ता, जो परमात्मा की शरण

१ शेषनाग।

अंत फसे जम फास परैंगे। जे नर स्री पति के प्रस हैं पग ते नर फेर न देह धरैंगे ॥ ८ ॥ २८ ॥ कहा भयो दोऊ लोचन मूँदकै बैठि रह्यो बक ध्यान लगायो। न्हात फिर्यो लीए सात समुंद्रन लोक गयो परलोक गवायो। बासु किओ बिखिआन सो बैठ कै ऐसे ही ऐस सु बैस बितायो। साचु कहों सुन लेहु सभै जिन प्रेमु किओ तिन ही प्रभु पायो ॥ ९ ॥ २९ ॥ काहू लै पाहन पूज धरो सिर काहू लै लिंगु गरे[1] लटकायो। काहू लख्यो हरि अवाची[2] दिसा महि काहू पछाह[3] को सीस निवायो। कोऊ बुतान को पूजत है पसु कोऊ म्रितान[4] को पूजन धायो। कूरक्रिआ उरझ्यो सभ ही जग स्री भगवान को भेदु न पायो ॥ १० ॥ ३० ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ तोमर छंद ॥ हरि जनम मरन बिहीन। दस चार चार[5] प्रबीन। अकलंक।

में विनम्र-भाव से समर्पित होता है अर्थात् अहम् को त्यागकर अपने कर्मों को प्रभु-चरणों में समर्पित करता रहता है ॥ ८ ॥ २८ ॥ क्या हुआ यदि कोई (मनुष्य) दोनों आँखें बंद कर बगुले की तरह समाधि में बैठा रहा। इसका कोई लाभ नहीं हो सकता। यदि कोई मनुष्य सातों समुद्रों में जीवन भर स्नान करने के चक्कर में घूमता रहा तो समझ लो उसने इस लोक को भी गँवाया और प्रभु-स्मरण के बिना परलोक को भी बिगाड़ लिया। जिसने (उपर्युक्त साधनों को छोड़कर) जमकर विषयों का उपभोग किया उसने भी अपनी आयु व्यर्थ बिता दी। (हे भाई!) सच बात तो यह है, इसे सब ध्यान से सुन लो कि (उपर्युक्त साधनों में लगकर नहीं) परमात्मा को वही प्राप्त कर सकता है, जिसने परमात्मा से (तथा परमात्मा की सृष्टि से) सच्चा प्यार किया है ॥ ९ ॥ २९ ॥ किसी ने पत्थर (शालिग्राम) की पूजा कर उसके आगे प्रणाम किया है और किसी ने शिवलिंग को गले में लटकाया है। किसी मनुष्य ने परमात्मा को दक्षिण (द्वारिका) की ओर रहनेवाला माना है तो किसी ने पश्चिम में (मक्का-मदीना में) उसका निवास मानकर उस दिशा में सिर झुकाया है। कोई मूर्ख मूर्तियों को परमात्मा समझकर उसकी पूजा कर रहा है तो कोई क़ब्रगाहों में उसकी पूजा के लिए दौड़-धूप कर रहा है। इस प्रकार सारा ही संसार झूठे कर्मकांडों में उलझा हुआ है और परमात्मा का रहस्य इनमें से कोई भी नहीं जान सका है ॥ १० ॥ ३० ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ तोमर छंद ॥ परमात्मा जन्म-मरण से परे है।

---

१ गले २ दक्षिण दिशा। ३ पश्चिम दिशा। ४ क़ब्र। ५ [illegible] दिशाएँ।

रूप अपार । अनछिज्ज तेज उदार ॥ १ ॥ ३१ ॥ अनभिज्ज रूप दुरंत । सभ जगत भगत महंत । जस तिलक भू भ्रित भान दस चार चार निधान ॥ २ ॥ ३२ ॥ अकलंक रूप अपार । सभ लोक शोक बिदार । कल काल करम बिहीन । सभ करम धरम प्रबीन ॥३॥३३॥ अन खंड अतुल प्रताप । सभ थापिओ जिह थाप । अन छेद भेद अछेद । मुखचार गावत बेद ॥ ४ ॥ ३४ ॥ जिह नेत निगम कहंत । मुख चार बकत बिअंत । अनभिज्ज अतुल प्रताप । अनखंड अमित अथाप ॥ ५ ॥ ३५ ॥ जिह कीन जगत पसार । रचिओ बिचार बिचार । अनंत रूप अखंड । अतुल प्रताप प्रचंड ॥६॥३६॥ जिह अंड ते ब्रहमंड । कीने सु चौदह खंड । सभ कीन जगत पसार । अबियकत रूप उदार ॥ ७ ॥ ३७ । जिह कोटि इंद्र न्रिपार । कई ब्रहम बिशन बिचार । कई राम क्रिशन रसूल । बिनु भगत को न कबूल ॥ ८ ॥ ३८ ॥ कई

अठारह विद्याओं में प्रवीण है । वह अपार ब्रह्म निष्कलंक है । उसका उदार तेज कभी भी कम नहीं होता है ॥१॥३१॥ वह अलिप्त रूप से सबमे छुपा हुआ है । सारे संसार के भक्तों का महंत है । वह संसार का यश रूपी तिलक और पृथ्वी को सूर्य के समान जीवन देनेवाला है । वह अठारह विधाओं का भंडार है ॥२॥३२॥ वह अपार रूपवान, निष्कलंक है । वह सम्पूर्ण लोकों के शोकों का नाश करनेवाला है । वह कलियुगी कर्मकांडों से परे है । वह सभी धर्म-कर्मों में प्रवीण है ॥३॥३३॥ वह तुलनातीत अखंड ऐश्वर्य है और उसी ने सभी स्थापनाओं को स्थापित कर रखा है । वह भेद-रहित कभी भी खंडित नहीं होनेवाला है और चारों वेद उसी का गायन करते हैं ॥ ४ ॥ ३४ ॥ जिसे निगम नित्य कहते हैं और वेद अनन्त कहते हैं, वह अपरिमित ऐश्वर्यशाली परमात्मा निलिप्त है । वह किसी के द्वारा स्थापित न हो सकनेवाला अपरिमित है ॥५॥३५॥ जिसने जगत का प्रसार किया और बड़े विचारपूर्वक रचना की, वह अनंत रूपवान अखंड, प्रचंड प्रतापशाली परमात्मा अपरिमित है ॥ ६ ॥ ३६ ॥ जिसने अण्डे से ब्रह्मांड, चौदह भुवनों एवं सारे जगत का प्रसार किया, वह उदार ब्रह्म अव्यक्त है ॥ ७ ॥ ३७ ॥ जिसने करोड़ों इंद्रों जैसे नृप, कई ब्रह्मा, विष्णु, राम, कृष्ण, रसूल आदि का सृजन किया । इनमें से कोई भी भक्ति के बिना उसके द्वारा स्वीकृत नहीं किया जाता ८ ३८ उसने

सिंध[1] बिंध[2] नगिंद्र। कई मच्छ कच्छ फनिंद्र। कई देव आदि कुमार। कई किशन बिशन अवतार ॥ ९ ॥ ३९ ॥ कई इंद्र बार बुहार। कई बेद अउ मुख चार। कई रुद्र छुद्र सरूप। कई राम क्रिशन अनूप ॥ १० ॥ ४० ॥ कई कोक काब भणंत। कई बेद भेद कहंत। कई शासत्र सिम्रिति बखान। कहूँ कथत ही सु पुरान ॥ ११ ॥ ४१ ॥ कई अगनहोत्र करंत। कई उरध ताप दुरंत। कई उरध बाहु[3] संन्यास। कहूँ जोग भेस उदास ॥ १२ ॥ ४२ ॥ कहूँ निवली करम करंत। कहूँ पउन अहार दुरंत। कहूँ तीरथ दान अपार। कहूँ जग्य करम उदार ॥ १३ ॥ ४३ ॥ कहूँ अगनिहोत्र अनूप। कहूँ निआइ राज बिभूत। कहूँ सासत्र सिम्रिति रीत। कहूँ बेद सिउ बिपरीत ॥ १४ ॥ ४४ ॥ कई देस देस फिरंत। कई एक ठौर थिरंत। कहूँ करत जल महि जाप। कहूँ सहत तन पर ताप ॥ १५ ॥ ४५ ॥ कहूँ बास बनहि मू०ग्रं०१५ करंत। कहूँ ताप तनहि सहंत। कहूँ ग्रिहसत धरम अपार। कहूँ राज रीत

कई समुद्र, विन्ध्याचल जैसे पर्वत, कई कच्छप, मच्छ एवं फणिधरों, देवताओं, कृष्ण, विष्णु आदि अवतारों को रचा ॥९॥३९॥ कई इंद्र उसके द्वार पर झाड़ू देते हैं, कई वेद और ब्रह्मा हैं। कई रुद्र क्षुद्र रूप में उसके सामने हैं तथा कई राम एवं कृष्ण अनुपम रूप में हैं ॥ १० ॥ ४० ॥ कई कवि काव्य की रचना करते हैं तथा कई वेदों के ज्ञान-भेद का वर्णन करते हैं। कई शास्त्र व स्मृतियों की व्याख्या करते हैं तथा कई पुराणों की कथा कहते हैं ॥ ११ ॥ ४१ ॥ कई अग्निहोत्र करते हैं, कई दुष्कर रूप से उर्ध्व-तप करते हैं। कई उलटा लटककर संन्यास करते हैं तथा कई योगियों के वेश में उदासीन घूमते हैं ॥ १२ ॥ ४२ ॥ कहीं निउली कर्म करते हैं, कहीं हवा खाकर रहते हैं। कहीं तीर्थों में अपार दान करते हैं और कहीं उदार यज्ञकर्म करते हैं ॥१३॥४३॥ कई अनुपम रूप से हवन करते हैं, कई राजाओं की विभूतियों से सुशोभित होकर न्याय करते हैं। कहीं शास्त्र-स्मृतियों की परम्पराओं का पालन हो रहा है तो कहीं वेद के विपरीत बातें हो रही हैं ॥ १४ ॥ ४४ ॥ कई देश-विदेश में घूम रहे हैं और कई एक ही ठिकाने पर स्थित हैं। कहीं जल में जाप चल रहा है तो कहीं तन पर तपन को सहन किया जा रहा है ॥ १५ ॥ ४५ ॥ कई वन में रह रहे हैं। कई कष्टों को तन पर सह रहे हैं। कहीं लोग

1 समुद्र। 2 विन्ध्य नामक पहाड़ 3 लटककर।

उदार ॥ १६ ॥ ४६ ॥ कहूँ रोग रहत अभरम । कहूँ करम करत अकरम । कहूँ सेख ब्रहम सरूप । कहूँ नीत राज अनूप ॥ १७ ॥ ४७ ॥ कहूँ रोग सोग बिहीन । कहूँ एक भगत अधीन । कहूँ रंक राज कुमार । कहूँ बेद ब्यास-बतार ॥ १८ ॥ ४८ ॥ कई ब्रहम बेद रटंत । कई सेख नाम उचरंत । बैराग कहूँ सनिआस । कहूँ फिरत रूप उदास ॥ १९ ॥ ४९ ॥ सभ करम फोकट जान । सब धरम निहफल मान । बिन एक नाम अधार । सभ करम भरम बिचार ॥ २० ॥ ५० ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ लघु निराज छंद ॥

जले हरी । थले हरी । उरे हरी । बने हरी ॥ १ ॥ ५१ ॥
गिरे हरी । गुफे हरी । छिते हरी । नभे हरी ॥ २ ॥ ५२ ॥
इहाँ हरी । उहाँ हरी । जिमी हरी । जमा हरी ॥ ३ ॥ ५३ ॥
अलेख हरी । अभेख हरी । अदोख हरी । अद्वेख हरी ॥ ४ ॥
॥ ५४ ॥ अकाल हरी । अपाल हरी । अछेद हरी । अभेद हरी ॥ ५ ॥ ५५ ॥ अजंत्र हरी । अमंत्र हरी । सुतेज हरी ।

गृहस्थ-धर्म का व्यापक रूप से पालन कर रहे हैं और कहीं उदार मन से राज्य-धर्म का निर्वाह कर रहे हैं ॥१६॥४६॥ हे प्रभु, तुम कहीं पर रोग, भ्रम-मुक्त रूप से विचरण कर रहे हो, कहीं तुम ही कर्म करते हुए भी निष्कर्म हो । कहीं तुम शेषनाग और ब्रह्म के स्वरूप हो और कहीं नीतिवेत्ता के अनुपम रूप में विराजमान हो ॥ १७ ॥ ४७ ॥ कहीं तुम ही रोग-शोक से विहीन हो और कहीं तुम मात्र भक्तों के अधीन हो । कहीं तुम ही राजा, रंक और राजकुमारों के रूप में तथा कहीं वेद और व्यास के रूप में विराजमान हो ॥ १८ ॥ ४८ ॥ कई ब्रह्मा वेदों को रट रहे हैं; कई शेषनाग नाम का उच्चारण कर रहे हैं । कहीं वैराग्य है तो कहीं संन्यास है और कहीं रूपवान तपस्वी उदास घूम रहे हैं ॥ १९ ॥ ४९ ॥ ये सभी कर्म व्यर्थ हैं और ये सभी धर्म निष्फल मानने चाहिए । एक नाम के आधार के बिना सभी कर्म भ्रम हैं ॥ २० ॥ ५० ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ लघु निराज छंद ॥ हरि जल में, स्थल में हैं; यहाँ है, बन में है ॥१॥५१॥ हरि पर्वत में, कन्दरा में, धरती और व्योम में है ॥२॥५२॥ हरि यहाँ है, वहाँ है, धरती में है, ब्रह्मांड में है ॥ ३ ॥ ५३ ॥ हरि अलेख है, वेशातीत है, दुःखातीत है तथा द्वेष से परे है ॥ ४ ॥ ५४ ॥ हरि कालातीत, बंधनों से परे, अनश्वर एवं भेदों से परे है ॥ ५ ॥ ५५ ॥ हरि यन्त्रों, मन्त्रों से परे है वह तन्त्रों से परे तेजवान है ६ ५६ हरि

अतंत्र[1] हरी ॥ ६ ॥ ५६ ॥ अजात हरी । अपात हरी । अमित हरी । अमात हरी ॥ ७ ॥ ५७ ॥ अरोग हरी । असोक हरी । अभरम हरी । अकरम हरी ॥ ८ ॥ ५८ ॥ अजै हरी । अभै हरी । अभेद हरी । अछेद हरी ॥ ९ ॥ ५९ ॥ अखंड हरी । अभंड हरी । अडंड[2] हरी । प्रचंड हरी ॥ १० ॥ ॥ ६० ॥ अतेव हरी । अभेव हरी । अजेव हरी । अछेव हरी ॥ ११ ॥ ६१ ॥ भजो हरी । थपो हरी । तपो हरी । जपो हरी ॥ १२ ॥ ६२ ॥ जलस तुही । थलस तुही । नदिस तुही । नदस तुही ॥ १३ ॥ ६३ ॥ ब्रिछस तुही । पतस तुही । छितस तुही । उरधस तुही ॥ १४ ॥ ६४ ॥ भजस तुअं[3] । भजस तुअं । रटस तुअं । ठटस[4] तुअं ॥१५॥६५॥ जिमी तुही । जमा तुही । मकी तुही । मका तुही ॥ १६ ॥ ६६ ॥ अभू तुही । अभै तुही । अछू तुही । अछै तुही ॥ १७ ॥ ६७ ॥ जतस तुही । व्रतस तुही । गतस तुही । मतस तुही ॥ १८ ॥ ॥ ६८ ॥ तुही तुही । मू०पं०१६ तुही तुही । तुही तुही । तुही तुही ॥ १९ ॥ ६९ ॥ तुही तुही । तुही तुही । तुही

जाति से, पतन से, परिमिति से एवं गर्भ से परे है ॥ ७ ॥ ५७ ॥ हरि रोग से शोक से, भ्रम से एवं कर्मों से परे है ॥ ८ ॥ ५८ ॥ हरि अजय, अभय, अभेद एवं अखंड है ॥ ९ ॥ ५९ ॥ हरि अखंड है, स्त्रियातीत, दंडातीत एवं प्रचंड है ॥ १० ॥ ६० ॥ हरि ही सीमातीत है, वेशातीत है, अजय है तथा अक्षय है ॥ ११ ॥ ६१ ॥ हरि का ही भजन करो, हरि की ही मन में स्थापना करो, हरि का ही तप करो तथा हरि का ही जाप करो ॥ १२ ॥ ६२ ॥ तुम्हीं जल में हो, स्थल में हो, नदियों-नालों में भी तुम ही हो ॥ १३ ॥ ६३ ॥ वृक्षों में, पत्तों में, धरती में, आकाश में तुम ही हो ॥ १४ ॥ ६४ ॥ तुम ही भुजबल हो और भजन करनेवाले हो । तुम ही रटनेवाले और पूजा करनेवाले हो ॥ १५ ॥ ६५ ॥ तुम धरती हो, संसार हो, घर बनानेवाले और घर भी तुम ही हो ॥ १६ ॥ ६६ ॥ तुम अजन्मा अभय हो । तुम तक पहुँच नहीं हो सकती, तुम ही अक्षय हो ॥ १७ ॥ ६७ ॥ यतीत्व भी तुम हो, व्रत भी तुम हो; गति भी तुम हो और मत-मतांतर भी तुम हो ॥ १८ ॥ ६८ ॥ तुम ही, तुम ही, तुम ही, तुम ही, तुम ही, तुम ही, तुम ही, तुम ही ॥ १९ ॥ ६९ ॥ तू ही, तू ही, तू ही, तू ही, तू ही, तू ही,

---

१ जादू से परे २ सजा से परे ३ तुमको (को) ४ पूजना

तुही। तुही तुही ॥ २० ॥ ७० ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ कबित्त ॥ खूक[1] मलहारी गज गदहा बिभूत धारी गिदूआ[2] मसान[3] बास करिओ ई करत है। घुघू[4] मट बासी लगे डोलत उदासी म्रिग तरवर सदीव मोन साधे ई मरत है। बिंद के सधय्या ताहि हीज[5] की बडय्या देत बंदरा सदीव पाई नागे ई फिरत है। अंगना अधीन काम क्रोध मै प्रबीन एक ग्यान के बिहीन छीन कैसे कै तरत है ॥ १ ॥ ७१ ॥ भूत बनचारी छित छउना सभै दूधाधारी पउन के अहारी सु भुजंग जानीअतु है। त्रिण के भछय्या धन लोभ के तजय्या तेतो गऊअन के जय्या ब्रिख भय्या मानीअतु है। नभ के उडय्या ताहि पंछी की बडय्या देत बगुला बिड़ाल ब्रिक धिआनी ठानीअतु है। जेतो बडे ग्यानी तिनो जानी पै बखानी नाहि ऐसे न प्रपंच मन भूल आनीअतु है ॥ २ ॥ ॥ ७२ ॥ भूम के बसय्या ताहि भूचरी के जय्या कहै नभ के उडय्या सो चरय्या कै बखानीऐ। फल के भछय्या ताहि बाँदरी के जय्या कहै आदिस फिरय्या तेतो भूत कै पछानीऐ।

तू ही, तू ही ॥ २० ॥ ७० ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ कवित्त ॥ सूअर मल खाता है, हाथी और गधा मिट्टी में लोटा करते हैं, गिद्ध श्मशान में रहा करते हैं। उल्लू भी श्मशान में रहता है, मृग उदासीनों की तरह बन में घूमा करते हैं और पेड़ सदा मौन-साधना में लीन चुपचाप खड़े रहते हैं। ब्रह्मचर्य (बिन्दु) की साधना करनेवाले नपुंसक कई हैं और नंगे पाँव घूमनेवाले बंदर संख्या में अनेक हैं। अंगों को वश में करने पर, परन्तु काम-क्रोध को मन में धारण किये रहने पर अज्ञानी मनुष्य कैसे भवसागर को पार कर सकते हैं ॥ १ ॥ ७१ ॥ भूत सदा वनों में निवास करते हैं, धरती के जीवों के बच्चे माँ के दूध द्वारा पोषित होते हैं और साँप केवल पवन का आहार करते हैं। तृण खानेवाले और लोभ को त्यागनेवाले जीव भी है और गो-पुत्र वृक्षों को ही भाई-बहिन मानते हैं। पक्षी नभ में उड़नेवाले हैं तथा बगुला, बिलाव, बाघ आदि ध्यान लगाने में सिद्धहस्त माने जाते हैं। जो जितना बड़ा ज्ञानी है उसने जितना जाना उसका वर्णन कर दिया है, परन्तु इन सब प्रपंचों से भी मन में टिकाव नहीं आता ॥ २ ॥ ७२ ॥ भूमि पर बसनेवालों को भूचर तथा नभ में उड़नेवालों को चिड़िया कहते हैं। फलों के भक्षण करनेवालों को वानर कहते हैं और सर्व दिशाओं में घूमनेवालों को भूत के नाम से जाना

1 सूअर। 2 गृद्ध। 3 श्मशान 4 उल्लू। 5 हिजड़ा।

जल के तरय्या को गंगेरी[1] सी कहत जग आग के भछय्या सो चकोर सम मानीऐ। सूरज सिवय्या ताहि कउल की बडय्या सेत चंद्रमा सिवय्या को कवी कै पहिचानीऐ ॥ ३ ॥ ७३ ॥ नाराइण कच्छ मच्छ तिंदूआ कहत सभ कउल नाभ कउल जिह ताल मै रहतु है। गोपी नाथ गूजर गुपाल सभै धेनचारी रिखीकेस नाम कै महंत लहीअतु है। माधव भवर औ अटेरू को कनय्या नाम कंस को बधय्या जमदूत कहीअतु है। मूड़ रूड़ पीटत न गूड़ता को भेद पावै पूजत न ताहि जाके राखे रहीअतु है ॥ ४ ॥ ७४ ॥ बिस्वपाल जगतकाल दीनदयाल बैरी साल सदा प्रतिपाल जम जाल ते रहत है। जोगी जटाधारी सती साचे बडे ब्रहमचारी ध्यान काज भूख प्यास देह पै सहत है। निउली करम जल होम पावक पवन होम अधो मुख एक पाइ ठाढे न बहत है। मानव फनिंद देव दानव न पावै भेव बेद औ कतेब नेति नेति कै कहत है ॥ ५ ॥ ७५ ॥ नावल फिरत

जाता है। जल में रहनेवाले गंगेरी श्रेणी के जलचर कहलाते हैं और अग्नि का भक्षण करनेवाले चकोर के समान माने जाते हैं। सूर्य (की किरणों) का सेवन करनेवालों को कमल की उपमा दी जाती है और चन्द्रमा की चाँदनी पर मुग्ध होनेवाले को कवि कहा जाता है ॥ ३ ॥ ७३ ॥ परमात्मा को नारायण, कच्छप, मत्स्य, तेंदूआ, नाभि-कमल आदि कहा जाता है। उसे गोपीनाथ, गूजर, गायों का पालनकर्ता, गायों को चरानेवाला तथा ऋषिकेश महंत नाम से भी जाना जाता है। उसे माधव, भ्रमर, अटल निश्चय वाला कन्हैया नाम भी दिया जाता है, जो कंस के लिए यमदूत के रूप में जाना जाता है। परन्तु संसारी मूढ़ जीव परमात्मा के गूढ़ रहस्य को तो समझते नहीं; केवल रूढ़ियों का पालन करने में ही धर्म मानते हैं और उसकी पूजा नहीं करते जो परमात्मा सबका रक्षक है ॥ ४ ॥ ७४ ॥ वह परमात्मा विश्व का पालक, जगत का काल, दीनों का बंधु, शत्रुओं का नाश करनेवाला यम-जाल से रहित है। योगी, जटाधारी तपस्वी, सतियाँ तथा अनेकों ब्रह्मचारी भूख-प्यास को अपने शरीर पर सहते हैं। कई प्राणी न्योली क्रियाएँ करते हैं, जल-बध, अग्नि और वायु से संबंधित हवन करते हुए अधोमुख होकर रहते हैं और कभी एक पाँव पर (वर्षों तक) खड़े रहते हैं। परन्तु उस परमात्मा का रहस्य शेषनाग, देव, दानव कोई नहीं जान सकता, उसे तो वेद और

---

[1] एक क़िस्म का कीड़ा जो रहता है।

मोर बादर करत थोर दामनी अनेक मू०पं०१७ भाउ करिओ ई करत है। चंद्रमा ते सीतल न सूरज ते तपत तेज इंद्र सों न राजा भव भूम को भरत है। शिव से तपस्सी आदि ब्रहमा से न बेद चारी सनतकुमार सी तपस्सिआ न अनत है। ज्ञान के बिहीन काल फास के अधीन सदा जुगन की चउकरी फिराए ई फिरत है॥ ६ ॥ ७६ ॥ एक शिव भए एक गए एक फेर भए रामचंद्र क्रिशन के अवतार भी अनेक हैं। ब्रहमा अरु बिशन केते बेद औ पुरान केते सिम्रिति समूहन कै हुइ हुइ बितए हैं। मोनदी मदार केते असुनी कुमार केते अंसा अवतार केते काल बस भए हैं। पीर औ पिकांबर केते गने न परत एते भूम ही ते हुइ कै फेरि भूम ही मिलए हैं॥ ७ ॥ ७७ ॥ जोगी जती ब्रहमचारी बडे बडे छत्रधारी छत्र ही की छाइआ कई कोस लौ चलत है। बडे बडे राजन के दाबति फिरति देस बडे बडे राजन के द्रप को दलत है। मान से महीप औ दिलीप कैसे छत्रधारी बडो अभिमान भुजदंड को करत है। दारा से

कतेब भी 'नेति-नेति' कहकर पुकारते हैं॥ ५ ॥ ७५ ॥ मोर सदा नृत्य करता है तथा बिजली भी अपनी चमक के साथ अनेक भाव प्रदर्शित किया करती है। चंद्रमा से अधिक कोई शीतल नहीं, सूर्य से अधिक तेजवान कोई नहीं है तथा इन्द्र के समान (मेघ-रूप होकर) कोई पृथ्वी को जल से भरनेवाला अन्य नहीं है। शिव के समान कोई तपस्वी नहीं और ब्रह्मा के समान कोई वेदपाठी नहीं तथा सनत्कुमार का तप भी अनन्य है, परन्तु ये सब ज्ञान-विहीन प्राणी कालचक्र के वश में सदा युगों के चक्र के साथ-साथ ही घूमा करते हैं॥ ६ ॥ ७६ ॥ शिव हुए, वे भी गए, एक फिर हुए, लेकिन वे भी गए; इसी प्रकार राम और कृष्ण के भी अनेकों अवतार हुए हैं। कितने ही ब्रह्मा, विष्णु, वेद, पुराण और स्मृतियों के समूह होकर बीत चुके हैं। कितने ही मन्दराचल पर्वत और कितने ही अश्विनीकुमार हुए हैं, कितने ही अंशावतार पैदा होकर काल-चक्र में फंसकर रह गए है। कितने ही पीर-पैगम्बर इस धरती से पैदा हुए हैं और अन्त में इस धरती में ही मिलकर समाप्त हो गए हैं॥७॥७७॥ अनेकों बहुत बड़े योगी, यति, ब्रह्मचारी और सम्राट् हुए हैं, जो कोसों तक छत्र की छाया में चलकर अपने वैभव को प्रकट करते हैं। ऐसे सम्राट् बड़े-बड़े राजाओं की भूमि को हड़प कर जाते हैं और उनके गर्व को चूर करते हैं के समान महीपति और महाराजा दिलीप जैसे छत्रधारी

दिलीसर द्रुजोधन से मानधारी भोगभोग भूम अंत भूम मै मिलत है ॥ ८ ॥ ७८ ॥ सिजदे करे अनेक तोपची कपट भेस पोसती अनेक दा निवावत है सीस को । कहा भयो मल्ल जौ पै काढत अनेक डंड सो तौ न डंडौत अशटांग अथतीस को । कहा भयो रोगी जौ पै डार्यो रह्यो उरध मुख मन ते न मूँड निहरायो आद ईस को । कामना अधीन सदा दामना प्रबीन एक भावना विहीन कैसे पावै जगदीस को ॥ ९ ॥ ७९ ॥ सीस पटकत जाके कान मै खजूरा धसै मूँड छटकत मित्र पुत्र हूँ के शोक सौ । आक को चरय्या फलफूल को भछय्या सदा बन को भ्रमय्या अउर दूसरो न बोक सौ । कहा भयो भेड जौ घसत सीस ब्रिच्छन सो माटी को भछय्या बोल पूछ लीजै जोक सौ । कामना अधीन काम क्रोध मै प्रबीन एक भावना विहीन कैसे भेटै परलोक सौ ॥ १० ॥ ८० ॥ नाच्यो ई करत मोर दादर

हुए हैं, जिन्हें अपने बाहुबल पर गर्व था। दारा शिकोह जैसे दिल्लीश्वर और दुर्योधन जैसे अभिमानी इस धरती के भोगों को भोगते हुए अन्त में इस धरती में ही मिल गए हैं ॥ ८ ॥ ७८ ॥ केवल सिर झुकाकर प्रणाम करना ही महान् कार्य हो तो तोपची भी तोप दागने के लिए बार-बार झुकता है; परन्तु उसका झुकना तो कपट से दूसरों की जान लेनेवाला होता है। इसी प्रकार अफ़ीमची भी सिर झुकाता जाता है। पहलवान भी वैसे तो डण्ड-बैठक लगाता है, पर उसकी इस कसरत को ईश्वर के आगे की गई दंडवत नहीं कहा जा सकता। वह योगी कहाँ गया जो ऊपर की ओर मुँह उठाकर तो ईश्वर को देखने का बहाना बनाया करता था, परन्तु वास्तव में उसने कभी मन का मुंडन करके ईश्वर को जानने की कोशिश नहीं की। कामनाओं के अधीन होकर दमन करनेवाले भावना-विहीन लोग कैसे परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं ॥ ९ ॥ ७९ ॥ यदि सिर झटकने-घुमाने से परमात्मा प्राप्त होता हो तो जिसके कान में खनखजूरा चला जाता है या जिसको मित्र या पुत्र का शोक प्राप्त हो जाता है वह भी सिर को पटकता है। इसी प्रकार फल-फूल खानेवालों और वनवासी बने रहने वालों में जंगली बकरों से बढ़कर अन्य कोई नहीं है। वे भेड़ कहाँ गयीं जो हमेशा अपने सिर को पेड़ों के तनों से ही घिसती रहती थीं और उस जोंक से भी पूछा जा सकता है जो मात्र मिट्टी ही खाती है कि कैसे कोई कामनाओं के वश में बना रहकर, काम-क्रोध में दक्ष बना रहकर और भावना-विहीन होकर तथा उपर्युक्त प्रपंच करके परलोक में सद्‌गति पा सकता है १० ८० मोर सदा नाचा करता है, मेढक हमेशा शोर

करत सोर सदा घनघोर घन करिओ ई करत है। एक पाइ ठाढे सदा बन मै रहत ब्रिछ फूकफूक पाव भूम स्रावग धरत है। पाहन अनेक जुग एक ठउर बासु करै काग अउर चील देसदेस बिचरत है। ज्ञान के बिहीन महा दान मै न हूजै लीन भावना बिहीन दीन कैसे पृ०ग्रं०१८ कै तरत है॥ ११॥ ८१॥ जैसे एक स्वांगी कहूँ जोगीआ बैरागी बनै कबहूँ संन्यास भेस बन कै दिखावई। कहूँ पउनहारी कहूँ बैठे लाइ तारी कहूँ लोभ की खुमारी सौ अनेक गुन गावई। कहूँ ब्रहमचारी कहूँ हाथ पै लगावै बारी कहूँ डंडधारी हुइकै लोगन भ्रमावई। कामना अधीन पर्यो नाचत है नाचन सो ज्ञान के बिहीन कैसे ब्रहम लोक पावई॥ १२॥ ८२॥ पंच बार गीदर पुकारे परे सीत काल कुंचर औ गदहा अनेक दा पुकार ही। कहा भयो जो पै कलवत्र[1] लीओ कांसी बीच चीर चीर चोरटा कुठारन सो मारही। कहा भयो फासी डार बूड्यो जड़ गंगधार डार

किया करता है और बादल हमेशा गरजते ही रहते हैं। वृक्ष सदा वन में एक पांव पर ही खड़े रहते हैं और जैन श्रमण सदा फूँक-फूँककर धरती पर पैर रखते हैं। पत्थर युगों तक एक ही स्थान पर पड़े रहते हैं तथा कौवे और चीलें देश-विदेशों का भ्रमण करते रहते हैं। परन्तु इन सब कर्मों के बावजूद ज्ञानविहीन बने रहकर महादानी प्रभु के प्रेम में लीन हुए बिना, भावना-विहीन होकर कोई कैसे संसार-सागर को पार कर सकता है॥ ११॥ ८१॥ स्वाँगी की तरह जीव कभी योगी, कभी बैरागी, कभी संन्यासी बन जाता है। कहीं मात्र पवन को आहार बनाता है, कहीं ध्यानमग्न होने का ढोंग करता है और कहीं धन के लालच में अनेक प्रकार की स्तुतियाँ किया करता है। कहीं ब्रह्मचारी बनकर तो कहीं हाथ मे दंड धारण कर लोगों को भ्रम में डालता है। परन्तु कामना के अधीन होकर नाच नाचनेवाला (जीव) ज्ञान-विहीन बना रहकर कैसे ब्रह्मलोक को प्राप्त कर सकता है॥ १२॥ ८२॥ शीतकाल में तो गीदड़ भी पाँच बार चिल्लाता है और उसी प्रकार हाथी और गधे भी अनेकों बार चिल्लाते हैं। काशी में करवत लेने (आरे से तन को चिरवा देने) से भी क्या हो जायगा, क्योंकि लकड़ी को भी कुल्हाड़ी से काट-काटकर फेंका जाता है। मूर्ख व्यक्ति मुक्ति के लालच में गले में फाँसी लगाकर गंगा में डूबकर आत्महत्या करते हैं, परन्तु ठग भी तो लोगों को लूटने के लिए

[1] आरा।

डार फास ठग मार मार डारही। डूबे नरक धार मूड़ ज्ञान के बिना बिचार भावना बिहीन कैसे ज्ञान को बिचारही ॥१३॥८३॥ ताप के सहे ते जो पै पाईऐ अताप नाथ तापना अनेक तन घाइल सहत है। जाप के कीए ते जो पै पायत अजाप देव पूदना[1] सदीव तुही तुही उचरत है। नभ के उडे ते जो पै नाराइण पाईयत अनल अकाश पंछी डोलबो करत है। आग मै जरे ते गत राँड की परत कत पताल के बासी किउ भुजंग न तरत है॥ १४ ॥ ८४ ॥ कोऊ भयो मुंडीआ संन्यासी कोऊ जोगी भयो कोऊ ब्रहमचारी कोऊ जती अनमानबो। हिंदू तुरक कोऊ राफजी[2] इमामसाफी[3] मानसकी जात सभै एकै पहिचानबो। करता करीम सोई राजक[4] रहीम ओई दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो। एक ही की सेव सभ ही को गुरदेव एक एक ही

मार-मारकर गंगा में फेंक देते हैं। ज्ञान के बिना तो नरक की धारा में ही बहना होगा और भावना-विहीन होकर, प्रेम से विहीन होकर सच्चे ज्ञान का विचार मन में नहीं आ सकता॥ १३ ॥ ८३ ॥ यदि ताप को सहन करने मात्र से उस तापातीत प्रभु से मेल हो सकता हो तो युद्ध में घायल सैनिक का शरीर तो धूप-ताप आदि को सहन करता है। यदि मात्र जाप करने से उस जापातीत प्रभु को प्राप्त किया जा सका होता तो 'पूदना' नामक पक्षी सदैव 'तूंही-तूंही' का उच्चारण किया करता है। व्योमाचारी बनने से यदि नारायण की प्राप्ति हो सके तो 'अनल' नामक पक्षी सदा आकाश में उड़ता ही रहता है। इसी प्रकार अग्नि में जलने पर यदि विधवा को सद्गति प्राप्त होने की संभावना है तो पाताल के वासी सर्पों (जो भीषण गर्मी में रहते हैं और विष में सदैव जलते रहते है) को सद्गति प्राप्त क्यों नहीं होती अर्थात् सती-प्रथा एक कुप्रथा है, ऐसे प्रपंचों का त्याग किया जाना चाहिए॥ १४ ॥ ८४ ॥ संसार में अपनी रुचि के अनुसार कोई मुंड़िया, कोई संन्यासी, कोई योगी एवं कोई यति अथवा ब्रह्मचारी बन गया है। कोई हिन्दू, तुर्क, राफ़जी या इमामसाफी कहलाता है, परन्तु सबकी जाति एक है अर्थात् सभी मानवता के अंग हैं, सभी मनुष्य हैं। इन सबके लिए परमात्मा तो एक ही है, कोई उसे कर्ता कहता है, कोई करीम, कोई रोज़ी देनेवाला, कोई उसे रहम करने वाला कृपालु कहता है। इनमें कोई भेद नहीं है और भ्रम से हमें कोई भेद नहीं मानना चाहिए। एक प्रभु की सेवा करना ही हमारा कर्तव्य

---

१ एक पक्षी जो 'तूहीं' तूही बोलता है २ शीया । ३ सुन्नी मुसलमान। ४ रोज़ी देनेवाला

सरूप सभै एकै जोत जानबो ॥ १५ ॥ ८५ ॥ देहुरा मसीत सोई पूजा औ निवाज ओई मानस सभै एक पै अनेक को भ्रमाउ है । देवता अदेव जच्छ गंध्रब तुरक हिंदू न्यारे न्यारे देसन के भेस को प्रभाउ है । एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान खाक बाद आतश[1] औ आब[2] को रलाउ है । अलह अभेख सोई पुरान औ कुरान ओई एक ही सरूप सभै एक ही बनाउ है ॥ १६ ॥ ॥ ८६ ॥ जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे न्यारे न्यारे हुइकै फेरि आग में मिलाहिंगे । जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है धूर के कनूका फेर धूर ही समाहिंगे । जैसे एक नद ते तरंग कोट पृ०ग्रं०१६ उपजत है पान के तरंग सभै पान ही कहाहिंगे । तैसे बिस्व रूप ते अभूत भूत प्रगट होइ ताही ते उपज सभै ताही में समाहिंगे ॥ १७ ॥ ८७ ॥ केते कच्छ मच्छ केते उन्न कउ करत भच्छ केते अच्छ वच्छ हुइ सपच्छ उड़

है, वह एक ही सबका गुरुदेव है और उसका एक ही स्वरूप ज्योति-रूप में सबमें शोभायमान हो रहा है ॥ १५ ॥ ८५ ॥ मंदिर और मस्जिद मे पूजा और नमाज़ में ठीक वैसे ही कोई अंतर नहीं है, जैसे मनुष्य (मनुष्यता के दृष्टिकोण से) एक होने पर भी भिन्न दिखाई देते हैं । देव, अदेव, यक्ष, गन्धर्व, तुर्क और हिन्दू के नाम से मनुष्य को पुकारना मात्र भिन्न-भिन्न देशों और वेशों का प्रभाव है, क्योंकि सबके नयन, कान, देह के अंग, वाक्‌शक्ति एकसमान है और सभी मिट्टी, वायु, तेज एवं जल आदि के मिश्रण से समान रूप में बने हैं । (मुसलमानों का) अल्लाह, (हिन्दुओं का वेशातीत) परमात्मा, पुराण और क़ुर्आन सभी एक ही हैं और उसी एक स्वरूप से ही अखिल विश्व का निर्माण हुआ है ॥ १६ ॥ ८६ ॥ जैसे अग्निसमूह से अनेकों चिंगारियाँ ऊपर को उठकर पुनः उसी अग्नि में समा जाती हैं, जैसे धूल में से कई धूल के कण ऊपर उठते हैं और पुनः उसी धूल में समा जाते हैं, जैसे एक ही नदी मे से करोड़ों लहरें उठकर पुनः उसी जल में समा जाती हैं और पानी पुनः पानी ही कहलाता है, वैसे ही उस विश्व-रूप परमात्मा से भूत-अभूत (सूक्ष्मतत्त्व) पैदा होते हैं और पुनः उसी में समा जाते है ॥ १७ ॥ ८७ ॥ कितने ही कच्छप, मत्स्य और कितने ही उनका भक्षण करनेवाले, कितने ही अश्व एवं अन्य हुए हैं; परन्तु यह स्पष्ट है कि वे सब नाश को प्राप्त होंगे । नभ में कितने पक्षी हैं जो एक-दूसरे का भक्षण करते हैं, लेकिन

---

१ अग्नि । २ पानी ।

जाहिंगे । केते नभ बीच अच्छ पच्छ कउ करैंगे भच्छ केतक प्रतच्छ हुइ पचाइ खाइ जाहिंगे । जल कहा थल कहा गगन के गउन कहा काल के बनाए सभै काल ही चबाहिंगे । तेज जिउ अतेज मै अतेज जैसे तेज लीन ताही ते उपज सभै ताही में समाहिंगे ॥ १८ ॥ ८८ ॥ कूकत फिरत केते रोवत मरत केते जल मै डुबत केते आग मै जरत है । केते गंग बासी केते मदीना मका निवासी केतक उदासी के भ्रमाए ई फिरत है । करवत सहत केते भूम मै गडत केते सूआ पै चढत केते दूख कउ भरत है । गैन मै उडत केते जल मै रहत केते ज्ञान के बिहीन जक जारे ई मरत है ॥ १९ ॥ ८९ ॥ सोध हारे देवता बिरोध हारे दानो बडे बोध हारे बोधक प्रबोध हारे जापसी । घस हारे चंदन लगाइ हारे चोआ चार पूज हारे पाहन चढाइ हारे लापसी । गाह हारे गोरन मनाइ हारे मड़ी मट्ट लीप हारे भीतन लगाइ हारे छापसी । गाइ हारे गंध्रब बजाइ हारे किंन्नर सभ पच

वे सब काल द्वारा पचा लिये जायँगे । क्या जल, स्थल या क्या गगन-वासी इन सबको काल ने बनाया है और कालचक्र में ही ये सब चबा लिये जायँगे । प्रकाश जैसे अंधकार में और अंधकार प्रकाश में समा जाता है, वैसे ही सब उसी परमात्मा से उत्पन्न होकर उसी में समा जायँगे ॥ १८ ॥ ८८ ॥ कितने ही जीव चीख-पुकार रहे हैं, कितने ही रोते हैं, कितने ही मरते हैं, असंख्य आग में जल रहे हैं और कितने ही जल में डूब जाते हैं । अनेकों गंगा-वास करते हैं, अनेकों मक्का-मदीना मे निवास करते हैं और अनेकों ही उदासीन होकर इधर-उधर भ्रमण करते हैं । अनेकों ही पुण्यलोक में करवत (आरा) की धार सहन करते हैं, अनेकों भूमि में अपने-आप को गड़ाकर, शूलों की शय्या पर लेट कर दुःख को सहन करते हैं । अनेकों गगन-विहार करते हैं, अनेकों जल में विचरण करते हैं, परन्तु ज्ञान-विहीन ये सब जीव व्यर्थ ही मर-जी रहे हैं ॥ १९ ॥ ८९ ॥ उस परमात्मा को पाने के लिए देवताओं ने खोज की, परन्तु थक गए और उसे न पा सके । दानवों ने उस परम सत्ता का सदैव विरोध किया, परन्तु हार गए, बौद्धिक प्रयत्नों को करनेवाले बुद्धिजीवी भी थक गए और जाप करनेवाले प्रबुद्ध व्यक्ति भी थक कर हार गए । पंडित लोग उसके लिए चंदन घिस-घिसकर हार गए और पत्थरों को मिष्टान्नों आदि का भोग लगाकर हार-थक गए । श्मशान में साधना करनेवाले भी उस (प्रभु) को पाने के प्रयत्न में थक गए और भभूत घूमनेवाले भी थक गए उसे पाने के प्रयत्नों में

हारे पंडत तपंत हारे तापसी ॥ २० ॥ ९० ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ न रागं न रंगं न रूपं न रेखं । न मोहं न क्रोहं न द्रोहं न द्वैखं । न करमं न भरमं न जनमं न जातं । न मित्रं न सत्रं न पित्रं न मातं ॥ १ ॥ ९१ ॥ न नेहं न गेहं न कामं न धामं । न पुत्रं न मित्रं न सत्रं न भामं । अलेखं अभेखं अजोनी सरूपं । सदा सिद्ध दा बुद्ध दा ब्रिद्ध रूपं ॥ २ ॥ ९२ ॥ नही जान जाई कछू रूप रेखं । कहा बास ताको फिरै कउन भेखं । कहा नाम ताको कहा कै कहावै । कहा कै बखानो कहै मै न आवै ॥ ३ ॥ ९३ ॥ न रोगं न सोगं न मोहं न मातं । न करमं न भरमं न जनमं न जातं । अद्वैखं अभेखं अजोनी सरूपे । नमो एक रूपे नमो एक रूपे ॥ ४ ॥ ९४ ॥ परेअं परा परम प्रगिआ प्रकासी । अछेदं अछै आदि अद्वै अबिनासी । न जातं न पातं न रूपं न रंगे । नमो आद अभंगे नमो आद

गंधर्व, किन्नरगण गायन कर हार गए, पंडित-तपस्वी तप कर-करके हार गए, परन्तु उस परमात्मा की अनंतता का पार नहीं पा सके ॥ २० ॥ ९० ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ (हे प्रभु !) न तुम्हें किसी से अनुराग-विशेष है, न तुम्हारा कोई रंग-विशेष है और न ही तुम्हारा आकार है। तुम्हें मोह, क्रोध, ईर्ष्या नहीं है और न तुम विश्वासघात करते हो। कर्म, भ्रम, जन्म, जाति के चक्र में तुम नहीं हो। तुम्हारा मित्र, शत्रु, पिता, माता नहीं है ॥ १ ॥ ९१ ॥ हे प्रभु, न तुम्हें किसी से प्रेम-विशेष है, न तुम्हारा कोई घर है और न ही तुम्हारी कोई कामना है। तुम्हारा कोई पुत्र, मित्र, शत्रु अथवा स्त्री नहीं है। तुम निराकार वेशों से परे अयोनि अर्थात् अजन्मा हो। तुम सिद्धियों की प्रज्ञा का बृहद् रूप हो ॥ २ ॥ ९२ ॥ तुम्हारे स्वरूप को नहीं जाना जा सकता। ये नहीं बताया जा सकता कि तुम्हारा निवास कहाँ है और तुम किस वेश में रहते हो। तुम्हारा क्या नाम है और तुम कहाँ पर जन्मा कहलाते हो —इसका मैं वर्णन नहीं कर सकता ॥ ३ ॥ ९३ ॥ तुम रोग, शोक, मोह एवं जन्म से परे हो। कर्म, भ्रम, जन्म एवं जाति से भी तुम परे हो। ईर्ष्या, वेश से परे हे प्रभु, तुम अयोनि हो। हे सदैव एक ही रूप में रहनेवाले, तुम्हें मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥ ९४ ॥ हे प्रभु, तुम दूर से भी दूर परम प्रज्ञा को प्रकाशित करनेवाले अक्षय, अद्वैत एवं अविनाशी हो। तुम्हारी न जाति है, न स्वरूप है और न ही कोई वर्ण-विशेष है हे प्रभु तुम्हें मेरा प्रणाम है । ५ । ९५ तुमने

अभंगे ॥ ५ ॥ ९५ ॥ किते क्रिशन से कृ०पं०२० कीट कोटै उपाए । उसारे गड़े फेरि मेटे बनाए । अगाधे अभै आदि अद्वै अबिनासी । परेअं परा परम पूरन प्रकासी ॥ ६ ॥ ९६ ॥ न आधं न ब्याधं अगाधं सरूपे । अखंडत प्रताप आदि अछै बिभूते । न जनमं न मरनं न बरनं न ब्याधे । अखंडे प्रचंडे अदंडे असाधे ॥ ७ ॥ ९७ ॥ न नेहं न गेहं सनेहं सनाथे । उदंडे अमंडे प्रचंडे प्रमाथे । न जाते न पाते न सत्रे न मित्रे । सु भूते भविक्खे भवाने अचित्रे ॥ ८ ॥ ९८ ॥ न रायं न रंकं न रूपं न रेखं । न लोभं न चोभं अभूतं अभेखं । न सत्रं न मित्रं न नेहं न गेहं । सदैवं सदा सरब सरबत्र सनेहं ॥९॥९९॥ न कामं न क्रोधं न लोभं न मोहं । अजोनी अछै आदि अद्वै अजोहं । न जनमं न मरनं न बरनं न ब्याधं । न रोगं न सोगं अभै निरबिखाधं ॥ १० ॥ १०० ॥ अछेदं अभेदं अकरमं अकालं ।

कितने ही कृष्ण जैसे छोटे-छोटे जीव पैदा किए और पुनःपुनः पैदा कर फिर उनको नष्ट किया । हे प्रभु, तुम गहन, गम्भीर, अभय, अद्वैत एवं अविनाशी हो तथा कालातीत परम पूर्ण प्रकाशस्वरूप हो ॥ ६ ॥ ९६ ॥ तुम्हें कोई व्याधि ग्रसित नहीं कर सकती, तुम गम्भीर हो । तुम्हारा प्रताप एवं विभूतियाँ अक्षय हैं और उनका कभी भी खण्डन नहीं होता । तुम्हारा न जन्म होता है, न मृत्यु, न तुम्हारा कोई वर्ण-विशेष है और न तुम्हें कोई शारीरिक सुख होता है । तुम अखण्ड, प्रचण्ड, दण्डातीत एवं असाध्य हो ॥ ७ ॥ ९७ ॥ तुम्हें किसी से विशेष प्रेम नहीं है और तुम्हारा कोई विशेष घर नहीं है, परन्तु फिर भी तुम स्नेहपूर्ण एवं सबके साथ हो । तुम किसी के निमंत्रण में नहीं और तुम्हारा कोई (तर्कों से) मण्डन नहीं कर सकता । तुम प्रचण्ड हो, तुम्हारा कोई शत्रु, मित्र, जाति-पाँति आदि नहीं है । तुम भूत, भविष्य और वर्तमान में अवस्थित हो, परन्तु निराकार हो ॥ ८ ॥ ९८ ॥ न तुम राजा हो, न भिखारी, न ही तुम्हारा कोई रूप है, न ही तुम्हारा कोई आकार है । लोभ, क्षोभ, भूतों एवं वेश से तुम परे हो और तुम्हारा कोई शत्रु, मित्र, राग, द्वेष और घर-विशेष नहीं है । तुम सदैव सर्व स्थानों में रमण करनेवाले एवं सबसे स्नेह करनेवाले हो ॥ ९ ॥ ९९ ॥ काम, क्रोध, लोभ, मोह तुम्हें नहीं है । तुम अयोनि, अक्षय, अनादि, अद्वैत हो और तुम्हें देखा नहीं जा सकता । जन्म, मरण, व्याधि वर्ण आदि से तुम परे हो । रोग, शोक से परे (हे प्रभु !) तुम अभय एवं विषयातीत हो ॥ १० ॥ १०० ॥ तुम नष्ट न होनेवाले अभेद

अखंडं अभंडं प्रचंडं अपालं । न तातं न मातं न जातं न कायं । न नेहं न गेहं न भरमं न भायं ॥ ११ ॥ १०१ ॥ न रूपं न भूपं न कायं न करमं । न त्रासं न प्रासं न भेदं न भरमं । सदैवं सदा सिद्ध ब्रिद्धं सरूपे । नमो एक रूपे नमो एक रूपे ॥ १२ ॥ ॥ १०२ ॥ निरुकतं प्रभा आदि अनुकतं प्रतापे । अजुगतं अछै आदि अबिकते अथापे । बिभुगतं अछै आदि अछै सरूपे । नमो एक रूपे नमो एक रूपे ॥ १३ ॥ १०३ ॥ न नेहं न गेहं न सोकं न साकं । परेअं पवित्रं पुनीतं अताकं । न जातं न पातं न मित्रं न मंत्रे । नमो एक तंत्रे नमो एक तंत्रे ॥ १४ ॥ ॥ १०४ ॥ न धरमं न भरमं न सरमं न साके । न बरमं न घरमं न करमं न बाके । न सत्रं न मित्रं न पुत्रं सरूपे । नमो आदि रूपे नमो आदि रूपे ॥ १५ ॥ १०५ ॥ कहूँ कंज के मंज

निष्कर्म एवं काल के प्रभाव से मुक्त हो। तुम अखण्ड, प्रचण्ड हो और तुम्हें अपने पालन के लिए किसी (माता) की आवश्यकता नहीं। तुम्हारा कोई पिता, माता, जाति अथवा शरीर नहीं है और इसीलिए तुम्हें किसी से स्नेह विशेष नहीं है तथा न तुम्हें कोई भ्रम है और न ही तुम्हारा कोई घर है। तुम निर्विकार हो ॥ ११ ॥ १०१ ॥ न तुम्हारा कोई स्वरूप है और (राजा होते हुए भी) न तुम्हारा शरीर है और न ही तुम्हें कोई कर्म करना पड़ता है। तुम्हें कोई डर भी नहीं और न ही तुम्हें कोई भ्रम है। तुम अभेद सत्ता हो तथा सर्वदा सिद्धियों के वृहद् स्वरूप हो। हमेशा समरूप रहनेवाले (हे प्रभु !) तुम्हें मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥ १०२ ॥ निरुक्त ग्रन्थों की प्रभा भी तुम ही हो और तुम्हारे प्रताप का वर्णन नहीं किया जा सकता। किसी भी युक्ति से तुमको वश मे नहीं किया जा सकता। तुम अक्षय, अनादि, अव्यक्त एवं सब स्थापनाओं से परे हो। तुम सारी विभूतियों के समूह, अनादि एवं अक्षय स्वरूप हो। हे समरूप रहनेवाले, तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥ १३ ॥ १०३ ॥ स्नेह-विशेष, घर-विशेष तुम्हारा कोई नहीं है और न ही तुम्हें कोई शोक या तुम्हारा कोई संबंधी-विशेष है। तुम परमपवित्र एवं सभी आश्रयों से परे हो। न तुम्हारी कोई जाति-पाँति है, न तुम्हारा कोई मित्र है और न ही तुम्हें जानने का कोई विशेष मंत्र है। एक-तंत्र (प्रेम का धागा) स्वरूप प्रभु, तुम्हें मेरा प्रणाम है ॥ १४ ॥ १०४ ॥ तुम्हारा कोई धर्म-विशेष नहीं है और तुम भ्रमों, श्रमों, संबंधों से परे हो। आकार, कर्म, एवं वाणी से भी तुम परे हो। शत्रु, मित्र, पुत्रस्वरूप भी तुम नहीं हो। हे सृष्टि के प्रभु, तुम्हें मेरा है १५ १०५।

के भरम भूले । कहूँ रंक के राज के धरम अलूले । कहूँ देस के भेस के धरम धामे । कहूँ राज के साज के बाज तामे ॥ १६ ॥ १०६ ॥ कहूँ अच्छ के पच्छ के सिद्ध साधे । कहूँ सिद्ध के बुद्धि के बिद्ध लाधे । कहूँ अंग के रंग के संग देखे । कहूँ जंग के रंग के रंग पेखे ॥१७॥१०७॥ कहूँ धरम के करम के हरम जाने । कहूँ धरम के करम के भरम माने । कहूँ चार चेसटा कहूँ चित्र रूपं । कहूँ परम प्रग्या कहूँ सरब भूपं मू०ग्रं०२१ ॥ १८ ॥ १०८ ॥ कहूँ नेह ग्रेहं कहूँ देह दोखं । कहूँ अउखधी रोग के शोक सोखं । कहूँ देव बिद्या कहूँ दैत-बानी । कहूँ जच्छ गंध्रब किन्नर कहानी ॥ १९ ॥ १०९ ॥ कहूँ राजसी सातकी तामसी हो । कहूँ जोग बिद्या धरे तापसी हो । कहूँ रोग हरता कहूँ जोग जुगतं । कहूँ भूम की भुगत मै भरम भुगतं ॥२०॥११०॥ कहूँ देव कंनिआ कहूँ दानवी हो ।

कहीं तुम भ्रमर-रूप होकर कमल फूल की सुगन्धि लेने में भूले फिर रहे हो, कहीं तुम राजा और रंक के धर्म को बता रहे हो, कहीं तुम देश और वेशों के धर्मों का धाम बने बैठे हो और कहीं राज-सज्जा में बैठकर तमस्-वृत्ति को साकार कर रहे हो ॥ १६ ॥ १०६ ॥ हे प्रभु, कहीं तुम ज्ञान-विज्ञान के माध्यम से सिद्धियों की साधना कर रहे हो और कहीं सिद्धियों और प्रज्ञा के भेदों को खोज रहे हो। कहीं तुम सृष्टि-रचना के प्रत्येक अंग के रंग के साथ दिखाई दे रहे हो और कहीं युद्ध की युद्धशीलता के रंग में दृष्टमान हो रहे हो ॥ १७ ॥ १०७ ॥ कहीं तुम धर्म के और कर्म के धाम के रूप में जाने जाते हो और कहीं कर्मकाण्ड-स्वरूपी धर्म को भ्रम माननेवाले माने जाते हो। कहीं तुम्हारी चेष्टाएँ परम सुन्दर हैं और कहीं तुम सर्व सम्राटों के रूप में तथा परम प्रज्ञा के रूप में दिखाई देते हो ॥ १८ ॥ १०८ ॥ हे प्रभु, कहीं तुम स्नेह-रूप ग्रहणकर्ता-स्वरूप और कहीं देह के दु:ख-स्वरूप दिखाई पड़ते हो। कहीं तुम ही ओषधि बनकर रोगों से उत्पन्न दु:खों का हरण करते हो। कहीं तुम देव, विद्या, दानव, वाणी हो और कहीं तुम ही यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों की कथा-वार्त्ता हो ॥ १९ ॥ १०९ ॥ तुम ही कहीं पर रजो, सत्त्व और तमस् गुण को धारण करनेवाले हो और तुम ही योगविद्या के धारक तपस्वी हो। तुम ही कहीं पर रोगों का हरण करनेवाले हो और तुम ही कहीं योग की युक्ति हो। हे प्रभु, कहीं पर तुम ही भूमि को भोगनेवाले भ्रम में पड़े हुए व्यक्ति के स्वरूप में दिखाई देते हो २० । ११० तुम ही कहीं

कहूँ जच्छ बिद्या धरे मानवी हो। कहूँ राजसी हो कहूँ राज कंनिआ। कहूँ स्रिशटिकी प्रिशटकी रिशट पुंनिआ ॥२१॥१११॥ कहूँ बेद बिद्या कहूँ ब्योम बानी। कहूँ कोक की काब कत्थं कहानी। कहूँ अद्र सारं कहूँ भद्र रूपं। कहूँ मद्रबानी कहूँ छिद्र रूपं ॥ २२ ॥ ११२ ॥ कहूँ बेद बिद्या कहूँ काब रूपं। कहूँ चेशटा चार चित्रं सरूपं। कहूँ परम पुरान को पार पावैं। कहूँ बैठ कुरान के गीत गावैं ॥ २३ ॥ ११३ ॥ कहूँ सुद्ध सेखं कहूँ ब्रहम धरमं। कहूँ ब्रिध अवसथा कहूँ बाल करमं। कहूँ जुआ सरूपं जरा रहत देहं। कहूँ नेह देहं कहूँ त्याग गेहं ॥ २४ ॥ ११४ ॥ कहूँ जोग भोग कहूँ रोग रागं। कहूँ रोग हरता कहूँ भोग त्यागं। कहूँ राज साजं कहूँ राज रीतं। कहूँ पूरण प्रगिआ कहूँ परम प्रीतं ॥ २५ ॥ ११५ ॥ कहूँ आरबी तोरकी पारसी हो। कहूँ पहलवी पसतवी संसक्रिती

पर देवकन्या और तुम ही कहीं पर दानवकन्या के रूप में दिखाई देते हो। कहीं पर यक्षविद्या को धारण करनेवाले मानव हो और कहीं रजोगुण को धारण करनेवाली चंचल राजकन्या भी तुम्हीं हो। हे प्रभु, सृष्टि के तल का सुदृढ़ आधार भी तुम्हीं हो ॥ २१ ॥ १११ ॥ तुम ही कहीं पर वेदविद्या, आकाशवाणी हो तथा कहीं पर सामान्य कवियों की कथा-कहानी हो। कहीं तुम लौहस्वरूप हो और कहीं तुम्हारा स्वरूप अत्यन्त सुन्दर है। तुम ही कहीं पर मधुर वाणी के रूप में प्रतिष्ठित हो और तुम ही कहीं पर छिद्रान्वेषण करनेवाली आलोचनात्मक वार्त्ता हो ॥२२॥११२॥ हे प्रभु, कहीं तुम वेदविद्या और कहीं सामान्य काव्य का रूप हो। कहीं तुम सुन्दर चेष्टाओं के रूप में अभिव्यक्त हो रहे हो। कहीं तुम पुराणों के मर्म का हृदयंगम कर रहे हो और कहीं पर क़ुरआन शरीफ़ के गीतों का गायन कर रहे हो ॥ २३ ॥ ११३ ॥ कहीं तुम शुद्ध शेख़ हो और कहीं ब्राह्मण-धर्म का पालन करनेवाले हो। कहीं तुम वृद्धावस्था में हो और कहीं बाल-कर्मों को करनेवाले हो। कहीं तुम युवास्वरूप में बुढ़ापे से रहित हो और कहीं स्नेह और त्याग के स्वरूप हो ॥ २४ ॥ ११४ ॥ कहीं योग और भोग तथा रोग और राग के रूप में हो और कहीं रोग-नाशक और भोगों को त्यागनेवाले स्वरूप में हो। हे प्रभु, कहीं तुम राजसी सज्जा से युक्त हो और कहीं राज्य-विहीन हो। कहीं पर तुम पूर्ण प्रज्ञास्वरूप होते हुए अलिप्त हो, परन्तु कहीं पर तुम ही परम प्रीति-स्वरूप हो ॥ २५ ॥ ११५ ॥ तुम ही कहीं अरब, तुर्क और पारसी हो तथा तुम ही कहीं पहलवी, पश्तवी तथा संस्कृत के ज्ञाता हो कहीं तुम

हो । कहूँ देस भाखिआ कहूँ देवबानी । कहूँ राज बिद्या कहूँ राजधानी ॥ २६ ॥ ११६ ॥ कहूँ मंत्र बिद्या कहूँ तंत्र सारं । कहूँ जंत्र रीतं कहूँ शसत्र धारं । कहूँ होम पूजा कहूँ देव अरचा । कहूँ पिंगुला चारणी गीत चरचा ॥ २७ ॥ ॥ ११७ ॥ कहूँ बीन बिद्या कहूँ गान गीतं । कहूँ मलेछ भाखिआ कहूँ बेद रीतं । कहूँ न्रित बिद्या कहूँ नाग बानी । कहूँ गारड़ू गूड़ कथै कहानी ॥ २८ ॥ ११८ ॥ कहूँ अछरा पछरा मछरा हो । कहूँ बीर बिद्या अभूतं प्रभा हो । कहूँ छैल छाला धरे छत्रधारी । कहूँ राज साजं धिराजाधिकारी ॥ २९ ॥ ॥११९॥ नमो नाथ पूरे सदा सिद्ध दाता । अछेदी अछै आदि अद्वै बिधाता । न त्रसतं न ग्रसतं समसतं सरूपे । नमसतं नमसतं तुअसतं अभूते ॥ ३० ॥ १२० ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ अव्यकत तेज अनभउ प्रकास । अछै सरूप पृ०प्रं०२२

देश की सामान्य बोली के रूप में प्रतिष्ठत हो और कहीं तुम ही देवबाणी (संस्कृत) हो । कहीं तुम राजाओं की विद्या हो और कहीं पर तुम स्वय राजाओं का अधिष्ठान हो ॥ २६ ॥ ११६ ॥ तुम ही कहीं मंत्रविद्या और तंत्रों का सार हो और तुम ही कहीं यंत्रों की प्रक्रिया एवं शस्त्रों को धारण करनेवाले हो । तुम ही कहीं होम-यज्ञ एवं देव-अर्चना हो और तुम ही कहीं पिंगल (नियमानुसार पद्य-रचना), चारणों की स्तुतिपरक वाणी और सामान्य कवियों के गीतों की चर्चा का विषय हो ॥२७॥११७॥ तुम कहीं वीणा की विद्या और कहीं ज्ञान का गीत हो । कहीं तुम म्लेच्छ भाषा हो और कहीं बैदिक विधि-विधान हो । कहीं तुम नृत्यकला और कहीं सुन्दर संगीत हो और कहीं गरुड़ के समान गूढ़ एवं गम्भीर कथाएँ कहने वाले हो ॥ २८ ॥ ११८ ॥ कहीं तुम ज्ञानस्वरूपी अक्षर हो । कही चंचल अप्सरा हो । कहीं वीरोचित विद्या, एवं अद्वितीय सौंदर्य हो । कहीं तुम सुन्दर नवयुवक हो, कहीं मृगछाला पर बैठनेवाले हो तथा कही पर छत्र धारण करनेवाले राजाधिराज हो ॥ २९ ॥ ११९ ॥ हे सदा सिद्धियों को प्रदान करनेवाले पूर्णनाथ, तुम्हें मेरा प्रणाम है । तुम अभंजन, अक्षय, अनादि, अद्वैत एवं विधाता हो । न तुम्हें किसी से भय है, न तुम किसी बंधन में ग्रस्त हो और तुम सर्वभूतों के स्वरूप हो । (सर्वभूतों के स्वरूप होते हुए भी) भूतों से अतीत प्रभु, तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥ ३० ॥ १२० ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ हे प्रभु, तुम अव्यक्त, तेज हो और अनुभव से प्रकाशित होनेवाले हो तुम अद्वैत, अविनाशी, एव अक्षय तेज का भंडार, दाता, सबमे प्रच्छन्न रूप

अद्वै अनास । अनतुट्ट तेज अनखुट भंडार । दाता दुरंत सरबं प्रकार ॥ १ ॥ १२१ ॥ अनभूत तेज अनछिज्ज गात । करता सदीव हरता सनात । आसन अडोल अनभूत करम । दाता दइआल अनभूत धरम ॥ २ ॥ १२२ ॥ जिह सत्र मित्र नही जनम जात । जिह पुत्र भ्रात नही मित्र मात । जिह करम भरम नही धरम ध्यान । जिह नेह गेह नही ब्योत बान ॥ ३ ॥ ॥ १२३ ॥ जिह जात पात नही सत्र मित्र । जिह नेह गेह नही चिहन चित्र । जिह रंग रूप नही राग रेख । जिह जनम जात नही भरम भेख ॥ ४ ॥ १२४ ॥ जिह करम भरम नही जात पात । नही नेह गेह नही पित्र मात । जिह नाम थाम नही बरग ब्याध । जिह रोग सोक नही सत्र साध ॥ ५ ॥ ॥ १२५ ॥ जिह त्रास बास नही देह नास । जिह आदि अंत नही रूप रास । जिह रोग सोग नही जोग जुगति । जिह त्रास आस नही भूम भुगति ॥ ६ ॥ १२६ ॥ जिह काल ब्याल कटिओ न अंग । अछै सरूप अखै अभंग । जिह नेति नेति

से अवस्थित हो ॥ १ ॥ १२१ ॥ हे अनुभूति के माध्यम से जाने जा सकने वाले तेजस् एवं अविनाशी प्रभु, तुम कर्ता और सदैव दुःखों के हर्ता हो। तुम्हारा आसन अटल तथा तुम सर्वभूतों के कर्मों से परे रहनेवाले दयालु एव सामान्य जीवों के धर्मों से परे हो ॥ २ ॥ १२२ ॥ तुम वह परम सत्ता हो जिसका शत्रु, मित्र, जन्म, जाति, पुत्र, भ्राता एवं माता आदि कोई नहीं है। तुम वह हो जो कर्मों, भ्रमों तथा कथित धार्मिक साधनाओं, स्नेह, घर एवं योजनाओं की चिंतन पद्धति से परे हो ॥ ३ ॥ १२३ ॥ तुम वह शक्ति हो जिसकी जाति-पाँति, शत्रु-मित्र, स्नेह, घर, चिह्न, चित्र, रंग-रूप, राग, आकार, जन्म, जाति-भ्रम एवं वेश आदि कुछ नहीं है ॥ ४ ॥ १२४ ॥ तुम वह शक्ति हो जिसको कर्म, भ्रम, जाति-पाँति स्नेह, घर, माता, पिता, नाम और वर्गीकरण (अलगाव) की व्याधियों से ग्रसित नहीं माना जाता और तुम्हारे लिए रोग, शोक, शत्रु एवं साधु आदि का कोई विशेष महत्त्व नहीं है ॥ ५ ॥ १२५ ॥ तुम वह हो जो भय, आवाज, देहनाश, आदि-अंत, रूप-राशि, रोग-शोक, योग-युक्ति, भय-आशा, भूमि-भोग आदि से परे हो ॥ ६ ॥ १२६ ॥ तुम वह हो जिसको काल रूपी सर्प ने कभी नहीं काटा। तुम अक्षयस्वरूप एवं अभंजनशील वह शक्ति हो जिसे वेद नेति-नेति कहकर उच्चारण करते हैं और जिसे कतेब (सामी धर्मों की चार धर्म पुस्तकें तौरेत, जबूर, इंजील और कुरान

उचरंत बेद । जिह अलख रूप कत्थत कतेब ॥ ७ ॥ १२७ ॥ जिह अलख रूप आसन अडोल । जिह अमित तेज अछै अतोल । जिह ध्यान काज मुन जन अनंत । कई कलप जोग साधत दुरंत ॥८॥१२८॥ तन सीत घाम बरखा सहंत । कई कलप एक आसन बितंत । कई जतन जोग बिद्या बिचार । साधंत तदपि पावत न पार ॥ ९ ॥ १२९ ॥ कई उरध बाह देसन भ्रमंत । कई उरध मद्ध पावक झुलंत । कई सिम्रिति शासत्र उचरंत बेद । कई कोक काब कत्थत कतेब ॥ १० ॥ १३० ॥ कई अगन होत्र कई पउन अहार । कई करत कोट म्रिति को अहार । कई करत साक पै पत्र भच्छ । नही तदपि देव होवत प्रतच्छ ॥ ११ ॥ १३१ ॥ कई गीत गान गंध्रब रीत । कई बेद शासत्र बिद्या प्रतीत । कहूँ बेद रीत जगिआदि करम । कहूँ अगन होत्र कहूँ तीरथ धरम ॥१२॥१३२॥ कई देस देस भाखा रटंत । कई देस देस बिद्या पढ़ंत । कई करत भांत

अव्यक्त रूप मानते हैं ॥ ७ ॥ १२७ ॥ तुम वह हो जो अदृष्ट रूप से अटल आसन पर विराजमान हो और जिसके असीमित एवं अक्षय तेज की तुलना नहीं की जा सकती । तुम वह शक्ति हो जिसका ध्यान अनंत मुनि जन करते हैं और योगी कई कल्पों तक दुष्कर साधनाओं में लीन रहते हैं ॥ ८ ॥ १२८ ॥ तुम्हें पाने के लिए वे तन पर सर्दी, गर्मी, वर्षा को सहते हुए कई कल्पों तक एक ही आसन में बैठे रहते हैं । कई लोग यत्न-पूर्वक योगविद्या का अनुसरण करते हुए साधना करते हैं, परन्तु फिर भी तुम्हारा पार नहीं पा सकते ॥ ९ ॥ १२९ ॥ कई तपस्वी बाँहों को आकाशोन्मुख करके देशों का भ्रमण करते हैं । कई ऊपर-नीचे अग्नि में झुलसते हैं, कई स्मृतियों, शास्त्रों एवं वेदों का उच्चारण करते हैं । कई काव्य-रचना एवं कतेब आदि धर्मग्रन्थों की रचना करते हैं ॥१०॥१३०॥ कई जीव हवन आदि करते हैं तथा कई मात्र पवन के आहार पर ही जीवित रहते हैं । कई लोग केवल मिट्टी का आहार करते हैं और कई केवल पत्तों आदि का भक्षण कर उस प्रभु को पाने का कठिन व्रत लेते हैं, परन्तु फिर भी वह देवाधिदेव प्रत्यक्ष नहीं होता ॥ ११ ॥ १३१ ॥ गीत, गायन एवं गंधर्व-क्रियाएँ अनेक हैं । कई लोग वेद-शास्त्र आदि विद्याओं में ही लिप्त हैं । कहीं वैदिक रीति से यज्ञादि कर्म हो रहे हैं, कहीं हवन और कहीं तीर्थाटन के धर्म का पालन किया जा रहा है ॥ १२ ॥ १३२ ॥ कहीं देश विदेश की भाषाओं एवं विद्याओं को पढ़ा एवं रटा जा रहा है कई

आसन बिचार । मू०ग्रं०२३ नही नैक तास पायत न पार ॥ १३ ॥ ॥ १३३ ॥ कई तीरथ तीरथ भरमत सु भरम । कई अगन होत्र कई देव करम । कई करत बीर बिद्या बिचार । नही तदपि तास पायत न पार ॥ १४ ॥ १३४ ॥ कहूँ राज रीत कहूँ जोग धरम । कई सिम्रित सासत्र उचरत सु करम । निउली आदि करम कहूँ हसत दान । कहूँ अस्वमेध मख को बखान ॥ १५ ॥ १३५ ॥ कहूँ करत ब्रहम बिद्या बिचार । कहूँ जोग रीत कहूँ बिरध चार । कहूँ करत जछ गंधरब गान । कहूँ धूप दीप कहूँ अरघ दान ॥ १६ ॥ १३६ ॥ कहूँ पित्र करम कहूँ बेद रीत । कहूँ न्रित्त नाच कहूँ गान गीत । कहूँ करत शासत्र सिम्रिति उचार । कई भजत एक पग निराधार ॥ १७ ॥ ॥ १३७ ॥ कई नेह देह कई गेह बास । कई भ्रमत देस देसन उदास । कई जल निवास कई अगन ताप । कई जपत उरध लटकंत जाप ॥ १८ ॥ १३८ ॥ कई करत जोग कलपं

लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से उस प्रभु के बारे में विचार-विश्लेषण कर रहे हैं, परन्तु उस महान शक्ति के बारे में जरा सा भी नहीं जाना जा सका ॥ १३ ॥ १३३ ॥ कई लोग भ्रमवश अनेकों तीर्थों पर भ्रमण करते हैं और कई हवन आदि देवकर्मों में प्रवृत्त हैं । कई वीर विद्या-विचार मे लीन हैं, परन्तु फिर भी कोई उस प्रभु का अन्त नहीं पा सका ॥ १४ ॥ १३४ ॥ कहीं राजसी कार्य हो रहे हैं और कहीं योगधर्म का निर्वाह हो रहा है । कई स्मृतियों, शास्त्रों के उच्चारण का सुकर्म कर रहे हैं और कहीं न्योली आदि साधनाएँ करके हाथियों को दानस्वरूप दिया जा रहा है । कहीं अश्वमेध यज्ञ हो रहे हैं और उनकी महिमा का वर्णन किया जा रहा है ॥ १५ ॥ १३५ ॥ कहीं ब्राह्मणगण ब्रह्मविद्या का विचार कर रहे हैं और कहीं योग्य रीति से चारों आश्रमों का पालन किया जा रहा है । कहीं यक्ष-गन्धर्व गायन कर रहे हैं और कहीं धूप-दीप आदि के पश्चात् दान-पुण्य किया जा रहा है ॥ १६ ॥ १३६ ॥ कहीं पितृकर्म और वेदविधानों का पालन किया जा रहा है, तो कहीं नृत्य, गायन आदि चल रहा है । कहीं स्मृतियों एवं शास्त्रों का उच्चारण हो रहा है, तो कई जीव एक पैर पर खड़े होकर उस प्रभु का भजन कर रहे हैं ॥ १७ ॥ १३७ ॥ कई लोग शारीरिक मोह के वश गृहस्थ आदि में लिप्त हैं और कई उदासीन होकर देशाटन में लगे हुए हैं । कई साधक जल में निवास कर रहे हैं और कई अग्नि में तप रहे हैं । कई उलटे उस प्रभु का जाप कर रहे हैं ॥ १८ ॥ १३८ ॥ कई लोग कल्पं

प्रजंत । नही तदपि तास पायत न अंत । कई करत कोटि बिद्या बिचार । नही तदपि दिसट देखे मुरार ॥ १९ ॥ १३९ ॥ बिन भगत सकल नही परत पान । बहु करत होम अर जग्ग दान । बिन एक नाम इक चित्त लीन । फोकटो सरब धरमा बिहीन ॥ २० ॥ १४० ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ तोटक छंद ॥ जै जंपहु जुग्गण जूह जुअं । भै कंपहु मेर पयाल भुअं । तप तापस सरब जलेर थलं । धन उच्चरत इंद्र कुमेर बलं ॥ १ ॥ ॥ १४१ ॥ अनखेद सरूप अभेद अभिअं । अनखंड अभूत अछेद अछिअं । अनकाल अपाल दिआल असुअं । जिह ठटीअं मेर अकास भुअं ॥ २ ॥ १४२ ॥ अनखंड अमंड प्रचंड नरं । जिह रचीअं देव अदेव बरं । सभ कीनी दीन जिमीन जमा । जिह रचीअं सरब मकीन मका ॥ ३ ॥ १४३ ॥ जिह राग न रूप न रेख रुखं । जिह ताप न स्राप न सोक सुखं । जिह रोग न सोग न भोग भुयं । जिह खेद न भेद न छेद छयं ॥ ४ ॥ ॥ १४४ ॥ जिह जात न पात न मात पितं । जिह रचीअं

तक योगसाधना करते हैं, परन्तु फिर भी उस (प्रभु) का अन्त नहीं पा सके। कई करोड़ों विद्याओं पर विचार कर रहे हैं, परन्तु फिर भी वह मुरारि उन्हें प्रत्यक्ष नहीं होता ॥ १९ ॥ १३९ ॥ विना भक्ति के कोई हाथ नहीं पकड़ता। यद्यपि बहुत से हवन, यज्ञ, दान आदि किये जायें तो भी एक प्रभु के नाम में चित्त को लीन किये बिना सभी कर्मकाण्ड यथार्थ धर्म से विहीन माने जायेंगे ॥२०॥१४०॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ तोटक छंद ॥ सब मिलकर उस प्रभु की जय-जयकार करो जिसके भय से धरती, पाताल और सुमेरु पर्वत तक कांपते हैं। उसी को पाने के लिए जल, स्थल सभी जगह तपस्वी तपस्या करते हैं और इन्द्रादिक भी उसके बल को महान मानते हैं ॥ १ ॥ १४१ ॥ वह प्रभु अशोक, अभेद एवं अभय है। वह प्रभु अखण्ड, भूतों से परे, अभंजनशील, अक्षय, कालातीत, स्वयंभू, दयालु है और वही सुमेरु, आकाश एवं धरती का अधिष्ठान है ॥२॥१४२॥ वह अखण्ड, मण्डनातीत, प्रचण्ड आदिपुरुष है, जिसने देव, अदेव, धरती, समस्त विश्व और विश्व के दृष्टिमान पदार्थों की रचना की ॥३॥१४३॥ उसको न किसी से स्नेह-विशेष है और न ही उसका कोई आकार-विशेष है। ताप, शाप, शोक, सुख, रोग, शोक, भोग, खेद, भेद एवं नश्वरता का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ॥ ४ ॥ १४४ ॥ उसकी जाति, माता-पिता आदि नहीं हैं और उसी ने धरती, क्षत्रिय एवं छत्र की रचना

छत्री छत्र छितं । जिह राग न रेख न रोग भणं । जिह द्रैख न दाग न दोख गणं ॥ ५ ॥ १४५ ॥ जिह अंडह ते ब्रहमंड (मू०ग्रं०२४) रच्यो । दस चार करी नव खंड सच्यो । रज तामस तेज अतेज किओ । अनभउ पद आप प्रचंड लिओ ॥ ६ ॥ ॥ १४६ ॥ सिअ सिधर बिध नगिंध नगं । सिअ जच्छ गंध्रब फणिंद भुजं । रच देव अदेव अभेव नरं । नरपाल न्रिपाल कराल त्रिगं ॥ ७ ॥ १४७ ॥ कई कीट पतंग भुजंग नरं । रचि अंडज सेतज उत्तभुजं । कीए देव अदेव सराध पितं । अनखंड प्रताप प्रचंड गतं ॥ ८ ॥ १४८ ॥ प्रभ जात न पात न जोत जुतं । जिह तात न मात न भ्रात सुतं । जिह रोग न सोग न भोग भुअं । जिह जंपहि किंनर जच्छ जुअं ॥ ९ ॥ ॥ १४९ ॥ नर नार नपुंसक जाहि कीए । गण किंनर जच्छ भुजंग दीए । गज बाज रथादिक पांत गनं । भव भूत भविक्ख भवान तुअं ॥ १० ॥ १५० ॥ जिह अंडज सेतज जेर रजं । रच भूम अकास पताल जलं । रच पावक पउन प्रचंड बली ।

की है । उसको राग, द्वेष का रोग नहीं है और ईर्ष्या आदि की कालिमा से वह मुक्त है ॥ ५ ॥ १४५ ॥ जिसने एक अंडे (हिरण्यगर्भ) में सारे विश्व की रचना करके चौदह भुवनों एवं नौ खण्डों का सृजन किया। उसी प्रभु ने रज, तमस्, तेज, अंधकार का सृजन किया और स्वयं प्रचण्ड रूप से इस सारी सृष्टि में शोभायमान हुआ ॥ ६ ॥ १४६ ॥ उसने समुद्र, विंध्य पर्वत जैसे नगेन्द्र को बनाया तथा यक्ष, गन्धर्व, शेषनाग, देव, अदेव, नर, नरपालों और भयंकर विषधरों का सृजन किया ॥ ७ ॥ १४७ ॥ कई कीड़े, पतंगे, सर्प एवं मानवों-सहित उसने विभिन्न अंडजों, स्वेदजों एव वनस्पति (उद्भिजों) की रचना की । उसी ने देव, अदेव, श्राद्ध, पितृ इत्यादि का सृजन किया और वही अपने अखण्ड, प्रचण्ड प्रताप-सहित इन सबमें गतिमान हुआ ॥ ८ ॥ १४८ ॥ प्रभु की कोई जाति नहीं है और वह सबमें ज्योति-रूप होकर संयुक्त है । जिस प्रभु के माता-पिता, भ्राता, पुत्र आदि कोई नहीं और जिसे रोग, शोक और भूमि-भोग से कोई लगाव नहीं, उसे यक्ष एवं किन्नर आदि स्मरण कर रहे हैं ॥ ९ ॥ १४९ ॥ नर-नारी एवं नपुंसक सब उसी की रचना हैं । गण, किन्नर, यक्ष, हाथी, घोड़े, रथ आदि सब उसी की देन हैं । वह प्रभु वर्तमान, भूत, भविष्य में विद्यमान है १० १५० उस प्रभु ने अण्डज, स्वेदज जेरज से पैदा होनेवाले जीवों की रचना की और भूमि आकाश, पाताल एव जल क.

बन जासु किओ फल फूल कली ॥ ११ ॥ १५१ ॥ भूअ मेर अकाश निवास छितं । रथ रोज इकादस चंद्र भितं । दुत चंद दिनीसह दीप दई । जिह पावक पउन प्रचंड मई ॥ १२ ॥ ॥ १५२ ॥ जिह खंड अखंड प्रचंड कीए । जिह छत्र उपाइ छिपाइ दीए । जिह लोक चतरदस चार रचे । गण गंध्रब देव अदेव सचे ॥ १३ ॥ १५३ ॥ अनधूत अभूत अछूत मतं । अनगाध अब्याध अनादि गतं । अनखेद अभेद अछेद नरं । जिह चार चतर दिस चक्र फिरं ॥ १४ ॥ १५४ ॥ जिह राग न रंग न रेख रुगं । जिह सोग न भोग न जोग जुगं । भूअ भंजन गंजन आदि सिरं । जिह बंदत देव अदेव नरं ॥ १५ ॥ ॥ १५५ ॥ गण किंनर जछछ भुजंग रचे । मणि माणक मोती लाल सुचे । अनभंज प्रभा अनगंज भितं । जिह पार न पावत पूर मतं ॥ १६ ॥ १५६ ॥ अनखंड सरूप अखंड प्रभा । जै जंपत बेद पुरान सभा । जिह बेद कतेब अनंत कहै । जिह भूत

सृजन किया । उसी ने अग्नि, पवन रूपी प्रचण्ड शक्तियों को बनाया और उसी ने वनों का निर्माण किया जिसमें फल-फूल, कलियाँ आदि शोभायमान है ॥ ११ ॥ १५१ ॥ उसी ने भूमि, सुमेरु पर्वत, आकाश एवं निवास के लिए इस धरती का निर्माण किया तथा दिन-रात, चन्द्र, तिथियों आदि की रचना की । चन्द्र और सूर्य जैसे दीपों का निर्माण किया और अग्नि, पवन जैसी प्रचण्ड शक्तियों को बनाया ॥ १२ ॥ १५२ ॥ जिसने बृहद् खण्डों का निर्माण किया और उन खण्डों पर राज्य करनेवाले क्षत्रपतियों को रचकर उनका नाश भी किया । उसी प्रभु ने चौदह सुन्दर लोकों का निर्माण किया जिसमें गण, गन्धर्व, देव, अदेव आदि अवस्थित हैं ॥ १३ ॥ १५३ ॥ वह प्रभु कालिमा से मुक्त, भूतों से परे और अगम्य है । वह गहन, गम्भीर, व्याधि-रहित एवं अनादि काल से गतिशील है । वह खेद-रहित, अभेद्य, अक्षय पुरुष हैं और उसका चक्र चारों दिशाओं मे गतिशील है ॥ १४ ॥ १५४ ॥ वह राग, रंग, आकार से परे, शोक, भोग, योगातीत है । वह पृथ्वी का नाश करनेवाला और सृजन करनेवाला आदि सृजनकर्ता है, जिसकी वन्दना देव, अदेव और मानव सभी करते हैं ॥१५॥१५५॥ उसी ने गण, किन्नर, यक्ष, सर्प, मणि-माणिक्य, मोती, लाल, हीरे आदि की रचना की । उसकी प्रभा अनन्त और उसका वृत्तान्त अनन्त है एवं संसार के सम्पूर्ण मत भी उसका अन्त नहीं पा सकते १६ १५६ उस प्रभु का स्वरूप अखण्ड है और उसका तेज

अभूत न भेद लहै ।। १७ ।। १५७ ।। जिह बेद पुरान कतेब जपैं । सुतसिंध अधोमुख ताप तपैं । कई कलपन लौ तप ताप करैं । नही नैक क्रिपानिध पान परैं ।। १८ ।। १५८ ।। जिह फोकट धरम (मू०ग्रं०२५) सभै तजिहैं । इक चित क्रिपानिध को भजिहै । तेऊ या भवसागर को तर है । भव भूल न देह पुनर धर है ।। १९ ।। १५९ ।। इक नाम बिना नही कोट ब्रिती । इम बेद उचारत सारसुती । जोऊ वा रस के चस के रस है । तेऊ भूल न काल फधा फस है ।।२०।।१६०।। ।। त्व प्रसादि ।। ।। नराज छंद ।। अगंज आदि देव है अभंज भंज जानीऐ । अभूत भूत है सदा अगंज गंज मानीऐ । अदेव देव है सदा अभेव भेव नाथ है । समस्त सिद्‌ध ब्रिद्‌धदा सदीव सरब साथ है ।। १ ।। १६१ ।। अनाथनाथ नाथ है अभंजभंज है सदा । अगंज गंज गंज है सदीव सिद्‌ध ब्रिद्‌धदा । अनूप रूप सरूप है

अबाध है । वेद-पुराण आदि उसी की जय-जयकार करते हैं । वह प्रभु ही एक ऐसा है जिसे वेद-कतेब ने अनन्त कहा है और भूत-अभूत कोई भी उसके भेद को नहीं जान सका है ।। १७ ।। १५७ ।। वेद-पुराण और कतेब उसी का स्मरण करते हैं और कई ऋषि-पुत्र सिर झुकाकर उसी के तेज से शक्ति प्राप्त कर रहे हैं । कई लोग कल्पों तक तपस्या में लीन हैं, परन्तु फिर भी कृपानिधि प्रभु तनिक सा भी उनके हाथ नहीं लग सका ।। १८ ।। १५८ ।। जो व्यर्थ के धार्मिक विधि-विधानों का त्याग कर एकचित्त होकर उस कृपा के समुद्र प्रभु का भजन करेंगे, वे ही इस भव-सागर को पार कर सकेंगे । और पुन: देह धारण नहीं करेंगे अर्थात् जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जायँगे ।। १९ ।। १५९ ।। करोड़ों वृत्तियाँ व्यर्थ हैं यदि 'नाम' स्मरण की वृत्ति नहीं जागी; इस प्रकार के कथनों का उच्चारण वेद एवं विद्या की देवी सरस्वती आदि किया करती हैं। जिनको उस रस (नाम-रस) की लगन लग गई वे भूलकर भी काल-फाँस मे नहीं फँसेंगे ! ।। २० ।। १६० ।। ।। तेरी कृपा से ।। ।। नराज छंद ।। वह देव (प्रभु) अनश्वर है और दृढ़तम पदार्थों का भी भंजन करनेवाले के रूप में जाना जाता है । वह भूतातीत सूक्ष्म भी है और स्वयं भूत अर्थात् स्थूल भी है, उसे सर्वदा अभंजनशीलों का भी भंजन करनेवाला मानना चाहिए । वह देव भी है, अदेव भी है, रहस्य भी है और सामान्य ज्ञान का नाथ भी है । वह समस्त सिद्धियों की वृद्धि करनेवाला, सदैव सबके साथ रहनेवाला है १ १६१ वह अनाथों का नाथ और अभग्न का भजन करनेवाला है उसके भंडार सदा अक्षय हैं और सिद्धियों की वृद्धि

अछिज्ज तेज मानीऐ। सदीव सिद्ध सुद्धदा प्रताप पत्र जानीऐ ॥ २ ॥ १६२ ॥ न राग रंग रूप है न रोग राग रेख है। अदोख अदाग अदवख है अभूत अभ्रम अभेख है। न तात मात जात है न पात चिहन बरन है। अदेख असेख अभेख है सदीव बिस्व भरन है ॥ ३ ॥ १६३ ॥ बिस्वंभर बिस्वनाथ है बिसेख बिस्व भरन है। जिमी जमान के बिखै सदीव करम भरम है। अद्वैख है अभेख है अलेख नाथ जानीऐ। सदीव सरब ठउर मै बिसेख आन मानीऐ ॥ ४ ॥ १६४ ॥ न जंत्र मै न तंत्र मै न मंत्र बसि आवई। पुरान औ कुरान नेति नेति कै बतावई। न करम मै न धरम मै न भरम मै बताईऐ। अगंज आदि देव है कहो सु कैसि पाईऐ ॥ ५ ॥ १६५ ॥ जिमी जमान के बिखै समस्त एक जोत है। न घाट है न बाढ है न घाट बाढ होत है। न हान है न बान है समान रूप जानीऐ। मकीन औ मकान अप्रमान तेज मानीऐ ॥ ६ ॥ १६६ ॥ न देह

करनेवाला है। उसका स्वरूप अनुपम है और उसका तेज कभी समाप्त न होनेवाला है। वह सदैव सिद्धियों का शोधन करनेवाला तेज-प्रताप का स्वयं ही उदाहरण है ॥ २ ॥ १६२ ॥ वह राग-रंग, रूप, रोग, आकार-प्रकार नहीं है। वह दोषों से परे, बेदाग़, अदृष्ट, अभूत, भ्रमों से परे एवं वेशातीत है। उसका माता-पिता, जाति, चिह्न, वर्ण आदि कुछ नहीं है। वह अदृष्ट, अशेष, अवेश ब्रह्म सदा से सदा के लिए विश्व का पोषणकर्ता है ॥ ३ ॥ १६३ ॥ वह विश्वम्भर विश्व का नाथ है और विश्व का भरण-पोषण करनेवाला है। वह धरती और सारे विश्व में सदैव हो रहे कर्म के रूप में प्रतीत होता रहता है। उसे द्वेष-रहित, वेश-रहित, अदृष्ट नाथ के रूप में जानो और उसे ही सभी स्थानों में विशेष रूप से अवस्थित मानो ॥ ४ ॥ १६४ ॥ वह यंत्र, मंत्र, तंत्र से वश में नहीं आ सकता। उसे ही पुराण और क़ुरआन 'नेति-नेति' कहकर पुकारते हैं। वह किसी कर्म, धर्म एवं भ्रम-विशेष में निहित नहीं है। जो अनश्वर परमात्मा है, बताओ भला उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है! ॥ ५ ॥ १६५ ॥ इस अखिल विश्व में एक ही ज्योति है, जो न घटती है और न बढ़ती है। वह ज्योति न कम है, न अधिक है। न उसका कभी क्षय होता है और न वह स्थूल रूप से आदेश आदि देती है। वह हमेशा समरूप से विद्यमान है। वह सभी गृहों और सभी स्थानों में तेजस्वरूप से अवस्थित है, जिसे (तर्कों से) प्रमाणित नहीं किया जा सकता ॥६॥१६६॥ वह परमात्मा न देह है, न घर है न जाति-पाँति है, न मित्र है, न मंत्र है, न [illegible] है, न पिता है, न बंध-

है न गेह है न जात है न पात है । न मंत्र है न मित्र है न तात है न मात है । न अंग है न रंग है न संग साथ नेह है । न दोख है न दाग है न द्वैख है न देह है ॥ ७ ॥ १६७ ॥ न सिंघ है न स्यार है न राउ है न रंक है । न मान है न मउत है न साक है न संक है । न जच्छ है न गंध्रब है न नरु है न नार है । न चोर है न शाह है न शाह को कुमार है ॥ ८ ॥ १६८ ॥ न नेह है न गेह है न देह को बनाउ है । न छल है न छिद्र है न छल को मिलाउ है । न जंत्र है न मंत्र है न तंत्र को (मू०ग्रं०२६) सरूप है । न राग है न रंग है न रेख है न रूप है ॥ ९ ॥ १६९ ॥ न जंत्र है न मंत्र है न तंत्र को बनाउ है । न छल है न छिद्र है न छाइआ को मिलाउ है । न राग है न रंग है न रूप है न रेख है । न करम है न धरम है अजनम है अभेख है ॥१०॥१७०॥ न तात है न मात है अख्याल अखंड रूप है । अछेद है अभेद है न रंक है न भूप है । परेय है पवित्र है पुनीत है पुरान है । अगंज है अभंज है करीम है कुरान है ॥११॥१७१॥ अकाल है अपाल है खिआल है अखंड है । न रोग है न सोग है न भेद है न भंड है । न अंग है न रंग है न संग है न साथ है । प्रिया है पवित्र है पुनीत है प्रमाथ है ॥ १२ ॥ १७२ ॥ न सीत है न

विशेष है; न रंग है, न कोई साथी-विशेष है । वह दोष, दाग, द्वेष, देह आदि कुछ नहीं है ॥ ७ ॥ १६७ ॥ वह सिंह-स्यार, राव-रंक, मान-मृत्यु संबंधी शंका आदि वृत्ति कुछ नहीं है । वह यक्ष, गंधर्व, नर-नारी, चोर, साहूकार या राजकुमार आदि कुछ नहीं है ॥ ८ ॥ १६८ ॥ वह स्नेह, घर, देह, छल-छिद्र आदि कुछ भी नहीं है और न ही वह यंत्र, मंत्र, तंत्र, राग-रंग, आकार आदि का स्वरूप है ॥ ९ ॥ १६९ ॥ वह न यंत्र, मंत्र, तंत्र, छल-छिद्र, अविद्या, राग, रंग-रूप अथवा आकार है । वह कर्म, धर्म भी नहीं है, वह अजन्मा एवं वेशों से परे है ॥ १० ॥ १७० ॥ वह मात्र पिता-माता के रूप में ही नहीं जाना जाता, बल्कि वह विचारातीत अखंड-स्वरूप है । वह अक्षय, अभेद है और न ही वह रंक है तथा न ही वह सम्राट् है । वह सबसे परे (प्रभु) पवित्र है, पुनीत तथा सबसे प्राचीन है । वह स्वयं तो अभंजनशील है परन्तु सब पर कृपा करनेवाला (पवित्र) क़ुर्आन-स्वरूप है ॥ ११ ॥ १७१ ॥ वह अकाल है और उसका पोषण कोई अन्य नहीं करता । वह अखंड चिंतन (निर्विकल्प समाधि) है । वह रोग, शोक भेद नारि अग रग सग साथ कुछ नहीं है वह प्रिय,

सोच है न ग्राम है न धाम है। न लोभ है न मोह है न क्रोध है न काम है। न देव है न दैत है न नर को सरूप है। न छल है न छिद्र है न छिद्र की बिभूत है ॥ १३ ॥ १७३ ॥ न काम है न क्रोध है न लोभ है न मोह है। न द्वैख है न भेख है न दूई है न द्रोह है। न काल है न बाल है सदीव दयाल रूप है। अगंज है अभंज है अभरम है अभूत है ॥ १४ ॥ १७४ ॥ अछेद छेद है सदा अगंज गंज गंज है। अभूत भेख है बली अनूप राग रंग है। न द्वैख है न भेख है न काम क्रोध करम है। न जात है न पात है न चित्र चिहन बरन है ॥ १५ ॥ १७५ ॥ बिअंत है अनंत है अनंत तेज जानीऐ। अभूम अभिज्ज है सदा अछिज्ज तेज मानीऐ। न आध है न ब्याध है अगाध रूप लेखीऐ। अदोख है अदाग है अछै प्रताप पेखीऐ ॥ १६ ॥ १७६ ॥ न करम है न भरम है न धरम को प्रभाउ है। न जंत्र है न तंत्र है न मंत्र को रलाउ है। न छल है न छिद्र है न छिद्र को सरूप है। अभंग है अनंग है अगंजसी बिभूत है ॥ १७ ॥ १७७ ॥

पवित्र पुनीत और अतिशक्तिशाली है ॥ १२ ॥ १७२ ॥ वह न शीतलता है, न चिंतन है, न छाया है न धूप है। वह लोभ, मोह, क्रोध, काम, देव, दैत्य, नर आदि का स्वरूप भी नहीं है। वह छल-छिद्र और संसार की तुच्छ विभूतियाँ भी नहीं है ॥ १३ ॥ १७३ ॥ वह (प्रभु) काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, वेश, द्वैत, द्रोह आदि नहीं है। वह काल और कालचक्र में पड़नेवाला बालक भी नहीं है, वह तो सर्वदा दयालु बना रहनेवाला है। वह अनश्वर, अभंजनशील है, भ्रमों से परे सूक्ष्म रूप है ॥ १४ ॥ १७४ ॥ वह सदा दृढ़तम का भी उच्छेदन करनेवाला, असंख्य भंडारों का भेदन करनेवाला है। वह सूक्ष्म स्वरूप में अनुपम बलशाली राग-रंगों का मूल रूप है। वह द्वेष, वेश, काम, क्रोध, कर्म, जाति, पाँति, चित्र, चिह्न, वर्ण आदि से परे है ॥ १५ ॥ १७५ ॥ वह अनन्त है, उसे अनंत तेजस्वरूप कहा जा सकता है। वह भूमि के भोगों से निर्लिप्त है, उसे सदा अक्षय तेजस्वरूप करके माना जा सकता है। वह व्यापक प्रभु आधि-व्याधि आदि नहीं है। वह इस प्रकार के दोषों से मुक्त, बेदाग़ अक्षय प्रतापशाली है ॥ १६ ॥ १७६ ॥ वह कर्म, भ्रम, धर्म के विधि-विधानों के प्रभाव से परे, यंत्र, मंत्र, तंत्र आदि के संयोग से अप्रभावित है। वह छल-छिद्र आदि कुछ नहीं है। वह अभंग, अनंग और कभी न समाप्त होनेवाली विभूति है ॥ १७ ॥ १७७ ॥ वह काम-क्रोध लोभ मोह, आधि-व्याधि आदि का

न काम है न क्रोध है न लोभ मोह कार है । न आध है न गाध है न ब्याध को बिचार है । न रंग राग रूप है न रूप रेख रार है । न हाउ है न भाउ है न दाउ को प्रकार है ।।१८।।१७८।। गजाधपी नराधपी करंत सेव है सदा । सितसपती तपसपती बनसपती जपस सदा । अगसत आदि जे बडे तपसपती बिसेखीऐ । ब्यंत ब्यंत ब्यंत को करंत पाठ पेखीऐ ।। १९ ।। १७९ ।। अगाध (पृ०पं०२७) आद देव की अनाद आत मानीऐ । न जात पात मंत्र मित्र सत्र सनेह जानीऐ । सदीव सरब लोक को क्रिपाल ख्याल मै रहैं । तुरंत द्रोह देह के अनंत भांत सो दहै ।। २० ।। १८० ।। ।। त्व प्रसादि ।। ।। रूआमल छंद ।। रूप राग न रेख रंग न जनम मरन बिहीन । आदि नाथ अगाध पुरख सु धरम करम प्रबीन । जंत्र मंत्र न तंत्र जाको आदि पुरख अपार । हसत कीट बिखै बसै सभ ठउर मै निरधार ।। १ ।। १८१ ।। जाति पाति न तात जाको मंत्र मात्रि न मित्र । सरब ठउर बिखै रम्यो जिह चक्र चिहन न चित्र । आदि देव उदार मूरति अगाध नाथ

विचार भी नहीं है। वह न राग-रंग, रूप-आकार, हाव-भाव आदि ही है ।। १८ ।। १७८ ।। गजराज, नटराज सदा उसकी सेवा करते हैं। वरुण, सूर्य, चन्द्रमा सदा उसका जाप करते हैं। अगस्त्य आदि बड़े-बड़े तपस्वी-विशेष तथा अनेकों अन्य जीव उसी का स्मरण करते हुए देखे जाते हैं ।। १९ ।। १७९ ।। उस अपरिमित आदिदेव प्रभु की कथा-वार्त्ता भी अनादि है। जाति-पाँति, मंत्र, मित्र, शत्रु, स्नेह आदि वह नहीं है। सदैव सर्वलोकों पर कृपा करनेवाले प्रभु का ध्यान मुझे बना रहे। वह प्रभु देह के अनंत दुःखों का तुरन्त शमन करनेवाला है ।। २० ।। १८० ।। ।। तेरी कृपा से ।। ।। रूआमल छंद ।। वह प्रभु रूप, राग, आकार, रंग, जन्म-मरण से विहीन है तथा उसे आदिनाथ गम्भीर पुरुष और सुधर्म-कर्म में प्रवीण कहा जाता है। उस आदिपुरुष को यंत्र, मंत्र, तंत्र से वश में नहीं किया जा सकता, और वह हाथी से लेकर छोटे कीट तक में समान रूप से अवस्थित है ।। १ ।। १८१ ।। जिसकी जाति-पाँति, पिता-माता, मंत्र, मित्र, कुछ भी नहीं है और चक्र-चिह्नों से परे रहनेवाला जो प्रभु सभी स्थानों में रमण कर रहा है, वह आदिदेव उदारता की प्रतिमूर्ति, सबका नाथ अनन्त है और सब विषादों से दूर है ।। २ ।। १८२ ।। जिसके मर्म को देव, वेद, कतेब, सनक, सनन्दन आदि सेवा करने पर भी नहीं जान पाये तथा यक्ष, किन्नर मत्स्य, मानव, सर्प आदि भी उसके रहस्य को नहीं जान पाते उसी

अनंत। आदि अंति न जानीऐ अबिखाद देव दुरंत ॥ २ ॥ ॥ १८२ ॥ देव भेव न जानही जिह मरम बेद कतेब। सनक अउ सनके सनंदन पावही नही सेब। जच्छ किंनर मच्छ मानस मुरग उरग अपार। नेति नेति पुकारही शिव सक्र औ मुखचार ॥ ३ ॥ १८३ ॥ सरब सपत पतार के तर जापही जिह जाप। आदिदेव अगाधि तेज अनादि मूरति अताप। जंत्र मंत्र न आवई कर तंत्र मंत्र न कीन। सरब ठउर रहिओ बिराज धिराज राज प्रबीन ॥ ४ ॥ १८४ ॥ जच्छ गंध्रब देव दानो न ब्रहम छत्रीअन माहि। बैसनं के बिखै बिराजै सूद्र भी वह नाहि। गूड़ गउड न भील भीकर ब्रहम सेख सरूप। रात दिवस न मद्ध उरध न भूम अकास अनूप ॥ ५ ॥ १८५ ॥ जात जनम न काल करम न धरम करम बिहीन। तीरथ जात्र न देवपूजा गोर के न अधीन। सरब सपत पतार के तर जानीऐ जिह जोत। शेश नाम सहंस्र फन नहि नेत पूरन होत ॥ ६ ॥ १८६ ॥ सोध सोध हटे सभै सुर बिरोध दानव सरब। गाइ गाइ हटे गंध्रब गवाइ किंनर गरब। पड़्हत पड़्हत थके महाकबि गड़्हत गाड़्ह अनंत। हार हार कहिओ सभू

प्रभु को शिव, इन्द्र एवं ब्रह्मा नेति-नेति कहकर पुकारते हैं ॥ ३ ॥ १८३ ॥ सप्त पातालों के जीव उसी का जाप कर रहे हैं, वह आदिदेव, अनादि-स्वरूप सर्व-तापों से रहित यंत्र-मंत्र आदि से वश में आनेवाला नहीं है। वह प्रभु, सर्व स्थानों में अधिष्ठान-स्वरूप होकर विराजमान है ॥४॥१८४॥ वह यक्ष, गन्धर्व, देव, दानव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैष्णव, शूद्र आदि के अन्तर्मन में भी विराजमान नहीं है। वह राजपूत, गौड़, भील, ब्राह्मण, शेख आदि के स्वरूप में भी अवस्थित नहीं है। वह रात, दिवस-मध्य, उर्ध्व, भूमि, अनुपम आकाश आदि में भी नहीं है ॥ ५ ॥ १८५ ॥ जाति, जन्म, काल, कर्म एवं धर्म-कर्म आदि से वह विहीन है तथा वह तीर्थयात्रा, देव-पूजा, श्मशान-साधना के अधीन भी नहीं है। सातों पातालों के जीव उसी की ज्योति हैं और शेषनाग सहस्र फनों से उसके नाम का स्मरण करता है, तब भी वह स्मरण पूरा नहीं होता ॥ ६ ॥ १८६ ॥ देव, दानव सभी उसको खोज-खोजकर थक गए हैं तथा गन्धर्व एवं किन्नरों का गर्व भी उस प्रभु का गायन कर-करके चूर हो चुका है। महाकवि भी अनन्त प्रकार की कथाओं की रचना कर-करके एवं पढ़-पढ़के थक चुके हैं, परन्तु सबको अंत में थककर यही कहना पड़ा है कि उस प्रभु का नाम अत्यंत दूर की

मिल नाम नाम दुरंत ॥ ७ ॥ १८७ ॥ बेद भेद न पाइओ लखिओ न सेब कतेब । देव दानो मूड़ मानो जच्छ न जानै जेब । भूत भव्व भवान भूपति आदि नाथ अनाथ । अगन बादि जले थले महि सरब ठउर निवास ॥ ८ ॥ १८८ ॥ देह गेह न नेह सनेह अबेह नाथ अजीत । (मू०ग्रं०२८) सरब गंजन सरब भंजन सरब ते अनभीत । सरब करता सरब हरता सरब द्याल अद्वेख । चक्र चिहन न बरन जाको जात पात न भेख ॥ ९ ॥ १८९ ॥ रूप रेख न रंग जाको राग रूप न रंग । सरब लाइक सरब घाइक सरब ते अनभंग । सरब दाता सरब ज्ञाता सरब को प्रतिपाल । दीनबंधु दयाल सुआमी आदिदेव अपाल ॥ १० ॥ ॥ १९० ॥ दीनबंधु प्रबीन स्रीपति सरब को करतार । बरन चिहन न चक्र जाको चक्र चिहन अकार । जाति पाति न गोत्र गाथा रूप रेख न बरन । सरब दाता सरब ज्ञाता सरब भूअ को भरन ॥ ११ ॥ १९१ ॥ दुशट गंजन सत्र भंजन परम पुरख प्रमाथ । दुशट हरता स्रिशट करता जगत मै जिह गाथ । भूत भव्व भविक्ख भवान प्रमान देव अगंज । आदि अंत अनादि

बात है ॥ ७ ॥ १८७ ॥ वेदों ने भी उसका रहस्य नहीं जाना और कतेब भी उसकी सेवा को नहीं देख सके । देव, दानव, मानव, मूर्ख हैं और यक्ष भी उसका कुछ अता-पता नहीं जानते । वह प्रभु, भूत, भविष्य, वर्तमान का सम्राट्, नाथों का नाथ आदिनाथ है और अग्नि, वायु, जल-स्थल सर्व स्थानों में उसका निवास है ॥ ८ ॥ १८८ ॥ वह प्रभु देह, घर, स्नेह आदि से परे है तथा कभी न जीता जा सकनेवाला, सबका नाश करनेवाला अभय है । वह सर्वकर्ता, सर्वसंहारक, सर्वदयालु एवं अद्वैत-स्वरूप चक्र, चिह्न, वर्ण, जाति-पाँति, वेश से अतीत है ॥ ९ ॥ १८९ ॥ जिसका रूप, रेख, राग, रंग कुछ नहीं है, वह सब कुछ करने में समर्थ सर्वसंहारक अजेय, सर्वदाता, सर्वज्ञ एवं सबका पालन करनेवाला प्रभु है । वह प्रभु दीनबन्धु, दयालु स्वामी तथा आदिदेव है ॥ १० ॥ १९० ॥ वह दीनबन्धु प्रवीण ऐश्वर्य का स्वामी सबका कर्ता, वर्ण, चिह्न, चक्र, आकार, जाति-पाँति, गोत्र, रूप आदि से परे है । वह प्रभु सबको देनेवाला सर्वज्ञ तथा सारे भूमण्डल का पोषण करनेवाला है ॥ ११ ॥ १९१ ॥ वह दुष्टों का नाश करनेवाला, शत्रुओं का भंजन करनेवाला अतिबलशाली परमपुरुष सृष्टि का कर्ता है और सारे संसार में उसी की गाथा का वर्णन हो रहा है वह भूत भविष्य वर्तमान मे प्रमाणित देवाधिदेव है तथा उस ही

स्री पति परम पुरख अभंज ॥ १२ ॥ १९२ ॥ धरम के अन करम जेतक कीन तउन पसार । देव अदेव गंधरब किंनर मच्छ कच्छ अपार । भूम अकाश जले थले महि मानीऐ जिह नाम । दुशट हरता पुशट करता स्रिशट धरता काम ॥ १३ ॥ १९३ ॥ दुशट हरना स्रिशट करना द्याल लाल गोबिंद । मित्र पालक सत्र घालक दीनद्याल मुकंद । अघौ डंडण दुशट खंडण कालहूँ के काल । दुशट हरणं पुशट करणं सरब के प्रतिपाल ॥ १४ ॥ ॥ १९४ ॥ सरब करता सरब हरता सरब के अनकाम । सरब खंडण सरब डंडण सरब के निज भाम । सरब भुगता सरब जुगता सरब करम प्रबीन । सरब खंडण सरब दंडण सरब धरम अधीन ॥ १५ ॥ १९५ ॥ सरब सिम्रितन सरब शासत्रन सरब बेद बिचार । दुशट हरता बिस्व भरता आदि रूप अपार । दुशट दंडण पुशट खंडण आदिदेव अखंड । भूम अकाश जले थले महि जपत जाप अमंड ॥ १६ ॥ १९६ ॥ स्रिशट चार बिचार

आदि एवं अंत में अनादिस्वरूप से रमण करनेवाला पति अनश्वर परम-पुरुष कहा जाता है ॥ १२ ॥ १९२ ॥ धर्म के अन्य जितने भी कर्म हैं, सबका प्रसार उसी ने किया है तथा देव, अदेव, गंधर्व, किन्नर, मत्स्य, कच्छप आदि का रचयिता भी वही है । भूमि, आकाश, जल, स्थल में जिसके नाम की मान्यता है, वह प्रभु दुष्टों का दमन करनेवाला और अच्छाई को पुष्ट करनेवाला तथा सृष्टि को धारण करनेवाला है ॥ १३ ॥ १९३ ॥ वह दयालु, गोविन्द, दुष्टों का दमन करनेवाला, सृष्टि का कर्ता, मित्रों का पोषक, शत्रुओं का नाशक, दीनदयालु मुकुन्द नाम से जाना जाता है । वह काल का भी काल, पापियों को दंडित करनेवाला, दुष्टों को खंडित करनेवाला, दुष्टों का दमन करनेवाला और धर्म को मंडित करनेवाला सबका प्रतिपालक है ॥ १४ ॥ १९४ ॥ वह सर्वकर्ता, सर्वसंहारक, सबकी कामनाओं को पूरा करनेवाला, सबको खंडित और दंडित करनेवाला तथा सबको स्त्री-स्वरूप मे प्रेम करनेवाला है । वह सर्वविभूतियों का स्वामी, सर्वयुक्तियों से सम्पन्न, सर्वकर्मों में प्रवीण, सबका खंडन एवं सबको दण्ड देनेवाला तथा सर्वकर्तव्यों को अपने अधीन रखनेवाला है ॥ १५ ॥ १९५ ॥ सारी स्मृतियों, शास्त्रों एवं वेदों का सम्पूर्ण विचार भी वही है । वह दुष्टसंहारक, विश्वपोषक, आदिरूप है । वह आदि, अखंड देव, दुष्टों को खंडित कर धर्म की पुष्टि करनेवाला है । भूमि, आकाश, जल, स्थल में सभी उस अनस्थापित प्रभु का जाप चल रहा है १६ । १९६ सृष्टि के जितने आचरण विचार ज्ञान के

जेते जानीऐ सबिचार। आदिदेव अपार स्रीपति दुशट पुशट प्रहार। अंनदाता ग्यान ग्याता सरब मान महिंद्र। बेद ब्यास करे कई दिन कोटि इंद्र उपइंद्र ॥ १७ ॥ १९७ ॥ जनम जाता करम ग्याता धरम चार बिचार। बेद भेव न पावई शिव रुद्र अउ मुखचार। (पू०पं०२८) कोट इंद्र उपिंद्र बिआसक सनक सनतकुमार। गाइ गाइ थके सभै गुन चक्रत भे मुखचार ॥ १८ ॥ ॥ १९८ ॥ आदि अंति न मद्ध जा को भूत भब्ब भवान। सत दुआपर त्रितीआ कलजुग चत्र काल प्रधान। ध्याइ ध्याइ थके महामुनि गाइ गंध्रब अपार। हार हार थके सभै नही पाईऐ तिह पार ॥ १९ ॥ १९९ ॥ नारदादिक बेद बिआसक मुनि महान अनंत। ध्याइ ध्याइ थके सभै कर कोट कशट दुरंत। गाइ गाइ थके गंध्रब नाच अपछ्र अपार। सोध सोध थके महासुर पाइओ नहि पार ॥ २० ॥ २०० ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ दोहरा ॥ एक समै स्री आतमा उचरिओ मत सिउ बैन। सभ प्रताप जगदीश को कहो सकल बिध तैन ॥ १ ॥ २०१ ॥

माध्यम से जाने जा सकते हैं, वे सब उस आदिदेव श्रीपति (परमात्मा) में अवस्थित हैं जो दुष्टों पर भयंकर प्रहार करनेवाला है। वह प्रभु अन्नदाता, ज्ञान और ज्ञाता तथा सर्वत्र मान्य भूपति है। वेद, इन्द्र, उपेन्द्र आदि कई दिनों तक उस पर प्रवचन करते हैं (परन्तु उसका अन्त नहीं पाया जा सकता) ॥ १७ ॥ १९७ ॥ वह जन्म देनेवाला, सर्वकर्मकाण्ड में पारंगत तथा धर्म पर सुन्दर विचार करनेवाला है, परन्तु उसका और उसके विचारों का शिव, रुद्र एवं ब्रह्मा भी रहस्य नहीं समझ सके। करोड़ों इंद्र, उपेन्द्र, व्यास, सनत, सनत्कुमार, ब्रह्मा आदि उसके गुणों का गायन कर-करके थक चुके हैं ॥ १८ ॥ १९८ ॥ उसका आदि, अंत, मध्य, भूत, भविष्य, वर्तमान कुछ भी नहीं है तथा वह सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग चारों युगों में प्रधान है। महामुनि एवं गंधर्व आदि उसका ध्यान एवं गायन कर थक चुके हैं और हार चुके हैं, परन्तु उसका कोई पार नहीं पा सका ॥ १९ ॥ १९९ ॥ नारदादि, वेदव्यास आदि अनंत महान् मुनि करोड़ों कष्ट सहन कर उसका ध्यान कर-करके थक गए हैं। गंधर्व गायन कर एवं अप्सराएँ नृत्य कर-कर थक चुकी हैं और महान् देवतागण भी उसकी खोज करते-करते हार गए हैं, परन्तु कोई उसका अन्त नहीं पा सका २० २०० तेरी कृपा से। दोहा एक बार आत्मा ने बुद्धि से कहा कि उस जगदीश के प्रताप का सब भाँति से वर्णन

॥ दोहरा ॥ को आतमा सरूप है कहा स्रिशट को बिचार । कउन धरम को करम है कहो सकल बिसथार ॥ २ ॥ २०२ ॥ ॥ दोहरा ॥ कह जीतब कह मरन है कवन सुरग कह नरक । को सुघड़ा को मूड़ता कहा तरक अवतरक ॥ ३ ॥ २०३ ॥ ॥ दोहरा ॥ को निंदा जस है कवन कवन पाप कह धरम । कवन जोग को भोग है कवन करम अपकरम ॥ ४ ॥ २०४ ॥ ॥ दोहरा ॥ कहो सु स्रम कासो कहै दम को कहा कहंत । को सूरा दाता कवन कहो तंत को मंत ॥५॥२०५॥ ॥ दोहरा ॥ कहा रंक राजा कवन हरख सोग है कवन । को रोगी रागी कवन कहो तत्त मुहि तवन ॥ ६ ॥ २०६ ॥ ॥ दोहरा ॥ कवन रिशट को पुशट है कहा स्रिशट को बिचार । कवन ध्रिशट को भ्रिशट है कहो सकल बिसथार ॥ ७ ॥ २०७ ॥ ॥ दोहरा ॥ कहा करम को करम है कहा भरम को नास । कहा चितन की चेशटा कहा अचेत प्रकास ॥ ८ ॥ २०८ ॥ ॥ दोहरा ॥ कहा नेम संजम कहा कहा ज्ञान अज्ञान । को रोगी सोगी कवन कहा धरम की हान ॥६॥२०६॥ ॥ दोहरा ॥

करो ॥ १ ॥ २०१ ॥ ॥ दोहा ॥ आत्मा का (यथार्थ) स्वरूप क्या है तथा सृष्टि-विचार क्या है । धर्म का कर्म कौन सा है, इसे विस्तार-पूर्वक कहो ॥ २ ॥ २०२ ॥ ॥ दोहा ॥ जीना-मरना क्या है, स्वर्ग-नरक क्या है । चतुरता क्या है तथा मूर्खता क्या है, तर्क क्या है तथा वितर्क क्या है ॥ ३ ॥ २०३ ॥ ॥ दोहा ॥ निंदा क्या है, यश क्या है, पाप क्या है, धर्म क्या है । योग क्या है, भोग क्या है, सुकर्म क्या है तथा दुष्कर्म क्या है ॥ ४ ॥ २०४ ॥ ॥ दोहा ॥ समरसता किसे कहते हैं तथा दमन किसे कहते हैं, शूरवीर कौन है, दानी कौन है, तंत्र क्या है तथा मंत्र क्या है ॥ ५ ॥ २०५ ॥ ॥ दोहा ॥ रंक-राजा कौन हैं, हर्ष एवं शोक क्या है, रोगी कौन है, रागी (लिप्त) कौन है —यह तत्त्व-विचार मुझे समझाकर कहो ॥ ६ ॥ २०६ ॥ ॥ दोहा ॥ बलवान कौन है तथा सृष्टि की रचना का विचार क्या है । धृष्ट कौन है तथा भ्रष्ट कौन है, इसे विस्तारपूर्वक कहो ॥ ७ ॥ २०७ ॥ ॥ दोहा ॥ कर्मठता का कर्म कौन सा है तथा भ्रम का नाश कैसे होता है । चित्त की चेष्टाएँ क्या हैं तथा अचिन्त्य प्रकाश क्या है ॥ ८ ॥ २०८ ॥ ॥ दोहा ॥ नियम, संयम, ज्ञान-अज्ञान क्या है रोगी एवं शोकाकुल कौन है और धर्म की अधोगति कहाँ होती है । ९ २०९ दोहा शूरवीर कौन है, सुन्दर कौन है और योग

जै होसी महखासुर मरदन रंम कपरदन दैत जिणं ॥ ३ ॥ ॥ २१३ ॥ चंडासुर चंडण मुंड बिमुंडण खंड अखंडण खून खिते । दामनी दमंकण धुजा फरंकण फणी फुकारन जोध जिते । सर धार बिबरखण दुशट प्रकरखण पुशट प्रहरखण दुशट मथे । जै जै होसी महखासुर मरदन भूम अकाश तल उरध अधे ॥ ४ ॥ ॥ २१४ ॥ दामनी प्रहासन सु छब निवासन स्रिशट प्रकाशन गूड़ गते । रकतासुर आचन जुद्ध प्रमाचन न्रिदै न राचन धरम व्रिते । स्रोणंत अचिंती अनल बिवंती जोग जयंती खड़ग धरे । जै जै होसी महखासुर मरदन पाप बिनासन धरम करे ॥ ५ ॥ ॥ २१५ ॥ अघ ओघ निवारन दुशट प्रजारन स्रिशटि उबारन सुद्ध मते । फणीअर फुंकारण बाघ बकारण शसत्र प्रहारण साध मते । सैहथी सनाहन अशट प्रबाहन बोल निबाहन तेज अतुलं । जै जै होसी महखासुर मरदन भूम अकाश पताल जलं ॥ ६ ॥ ॥ २१६ ॥ चाचर चमकारन चिच्छुर हारन धूम

महिषासुर का मर्दन करनेवाली (ईश्वरीय शक्ति) ! तुम्हारी जय हो ॥ ३ ॥ २१३ ॥ चंड और मुंड नामक असुरों का नाश करनेवाली और सारे क्षितिज तक में रक्त का अखंड प्रवाह बहानेवाली महाशक्ति, तुम्हारी ध्वजा फड़क रही है और योद्धाओं को जीतनेवाली तुम्हारे स्वरूप मे बिजली दमक रही है। तुम तीरों की वर्षा करनेवाली हो, दुष्टों को खडित कर उनका मंथन करनेवाली हो। हे भूमि, आकाश, पाताल, ऊपर, नीचे सबमें व्याप्त महिषासुर का नाश करनेवाली तुम्हारी जय हो ॥ ४ ॥ २१४ ॥ हे विद्युत् की-सी हँसी हँसनेवाली सुछविमान, तुम सृष्टि की रचयिता शक्ति हो और तुम्हारी गति गहन है। तुम असुरों के रक्त का आचमन करनेवाली, युद्ध को धुआँधार बनानेवाली, सदैव सजग धर्म की वृत्ति हो। रक्त-प्रवाहों से लापरवाह अग्निस्वरूपा तुम योग-माया को जय करनेवाली खड्ग को धारण करनेवाली हो। हे पापों का नाश करनेवाली तथा महिषासुर का नाश करनेवाली, तुम्हारी जय हो ॥५॥२१५॥ तुम पापों का नाश करनेवाली, दुष्टों को जला देनेवाली, सृष्टि का उद्धार करनेवाली शुद्ध मति हो। सैहथी, सन्नाह आदि शस्त्रों को आठों भुजाओं से चलानेवाली और वचन को निभानेवाली तुम अतुल तेजवाली हो। हे भूमि, आकाश, पाताल एवं जल में निवास करनेवाली तथा महिषासुर का मर्दन करनेवाली तुम्हारी जय हो ॥ ६ ॥ २१६ ॥ युद्धस्थल में तुम शस्त्रों को चमकानेवाली असुरों को हरानेवाली धुएँ की तरह आगे बढ़ती चली जानेवाली देदीप्यमान मस्तक वाली हो तुम

धुकारन ध्रप्प मथे। दाड़वी प्रदंते जोग जयंते मनुज मथंते गूड़ कथे। करम प्रणासन चंद प्रकाशन सूरज प्रतेजन अशट भुजे। जै जै होसी महखासुर मरदन भरम बिनासन धरम धुजे॥ ७॥ ॥ २१७॥ घुंघरू घमंकण शसत्र झमंकण फणीअर फुंकारण धरम धुजे। अशटाट प्रहासन त्रिशट निवासन दुशट प्रणासन चक्क गते। केसरी प्रवाहे सुद्ध सनाहे अगम अथाहे एक ब्रिते। जै जै होसी महखासुर मरदन आदि कुमार अगाध ब्रिते॥ ८॥ ॥ २१८॥ सुर नर मुन बंदन दुशट निकंदन (मू०ग्रं०३१) भ्रित बिनासन भ्रित मथे। कावरू कुमारे अधम उधारे नरक निवारे आद कथे। किंकणी प्रसोहण सुर नर मोहण सिंघारोहण बितल तले। जै जै होसी सभ ठउर निवासन बाइ पताल अकाश अनले॥ ९॥ २१९॥ संकटी निवारन अधम उधारन तेज प्रकरखण तुंद तबे। दुख दोख दहंती ज्वाल जयंती आदि

भयकर दाँतों वाली हो। योगमाया को जप करनेवाली हो और मनुष्यों का संहार करनेवाली हो। तुम्हारी कथा गहन है। हे अष्ट भुजाओं वाली, तुम चन्द्र एवं सूर्य को प्रकाशित करनेवाली हो और सर्वकर्मों का नाश करनेवाली हो। हे भ्रमों का नाश करनेवाली, धर्म की ध्वजा एवं महिषासुर का मर्दन करनेवाली, तुम्हारी जय हो॥ ७॥ २१७॥ युद्ध-स्थल में घुँघरूं की झंकार, शस्त्रों की चमक और सर्पों की फुंकार के समान ध्वनि करनेवाली, तुम धर्म की प्रतीक हो। अट्टहास करनेवाली, दुष्टों का नाश करनेवाली, चारों दिशाओं में गतिशील, संपूर्ण सृष्टि में निवास करनेवाली हो। तुम शेर पर सवार होकर आगे बढ़नेवाली अगम, अथाह एवं शुद्ध शक्ति हो। हे महिषासुर को मर्दन करनेवाली, अगाध वृत्ति एवं आदिस्वरूप में अवस्थित तुम्हारी जय हो॥ ८॥ २१८॥ सुर, नर, मुनि तुम्हारा वंदन करते हैं, तुम दुष्टों का नाश करनेवाली हो एव मृतकों में स्वच्छन्द घूमकर भय का नाश करनेवाली हो। तुमने कई अधमों का उद्धार किया है। नरकों का निवारण किया है एवं तुम्हारी कथा अनन्त है। किंकणी धारण किए हुए सुर एवं नर को मोहने वाली, सिंह पर आरोहण करनेवाली, तल-वितल में निवास करनेवाली हो। हे वायु, पाताल, आकाश, अग्नि एवं सर्व स्थानों में निवास करनेवाली तुम्हारी जय हो॥ ९॥ २१९॥ संकट का निवारण करनेवाली, नीचे का उद्धार करनेवाली, अनन्त तेजवान एवं क्रोधवान हो। दुःख एवं दोषों का दहन करनेवाली ज्वाला के समान जलनेवाली तुम आदि अनादि, अगाध एवं अक्षय हो शुद्धता को समर्पित तर्क वितर्कों की जननी, जाप

अनादि अगाधि अछे। सुद्धता समरपण तरक बितरकण तपत प्रतापण जपत जिवे। जै जै होसी शसत्र प्रकरखण आदि अनील अगाधि अभे ॥ १० ॥ २२० ॥ चंचला चखंगी अलक भुजंगी तुंद तुरंगण तिच्छ सरे। कर कसा कुठारे नरक निवारे अधम उधारे तूर भुजे। दामनी दमंके केहर लंके आदि अतंके क्रूर कथे। जै जै होसी रकतासुर खंडण सुंभ चक्रतत नसुंभ मथे ॥ ११ ॥ २२१ ॥ बारज बिलोचन त्रिसन बिमोचन सोच बिसोचन कउच कसे। दामनी प्रहासे सुक सर नासे सुब्रित सुबासे दुशट ग्रसे। चंचला प्रअंगी बेद प्रसंगी तेज तुरंगी खंड सुरं। जै जै होसी महखासुर मरदन आदि अनादि अगाधि उरधं ॥ १२ ॥ २२२ ॥ घंटका बिराजै रुणझुण बाजै भ्रम भै भाजै सुनत सुरं। कोकल सुन लाजै किलबिख भाजै सुख उपराजै मद्ध उरं। दुरजन दल दज्झै मन तन रिज्झै सभै न भज्जै रोह रणं। जै जै होसी महखासुर मरदन चंड चक्रतन

करनेवाले को महान तेजवान बनानेवाली हो। हे शस्त्रों को प्रेम करनेवाली, आदि, अनादि, अगाध, अभय शक्ति, तुम्हारी जय हो ॥१०॥२२०॥ तुम चचल अंगों वाली, सर्प के समान जटाओंवाली, तीक्ष्ण बाणों वाली, अश्व के समान तेज हो। हाथ में कुठार आदि शस्त्र लेकर नरक का निवारण करनेवाली एवं अधमों का उद्धार करनेवाले भुजबल वाली हो। तुम बिजली के समान सिंह की पीठ पर सवार दमकती हो और तुम्हारी भयंकर कथाओं से आतंक छा जाता है। हे शुम्भ-निशुम्भ, रक्तासुर आदि का वध करनेवाली, तुम्हारी जय हो ॥ ११ ॥ २२१ ॥ हे कमल नेत्रोंवाली, दु:ख, शोक एवं चिन्ताओं को दूर करनेवाली तुम कवच को धारण करनेवाली हो। तुम्हारा हास्य बिजली के समान है और तुम सबका नाश करनेवाली, सुवृत्तियों को पुष्ट करनेवाली तथा दुष्टों को ग्रस लेनेवाली हो। तुम चचला प्रिय अंगोंवाली वह महान शक्ति हो जो महान ज्ञानवान होकर तेज अश्व पर चलनेवाली सुरम्य हो। हे आदि-अनादि, अगाध, सर्वदा ऊर्ध्वोन्मुखी तथा महिषासुर का वध करनेवाली, तुम्हारी जय हो ॥ १२ ॥ २२२ ॥ घंटे, घड़ियालों की ध्वनि और तुम्हारा स्वर सुनकर भ्रम एवं भय भाग जाते हैं। तुम्हारा स्वर सुनकर कोकिला भी लजाती है और तुम्हारा स्वर सुनकर जहाँ एक ओर विकारों का नाश होता है, वहीं दूसरी ओर हृदय में अनन्त सुख उत्पन्न होता है। दुर्जनो के दलों को नष्ट करनेवाली तुम महान शक्ति हो। शत्रुदल तुम्हारे भय के कारण युद्धस्थल से भागने में भी समर्थ नहीं हो पाता हे चड को

आदि गुरं ॥ १३ ॥ २२३ ॥ चाचरी प्रजोधन दुशट बिरोधन रोस अरोधन क्रूत ब्रिते । धूम्राछ बिधुंसन प्रलै प्रजुंसन जग्य बिधुंसन सुद्ध मते । जालपा जयंती सत्र मथंती दुशट प्रदाहन गाड़ मते । जै जै होसी महखासुर मरदन आदि जुगादि अगाधि गते ॥ १४ ॥ २२४ ॥ खत्रोआण खतंगी अभ अभंगी आदि अनंगी अगाधि गते । बिड़लाछ बिहंडण चच्छर दंडण तेज प्रचंडण आदि ब्रिते । सुर नर प्रतिपारन पतित उधारन दुशट निवारन दोख हरे । जै जै होसी महखासुर मरदन बिस्व बिधुंसन स्रिशट करे ॥ १५ ॥ २२५ ॥ दामनी प्रकासे उन तन नासे जोति प्रकासे अतुल बले । दानवी प्रकरखण सरवर बरखण दुशट प्रधरखण बितल तले । अशटाइध बाहण बोल (मू०ग्रं०३२) निबाहण संत पनाहण गूढ़ गते । जै जै होसी महखासुर मरदन आदि अनादि अगाधि ब्रिते ॥ १६ ॥ २२६ ॥ दुख दोख

भयभीत करनेवाली एवं महिषासुर का वध करनेवाली आदिशक्ति, तुम्हारी जय हो ॥ १३ ॥ २२३ ॥ हे क्रूर बृत्ति वाली रोष से परिपूर्ण तुम चाचरी आदि शस्त्रों का प्रयोग करनेवाली और दुष्टों का विरोध करनेवाली हो। तुम धूम्राक्ष का विध्वस करनेवाली, प्रलय करनेवाली और संपूर्ण जगत का विध्वंस करनेवाली शुद्ध मति-स्वरूप हो। तुम जालपा को जय करनेवाली, एवं शत्रुओं का मंथन करनेवाली तथा दुष्टों का दहन करनेवाली हो। हे आदि, युगादि में अगाध रूप से गतिशील, महिषासुर का वध करनेवाली तुम्हारी जय हो ॥१४॥२२४॥ हे क्षत्रियों का नाश करनेवाली, अभय, अभंजनशील आदि एवं अशरीरी अगाध गति, तुम बृड़लाक्ष एवं चक्षरासुर आदि दैत्यों का वध करनेवाली एवं दण्ड देनेवाली आदिशक्ति हो। तुम देवताओं एवं मनुष्यों की रक्षा करनेवाली, पतितों का उद्धार करनेवाली, दुष्टों का नाश करनेवाली तथा दुःखों को दूर करनेवाली हो। हे विश्व को विध्वंस कर पुनः उसकी सृष्टि करनेवाली तथा महिषासुर का वध करनेवाली, तुम्हारी जय हो ॥ १५ ॥ २२५ ॥ बिजली के समान तुम्हारे प्रकाश से असुरों के तन नष्ट हो जाते हैं। तुम अपरिमित बल एवं ज्योति वाली हो। तुम दानवों का विनाश करनेवाली, दृढ़ शक्ति हो। परन्तु साथ-ही-साथ सरोवर के कमल के समान भी हो। तुम आठ प्रकार के शस्त्रों को चलानेवाली अपने वचन को निभानेवाली, गूढ़ गति वाली, सन्तों की आश्रयस्थली हो। हे आदि-अनादि शक्ति एवं महिषासुर को ध्वस्त करनेवाली तुम्हारी जय हो ॥ १६ ॥ २२६ ॥ दुख और दोषों को खा जानेवाली सेवकों की रक्षा करनेवाली एवं सन्तों को दर्शन

प्रसच्छण सेवक रच्छण संत प्रतच्छण सुद्ध सरे। सारंग सनाहे दुशट प्रदाहे अर दल गाहे दोख हरे। गंजन गुमाने अतुल प्रवाने संतज माने आदि अंते। जै जै होसी महखासुर मरदन साध प्रदच्छन दुशट हंते ॥ १७ ॥ २२७ ॥ कारण करीली गरब गहीली जोत जतीली तुंद मते। अशटाइध चमकण शसतर झमकण दामन दमकण आदि ब्रिते। डुकडुकी दमंकै बाघ बबंकै भुजा फरंकै सुद्ध गते। जै जै होसी महखासुर मरदन आदि जुगादि अनादि मते ॥ १८ ॥ २२८ ॥ चछरासुर मारण नरक निवारण पतित उधारण एक भटे। पापान बिहंडण दुशट प्रचंडण खंड अखंडण काल कटे। चंद्रानन चारै नरक निवारै पतित उधारै मुंड मथे। जै जै होसी महखासुर मरदन धूम्र बिधुंसन आदि कथे ॥ १९ ॥ २२९ ॥ रकतासुर मरदन चंड चकरदन दानव अरदन बिड़ाल बधे। सर धार बिबरखण दुरजन धरखण

देनेवाली तुम शुद्ध जलस्वरूप हो। तुम तलवार, कवच आदि को धारण कर दुष्टों का दहन करनेवाली एवं शत्रुदल में भ्रमण करनेवाली तथा दुःखो को दूर करनेवाली हो। तुम आदि-अंत में स्थित सन्तों द्वारा मान्य अतुलनीय प्रमाणवाली तथा गर्व को चूर करनेवाली हो। हे साधुओं की प्रदक्षिणा स्वीकार करनेवाली, दुष्टों का हनन करनेवाली तथा महिषासुर का विनाश करनेवाली, तुम्हारी जय हो ॥ १७ ॥ २२७ ॥ तुम सब कारणों का कारण हो, गर्व का नाश करनेवाली, ज्योतिस्वरूप, तुरन्त निर्णय लेनेवाली मति हो। हे आदिशक्ति, तुम्हारे अष्ट आयुध चमकते हैं और तुम्हारे शस्त्र बिजली के समान दमकते हैं। तुम्हारी डुगडुगी बज रही है, तुम्हारा बाघ गरज रहा है और हे शुद्ध गति वाली, तुम्हारी भुजाएँ फड़क रही हैं। हे युगों-युगान्तरों की मतिस्वरूपा एव महिषासुर का मर्दन करनेवाली, तुम्हारी जय हो ॥१८॥२२८॥ हे चछरासुर को मारने वाली, नरक का निवारण करनेवाली, एवं पतितों को उद्धार करनेवाली सुभट शक्ति, तुम पापों का नाश करनेवाली और दुष्टों का नाश करनेवाली और काल को भी काटनेवाली हो। चन्द्र-मुख से भी सुन्दर, पतितों का उद्धार करनेवाली, नरक का निवारण करनेवाली, मुण्डमाल धारण करने वाली, धूम्र, महिषासुर आदि राक्षसों को मारनेवाली, तुम्हारी जय हो ॥ १९ ॥ २२९ ॥ तुम रक्तासुर को मर्दन करनेवाली तथा चंड, चक्रदन, बृड़ाल आदि राक्षसों का वध करनेवाली हो। बाणों की वर्षा करनेवाली दुर्जनों के हृदय को धड़कानेवाली अपरिमित क्रोध करनेवाली एव धर्मध्वजा की रक्षा हो। धूम्राक्ष का नाश करनवाली

अतुल अमरखण धरम धुजे । धूम्राछ बिधुंसन स्रोणत चुंसन सुंभ नपाति निसुंभ मथे । जै जै होसी महखासुर मरदन आदि अनील अगाध कथे ॥२०॥२३०॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ तुम कहो देव सरबं बिचार । जिम कीओ आपि करते पसार । जद्यपि अभूत अनभै अनंत । तउ कहो जथामत त्रैण तंत ॥ १ ॥ २३१ ॥ करता करीम कादर क्रिपाल । अद्वै अभूत अनभै दिआल । दाता दुरंत दुख दोख रहत । जिह नेति नेति सभ बेद कहत ॥ २ ॥ २३२ ॥ कई ऊच नीच कीनो बनाउ । सभ वार पार जाको प्रभाउ । सभ जीव जंत जानंति जाहि । मन मूड़ किउ न सेवंति ताहि ॥ ३ ॥ २३३ । कई मूड़ पत्र पूजा करंत । कई सिद्ध साध सूरज सिवंत । कई पलट सूरज सिजदा कराइ । प्रभ एक रूप द्वै कै लखाइ ॥ ४ ॥ ॥ २३४ ॥ अनछिज्ज तेज अनभै प्रकास । दाता दुरंत अद्वै अनास । सभ रोग सोग ते रहत रूप । अनभै अकाल अछै सरूप ॥५॥२३५॥ करुणानिधान कामल क्रिपाल । दुख दोख हरत दाता (मू०ग्रं०३३) दिआल । अंजन बिहीन अनभंज नाथ ।

और शुम्भ-निशुम्भ का रक्त पीनेवाली, हे आदि-अगाध कथा वाली तथा महिषासुर का वध करनेवाली आदिशक्ति ! तुम्हारी जय हो ॥२०॥२३०॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ हे देव, तुम यह सब विचार कहो कि उस कर्ता ने यह सृष्टि-प्रसार कैसे किया । यद्यपि वह अभूत, अभय एव अनंत है, तब उसने कैसे इस संसार-तंत्र का विस्तार किया ॥ १ ॥ २३१ ॥ वह कर्ता, कृपालु एवं कर्म करनेवाला अद्वैत, अभूत, अभय एवं दयालु है। वह प्रच्छन्न दाता एवं दुःख-दोष से रहित है और सभी वेद उसी के लिए नेति-नेति कहते हैं ॥ २ ॥ २३२ ॥ उसी ने कई ऊँचे और निचले स्तर के जीवों का निर्माण किया और इस-उस तरफ़ उसी का प्रभाव है । सब जीव-जन्तु उसी को जानते हैं, परन्तु हे मेरे मूढ़ मन, तुम उसकी सेवा क्यों नहीं करते हो ! ॥ ३ ॥ २३३ ॥ कई मूर्ख पत्र-पूजा करते हैं, कई सिद्धियों की साधना में सूर्य-पूजा करते हैं, कई पश्चिम की तरफ़ सज्दा करते हैं, परन्तु वह प्रभु तो एक रूप ही है। उसको द्वैत-रूप में कैसे देखा जा सकता है ! ॥ ४ ॥ २३४ ॥ वह अक्षय तेज एवं अनन्त प्रकाश से युक्त दाता, अद्वैत एवं अनश्वर है । वह सब रोग, शोक, आकार, भय, काल आदि से रहित है ५ २३५ वह अत्यंत चतुर कृपालु, दुःख-दोषों को हरनेवाला दयालु है वह कालिमा विहीन

जल थल प्रभाउ सरबत्र साथ ॥ ६ ॥ २३६ ॥ जिह जात पात नही भेद भरम । जिह रंग रूप नही एक धरम । जिह सत्र मित्र दोऊ एक सार । अच्छै सरूप अबिचल अपार ॥ ७ ॥ ॥ २३७ ॥ जानी न जाइ जिह रूप रेख । कहि बास तास कहि कउन भेख । कहि नाम तास है कवन जात । जिह सत्र मित्र नही पुत्र भ्रात ॥ ८ ॥ २३८ ॥ करुणानिधान कारण सरूप । जिह चक्र चिहन नही रंग रूप । जिह खेद भेद नही करम काल । सभ जीअ जंत की करत पाल ॥ ९ ॥ २३९ ॥ उरधं बिरहत सिद्धं सरूप । बुद्धं अपाल जुद्धं अनूप । जिह रूप रेख नही रंग राग । अनछिज्ज तेज अनभिज अदाग ॥ १० ॥ २४० ॥ जल थल महीप बन तन दुरंत । जिह नेति नेति निसदिन उचरंत । पाइओ न जाइ जिह पैर पार । दीनान दोख दहिता उदार ॥ ११ ॥ २४१ ॥ कई कोट इंद्र जिह पानहार । कई कोट रुद्र जुगीआ दुआर । कई बेद ब्यास ब्रहमा अनंत । जिह नेति नेति निसदिन उचरंत ॥१२॥२४२॥

अभंजनशील, जल-स्थल को प्रभावित करनेवाला सर्वत्र रमण करनेवाला नाथ है ॥ ६ ॥ २३६ ॥ जिसे जाति-पाँति का भेद-भ्रम नहीं है, जिसका रंग-रूप और कोई एक धर्म-विशेष नहीं है, जिसे शत्रु और मित्र दोनों एक समान हैं, वह प्रभु अविचल, अपार एवं अक्षयस्वरूप है ॥ ७ ॥ २३७ ॥ जिसकी रूप-रेखा को नहीं जाना जा सकता, जिसके आवास और वेश को नहीं जाना जा सकता, जिसके नाम और जाति के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता, जिसका शत्रु, मित्र, पुत्र, भ्राता आदि कोई नहीं है ॥८॥२३८॥ वह करुणानिधान सब कारणों का कारणस्वरूप है। जिसका चक्र-चिह्न, रंग-रूप कोई नहीं है, जो खेद, भेद, काल, कर्म से परे है, वही सब जीवों का पोषणकर्ता है ॥ ९ ॥ २३९ ॥ वह बृहदाकार है एवं सिद्धि-स्वरूप है। वह अपरिमित ज्ञानी है एवं युद्ध में भी अनुपम है। जिसका रूप, आकार, रंग-राग कुछ भी नहीं है, वह अक्षय तेजवाला, अभिज्ञ एवं बेदाग है ॥ १० ॥ २४० ॥ वह जल-स्थल का महीप एवं वनों में प्रच्छन्न रूप से अवस्थित है और जिसे दिन-रात नेति-नेति (अर्थात् ऐसा भी नहीं, ऐसा भी नहीं) कहकर पुकारा जाता है तथा जिसका अंत नहीं पाया जा सकता, वह प्रभु दीनों के दुःखों का दहन करनेवाला उदार प्रभु है ॥ ११ ॥ २४१ । कई करोड़ इन्द्र जिसका पानी भरते हैं, करोड़ों रुद्र योगी-भेष में जिसके द्वार पर खड़े रहते हैं कई वेदव्यास और ब्रह्माओं का जिसने सृजन किया है। वे सब उसे रात दिन नेति नेति कहकर पुकारते हैं। १२ २४२

त्व प्रसादि ।। स्वये ।।

दीनन की प्रतिपाल करै नित संत उबार गनीमन गारै । पच्छ पसू नग नाग नराधिप सरब समै सम को प्रतिपारै । पोखत है जल मै थल मै पल मै कल के नही करम बिचारै । दीनदयाल दयानिधि दोखन देखत है पर देत न हारै ।। १ ।। २४३ ।। दाहत है दुख दोखन कौ दल दुज्जन के पल मै दल डारै । खंड अखंड प्रचंड प्रहारन पूरन प्रेम की प्रीत संभारै । पार न पाइ सकै पदमापति बेद कतेब अभेद उचारै । रोज़ ही राज बिलोकत राज़क रोख रूहान की रोज़ी न टारै ।। २ ।। २४४ ।। कीट पतंग कुरंग भुजंगम भूत भविक्ख भवान बनाए । देव अदेव खपे अहंमेव न भेव लख्यो भ्रम सिउ भरमाए । बेद पुरान कतेब कुरान हसेब थके कर हाथ न आए । पूरन प्रेम प्रभाउ बिना पति सिउ किन स्री पदमापति पाए ।। ३ ।। २४५ ।। आदि अनंत अगाध अद्वैख सु भूत भविक्ख (मू०ग्रं०२४) **भवान अभै है ।**

।। तेरी कृपा से ।। ।। सवैये ।। वह प्रभु दीनों का पोषण करनेवाला, नित्य संतों का उद्धार करनेवाला तथा अत्याचारियों का नाश करनेवाला है । पक्षी, पशु, पर्वत, नाग, मनुष्य सभी का वह रक्षक है । पल भर में वह जल-स्थल के सभी जीवों की सहायता बिना उनके कुकर्मों के विचार के कृपापूर्वक करता है । वह दीनदयालु दया का समुद्र है, जो हमारे दोषों को तो देखता है, परन्तु फिर भी हमें दान देता ही जाता है ।। १ ।। २४३ ।। वह दुखियों के दुःख का नाश करनेवाला तथा दुर्जनों के दलों के पल में नष्ट करनेवाला है । वह दुखियों के दुःख से पीड़ित हो प्रेमियों के संरक्षण के लिए अपने प्रचंड प्रहारों से दुष्टों को खंड-खड करनेवाला है । उस प्रभु का अन्त वेद-कतेबादि भी नहीं जान पाए । सब दीन होकर अपनी रोज़ी के लिए रोज़ उस प्रभु की ओर निहारते हैं, परन्तु वह हर आत्मा को उसके जीवन-निर्वाह के लिए कृपापूर्वक देता है ।। २ ।। २४४ ।। कीट, पतंगे, हिरण, सर्प, भूत, भविष्य, वर्तमान सब उसी के बनाए हैं । देव-दानव सब अपने अहम् में समाप्त हो गए, परन्तु सब भ्रम में ही भ्रमित रहे, कोई उसका अन्त नहीं जान सका ! वेद, पुराण, कतेबादि सभी हारकर थक गए पर उस प्रभु का अन्त नहीं पा सके ! पूर्णप्रेम और भावना के बिना कौन परमात्मा के रहस्य को समझ सका है ! ।।३।।२४५।। वह प्रभु अनादि, अनंत अगाध, द्वेषरहित, अभय तथा भूत भविष्य एवं वर्तमान में अवस्थित है । वह स्वयं अन्तहीन है, ८ ,

अंति बिहीन अनातम आप अदाग अदोख अछिद्र अछै है। लोगन के करता हरता जल मै थल मैं भरता प्रभ वै है। दीन दयाल दया कर स्रीपति सुंदर स्री पदमापति ए है॥ ४॥ ॥ २४६॥ काम न क्रोध न लोभ न मोह न रोग न सोग न भोग न भै है। देह बिहीन सनेह सभो तन नेह बिरक्त अगेह अछै है। जान को देत अजान को देत जमीन को देत जमान को दे है। काहे को डोलत है तुमरी सुध सुंदर स्री पदमापति लै है॥ ५॥ २४७॥ रोगन ते अर सोगन ते जल जोगन ते बहु भाँति बचावै। सत्रु अनेक चलावत घाव तऊ तन एक न लागन पावै। राखत है अपनो कर दै करि पाप संबूह न भेटन पावै। और की बात कहा कह तो सौ सु पेट ही के पट बीच बचावै॥ ६॥ २४८॥ जच्छ भुजंग सु दानव देव अभेव तुमै सभ ही कर ध्यावैं। भूम अकाश पताल रसातल जच्छ भुजंग सभै सिर न्यावैं। पाइ सकै नही पार प्रभाहू को नेत ही नेतह बेद बतावैं। खोज थके सभ ही खुजीआसुर हार परे हरि हाथ

बेदाग, द्वेषरहित एवं छिद्र-रहित अक्षय है। संसार का कर्ता-हर्ता, जल-स्थल में पोषण करनेवाला वह प्रभु है। वह दीनों का रक्षक प्रभु श्रीपति एव पद्मापति के नाम से जाना जाता है॥ ४॥ २४६॥ उस प्रभु को न काम है न क्रोध है, न लोभ है, न मोह है, न रोग, शोक अथवा भय है। वह निराकार सबसे प्रेम करनेवाला तथा किसी से भी न प्रेम करनेवाला अगेह तथा अक्षय है। वह जड़, चेतन, धरती और नभ में निवास करने वाले सबको देता है। हे प्राणी, तुम क्यों घबराते हो, तुम्हारा ध्यान वह परमात्मा अवश्य रखेगा॥ ५॥ २४७॥ वह रोगों-शोकों एव जल-व्याधियों से रक्षा करता है। उसकी कृपा हो तो चाहे शत्रु अनेकों वार करे परन्तु तन पर एक भी नहीं लगता। वह अपना वरदहस्त देकर सबकी रक्षा करता है और उसकी कृपा से पाप पास भी नहीं आता। और क्या कहा जाय, उसकी महिमा तो इतनी अनंत है कि वह बच्चे की रक्षा माता के गर्भ में भी करता है॥ ६॥ २४८॥ हे ईश्वर! यक्ष, सर्प, दानव, देव निर्विकार रूप से तुम्हारा ही ध्यान करते हैं। भूमि, आकाश, पाताल, रसातल सभी जगह यक्ष एवं सर्प तुम्हारे सामने ही सिर नवाते हैं। प्रभु की प्रभुता का भेद तो कोई नहीं जान सका और वेद भी उसे नेति-नेति ही बताते हैं। सब अन्वेषक उसको खोजकर थक गए, परन्तु वह परमात्मा अभी तक किसी के हाथ नही लग सका ७ २४९

न आवै ।। ७ ।। २४६ ।। नारद से चतुरानन से रुमना रिख से सभहूं मिलि गायो । बेद कतेब न भेद लख्यो सभ हार परे हरि हाथ न आयो । पाइ सकै नही पार उमापति सिद्ध सनाथ सनंतन ध्यायो । ध्यान धरो तिह को मन मै जिह को अमितोजु सभै जग छायो ।। ८ ।। २५० ।। बेद पुरान कतेब कुरान अभेद न्रिपाल सभै पच हारे । भेद न पाइ सक्यो अनभेद को खेदत है अनछेद पुकारे । राग न रूप न रेख न रंग न साक न सोग न संगि तिहारे । आदि अनादि अगाध अभेख अद्वैख जप्यो तिनही कुल तारे ।। ९ ।। २५१ ।। तीरथ कोट कीए इशनान दीए बहु दान महा ब्रत धारे । देस फिर्यो करि भेस तपोधन केस धरे न मिले हरि प्यारे । आसन कोट करे असटांग धरे बहु न्यास करे मुख कारे । दीनदयाल अकाल भजे बिन अंत को अंत के धाम सिधारे ।।१०।।२५२।। ।। त्व प्रसादि ।। ।। कबित ।। अत्र के चलय्या छित छत्र के धरय्या छत्रधारिन छलय्या (मू०ग्रं०३५) महा सत्रन के साल हैं। दान के

नारद, ब्रह्मा, रूमना ऋषि आदि सबने मिलकर गायन किया। वेद-कतेबों ने भी उसके रहस्य को नहीं जाना। वे सब हार गए परन्तु परमात्मा उनके हाथ नहीं आ सका। सिद्ध, नाथ, सनत्कुमार तथा शिव भी उसका अन्त नहीं जान सके। हे जीव, मन में उस प्रभु का स्मरण कर, जिसका तेज सारे संसार में छाया हुआ है ।। ८ ।। २५० ।। वेद, पुराण, कतेब, कुआनादि ग्रंथ उस अद्वैत ब्रह्म के निरूपण में थक चुके हैं। ये सब उस अभेद प्रभु का भेद न पा सकने के कारण खेदयुक्त हैं और उसको अक्षय शक्ति के नाम से पुकारते हैं। हे प्रभु ! तुम राग, रूप, आकार, सम्बन्ध, शोक आदि से रहित हो। जिसने उस अनादि, अगाध, अवेश, द्वेष-रहित परमात्मा का स्मरण किया है, वह ही पूर्ण रूप से इस भवसागर से तैर सका है ।। ९ ।। २५१ ।। जिन लोगों ने तीर्थों पर करोड़ों स्नान किए, दान दिए, महाव्रतों को धारण किया, देश-विदेश में भेस बनाकर घूमे, तपस्या की, केश बढ़ाए, परन्तु उनको परमात्मा नहीं मिल सका। करोड़ों आसन जिन्होंने लगाए, अष्टांग योगसाधना की और विचित्र वेश धारण किए; उन सबको दीनदयालु, कालातीत प्रभु के भजन के बिना मृत्यु के घर में ही प्रवेश करना पड़ा ।। १० ।। २५२ ।। ।। तेरी कृपा से ।। ।। कवित्त ।। हे प्रभु ! तुम अस्त्रों के चलानेवाले, धरती के छत्र को धारण करनेवाले, अनेको सम्राटो को छलनेवाले भयकर शत्रुओं का दमन करनेवाले हो।

दिवय्या महा मान के बढय्या अवसान के दिवय्या हैं कटय्या जमजाल हैं। जुद्ध के जितय्या औ बिरुद्ध के मिटय्या महा बुद्ध के दिवय्या महा मान हूं के मान हैं। ज्ञान हूं के ज्ञाता महा बुद्धता के दाता देव काल हूं के काल महा काल हूं के काल हैं ॥ १ ॥ २५३ ॥ पूरबी न पार पावैं हिंगुला हिमालै ध्यावैं गोर गरदेजी गुन गावै तेरे नाम हैं। जोगी जोग साधैं पउन साधना कितेक बाधैं आरब के आरबी अराधैं तेरे नाम हैं। फरा के फिरंगी मानैं कंधारी कुरेसी जानैं पछम के पछमी पछानैं निज काम हैं। मरहटा मघेले तेरी मन सों तपसिआ करैं दिड़वैं तिलंगी पहचानैं धरम धाम हैं ॥ २ ॥ २५४ ॥ बंग के बंगाली फिरहंग के फिरंगावाली दिल्ली के दिलवाली तेरी आज्ञा मै चलत हैं। रोह के रुहेले माघ देस के मघेले बीर बंगसी बुंदेले पाप पुंज को मलत हैं। गोखा गुन गावैं चीन मचीन के सीस न्यावैं तिब्बती धिआइ दोख देह के दलत हैं। जिनै तोहि ध्यायो तिनै पूरन प्रताप पायो सरब धन धाम फल फूल सों फलत हैं ॥ ३ ॥ २५५ ॥ देव देवतान को सुरेस दानवान को

आप दान देनेवाले, मान-सम्मान को बढ़ानेवाले बुद्धिप्रदाता तथा यम के चक्र को कष्ट देनेवाले हैं। आप युद्ध को जितानेवाले, विरोधियों को मिटानेवाले, बुद्धिप्रदाता स्वयं साक्षात् मान-सम्मान हो। आप ज्ञान के ज्ञाता, महान् बौद्धिकता के स्वामी प्रदाता देव, काल एवं महाकाल के भी काल हो ॥ १ ॥ २५३ ॥ पूर्व दिशा के निवासी तेरा पार नहीं पा सके तथा हिंगलाज, हिमालय आदि एवं गोर, गरदेजी (अरब का एक शहर) आदि भी तेरे नाम का स्मरण करते हैं। कितने ही योगी योगसाधना, पवनसाधना करते हैं और कितने ही अरबदेशीय अरब लोग तेरे नाम की आराधना कर रहे हैं। फ्रांस के फ़िरंगी, कंधार के क़ुरेशी तथा पश्चिम के लोग भी मात्र तुझे ही पहचानते हैं। मराठा, मगध-प्रदेशीय लोग मन में तेरी ही तपस्या करते हैं तथा तैलंगी लोग भी तुझे ही धर्म का धाम करके जानते हैं ॥२॥२५४॥ बंग देश के बंगाली, दिल्ली के निवासी, पश्चिमी देशों के फ़िरंगी तेरी आज्ञा में चलते हैं। रुहेलखण्ड के रुहेले, मगध देश के मागधी लोग, बुंदेलखण्ड के वीर लोग तेरा नाम लेकर पापपुंजों का नाश करते हैं। गोरखे, चीनी, तिब्बती सब तेरा स्मरण कर अपनी देही के दु:खों को दूर करते हैं। जिसने भी तेरा स्मरण किया उसने पूर्णतेज को प्राप्त किया है और उसका धन-धान्य फला-फूला है ३ २५५ तुम्हें

महेस गंगधान कौ अभेस कहीअतु हैं। रंग मै रंगीन राग रूप मै प्रबीन और काहू पै न दीन साध अधीन कहीअतु हैं। पाईऐ न पार तेज पुंज मै अपार सरब बिद्या के उदार हैं अपार कहीअतु हैं। हाथी की चिघार पल पाछै पहुचत ताहि चीटी की पुकार पहिले ही सुनीअतु हैं ॥ ४ ॥ २५६ ॥ केते इंद्र द्वार केते ब्रहमा मुखचार केते क्रिशनावतार केते राम कहीअतु हैं। केते सस रासी केते सूरज प्रकासी केते मुंडीआ उदासी जोग द्वार दहीअतु हैं। केते महा दीन केते ब्यास से प्रबीन केते कुमेर कुलीन केते जच्छ कहीअतु हैं। करत हैं बिचार पै न पूरन को पावै पार ताही ते अपार निराधार लहीअतु हैं ॥ ५ ॥ ॥ २५७ ॥ पूरन अवतार निराधार हैं न पारावार पाईऐ न पार पै अपार कै बखानीऐ। अद्वै अबिनासी परम पूरन प्रकासी महा रूप हूँ के रासी हैं अनासी कै कै मानीऐ (मू०ग्रं०३६)। जंत्र हूँ न जात जाकी बाप हूँ न माइ ताकी पूरन प्रभा की सु छटा कै अनमानीऐ। तेज हूँ को तंत्र हैं कि राजसी को जंत्र हैं कि

ही देवताओं का देव इंद्र, दानियों में गंगाधर शिव एवं वेशातीत कहा जाता है। तुम ही रंग में रंगीनी हो, राग-रूप में प्रवीणता के नाम से जाने जाते हो। तुम किसी के सामने दीन नहीं बनते तथा साधु-संतों के अधीन रहते हो। तुम्हारा पार नहीं पाया जा सकता, तुम अपार तेज-पुंज हो, विद्या के उदार स्वामी हो और तुम्हें ही अपरंपार कहा जाता है। हे प्रभु ! तुम हाथी की चिघाड़ तो बाद में सुनते हो परन्तु चींटी की पुकार तुम तक पहले ही पहुँच जाती है ॥ ४ ॥ २५६ ॥ तेरे द्वार पर कितने ही इंद्र, ब्रह्मा, कृष्ण, एवं राम खड़े रहते हैं। तुम्हारे इच्छुक अनन्त चन्द्रमा, सूर्य, मुँड़िया, उदासीन, साधु और योगी द्वार पर धूनी रमाए बैठे हैं। कितने पैग़म्बर, प्रवीण व्यास और यक्ष आदि हैं जो तेरा विचार निरंतर करते हैं, परन्तु तेरा पूर्ण अन्त नहीं जान सके और ये सब भी तुझे निराधार (बिना किसी आश्रय के अवस्थित) मानते हैं ॥ ५ ॥ २५७ ॥ तुम पूर्ण अवतार, बिना किसी के आश्रय के हो, तुम्हारा पारावार नहीं जाना जा सकता, तुम्हारा वर्णन कैसे किया जाय। तुम अद्वैत, अविनाशी एवं परम पूर्णप्रकाश, महान् रूपराशि एवं अविनाशी हो। उसका कोई यंत्र-मंत्र, जाति, माँ-बाप नहीं है। वह पूर्णप्रभा की छटा के रूप में अनुमानित किया जाता है। वह तेज का तंत्र है या राजकाज का यंत्र है अथवा मोहनी स्त्रियों का मंत्र या इन सबकी प्रेरणा है कहा नहीं जा

मोहनी को मंत्र हैं निजंत्र कँ कै जानीऐ ॥ ६ ॥ २५८ ॥ तेज हूँ को तरु हैं कि राजसी को सरु हैं कि सुद्धता को घरु हैं कि सिद्धता को सार हैं। कामना की खान हैं कि साधना को सान हैं बिरकतता की बान हैं कि बुद्ध को उदार हैं। सुंदर सरूप हैं कि भूपन को भूप हैं कि रूपहूँ को रूप हैं कुमत्त को प्रहार हैं। दीनन को दाता हैं गनीमन को गारक हैं साधन को रच्छक हैं गुनन को पहार हैं ॥ ७ ॥ २५९ ॥ सिद्ध को सरूप हैं कि बुद्ध को बिभूत हैं कि क्रुद्ध को अभूत हैं कि अच्छै अबिनासी हैं। काम को कुनिंदा हैं कि खूबी को दहिंदा हैं गनीमन गरिंदा हैं कि तेज को प्रकासी हैं। काल हूँ के काल हैं कि सत्रन के साल हैं कि मित्रन को पोखत हैं ब्रिद्धता को बासी हैं। जोग हूँ को जन्त्र हैं कि तेज हूँ को तंत्र हैं कि मोहिनी को मंत्र हैं कि पूरन प्रकासी हैं ॥ ८ ॥ २६० ॥ रूप को निवास हैं कि बुद्ध को प्रकास हैं कि सिद्धता को बास हैं कि बुद्ध हूँ को घरु हैं। देवन को देव हैं निरंजन अभेव हैं अदेवन को देव हैं कि सुद्धता को सरु हैं। जान को बचय्या हैं इमान को दिवय्या

सकता ॥ ६ ॥ २५८ ॥ वह तेज का तरु है, गतिशीलता का प्रेरणादायक सरोवर है अथवा शुद्धता का घर या सिद्धियों का सार तत्त्व है। वह कामनाओं की खान है, या साधना की शान है, या विरक्तता का गौरव है अथवा उदार बुद्धि का स्वामी है। कहा नहीं जा सकता कि वह प्रभु सुदर स्वरूपवाला है या राजाओं का भी राजा है कि रूप का भी रूप है अथवा कुमति का नाश करनेवाला है। वह प्रभु दीनों का दाता है, दुष्टों का नाशक है, साधुओं का रक्षक है तथा गुणों का महान् पर्वत है ॥ ७ ॥ २५९ ॥ वह सिद्धि का स्वरूप है, बुद्धि की विभूति से पूर्ण है, अभूतपूर्व क्रोधी है तथा अक्षय अविनाशी है। वह कार्य करनेवाला, विशेषताओं को देनेवाला, दुष्टों का नाश करनेवाला तथा तेज को प्रकाशित करनेवाला है। वह काल का काल, शत्रुओं को नष्ट करनेवाला, मित्रों का रक्षक तथा वृद्धता का आवासी है। वह योग का यंत्र, तेज का पुंज, मोहनी का वशीकरण मंत्र तथा पूर्णप्रकाश है ॥ ८ ॥ २६० ॥ वह रूप का निवास, बुद्धि का प्रकाश, सिद्धियों का निवास और बुद्धि का घर है। देवताओं का वह देवता है, कालिमा से रहित है तथा अदेवों का भी देवता है तथा शुद्धता का सरोवर है। वह (भक्तों की) जान बचानेवाला, ईमान पर दृढ़ बनाए रखनेवाला, यम जाल को काटनेवाला तथा सम्पूर्ण

जमजाल के कटय्या हैं कि कामना को कर हैं। तेज को प्रचंड हैं अखंडण को खंड हैं महीपन को मंड हैं कि इसत्री हैं न नर हैं ॥ ९ ॥ २६१ ॥ बिस्व को भरन हैं कि अपदा को हरन हैं कि सुख को करन हैं कि तेज को प्रकास हैं। पाईऐ न पार पाराबार हूँ को पार जा को कीजत बिचार सु बिचार को निवास हैं। हिंगला हिमालै गावैं हबशी हलब्बी ध्यावैं पूरबी न पार पावैं आसा ते अनास हैं। देवन को देव महादेव हूँ के देव हैं निरंजन अभेव नाथ अद्वै अबिनास हैं ॥ १० ॥ २६२ ॥ अंजन बिहीन हैं निरंजन प्रबीन हैं कि सेवक अधीन हैं कटय्या जमजाल के। देवन के देव महादेव हूँ के देवनाथ भूम के भुजय्या हैं मुहय्या महा बाल के। राजन के राजा महा साज हूँ के साजा महा जोग हूँ के जोग हैं धरय्या द्रुम छाल के। कामना को कर हैं कुबुद्धता को हर हैं कि सिद्धता के साथी हैं कि काल हैं (मू०ग्रं०३७) कुचाल के ॥ ११ ॥ २६३ ॥ छीर कैसी छीरावध छाछ कैसी छत्रानेर छपाकर कैसी छब कालिद्री के कूल के। हंसनी सी सीहा रूम हीरा सी हुसैनाबाद गंगा कैसी धार चली सातो सिंध

कामनाओं को पूरा करनेवाला है। वह तेज को प्रचंड करनेवाला, खंडित न हो सकनेवालों को भी खंडित करनेवाला, महीपों की रक्षा करनेवाला स्वयं न स्त्री है और न ही पुरुष है ॥ ९ ॥ २६१ ॥ आप विश्व का पोषण करनेवाले, आपदाओं को दूर करनेवाले, सुखकारक हैं तथा तेज का प्रकाश रूपी प्राण हैं। जिसका अन्त नहीं जाना जा सकता, वह सर्व विचारों का आप निवासस्थान हैं। हिंगलाज, हिमालय, हब्शी एवं अन्य तुम्हारा ध्यान करते हैं तथा पूर्वी लोग भी तुम्हारा अंत नहीं जान सकने के कारण निराश हो गए है। तुम देवताओं के देव, महादेव के भी देव हो, निरंजन, अद्वैत, अविनाशी नाथ हो ॥ १० ॥ २६२ ॥ हे प्रभु ! तुम हर प्रकार की कालिमा से मुक्त हो, प्रवीण हो, सेवकों के अधीन हो और जम-जाल को काटनेवाले हो। देवों के भी देव हो महादेव के भी नाथ, भूमि को भोगनेवाले एवं हर पदार्थ को प्राप्त करानेवाले हो। राजाओं के भी राजा हो तथा सज्जाओं की भी महान् सज्जा हो तथा पेड़ों की छाल धारण करनेवाले योगियों के महायोगी हो। कामनाओं को पूरा करनेवाले कुबुद्धि को दूर करनेवाले, सिद्धियों के साथ रहनेवाले आप समस्त कुचालों के भी काल हैं। ११। २६३। **अवध दूध के समान है तथा छत्रानेर नामक नगरी छाछ के समान है** चंद्रमा की छवि के समान यमुना का

कूल के । पारा सी पलाऊ गढ़ रूपा कै सी रामपुर सोरा सी सुरंगाबाद नीके रही झूल के । चंपा सी चंदेरी कोट चाँदनी सी चाँदागढ़ कीरति तिहारी रही मालती सी फूल के ॥ १२ ॥ ॥ २६४ ॥ फटक सी कैलास कमाऊ गढ़ काशीपुर सीसा सी सुरंगाबाद नीकै सोहीअतु है । हिम्मा सी हिमालै हरहार सी हलब्बानेर हंस कै सी हाजीपुर देखे मोहीअतु है । चंदन सी चपावती चंद्रमा सी चंद्रागिर चाँदनी सी चाँदागढ़ जोन जोहीअतु है । गंगा सम गंगधार बकान सी बिलंदाबाद कीरति तिहारी की उजिआरी सोहीअतु है ॥ १३ ॥ २६५ ॥ फरा सी फिरंगी फरासीस के दुरंगी मकरान के म्रिदंगी तेरे गीत गाईअतु है । भखरी कंधारी गोर गखरी गरदेजा चारी पउन के अहारी तेरो नामु ध्याईअतु है । पूरब पलाऊ कामरूप औ कमाऊ सरब ठउर मै बिराजै जहा जहा जाईअतु है । पूरन प्रतापी जंत्र मंत्र के अतापी नाथ कीरति तिहारी को न पार पाईअतु है ॥ १४ ॥ ॥ २६६ ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ अद्वै अनास

तट सुंदर है। रोम नगरी हंसिनी है के समान तथा हुसैनाबाद हीरे के समान है तथा गंगा की सुन्दर धारा सातों समुद्रों को लजानेवाली है। पलायूगढ़ पारे के समान है, रामपुर चाँदी के समान है तथा सुरंगाबाद शोरे के समान है। चंदेरी चम्पा के फूल के समान है, चाँदागढ़ी करोड़ों चाँदनियों के समान है, परन्तु, हे ईश्वर ! तुम्हारी कीर्ति मालती के सुन्दर पुष्प के समान है ॥ १२ ॥ २६४ ॥ कैलास, कुमायूँ, काशीपुर आदि स्थान स्फटिक के समान उज्ज्वल हैं तथा सुरंगाबाद आदि स्थान शीशे के समान शोभायमान हैं। हिमालय धवल, हलबानेर आकाशगंगा की तरह तथा हाजीपुर हंस के समान मन को मोहनेवाला है। चंपावती चंदन के समान, चंद्रगिरि चंद्रमा के समान तथा चाँदागढ़ नगरी चाँदनी के समान दिखाई देती है। गंगधार (गांधार) गंगा के समान, बुलंदाबाद बगुले की तरह दिखाई देता है। ये सब तुम्हारी कीर्ति के उजाले के प्रतीक हैं ॥ १३ ॥ २६५ ॥ फ्रांस के फ़िरंगी, फ़ारस के लोग तथा मकरान प्रदेश के निवासी तेरे गीत गाते हैं। भक्खर, कंधार, गक्खर एवं अरब देशों के वीर तथा पवन का आहार करनेवाले अन्य लोग तेरे नाम का स्मरण करते हैं। पूर्व में पलायू, कामरूप, कुमायूँ आदि सर्व स्थानों में जहाँ भी जायँ आप विराजमान हैं। तुम पूर्णप्रतापी हो यंत्र-मंत्रों से अप्रभावित रहने वाले नाथ हो, तुम्हारी कीर्ति का अन्त नहीं पाया जा सकता ।१४। २६६

आसन अडोल । अद्वै अनंत उपमा अतोल । अच्छै सरूप अव्यकत नाथ । आजान बाहु सरबा प्रमाथ ॥ १ ॥ २६७ ॥ जह तह महीप बन तन प्रफुल्ल । सोभा बसंत जह तह प्रडुल्ल । बन तन दुरंत खग म्रिग महान । जह तह प्रफुल्ल सुंदर सुजान ॥ २ ॥ २६८ ॥ फुलतं प्रफुल्ल लहिलहित मोर । सिर ढुरहि जान मन मथह चोर । कुदरत कमाल राजक रहीम । करुणानिधान कामल करीम ॥ ३ ॥ २६९ ॥ जह तह बिलोक तह तह प्रसोह । आजान बाह अमितोज मोह । रोसं बिरहत करुणानिधान । जह तह प्रफुल्ल सुंदर सुजान ॥ ४ ॥ २७० ॥ बन तन महीप जल थल महान । जह तह प्रसोह करुणानिधान । जगमगत तेज पूरन प्रताप । अंबर ज़मीन जिह जपत जाप ॥ ५ ॥ २७१ ॥ सातो अकाश सातो पतार । बिथर्यो अद्रिशट जिह करम जारि (मू०पं०३८) ।

॥ उसतति संपूरनं ॥

॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ तुम अद्वैत, अविनाशी तथा अटल आसन वाले हो । तुम अद्वैत, अनंत एवं उपमाओं से परे हो । तुम अक्षय-स्वरूप वाले अव्यक्त नाथ, आजानुबाहु तथा समस्त जीवों का नाश करने वाले हो ॥ १ ॥ २६७ ॥ यहाँ-वहाँ सब जगह तुम राजा हो तथा वनों मे तनों में प्रफुल्लित हो रहे हो । तुम वसन्त के रूप में शोभायमान होकर यहाँ-वहाँ बिखरे हुए हो । खगों में, मृगों में तुम ही छुपे हो । हे सुन्दर सुजान ! तुम सर्वत्र सौंदर्य-रूप में विराजमान हो ॥ २ ॥ २६८ ॥ तुम्हे फूलता देखकर मोर प्रसन्न हो रहे हैं और ऐसा लग रहा है मानो सिर झुका कर कामदेव के प्रभाव को स्वीकार कर रहे हैं । हे रहम करनेवाले, सब को रोजी देनेवाले ! तुम्हारी क़ुद्‌रत आश्चर्यजनक है । तुम करुणानिधान, चतुर एवं कृपालु हो ॥ ३ ॥ २६९ ॥ जहाँ कहीं भी मैं देखता हूँ, वहाँ-वहाँ आपका स्पर्श अनुभव होता है । तुम लम्बी भुजाओंवाले हो, अमित ओज एवं मन को मोहनेवाले हो । तुम रोष के भी बृहद्‌रूप हो और करुणा के भी समुद्र हो । हे सुंदर सुजान ! तुम यहाँ-वहाँ सर्वत्र फल-फूल रहे हो ॥ ४ ॥ २७० ॥ वनों और तनों के राजा तुम जल एवं स्थल में महान् हो । हर स्थान पर तुम्हारा स्पर्श है, तुम करुणानिधान हो । हे पूर्णप्रतापी ! तुम्हारा तेज जगमगा रहा है तथा आकाश एवं धरती तुम्हारा ही जाप जप रहे हैं ॥ ५ ॥ २७१ ॥ सातों आकाश, सातों पातालों मे जिसका कर्म-जाल अदृष्टस्वरूप में बिखरा पड़ा है उसकी स्तुति संपूर्ण होती है

१ ओं स्री वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

अथ

बचित्र नाटक ग्रंथ लिख्यते ॥ त्वप्रसादि ॥

स्री मुखवाक पातिशाही १० ॥

॥ दोहरा ॥ नमशकार स्रीखड़ग को करौ सु हितु चितु लाइ ।
पूरन करौ गिरंथ इह तुम मुहि करहु सहाइ ॥ १ ॥

त्रिभंगी छंद ॥ स्री काल जी की उसतति ॥

खग खंड बिहंडं खल दल खंडं अति रण मंडं बरबंडं । भुज दंड अखंडं तेज प्रचंडं जोति अमंडं भान प्रभं । सुख संता करणं दुरमति दरणं किलबिख हरणं अस सरणं । जै जै जग कारण स्रिशट उबारण मम प्रतिपारण जै तेगं ॥ २ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ सदा एक जोत्यं अजूनी सरूपं । महांदेव देवं महा भूप भूपं । निरंकार नित्यं निरूपं न्रिबाणं । कलं कारणेयं नमो खड़ग पाणं ॥ ३ ॥ निरंकार न्रिबिकार नित्यं

॥ दोहा ॥ मैं अपने हृदय एवं चित्त से श्री खड़ग को नमस्कार करता हूँ । यह ग्रंथ पूर्ण करो और इस कार्य में आप मेरी सहायता कीजिए ॥ १ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ ॥ श्री काल जी की स्तुति ॥ यह खड़ग अच्छी तरह से काटनेवाली, दुष्टों के दलों को नष्ट करनेवाली, युद्ध का मंडन करनेवाली बलवान शक्ति है । यह भुजाओं का अखंड तेज है, इसकी ज्योति प्रचंड है और इसकी प्रभा भानु के समान है । यह खड़ग अथवा कृपाण संतों को सुख देनेवाली, दुर्मति का दलन करनेवाली और विषय-विकारों को नष्ट करनेवाली है । मैं ऐसी कृपाण रूपी शक्ति की जय कहता हूँ और उसकी शरण में हूँ जो सारी सृष्टि का मूल है और मेरा पोषण करनेवाली है ॥ २ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ हे प्रभु शक्ति, तुम सदैव एक ज्योतिस्वरूप एवं अजन्मा हो, महांदेवों की भी देव और राजाओं की भी राजा हो । तुम नित्य, निराकार, अरूप एवं निर्वाण-स्वरूप हो हे खड़गधारी प्रभु तुम सर्व कलाओं का कारण हो ३ ।

निरालं । न ब्रिद्धं बिसेखं न तरुनं न बालं । न रंकं न रायं न रूपं न रेखं । न रंगं न रागं अपारं अभेखं ।। ४ ।। न रूपं न रेखं न रंगं न रागं । न नामं न ठामं महा जोति जागं । न द्वखं न भेखं निरंकार नित्यं । महा जोग जोगं सु परमं पवित्यं ।। ५ ।। अजेय अभेयं अनामं अठामं । महा जोग जोगं महा काम कामं । अलेखं अभेखं अनीलं अनादं । परेयं पवित्रं सदा न्रिबिखादं ।। ६ ।। सु आदं अनादं अनीलं अनंतं । अद्वेखं अभेखं महेसं महंतं । न रोखं न सोखं न द्रोहं न मोहं । न कामं न क्रोधं अजोनी अजोहं ।। ७ ।। परेयं पवित्रं पुनीतं पुराणं । अजेयं अभेयं भविक्ख्यं भवाणं । न रोगं न सोगं सु नित्यं नवीनं । अजायं सहायं सु परमं प्रबीनं ।। ८ ।। सु भूतं भविक्खं भवानं भवेयं । नमो न्रिबिकारं नमो न्रिजुरेयं । नमो देव देवं नमो राज राजं । निरालंब नित्यं सु राजाधिराजं ।।९।। अलेखं अभेखं अभूतं अद्वेखं । न रागं न रंगं न रूपं न

हे निराकार, निर्विकार, नित्य एवं निराली शक्तिस्वरूप प्रभु, तुम न वृद्ध होते हो न तरुण होते हो और न बालक का ही रूप लेते हो । न तुम रंक हो, न राजा हो । न तुम्हारा कोई रूप है न रेख है, न रंग है न राग है । तुम अपार हो और भेष-रहित हो ।। ४ ।। न तुम्हारा कोई रूप है, न रेख है । न कोई रंग है, न राग है । तुम नाम, स्थान से विहीन जलनेवाली महाज्योति हो । तुम न द्वेष हो, न किसी वेश में निहित हो । तुम नित्य निराकार हो । तुम महायोग, परम पवित्र हो ।। ५ ।। तुम अजेय, अभय, अनाम एवं स्थानातीत हो । तुम महायोग हो और महान् कामनाओं की भी कामना हो । हे अलेख, निरवेश, अनील, अनादि प्रभु, तुम परे से परे पवित्र हो तथा सदा विषाद से रहित हो ।। ६ ।। तुम आदि, अनादि, अनील एवं अनंत हो । द्वेष, वेश से रहित तुम धरती के स्वामी हो । रोष, शोक, द्रोह एवं मोह से तुम मुक्त हो । काम, क्रोध से विहीन तुम अयोनि एवं अदृष्ट हो ।। ७ ।। हे महाकाल प्रभु, तुम कलहातीत, पवित्र, पुनीत एवं सुप्राचीन, अजेय, अभय, वर्तमान एवं भविष्य में बने रहनेवाले हो । तुम रोग-शोक-मुक्त, नित्यनवीन, अजन्मा, सर्व-सहायक और परम प्रवीण हो ।। ८ ।। तुम भूत, भविष्य, वर्तमान हो । हे निर्विकार एवं रोगों से मुक्त, तुम्हें मेरा प्रणाम है । हे देवों के देव, राजाओं के राजा, निरालंब, नित्य राजाधिराज, तुम्हें मेरा प्रणाम है ।।९।। तुम अलेख, अवेश, अभूत एवं द्वेषों से परे हो तुम न राग हो न रंग हो,

रेखं । (पृ०ग्रं०२६) महां देव देवं महा जोग जोगं । महा काम कामं महा भोग भोगं ॥१०॥ कहूँ राजसं तामसं सातकेयं । कहूँ नार को रूप धारे नरेयं । कहूँ देवियं देवतं दईत रूपं । कहूँ रूप अनेक धारे अनूपं ॥ ११ ॥ कहूँ फूल ह्वैकै भले राज फूले । कहूँ भवर ह्वैकै भलीभांति भूले । कहूँ पवन ह्वैकै बहे बेगि ऐसे । कहे मो न आवै कथौ ताहि कैसे ॥ १२ ॥ कहूँ नाद ह्वैकै भलीभांति बाजे । कहूँ पारधी ह्वै धरे बान राजे । कहूँ म्रिग ह्वैकै भलीभांति मोहे । कहूँ काम की जिउ धरे रूप सोहे ॥ १३ ॥ नही जानि जाई कछू रूप रेखं । कहा बास ताको फिरै कउन भेखं । कहा नाम ताको कहा कै कहावै । कहा मै बखानो कहे मो न आवै ॥ १४ ॥ न ताको कोई तात मातं न भायं । न पुत्रं न पौत्रं न दाया न दायं । न नेहं न गेहं न सैनं न साथं । महाराज राजं महानाथ नाथं ॥ १५ ॥ परम्मं पुरानं पवित्रं परेयं । अनादं अनीलं असंभं अजेयं । अभेदं अछेदं पवित्रं प्रमाथं । महा दीन दीनं

न रूप हो न आकार हो । तुम महादेवों के भी देव महान् योगियों के भी योगीराज, कामनाओं की भी कामना एवं महान् भोगों को भी भोगनेवाले हो ॥ १० ॥ कहीं तुम रजस्, तमस् एवं सत्त्व हो । कहीं नारी का रूप धारण किये हुए नर (अर्धनारीश्वर) हो । कहीं तुम देवी एवं दैत्य के रूप में हो और कहीं पर अनेक अनुपम रूपों को धारण करनेवाले हो ॥ ११ ॥ कहीं तुम फूल बनकर कल्पवृक्ष के फूलों के समान फूले हो । कहीं तुम भ्रमर बनकर भलीभांति रूप से फूलों में ही भूले फिर रहे हो । कहीं पवन होकर ऐसे वेग से तुम बह रहे हो कि मैं कह नहीं सकता । तुम्हारा वर्णन कैसे करूं ? ॥ १२ ॥ तुम कहीं नाद-रूप होकर बज रहे हो, कहीं शिकारी के रूप में बाण लिये शोभायमान हो रहे हो, कहीं तुम मृग होकर भलीभांति मोह में फँसे पड़े हो और कहीं पर तुम कामिनी-रूप में शोभायमान हो ॥ १३ ॥ तुम्हारे रूप-आकार को नहीं जाना जा सकता । तुम्हारा आवास कहाँ है, तुम किस वेश में घूमते हो, तुम्हारा नाम क्या है, तुम कहाँ के हो, इसका मैं क्या वर्णन करूँ, मुझसे कहा नहीं जाता ॥ १४ ॥ न तुम्हारा कोई पिता, माता या भाई है । न तुम्हारा कोई पुत्र, पौत्र, धाय आदि है । न तुम्हें कोई स्नेह-विशेष है, न तुम्हारा कोई घर है, न तुम्हारी सेना है, न तुम्हारा कोई संग-साथ है । हे महान् राजा, तुम नाथों के भी नाथ हो । १५ ॥ तुम परम पुराने,

महा नाथ नाथं ॥ १६ ॥ अदागं अदग्गं अलेखं अभेखं। अनंतं अनीलं अरूपं अद्वैखं। महा तेज तेजं महा ज्वाल ज्वालं। महा मंत्र मंत्रं महा काल कालं ॥ १७ ॥ करं बाम चाप्यं क्रिपाणं करालं। महा तेज तेजं बिराजै बिसालं। महा दाड़ दाढं सु सोहं अपारं। जिने चरबीयं जीव जग्यं हजारं ॥ १८ ॥ डमा डंम डउरू सिता सेत छत्रं। हाहा हूह हासं झमा झम्म अत्रं। महा घोर सबदं बजे संख ऐसं। प्रलै काल के काल की ज्वाल जैसं ॥ १९ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ घणं घंट बाजं। धुणं मेघ लाजं। भयो सद्द एवं। हड़्यो नीरधेवं ॥ २० ॥ घुरं घुंघरेयं। धुणं नेवरेयं। महा नाद नादं। सुरं निरबिखादं ॥ २१ ॥ सिरं माल राजं। लखे रुद्र लाजं। सुभे चार चित्रं। परम्मं पवित्रं ॥ २२ ॥ महा गरज गरजं। सुणे दूत लरजं। स्रवं स्रोण सोहं। महा मान मोहं ॥ २३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ सिजे सेतजं जेरजं उतभुजेवं। रचे

पवित्र और झगड़ों से दूर हो। तुम अनादि, कलुषरहित, स्वयंभू तथा अजेय, अभेद, अक्षय, पवित्र, बलशाली, पैग़म्बरों के भी धर्म एवं महानाथों के भी नाथ हो ॥ १६ ॥ तुम बेदाग, प्रकाश, अलेख, निर्वेश, अनन्त, अरूप, अद्वेष, महातेज, महाज्वाल, महामंत्र एवं महाकाल के भी काल हो ॥ १७ ॥ तुम्हारे बायें कर में धनुष, कृपाण है। तुम महातेज हो तथा तेजस्वी विशाल रूप में विराजमान हो। तुम भयंकर मुख एवं दाँतों वाले वह अपार स्वरूप हो, जिसने हज़ारों यज्ञों एवं जीवों का भक्षण किया है ॥ १८ ॥ तुम्हारा डमरू डमडम बजता है और तुम्हारा छत्र काला और सफ़ेद है। तुम्हारे चारों ओर भयंकर अट्टहास एवं प्रकाश रहता है। शंख ऐसे बजते हैं और ऐसी महाघोर ध्वनि को करते हैं मानो प्रलय काल में धुआँधार अग्नि लगी हो ॥ १९ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ बादल रूपी घण्टे बज रहे हैं और मेघों के धनुष बन रहे हैं और कुछ इस प्रकार का वातावरण बन रहा है मानो समुद्र में बाढ़ आ गई हो ॥ २० ॥ घुँघरुओं की ध्वनि हो रही है और धनुषों की टंकार सुनाई पड़ रही है और इस प्रकार के निर्विषाद स्वर निकल रहे हैं, मानो महानाद बज रहा हो ॥ २१ ॥ सिर पर माला शोभायमान हो रही है और तुम्हारे स्वरूप को देखकर रुद्र भी लजा रहे हैं। तुम सुन्दर चित्र हो तथा परमपवित्र हो ॥ २२ ॥ तुम्हारी महान गर्जना को सुनकर दूतगण भयाकुल हो रहे हैं। हे महामानी और सबको मोहनेवाले! तुम्हारी यह ध्वनि कानों को सुन्दर प्रतीत होती है २३ भुजग प्रयात छन्द तुमने स्वेदज,

अंडजं खंड ब्रहमंड एवं । दिसा बिदिसायं जिमी आसमाणं । चतुर बेद कथयं (पृ०सं०४०) कुराणं पुराणं ॥ २४ ॥ रचे रैण दिवसं थपे सूर चंद्रं । ठटे दईव दानो रचे बीर बिंद्रं । करी लोह कलमं लिख्यो लेख माथं । सभै जेर कीने बली काल हाथं ॥ २५ ॥ कई मेट डारे उसारे बनाए । उपारे गड़े फेरि मेटे उपाए । क्रिआ काल जू की किनू न पछानी । घन्यो पै बिहैहै घन्यो पै बिहानी ॥ २६ ॥ किते क्रिसन से कीट कोटै बनाए । किते राम से मेटि डारे उपाए । महा दीन केते प्रिथी मांझ हूए । समै आपनी आपनी अंति मूए ॥ २७ ॥ जिते अउलीआ अंबीआ होइ बीते । तित्यो काल जीता न ते काल जीते । जिते राम से क्रिसन हुइ बिसन आए । तित्यो काल खापिओ न ते काल घाए ॥ २८ ॥ जिते इंद्र से चंद्र से होत आए । तित्यो काल खापा न ते काल घाए । जिते अउलीआ अंबीआ गउस ह्वै हैं । सभै काल के अंत दाड़ा तलै हैं ॥२९॥ जिते मानधातादि राजा सुहाए । सभै बाँधिकै काल जेलै

जेरज, उद्भिज, अण्डज एवं खण्ड-ब्रह्माण्डों की संरचना की । तुमने दिशा, विदिशा, धरती, आकाश रचकर चारों वेद, कुरान, पुराण आदि का कथन किया ॥ २४ ॥ रात-दिन, सूर्य, चन्द्रदेव, दानव आदि वीरों की रचना की । लौह क़लम से सबके माथे पर लेख लिखे एवं महाबलियों को भी अपने अधीन किया ॥२५॥ तुमने कई को मिटाये, धराशायी किये और फिर बनाये । फिर उनका उच्छेदन किया, फिर गढ़न किया, मिटाया एवं पैदा किया । हे काल ! तुम्हारी क्रियाओं को कोई भी पहचान न सका और अनेकों पर तुम्हारी माया प्रभाव डाल चुकी है और अनेकों पर डालेगी ॥ २६ ॥ तुमने कृष्ण के समान करोड़ों कीट बनाये । तुमने राम के समान कितनों को ही पैदा किया और मिटा डाला । पृथ्वी पर कितने ही पैग़म्बर हुए, परन्तु सभी अन्त में कालवश होकर मृत्यु को प्राप्त हुए ॥ २७ ॥ संसार में जितने भी ऋषि, मुनि एवं औलिया हुए, सबको काल ने जीत लिया परन्तु वे काल को न जीत सके । जितने भी राम-कृष्ण के समान विष्णु-रूप होकर आये सबको काल ने खपा दिया, परन्तु ये सब काल का कुछ भी न कर पाये ॥ २८ ॥ जितने इन्द्र, चन्द्र आदि के समान हुए, काल ने सबका नाश कर दिया, परन्तु वे काल का कुछ भी न कर पाये । जितने औलिया, ऋषि, मुनि एवं विभिन्न प्रकार के जीव हैं, सबको अन्त में काल की दाढ़ के नीचे ही जाना है २९ जितने भी · आदि

चलाए। जिनै नाम ताको उचारो उबारे। बिना साम ताकी लखे कोट मारे ॥ ३० ॥ ॥ रसावल छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ चमंकहि क्रिपाणं। अभूतं भयाणं। धुनं नेवराणं। घुरं घुंघ्रयाणं ॥ ३१ ॥ चतुर बाँह चारं। निजूट सुधारं। गदा पाँस सोहं। जमं मान मोहं ॥ ३२ ॥ सुभं जीभ ज्वालं। सु दाढ़ा करालं। बजी बंब संकं। उठे नाद बंखं ॥ ३३ ॥ सुभं रूप स्यामं। महा सोभ धामं। छबे चार चित्रं। परेअं पवित्रं ॥ ३४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ सिरं सेत छत्रं सु सुभ्रं बिराजं। लखे छैल छाइआ करे तेज लाजं। बिसालाल नैनं महाराज सोहं। ढिगं अंसुमालं हसं कोट क्रोहं ॥३५॥ कहूँ रूप धारे महाराज सोहं। कहूँ देव कंनिआन के मान मोहं। कहूँ बीर ह्वैकै धरे बान पानं। कहूँ भूप ह्वैकै बजाए निशानं ॥ ३६ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ धनुर बान धारे। छके छैल भारे। लए खग्ग ऐसे। महाबीर जैसे ॥ ३७ ॥ जुरे

राजा हुए, काल ने सबको बाँधकर आगे लगा लिया। जितने भी नामों का उच्चारण किया जाय बिना उस प्रभु की शरण के ऐसे करोड़ों मृत्यु को प्राप्त हुए ॥३०॥ ॥ रसावल छन्द ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ तुम्हारी कृपाण चमकती है और तुम अभूतपूर्व भय-स्रोत हो। तुम्हारे नूपुर ऐसे बज रहे हैं, मानो बादल गरज रहे हों ॥ ३१ ॥ तुम्हारी सुन्दर चार बाँहें एवं जटाजूट है। तुम्हारे हाथों में गदा एवं फाँस शोभायमान है और यम का भी मान समाप्त करनेवाली है ॥ ३२ ॥ तुम्हारी जीभ ज्वाला के समान एवं दाँत भयंकर हैं। भयंकर नाद हमेशा तुम्हारे चारों ओर से उठा करता है ॥ ३३ ॥ तुम शुभ श्याम-रूप हो तथा महाशोभा के धाम हो। तुम्हारी छवि चारुचित्र के समान है और तुम कलह से परे पवित्र हो ॥ ३४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ तुम्हारे सिर पर श्वेत छत्र विराजमान है और तुम्हारे प्रताप को देखकर स्वयं तेज लजायमान है। हे महाराज ! तुम्हारे विशाल नयन शोभायमान हैं और तुम्हारे पास महाक्रोध एवं हास्य का प्रतीक अंशुमाल विराजमान है ॥३५॥ कहीं तुम रूप धारण कर महाराज के समान शोभायमान हो। कहीं देवकन्याओं के मान और मोह के रूप में विराजमान हो। कहीं शूरवीर होकर हाथ में बाण पकड़नेवाले हो और कहीं राजा होकर नगाड़े को बजानेवाले हो ॥ ३६ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ तुमने धनुष-बाण धारण कर रखा है और अनेक युवाओं को आश्चर्य में डाल रखा है। महावीरों के समान तुमने खड्ग धारण कर रखा है ३७ जब भीषण जग के लिए लोग इकट्ठा होते हैं

अंग ओरं। करे जुद्ध घोरं। क्रिपानिधि दिआलं। सदायं क्रिपालं ॥ ३८ ॥ (मू०ग्रं०४१) सदा एक रूपं। सभै लोक भूपं। अजेयं अजायं। सरन्नियं सहायं ॥ ३९ ॥ तपै खग्ग पानं। महा लोक दानं। भविक्ख्यं भवेअं। नमो निरजुरेअं ॥ ४० ॥ मधो मान मुंडं। सुभं रुंड सुंडं। सिरं सेत छत्रं। लसं हाथ अत्रं ॥ ४१ ॥ सुणे नाद भारी। त्रसे छत्र धारी। दिसा बसत्र राजं। सुणे दोख भाजं ॥ ४२ ॥ सुणे गद्द सद्दं। अनंतं बिहद्दं। घटा जाणु स्यामं। दुतं अभिरामं ॥ ४३ ॥ चतुर बाहु चारं। करीटं सु धारं। गदा संख चक्रं। दिपै क्रूर बक्रं ॥ ४४ ॥ ॥ नराज छंद ॥ अनूप रूप राजियं। निहार काम लाजियं। अलोक लोक सोभयं। बिलोक लोक लोभियं ॥ ४५ ॥ चमक्कि चंद्र सीसियं। रहियो लजाइ ईसियं। सु सोभ नाग भूखणं। अनेक दुशट दूखणं ॥ ४६ ॥

और घमासान युद्ध होता है, तब, हे कृपानिधि दयालु, सदा तुम्हारी कृपा बनी रहती है ॥ ३८ ॥ तुम सदैव एक रूप, सर्व लोकों के भूप, अजेय, अजन्मा एवं शरणागत की सहायता करनेवाले हो ॥ ३९ ॥ तुम्हारे हाथ में खड्ग तप रहा है और तुम महादानी लोक को दान दे रहे हो। हे भविष्य और वर्तमान तथा समस्त तापों से रहित, तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥ ४० ॥ मधु (राक्षस) के मान का मुण्डन करनेवाले और शुंभ का नाश करनेवाले, सिर पर श्वेत छत्र धारण करनेवाले (काल) तुम्हारे हाथों में अस्त्र शोभायमान हैं ॥ ४१ ॥ तुम्हारा भारी नाद सुनकर छत्रधारी भी भयभीत हो जाते हैं। तुम्हारे वस्त्र दिशाओं के हैं, जो तुम्हारे तन पर शोभायमान हैं। तुम्हारी ध्वनि सुनकर दुःख भाग जाते हैं ॥ ४२ ॥ तुम्हारा बुलावा सुनकर अनन्त प्रसन्नता प्राप्त होती है। ऐसा लगता है, घटाओं के रूप में श्याम तुम ही हो और अद्वितीय अभिराम रूप में विराजमान हो ॥ ४३ ॥ तुम्हारी सुन्दर चार बाँहें हैं, तुमने सुन्दर मुकुट धारण कर रखा है, गदा-शंख-चक्र एवं तुम्हारी क्रूर भृकुटी देदीप्यमान हो रही है ॥ ४४ ॥ ॥ नराज छंद ॥ तुम्हारा अनुपम रूप ऐसा शोभायमान हो रहा है, जिसे देखकर कामदेव भी लजा रहा है। तुम्हारा प्रकाश समस्त लोकों की शोभा है और समस्त लोक इसे अवलोकन करने का लोभ करते रहते हैं ॥ ४५ ॥ तुम्हारे सिर पर चन्द्र इस प्रकार चमक रहा है, जिसे देखकर शिव भी लजा रहे हैं। तुमने नागों के आभूषण पहन रखे हैं, जो अनेकों दुःखों को दूर करनेवाले हैं ४६ तुम्हारे हाथों में धारण

क्रिपाण पाण धारियं । करोर पाप टारियं । गदा ग्रिसट पाणियं । कमाण बाण ताणियं ।। ४७ ।। सबद्द संख बज्जियं । घणंकि घुंमर गज्जियं । शरनि नाथ तोरियं । उबार लाज मोरियं ।। ४८ ।। अनेक रूप सोहियं । बिसेख देव मोहियं । अदेव देव देवलं । क्रिपा निधान केवलं ।।४९।। सु आदि अंति एकयं । धरे सरूप अनेकियं । क्रिपाण पाण राजई । बिलोक पाप भाजई ।। ५० ।। अलंक्रितं सु देहियं । तनो मनो कि मोहियं । कमाण बाण धारही । अनेक शत्र टारही ।। ५१ ।। घमक्कि घुंघरं सुरं । नवंन नाद नूपरं । प्रजवाल बिज्जुलं जुलं । पवित्र परम निरमलं ।। ५२ ।। ।। तोटक छंद ।। ।। त्व प्रसादि ।। नव नेवर नाद सुरं न्रिमलं । मुख बिज्जुल ज्वाल घणं प्रजुलं । मदरा कर मत्त महा भभकं । बन मै मनो बाघ बचा बबकं ।। ५३ ।। भव भूत भविक्ख भवान भुवं । कल कारण उबारण एक तुवं । सभ ठौर निरंतर नित्त नयं । म्रिद मंगल रूप तुयं सु भयं ।। ५४ ।। बिड़दाड़ कराल

की हुई कृपाण करोड़ों पापों को दूर करनेवाली है । तुम्हारे हाथ में गदा भारी है और तुम्हारी कमान से बाण तने हुए हैं ।। ४७ ।। तुम्हारे शंख का शब्द बादलों के गर्जन के समान है । हे नाथ ! मैं तुम्हारी शरण में हूँ । मुझे उबारकर मेरी लाज रखो ।। ४८ ।। अनेक रूपों में शोभायमान देव-विशेष तुम मन को मोहनेवाले हो । देव और अदेव सबके लिए तुम पूज्य हो तथा शुद्ध रूप से कृपा के समुद्र हो ।। ४९ ।। तुम आदि और अन्त में एक ही रूप हो । तुमने अनेकों रूपों को (स्वयं अपनी इच्छा से) धारण किया है । तुम्हारे हाथों में सुशोभित कृपाण को देखकर पाप भाग खड़े होते हैं ।। ५० ।। तुम्हारी देह अलंकृत है और तन-मन को मोहने वाली है । तुम्हारी कमान जब बाण धारण करती है, तो अनेकों शत्रु भाग खड़े होते हैं ।। ५१ ।। तुम्हारे नूपुरों का नाद और घुंघरुओं का स्वर मेघ-गर्जन के समान है । बिजली तुम्हारी ज्वाला है और तुम परम पवित्र निर्मल हो ।। ५२ ।। ।। तोटक छंद ।। ।। तेरी कृपा से ।। तुम्हारे नूपुरों का स्वर निर्मल है और तुम्हारे मुख से बिजली की ज्वाला प्रज्वलित हो रही है । तुम्हारे हाथों की आवाज ऐसी है, मानो वन में शेर के बच्चे दहाड़ रहे हों ।। ५३ ।। तुम भूत, भविष्य और वर्तमान में विराजमान हो और इस कलियुग में एक तुम ही उद्धार करनेवाले हो । तुम सर्व स्थानों पर नित्य निरन्तर नव-रूप हो और तुम्हारा मगल रूप मृदुल है । ५४

हुँ सेत उधं । जिह भाजत दुशट बिलोक जुधं । सद भत्त क्रिपाण कराल धरं । जय सद्द सुरा सुरयं उचरं ॥ ५५ ॥ नव किंकण नेवर नाद हुअं । चल चाल सभा चल कंप भुअं । (मू०ग्रं०४२) घण घुंघर घंटण घोर सुरं । चर चार चरा चरयं हुहरं ॥ ५६ ॥ चल चौदहूँ चक्रन चक्र फिरं । बढवं घटवं हरीअं सुभरं । जग जीव जिते जलयं थलयं । अस को जु तवाइसुअं मलयं ॥ ५७ ॥ घट भादव मास की जाण सुभं । तन सावरे रावरीअं हुलसं । रद पंकत दामनीअं दमकं । घन घुंघर घंट सुरं घमकं ॥ ५८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ घटा सावणं जान स्यामं सुहायं । मणी नील नगियं लखं सीस न्यायं । महा सुंद्र स्यामं महा अभिरामं । महा रूप रूपं महा काम कामं ॥ ५९ ॥ फिरै चक्र चउदहूँ पुरीयं मधिआणं । इसो कौन बीयं फिरै आइसाणं । कहो कुंट कौनै बिखै भाज बाचै । सभं सीस के संग स्री काल नाचै ॥ ६० ॥ करे कोट कोऊ धरे कोट ओटं । बचैगो न किउ हूँ करै काल चोटं । लिखं जंत्र

तुम्हारे भयंकर दो दृढ़ सफ़ेद दाँत हैं, जिन्हें देखकर दुष्ट युद्ध में भाग खड़े होते हैं। तुम्हारे हाथों में कराल कृपाण है, जिससे ध्वनि हमेशा निकला करती है ॥ ५५ ॥ तुम्हारी नव किंकिणी के नाद से सभी चलायमान हो जाते हैं और भूमि काँपने लगती है। तुम्हारे घण्टे की घन गर्जन से चर-अचर सभी भयभीत हो जाते हैं ॥ ५६ ॥ चौदहों भुवनों में तुम्हारा चक्र घूमता है और जीव घटते-बढ़ते मृत्यु को प्राप्त होते तथा पोषित होते रहते हैं। जल-स्थल में जितने भी जीव हैं, ऐसा कौन है, जिसने आपकी आज्ञा का उल्लंघन किया हो ॥ ५७ ॥ भादों मास की शुभ घटा के समान तुम्हारा तन हुलस रहा है। चमकती बिजली और बजते हुए घंट बादलों की गर्जन के समान स्वर दे रहे हैं ॥ ५८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ सावन की श्याम घटा ऐसे शोभायमान हो रही है, मानो नीलमणि देखकर हृदय प्रफुल्लित हो रहा हो। (हे काल !) तुम महासुन्दर श्याम अभिराम, रूपों के रूप और कामनाओं की भी महाकामना हो ॥ ५९ ॥ तुम्हारा चक्र चौदह पुरियों में फिर रहा है। ऐसा कौन वीर है, जो आपकी आज्ञा को मोड़ दे ! (यदि कोई ऐसा हो) तो बताओ वह कौन सी दिशा में बचकर भाग जायेगा, क्योंकि सबों के सिर पर काल नाच रहा है ॥ ६० ॥ कोई करोड़ो यत्न कर और किलों का आश्रय ले, तब भी काल की चोट से कोई बच नहीं पायेगा बेशक कितने ही यन्त्र एवं मन्त्र पढ़ जायें, परन्तु बिना

केते पड़ं मंत्र कोटं । बिना शरन ता की नही और ओटं ॥६१॥ लिखं जंत्र थाके पड़ं मंत्र हारे । करे काल ते अंत लै कै बिदारे । किंतिओ तंत्र साधं जु जनमं बितायो । भए फोकटं काज एकै न आयो ॥ ६२ ॥ किते नास मूंदै भए ब्रहमचारी । किते कंठ कंठी जटा सीस धारी । किते चीर कानं जुगीसं कहायं । सभे फोकटं धरम कामं न आयं ॥ ६३ ॥ मधु कीटभं राछसे से बलीअं । समे आपनी काल तेऊ दलीअं । भए सुंभ नैसुंभ स्रोणंत बीजं । तेऊ काल कीने पुरेजे पुरेजं ॥ ६४ ॥ बली प्रिथीअं मानधाता महीपं । जिनै रत्थ चक्रं कीए सात दीपं । भुजं भीम भरथं जगं जीत डंड्यं । तिनै अंत के अंत को काल खंड्यं ॥ ६५ ॥ जिनै दीप दीपं दुहाई फिराई । भुजादंड दै छोणि छत्रं छिनाई । करे जग्ग कोटं जसं अनेक लीते । वहै बीर बंके बली काल जीते ॥ ६६ ॥ कई कोट लीने जिनै दुरग ढाहे । किते सूरबीरान के सैन गाहे । कई जंग कीने सु साके

उसकी शरण में गए अन्य कोई आश्रय नहीं है ॥ ६१ ॥ लोग यंत्र लिख कर और मंत्र पढ़कर हार गए हैं, परन्तु अन्त में काल के हाथों नाश को प्राप्त हुए हैं । कितने ही लोगों ने तंत्र-साधना में जन्म बिता दिया है, परन्तु अन्त में सब व्यर्थ हो गए और एक भी तंत्र-मंत्र काम न आ सका ॥ ६२ ॥ कितने ही नासिका को बन्द करके ब्रह्मचारी हो गए और कितनों ने ही गले में कण्ठी और शीश पर जटाएँ धारण की । कितने ही लोग कान फड़वाकर योगेश्वर कहलाये, परन्तु यह सब व्यर्थ के धर्म उनके किसी काम न आये ॥ ६३ ॥ मधु-कैटभ जैसे बली राक्षस भी अपना समय आ जाने पर अन्त में काल के द्वारा नष्ट कर दिए गए । शुंभ-निशुंभ रक्तबीज आदि हुए परन्तु काल ने उनको भी खण्ड-खण्ड कर दिया ॥६४॥ पृथु, मान्धाता और बलि जैसे महीप हुए, जिन्होंने अपने रथ के चक्रों से सात द्वीपों का निर्माण किया; भीम जैसे बलशाली ने महाभारत को जीतकर दुष्टों को दण्ड दिया परन्तु उनको भी अन्त में काल ने खण्डित कर दिया ॥ ६५ ॥ जिन्होंने द्वीपों में घोषणाएं करवाई और अपनी भुजाओं से दण्ड देकर पृथ्वीपतियों के छत्र को छीन लिया । जिन्होंने करोड़ों यज्ञ कर सुयश को प्राप्त किया, उन्हीं वीर-बाँकुरों को अन्त में काल ने जीत लिया ॥ ६६ ॥ कई करोड़ ऐसे वीरों का नाश किया, जिन्होंने अनेक क़िले गिरा दिए । कइयों ने शूरवीरों की सेनाओं का मन्थन किया । कइयों ने अनेको जग किए, परन्तु काल की मार से वे वीर भी गिरे हुए देखे

पधारे। वहै दीन देखे गिने काल मारे ॥ ६७ ॥ जिनै पातिशाही करी कोट जुगियं। रसं आनरसं भली भाँति भुगियं। वहै अंत को पाव नागे पधारे। गिरे दीन देखे हठी काल मारे ॥ ६८ ॥ जिनै खंडीअं दंड धारं (मू०ग्रं०४३) अपारं। करे चंद्रमा सूर चेरे दुआरं। जिनै इंद्र से जीत कै छोड डारे। वहै दीन देखे गिरे काल मारे ॥ ६९ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जिते राम हूए। सभै अंति मूए। जिते किशन ह्वैहै। सभै अंत जैहै ॥ ७० ॥ जिते देव होसी। सभै अंत जासी। जिते बोध ह्वैहै। सभै अंति छैहै ॥ ७१ ॥ जिते देवरायं। सभै अंत जायं। जिते दईत एसं। तितियो काल लेसं ॥७२॥ नरसिंघावतारं। वहै काल मारं। बडो दंडधारी। हण्यो काल भारी ॥ ७३ ॥ दिजं बावनेयं। हण्यो काल तेयं। महा मच्छ मुंडं। फधिओ काल झुंडं ॥ ७४ ॥ जिते होइ बीते। तिते काल जीते। जिते शरन जैहै। तितिओ राख लैहै ॥ ७५ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ बिना शरन ताको न अउरै उपायं। कहा देव दईतं कहा रंक रायं। कहा पातिशाहं

गए ॥ ६७ ॥ जिन्होंने करोड़ों युगों तक राज्य किया और रस-अनरस का भलीभाँति भोग किया, वे भी अन्त में नंगे ही पाँव यहाँ से गए और हठी काल के द्वारा वे दीन भी धराशायी देखे गए ॥ ६८ ॥ जिन्होंने बड़े-बड़े दंडाधिकारियों का नाश किया, जिन्होंने इन्द्र जैसों को जीतकर छोड़ दिया, उन्हीं दीनों को काल द्वारा मारे जाते देखा गया है ॥ ६९ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जितने भी राम हुए सभी अंत में मृत्यु को प्राप्त हुए। जितने कृष्ण होंगे वे सब भी अंत में जायँगे ॥ ७० ॥ जितने देवता होंगे, वे भी अन्त में जायँगे। जितने बुद्ध होंगे वे सभी अन्त में क्षय को प्राप्त होंगे ॥ ७१ ॥ जितने देवराज होंगे अन्त में सभी जायँगे। जितने रावणादि दैत्य होंगे सभी काल के धागे के साथ बँधे हुए हैं ॥ ७२ ॥ नृसिंह-अवतार भी काल द्वारा नष्ट कर दिए गए। बड़े दंडधारियों का भी काल ने हनन किया ॥ ७३ ॥ वामन को भी काल ने समाप्त किया। महामत्स्य-अवतार भी काल के चक्र में फँस गया ॥ ७४ ॥ जितने भी व्यतीत हो गए हैं, वे सभी काल द्वारा जीते गए हैं। जितने भी शरणागत होंगे, उनकी (काल) रक्षा करेगा ॥ ७५ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ उसकी शरण के बिना अन्य उपाय नहीं है चाहे कोई देव हो, दैत्य हो, राजा हो अथवा रंक हो चाहे कोई बादशाह हो,

कहा उमरायं । बिना शरन ताकी न कोट उपायं ।। ७६ ।।
जिते जीव जंतं सु दुनीअं उपायं । सभै अंति कालं बली काल
घायं । बिना शरन ताको नही और ओटं । लिखे जंत्र केते
पढ़े मंत्र कोटं ।। ७७ ।। ।। नराज छंद ।। जितेकि राज रंकयं ।
हने सु काल बंकयं । जितेकि लोक पालयं । निदान काल
दालयं ।। ७८ ।। क्रिपाण पाण जे जपै । अनंत थाट ते थपै ।
जितेक काल ध्याइ है । जगत्ति जीत जाइ है ।। ७९ ।।
बचित्र चारु चित्रयं । परमयं पवित्रयं । अलोक रूप
राजियं । सुणे सु पाप भाजियं ।। ८० ।। बिसाल लाल
लोचनं । बिअंत पाप मोचनं । चमक्क चंद्र चारियं । अघी
अनेक तारियं ।। ८१ ।। ।। रसावल छंद ।। जिते लोक पालं ।
तिते जेर कालं । जिते सूर चंद्रं । कहा इंद्र बिंद्रं ।। ८२ ।।
।। भुजंग प्रयात छंद ।। फिरै चौदहूं लोकयं काल चक्रं । सभै
नाथ नाथे भ्रमं भउह बक्रं । कहा राम क्रिशनं कहा चंद सूरं ।
सभै हाथ बाधे खरे काल हजूरं ।। ८३ ।। ।। सवैया ।। काल ही

या उमराव हो, बिना उसकी शरण के कोई अन्य उपाय नहीं है ।। ७६ ।।
जितने भी जन्तु संसार में पैदा किए गए हैं, उन सबको अंत में बलशाली
काल ने समाप्त कर दिया है । बेशक कोई कितने ही यन्त्र और मंत्र लिखे
या पढ़े, परन्तु बिना उसकी (काल की) शरण में गए अन्य कोई आश्रय
नहीं है ।। ७७ ।। ।। नराज छंद ।। जितने भी राजा-रंक हुए हैं, काल
बांकुरे ने सबको नष्ट कर दिया है । जितने भी लोकपाल हुए हैं, काल
ने सबका दलन किया है ।। ७८ ।। जो उस कृपाणधारी काल-रूप
परमात्मा का स्मरण करेगा वह अनन्त रूप से स्थापित होगा । जिन्होंने
काल का स्मरण किया, वे सब अंत में इस जगत से जीतकर जायेंगे ।।७९।।
उसका चित्र विचित्र, सुन्दर एवं परम पवित्र है । वह प्रकाशस्वरूप
परमात्मा है, जिसके स्वरूप के बारे में सुनकर पाप भाग जाते हैं ।। ८० ।।
उसके विशाल लाल नेत्र अनन्त पापों को दूर करनेवाले हैं । उसकी चंद्रमा
के समान चमक ने अनेक पापियों को भवसागर से पार कर दिया है ।।८१।।
।। रसावल छंद ।। जितने भी लोकपाल हैं, वे सब काल के अधीन हैं । सूर्य,
चंद्र, इंद्र-वृन्द सब काल के अधीन हैं ।।८२।। ।। भुजंग प्रयात छंद ।। चौदह
लोकों में काल-चक्र घूम रहा है । उसकी बक्र भौंहों ने सभी नाथों
को नाथ रखा है । राम, कृष्ण, चंद्र, सूर्य सभी उस काल के सम्मुख हाथ
बांधे खड़े हैं । ८३ । सवैया । काल को ही प्राप्त कर अथवा समय

पाइ भयो भगवान सु जागत या जग जाकी कला है । काल ही पाइ भयो ब्रह्मा शिव काल ही पाइ भयो जुगीआ है । काल ही पाइ सुरासुर गंध्रब जच्छ भुजंग दिसा बिदिसा है । (मू०ग्रं०४४) और सकाल सभै बसि काल के एक ही काल अकाल सदा है ॥ ८४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ नमो देव देवं नमो खड़ग धारं । सदा एक रूपं सदा निरबिकारं । नमो राजसं सातकं तामसेअं । नमो निरबिकारं नमो निरजुरेअं ॥ ८५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ नमो बाण पाणं । नमो निरभयाणं । नमो देवदेवं । भवाणं भवेअं ॥८६॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ नमो खग्ग खंडं क्रिपाणं कटारं । सदा एक रूपं सदा निरबिकारं । नमो बाण पाणं नमो दंड धार्यं । जिनै चौदहूं लोक जोतं बिथार्यं ॥ ८७ ॥ नमशकारयं मोर तीरं तुफंगं । नमो खग्ग अदग्गं अभेअं अभंगं । गदायं ग्रिसटं नमो सैहथीअं । जिनै तुल्लीयं बीर बीयो न थीअं ॥ ८८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ नमो चक्र पाणं । अभूतं भयाणं । नमो उग्र दाड़ं । महा ग्रिसट गाड़ं ॥ ८९ ॥ नमो तीर तोपं । जिनै सत्र धोपं । नमो

के अन्तर्गत ही विष्णु हुआ जिसकी कला से यह संसार का चक्र चल रहा है । ब्रह्मा, शिव, योगी सब काल ही में पैदा हुए हैं तथा काल के अन्तर्गत ही सुर, असुर, गंधर्व, यक्ष, भुजंग, दिशाएँ, विदिशाएँ निर्मित हुई हैं । अन्य सभी काल के वश में हैं, केवल एक काल (प्रभु) ही कालातीत है ॥ ८४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ हे खड़ग-धारक देवों के देव ! तुम्हें नमस्कार करता हूँ । तुम सदा समरूप में रहनेवाले निर्विकार हो ! हे रोग-रहित, रजस्, तमस्, सत्त्वगुणस्वरूप, निर्विकार, तुम्हें मेरा प्रणाम है ॥८५॥ ॥ रसावल छंद ॥ हे हाथों में बाण रखनेवाले, अभय, देवों के देव, वर्तमान, भविष्य में अवस्थित रहनेवाले ! तुम्हें मेरा प्रणाम है ॥८६॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ हे खड़ग, खांड़े, कृपाण एवं कटार-स्वरूप, निर्विकार, सदा समरूप रहने वाले ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ । हे हाथों में बाण एवं दंड धारण करनेवाले और चौदह लोकों में अपनी ज्योति को फैलानेवाले ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ॥ ८७ ॥ हे तीर, तुफंग, खड़गस्वरूप, वेदाग़, अभय एवं अभंजनशील ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ । हे भारी गदावाले एवं बरछीस्वरूप ! तुम्हें नमस्कार है । जिसने अपनी बरछी पर वीरों को तौल दिया वह तुम्हारे सिवा अन्य कोई नहीं है ॥ ८८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ हे अभूत, भयंकर विशाल दाढ़ा वाले, वृहद् एवं गंभीर चक्रपाणि तुम्हें मेरा

धोप पट्टं । जिनै दुशट दट्टं ॥ ९० ॥ जिते शसत्र नाम । नमशकार तामं । जिते असत्र भेयं । नमशकार तेयं ॥ ९१ ॥ ॥ सवैया ॥ मेर करो त्रिण ते मुहि जाहि गरीबनिवाज न दूसर तोसो । भूल छिमो हमरी प्रभ आपन भूलनहार कहूँ कोऊ मोसो । सेव करी तुमरी तिन के सभ ही ग्रिह देखीअत द्रब्ब भरोसो । या कल मै सभ काल क्रिपान के भारी भुजान को भारी भरोसो ॥ ९२ ॥ सुंभ निसुंभ से कोट निसाचर जाहि छिनेक बिखै हन डारे । धूमरलोचन चंड अउ मुंड से माहख से पल बीच निवारे । चामर से रणचिच्छुर से रकतिच्छण से झट दै झझकारे । ऐसो सु साहिबु पाइ कहा परवाह रही इह दास तिहारे ॥ ९३ ॥ मुंडहु से मधुकीटभ से मुर से अघ से जिनि कोटि दले है । ओट करी कबहूँ न जिनै रण चोट परी पग द्वै न टले है । सिंध बिखै जे न बूडे निसाचर पावक बाण बहे न जले है । ते अस तोर बिलोक अलोक सु लाज को

प्रणाम है ॥८९॥ हे तीर, तोप, शत्रुओं का नाश करनेवाले ! तुमको मेरा प्रणाम है। हे युद्ध में काम आनेवाले लौह-वस्त्रो, जिससे शत्रु प्रभावहीन हो जाता है ! तुम्हें भी मेरा प्रणाम है ॥९०॥ जितने भी शस्त्रों के नाम हैं, उन सबको मेरा नमस्कार है। जितने भी अस्त्र हैं, उन सबको मेरा नमस्कार है ॥ ९१ ॥ ॥ सवैया ॥ मेरे जैसे तिनके को सुमेरु पर्वत बना देनेवाला गरीबनिवाज़ तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं है। हे प्रभु ! मेरी भूल को क्षमा करो, क्योंकि मेरे से बढ़कर भूलनहार कौन है ! जिन्होंने तुम्हारी सेवा की है, उन सबके घर में द्रव्य एवं आत्मविश्वास देखने को स्पष्ट मिलता है। इस कलियुग में कृपाण रूपी काल और भारी भुजाओं का ही अधिक-से-अधिक भरोसा है ॥ ९२ ॥ जिसने शुंभ-निशुंभ से करोड़ों निशाचर क्षण भर में समाप्त कर दिए। धूम्रलोचन, चंड और मुंड तथा महिषासुर जैसों को जिसने पल भर में नष्ट कर दिया। चामर, रणचिच्छुर, रक्तबीज जैसे राक्षसों को जिसने शीघ्र ही छटकाकर दूर फेंक दिया, ऐसे साहिब को प्राप्त कर, तुम्हारे इस सेवक को किसी की भी परवाह नहीं है ॥ ९३ ॥ मुंडकासुर, मधु-कैटभ, मुर एवं अघासुर जैसे करोड़ों का जिसने दलन किया है। ऐसे वीर जिन्होंने रणक्षेत्र में कभी किसी का आश्रय नहीं लिया और जो लड़ाई में दो पैर भी पीछे नहीं हटे। ऐसे राक्षस जो समुद्र में भी नहीं डूबे और अग्नि-बाणों का भी जिन पर कोई प्रभाव नही हुआ वे तुम्हारी कृपाण को देखकर लज्जा को त्यागकर

छाडिकै भाजि चले है ॥९४॥ रावण से महरावण से घटकानहु से पल बीच पछारे। बारदनाद अकंपन से जग जंग जुरे जिन सिउ जम हारे। कुंभ अकुंभ से जीत सभै जग सातहूँ सिंध (मू०ग्रं०४५) हथिआर पखारे। जे जे हुते अकटे बिकटे सु कटे करि काल क्रिपान के मारे ॥ ९५ ॥ जो कहूँ काल ते भाज के बाचिअत तो किह कुंट कहो भजि जइयै। आगे हूँ काल धरे अस गाजत छाजत है जिह ते नसि अइयै। ऐसो न कै गयो कोई सु दाव रे जाहि उपाव सो घाव बचइयै। जाते न छूटिऐ मूड़ कहूँ हसि ताको न किउ शरणागति जइयै ॥ ९६ ॥ क्रिशन अउ बिशन जपे तुहि कोटिक राम रहीम भली बिधि ध्यायो। ब्रहम जप्यो अरु संभ थप्यो तिह ते तुहि को किनहूँ न बचायो। कोट करी तपसा दिन कोटिक काहू न कौडी को काम कढायो। काम का मंत्र कसीरे के काम न काल को घाउ किनहूँ न बचायो ॥ ९७ ॥ काहे को कूर करे तपसा इन की कोऊ कौडी के काम न ऐहै। तोहि बचाइ सकै कहु कैसे कै आपन

भाग चले हैं ॥ ९४ ॥ रावण, कुंभकर्ण, घटकासुर जैसों को तुमने पल में नष्ट किया। मेघनाद जैसे, जो जंग में आने पर यमराज को भी हरा देते थे; कुंभ, अकुंभ जैसे राक्षसों, जिन्होंने सबको जीतकर सातों समुद्रों में अपने शस्त्रों का लहू धोया है, आदि विकट वीर काल की कृपाण से मृत्यु को प्राप्त हुए हैं ॥ ९५ ॥ यदि काल से बचकर कोई भागना चाहे तो बताओ वह किस दिशा में भागकर जायगा ? जिधर कोई जायगा उधर ही काल का खड्ग गर्जन करता हुआ शोभायमान होता दिखाई देगा। अब तक कोई भी ऐसा दाँव बता नहीं सका, जिससे काल के घाव से बचा जा सके। हे मूढ़ मन ! जिससे किसी भी प्रकार छूटा नहीं जा सकता, तुम उसकी शरण मे क्यों नहीं जाते हो ! ॥ ९६ ॥ तुमने करोड़ों कृष्णों एव विष्णुओं का, राम और रहीमों का ध्यान किया। तुमने ब्रह्मा का जाप किया, शिव का स्मरण किया, शिवलिंग-रूप में उसकी स्थापना की, तब भी तुम्हें कोई नहीं बचा सका। तुमने करोड़ों दिन करोड़ों की तपस्या की, परन्तु किसी से भी तुम्हारा कौड़ी मूल्य का भी काम न निकल सका। काम आनेवाला प्रभु-नाम का मंत्र सामान्य कार्यों में उलझे हुए सामान्य बर्तन बनानेवालों के किसी काम का नहीं होता और बाक़ी सब प्रपंच काल के घाव से रक्षा नहीं कर सकते ॥ ९७ ॥ हे कूकर मन, इन सबकी क्यों तपस्या कर रहे हो ये सब तुम्हारे जरा-सा भी काम नहीं आ सकते

छाव बचाइ न ऐहै । कोप कराल की पावक कुंड मै आप टंग्यो तिम तोहि टँगैहै । चेत रे चेत अजौ जीअ मै जड़ काल क्रिपा बिनु काम न ऐहै ॥ ९८ ॥ ताहि पछानत है न महा पसु जाको प्रतापु तिहूँ पुर माही । पूजत है परमेसर कै जिहकै परसै परलोक पराही । पाप करो परमारथ कै जिह पाप ते अति पाप लजाही । पाइ परो परमेसर के जड़ पाहन मै परमेसर नाही ॥ ९९ ॥ मोन भजे नही मान तजे नही भेख सजे नही मूँड मुडाए । कंठ न कंठी कठोर धरैं नही सीस जटान के जूट सुहाए । साचु कहौ सुनि लै चित दै बिनु दीन दिआल की साम सिधाए । प्रीत करे प्रभु पायत है किरपाल न भीजत लाँड कटाए ॥ १०० ॥ कागद दीप सभै करि कै अरु सात समुंद्रन की मसु कै हौ । काट बनासपती सगरी लिखबे हू के लेखन काज बनै हौ । सारसुती बकता करि कै जुगि कोटि गनेसि कै हाथ लिखै हौ । काल क्रिपान बिना बिनती न तऊ तुम को प्रभ नैक रिझै हौ ॥ १०१ ॥ (सु०ग्रं०४६)

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे स्री काल जी की उसतति प्रिथम धिआइ संपूरनम सतु सुभम सतु ॥ १ ॥ अफजू ॥

जो अपनी चोट को ठीक नहीं कर सकते, वे सब तुम्हारी रक्षा क्या करेंगे। क्रोध की अग्नि में ये सब टँगे हुए हैं, इसी तरह तुम्हें भी टाँग देंगे। हे जड़ जीव ! तू अब भी सावधान हो जा क्योंकि काल की कृपा बिना तुम्हारे कुछ भी काम नहीं आयेगा ॥९८॥ हे पशु, जिसका प्रताप त्रिलोकों में फैला हुआ है। हे मूढ़, तू उनकी पूजा कर रहा है, जिनकी पूजा करने से परलोक और भी दूर हो जाता है। तुम परमार्थ के नाम पर ऐसे पाप कर रहे हो, जिन पापों को करने से घोर पाप स्वयं लजा जायँ। हे जड़, उस परमेश्वर के पैर पकड़ो, इन पत्थरों में परमेश्वर नहीं है ॥ ९९ ॥ उसे मौन भजन से, मान तजने से, वेश बनाने से, एवं मूंड़ मुंड़ाने से नहीं पाया जा सकता। कंठ में कंठी धारण करने से या शीश पर जटा-जूट बढ़ा लेने से भी उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। मैं तुम्हें सच कहता हूँ कि बिना दीनदयालु की शरण में गए बिना काम नहीं बनेगा। परमात्मा को केवल प्रेम से पाया जा सकता है, मात्र सुन्नत करा लेने से परमात्मा का हृदय द्रवित नहीं होता ॥ १०० ॥ सारे द्वीपों को कागज़ बनाकर सातों समुद्रों की स्याही बना ली जाय, सारी वनस्पति को काटकर लेखनी बना लिया जाय, सरस्वती (विद्या की देवी) स्वयं वक्ता हो और करोड़ो

युगों तक लिखनेवाला लेखक गणेश हो, तब भी हे काल-कृपाण-प्रभु, तुम्हारे सामने विनीत हुए बिना ये सब प्रपंच तुम्हें रिझा नहीं सकते ॥ १०१ ॥

॥ इति श्री बिचित्र नाटक ग्रंथ में काल जी की स्तुति का
प्रथम अध्याय सम्पूर्ण ॥ १ ॥ अफजू ॥

॥ चौपई ॥ तुमरी महिमा अपर अपारा । जा का लह्यो न किनहू पारा । देव देव राजन के राजा । दीन दिआल गरीब निवाजा ॥ १ ॥ ॥ दोह्रिरा ॥ मूक उचरै शासत्र खटि पिंग गिरन चड़ि जाइ । अंध लखै बधरो सुनै जौ काल क्रिपा कराइ ॥ २ ॥ ॥ चौपई ॥ कहा बुद्ध प्रभ तुच्छ हमारी । बरनि सकै महिमा जु तिहारी । हम न सकत करि सिफत तुमारी । आप लेहु तुम कथा सुधारी ॥ ३ ॥ कहा लगै इहु कीट बखानै । महिमा तोरि तुही प्रभ जानै । पिता जनम जिम पूत न पावै । कहा तवन का भेद बतावै ॥ ४ ॥ तुमरी प्रभा तुमै बनि आई । अउरन ते नही जात बताई । तुमरी क्रिआ तुमही प्रभ जानो । ऊच नीच कस सकत बखानो ॥५॥ शेशनाग सिर सहस बनाई । द्वै सहंस रसनाह सुहाई । रटत

॥ चौपाई ॥ तुम्हारी महिमा अपरंपार है, इसका कोई अन्त नहीं पा सका ! तुम देवाधिदेव हो, राजाओं के राजा हो, दीनदयालु हो और गरीबनिवाज हो ॥ १ ॥ ॥ दोहा ॥ यदि काल की कृपा हो तो गूंगा षट्शास्त्र का उच्चारण कर सकता है, लँगड़ा पर्वत पर चढ़ सकता है, अंधा देख सकता है और बहरे को सुनाई देना प्रारम्भ हो सकता है ॥ २ ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु, मेरी तुच्छ बुद्धि में कहाँ इतनी शक्ति है, जो तुम्हारी महिमा का वर्णन कर सके। मैं आपकी प्रशंसा का वर्णन नहीं कर सकता। आप स्वयं ही (मेरी लिखी) कथा में सुधार करने की कृपा करें ॥ ३ ॥ यह कीट कहाँ तक तुम्हारी महिमा का वर्णन कर सकता है, तुम्हारी महिमा, हे प्रभु, तुम स्वयं ही जानते हो। पिता के जन्म के बारे में जैसे पुत्र नहीं जान सकता, वैसे ही तुम्हारे रहस्य का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ ॥ ४ ॥ तुम्हारी प्रभा का पार तुम ही पा सकते हो, अन्य कोई उसका वर्णन नहीं कर सकता। हे प्रभु, अपनी क्रियाओं को तुम ही जानते हो, तुम ऊँचे हो या नीचे हो, मैं कैसे इसका बखान कर सकता हूँ ! ॥५॥ शेषनाग सहस्र सिर बनाकर दो सहस्र जीभों से तुम्हारा नाम रटे तब भी तुम्हारा अन्त नहीं पा सकता ॥ ६ ॥ तुम्हारे कार्य-व्यापार को कोई क्या कहे तुम्हारी बातों को समझने मे बुद्धि उलझ जाती है तुम्हारे सूक्ष्म स्वरूप का वर्णन

अब लगे नाम अपारा । तुमरो तऊ न पावत पारा ।। ६ ।।
तुमरी क्रिआ कहा कोऊ कहै । समझत बात उरझ मति रहै ।
सूछम रूप न बरना जाई । बिरध सरूपहि कहो बनाई ।। ७ ।।
तुमरी प्रेम भगति जब गहिहौं । छोर कथा सभ ही तब
कहिहौं । अब मै कहो सु अपनी कथा । सोढी बंस उपजिया
जथा ।।८।। ।। दोहरा ।। प्रिथम कथा संछेपते कहो सु हित
चितु लाइ । बहुरि बडो बिसथार कै कहिहौ सभो सुनाइ ।। ९ ।।
।। चौपई ।। प्रिथम काल जब करा पसारा । ओअंकार ते
स्रिशटि उपारा । कालसैण प्रथमै भयो भूपा । अधिक अतुल
बलि रूप अनूपा ।। १० ।। कालकेत दूसर भूअ भयो । क्रूर
बरस तीसर जग ठयो । कालधुज चतुरथ न्रिप सोहै । जिह
ते भयो जगत सभ कोहै ।। ११ ।। सहसराछ जा को सुभ सोहै ।
सहस पाद जा के तन मोहै । शेखनाग पर सोइबो करै । जग
तिह शेखसाइ उचरै ।। १२ ।। एक स्रवण ते मैल निकारा ।
ताते मधु कीटभ तन धारा । दुतीअ कान ते मैलु निकारी ।
ता ते भई स्रिशटि इह सारी ।। १३ ।। तिन को काल बहुर बध

नहीं किया जा सकता, इसलिए मैं तुम्हारे वृहद् (सगुण) स्वरूप का कथन कर रहा हूँ ।। ७ ।। तुम्हारी प्रेम-भक्ति जब मुझे प्राप्त होगी, तभी मैं सक्षेप में तुम्हारी कथा कह सकूँगा । अब मैं अपनी कथा कहता हूँ कि किस प्रकार सोढ़ी वंश में (जिसमें गुरु गोविंद सिंह पैदा हुए थे) उत्पन्न हुआ ।। ८ ।। ।। दोहा ।। आरम्भ की कथा (संकोचवश) अति संक्षेप में चित्त को लगाकर कथन किया । पुन: अब अत्यन्त विस्तारपूर्वक सभी को सुनाते हुए कथन करूँगा ।। ९ ।। ।। चौपाई ।। जब काल ने सृष्टि का प्रथम बार प्रसार किया तो ओंकार से सृष्टि को पैदा किया । कालसेन (विष्णु) प्रथम राजा हुआ जो कि अतुल बलशाली तथा अनुपम था ।।१०।। दूसरा राजा कालकेतु (ब्रह्मा) शोभायमान हुआ और तीसरा क्रूरवर्ष (शिव) नामक राजा हुआ । चौथा राजा कालध्वज (महाविष्णु) हुआ जिससे सारा जगत अस्तित्व में आया ।। ११ ।। उसकी सहस्र आँखें शोभायमान हैं और उसके हज़ारों पैर विराजमान हैं । वह शेषनाग पर सोया करता है और इसीलिए संसार उसे शेषशय्यागामी के नाम से पुकारता है ।। १२ ।। उसने एक कान से मैल निकाला जिससे मधु और कैटभ ने शरीर धारण किया उसने दूसरे कान से मैल निकाला जिससे यह सारी सृष्टि बनी १३ मधु-कैटभ का काल ने वध किया और

करा । तिन को मेध समुंद मो परा । चिकन तास जल पर (मू०ग्रं०४७) तिर रही । मेधा नाम तबहि ते कही ।। १४ ।। साध करम जे पुरख कमावै । नाम देवता जगत कहावै । कुक्रित करम जे जग मै करही । नाम असुर तिन को सभ धरही ।। १५ ।। बहु बिथार कह लगै बखानीअत । ग्रंथ बढन ते अति डरु मानीअत । तिन ते होत बहुत न्रिप आए । दछ प्रजापति जिन उपजाए ।। १६ ।। दस सहंस्र तिहि ग्रिह भई कंनिआ । जिह समान कह लगै न अंनिआ । काल क्रिआ ऐसी तह भई । ते सभ ब्याह नरेसन दई ।। १७ ।। ।। दोहरा ।। बनता कद्रू दिति अदिति ए रिख बरी बनाइ । नाग नागरिप देव सभ दईत लए उपजाइ ।। १८ ।। ।। चौपई ।। ता ते सूरज रूप को धरा । जा ते बंस प्रचुर रवि करा । जौ तिन के कहि नाम सुनाऊँ । कथा बढन ते अधिक डराऊँ ।। १९ ।। तिन के बंस बिखै रघु भयो । रघुबंसहि जिह जगहि चल्यो । ता ते पुत्र होत भयो अज बर । महारथी अरु महा धनुरधर ।। २० ।। जब तिन

उनकी मेदा समुद्र में गिरी । उस चरबी की चिकनाहट समुद्र पर तैरने लगी, तभी से इस धरती को मेधा (मेदिनी) नाम से पुकारा जाने लगा ।। १४ ।। जो पुरुष साधु कर्म करते हैं, उन्हे जगत में देवता नाम से जाना जाता है तथा जो कुकृत्य करते हैं सभी उनको असुर के नाम से जानते हैं ।। १५ ।। अधिक विस्तार से मैं वर्णन तो करूँ, परन्तु ग्रंथ के विस्तार होने का भय बना हुआ है । उन राजाओं के बाद बहुत से राजा आए जिन्होंने दक्ष और प्रजापति का सृजन किया ।। १६ ।। उनके घर मे दस सहस्र कन्याएँ उत्पन्न हुई, जिनके समान अन्य कोई नहीं था । कालचक्र का प्रभाव कुछ ऐसा हुआ कि वे सब राजाओं को ब्याह दी गयीं ।। १७ ।। ।। दोहा ।। बिनता, कद्रू, दिति, अदिति का ऋषियों से विवाह कर दिया गया, जिनसे नाग, गरुड़, देव, दैत्य आदि उत्पन्न हुए ।। १८ ।। ।। चौपाई ।। उनमें से किसी ने सूर्य का रूप धारण किया जिसने प्रचुर रूप से वंशवृद्धि की । उनके वंश के लोगों के नाम यदि कहकर बताऊँ तो कथा-विस्तार का भय बन जायगा ।। १९ ।। उन्हीं के वंश में रघु नामक राजा हुए जिससे संसार में रघुवंश का चलन हुआ । उन्ही से अज नाम श्रेष्ठ पुत्र पैदा हुआ जो महारथी एवं धनुर्धर था । २० जब उसने योग-वेश सन्यास धारण किया तो राजपाट दशरथ को दे

अब लगे नाम अपारा । तुमरो तऊ न पावत पारा ॥ ६ ॥
तुमरी क्रिआ कहा कोऊ कहै । समझत बात उरझ मति रहै ।
सूछम रूप न बरना जाई । बिरध सरूपहि कहो बनाई ॥ ७ ॥
तुमरी प्रेम भगति जब गहिहौ । छोर कथा सभ ही तब
कहिहौ । अब मै कहो सु अपनी कथा । सोढी बंस उपजिया
जथा ॥८॥ ॥ दोहरा ॥ प्रिथम कथा संछेपसे कहो सु हित
चितु लाइ । बहुरि बडो बिसथार कै कहिहौ सभो सुनाइ ॥ ९ ॥
॥ चौपई ॥ प्रिथम काल जब करा पसारा । ओअंकार ते
स्रिशटि उपारा । कालसैण प्रथमै भयो भूपा । अधिक अतुल
बलि रूप अनूपा ॥ १० ॥ कालकेत दूसर भूअ भयो । क्रूर
बरस तीसर जग ठयो । कालधुज चतुरथ न्रिप सोहै । जिह
ते भयो जगत सभ कोहै ॥ ११ ॥ सहसराछ जा को सुभ सोहै ।
सहस पाद जा के तन मोहै । शेखनाग पर सोइबो करै । जग
तिह शेखसाइ उच्चरै ॥ १२ ॥ एक स्रवण ते मैल निकारा ।
ताते मधु कीटभ तन धारा । दुतीअ कान ते मैलु निकारी ।
ता ते भई स्रिशटि इह सारी ॥ १३ ॥ तिन को काल बहुर बध

नहीं किया जा सकता, इसलिए मैं तुम्हारे वृहद् (सगुण) स्वरूप का कथन कर रहा हूँ ॥ ७ ॥ तुम्हारी प्रेम-भक्ति जब मुझे प्राप्त होगी, तभी मैं सक्षेप मे तुम्हारी कथा कह सकूँगा । अब मैं अपनी कथा कहता हूँ कि किस प्रकार सोढ़ी वंश में (जिसमें गुरु गोविंद सिंह पैदा हुए थे) उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥ ॥ दोहा ॥ आरम्भ की कथा (संकोचवश) अति संक्षेप में चित्त को लगाकर कथन किया । पुनः अब अत्यन्त विस्तारपूर्वक सभी को सुनाते हुए कथन करूँगा ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब काल ने सृष्टि का प्रथम बार प्रसार किया तो ओंकार से सृष्टि को पैदा किया । कालसेन (विष्णु) प्रथम राजा हुआ जो कि अतुल बलशाली तथा अनुपम था ॥१०॥ दूसरा राजा कालकेतु (ब्रह्मा) शोभायमान हुआ और तीसरा क्रूरवर्ष (शिव) नामक राजा हुआ । चौथा राजा कालध्वज (महाविष्णु) हुआ जिससे सारा जगत अस्तित्व में आया ॥ ११ ॥ उसकी सहस्र आँखें शोभायमान हैं और उसके हज़ारों पैर विराजमान हैं । वह शेषनाग पर सोया करता है और इसीलिए संसार उसे शेषशय्यागामी के नाम से पुकारता है ॥ १२ ॥ उसने एक कान से मैल निकाला जिससे मधु और कैटभ ने शरीर धारण किया । उसने दूसरे कान से मैल निकाला जिससे यह सारी सृष्टि बनी १३ मधु कैटभ का काल ने वध किया और

करा । तिन को मेध समुंद मो परा । चिकन तास जल पर (मू०ग्रं०४७) तिर रही । मेधा नाम तबहि ते कही ।। १४ ।। साध करम जे पुरख कमावै । नाम देवता जगत कहावै । कुक्रित करम जे जग मै करही । नाम असुर तिन को सभ धरही ।। १५ ।। बहु बिथार कह लगै बखानीअत । ग्रंथ बढन ते अति डरु मानीअत । तिन ते होत बहुत न्रिप आए । दच्छ प्रजापति जिन उपजाए ।। १६ ।। दस सहंस्र तिहि ग्रिह भई कंनिआ । जिह समान कह लगै न अंनिआ । काल क्रिआ ऐसी तह भई । ते सभ ब्याह नरेसन दई ।। १७ ।। ।। दोहरा ।। बनता कद्रू दिति अदिति ए रिख बरी बनाइ । नाग नागरिप देव सभ दईत लए उपजाइ ।। १८ ।। ।। चौपई ।। ता ते सूरज रूप को धरा । जा ते बंस प्रचुर रवि करा । जौ तिन के कहि नाम सुनाऊँ । कथा बढन ते अधिक डराऊँ ।। १९ ।। तिन के बंस बिखै रघु भयो । रघुबंसहि जिह जगहि चल्यो । ता ते पुत्र होत भयो अज बर । महारथी अरु महा धनुरधर ।। २० ।। जब तिन

उनकी मेदा समुद्र में गिरी । उस चरबी की चिकनाहट समुद्र पर तैरने लगी, तभी से इस धरती को मेधा (मेदिनी) नाम से पुकारा जाने लगा ।। १४ ।। जो पुरुष साधु कर्म करते हैं, उन्हें जगत में देवता नाम से जाना जाता है तथा जो कुकृत्य करते हैं सभी उनको असुर के नाम से जानते हैं ।। १५ ।। अधिक विस्तार से मैं वर्णन तो करूँ, परन्तु ग्रंथ के विस्तार होने का भय बना हुआ है । उन राजाओं के बाद बहुत से राजा आए जिन्होंने दक्ष और प्रजापति का सृजन किया ।। १६ ।। उनके घर मे दस सहस्र कन्याएँ उत्पन्न हुईं, जिनके समान अन्य कोई नहीं था । कालचक्र का प्रभाव कुछ ऐसा हुआ कि वे सब राजाओं को ब्याह दी गयीं ।। १७ ।। ।। दोहा ।। विनता, कद्रू, दिति, अदिति का ऋषियों से विवाह कर दिया गया, जिनसे नाग, गरुड़, देव, दैत्य आदि उत्पन्न हुए ।। १८ ।। ।। चौपाई ।। उनमें से किसी ने सूर्य का रूप धारण किया जिसने प्रचुर रूप से वंशवृद्धि की । उनके वंश के लोगों के नाम यदि कहकर बताऊँ तो कथा-विस्तार का भय बन जायगा ।। १९ ।। उन्हीं के वंश में रघु नामक राजा हुए जिससे संसार में रघुवंश का चलन हुआ । उन्हीं से अज नाम श्रेष्ठ पुत्र पैदा हुआ जो महारथी एवं धनुर्धर था ।।२०।। जब उसने योग-वेश सन्यास धारण किया तो राजपाट दसरथ को दे

कालराइ जिनि नगर निकारा। भाज सनौढ देस ते गए। तही भूप जा बिआहत भए ॥ २८ ॥ तिह ते पुत्र भयो जो धामा। सोढीराइ धरा तिहि नामा। बंस सनौढ त दिन ते थीआ। परम पवित्र पुरख जू कीआ ॥ २९ ॥ ता ते पुत्र पौत्र हुइ आए। ते सोढी सभ जगत कहाए। जग मै अधिक सु भए प्रसिद्धा। दिन दिन तिन के धन की ब्रिद्धा ॥ ३० ॥ राज करत भए बिबिध प्रकारा। देस देस के जीत न्रिपारा। जहाँ तहाँ तिह धरम चलायो। अत्र पत्र कह सीस ढुरायो ॥ ३१ ॥ राजसूअ बहु बारन कीए। जीत जीत देसेस्वर लीए। बाजमेध बहु बारन करे। सकल कलूख निजु कुल के हरे ॥ ३२ ॥ बहुर बंस मै बढो बिखाधा। मेट न सका कोऊ तिह साधा। बिचरे बीर बनैतु अखंडल। गहि गहि चले भिरन रन मंडल ॥ ३३ ॥ धन अरु भूम पुरातन बैरा। जिन का मूआ करति जग घेरा। मोह बाद अहंकार पसारा। काम क्रोध जीता जग सारा ॥ ३४ ॥ ॥ दोहरा ॥ धनि धनि धन को भाखीऐ जा का जगतु गुलामु। सभ निरखत या को फिरै सभ

वहाँ के राजा के यहाँ उनका ब्याह हुआ ॥ २८ ॥ उस स्थान पर उनका जो पुत्र हुआ उसका नाम सोढ़ीराय रखा गया। उसी दिन से सनौढ़ वंश चला और परमपिता परमात्मा ने इसको आगे बढ़ाया ॥ २९ ॥ उनसे जो पुत्र-पौत्र पैदा हुए वे सब इस संसार में सोढ़ी कहलाए। जग में वे अधिक प्रसिद्ध हो गए और दिन-प्रतिदिन उनके यहाँ धन-धान्य की वृद्धि होने लगी ॥ ३० ॥ उन्होंने विविध प्रकार से राज किया और देश-देशान्तरों के राजाओं को जीता। सर्वत्र उन्होंने धर्म का प्रसार किया और अपने सिर पर छत्र झुलवाया ॥ ३१ ॥ बहुत बार उन्होंने राजसूय यज्ञ किये और देशों के राजाओं को जीत लिया। उन्होंने कई बार अश्व-मेघ यज्ञ किये तथा अपने वंश के सभी पाप नष्ट कर दिए ॥ ३२ ॥ फिर इन वंशों (दोनों वंशों) में वैर-भावना बढ़ी और उस वैर-भावना को कोई भी साधु-संत मिटा नहीं सका। बलशाली वीर (फिर) विचरण करने लगे और रणमंडल में एक-दूसरे से भिड़ने लगे ॥ ३३ ॥ धन और भूमि शत्रुता के प्राचीन कारण हैं जिनसे सारा संसार घिरा हुआ है। मोह, अहम् एवं आडम्बर के प्रसार ने तथा काल-क्रोध ने सारा जग जीत लिया है ॥ ३४ ॥ दोहा। उसी को धन्य कहा जाय जिसका सारा संसार गुलाम है। सभी उसी की ओर निहारते हैं और सब उसी के

चल करत सलाम ॥ ३५ ॥ ॥ चौपई ॥ काल न कोऊ करन सुमारा । बैर बाद अहंकार पसारा । लोभ मूल इह जग को हूआ । जासो चाहत सभै को मूआ ॥ ३६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे सुभि बंस बरननं दुतीआ धिआइ ॥ २ ॥ अफजू ॥ १३७ ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ रचा बैर बादं बिधाते अपारं । जिसै साधि साकिओ न कोऊ सुधारं । बली कामरायं महा लोभ मोहं । गयो कउन बीरं सु याते अलोहं ॥ १ ॥ तहा बीर बंके बकै आप मद्धं । उठै शसत्र लै लै मचा जुद्ध सुद्धं । कहूँ खप्परी खोल खंडे अपारं । नचै बीर बैताल डउरू डकारं ॥ २ ॥ कहूँ ईस सीसं पुऐ रुंड मालं । कहूँ डाक डउरू कहूँ कं बितालं । चवी चावडीअं किलंकार कंकं । गुथी लुत्थ जुत्थं बहे बीर बंकं ॥ ३ ॥ परी कुट्ट कुट्टं रुले तच्छ मुच्छं । रहे हाथ डारे उभै उरध मुच्छं ।

सामने सिर झुकाते हैं ॥ ३५ ॥ ॥ चौपाई ॥ काल का स्मरण किसी ने नहीं किया और बैर-विरोध, अहंकार का प्रसार ही होता रहा । सारे संसार का मूल अब लोभ ही हो गया है, जिससे सभी चाहते हैं कि अन्य समाप्त हो जायँ (ताकि सब कुछ हड़प किया जा सके) ॥ ३६ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथ का वंश-वर्णन नामक द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥ अफजू ॥ १३७ ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ विधाता ने यह वैर और विवाद का युद्ध शुरू करवा दिया जिसे कोई भी साधु-सन्त साध न सका । महाबली कामराय महा लोभ और मोह में ग्रस्त था और इस लोभ-मोह से कौन बच सका है ! ॥ १ ॥ रणभूमि में वीर-बाँकुरे आपस में वाद-विवाद कर रहे है । वे शस्त्र लेकर युद्ध की धूम मचा रहे हैं । कहीं खोपड़ी, कहीं शिरस्त्राण, कहीं खड्ग दिखाई दे रहे हैं तथा कहीं बैताल वीर डमरू बजा-बजाकर नाच रहे हैं ॥ २ ॥ कहीं शिव सिरों की माला पिरोकर पहने हुए हैं, कहीं डाकिनियाँ एवं बैताल गर्जन कर रहे हैं । चौबीस चामुण्डाएँ किलकारियाँ भर रही हैं और वीर बाँकों की लाशें आपस में गुत्थमगुत्था हो रही हैं ३ भीषण मार के कारण मस्तक और तरकश इधर-उधर तमाम पड़े हुए हैं और वीर धरती पर लेटे हुए हाथ उठा उठाकर लड़ने का

कहूँ (मू०ग्रं०४९) खोपरी खोल खिगं[1] खतंगं[2]। कहूँ खत्रीअं खग्ग खेतं निखंगं ॥ ४ ॥ चवी चांवडी डाकनी डाक मारैं। कहूँ भैरवो भूत भैरों बकारैं। कहूँ बीर बैताल बंके बिहारं। कहूँ भूत प्रेतं हसैं मास हारं ॥ ५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ महाबीर गज्जे। सुणैं मेघ लज्जे। झंडा गड्ड गाडे। मंडे रोस बाढे ॥ ६ ॥ क्रिपाणं कटारं। भिरे रोस धारं। महांबीर बंकं। भिरे भूम हंकं ॥ ७ ॥ मचे सूर शसत्रं। उठी झार[3] असत्रं। क्रिपाणं कटारं। परी लोह मारं ॥ ८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ हलब्बी जुनब्बी सरोही दुधारी। बही कोप काती क्रिपाणं कटारी। कहूँ सैहथीअं कहूँ सुद्ध सेलं। कहूँ सेल सांगं भई रेलपेलं ॥ ९ ॥ ॥ नराज छंद ॥ सरोख सूर साजिअं। बिसारि शंक बाजिअं। निशंक शसत्र मारहीं। उतार अंग डारहीं ॥ १० ॥ कछू न कान राखहीं। सु मारि मारि भाखहीं। सु हाँक हाठ रेलियं। अनंत शसत्र

प्रयास कर रहे हैं। कहीं पर खोपड़ियाँ, शिरस्त्राण, घोड़े एवं बाण पड़े हुए हैं तो कहीं पर क्षत्रिय खड्ग-प्रहार से कटे हुए धराशायी दिखाई दे रहे हैं ॥ ४ ॥ चामुण्डा, डाकिनियाँ डकार रही हैं और भैरव तथा भूतगण भभक रहे हैं। कहीं बैताल विहार कर रहा है तथा कहीं भूत-प्रेत अट्टहास करके मांस का भक्षण कर रहे हैं ॥ ५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ महावीरों की गर्जना सुन मेघ लजायमान हो उठे। अपने-अपने झंडे गाड़ दिए गए जिससे दोनों पक्षों में और अधिक क्रोध का संचार हुआ ॥ ६ ॥ रुष्ट होकर दोनों उनके वीर कृपाणों एवं कटारों को लेकर भिड़ पड़े। अनेकों महावीर उस युद्धभूमि में एक-दूसरे से भिड़ उठे ॥ ७ ॥ शूरमाओं के शस्त्र चल उठे एवं अस्त्रों की वर्षा होने लगी। कृपाण, कटार और लोहे की मार चारों तरफ़ पड़ने लगी ॥ ८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ अलब्बी, जुनब्बी, सरोही एवं दुधारी कृपाण एवं कटारियाँ क्रोधित होकर चल निकलीं। कहीं बर्छी और शूल आदि शस्त्रों के कारण भगदड़ मच गई ॥ ९ ॥ ॥ नराज छंद ॥ रुष्ट हुए शूरवीर शोभायमान हो रहे हैं और शंकाओं से निवृत्त होकर घोड़ों पर सवार हैं। बिना किसी शंका के शस्त्रों के वार चल रहे हैं और वीर अंगों को काटते चले जा रहे हैं ॥ १० ॥ किसी ने भी कुछ उठा नहीं रखा और मारो-मारो की ध्वनि गूंज रही है। एक-दूसरे को धकेलने का हाँका सुनाई पड़ रहा है और

---

१ घोड़े २ बाण। ३ वर्षा।

झेलियं ॥ ११ ॥ हजार हूर अंबरं । बिरुद्धकै सुअंबरं । करूर भाँत डोलही । सु मार मार बोलही ॥ १२ ॥ कहूँ कि अंगि कट्टीअं । कहूँ सरोह पट्टीअं । कहूँ सु मास मच्छीअं । गिरे सु तच्छ मुच्छीअं ॥ १३ ॥ ढमक्क ढोल ढालयं । हरोल हाल चालयं । झटाक झट्ट बाहीअं । सु बीर सैन गाहीअं ॥ १४ ॥ नवं निसाण बाजिअं । सु बीर धीर गाजिअं । क्रिपाण बाण बाहही । अजात अंग लाहही ॥१५॥ बिरुद्ध क्रुद्ध राजियं । न चार पैर भाजियं । संभार शसत्र गाजही । सु नाद मेघ लाजही ॥ १६ ॥ हलंक हाँक मारही । सरक्क शसत्र झारही । भिरे बिसारि शोकियं । सिधारि देव लोकियं ॥ १७ ॥ रिसे बिरुद्ध बीरियं । सु मारि झारि तीरियं । शबद संख बज्जियं । सु बीर धीर सज्जियं ॥१८॥ ॥ रसावल छंद ॥ तुरी संख बाजे । महांबीर साजे । नचे तुंद ताजी । मचे सूर गाजी ॥ १९ ॥ झिमी तेज तेगं । मनो

अनन्त शस्त्रों के वारों को झेला जा रहा है ॥ ११ ॥ आसमान की हजारों परियाँ मृत्यु का रूप धारण कर धरती पर स्वयंवर के लिए क्रूर बनकर डोल रही हैं और मारो-मारो की बोली लगा रही हैं ॥ १२ ॥ किसी का अंग कटा हुआ है और किसी ने अंग को बाँधा हुआ है। शरीर की मासपेशियाँ और तरकश आदि इधर-उधर बिखरे पड़े हैं ॥ १३ ॥ ढोल और ढाल की धमक सुनाई पड़ रही है और शस्त्र चलाये जा रहे है। झटपट शस्त्रों के प्रहार से वीर लोग सेना का मंथन कर रहे हैं ॥ १४ ॥ नये नगाड़े बज रहे हैं और धैर्यवान वीर गरज रहे हैं। ये वीर कृपाण और बाणों से अंगों का छेदन कर रहे हैं ॥ १५ ॥ एक-दूसरे के विरुद्ध क्रोधित खड़े हुए वीर शोभायमान हो रहे हैं और चार पग भी भागकर इधर-उधर नहीं होते। वे शस्त्रों को सम्हालकर इस प्रकार गरज रहे है कि उनकी गर्जना को सुनकर बादल भी लजायमान हो रहे हैं ॥ १६ ॥ चिल्ला-चिल्लाकर हाँका देने के स्वर में साथ-ही-साथ खींच-खींचकर वे शस्त्रों को चला रहे हैं। शोक-दुःख को भूलकर ये वीर आपस में भिड़े हुए हैं और देवलोक को जा रहे है ॥ १७ ॥ विरोधी पक्षों के वीर अत्यन्त रुष्ट हैं और तीरों की मार से सबको झाड़ रहे हैं। शंख की ध्वनि को सुनकर वीर फिर एक-दूसरे के सामने लड़ने के लिए तैयार खड़े दिखाई देते हैं ॥ १८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ तुरही एवं शंख बज रहे हैं एवं महावीर लडाई के लिए सन्नद्ध तैयार हैं। तेज घोडे नाच रहे हैं और सूरमाओ ने धूम मचा दी है १९ तेज तलवारें इस प्रकार

बिज्ज बेगं । उठै नद्द नादं । धुनं न्रिबिखादं ॥ २० ॥ तुटे खग्ग खोलं । मुखं मार बोलं । धका धीक धक्कं । गिरे हक्क बक्कं ॥ २१ ॥ दलं दीह गाहं । अधो अंग लाहं । प्रयोघं प्रहारं । बकं मार मारं । (मू० ग्रं०५०) ॥ २२ ॥ नदी रकत पूरं । फिरी गैणि हूरं । गजे गैण काली । हसी खप्पराली ॥ २३ ॥ महां सूर सोहं । मंडे लोह क्रोहं । महां गरब गज्यं । धुणं मेघ लज्यं ॥ २४ ॥ छके लोह छक्कं । मुखं मार बक्कं । मुखं मुच्छ बंकं । भिरे छाड शंकं ॥ २५ ॥ हकं हाक बाजी । घिरी सैण साजी । चिरे चार ढूके । मुखं मार कूके ॥ २६ ॥ रुके सूर संगं । मनो सिंध गंगं । ढहे ढाल ढक्कं । क्रिपाणं कड़क्कं ॥ २७ ॥ हकं हाक बाजी । नचे तुंद ताजी । रसे रुद्र पागे । भिरे रोस जागे ॥ २८ ॥ गिरे सुद्ध सेलं । भई रेल पेलं । पलं हार नच्चे । रणं बीर

चमक रही हैं मानो बिजली वेग से चल रही हो । रणक्षेत्र से ध्वनि उठ रही है, जो एक रसध्वनि है ॥ २० ॥ खड्ग एवं टोप टूट चुके हैं और मुख की बोली भी मार खा चुकी है । ऐसे वीर युद्ध के धक्को मे हक्के-बक्के होकर गिर पड़े है ॥ २१ ॥ दीर्घ दलों का मन्थन किया जा रहा है और आधे अंग कट रहे हैं । लोहे के मूसल के प्रहार और मारामार के साथ बकवाद चल रही है ॥ २२ ॥ नदियाँ रक्त से भर गई हैं और मृत्यु रूपी अप्सरा व्योम में घूम चुकी है । महाकाली भी गगन से गरज रही है और खप्पर को हाथ में लेकर हँस रही है ॥ २३ ॥ महान शूरवीर शोभायमान हो रहे हैं और क्रोधित होकर लौहास्त्रों को चला रहे हैं । वे महान गर्व के साथ गरज रहे हैं और उनकी ध्वनि सुनकर मेघ भी लजा रहे हैं ॥ २४ ॥ वीरगण लौह का भरपेट भोजन कर रहे है और मुख से मार-मार चिल्ला रहे हैं । बड़ी-बड़ी मूँछों वाले रण-बाँकुरे सब शंकाओं को छोड़कर आपस में भिड़ चुके हैं ॥ २५ ॥ घोड़ों को हाँककर सभी सेना को घेरा जा रहा है । चारों दिशाओं को नापा जा रहा है और कई वीर मार के कारण तड़प-तड़पकर मुख से चिल्ला रहे हैं ॥ २६ ॥ शूरवीरों का बहाव इस प्रकार रुक गया है जैसे गंगा का बहाव समुद्र में जाकर समाप्त हो जाता है । ढाल आदि पर कृपाणें कड़क रही हैं ॥ २७ ॥ घोड़ों को हाँका जा रहा है और तेज अश्व नृत्य कर रहे हैं । रुद्र के चरणों का ध्यान धर अत्यन्त रुष्ट होकर वीर आपस मे भिड़ गए हैं ॥ २८ ॥ बर्छियों के साथ गिरे हुए वीरों के कारण भगदड मची हुई है । मांसाहारी जीव नृत्य कर रहे हैं और दूसरी ओर

मच्चे ॥ २९ ॥ हसे मासहारी । नचे भूत भारी । महां ढीठ ढूके । मुखं मार कूके ॥ ३० ॥ गजै गैण देवी । महां अंस भेवी । मले भूत नाचं । रसं रुद्र राचं ॥ ३१ ॥ भिरैं बैर रुज्झे । महां जोध जुज्झे । झंडा गड्ड गाढे । बजे बैर बाढे ॥ ३२ ॥ गजं गाह बाधे । धनुरबान साधे । बहे आप मद्धं । गिरे अद्ध अद्धं ॥ ३३ ॥ गजं बाज जुज्झे । बली बैर रुज्झे । न्रिभै शसत्र बाहैं । उभै जीत चाहैं ॥ ३४ ॥ गजे आन गाजी । नचे तुंद ताजी । हकं हाक बज्जी । फिरै सैन भज्जी ॥ ३५ ॥ मचं मत्त माते । रसं रुद्र राते । गजं जूह साजे । भिरे रोस बाजे ॥ ३६ ॥ झमी तेज तेगं । घणं बिज्ज बेगं । बहे बार बैरी । जलं जिउ गंगैरी ॥ ३७ ॥ अपो आप बाहं । उभै जीत चाहं । रसं रुद्र राते । महां मत्त माते ॥ ३८ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ मचे बीर बीरं अभूतं

रणवीरों ने युद्ध की धूम मचा रखी है ॥ २९ ॥ मांसाहारी हँस रहे हैं और भारी भरकम भूत आदि नृत्य कर रहे हैं । महाखल एकत्र हो गए हैं और उनके मुखों के तीव्र स्वर चारों ओर सुनाई पड़ रहे हैं ॥ ३० ॥ आसमान में देवी भी गरज रही हैं जो कि स्वयं बड़ी देवी का अंश है । भूत नाच रहे हैं और रुद्र भी रसमग्न हैं ॥ ३१ ॥ वैर में पूर्णरूप से लिप्त होकर वीर आपस में भिड़ रहे हैं और महान योद्धा जूझ रहे हैं । झंडों को गाड़ा जा रहा है जिससे शत्रुता का भाव और बढ़ रहा है ॥३२॥ हाथी पर हौदा बाँधे और धनुष-वाण को साधते हुए वीर सेना के मध्य में दिखाई पड़ रहे हैं और खण्ड-खण्ड होकर गिर रहे हैं ॥ ३३ ॥ हाथी और घोड़े भी आपस में जूझ रहे हैं और शूरवीर भी आपस में गुत्थमगुत्था हो रहे हैं । वे सब अभय होकर शस्त्र चला रहे हैं और अपनी-अपनी जीत की इच्छा कर रहे हैं ॥ ३४ ॥ शूरमा गरज रहे हैं और तीव्रगामी अश्व नाच उठे । हाँक की भीषण आवाज़ सुनकर इस घोड़ों का मुंह फिर गया है और ये सेना की ओर भाग खड़े हुए हैं ॥ ३५ ॥ वीर मदमस्त होकर और रौद्र रस में लीन होकर हाथियों के समूह को सजाकर पूर्ण रोष के साथ आपस में भिड़ गए हैं ॥ ३६ ॥ तलवार की झमाझम इस प्रकार दिखाई दे रही हो जैसे बादल में बिजली हो । शत्रुओं का रक्त इस प्रकार वह रहा है जैसे गंगा में जल बह रहा हो ॥ ३७ ॥ अपनी-अपनी भुजाएँ उठाकर सभी अपनी-अपनी जीत की इच्छा व्यक्त कर रहे हैं तथा सभी वीर मदमस्त होकर रौद्र रस का आनन्द ले रहे हैं ३८ भुजंग छन्द । आश्चर्यजनक रूप से वीर वीरों से भिड़

भयाणं। बजी भेर भुंकार धुक्के निसाणं। नवं नद्द नीसाण गज्जे गहीरं। फिरं रुंड मुंडं लनं तच्छ तीरं॥ ३६॥ बहे खग्ग खेतं खिआलं खतंगं। रुले तच्छ मुच्छं महा जोध जंगं। बँधै बीर बाना बडे ऐंठिवारे। घुमै लोह घुट्टं मनो मतवारे॥ ४०॥ उठी कूह जूहं समर सार बज्जियं। किधो अंत के काल को मेघ गज्जियं। भई तीर भीरं कमाणं कड़क्कियं। बजे लोह कोहं महां जंगि मच्चियं॥ ४१॥ बिरच्चे महां जंग जोधा जुआणं। खुले (मू०ग्रं०५१) खग्ग खत्री अभूतं भयाण। बली जुज्झ रुज्झै रसं रुद्र रत्ते। मिले हत्थ बक्खं महा तेज तत्ते॥ ४२॥ झमी तेज तेगं सु रोसं प्रहारं। रुले रुंड मुंडं उठी शसत्र झारं। बबक्कंत बीरं भभक्कंत घायं। मनो जुद्ध इंद्रं जुट्यो ब्रितरायं॥ ४३॥ महां जुद्ध मच्चियं महां सूर गाजे। अपो आप मै शसत्र सों शसत्र बाजे। उठै झार सांगं

उठे हैं। भेरी बज चुकी है और पताकाएँ झूल चुकी हैं। नये नाद के साथ पताकाओं के समक्ष वीर गर्जन कर रहे हैं और कई रुण्ड-मुण्ड होकर तरकश और तीर लिये घूम रहे हैं॥ ३९॥ मैदान में खड्ग, बर्छी आदि शस्त्र चल रहे हैं और कई महान योद्धा बड़े-बड़े शहतीरों की तरह मैदान में पड़े धूल-धूसरित हो रहे हैं। बड़ी-बड़ी अँकड़ वाले वीर अशक्त होकर बँध गए हैं और मतवाले होकर लोहू के घूंट पी रहे हैं॥ ४०॥ सारी दिशाओं से युद्ध में लोहा बजने के कारण कूक ही कूक सुनाई दे रही है और ऐसा लग रहा है मानो प्रलयकाल का मेघ-गर्जन हो रहा है। तीरों की भीड़ लग गई है और कमानों की कड़कड़ाहट सुनाई पड़ रही है। क्रोध में लोहा बज रहा है और महान युद्ध छिड़ा हुआ है॥ ४१॥ युवक योद्धाओं ने महान युद्ध की रचना की है और क्षत्रियों के आश्चर्यजनक रूप से भयकारक खड्ग म्यानों से बाहर आ गए हैं। महाबली रौद्र-रस में लिप्त युद्ध में मग्न हो गए हैं और महातेजस्वी होकर अपने हाथों से हाथ और सीने से सीना मिला रहे हैं॥ ४२॥ रोषपूर्ण प्रहारों से तेज तलवारों की चमक बढ़ गई है और शस्त्रों की वर्षा से रुण्ड-मुण्ड धूल में लोट रहे हैं। वीर चिल्ला रहे हैं और उनके घाव भी भभककर रक्त फेंक रहे हैं। ऐसा युद्ध चल रहा है, मानो इन्द्र और वृत्रासुर आपस में भिड़े हों॥ ४३॥ शूरमाओं की गर्जन से महायुद्ध तेजी पर है और आपस में शस्त्र बज रहे हैं। बर्छियों की वर्षा हो रही है और क्रोधित होकर लोहे की धूम मची हुई है ऐसा लग रहा है जैसे वसन्त का खेल चल

मचे लोह कोहं। मनो खेल बासंत माहंत सोहं ॥ ४४ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जिते बैर रुज्झं। तिते अंत जुज्झं। जिते खेत भाजे। तिते अंति लाजे ॥ ४५ ॥ तुटे देह बरमं। छुटी हाथ चरमं। कहूं खेत खोलं। गिरे सूर टोलं ॥ ४६ ॥ कहूँ मुछ मुक्खं। कहूँ शसत्र सक्खं। कहूँ खोल खग्गं। कहूँ परम पग्गं ॥ ४७ ॥ गहे मुच्छ बंकी। मंडे आन हंकी। हका हुक्क ढालं। उठे हाल चालं ॥४८॥ ॥ भुजंग छंद ॥ खुले खग्ग खूनी महांबीर खेतं। नचे बीर बैतालयं भूत प्रेतं। बजे डंक डउरू उठे नाद संखं। मनो मल्ल जुट्टे महां हत्थ बक्खं ॥ ४९ ॥ ॥ छपै छंद ॥ जिनि सूरन संग्राम सबल सामुहि ह्वै मंड्यो। तिन सुभटन ते एक काल कोऊ जिअत न छड्यो। सभ खत्री खग खंड खेत भू मंडप अहुट्टे। सार धार धर धूम मुकत बंधन ते छुट्टे। ह्वै टूक टूक जुज्झे सभै पाव न पाछै डारियं। जैकार अपार सु धार हू अबा शिवलोक सिधारियं ॥ ५० ॥ ॥ चउपई ॥ इह बिध मचा घोर संग्रामा।

रहा हो ॥ ४४ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जितने भी वैर-भावना से लिप्त थे, सभी जूझ मरे। जितने भाग गए वे अन्त तक लज्जित होते रहे ॥ ४५ ॥ देह के कवच टूट गए और हाथों की चमड़ी कट गई। कहीं शिरस्त्राण पड़े हुए है और कहीं शूरवीर गिरे पड़े हैं ॥ ४६ ॥ कही मूँछोंवाले भयंकर चेहरे पड़े हैं और कहीं खाली शस्त्र पड़े हुए हैं। कही खड्गों के म्यान पड़े हुए हैं और कहीं पैर ही पैर पड़े हुए हैं ॥ ४७ ॥ बाँकी मूँछो वालों ने फिर युद्धभूमि को आ पकड़ा है और चिल्लाहट शुरू कर दी है। ढालों की आवाज से फिर वही स्थिति पैदा हो गई है ॥४८॥ ॥ भुजंग छंद ॥ खड्ग खुल गए हैं और खूनी महावीर मारे जा रहे है। भूत-प्रेत एवं बैताल आदि नाच रहे हैं, डमरू की डमक बज उठी है और शखों का नाद सुनाई पड़ रहा है। वीर इस प्रकार आपस में भिड़े पड़े है, मानो पहलवान एक-दूसरे के कमर में हाथ डालकर जुटे हुए हों ॥ ४९ ॥ ॥ छप्पय छंद ॥ जिन शूरमाओं ने इस बलशाली संग्राम का मण्डन किया, उन सुभटों में से कोई भी काल द्वारा जीवित नहीं छोड़ा गया। सभी क्षत्री खड्ग से खण्डित होकर भूमण्डल से हट गए और लोहे की धार का स्वाद चख बंधन से मुक्त होकर छूट गए। सभी टुकडे टुकडे होकर जूझते रहे परन्तु किसी ने भी पैर पीछे नहीं डाला और काली की जय

सिधए सूरि सूरि के धामा। कहा लगैं वह कथो लराई। आपन प्रभा न बरनी जाई ॥ ५१ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ लवी सरब जीते कुशी सरब हारे। बचे जे बली प्रान लै कै सिधारे। चतुर बेद पठियं कीयो काशि बासं। घनै बरख कीने तहां ही निवासं ॥ ५२ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे लवी कुशी जुद्ध बरनन नामु त्रितीआ धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ ३ ॥ अफजू ॥ १८६ ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ जिनै बेद पठिओ सु बेदी कहाए। तिनै धरम के करम नीके चलाए। पठे कागदं मद्र राजा सुधारं। अपो आप मो बैर भावं बिसारं ॥ १ ॥ न्रिपं मुकलियं दूत सो काशि आयं। सभै बेदियं (मू०ग्रं०५२) भेद भाखे सुनायं। सभै बेदपाठी चले मद्र देसं। प्रनामं कीयो आनकै कै नरेसं ॥ २ ॥ धुनं बेद की भूप ता ते कराई। सभै पास बैठे सभा बीच भाई। पड़े सामबेदं जुजरबेद कत्थं। रिगंबेद पठियं करे भाव हत्थं ॥ ३ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ अथरबेद

घोर संग्राम हुआ और शूरवीर शूरवीरों के घर स्वर्ग सिधार गए। कहाँ तक उस लड़ाई का कथन करूँ। मेरी बुद्धि द्वारा उसका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ५१ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ लव के कुल के सभी जीत गए और कुश के वंश के सभी लोग हार गए। जो बलशाली बच गए वे प्राण लेकर भागे (कुश के वंशवालों ने) चारों वेदों का पठन किया और काशी-वास लिया और बहुत वर्षों तक वहीं निवास किया ॥ ५२ ॥

॥ इति बचित्र नाटक ग्रन्थ के लव-कुश-युद्ध-वर्णन नामक तृतीय अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ अफजू ॥ १८६ ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ जिन्होंने वेद-पाठ किया वे वेदी कहलाये और उन्होंने धर्म के कर्मों का चलन किया। (कालान्तर में) उन्होंने मद्र देश के राजा के पास पत्र भेजा कि हमें आपस का वैर-भाव त्याग देना चाहिए ॥ १ ॥ राजा ने दूत को काशी भेजा जिसको वेदियों ने सारा भेद एवं बातें बताईं। सभी वेदपाठी मद्र देश की ओर चल दिए। राजा ने उन्हें आकर प्रणाम किया ॥ २ ॥ राजा ने उनसे वेदध्वनि कराई और सभी लोग सभा के बीच में विराजमान हुए। सामवेद, यजुर्वेद ऋग्वेद आदि का पठन हुआ ॥ ३ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ अथर्ववेद

पट्ठियं । सुणे पाप नट्ठियं । रहा रीझ राजा । दीआ सरब साजा ।। ४ ।। लयो बनबासं । महां पाप नासं । रिखं भेस कीयं । तिसै राज दीयं ।। ५ ।। रहे होर लोगं । तजे सरब सोगं । धनं धाम त्यागे । प्रभं प्रेम पागे ।। ६ ।। ।। अड़िल ।। बेदी भयो प्रसंन राज कह पाइकै । देत भयो बर दान होऐ हुलसाइकै । जब नानक कल मै हम आन कहाइ है । हो जगत पूज करि तोहि परमपद पाइ है ।।७।। ।। दोहरा ।। लवी राज दे बन गए बेदिअन कीनो राज । भाँति भाँति तिनि भोगियं भूअ का सकल समाज ।। ८ ।। ।। चउपई ।। त्रितिय बेद सुनबे तुम कीआ । चतुर बेद सुनि भूअ को दीआ । तीन जनम हमहूँ जब धरिहै । चौथे जनम गुरू तुहि करिहै ।। ९ ।। उत राजा काननहि सिधायो । इत इन राज करत सुख पायो । कहा लगे करि कथा सुनाऊँ । ग्रंथ बढन ते अधिक डराऊँ ।।१०।।

।। इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे बेद पाठ भेट राज चतुरथ धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ।। ४ ।। अफजू ।। १९९ ।।

पढा गया जिसके सुनने से पाप भाग जाते हैं । राजा प्रसन्न हुआ और उसने सर्वस्व दे दिया ।। ४ ।। राजा ने वनवास ले लिया जिससे महापाप नष्ट हो जाते हैं । ऋषिवेश वालों को (कुशवंशियों को) राज्य दे दिया ।। ५ ।। अन्य लोग भी वहीं उनके साथ रहे और सर्वशोकों का त्याग किया गया । धन और धाम को त्यागकर (लववंशी) प्रभु के प्रेम में मगन हो गए ।। ६ ।। ।। अड़िल ।। राज्य को प्राप्त कर वेदी प्रसन्न हुए और प्रसन्न होकर वरदान देने लगे । जब कलयुग में हम नानक के नाम से जाने जायेंगे तो सारा संसार हमें मानेगा और आपको परम पद प्राप्त होगा ।। ७ ।। ।। दोहा ।। लवकुल के लोग राज्य देकर बन को चले गए और वेदियों ने राज्य किया तथा भिन्न-भिन्न प्रकार से भूमि और समाज के सकल भोगों को भोगा ।। ८ ।। ।। चौपाई ।। तीन वेद तुमने सुने और चौथे वेद को सुनकर तुमने भूमि-ऐश्वर्य का दान कर दिया । हम जब तीन जन्म लेंगे तो चौथे जन्म में तुम्हें गुरु धारण करेंगे ।। ९ ।। उधर राजा जंगल में चला गया तथा इस तरफ़ इन लोकों ने राज्य करते हुए सुख को प्राप्त किया । कहाँ तक इस कथा को सुनाऊँ क्योंकि ग्रन्थ-विस्तार से मैं अधिक डरता हूँ ।। १० ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ का वेद-पाठ भेट राज नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ४ अफजू १९९

॥ नराज छंद ॥ बहुरि बिखाध बाधियं। किनी न ताहि साधियं। करंम काल यौं भई। सु भूम बंस ते गई ॥ १ ॥ ॥ दोहरा ॥ बिप्र करत भए सूद्र ब्रिति छत्री बैसन करम। बैस करत भए छत्रि ब्रिति सूद्र सु दिज को धरम ॥२॥ ॥ चौपई ॥ बीस गाव तिन के रहि गए। जिन मो करत क्रिसानी भए। बहुत काल इह भाँति बितायो। जनम समै नानक को आयो ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ तिन बेदियन के कुल बिखे प्रगटे नानक राइ। सभ सिक्खन को सुख दए जह तह भए सहाइ ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ तिन इह कल मो धरमु चलायो। सभ साधन को राहु बतायो। जे ता के मारगि महि आए। ते कबहूँ नही पाप (मू०ग्रं०५३) संताए ॥ ५ ॥ जे जे पंथ तवन के परे। पाप ताप तिन के प्रभ हरे। दूख भूख कबहूँ न संताए। जाल काल के बीच न आए ॥ ६ ॥ नानक अंगद को बपु धरा। धरम प्रचुरि इह जग मो करा। अमरदास पुनि नामु कहायो। जन दीपक ते दीप जगायो ॥ ७ ॥ जब बर दानि समै वहु आवा। रामदास तब गुरू कहावा। तिह

॥ नराज छंद ॥ पुनः आपस में वैर-विषाद बढ़ा जिसे कोई भी ठीक न कर पाया। कालक्रम कुछ ऐसा हुआ कि इस वंश के हाथों से सारी भूमि छिन गई ॥ १ ॥ ॥ दोहा ॥ विप्रों ने शूद्रवृत्ति और वैश्यों का कर्म क्षत्रियों ने करना शुरू कर दिया। वैश्यों ने क्षत्रियों का कर्म प्रारम्भ कर दिया और शूद्रों ने ब्राह्मणों का धर्म (कर्तव्य) करना शुरू कर दिया ॥२॥ ॥ चौपाई ॥ इनके पास केवल बीस गाँव रह गए जिनमें ये खेती-बाड़ी करने लगे। इस प्रकार बहुत समय बीता, तब नानक का जन्म-समय आया ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ उन वेदियों के वंश में नानकराय ने जन्म लिया, जिसने अपने सब शिष्यों की सर्वत्र सहायता कर उन्हें सुख प्रदान किया ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ उन्होंने कलियुग में धर्मचक्र चलाया तथा सब साधु-संतों को (सत्य का) मार्ग दिखाया। जो इनके मार्ग (मत) में दीक्षित हुए उन्हें कभी भी पाप ने नहीं सताया ॥ ५ ॥ जिन्होंने इनके पथ को स्वीकार किया उनके पापों और (त्रिविध) तापों को परमात्मा ने नष्ट कर दिया। उन्हें दुःख एवं भूख कभी नहीं सताती और भ्रम-जाल तथा कालचक्र में नहीं फँसते ॥ ६ ॥ नानक ने अंगद का शरीर धारण किया तथा धर्म का प्रचार इस संसार में किया पुन उन्हीं का नाम अमरदास हुआ मानो दीपक से दीपक जला हो ७ जब वरदान का

बर दानि पुरातनि दीआ। अमरदासि सुरपुरि मगु लीआ ॥८॥ स्री नानक अंगदि करि माना। अमरदास अंगद पहिचाना। अमरदास रामदास कहायो। साधनि लखा मूड़ नहि पायो ॥९॥ भिन भिन सभहूँ करि जाना। एक रूप किनहूँ पहिचाना। जिन जाना तिन ही सिध पाई। बिन समझे सिध हाथ न आई ॥ १० ॥ रामदास हरि सों मिल गए। गुरता देत अरजनहि भए। जब अरजन प्रभ लोक सिधाए। हरिगोबिंद तिह ठाँ ठहराए ॥ ११ ॥ हरिगोबिंद प्रभ लोक सिधारे। हरीराइ तिह ठाँ बैठारे। हरीक्रिशन तिन के सुत वए। तिन ते तेगबहादर भए ॥ १२ ॥ तिलक जंञू राखा प्रभ ताका। कीनो बडो कलू महि साका। साधनि हेति इती जिनि करी। सीसु दीआ पर सी न उचरी ॥ १३ ॥ धरम हेत साका जिनि कीआ। सीसु दीआ पर सिररु न दीआ। नाटक चेटक कीए कुकाजा। प्रभ लोगन कह आवत लाजा ॥ १४ ॥

वह समय आया उस समय रामदास गुरू हुए। अमरदास उन्हें पुराना वरदान देकर बैकुंठधाम चले गए ॥ ८ ॥ श्री नानक को अंगद माना गया और अमरदास अंगद के रूप में पहचाने गए। अमरदास ही रामदास कहलाए, जिसे संत पुरुषों ने तो समझ लिया परन्तु मूर्ख इस भेद को नहीं जान सके ॥ ९ ॥ आम लोगों ने तो इन सबको भिन्न-भिन्न रूपों में ही जाना, परन्तु किसी विरले ने ही इन्हें एक रूप समझा। जिन्होंने इन्हें एक रूप ही जाना, उन्हीं को सिद्धियाँ प्राप्त हुई तथा बिना समझे कुछ हाथ नहीं लगता ॥ १० ॥ रामदास जब परमात्मा में लीन हुए तो वे गुरु-पद अर्जुन को दे गए। जब अर्जुन प्रभु-लोक को सिधारे तो उन्होंने अपनी गद्दी पर हरिगोबिंद को स्थापित किया ॥ ११ ॥ हरिगोबिंद जब परमतत्त्व में लीन हुए तो हरिराय उनके स्थान पर बैठे। उनके पुत्र हरिकृष्ण हुए तथा उनके बाद तेगबहादुर हुए ॥ १२ ॥ प्रभु ने उनकी तिलक और जनेऊ-रक्षक भावना की पूर्ण सुरक्षा की और इसी भावना के अंतर्गत उन्होंने कलियुग में महान् कार्य किया। साधुत्व की रक्षा के लिए जिसने (अपने जीवन की) इतिश्री कर दी उस (गुरू तेगबहादुर) ने शीश दे दिया, परन्तु मुँह से ज़रा सी भी कष्ट की आवाज़ तक न निकाली ॥ १३ ॥ धर्म के लिए जिसने महान् बलिदान-कार्य किया उसने सिर दे दिया, परन्तु सत्य का आग्रह न छोड़ा सत्य की आड़ लेकर लोगों को ठगने के लिए जो नाटक और कुकर्म किये जाते हैं अध्यात्म प्रभुता-सम्पन्न

॥ दोहरा ॥ ठीकरि फोरि दिलीसि सिरि प्रभ पुर कीआ पयान । तेगबहादर सी क्रिआ करी न किनहूँ आन ॥ १५ ॥ तेगबहादर के चलत भयो जगत को सोक । है है है सभ जग भयो जै जै जै सुरलोक ॥ १६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे पातिशाही बरननं नाम पंचमो धिआइ समापतम सतु सभम सतु ॥ ५ ॥ अफजू ॥ २१५ ॥

चौपई ॥

अब मै अपनी कथा बखानो । तप साधत जिह बिधि मुहि आनो । हेमकुंट परबत है जहाँ । सपतस्रिंग सोभित है तहाँ ॥ १ ॥ सपतस्रिंग तिह नामु कहावा । पंडराज जह जोगु कमावा । तह हम अधिक तपस्सिआ (मू०ग्रं०५४) साधी । महांकाल कालका अराधी ॥ २ ॥ इह बिधि करत तपस्सिआ भयो । द्वै ते एक रूप ह्वै गयो । तात मात मुर अलख अराधा । बहु बिधि जोग साधना साधा ॥ ३ ॥ तिन जो करी अलख की सेवा । ता ते भए प्रसंनि गुरदेवा । तिन प्रभ

लोगों को ऐसे प्रपंचों से लज्जा का अनुभव होता है ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ शरीर रूपी मिट्टी के घड़े को दिल्लीश्वर (औरंगजेब) के सिर पर फोड़कर स्वयं प्रभु-पुरी को प्रयाण किया: उस तेगबहादुर के समान महान् कार्य किसी ने नहीं किया ॥ १५ ॥ तेगबहादुर के संसार से कूच करते ही जगत में सर्वत्र शोक छा गया । जगत में हाहाकार मच गया तथा स्वर्ग में जय-जयकार होने लगा ॥ १६ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के गुरुपद-वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ अफजू ॥ २१५ ॥

॥ चौपाई ॥ अब मैं अपनी कथा कहता हूँ कि कैसे तपस्या में लीन मुझे लाया गया । जहाँ हेमकुंट पर्वत है वहाँ सप्तश्रृंग शोभायमान हैं ॥१॥ पांडव राजाओं ने योगसाधना की जिससे उस स्थान का नाम सप्त-श्रृंग हुआ । वहाँ मैंने अत्यधिक तपस्या की और काल के भी महाकाल की आराधना की ॥ २ ॥ इस प्रकार तपस्या करते-करते मेरा द्वैत-रूप उस परमात्मस्वरूप में मिलकर दो से एक हो गया । मेरे माता-पिता ने अलक्ष्य प्रभु की आराधना की और भिन्न प्रकार की सुयोग्य साधनाएँ की ३ उन्होंने जिस भाँति अदृष्ट परमात्मा की सेवा की उससे

जब आइस मुहि दीया। तब हम जनम कलू महि लीया ॥ ४ ॥ चित न भयो हमरो आवन कहि। चुभी रही स्रुति प्रभु चरनन महि। जिउ तिउ प्रभ हमको समझायो। इम कहि कै इह लोक पठायो ॥ ५ ॥ ॥ अकालपुरख बाच इस कीट प्रति ॥ ॥ चौपई ॥ जब पहिले हम स्रिशटि बनाई। दईत रचे दुशट दुखदाई। ते भुजबल बवरे ह्वै गए। पूजत परम पुरख रहि गए ॥ ६ ॥ ते हम तमकि तनक मो खापे। तिन की ठउर देवता थापे। ते भी बल पूजा उरझाए। आपन ही परमेशर कहाए ॥ ७ ॥ महांदेव अचुत कहवायो। बिशन आप ही को ठहरायो। ब्रहमा आप पारब्रहम बखाना। प्रभ को प्रभू न किनहूँ जाना ॥ ८ ॥ तब साखी प्रभ असट बनाए। साख नमित देबे ठहराए। ते कहै करो हमारी पूजा। हम बिन अवरु न ठाकुरु दूजा ॥ ९ ॥ परम तत्त को जिनि न पछाना। तिन करि ईशर तिन कह माना। केते सूर चंद

गुरुदेव (परमात्मा) प्रसन्न हुए। उस परमात्मा ने जब मुझे आज्ञा दी तो मैंने इस कलियुग में जन्म लिया ॥ ४ ॥ मेरी सुरति प्रभु-चरणों मे इतनी लीन थी कि मेरा चित्त आने को बिलकुल तैयार नहीं था। प्रभु ने जैसे-तैसे मुझे समझाया और इस प्रकार यह कहकर इस लोक में भेजा ॥५॥ ॥ अकालपुरुष उवाच इस कीट के प्रति ॥ ॥ चौपाई ॥ जब पहले मैंने सृष्टि का सृजन किया तो परम अत्याचारी दैत्यों की रचना की। वे अपने भुजबल के कारण बावरे हो गए और परमपुरुष की पूजा का उन्होंने त्याग कर दिया ॥ ६ ॥ उनको मैंने क्रोधित होकर क्षण भर में नष्ट कर दिया और उन देवताओं को उत्पन्न किया। वे भी अपने बल और अपनी पूजा में उलझकर रह गए तथा प्रत्येक स्वयं को परमेश्वर कहलाने लगा ॥ ७ ॥ महादेव ने अपने आपको सर्वोच्च कहलाना शुरू कर दिया और विष्णु ने स्वयं को सबसे ऊँचा घोषित कर दिया। ब्रह्मा ने स्वयं को परब्रह्म मान लिया तथा प्रभु को सर्वप्रभु किसी ने भी नहीं जाना ॥८॥ तब परमात्मा ने पाँच तत्त्व, सूर्य-चन्द्र एवं धर्मराज आदि आठों को साक्षी-स्वरूप बनाया कि वे हो रहे पाप-पुण्य की साक्षी रहें। उन्होंने भी कहना शुरू कर दिया कि हमारी पूजा करो, हमारे सिवा अन्य कोई ठाकुर नहीं है ॥ ९ ॥ जिन्होंने स्वयं परम-तत्त्व को नहीं पहचाना है वे भी अपने आपको परमात्मा कहलाने लगे। कई ऐसा मानने भी लगे और सूर्य-चन्द्र की पूजा करने लगे यज्ञ-याज्ञ प्राणायाम आदि को प्रमाण मानने

कह मानै। अगनहोत्र कई पवन प्रमानै ॥ १० ॥ किनहूँ प्रभु पाहन पहिचाना। न्हात किते जल करत बिधाना। केतक करम करत डरपाना। धरमराज को धरम पछाना ॥ ११ ॥ जे प्रभ साथ नमित ठहराए। ते हिआँ आइ प्रभू कहवाए। ताकी बात बिसर जाती भी। अपनी अपनी परत सोभ भी ॥ १२ ॥ जब प्रभ को न तिनै पहिचाना। तब हरि इन मनुछन ठहराना। ते भी बसि ममता हुइ गए। परमेशर पाहन ठहरए ॥ १३ ॥ तब हरि सिद्ध साध ठहिराए। तिन भी परम पुरख नही पाए। जे कोई होत भयो जगि सिआना। तिन तिन अपनो पंथु चलाना ॥ १४ ॥ परम पुरख किनहूँ नह पायो। बैर बाद हंकार बढायो। पेड पात आपन ते जलै। प्रभ कै पंथ न कोऊ चलै ॥ १५ ॥ जिनि (मू०ग्रं०५५) जिनि तनकि सिद्ध को पायो। तिन तिन अपना राहु चलायो। परमेशर न किनहूँ पहिचाना। मम उचारते भयो

लगे ॥ १० ॥ किसी ने पत्थर (की मूर्तियों) में प्रभु को मान लिया और कई विविध तीर्थस्नानों को परमतत्त्व मानने लगे। कितने ही लोग ये सब कर्म करते हुए भी (इन कर्मों के खोखलेपन को समझकर) भयभीत होने लगे और धर्मराज (यमराज) के धर्ममार्ग में चलने लगे अर्थात् मात्र नैतिकता को ही परमतत्त्व मानने लगे ॥ ११ ॥ जिनको प्रभु ने मात्र साक्षी निमित्त उत्पन्न किया था वे सब यहाँ आकर अपने आपको प्रभु कहलाने लगे। उनकी बात भी भूल जाती और बेशक वे अपनी-अपनी शोभा में लगे भी रहते ॥ १२ ॥ परन्तु जब प्रभु को इन लोगों ने भी पहचानने से इन्कार कर दिया तो परमात्मा का मन इनकी ओर से क्षुब्ध हो उठा। ये सब भी ममता के वशीभूत हो गए और इन्होंने परमेश्वर को पत्थरों में निर्वासित करा दिया ॥ १३ ॥ तब परमात्मा ने सिद्धों और साधुओं का सृजन किया, परन्तु वे भी परमपुरुष को नहीं पा सके। जो कोई भी ज़रा-सा यज्ञादि में चतुर हुआ, उसने अपना धर्म (मत) चला दिया ॥ १४ ॥ परमपुरुष का रहस्य कोई न पा सका बल्कि उलटा इन्होंने वैर-भावना एवं अहंकार को ही बढ़ाया। सब ये भी पेड़-पत्तों पर निर्वाह कर सात्त्विक जीवन तो व्यतीत करने लगे, परन्तु प्रभु-मार्ग पर कोई भी नहीं चला ॥ १५ ॥ जिसने ज़रा-सी सिद्धि प्राप्त की उसने अपना मत चला दिया। परमेश्वर को किसी ने भी नहीं पहचाना और मेरा मेरा का उच्चारण करते हुए सब पागल हो

दिवाना ॥ १६ ॥ परम तत्त किनहूँ न पछाना । आप आप भीतरि उरझाना । तब जे जे रिखराज बनाए । तिन आपन पुनि सिम्रिति चलाए ॥ १७ ॥ जे सिम्रितन के भए अनुरागी । तिन तिन क्रिआ ब्रहम की त्यागी । जिन मनु हरि चरनन ठहरायो । सो सिम्रितन के राह न आयो ॥ १८ ॥ ब्रहमा चार ही बेद बनाए । सरब लोक तिह करम चलाए । जिनकी लिव हरि चरनन लागी । ते बेदन ते भए तिआगी ॥ १९ ॥ जिन मत बेद कतेबन त्यागी । पारब्रहम के भए अनुरागी । तिन के गूड़ मत्त जे चलही । भाँति अनेक दुखन सो दलही ॥ २० ॥ जे जे सहित जातन संदेह । प्रभ को संगि न छोडत नेह । ते ते परमपुरी कह जाही । तिन हरि सिउ अंतरु कछु नाही ॥ २१ ॥ जे जे जीय जातन ते डरे । परम पुरख तजि तिन मग परे । ते ते नरक कुंड मो परही । बार बार जग मो बपु धरही ॥ २२ ॥ तब हरि बहुरि दत्त उपजाइओ । तिन भी अपना पंथु चलाइओ । कर मो नख

गए ॥ १६ ॥ परमतत्त्व को किसी ने नहीं पहचाना और सब भीतर ही भीतर अपने-आप में उलझकर रह गए । फिर जिन जिन ऋषियों का सृजन किया गया, उन्होंने भी अपनी-अपनी स्मृतियों का चलन किया ॥१७॥ जो-जो स्मृतियों के अनुरागी हो गए उन सबने ब्रह्मक्रिया (ब्रह्म-आचरण) का त्याग कर दिया । जिन्होंने अपना मन हरि-चरणों में जोड़ा वे स्मृतियों के मार्ग पर नहीं चले ॥ १८ ॥ ब्रह्मा ने चार वेदों का सृजन किया और सभी लोग उस मत के अनुयायी हो गए । परन्तु जिनकी सुरति हरि-चरणों के साथ लग गई वे सब वेदों को त्याज्य मानने लगे ॥ १९ ॥ जिन्होंने अपनी बुद्धि को वेद-कतेबादि से दूर रखा, वे वास्तव में परब्रह्म के सच्चे अनुरागी सिद्ध हुए । जो ऐसे पुरुषों के मतानुसार कार्य करता है, वह अनेक प्रकार के दुःखों को नष्ट कर देता है ॥ २० ॥ जो मात्र देह को भी प्रभु-प्रेम के वशीभूत होकर (मानव मात्र के कल्याण के लिए) समर्पित करते है, वे परम-पुरी को प्राप्त होते है और उनमें तथा हरि में कोई अन्तर नहीं रह जाता है ॥ २१ ॥ जो-जो जीव वर्णाश्रम-धर्म से डरकर इस मार्ग के बंधनों में पड़े रहे और परम-पुरुष को हृदयंगम नहीं कर सके, वे सब नरककुंड को प्राप्त होंगे और बार-बार जन्म लेते रहेंगे ॥ २२ ॥ तब पुनः परमात्मा ने दत्तात्रेय को पैदा किया और उसने भी अपना पथ चला दिया । उसने भी नख शिख और

सिर जटा सवारी । प्रभ की क्रिआ कछू न बिचारी ।। २३ ।। पुनि हरि गोरख को उपराजा । सिक्ख करे तिनहूँ बड राजा । स्रवन फारि मुद्रा दुऐ डारी । हरि की प्रीति रीति न बिचारी ।। २४ ।। पुनि हरि रामानंद को करा । भेस बैरागी को जिन धरा । कंठी कंठि काठ की डारी । प्रभ की क्रिआ न कछू बिचारी ।। २५ ।। जे प्रभ परम पुरख उपजाए । तिन तिन अपने राह चलाए । महादीन तबि प्रभ उपराजा । अरब देस को कीनो राजा ।। २६ ।। तिन भी एकु पंथु उपराजा । लिंग बिना कीने सभ राजा । सभ ते अपना नामु जपायो । सतिनामु काहू न द्रिड़ायो ।।२७।। सभ अपनी अपनी उरझाना । पारब्रहम काहू न पछाना । तप साधत हरि मोहि बुलायो । इम कहिकै इह लोक पठायो ।। २८ ।। (मू०ग्रं०५६)

अकाल पुरख बाच ।। चौपई ।।

मैं अपना सुत तोहि निवाजा । पंथु प्रचुर करबे कहु साजा । जाहि तहाँ तै धरमु चलाइ । कबुधि करन ते लोक

जटाजूट के सँवारने पर बल दिया, परन्तु प्रभु की क्रिया पर तनिक भी विचार नहीं किया ।। २३ ।। फिर गोरख को उत्पन्न किया गया जिसने बड़े-बड़े राजाओं को अपना शिष्य बनाया । उसने भी कान फाड़कर मुद्राएँ धारण कीं, परन्तु प्रभु-प्रेम की रीति पर जरा भी विचार नहीं किया ।। २४ ।। फिर प्रभु ने रामानन्द को भेजा जिसने वैराग्य-वेष धारण किया और गले में लकड़ी की माला पहनी । प्रभु-प्रेम को इसने भी नहीं जाना ।। २५ ।। प्रभ ने जिन-जिन महापुरुषों को पैदा किया, उन सबने अपने-अपने मत चला दिए । तब परमात्मा ने पैग़म्बर को बनाया और उसे अरब देश का राज्य दिया ।। २६ ।। उसने भी एक मत का निर्माण किया और सब राजाओं की सुन्नत करा दी । सबसे अपना नाम स्मरण कराया और सत्यनाम को किसी ने भी दृढ़ नहीं किया ।। २७ ।। सब अपने-अपने मत-मतान्तरों में उलझकर रह गए और परब्रह्म को किसी ने भी नहीं पहचाना । मैं तपसाधना में लीन था जब प्रभु ने मुझे बुलाया और यह कहकर इस लोक में भेजा ।। २८ ।।

।। अकालपुरुष उवाच ।। ।। चौपाई ।। मैंने तुम्हें अपना पुत्र स्थापित किया है और तुम्हारा सृजन धर्म के प्रचलन के लिए किया है यह से वहाँ

हटाइ ॥ २९ ॥ ॥ कबि बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ ठाढ भयो मै जोरि करि बचन कहा सिर न्याइ। पंथ चलै तब जगत मै जब तुम करहु सहाइ ॥३०॥ ॥ चौपई ॥ इह कारनि प्रभ मोहि पठायो। तब मैं जगत जनमु धरि आयो। जिम तिन कही इनै तिम कहिहों। अउर किसू ते बैर न गहिहों ॥ ३१ ॥ जे हम को परमेशर उचरिहै। ते सभ नरकि कुंड महि परिहै। मो को दासु तवन का जानो। या मैं भेदु न रंच पछानो ॥ ३२ ॥ मैं हो परम पुरख को दासा। देखनि आयो जगत तमासा। जो प्रभ जगति कहा सो कहिहौ। म्रित लोग ते मोनि न रहिहौ ॥ ३३ ॥ ॥ नराज छंद ॥ कहियो प्रभू सु भाखिहो। किसू न कान राखिहो। किसू न भेख भीज हो। अलेख बीज बीज हो ॥ ३४ ॥ पखाण पूज हो नही। न भेख भीज हौ कही। अनंत नामु गाइहों। परम्म पुरख पाइहों ॥ ३५ ॥ जटा न सीस धारिहो। न मुंद्रका सु धारिहो। न कान काहू की धरो। कहियो प्रभू सु मैं करो ॥ ३६ ॥ भजो सु एकु

जाकर तुम धर्मचक्र को चलाओ और लोगों को दुर्बुद्धिपूर्ण कार्यों हटाओ ॥ २९ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ मैं हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और मैंने सिर झुकाकर कहा कि जगत में धर्म का प्रचलन तभी होगा जब तुम सहायता करो ॥ ३० ॥ ॥ चौपाई ॥ इसलिए प्रभु ने मुझे भेजा और मैं इस जगत में जन्म लेकर आया। जो उसने मुझसे कहा वही मैं यहाँ कहूँगा और मेरा किसी से भी वैर-विरोध नहीं होगा ॥ ३१ ॥ जो मुझे परमेश्वर के नाम से जानेंगे वे सब नरककुंड में पड़ेंगे। मुझे मात्र उस (प्रभु) का दास समझो और इसमें अन्य कोई भी रहस्यवाली अलग बात नहीं है ॥ ३२ ॥ मैं तो परम-पुरुष का सेवक हूँ जो जगत-प्रपंच को देखने आया है। प्रभु ने जगत के प्रति जो निर्देश दिए हैं, उन्हें अवश्य कहूँगा और मृत्युलोक के कर्मकांड, शोषण, अत्याचार आदि को देखकर चुप हो नहीं बैठूंगा ॥ ३३ ॥ ॥ नराज छंद ॥ जो प्रभु ने कहा है वही कहूँगा और किसी का लिहाज नहीं रखूंगा ! मैं किसी वेश-विशेष को मान्यता नहीं दूंगा और उस अदृष्ट प्रभु के नाम का बीज इस धरती पर बोऊँगा ॥ ३४ ॥ मैं पत्थर-पूजक और वेश में रत रहनेवाला नहीं हूँ। उस प्रभु के अनन्त नामों का गायन करूँगा और परमपुरुष को प्राप्त करूँगा ३५ सिर पर जटाएँ और कानों में मुद्राएँ धारण नहीं करूंगा। किसी का ध्यान विशेष

नामयं। सु काम सरब ठामयं। न जाप आन को जपो। न अउर थापना थपो॥ ३७॥ बिअंति नामु ध्याइहो। परम जोति पाइहो। न ध्यान आन को धरौ। न नाम आन उचरौ॥ ३८॥ तवक्क नाम रत्तियं। न आन मान मत्तियं। परम्म ध्यान धारियं। अनंत पाप टारियं॥ ३९॥ तुमेव रूप राचियं। न आन दान माचियं। तवक्क नामु उचारियं। अनंत दूख टारियं॥ ४०॥ ॥ चौपई॥ जिन जिन नामु तिहारो ध्याइआ। दूख पाप तिन निकटि न आइआ। जे जे अउर ध्यान को धरही। बहिस बहिस बादन ते मरही॥ ४१॥ हम इह काज जगत मो आए। धरम हेत गुरदेव पठाए। जहाँ तहाँ तुम धरम बिथारो। दुसट दोखियनि पकरि पछारो॥ ४२॥ याही काज धरा हम जनमं। समझ लेहु साधू सभ मनमं। धरम चलावन संत उबारन। (मू०ग्रं०५७) दुसट सभन को मूल उपारन॥ ४३॥ जे जे भए पहिल अवतारा। आपु आपु तिन जापु उचारा। प्रभ दोखी कोई न

एक प्रभु-नाम का स्मरण करूँगा जो सर्वस्थानों में सहायक है। न किसी अन्य का जाप करूँगा और न ही उस प्रभु की स्थापित की गई मान्यताओं के अतिरिक्त अन्य मान्यताओं की स्थापना करूँगा॥ ३७॥ उसके अनन्त नामों का स्मरण कर परमज्योति को प्राप्त करूँगा। किसी अन्य का ध्यान नहीं करूँगा, न ही किसी अन्य के नाम का उच्चारण करूँगा॥ ३८॥ तेरे ही नाम में लीन अन्य किसी मान-सम्मान से मद-मस्त नहीं होऊँगा। परमध्यान को धारण करूँगा और अनंत पापों का नाश करूँगा॥ ३९॥ तुम्हारे स्वरूप में लीन अन्य किसी दान की अपेक्षा नहीं करूँगा। तुम्हारे नाम का स्मरण कर अनन्त दुःखों को दूर करूँगा॥ ४०॥ ॥ चौपाई॥ जिस-जिसने तुम्हारा नाम स्मरण किया, दुःख-पाप उसके पास नहीं आया। जो-जो अन्य का ध्यान करते हैं, वे सब वाद-विवाद में ही नष्ट हो जाते हैं॥ ४१॥ मेरा तो जगत में आने का उद्देश्य धर्म है और गुरुदेव (प्रभु) ने मुझे इसीलिए भेजा है। सर्वत्र तुम धर्म का प्रसार करो और दुष्टों को पकड़कर पछाड़ो॥ ४२॥ इसी कार्य के लिए हमने जन्म धारण किया है, हे साधु-सन्तो! इसको तुम भलीभाँति मन में समझ लो। हमने धर्म चलाने और संतों के उद्धार के लिए तथा दुष्टों को समूल नष्ट करने के लिए जन्म लिया है। ४३। जो-जो अवतार पूर्वकाल में हो चुके हैं उन सबों ने अपने अपने नाम का

बिदारा। धरम करम को काहु न डारा ॥ ४४ ॥ जे जे गउस अंबीआ भए। मै मै करत जगत ते गए। महापुरख काहू न पछाना। करम धरम को कछू न जाना ॥ ४५ ॥ अवरन की आसा किछु नाही। एकै आस धरो मन माही। आन आस उपजत किछु नाही। वा की आस धरो मन माही ॥ ४६ ॥ ॥ दोहरा ॥ कोई पड़त कुरान को कोई पड़त पुरान। काल न सकत बचाइकै फोकट धरम निदान ॥ ४७ ॥ ॥ चौपई ॥ कई कोटि मिलि पढ़त कुराना। बाचत किते पुरान अजाना। अंति काल कोई काम न आवा। दाव काल काहू न बचावा ॥ ४८ ॥ किउ न जपो ता को तुम भाई। अंति काल जो होइ सहाई। फोकट धरम लखो कर भरमा। इन ते सरत न कोई करमा ॥ ४९ ॥ इह कारनि प्रभ हमै बनायो। भेदु भाखि इह लोक पठायो। जो तिन कहा सु सभन उचरौ। डिंभ विंभ कछु नैक न करौ ॥ ५० ॥ ॥ रसावल छंद ॥ न जटा मूंड धारौ। न मुंद्रका सवारौ।

जाप करवाया है। प्रभु के द्वेषियों का नाश किसी ने नहीं किया और सच्चे धर्म और कर्म की परम्परा नहीं बनायी ॥ ४४ ॥ जितने भी राग-नाद के प्रेमी एवं सम्राट् हुए हैं, वे सब "मैं, मैं" करते ही अर्थात् अहंकार-वश होकर ही इस संसार से कूच कर गए हैं। उस महान् पुरुष (प्रभु) को किसी ने नहीं पहचाना और धर्म के कर्म में रुचि नहीं दिखाई ॥ ४५ ॥ अन्यों की आशा को त्यागकर केवल एक प्रभु की आशा मन में स्थिर करो। जिसकी आशा करने से अन्य सब आशाएँ पैदा होनी बंद हो जायँ, केवल उसी की आशा मन में रखो ॥ ४६ ॥ ॥ दोहा ॥ कोई क़ुर्आन को तथा कोई पुराण को पढ़ता है परन्तु ये सब व्यर्थ के धर्म हैं, क्योंकि ये सब काल-चक्र से नहीं बचा सकते ॥ ४७ ॥ ॥ चौपाई ॥ कई करोड़ लोग क़ुर्आन पढ़ रहे हैं तथा कितने ही अनजान पुराणों का अध्ययन कर रहे हैं। अंतकाल कोई भी काम नहीं आयेगा और काल के दाँव को कोई भी नहीं बचा सकेगा ॥ ४८ ॥ हे भाई ! तुम उसका स्मरण क्यों नहीं करते जो अंतकाल में तुम्हारा सहायक होगा। व्यर्थ के पाखंडों को भ्रम करके जानो, क्योंकि इनसे कोई काम चलनेवाला नहीं है ॥ ४९ ॥ इसी कारण प्रभु ने हमारा सृजन किया और इस रहस्य को समझाकर इस लोक में भेजा। जो उसने कहा है उस सबका उच्चारण करूँगा तथा कोई भी पाखंड या कपट नहीं करूँगा ५० रसावल छंद न जटाओं

जपो तास नामं । सरै सरब कामं ।। ५१ ।। न नैनं मिचाऊँ । न डिंभं दिखाऊँ । न कुकरमं कमाऊँ । न भेखी कहाऊँ ।।५२।। ।। चौपई ।। जे जे भेख सु तन मै धारैं । ते प्रभ जन कछु कै न बिचारैं । समझ लेहु सभ जन मन माही । डिंभन मै परमेशरु नाही ।। ५३ ।। जे जे करम करि डिंभ दिखाई । तिन परलोगन मो गति नाही । जीवत चलत जगत के काजा । स्वाँग देखि करि पूजत राजा ।। ५४ ।। स्वाँगन मै परमेशरु नाही । खोजि फिरै सभ ही को काही । अपनो मनु कर मो जिह आना । पारब्रहम को तिनी पछाना ।। ५५ ।। ।। दोहरा ।। भेख दिखाए जगत को लोगन को बसि कीन । अंत कालि काती कट्यो बासु नरक मो लीन ।।५६।। ।। चौपई ।। जे जे जग को डिंभ दिखावै । लोगन मूँडि अधिक सुखु पावै । नामा मूँद करै परणामं । (मू०ग्रं०५८) **फोकट धरम न कउडी कामं ।। ५७ ।। फोकट धरम जिते जग करही । नरकि**

को रखो तथा न ही मुद्राओं को धारण करो । केवल उसी के नाम का स्मरण करो, जिससे सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं ।।५१।। न आँख बंद करके समाधि लगाऊँगा (और संसार के दुःखों से दूर भागूँगा) तथा न ही कोई अन्य आडंबर करूँगा । न कुकर्म करूँगा और न ही किसी विशेष वेश वाला कहाऊँगा ।। ५२ ।। ।। चौपाई ।। जिन-जिन लोगों ने तन पर वेशों को धारण किया है, समझ लो उन्होंने प्रभु के बारे में कुछ भी विचार नहीं किया है । सभी लोग इस बात को भलीभाँति मन में समझ लें कि पाखंडों में परमेश्वर नहीं है ।। ५३ ।। जो कर्म करने में पाखंड करते हैं, उनकी परलोक में मुक्ति नहीं होती । वे सांसारिकता के वशीभूत होकर जीवित रहने का प्रयत्न करते है और उनके स्वाँगों को देखकर राजा लोग भी उनकी पूजा करते हैं (क्योंकि वे स्वयं पाखंडी होते हैं) ।। ५४ ।। तरह-तरह के वेष धारण करने से परमेश्वर को नहीं पाया जा सकता, क्योंकि इस प्रकार के प्रयत्नों से बहुत से लोग उसे खोज चुके हैं । जिसने अपने मन में उसका ध्यान किया उसी ने वास्तविक रूप में परब्रह्म की पहचान की है ।। ५५ ।। ।। दोहा ।। जिन्होंने वेश दिखाकर लोगों को वशीभूत किया हुआ है, वे अन्त में काल द्वारा नष्ट तो कर ही दिए जायेंगे उनका निवास भी नरक में होगा ।। ५६ ।। ।। चौपाई ।। जो-जो संसार को पाखण्ड दिखाते हैं और लोगों को लूटकर सुख को प्राप्त करते हैं, नासिकाओं को वन्द करके प्रणाम करते हैं, उनके ये सब कर्म एवं धर्म व्यर्थ हैं ।। ५७ ।। पाखण्डपूर्ण धर्मों (कर्मों) को करने से जीव नरककुण्ड में

कुड भीतर ते परही । हाथि हलाए सुरग न जाहू । जो मनु जीत सका नहि काहू ॥ ५८ ॥ ॥ कबि बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ जो निज प्रभ मो सो कहा सो कहिहो जग माहि । जो तिह प्रभ को ध्याइ हैं अंत सुरग को जाहि ॥ ५९ ॥ ॥ दोहरा ॥ हरि हरि जन दुइ एक हैं बिब बिचार कछु नाहि । जल ते उपज तरंग जिउ जल ही बिखै समाहि ॥ ६० ॥ ॥ चौपई ॥ जे जे बादि करत हंकारा । तिन ते भिंन रहत करतारा । बेद कतेब बिखै हरि नाही । जानि लेहु हरि जन मन माही ॥६१॥ आँख मूंदि कोऊ डिंभ दिखावै । आँधर की पदवी कह पावै । आँखि मीच मग सूझ न जाई । ताहि अनंत मिलै किम भाई ॥ ६२ ॥ बहु बिसथार कह लउ कोई कहै । समझत बाति थकति हुऐ रहै । रसना धरै कई जौ कोटा । तदपि गनत तिह परत सु तोटा ॥ ६३ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब आइसु प्रभ को भयो जनमु धरा जग आइ । अब मै कथा संछेपते सभहूं कहत सुनाइ ॥ ६४ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे आगिआ काल जग प्रवेश करनं नाम खशटमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ ६ ॥ अफजू ॥ २७९ ॥

पडता है । केवल हाथ हिलाने से और मन को जीते बिना स्वर्ग नही जाया जा सकता ॥५८॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ जो परमात्मा ने मुझसे कहा वही मैं संसार में कह रहा हूँ । जो प्रभु का स्मरण करेंगे वे ही अन्त में स्वर्ग में जायेंगे ॥ ५९ ॥ ॥ दोहा ॥ हरि एवं हरिजन एक ही है एवं इनमें कोई भेद-विचार नहीं है । ये वैसे ही हैं जैसे जल से तरग पैदा होती है और जल में ही समा जाती है ॥ ६० ॥ ॥ चौपाई ॥ जो अहकारवश वाद-विवाद करते है, वे कर्ता पुरुष उनसे दूर ही रहता है । बेद, कतेब आदि में ईश्वर नहीं है, इस तथ्य को प्रत्येक व्यक्ति को मन मे जान लेना चाहिए ॥ ६१ ॥ आँखें मूंदकर यदि कोई पाखण्ड दिखाता है तो उसे अंधे का पद प्राप्त होता है । जिसे आँख बन्द करके रास्ते का तो पता लग नहीं पाता, वह उस अनन्त प्रभु को मात्र आँख बन्द करके कैसे प्राप्त कर सकता है ॥ ६२ ॥ और कोई कितने विस्तार से कहेगा, क्योंकि उसके भेद को समझते-समझते जीव थक जाता है । यदि कई करोड़ जिह्वाएँ भी हो जायँ तब भी उसके गुणों को गिनने के लिए कम पड़ जायेंगी ६३ दोहा जब प्रभु की आज्ञा हुई तभी मैंने इस

संसार में जन्म धारण किया और अब मैं कथा को संक्षेप रूप में प्रस्तुत करता हूँ ॥ ६४ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के आज्ञाकाल-यश-प्रवेशकरण नामक छठवें अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ ६ ॥ अफजू ॥ २७९ ॥

अथ कबि जनम कथनं ॥

॥ चौपई ॥ मुर पित पूरब कियसि पयाना । भाँति भाँति के तीरथि नाना । जब ही जात त्रिबेणी भए । पुंन दान दिन करत बितए ॥ १ ॥ तहीं प्रकाश हमारा भयो । पटना शहिर बिखै भव लयो । मद्र देस हमको ले आए । भाँति भाँति दाईअन दुलराए ॥ २ ॥ कीनी अनिक भाँति तन रच्छा । दीनी भाँति भाँति की सिच्छा । जब हम धरम करम मो आए । देवलोक तब पिता सिधाए ॥ ३ ॥ (मू०ग्रं०५९)

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथ नाम सपतमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ ७ ॥ अफजू ॥ २८२ ॥

कवि के जन्म का कथन

॥ चौपाई ॥ मेरे पिता ने पूर्व दिशा की ओर प्रयाण किया और वहाँ भिन्न-भिन्न तीर्थों पर स्नान किया । जब वे त्रिवेणी (प्रयाग) गए तो वहाँ पुण्यदान करते हुए उन्होंने कुछ दिन व्यतीत किए ॥ १ ॥ वहीं हमने मातृगर्भ में प्रवेश किया तथा पटना शहर में जन्म लिया । तदोपरान्त हमें मद्र देश (वर्तमान पंजाब) में ले आया गया जहाँ भाँति-भाँति की सेविकाओं ने दुलार-प्यार से हमारा पोषण किया ॥ २ ॥ हमारे शरीर की रक्षा अनेक भाँति से करके उसे पुष्ट किया गया तथा हमें भिन्न-भिन्न प्रकार की विद्याओं में सुशिक्षित किया गया । जब हम धर्म-कर्म को समझने की स्थिति में पहुँचे तो उसी समय हमारे पिता देवलोक को प्रयाण कर गये ॥ ३ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के सातवें अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ ७ ॥ अफजू ॥ २८२ ॥

अथ राज साज कथनं ॥

॥ चौपई ॥ राज साज हम पर जब आयो । जथा-शकत तब धरम चलायो । भाँति भाँति बन खेल शिकारा । मारे रीछ रोझ झंखारा ॥ १ ॥ देस चाल हम ते पुनि भई । शहिर पावटा की सुधि लई । कालिद्री तटि करे बिलासा । अनिक भाँत के पेखि तमासा ॥ २ ॥ तह के सिंघ घने चुनि मारे । रोझ रीछ बहु भाँति बिदारे । फ़तेशाह कोपा तबि राजा । लोहु परा हम सों बिनु काजा ॥३॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ तहा शाह स्री शाह संग्राम कोपे । पंचो बीर बंके प्रिथी पाइ रोपे । हठी जीत मल्लं सु गाजी गुलाबं । रणं देखीऐ रंग रूपं सहाबं ॥ ४ ॥ हठियो माहरी चंदयं गंगरामं । जिनै कित्तीयं जित्तीयं फौज तामं । कुपे लालचंदं कीए लाल रूपं । जिनै गंजीयं गरब सिंघं अनूपं ॥ ५ ॥ कुपिओ माहरू काहरू रूप धारे । जिनै खान खाबीनीयं खेत मारे । कुपिओ देवतेशं

राज-साज का कथन

॥ चौपाई ॥ जब हमारे ऊपर गुरु-गद्दी का बोझ पड़ा तब हमने यथाशक्ति धर्म का निर्वाह किया । भाँति-भाँति के खेलों के साथ वन में शिकार किए और वहाँ रीछ, नीलगाय, बारहसिंघे आदि मारे ॥ १ ॥ परिस्थितियों के अनुसार हम पर भी (तत्कालीन शासकों का) आक्रोश हुआ और फलस्वरूप हम पावंटा शहर में आ गए । वहाँ अनेक भाँति के कौतुकों को देखते हुए यमुना के तट पर ऐश्वर्यपूर्वक निवास किया ॥२॥ वहाँ के कई शेरों को चुनकर मारा तथा नीलगाय एवं रीछों को नष्ट किया । फ़तेहशाह नामक राजा हमारे पर नाराज़ हुआ और बिना कारण ही हमसे झगड़ पड़ा ॥ ३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ वहाँ सगोशाह भी संग्राम में कुपित हो उठा और हमारे पाँचों वीर धरती पर पैर गड़ाकर खड़े हो गए । हठी जीतमल महान योद्धा था जिसका युद्ध देखकर रंग-रूप निखर उठता था ॥ ४ ॥ गंगाराम नाम का युद्धकला में निपुण ऐसा व्यक्ति था, जिसने कितनी ही फ़ौजों को जीता हुआ था । लालचन्द्र भी अनुपम रूप से लाल हो रहा था और उसने भी कई शेरों का गर्व चूर किया हुआ था ॥ ५ ॥ रण में माहिर वह व्यक्ति प्रलय-रूप धारण कर क्रोधित हो उठा और उसने भी कई मुगलों को युद्धस्थल में मार

दयाराम जुद्धं । कीयो द्रोण की जिउ महाँ जुद्ध सुद्धं ॥ ६ ॥ क्रिपाल कोपीयं कुतको संभारी । हठी खानहयात के सीस भारी । उठी छिच्छि इच्छं कढा मेझ जोरं । मनो माखनं मट्टकी कान्ह फोरं ॥ ७ ॥ तहाँ नंदचंदं कीयो कोपु भारो । लगाई बरछी क्रिपाणं संभारो । तुटी तेग त्रिवखी कढे जम्म दड्ढं । हठी राखीयं लज्ज बंसं सनड्ढं ॥ ८ ॥ तहाँ मातलेयं क्रिपालं क्रुद्धं । छकियो छोभ छत्री कर्‍यो जुद्ध सुद्धं । सहे देह आपं महाबीर बाणं । करो खान बानीन खाली पलाणं ॥ ९ ॥ हठियो साहबं चंद खेतं खत्रियाणं । हने खान खूनी खुरासान भानं । तहाँ बीर बंके भली भाँति मारे । बचे प्रान लै कै सिपाही सिधारे ॥ १० ॥ तहाँ शाह संग्राम कीने अखारे । घने खेत मो खान खूनी लतारे । न्रिपं गोपलायं खरो खेत गाजै । म्रिगा झुंड मद्ध्यं मनो सिंघ राजै ॥ ११ ॥ तहाँ एक बीरं हरीचंद कोप्यो । भली भाँति सो खेत मो पाव रोप्यो । महाँ क्रोध कै तीर तीखे प्रहारे ।

दिया । ब्राह्मण दयाराम भी क्रोधित हो उठा और उसने भी द्रोणाचार्य की तरह भीषण युद्ध किया ॥ ६ ॥ कृपालचन्द भी डंडे को सँभालते हुए क्रोधित हो उठा और उसने हयात खाँ के सिर पर डंडे का वार किया । हयात खाँ का भेजा इस प्रकार फूटकर बाहर निकल पड़ा जैसे कृष्ण ने मटकी को फोड़कर मक्खन निकाला हो ॥ ७ ॥ वहाँ नन्दचन्द भी कुपित हो उठा और उसने भी कृपाण को सँभालते हुए बर्छी से वार किया । उसकी कृपाण शत्रु के शरीर में ही टूट गई, परन्तु फिर भी उस हठी ने सनौढ़ वंश की लाज रख ली ॥ ८ ॥ मामा कृपालचन्द भी क्रोधित हुए और इस क्षत्री ने भी क्रोध में आकर भीषण युद्ध किया । अपनी देह पर तो इस महावीर ने बाणों के वार सहे, परन्तु मुगलों के घोड़ों को सवारों से रहित कर दिया ॥ ९ ॥ हठी साहबचन्द ने भी युद्धक्षेत्र में क्षत्रियों के समान युद्ध किया और कई खुरासान के भयंकर मुगलों का हनन किया । वहाँ अनेक बाँके वीरों को मारा गया और जो बच गए उनको उनके सिपाही लेकर भाग निकले ॥ १० ॥ वहीं पर संगोशाह ने अखाड़ा मण्डित कर अनेक मुगलों को खून से लथपथ कर गिरा दिया । राजा गोपाल खेत में खड़ा इस प्रकार गरज रहा था मानो मृगों के झुंड में सिंह शोभायमान हो ॥ ११ ॥ वहाँ एक वीर हरिचन्द था जो अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने भलीभाँति में अपने पैर जमाए रखा महा

लगै औनि कै ताहि पारं पधारे ॥१२॥ ॥ रसावल्ल छंद ॥ हरी-चंद क्रुद्धं । हने सूर सुद्धं । (मू०ग्रं०६०) भले बाण बाहे । बडे सैन गाहे ॥ १३ ॥ रसं रुद्र राचे । महाँ लोह माचे । हने शस्त्रधारी । लिटे भूप भारी ॥ १४ ॥ तबै जीत मल्लं । हरीचंद मल्लं । ह्रिदं ऐंच मार्यो । सु खेतं उतार्यो ॥ १५ ॥ लगे बीर बाणं । रिसियो तेजि माणं । समुह बाज डारे । सुवरगं सिधारे ॥१६॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ खुलै खान खूनी खुरासान खग्गं । परी शस्त्र धारं उठी झाल अग्गं । भई तीर भीरं कमाणं कड़क्के । गिरे बाज ताजी लगे धीर धक्के ॥ १७ ॥ बजी भेर भुंकार धुक्के नगारे । दुहू ओर ते बीर बंके बकारे । करे बाहु आघात शस्त्रं प्रहारं । डकी डाकणी चावंडी चीतकारं ॥ १८ ॥ ॥ दोहरा ॥ कहा लगे बरनन करौ मचियो जुद्धु अपार । जे लुज्झे जुज्झे सभै भज्जे सूर हजार ॥ १९ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ भजियो शाह पाहाड़ ताजी त्रिपायं ।

क्रोधित होकर उसने तीरों के तीखे प्रहार किए और उसके तीर जिसको भी लगे वह संसार से कूच कर गया ॥ १२ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ हरिचन्द ने क्रुद्ध होकर शूरमाओं के समूहों का हनन किया । उसने तेज बाण चलाए और सेना का घोर मंथन किया ॥ १३ ॥ रौद्र रस में लीन वीरों ने भीषण युद्ध किया । अनेक शस्त्रधारी मारे गए और बड़े-बड़े राजा धराशायी हो गए ॥ १४ ॥ तभी जीतमल को योद्धा हरिचंद ने खींचकर बाण हृदय में मारा और उसे धराशायी कर दिया ॥ १५ ॥ वीरों को बाण लगे और उनका तेज एवं गर्व शान्त हुआ । घोड़ों के समूह गिर गए और स्वर्ग सिधार गए ॥ १६ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ खूनी खुरासानी मुगलों के खड़ग म्यानों से निकल आए और शस्त्रों की धार की टकराहट से रणक्षेत्र झिलमिला उठा । तीरों की भीड़ लग गई और कमानों की कड़कड़ाहट भी सुनाई देने लगी । धक्कों से कई अश्व रण-क्षेत्र में खेत रहे ॥ १७ ॥ भेरियों की ध्वनि और नगाड़ों की धड़-धड़ाहट गूँज उठी । दोनों तरफ़ से बाँके वीर गर्जन करने लगे और भुजाओं से शस्त्र प्रहार करने लगे । युद्धस्थल में चामुंडा और डाकिनियों का चीत्कार सुनाई पड़ने लगा ॥ १८ ॥ ॥ दोहा ॥ भीषण संग्राम हुआ, इसका कहाँ तक वर्णन किया जाय । जो युद्धस्थल में डटे रहे वे सब जूझ गए परन्तु हज़ारों सिपाही भाग (भी) गए ॥ १९ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ (फ़तह) शाह घोड़े पर सवार हो पहाड़ों की ओर भाग निकला । उस वीर ने तो कोई तीर भी नहीं चलाया । जसवाल का मधुकर

चलियो बीरीया तीरीया ना चलायं। जसो डड्ढवालं मधुक्कर सु साहं। भजे संगि लैकै सु सारी सिपाहं ॥ २० ॥ चक्रत चौंपियो चंद गाजी चंदेलं। हठी हरीचंदं गहे हाथ सेलं। करियो सुआमि धरमं महा रोस रुज्झियं। गिरियो टूक टूक ह्वै इसो सूर जुज्झियं ॥ २१ ॥ तहाँ खान नैजाबतै आन कै कै। हनिओ शाह संग्राम को शसत्र लै कै। किते खान बानीनहूं असत्र झारे। सही शाह संग्राम सुरगं सिधारे ॥ २२ ॥ ॥ दोहरा ॥ मारि नजाबत खान को संगो जुझै जुझार। हा हा इह लोकै भइओ सुरग लोक जैकार ॥ २३ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ लखे शाह संग्राम जुज्झे जुझारं। तवं कीट बाणं कमाणं संभारं। हनियो एक खानं खिआलं खतंगं। डसियो सत्रु को जानु स्यामं भुजंगं ॥ २४ ॥ गिरियो भूम सो बाण दूजो संभार्यो। मुखं भीखनं खान के तान मार्यो। भजियो खान खूनी रहियो खेत ताजी। तजे प्राण तीजे लगे बाण बाजी ॥ २५ ॥ छुटी मूरछना हरीचंदं संभारे। गहे

शाह तथा जसवाल का राजा भी सारे सिपाहियों को साथ लेकर भाग खड़ा हुआ ॥ २० ॥ हठी हरिचन्द ने हाथ में भाला पकड़ते हुए चंद्रवंशी चंदेलों और गाजियों को भागने से रोका और अपने सेनापति होने के कर्तव्य का निर्वाह किया। इस शूरवीर से जो भी भिड़ा दो टुकड़े होकर गिर पड़ा ॥ २१ ॥ वहीं पर नजाबत खाँ ने आकर संग्राम शाह को शस्त्रों से मार दिया। इस खान ने बाणों और अन्य अस्त्रों से कितनों ही को मार दिया। संग्राम शाह भी इसी के हाथों स्वर्ग को सिधार गए ॥ २२ ॥ ॥ दोहा ॥ संगोशाह ने नजाबत खाँ को मार दिया और स्वयं भी खेत रहे। उनके मरने से इस लोक में तो हाहाकार मच गया, परन्तु स्वर्ग में जय-जयकार होने लगी ॥ २३ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ संग्राम शाह को रण में मरते देखकर तुम्हारे इस कीट ने भी कमान को सँभाला और अपने तीर से एक खान का हनन किया। मेरा बाण शत्रु को ऐसा लगा मानो उसे काले नाग ने डस लिया हो ॥ २४ ॥ वह जब तक भूमि पर गिरा तब तक मैंने दूसरा बाण सँभाला और उसे भीखन खान के मुँह पर तानकर मारा। भीखन खान तो भाग गया परन्तु उसका घोड़ा वहीं खेत रहा। तीसरे बाण से एक अन्य ने अपने प्राण तजे २५ हरिचन्द की अब मूर्च्छा टूटी और उसने बाण पकड़कर खींच-खींचकर मारने शुरू कर दिये उसके बाण

बाण कामाण भे ऐच मारे। लगे अंग जाके रहे ना संभारं। तनं त्यागते देवलोकं पधारं ॥ २६ ॥ दुयं बाण खैचे इकं बार मारे। बली बीर बाजीन ताजी (मू०ग्रं०६१) बिदारे। जिसै बान लागै रहै न संभारं। तनं बेधिकै ताहि पारं सिधारं ॥ २७ ॥ सभै स्वाम धरमं सु बीरं संभारे। डकी डाकणी भूत प्रेतं बकारे। हसै बीर बैताल औ सुद्ध सिद्धं। चवी चावडीयं उडी ग्रिद्ध ब्रिद्धं ॥ २८ ॥ हरीचंद कोपे कमाणं संभारं। प्रथम बाजीयं ताण बाणं प्रहारं। दुतिय ताक कै तीर मो कौ चलायं। रखिओ दईव मै कान छ्वैकै सिधायं ॥ २९ ॥ त्रितिय बाण मार्‌यो सु पेटी मझारं। बिधिअं चिलकतं दुआल पारं पधारं। चुभी चिंच चरमं कछु घाइ न आयं। कलं केवलं जान दासं बचायं ॥ ३० ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जबै बाण लाग्यो। तबै रोस जाग्यो। करं लै कमाणं। हनं बाण ताणं ॥ ३१ ॥ सभै बीर धाए। सरोघं चलाए। तबै ताकि बाणं। हन्यो एक जुआणं ॥३२॥

जिसके अंग को भी लगते वह सँभल न पाता और तन त्यागकर देवलोक सिधार जाता ॥ २६ ॥ वह वीर दो-दो तीरों को खींचकर एक बार मे मार रहा था और उस वीर ने घोड़ों को नष्ट कर दिया। जिसे भी उसके बाण लगते थे, उससे सँभलते नहीं थे और तन को चीरकर पार निकल जाते थे ॥ २७ ॥ सभी वीरों ने अपने-अपने स्वामिधर्म को निबाहा (और डटकर युद्ध किया)। युद्धस्थल में डाकिनियाँ, भूत-प्रेत चिल्ला रहे थे और बैताल झुंडों में हँस-हँसकर घूम रहे थे। गिद्ध उड रहे थे, चीलों की ध्वनि भी सुनाई दे रही थी ॥२८॥ हरिचन्द ने कुपित होकर धनुष को सँभाला और पहला बाण उसने घोड़े को निशाना लगाकर मारा। दूसरा तीर उसने मेरी ओर निशाना लगाकर चलाया। मेरी रक्षा परमात्मा ने की और वह तीर मेरे कान को छूता हुआ निकल गया ॥ २९ ॥ तीसरा बाण उसने मारा जो मेरी पेटी (चमड़े का कमर-बंद) में लगा और उसे काटता हुआ अंदर धँस गया। उसकी नोक मेरे शरीर में चुभी परन्तु कोई घाव-विशेष नहीं हुआ। उस काल-रूप प्रभु ने इस सेवक के प्राण बचाए ॥ ३० ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जैसे ही बाण की नोक मुझे चुभी वैसे ही मेरा क्रोध जाग्रत् हो उठा। मैंने हाथ में धनुष लेकर बाण मारा ३१ उधर सभी वीरों में भाग दौड़ मची हुई थी और उनके शस्त्र चल रहे थे इसी बीच मैंने वह

हरीचंद मारे। सु जोधा लतारे। सु कारोड़ रायं। वहै काल घायं ॥ ३३ ॥ रणं त्यागि भागे। सभै त्रास पागे। भई जीत मेरी। क्रिपा काल केरी ॥ ३४ ॥ रणं जीति आए। जयं गीत गाए। धनंधार बरखे। सभै सूर हरखे ॥ ३५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जुद्ध जीत आए जबै टिकै न तिन पुर पाव। काहलूर मै बाँधियो आन अनंदपुर गाव ॥ ३६ ॥ जे जे नर तह ना भिरे दीने नगर निकार। जे तिह ठउर भले भिरे तिनै करी प्रतिपार ॥ ३७ ॥ ॥ चउपई ॥ बहुत दिवस इह भाँति बिताए। संत उबार दुसट सभ घाए। टाँग टाँग करि हने निदाना। कूकर जिमि तिन तजे पराना ॥ ३८ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे भंगाणी जुद्ध बरननं नाम अशटमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ ८ ॥ अफजू ॥ ३२० ॥

तीर मारा, जिससे एक बलवान (हरिचन्द) मारा गया ॥३२॥ हरिचन्द को मारकर अन्य योद्धाओं को भी दलित किया। वहीं करोड़ीराय भी काल द्वारा मार डाला गया ॥ ३३ ॥ यह देखकर सब युद्ध को त्यागकर भाग निकले और सभी (अपने मुखिया राजाओं को मरा देखकर) भयभीत हो उठे। हे कालस्वरूप प्रभु! तेरी कृपा से मेरी जीत हुई ॥ ३४ ॥ हम लोग रण को जीतकर आए और चारों ओर जय के गीत गाए जाने लगे। उसके बाद धन की वर्षा की गई अर्थात् शूरवीरों को पुरस्कृत किया गया, जिससे सभी शूरवीर अत्यंत प्रसन्न हुए ॥ ३५ ॥ ॥ दोहा ॥ जो लोग मेरे साथ युद्ध जीतकर आए, उनके अब खुशी के कारण पाँव धरती पर न पढ़ते थे। वहाँ से आकर मैंने आनन्दपुर गाँव को भी कहलूर किले (पहाड़ी राजा भीमचंद की राजधानी) के समान विस्तृत एवं दृढ़ किया ॥ ३६ ॥ जिन लोगों ने वहाँ लड़ाई में भाग नहीं लिया उन्हें अब नगर छोड़ देने को (तथा अन्यत्र बस जाने को) कहा गया (क्योंकि अब यह समझा गया कि ये लड़ाइयाँ तो किसी न किसी रूप में चलती ही रहेंगी अतः जो अपनी अधिक सुरक्षा चाहते हैं वे अन्यत्र चले जायँ)। जिन लोगों ने युद्ध में भाग लिया उनको (अस्त्र-शस्त्र, धन-धान्य देकर) और अधिक दृढ़ किया गया ॥ ३७ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार बहुत से दिन व्यतीत हुए। साधुवृत्ति वालों की रक्षा की गई और अत्याचारियों का नाश किया गया। दुष्टों को चुन-चुनकर मारा और परपीड़क कुत्ते की मौत मारे गए ॥ ३८ ॥

इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथ के भंगाणी-युद्ध-वर्णन नामक आठवें अध्याय की शुभ समाप्ति ८ अफजू ३२०

अथ नदौण का जुद्ध बरननं ॥

॥ चौपई ॥ बहुत कालि इह भाँति बितायो । मीआखान जंमू कह आयो । अलफखान नादौण पठावा । भीमाचंद तन बैर बढावा ॥ १ ॥ जुद्ध काज न्रिप हमै बुलायो । आपि तवन की ओर सिधायो । तिन कठगड़ नवरस पर बाँधो । तीर तुफंग नरेशन (मू०ग्रं०६२) साँधो ॥२॥ ॥ भुजंग छंद ॥ तहा राज सिघं बली भीमचंदं । चड़िओ रामसिघं महाँ तेजवंदं । सुखंदेव गाजी जसारोट राजं । चड़े क्रुद्ध कीने करे सरब काजं ॥ ३ ॥ प्रिथीचंद चड़िओ डढे डढवारं । चले सिध ह्वै काज राजं सुधारं । करी ढूक ढोअं किरपालचंदं । हटाए सभै मारि कै बीर ब्रिंदं ॥ ४ ॥ दुतिय ढोअ ढूकै वहै मारि उतारी । खरे दाँत पीसै छुभै छत्रधारी । उतै वै खरे बीर बंबै बजावैं । तरे भूप ठाँढे बडो सो कुपावैं ॥ ५ ॥ तबै

नदौण-युद्ध का वर्णन

॥ चौपाई ॥ इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हुआ । मीआँखान जम्मू के सूबेदार से कह आया कि अलिफ़ खाँ को (सेना देकर) नादौण भेजा जाय, क्योंकि वहाँ का राजा भीमचंद हमारे प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार कर रहा है ॥१॥ राजा (भीमचंद) ने युद्ध में सहायता करने के लिए हमें बुलाया और स्वयं अलिफ़ खाँ की तरफ़ युद्ध के लिए बढ़ा । इन लोगों ने एक ऊंचे टीले पर क़िलेबंदी की और सभी (पहाड़ी) राजाओं ने तीर-तलवारें सँभाल ली तथा निशाना साध लिया ॥२॥ ॥ भुजंग छंद ॥ वहाँ राजसिंह और बली भीमचंद थे । रामसिंह भी महान् तेजवान था, उसने भी चढ़ाई कर दी । जसरोट का राजा सुखदेव भी महान् शूरमा था । ये सब राजा पूरी तैयारी के साथ युद्ध के लिए चढ़ आए ॥ ३ ॥ पृथ्वीचंद भी दृढ़ होकर और राज-काज को सुधार करके चढ़ाई करने के लिए चढ़ पड़े । कृपालचंद ने भी साथ दिया और यह वीर ऐसा था जिसने कई वीरवृन्दों का सफाया किया हुआ था ॥ ४ ॥ जो कोई दूसरा सामने आता उसे ये सब मार सकने में समर्थ राजागण क्षुब्ध होकर दाँत पीस रहे थे । पहाड़ों की ऊपरी चट्टानों पर खड़े उधर ये वीर गरज रहे थे इधर तराई में खड़े वीर भी क्रोधित हो रहे थे ५ तभी भीमचंद ने स्वयं क्रोध में आकर

भीमचंदं कीयो कोप आपं । हनूमान के मंत्र को मुख जापं । सबै बीर बोले हमै भी बुलायं । तबै होअ के कै सु नीके सिधायं ॥ ६ ॥ सबै कोप कै कै महाँबीर ढूके । चले बारिबे बारको जिउ भमूके । तहाँ बिझुड़िआलं हठियो बीर दयालं । उठियो सैन लै संगि सारी क्रिपालं ॥ ७ ॥ ॥ मधुभार छंद ॥ कुप्पिओ क्रिपाल । नच्चे मराल । बज्जे बजंत्र । क्रूरं अमंत्र ॥ ८ ॥ जुज्झंत जुआण । बाहै क्रिवाण । जीअ धारि क्रोध । छड्डे सरोध ॥ ९ ॥ जुज्झै निदाण । तज्जंत प्राण । गिर परत भूम । जणु मेघ झूम ॥ १० ॥

रसावल छंद ॥

क्रिपाल कोप्यं । हठो पाव रोप्यं । सरोघं चलाए । बडे बीर घाए ॥ ११ ॥ हणे छत्रधारी । लिटे भूप भारी । महाँ नाद बाजे । भले सूर गाजे ॥ १२ ॥ क्रिपालं करुद्धं । कीयो जुद्ध सुद्धं । महाँबीर गज्जे । महाँ सार बज्जे ॥ १३ ॥ करियो जुद्ध चंडं । सुणियो नाव खंडं । चलियो शसत्र बाही ।

हनुमान-चालीसा का मुख में जाप किया । सभी वीरों ने कहा कि हमें भी आप आवश्यकता पड़ने पर आगे बुला लीजिएगा । तब सभी पास हो-होकर आगे की तरफ़ बढ़ने लगे ॥ ६ ॥ सभी महावीर क्रोधित होकर इस तरह चले मानो खेत की बाढ़ को जलाने के लिए चिंगारियाँ चलीं । वहीं पर बिझुड़वाल का हठी राजा दयालचन्द और कृपालचंद भी सारी सेना के साथ खड़े थे ॥ ७ ॥ ॥ मधुभार छंद ॥ कृपालचन्द क्रोधित हो उठा, घोड़े नाच उठे, रणवाद्य बज उठे और अनन्त क्रूरता दृष्टिगत होने लगी ॥ ८ ॥ जवान जूझने लगे, कृपाणें चलाने लगे और हृदय में क्रोधित होकर बाण-वर्षा करने लगे ॥ ९ ॥ युद्ध के लिए जूझने लगे और प्राण त्याग करने लगे । भूमि पर इस प्रकार गिरने लगे मानो बादल झूम रहे हों ॥ १० ॥

॥ रसावल छंद ॥ कृपालचन्द ने क्रोधित होकर युद्धस्थल में पैर जमाये, बाण-वर्षा की तथा बड़े-बड़े वीरों को घायल किया ॥ ११ ॥ छत्रधारियों का हनन किया और बड़े-बड़े राजाओं को धराशायी किया । भयंकर ध्वनि हो रही थी और शूरमा गरज रहे थे ॥ १२ ॥ कृपालचन्द ने क्रुद्ध होकर भयंकर युद्ध किया । महावीर गरजने लगे और रणस्थल में लोहा बजने लगा । १३ ऐसा प्रचण्ड युद्ध हुआ जिसकी ध्वनि

रखौती निबाही ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ कोप भरे राजा सभै कीनो जुद्ध उपाइ । सैन कटोचन की तबै घेर लई अरराइ ॥ १५ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ चले नांगलू पांगलू बेदड़ोलं । जसवारे गुलेरे चले बांध टोलं । तहाँ एक बाजियो महाबीर द्यालं । रखी लाज जौनै सभै बिझड़वालं ॥ १६ ॥ तबं कोट तीलो तुफंगं संभारो । ह्रिदे एक रावंत के तक्कि मारो । गिरियो झूम भूमै करियो जुद्ध सुद्धं । तऊ मारि बोलियो महाँ मानि क्रुद्धं ॥ १७ ॥ तजियो (मू॰ग्रं॰६३) तुपकं बान पानं संभारे । चतुर बानयं लै सु सब्बियं प्रहारे । त्रियो बाण लै बाम पाणं चलाए । लगे या लगे ना कछू जानि पाए ॥१८॥ सु तउ लउ दईव जुद्ध कीनो उझारं । तिनै खेद कै बारि कै बीच डारं । परी मार बुंगं छुटी बाण गोली । मनो सूर बैठे भली खेल होली ॥ १९ ॥ गिरे बीर भूमं सरं सांग पेलं । रंगे स्रोण बसत्रं मनो फाग खेलं । लीयो जीति बैरी कीया आन डेरं । तेऊ जाइ पारं रहे बारि केरं ॥ २० ॥ भई रात्र गुबार

नवखण्ड (पूरी पृथ्वी) पर सुनी गई । शस्त्रों को चलाकर राजपूतों ने अपनी शान का निर्वाह किया ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ राजाओं ने क्रोधित होकर व्यूह-रचना की, तभी कृपालचन्द की सेना को मुगलों की सेना ने घेर लिया ॥ १५ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ नंगल, पांगी प्रदेश के निवासी, बेदडोल, जसवार एवं गुलेर के निवासी सभी झुण्ड बाँधकर आगे बढ़े । वहीं पर महावीर दयालचन्द गरजा और उसने सभी बिझड़वालों की लाज रख ली ॥ १६ ॥ तुम्हारे इस सेवक ने भी तब तक तुफंग (छोटी बदूक़) सँभाली और निशाना साधकर एक राजा के सीने में मारा । वह झूमकर भूमि पर गिर पड़ा और उसने भी भीषण युद्ध किया । उसको मारकर मैं भी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा ॥ १७ ॥ बंदूक़ को छोड़कर मैंने बाण हाथ में लिये और चार बाणों से इकट्ठा प्रहार किया । तीन बाण बायें हाथ से चलाये और वे लगे या नहीं लगे कुछ पता नहीं चल सका ॥ १८ ॥ तब तक दैवयोग से युद्ध बन्द हो गया और शत्रुसेना को खदेड़ दिया गया । टीलों पर से बाण एवं गोलियों की बौछार इस प्रकार होती रही मानो शूरवीर लोग भली प्रकार से होली खेल रहे हों ॥ १९ ॥ तीर-तलवार के घाव खाते हुए शूरमा भूमि पर गिरे और उनके वस्त्र इस प्रकार खून से रँगे हुए थे मानो सबने फाग खेला हो । शत्रु को जीतकर हम सब अपने डेरों में आ गए और वे लोग शत्रु भी

के अरथ जामं । तबै छोरिगे बार देवै दमामं । सबै रात्रि बीती उदियो दिउसराणं । चले बीर चालाक खग्गं खिलाणं ॥ २१ ॥ भज्यो अलफखानं न खाना संभार्यो । भजे और बीरं न धीरं बिचार्यो । नदी पै दिनं असट कीने मुकामं । भली भाँति देखे सबै राज धामं ॥ २२ ॥ ॥ चौपई ॥ इत हम होइ बिदा घरि आए । सुलह नमित वै उतहि सिधाए । संधि इनै उनकै संगि कई । हेत कथा पूरन इत भई ॥ २३ ॥ ॥ दोहरा ॥ आलसून कह मारिकै इह दिसि कियो पियान । भाँति अनेकन के करे पुर अनंद सुख आन ॥ २४ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे नदौन जुद्ध बरननं नामु नौमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ ९ ॥ अफजू ॥ २४७ ॥

चौपई ॥

बहुत बरख इह भाँति बिताए । चुनि चुनि चोर सबै गहि घाए । केतकि भाजि शहिर ते गए । भूख मरत फिरि

नदी पार जाकर ठहर गए ॥ २० ॥ रात्रि के अंधकार में सुबह की तैयारी के लिए नगारे आदि बजाने का प्रबंध होने लगा । रात्रि बीतने पर सूर्य उदित हुआ और चतुर वीर तलवार का खेल खेलने के लिए चल दिए ॥ २१ ॥ अलिफ़ खान रसद-सामग्री छोड़कर भाग खड़ा हुआ तथा उसके सिपाही भी धैर्य छोड़कर भाग गए । नदी पर आठ दिन तक हमने निवास किया और भली प्रकार से राजाओं के महल आदि देखे ॥२२॥ ॥ चोपाई ॥ इधर हम विदा होकर अपने घर (आनन्दपुर) आये, उधर वे राजागण मुगलों से सन्धि करने के लिए उनकी तरफ़ चले गए । इन राजाओं ने मुगलों के साथ सन्धि कर ली और इस प्रकार यह सहायता की कथा संपूर्ण होती है ॥ २३ ॥ ॥ दोहा ॥ आलसून नामक ग्राम को विजय करके मैंने इस दिशा की ओर प्रयाण किया और आनन्दपुर में आकर अनेक प्रकार के सुखों का उपयोग किया ॥ २४ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथ के नदौण-युद्ध-वर्णन नामक नवें अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ ९ ॥ अफजू ॥ २४७ ॥

॥ चोपाई ॥ बहुत वर्ष इसी भाँति बीत गए और इसी अवधि में हमने चोरों-चोरों को पकड़-पकड़कर मारा । बहुत से चोर तो शहर

आवत भए ॥ १ ॥ तब लौ खान दिलावर आए। पूत अपन हम ओर पठाए। द्वैकु घरी बीती निसि जबै। चड़त करी खानन मिलि तबै ॥ २ ॥ जब दल पार नदी के आयो। साह आलमै हमै जगायो। सोर परा सभ ही नर जागे। गहि गहि ससत्र बीर रिस पागे ॥ ३ ॥ छूटन लगी तुफंगै तब ही। गहि गहि ससत्र रिसाने सभ ही। क्रूर भाँति तिन करी पुकारा। सोर सुना सरता के पारा ॥ ४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ बजी भैर भुंकार धुंके नगारे। महाँबीर बानैत बंके बकारे। (भू०मं०६४) भए बाहु आघात नच्चे मरालं। क्रिपा सिंधु काली गरज्जी करालं ॥ ५ ॥ नदीयं लखियो काल रात्रं समानं। करे सूरमा सीत पिंगं प्रमानं। इतै बीर गज्जे भए नाद भारे। भजे खान खूनी बिना ससत्र झारे ॥ ६ ॥ ॥ नराज छंद ॥ निलज्ज खान भज्जियो। किनी न ससत्र सज्जियो। सु त्याग खेत को चले। सु बीर बीरहा भले ॥७॥ चले तुरे तुराइकै। सकै न ससत्र उठाइकै। न लै हथिआर

छोड़ गए परन्तु जब भूखे मरने लगे तो वापस आ गए ॥ १ ॥ तब तक दिलावर खाँ ने अपना पुत्र हमारी ओर भेज दिया। जब दो घड़ी के लगभग रात बीती तो इन खानों ने मिलकर चढ़ाई की ॥ २ ॥ जब दल नदी पार कर गया तो आलमशाह ने हमें जगाया। शोर को सुनकर सब लोग जग गए और वीरगण क्रोधित होकर शस्त्रों को हाथ में लेकर आगे बढ़े ॥ ३ ॥ उसी समय छोटी तोपनुमा बंदूकें छूटने लगीं और हाथों में शस्त्र लिये योद्धागण क्रोधित होने लगे। वीर के आक्रोशपूर्ण स्वर सरिता के पार सुनाई पड़ने लगे ॥ ४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ भेरी की ध्वनि और नगाड़ों की गड़गड़ाहट बज उठी तथा बाँके महावीर जंगली पशुओं की तरह दहाड़ने लगे। बाजुओं पर आघात पड़ने लगे और अश्व नाच उठे तथा रणदेवी काली गरज उठी ॥ ५ ॥ नदी भी कालरात्रि के समान प्रतीत होने लगी, क्योंकि नदी के शीत जल ने शूरवीरों के अंगों को निर्जीव-सा कर दिया। जब इधर से वीर गरजे और भयंकर नाद होने लगा तो उधर के खूनी खानजादे बिना शस्त्र चलाए ही भाग खड़े हुए ॥ ६ ॥ ॥ नराज छंद ॥ खान निर्लज्जतापूर्वक भाग खड़ा हुआ और किसी ने शस्त्र को धारण नहीं किया। कई वीरवर रणक्षेत्र को भाग गए। ७ घोड़ों को दौड़ाकर भाग गए और शस्त्र भी नहीं उठा सके वे ऐसे वीर थे जो अब कभी भी शस्त्र

गज्जही । निहार नारि लज्जही ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ बरवा गाँउ उजार कै करे मुकाम भलान । प्रभ बल हमै न छुइ सकै भाजत भए निदान ॥ ९ ॥ तव बल ईहाँ न पर सकै बरवा हना रिसाइ । सालिन रस जिम बानीयो रोरन खात बनाइ ॥ १० ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे खानजादे को आगमन त्रासित उठि जैबो बरननं नाम दसमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ १० ॥ अफजू ॥ ३५४ ॥

हुसैनी जुद्ध कथनं ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ गयो खानजादा पिता पास भज्जं । सकै ज्बाबु दै ना हने सूर लज्जं । तहा ठोक बाहाँ हुसैनी गरज्जियं । सभै सूर लै कै सिला साज सज्जियं ॥ १ ॥ करियो जोर सैनं हुसैनी पयानं । प्रथम कूटिकै लूट लीने अवानं । पुरनि डड्ढवालं कीयो जीत जेरं । करे बंदि कै राज

गरजेंगे नहीं, प्रत्युत नारियों को भी देखकर लजा जायेंगे ॥ ८ ॥ ॥ दोहा ॥ भागते समय मुगल सेनाओं ने बरवा नामक ग्राम को उजाड़ दिया परन्तु ईश्वर की कृपा से हमको वे छू भी न सके और भाग गए ॥९॥ हे ईश्वर ! तेरी कृपा से यहाँ तो वे कुछ कर नहीं सके, परन्तु क्रोध में आकर उन्होंने बरवा ग्राम पर ही अपना क्रोध शान्त किया और यह ऐसे ही हुआ जैसे एक वणिक पुत्र, जो मांसाहारी नहीं है परन्तु मांस के रस का अनुभव किसी सब्जी को खाकर उसके रस से करता है एवं अपनी कामना को तृप्त हुआ मानता है ॥ १० ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ में खानजादे के आगमन और त्रसित होकर भाग जाने के वर्णन नामक दसवें अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ १० ॥ अफजू ॥ ३५४ ॥

हुसैनी-युद्ध-कथन

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ जब खानजादा भागकर पिता के पास गया तो वहाँ सेना के नाश और भागने का कोई उत्तर न दे सका। वहाँ भुजाओं को ठोंकता हुआ हुसैनी गरजा और उसने शूरमाओं को लेकर सेना को सुसज्जित किया ॥ १ ॥ हुसैनी ने प्रयाण किया और उसकी सेना ने अपना बाहुबल दिखाना प्रारम्भ कर दिया। पहले तो उसने आम को लूटा और फिर के राजा को परास्त कर झुका दिया

पुरजान चेरं ॥ २ ॥ पुनरि दून को लूट लानो सुधारं । कोई साम्हुहे ह्वै सकियो न गवार । लीयो छीन अंनं दलं बाँटि दीयं । महाँ मूड़ियं कुतसतं काज कीयं ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ कितक दिवस बीतत भए करत उसै उतपात । गुआलेरीयन की परत भी आन मिलन की बात ॥ ४ ॥ जो दिन दुइक न वै मिलत तब आवत अरराइ । कालि तिनू के घर बिखै डारो कलह बनाइ ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ गुआलेरीया मिलन कह आए । रामसिंघ भी संगि सिधाए । चतरथ आन मिलत भए जामं । फूटि गई लखि नजरि गुलामं ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ जैसे रवि के तेज ते रेत अधिक तपताइ । रवि बल छुद्र न जानई आपन ही गरबाइ (मू०ग्रं०६५) ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ तैसे ही फूल गुलाम जाति भयो । तिनैं न ब्रिशट तरे आनत भयो । कहलूरीया कटोच संगि लहि । जाना आन न मो सरि महि महि ॥ ८ ॥ तिन जो धन आनो थो साथा । ते दे रहे हुसैनी हाथा । देत लेत आपन कुरराने । ते धनि लै निजि

और कई राजपूतों को बंदी बना लिया ॥ २ ॥ पुनः उसने दून के क्षेत्र को लूट लिया और कोई भी मूर्ख उसके सामने टिक न सका । उसने अन्न आदि छीनकर अपने दल में बाँट दिया तथा इस महामूढ़ ने अत्यन्त कुत्सित कार्य किया ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार उत्पात मचाते उसे काफ़ी दिन बीत गए और इधर गुलेरियों के हमसे आ मिलने की बात सुनाई देने लगी ॥ ४ ॥ यदि दो दिन तक वे न आ मिलते तो शत्रु चढ़ाई कर देता, परन्तु दैवयोग से उनके घर में भी कलह प्रारम्भ हो गई थी ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब गुलेरिए मिलने के लिए आए तो (गुलेर के राजा गोपाल के साथ) रामसिंह भी साथ आ गया । चतुरथ भी रात को आ मिला, जिसे देखकर गुलाम हुसैनी को बहुत बुरा लगा ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ जिस प्रकार सूर्य के तेज से रेत गर्म होती है और सूर्य की शक्ति को न पहचानती हुई अपने तेज और गर्मी पर गर्व करती है ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ वैसे ही वह गुलाम (हुसैनी) अपनी शक्ति को देखकर फूला नहीं समा रहा था तथा अपने साथ पहाड़ी राजाओं के बल को नज़रअंदाज़ कर रहा था । कहलूर के राजा (भीमचंद) और कटोच (कृपालचंद) राजा को साथ लेकर वह समझ रहा था कि मेरे समान धरती पर कोई नहीं है ॥ ८ ॥ गोपाल भी हुसैनी से मिलने गया तथा जो धन अपने साथ लाया था उसे हुसैनी को सौंप दिया । इसी

धाम सिधाने ॥ ६ ॥ चेरो तबै तेज तन तयो । भला बुरा कछु लखत न भयो । छंद बंद नह नैकु बिचारा । जात भयो दै तबहि नगारा ॥ १० ॥ दाव घाव तिन नैकु न करा । सिघहि घेरि ससा कहु डरा । पंद्रह पहरि गिरद तिह कीयो । खान पान तिन जान न दीयो ॥ ११ ॥ खान पान बिनु सूर रिसाए । साम करन हित दूत पठाए । दास निरख संगि सैन पठानी । फूलि गयो तिन की नही मानी ॥ १२ ॥ दस सहंस्र अबही कै देहू । नातर मीच मूंड पर लेहू । सिंघ संगतीया तहा पठाए । गोपालै सु धरमु दे ल्याए ॥१३॥ तिन के संगि न उनकी बनी । तब क्रिपाल चित मो इह गनी । ऐसि घाति फिरि हाथ न ऐहै । सबहूँ फेरि समो छलि जैहै ॥ १४ ॥ गोपालै सु अबै गहि लीजै । कैद कीजीऐ कै बध कीजै । तनक भनक जब तिन सुन पाई । निज दल जात भयो भटराई ॥ १५ ॥

लेन-देन में वे आपस में झगड़ने लगे और इधर हुसैनी के सरदार से धन लेकर गोपालचन्द अपने घर को चल दिया ॥ ९ ॥ जब ग़ुलाम (हुसैनी) को पता लगा तो वह बहुत तमतमाया और उसे भले-बुरे की पहचान भूल गई । उसने राजनीति का भी तनिक विचार नहीं किया तथा नगाड़ों पर चोट देता हुआ गोपालचन्द की ओर बढ़ चला ॥१०॥ गोपाल ने तो कोई छल-कपट नहीं किया था (परन्तु फिर भी उसके क़िले को घेर लिया गया), फिर भी खरगोशों के झुंड से घिरा देखकर शेर कहीं डरता है । पन्द्रह प्रहर तक उसने क़िले को घेरे रहा और खान-पान की सामग्री अंदर नहीं जाने दी ॥ ११ ॥ खाद्य-सामग्री के अभाव में वीर शिथिल होने लगे तो गोपालचंद ने संधि-प्रस्ताव के साथ दूत हुसैनी के पास भेजे । ग़ुलाम हुसैनी अपने साथ (अन्य पहाड़ी राजाओं तथा) पठानों की सेना देखकर फूला नहीं समा रहा था, उसने गोपालचंद के पक्ष की एक भी बात नहीं मानी ॥ १२ ॥ उसने (गर्व के साथ) यह कहा कि दस हज़ार रुपया अभी दो अन्यथा मौत को स्वीकार करो । (तब पहाड़ी राजाओं ने) हमारी संगत का एक सिक्ख भेजा जो राजा गोपालचन्द को ले आया ॥ १३ ॥ उसकी (गोपालचन्द की) उसके (हुसैनी के) साथ बातचीत सफल नहीं हो सकी । यह देखकर कृपालचन्द ने चित्त में यह सोचा कि ऐसा अवसर फिर हाथ नहीं आयेगा और मिले हुए समय का यदि लाभ न उठाया गया तो हम सब हाथ मलते रह जायेंगे ॥ १४ ॥ गोपालचन्द को अभी पकड़कर क़ैद कर लिया जाय या उसका वध कर दिया जाय । इस बात की भनक जब राजा गोपाल को लगी तो वह

कमानं सजे जुआनं तन तत्तं । रणि रंग कलोलं मार हि बोलं जनु गज डोलं बन मत्तं ॥ २५ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ तबै कोपियं कांगड़ेसं कटोचं । मुखं रकत नैनं तजे सरब सोचं । उतै उट्ठियं खान खेतं खतंगं । मनो बिह्वरे मास हेतं पिलंगं ॥ २६ ॥ बजी भेर भुंकार तीरं तड़क्के । मिले हत्थि हत्थं क्रिपानं कड़क्के । बजे जंग नीसाण कत्थे कथीरं । फिरै रुंड मुंडं तनं तच्छ तीरं ॥ २७ ॥ उठै टोप टूकं गुरज्जै प्रहारे । रुले लुत्थ जुत्थं गिरे बीर मारे । परैं कत्तियं घात निरघात बीरं । फिरैं रुंड मुंडं तनं तच्छ तीरं ॥ २८ ॥ बही बाहु आघात निरघात बाणं । उठे नद्द नादं कड़क्के क्रिपाणं । छके छोभ छत्री तजै बाण राजी । बहे जाहि खाली फिरै छूछ ताजी ॥ २९ ॥ जुटे आप मैं बीर बीरं जुझारे । मनो गज्ज जुट्टे दंतारे दंतारे । किधौ सिंघ सो सारदूलं अरुज्झे । तिसी

रूप से क्रोधित हो रहे हैं। रणक्षेत्र में शूरवीर किलकारियाँ मार रहे हैं और ऐसे विचरण कर रहे हैं मानो वन में हाथी घूम रहा हो ॥ २५ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ तभी काँगड़े का राजा कृपालचन्द कटोच अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसका मुँह एवं आँखें रक्त से लाल हो उठीं तथा उसने विचार-बुद्धि का एकदम त्याग कर दिया। उधर से खान ने भी तीर पकड़कर युद्ध की तैयारी की और वह ऐसा लग रहा था जैसे मांसाहारी चीता हो ॥ २६ ॥ भेरियों की ध्वनि बज उठी है और बाणों की तड़ातड़ वर्षा शुरू हो गई। कृपाण के कड़कते ही हाथ पसलियों की तरफ़ (घाव पर) जा लगते हैं। युद्ध में नगाड़े बज रहे हैं, जिनका कविगण कथन किया करते हैं। युद्धस्थल में सिर-रहित धड़ घूम रहे हैं और शरीर तीरों से बिंधे हुए हैं ॥ २७ ॥ शिरस्त्राण गदाओं के वार से टुकड़े-टुकड़े होकर गिरे पड़े हैं और मरे हुए वीरों की लाशों के झुंड धूल-धूसरित हो रहे हैं। कटारों के एवं छुरों के घाव खाकर एवं शिरों को धड़ों से अलग करवाकर भी तथा तीरों से छलनी की तरह छनकर भी वीर लड़ रहे हैं ॥ २८ ॥ कृपाणों की समरस वर्षा हो रही है और बाणों के निशाने चूक नहीं रहे हैं। नगाड़ों की ध्वनि बज रही है और कृपाणें कड़क रही हैं। शूरवीर पूर्ण क्रोध में तीरों की पंक्तियों को छोड़ रहे हैं और फलस्वरूप कहीं पर शूरवीर इधर-उधर लोट रहे हैं और कहीं पर घोड़े वीरों से रहित अकेले दौड़ रहे हैं ॥ २९ ॥ बहादुरों के साथ बहादुर जूझ रहे हैं और वे तलवारों समेत इस प्रकार लग रहे हैं मानो दाँत वाले हाथी दाँत वाले हाथियों से लड़ाई कर रहे हों अथवा शेर शेर से भिड़ा हुआ

भाँति किरपाल गोपाल जुज्झे ॥ ३० ॥ हरीसिंघ धायो तहाँ एक बीरं। सहे देह आपं भली भाँति तीरं। महाँ कोप कै और बिरं संघारे। बडो जुद्ध कै देवलोकं पधारे ॥ ३१ ॥ हठी हिंमतं किंमतं लै क्रिपानं। लए गुरज चल्लं सु जल्लाल खानं। हठे सूरमा मत्त जोधा जुझारं। परी कुट्ट कुट्टं उठी शस्त्र झारं ॥ ३२ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जसंवाल धाए। तुरंगं नचाए। लयो घेरि हुसैनी। हन्यो साँग पैनी ॥ ३३ ॥ तिनू बाण बाहे। बडे सैन गाहे। जिसै अंगि लाग्यो। तिसै प्राण त्याग्यो ॥ ३४ ॥ जबै घाव लाग्यो। तबै कोप जाग्यो। संभारी कमाणं। हणे बीर बाणं ॥ ३५ ॥ चहूँ ओर ढूके। मुखं मार कूके। न्रिभै शस्त्र बाहैं। दोऊ जीत चाहैं ॥ ३६ ॥ रिसे खानजादे। महाँ मद्द मादे। महाँ बाण बरखे। सभै सूर हरखे ॥ ३७ ॥ करै बाण अरचा। धनुरबेद चरचा।

हो। कृपालचन्द और गोपालचन्द का युद्ध भी इसी भाँति चल रहा है ॥ ३० ॥ वहाँ पर हुसैनी खान की ओर से एक शूरवीर हरीसिंह युद्ध करने के लिए आ गया। उसने अपने शरीर पर भली प्रकार तीरों के वार को सहन किया। महा क्रोधित होकर उसने वीरवृन्दों का संहार किया और उससे युद्ध करके बहुत से बीर देवलोक को चल दिए ॥ ३१ ॥ हुसैनी खान का ही एक वीर हिम्मत बड़ी ही क़ीमती कृपाण लेकर आया और उधर से जलाल खान भी अपनी गदा को लेकर आगे चला। हठवादी शूरवीर मस्त होकर सुन्दर ढंग से लड़े और शस्त्रों की चोट पर चोट पड़ने लगी ॥ ३२ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ गोपालचन्द की ओर से जसवाल नरेश (केशरीचन्द्र) दौड़कर आया और उसने घोड़े को कुदाया तथा हुसैनी खान को घेरकर एक तीक्ष्ण बर्छी से वार किया ॥ ३३ ॥ उसने बहुत बाण चलाये और बड़ी सेना का मन्थन किया। जिसके अंग में शस्त्र लग जाता है, वह प्राण त्याग देता है ॥ ३४ ॥ जब घाव लगता है तो क्रोध और जाग्रत् हो उठता है तथा शूरवीर अपने धनुष सम्हालकर वीरों का हनन करते हैं ॥ ३५ ॥ चारों ओर से वीर घेरा डालकर मुख से मारो, मारो की आवाज निकालते हैं। वीर अभय होकर शस्त्र चला रहे हैं तथा दोनों पक्ष के लोग अपनी-अपनी जीत चाहते हैं ॥ ३६ ॥ पठानों के पुत्र क्रोधित हुए हैं और मदमस्त होकर जब बाणों की वर्षा करते हैं तो सभी शूरवीर प्रसन्न हो उठते हैं ॥ ३७ ॥ तीरों की अर्चना हो रही है और धनुर्वेद की भी चर्चा यहाँ प्रासंगिक है। बर्छी को सम्हालकर शूरवीर के जिस स्थान पर मारना चाहते हैं, मार

सु सांगं सम्हालं । करै तउन ठामं ॥ ३८ ॥ बली (मू०ग्रं०६७) बीर रुज्झे । समुह शस्त्र जुज्झे । लगै धीर धक्कं । क्रिपाणं झनक्कं ॥ ३६ ॥ कड़क्कै कमाणं । झणंके क्रिपाणं । कड़क्कार छुट्टै । झणंकार उट्ठै ॥ ४० ॥ हठी शस्त्र झारै । न शंका बिचारै । करै तीर मारं । फिरै लोह धारं ॥ ४१ ॥ नदी स्रोण पूरं । फिरै गैण हूरं । उभै खेत पालं । बके बिक्करालं ॥ ४२ ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ तह हड़हड़ाइ हस्से मसाण । लिट्टे गजिंद्र छुट्टे किकाण । जुट्टे सु बीर तह कड़क जंग । छुट्टी क्रिपाण बुट्ठे खतंग ॥ ४३ ॥ डाकन डहकिक चावड चिकार । कार्क कहकिक बज्जै दुधार । खोलं खड़किक तुप्पकि तड़ाकि । सैथं सड़किक धक्कं धहाकि ॥ ४४ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ तहा आप कीनो हुसैनी उतारं । सभू हाथ बाणं कमाणं संभारं । रुपे खान खूनी करै लाग जुद्धं । मुखं रकत नैणं भरे सूर क्रुद्धं ॥ ४५ ॥ जग्यो जंग जालम सु जोधं

देते हैं ॥ ३८ ॥ बहादुर लड़ने में पूर्ण रूप से लिप्त हैं और बहुत से शस्त्रों के साथ जूझ रहे हैं । धैर्यवान बहादुरों की धकमपेल चल रही है और कृपाणों की चमक दिखाई दे रही है ॥ ३९ ॥ कृपाणें चमक रही हैं और धनुष कड़क रहे हैं । चारों तरफ़ से कड़कड़ एवं खड़खड़ाहट सुनाई दे रही है ॥ ४० ॥ हठी शूरवीर शंका-रहित होकर शस्त्र चला रहे हैं और तीरों की मार करते हुए लौह-वर्षा कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ नदी रक्त से भर गई और आकाश में (मृत्यु की) परियाँ मँडरा रही हैं । दोनों ओर से शूरवीर रणक्षेत्र में भयंकर रूप से चिल्लाते हुए युद्धस्थल का धर्म निभा रहे हैं ॥ ४२ ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ युद्धस्थल में हड़हड़ा कर भूत हँस रहे हैं, गजराज लेटे हुए हैं और घोड़े छुट्टा दौड़ रहे हैं । शूरवीर उस कड़कड़ाते युद्ध में जुटे हुए हैं, जिसमें कृपाणें चल रही हैं और तीर बरस रहे हैं ॥ ४३ ॥ डाकिनियाँ बोल रही हैं और चीलें चीख रही हैं । दो धारोंवाली तलवारें चल रही हैं और कौवे भी काँव-काँव कर रहे हैं । लोहटोप खड़खड़ा रहे हैं और तोपें तड़तड़ा रही हैं । बछियाँ साँय-साँय कर रही हैं और धक्कों पर धक्का चल रहा है ॥ ४४ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ युद्धस्थल में हुसैनी खान स्वयं उतरा । सबने हाथ में बाणों एवं कमानों को सँभाल लिया । रूपवान शूरवीर एवं खूनी खान युद्ध करने लगे तथा शूरवीरों के चेहरे एवं आँखें क्रोध से भर उठीं ॥ ४५ ॥ ज़ालिम एव लड़ाकू सूरवीरो का युद्ध जाग्रत हो उठा है रणबाँकुरे

जुझारं । बहे बाण बाँके बरच्छी दुधारं । मिले बीर बारं महाँ धीर बंके । धका धक्कि सैथं क्रिपाणं झनंके ।। ४६ ।। भए ढोल ढंकार नद्दं नफीरं । उठै बाहु आघात गज्जै सु बीरं । नभं नद्द नीशान बज्जे अपारं । रुले तच्छ मुच्छं उठी शस्त्र झारं ।। ४७ ।। टका टुक्क टोपं ढका ढुक्क ढालं । महाँ बीर बानैत बंके बिक्रालं । नचे बीर बैतालयं भूत प्रेतं । नची डाकिणी जोगणी उरध हेतं ।। ४८ ।। छुटी जोग तारी महाँ रुद्र जागे । डग्यो ध्यान ब्रहमं सभै सिद्ध भागे । हसे किंनरं जच्छ बिद्द्याधरेयं । नची अच्छरा पच्छरा चारणेयं ।। ४९ ।। पर्‌यो घोर जुद्धं सु सैना परानी । तहाँ खाँ हुसैनी मंडिओ बीर बानी । उतै बीर धाए सु बीरं जस्वारं । सभै बिक्रत डारे बगा से अस्वारं ।। ५० ।। तहाँ खाँ हुसैनी रह्यो एक ठाढं । मनो जुद्ध खंभं रणं भूम गाढं । जिसै कोप कै कै हठी बाणि मार्‌यो । तिसै छेद कै पैल पारे

तीर, बर्छियाँ एवं दो मुँह वाली तलवारें चला रहे हैं। बड़े-बड़े शूरवीरों के साथ धैर्यवान शूरवीर आ मिले हैं और चोट पर चोट करके बर्छी एवं कृपाणों की झनकार सुना रहे हैं ।। ४६ ।। ढोलों की डमडम बज रही है और भुजाओं पर आघात करते हुए वीर गरज रहे हैं। अनन्त नये-नये नगाड़ों के शब्द निकल रहे हैं तथा शस्त्रों की मार से मरे हुए शहतीरों के समान वीर धूल-धूसरित हो रहे हैं ।। ४७ ।। लोहे के टोपों की टक-टक सुनाई देती है और ढालों की ढक-ढक सुनाई पड़ती है। बाणों से युक्त शूरवीर बड़े भयानक दिखाई दे रहे हैं। भूत-प्रेत-बैताल आदि नृत्य कर रहे हैं और व्योमवासिनी डाकिनियाँ एवं योगिनियाँ नाच रही हैं ।। ४८ ।। शिवजी की भी योगसमाधि भंग हो गई है तथा ब्रह्मा का ध्यान भी हिल गया है। सभी सिद्ध डर के मारे भाग खड़े हुए। यक्ष, किन्नर आदि विद्याधारी हँसने लगे हैं तथा अप्सराएँ एवं चारण लोग नाच उठे हैं ।। ४९ ।। इतना भयानक युद्ध चल रहा है कि सारी सेना भाग खड़ी हुई है। उसी समय हुसैनी खान ने वीरतापूर्ण शब्दों में गर्जन किया। उस ओर से यशवाल के वीर युद्ध करने के लिए आगे बढ़े हैं। सभी घुड़सवारों को योजनाबद्ध ढंग से काटकर फेंक दिया गया है, जिस प्रकार दर्जी कपड़े को काटता है ।। ५० ।। उस भयानक युद्ध में हुसैनी खान ही इस प्रकार खड़ा रहा मानो युद्धभूमि में स्तम्भ गड़ा हुआ है। जिसको वह क्रोधित होकर बाण मारता है, उसे वह बाण छेदकर पार हो जाता

पधार्‌यो ॥ ५१ ॥ सहे बाण सूरं सभै आण ढूकै । चहूँ ओर ते मार ही मार कूकै । भली भाँति सो अस्त्र अउ शस्त्र झारे । गिरे भिशत को खाँ हुसैनी सिधारे ॥ ५२ ॥ ॥ दोहरा ॥ जबै हुसैनी जुझियो भयो सूर मन रोसु । भाजि चले अवरै सभै उठ्यो (मू०ग्रं०६८) कटोचन जोसु ॥ ५३ ॥ ॥ चौपई ॥ कोपि कटोचि सभै मिलि धाए । हिमति किमति सहित रिसाए । हरीसिंघ तब किया उठाना । चुनि चुनि हने पखरिया जुआना ॥ ५४ ॥ ॥ नराज छंद ॥ तबै कटोच कोपीयं । संभार पाव रोपीयं । सरक्क शस्त्र झारही । सु मारि मारि उचारही ॥ ५५ ॥ चंदेल चोपियं तबै । रिसात धात भे सबै । जिते गए सु मारियं । बचे तिते सिधारियं ॥ ५६ ॥ ॥ दोहरा ॥ सात सवारन के सहित जूझे संगत राइ । दरसो सुनि जुझै तिनै बहुर जुझत भ्यो आइ ॥ ५७ ॥ हिमत हूँ उतर्‌यो तहाँ बीर खेत मंझार । केतन के तनि घाइ सहि केतनि के तनि झार ॥ ५८ ॥ बाज तहाँ जूझत भयो हिमत

है ॥ ५१ ॥ पास आ-आकर सभी शूरवीर तीरों की मार को सहन करते हैं तथा मारो-मारो की आवाज़ करते हैं । शूरवीर अस्त्र और शस्त्रों को भली प्रकार चला रहे हैं और इस प्रकार हुसैनी खान स्वर्ग को सिधार गया ॥ ५२ ॥ ॥ दोहा ॥ जब हुसैनी खान जूझकर मर गया तो सारे शूरवीरों को अत्यन्त क्रोध हुआ । अन्य सब तो भाग चले परन्तु कटोचों को बहुत जोश आया ॥ ५३ ॥ ॥ चौपाई ॥ सभी कटोचवासी क्रोधित होकर दौड़ पड़े । हिम्मत जैसे क़ीमती शूरवीर भी क्रोधित हो उठे । हरीसिंह ने भी तब शस्त्र उठाये और चुन-चुनकर बख्तरबन्द जवानों का हनन किया ॥ ५४ ॥ ॥ नराज छंद ॥ उसी समय कटोच (कृपालचन्द) क्रोधित हुआ और उसने क्रोध में आकर सम्हालकर अपने पैर को एक स्थान पर जमा दिया । वह शीघ्रतापूर्वक शस्त्र चलाने लगा और मारो, मारो का उच्चारण करने लगा ॥ ५५ ॥ क्रोध में आकर चन्देल भी चौकन्ना होकर युद्धस्थल की ओर बढ़ा । जितने भी आगे गये वे मारे गये और जो बचे वे भाग गये ॥ ५६ ॥ ॥ दोहा ॥ सात सवारों के साथ हमारी संगत का सिक्ख भी रणभूमि में खेत रहा । और दरसो नामक सिख ने जब यह सुना तो वह भी जूझता हुआ कट मरा ॥ ५७ ॥ हिम्मत भी अकेला ही उस रणस्थल में कूद पड़ा और उस शूरवीर ने किसनों को ही बचाते हुए अपने तन पर घाव सहे और बहुत से लोगों को मार डाला । ५८ उसका घोड़ा युद्धस्थल में मारा गया और

गयो पराइ। लोथ क्रिपालहि की नमित कोपि परे अरराइ ॥ ५६ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ बली बैर रुज्झै। सम्रुहि सार जुज्झै। क्रिपाराम गाजी। लर्‌यो सैन साजी ॥ ६० ॥ महाँ सैन गाहे। न्रिभै शस्त्र बाहे। घन्यो काल कै कै। चले जस्स लै कै ॥ ६१ ॥ बजे संख नावं। सुरं निरबिखावं। बजे डौर डक्कं। हठे शसत्र कढ्ढं ॥६२॥ परी भीर भारी। जुझै छत्र धारी। मुछं मुच्छ बंकं। लैंडे बीर हंकं ॥ ६३ ॥ मुखं मारि बोलै। रणं भूमि डोलै। हथ्यारं संभारैं। उभै बाज डारैं ॥ ६४ ॥ ॥ दोहरा ॥ रण जुज्झत किरपाल कै नाचत भयो गुपाल। सैन सभै सिरदार कै भाजत भई बिहाल ॥ ६५ ॥ खान हुसैन क्रिपाल के हिंमत रण जूझंत। भाजि चले जोधा सभै जिम कै मुकट महंत ॥ ६६ ॥ ॥ चौपई ॥ इह बिध शत्रु सभै चुनि मारे। गिरे आपने सूर संभारे। तह घाइल हिंमत कह लहा। रामसिंघ गोपाल

हिम्मत भी भाग गया। कृपालचन्द की लाश के लिए शत्रु-सेना क्रोधित हो उठी ॥ ५९ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ महाबली युद्ध में जा भिड़े और सम्मुख होकर जूझने लगे। कृपाराम शूरवीर के सामने लड़ती हुई सेना भाग खड़ी हुई ॥ ६० ॥ महान् सेना का मन्थन किया गया और अभय होकर शस्त्र चलाये गए। जिस-जिसको काल ने मार डाला वह यश का अर्जन करता हुआ चला गया ॥ ६१ ॥ शंखनाद हो उठे और एक रस-ध्वनियाँ निकलने लगीं। डमरू एवं डफलियाँ बजने लगीं और हठी शूरवीर शस्त्र निकाले हुए हैं ॥ ६२ ॥ बहुत भीड़ हो गई है तथा कई छत्रधारी (राजा) मारे गए। बाँकी मूँछों वाले बाँके वीर डटे हुए हैं ॥ ६३ ॥ मुँह से मार, मार की आवाजें करते हुए वीर रणभूमि में विचरण कर रहे हैं। हथियारों को सँभालकर दोनों ओर के पक्ष घोड़ों को मार रहे हैं ॥ ६४ ॥ ॥ दोहा ॥ रण में कृपालचन्द को देखकर गोपालचन्द नाच उठा तथा कृपालचन्द की सेना अपने सेनापति को खोकर व्याकुल होकर भाग उठी ॥ ६५ ॥ हुसैनखान, कृपालचन्द एवं हिम्मत के रण में खेत जाने से उनकी सेना के सभी योद्धा उसी प्रकार भाग खड़े हुए जैसे किसी मठाधीश को मुकुट अर्पण कर लोग पीछे हट जाते हैं ॥६६॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार सभी शत्रु चुन-चुनकर मारे गये और सबने (गोपाल तथा रामसिंह ने) अपने-अपने गिरे हुए शूरवीरों को सम्हाला। घायल पड़े हुए हिम्मत को देखकर रामसिंह ने से कहा ६७

सिउँ कहा ॥ ६७ ॥ जिन हिंमत अस कलहु बढायो । घाइल आजु हाथ वह आयो । जब गुपाल ऐसे सुनि पावा । मारि दियो जीअत न उठावा ॥ ६८ ॥ जीत भई रन भयो उजारा । सिम्रिति करि सभ घरो सिधारा । राखि लियो हमको जगराई । (मू०ग्रं०६६) लोह घटा अनतै बरसाई ॥ ६९ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे हुसैनी बधह क्रिपाल हिंमत संगतीआ बध बरननं नाम गिआरमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ ११ ॥ अफजू ॥ ४२३ ॥

॥ चौपई ॥ जुद्ध भयो इह भाँति अपारा । तुरकन को मार्यो सिरदारा । रिसतन खान दिलावर तए । इतै सकर पठावत भए ॥ १ ॥ उतै पठिओ उन सिंघ जुझारा । तिह भलान ते खेद निकारा । इत गजसिंघ पंमा दल जोरा । धाइ परे तिन ऊपर भोरा ॥ २ ॥ उतै जुझारसिंघ भ्यो आडा । जिम रन खंभ भूमि रनि गाडा । गाडा चलै न हाडा चलिहै । सामुहि सेल समर मो झलिहै ॥ ३ ॥ बाट चड़ै दल दोऊ

जिस हिम्मत ने हमारी कलह को बढ़ावा दिया वह आज घायल अवस्था में हमारे हाथ लगा है। जब गोपाल ने यह सुना तो उसे (हिम्मत को) वहीं मार दिया और जीवित नहीं छोड़ा ॥ ६८ ॥ जीत हो गई तथा युद्ध-स्थल निर्जन हो गया। अब लोगों को घरों की याद आयी और सब घरों की ओर चल दिये। परमात्मा ने हमारी रक्षा की और इस लौह-घटा की वर्षा दूसरों पर ही हो गई ॥ ६९ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथ के हुसैनी वध, कृपाल, हिम्मत, संगतीआ-वध-वर्णन नामक ग्यारहवें अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ ११ ॥ अफजू ॥ ४२३ ॥

॥ चौपाई ॥ इस प्रकार यह भयंकर युद्ध हुआ और उसमें मुगलों का सरदार मारा गया। दिलावर खान यह सुनकर बहुत क्रोधित हुआ और उसने फिर शूरवीरों को इधर भेजा ॥ १ ॥ वहाँ से उसने जुझार सिंह को भेजा। भलान नगर से उसे खदेड़ दिया गया। इधर गजसिंह पंमा ने अपना दल इकट्ठा किया और जुझारसिंह पर भोर में ही टूट पड़े ॥ २ ॥ उधर जुझारसिंह इस भाँति अडिगता से खड़ा हुआ मानो रणस्थल में खंभा गाड़ दिया गया हो। झंडा बेशक हिल जाए पर राजपूत अपनी जगह से हिलनेवाले नहीं है, क्योंकि वह सम्मुख होकर बरछी के वारों को सहारता है ३ उधर चंदेले और इधर जसवालीए

जुझारा । उत चंदेल इतै जसवारा । मंडिओ बीर खेत मो जुद्धा । उपज्यो समर सूर मन क्रुद्धा ॥ ४ ॥ क्रोप भरे दोऊ दिस भट भारे । इतै चंदेल उतै जसवारे । ढोल नगारे बजे अपारा । भीम रूप भैरो भभकारा ॥ ५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ धुणं ढोल बज्जे । महाँ सूर गज्जे । करे शस्त्र घावं । चड़े चित्त चावं ॥ ६ ॥ निभै बाज डारैं । परग्घं प्रहारैं । करे सेग घायं । चड़े चित्त चायं ॥ ७ ॥ बकैं मार मारं । न शंका बिचारं । रुलै तच्छ मुच्छं । करैं सुरग इच्छं ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ नैक न रन ते मुरि चले करैं निडर ह्वै घाइ । गिर गिर परैं पवंग ते बरे बरंगन जाइ ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ इह बिधि होत भयो संग्रामा । जूझे चंद नराइन नामा । तब जुझार एकल ही धयो । बीरन घेरि दसो दिस लयो ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ धस्यो कटक मैं झटक दै कछू न शंक बिचार । गाहत भयो सुभटन बड बाहति भयो हथिआर ॥ ११ ॥ ॥ चौपई ॥ इह बिधि घने घरन को गारा । भाँति भाँति के

राजा अपने-अपने शूरवीरों को बाँटकर चल पड़े । वीरों ने रणक्षेत्र में युद्ध किया और शूरमा अत्यन्त क्रोधित हो उठे ॥ ४ ॥ इधर चंदेले और उधर जसवालीए दोनों ओर के वीर बड़े ही क्रोध में थे । ढोल और नगाड़े बज उठे और मांसाहारी भैरव की भयानक गर्जना भी सुनाई देने लगी ॥ ५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ ढोलों की ध्वनि हुई तथा महावीर गर्जने लगे । हथियारों से वार करने लगे, क्योंकि उनके हृदय में मरने का चाव है ॥ ६ ॥ अभय घोड़ों को मार डाला गया । कुल्हाड़ी के वार चल रहे हैं । वे तलवारों के घाव कर रहे हैं, क्योंकि उन्हें मरने की खुशी है ॥ ७ ॥ मार, मार की आवाज आ रही है । योद्धाओं को मारने में कोई शंका या विचार नहीं किया जा रहा है । वीर शहतीरों की तरह धरती पर लोट रहे हैं, परन्तु सबको स्वर्ग की इच्छा (अवश्य) है ॥ ८ ॥ ॥ दोहा ॥ वीर जरा सा भी मैदान से नहीं पीछे हटते और निडर होकर वार कर रहे हैं । वे इधर घोड़ों से गिरते हैं, उधर योगिनियों का वरण करते हैं ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार संग्राम हुआ जिसमें चंद और नारायण जूझ गए । तब जुझारसिंह अकेला ही रह गया और उसे वीरों ने दसों दिशाओं से घेर लिया ॥ १० ॥ दोहा । वह बिना किसी डर के शत्रुसमूह में जा धँसा और बड़े-बड़े शूरवीरों को लथाड़ता हुआ शस्त्र चलाने लगा । ११ चौपाई इ

करि हथिआरा। चुनि चुनि बीर पखरिआ मारे। अंति देवपुर आप पधारे ॥ १२ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे जुझारसिंघ जुद्ध बरननं नाम द्वादसमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ १२ ॥ अफजू ॥ ४२५ ॥

शहजादे को आगमन मद्र देस ॥

॥ चौपई ॥ इह बिधि सो बध भयो जुझारा। आन बसे तब धाम लुझारा। तब अउरंग मन माहि रिसावा। मद्र देस को पूत पठावा ॥ १ ॥ तिह आवत सभ लोक डराने। बडे बडे गिर हेर लुकाने। हमहूँ लोगन अधिक डरायो। काल करम को मरम न पायो ॥ २ ॥ कितक लोक तजि संगि सिधारे। जाइ बसे गिरबर जह भारे। चित मूजीयन अधिक डराना। तिनै उबारन अपना जाना ॥ ३ ॥ तब अउरंग जिय माँझ रिसाए। एक अहदीआ इहाँ पठाए। हम ते भाजि बिमुख जे गए। तिन के धाम गिरावत भए ॥४॥

प्रकार उसने बहुत से घरों को तबाह किया तथा भाँति-भाँति के हथियारों से वार किये। उसने बहुत से जिरहबख्तर वाले वीरों को मारा तथा अंत में स्वयं भी देवलोक सिधार गया ॥ १२ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथ के जुझारसिंह-युद्ध-वर्णन नामक बारहवें अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ १२ ॥ अफजू ॥ ४२५ ॥

शहजादे का मद्र देश आगमन

॥ चौपाई ॥ इस प्रकार जुझारसिंह का वध हुआ और तब सभी शूरवीर अपने-अपने घरों में आ बसे। औरंगजेब तब मन में बहुत क्षुब्ध हुआ और उसने मद्र देश (पंजाब) की ओर अपना पुत्र भेजा ॥ १ ॥ उसके आने से सब लोग डर गए और बड़े-बड़े राजा पहाड़ों में जा छुपे। हमको भी लोगों ने बहुत डराया, परन्तु काल के रहस्य को कौन जानता है कि वह कहाँ पर घेरेगा ॥ २ ॥ बहुत से लोग हमारा साथ छोड़कर भाग गए और पहाड़ों में जा बसे। (हीन) कायरों का मन बहुत डरा और उनका भला करने की सोचकर मैंने उन्हें अपनाया (और साहस बँधाया) । ३ तब औरंगजेब (का पुत्र) मन में बहुत क्रोधित हुआ और उसने एक दूत हमारे पास भेजा जो हमसे विमुख होकर भा

जे अपने गुर ते मुख फिरहै। इहाँ उहाँ तिसके ग्रिह गिरहै। इहाँ उपहास न सुरपुर बासा। सभ बातन ते रहै निरासा ॥५॥ दूख भूख तिनको रहै लागी। संत सेव ते जो है त्यागी। जगत बिखै कोई काम न सरही। अंतहि कुंड नरक को परही ॥ ६ ॥ तिन को सदा जगत उपहासा। अंतहि कुंड नरक को बासा। गुर पग ते जे बिमुख सिधारे। इहाँ उहाँ तिन के मुख कारे ॥ ७ ॥ पुत्र पउत्र तिन के नहीं फरैं। दुख दै मात पिता को मरैं। गुर द्रोही स्वान की म्रित पावै। नरक कुंड डारे पछुतावै ॥ ८ ॥ बाबे के बाबर के दोऊ। आप करे परमेशर सोऊ। दीन शाह इनको पहिचानो। दुनी पती उस को अनुमानो ॥ ९ ॥ जो बाबे के दाम न दैहै। तिन ते गहि बाबर के लैहै। दै दै तिन को बडी सजाई। पुनि लैहै ग्रिह लूटि बनाई ॥ १० ॥ जब ह्वैहैं बेमुखी बिना धन। तब चढ़िहैं सिक्खन कह माँगन। जे जे सिक्ख तिनै धन दैहैं। लूटि मलेछ तिनू को लैहैं ॥ ११ ॥ जब दुरहै तिन दरब

गए थे उनके घरों को ये लोग (आक्रमणकारी) गिराते गए ॥ ४ ॥ जो अपने गुरु से मुँह फेरेगा, उसका यहाँ तथा वहाँ सब जगह घर गिरेगा। यहाँ वे हास्यास्पद बनेंगे और वहाँ स्वर्ग में भी उनको स्थान नहीं मिलेगा। इस प्रकार वे सब ओर से निराश हो जायँगे ॥ ५ ॥ जो संतों की सेवा करने से कतराएँगे, दुःख-भूख हमेशा उनको सताएँगे। जगत में उनका कोई काम पूरा नहीं होगा और वे अंत में नरकगामी होंगे ॥ ६ ॥ संसार में सदा उनकी हँसी होगी और अंत में उनका आवास नरक होगा। गुरु-चरणों से विमुख होकर जो जायँगे, उनके यहाँ-वहाँ सब जगह मुख काले होंगे ॥ ७ ॥ उनके पुत्र-पौत्रों का परिवार आगे फले फूलेगा नहीं और वे माता-पिता को भी दुःख देकर मरेंगे। गुरु से विद्वेष करनेवाला कुत्ते की मौत मरता है तथा नरककुंड में पड़ा पश्चात्ताप करता है ॥ ८ ॥ बाबा (नानक) और बाबर दोनों को परमेश्वर ने पैदा किया है। बाबा (नानक) को धर्म का बादशाह और उनको (बाबर के वंशजों को) दुनियादारी का बादशाह जानो ॥ ९ ॥ जो धर्म के लिए अर्थदान नहीं करेगा उससे दुनियादारी का बादशाह (बाबर का वंशज) छीन लेगा। इस प्रक्रिया में न देनेवालों को सजा भी मिलेगी और घर भी लूटे जायँगे ॥ १० ॥ अब ये विमुखमना लोग निर्धन हो जायँगे तब फिर सिक्खों से (भिक्षा) माँगेंगे। जो-जो सिक्ख इनको धन देगा, मुगल उसको भी लूट लेंगे ॥ ११ ॥ जब इन सबके पास द्रव्य समाप्त हो जायगा तो

बिनासा। तब धरिहै निज गुर की आसा। जब ते गुर दरशन को ऐहैं। तब तिन को गुर मुख न लगैहैं॥ १२॥ बिदा बिना जैहैं तब धामं। सरिहै कोई न तिन को कामं। गुर दर ढोई न प्रभ पुर वासा। दुहूँ ठउर ते (मू०ग्रं०७१) रहे निरासा॥ १३॥ जे जे गुर चरनन रत ह्वैहैं। तिन को कशटि न देखन पैहैं। रिद्ध सिद्ध तिन के ग्रिह माहीं। पाप ताप छ्वै सकै न छाहीं॥ १४॥ तिह मलेछ छ्वैहै नहीं छाहाँ। अशट सिद्ध ह्वैहै घरि माहाँ। हास करत जो उदम उठैहै। नवो निद्धि तिन के घरि ऐहै॥ १५॥ मिरजाबेग हुतो तिह नामं। जिन ढाहे बिमुखन के धामं। सभ सनमुख गुर आप बचाए। तिन के बार न बाँकन पाए॥ १६॥ उत अउरंग जिय अधिक रिसायो। चार अहदीयन अउर पठायो। जे बेमुख ताँ ते बचि आए। तिनके ग्रिह पुनि इनै गिराए॥ १७॥ जे तजि भजे हुते गुर आना। तिन पुनि गुरु अहदीअहि जाना। मूत्र डार तिन सीस मुँडाए। पाहुरि जानि ग्रिहहि लै आए॥ १८॥ जे जे भाज हुते बिनु आइसु। कहो

फिर ये अपने (इसी) गुरू के पास आयँगे। जब ये स्वार्थ-वृत्ति को धारण कर गुरू के पास आएँगे तो गुरू इनको मुँह नहीं लगाएगा॥ १२॥ जो बिना आज्ञा के घरों को भाग जायँगे उनका कोई काम पूरा नहीं होगा। उनको न गुरू के द्वार पर स्थान मिलेगा और न ही प्रभुपुरी में उनका आवास होगा। वे दोनों स्थानों से निराश ही होंगे॥ १३॥ जो लोग गुरू के चरणों में प्रीति लगाए रहेंगे उनको कष्ट छू तक नहीं पायगा। ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ उनके घर में होंगी और पाप-ताप उनको छू नहीं सकेगा॥ १४॥ उनकी छाया को म्लेच्छ छू नहीं सकेंगे और आठों सिद्धियाँ उनके घर पर निवास करेंगी। जो हँसते हुए उद्यमशील बने रहेंगे, नौ निधियाँ उनके घर पर बनी रहेंगी॥ १५॥ उस दूत का नाम मिर्ज़ा बेग था जिसने भाग जानेवाले के घरों को गिराया था। जो गुरु के समक्ष बने रहे उनका बाल भी बाँका नहीं हुआ॥ १६॥ उधर औरंगज़ेब और अधिक क्रोधित हुआ और उसने चार दूत और भेज दिए। गुरु से भागकर जानेवाले जो लोग बच गए थे उनके घर इन चारों ने गिरा दिए॥ १७॥ जो गुरु को त्यागकर भाग गए थे उन्होंने मुगलों के इन सिपाहसालार दूतों को ही गुरु मान लिया और इन गुरुओं ने इन लोगों के सिर मूत्र मुँडवा दिए भागनेवालों ने इसी को अमृत

अहदीअहि किनै बिसाइसु । मूंड मूंडि करि शहरि फिराए । कार भेट जनु लैन सिधाए ।। १६ ।। पाछै लागि लरिकवा चले । जानुक सिक्ख सखा हैं भले । छिके तोबरा बदन चढ़ाए । जनु त्रिह खान मलीदा आए ।। २० ।। मसतक सुभ पनहीयन घाइ । जनु करि टीका दए बनाइ । सीस ईंट के घाइ करेही । जनु तिनु भेट पुरातन देही ।। २१ ।। ।। दोहरा ।। कबहूँ रण जूझ्यो नही कछु वै जसु नहि लीन । गाँव बसति जान्यो नही जम सो किन कहि दीन ।। २२ ।। ।। चौपई ।। इह बिध तिनो भयो उपहासा । सभ संतन मिलि लख्यो तमासा । संतन कष्ट न देखन पायो । आप हाथ दै नाथ बचायो ।। २३ ।। ।। चारनी ।। ।। दोहिरा ।। जिसनो साजन राखसी दुशमन कवन बिचार । छ्वै न सकै तिह छाहि को निहफल जाइ गवार ।। २४ ।। जे साधू शरणी परे तिन के

जानकर स्वीकार किया ।। १८ ।। जो-जो बिना आज्ञा के भाग गए थे उनको इन मुगल दूतों ने अन्यों का पता बताने को कहा । इन सबको सिर मुँडवाकर शहरों में घुमाया गया मानो ये सब मुगल महन्तों की ओर से लोगों से धार्मिक दान एकत्र करते घूम रहे हों ।। १९ ।। इन सबके पीछे बच्चे मजाक़ करते हुए चल पड़े मानो ये कोई बहुत ही भले लोग हों । घोड़ों और बैलों के समान इनके मुँह पर रस्सी की जालियाँ बँधी हुई हैं मानो ये मलीदा खाने के इच्छुक लग रहे हों ।। २० ।। इनके मस्तकों पर जूतों के घावों के निशान इस प्रकार बने हुए हैं मानो किसी ने टीका लगाया हो । सिर पर ईंट-पत्थरों के घाव यह बता रहे हैं कि लोगों ने इन्हें कोई पुराना दान देकर अपने-आपको सफल किया है ।। २१ ।। ।। दोहा ।। ये लोग न तो कभी रणक्षेत्र में जूझे न ही इन्होंने किसी यश का अर्जन किया और न ही इनके बारे में कोई यह जानता था कि ये किस गाँव में रहते हैं, परन्तु फिर भी पता नहीं यम (मुगलों) को किसने इनके बारे में बता दिया ।। २२ ।। इस प्रकार इन लोगों का उपहास हुआ जिसे सब भले लोगों ने तमाशा समझकर देखा । सन्तों का कष्ट उस ईश्वर से देखा नहीं जाता और वह नाथ हमेशा अपना हाथ देकर उनकी रक्षा करता है ।।२३।। ।। चारनी ।। ।। दोहा ।। जिसका स्वामी (ईश्वर) रक्षक हो उसका शत्रु बेचारा क्या कर सकता है । उसकी परछाईं को भी कोई मूर्ख छू नहीं सकता और उसको कष्टित करने के सब प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं २४ । जो भले पुरुषों की शरण में जाता है उनके बारे में

कवण बिचार । दंत जीभ जिम राखिहै दुशट अरिश्ट संघार ॥ २५ ॥ (मू०ग्रं०७२)

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे शाहजादे व अहदीआ गमन बरननं नाम तरोदसमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ १३ ॥ अफजू ॥ ४६० ॥

॥ चौपई ॥ सरबकाल सभ साध उबारे । दुखु दै कै दोखी सभ मारे । अदभुति गति भगतन दिखराई । सभ संकट ते लए बचाई ॥ १ ॥ सभ संकट ते संत बचाए । सभ कंटक कंटक जिम घाए । दास जान मुरि करी सहाइ । आप हाथु दै लयो बचाइ ॥ २ ॥ अब जो जो मै लखे तमासा । सो सो करो तुमै अरदासा । जो प्रभ क्रिपाकटाछ दिखैहै । सो तब दास उचारत जैहै ॥ ३ ॥ जिह जिह बिधि मै लखे तमासा । चाहत तिन को कियो प्रकासा । जो जो जन्म पूरबले हेरे । कहिहो सु प्रभु प्राक्रम तेरे ॥ ४ ॥ सरबकाल है पिता अपारा । देबि कालका मात हमारा । मनुआ गुर मुरि मनसा माई । जिनि मो को सुभ क्रिआ पड़ाई ॥ ५ ॥

क्या विचार किया जाय; उनके साथ रहते हुए तो इस प्रकार रक्षा होती है, जैसे जीभ की रक्षा दाँतों के बीच हमेशा ही होती रहती है ॥ २५ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के शहज़ादे व दूत-गमन-वर्णन नामक तेरहवें अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ १३ ॥ अफजू ॥ ४६० ॥

॥ चौपाई ॥ हे सर्वकाल परमात्मा ! तुमने साधु पुरुषों का उद्धार किया है और विद्वेषी लोगों को कष्ट देकर मारा है। तुमने भक्तों को अद्भुत गति दिखलाई है और उनको सब संकटों से बचाया है ॥१॥ सन्तों को सभी संकटों से बचाते हुए सब दुःखों को उसी प्रकार दूर कर दिया है, जिस प्रकार छोटे-छोटे काँटों को कुचल दिया जाता है। सेवक जानकर आपने मेरी सहायता की और अपने वरद् हस्त द्वारा मेरी रक्षा की ॥ २ ॥ अब मैंने जो-जो तमाशे देखे हैं, वह मैं बताता हुआ तुम्हें समर्पित करता हूँ। जैसे-जैसे प्रभु की कृपा-कटाक्ष मेरे ऊपर होती जायेगी वैसे-वैसे तुम्हारा यह दास उच्चारण करता चला जायेगा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार मैंने खेल देखे हैं मैं उन सबको प्रकट करना चाहता हूँ। जो-जो अपने पूर्वजन्म मैंने देखे हैं, उनको, हे प्रभु, मैं आपके पराक्रम से कहूँगा ॥ ४ ॥ सर्वकाल (परम सत्ता) हमारा पिता है और महाशक्ति हमारी माँ हैं। (सत्व गुणी मन मेरा गुरु है और इस मन की , जिन्होंने मुझ शुभ

जब मनसा मन भया बिचारी । गुर मनुआ कह कह्यो सुधारी । जे जे चरित पुरातन लहे । ते ते अब चहिअत हैं कहे ॥ ६ ॥ सरबकाल करुणा तब भरे । सेवक जानि दया रस ढरे । जो जो जन्मु पूरबलो भयो । सो सो सभ समरण कर दयो ॥ ७ ॥ मो को इती हुती कह सुद्धं । जस प्रभ दई क्रिपा करि बुद्धं । सरबकाल तब भए दयाला । लोह रच्छ हमको सभ काला ॥ ८ ॥ सरबकाल रच्छा सभ काला । लोह रच्छ सरबदा बिसाला । ढीठ भयो तव क्रिपा लखाई । ऐंडो फिरो सभन भयो राई ॥ ९ ॥ जिह जिह बिध जनमन सुधि आई । तिम तिम कहे गरंथ बनाई । प्रथमे सतिजुग जिह बिधि लहा । प्रथमे देबि चरित्र को कहा ॥ १० ॥ पहिले चंडी चरित्र बनायो । नख सिख ते क्रम भाख सुनायो । और कथा तब प्रथम सुनाई । अब चाहत फिर करौ बडाई ॥ ११ ॥ (मू०ग्रं०७३)

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे सरबकाल की बेनती बरननं नामु चौदसमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ १४ ॥ अफजू ॥ ४७१ ॥

कर्मों में प्रवृत्त किया है, मेरी माँ हैं ॥ ५ ॥ पवित्र मन की जब मेरे पर कृपा हुई तो इस मन रूपी गुरु ने सुधारकर सब कुछ कहा । जितने पुराने (अवतारों के) चरित्र मैंने देखे हैं, अब मैं उन सबका वर्णन करना चाहता हूँ ॥ ६ ॥ सर्वकाल ने तब करुणापूरित होकर इस सेवक पर दया रूपी रस की वर्षा की । मेरे जो-जो पूर्वजन्म हुए वे मुझे सब स्मरण करा दिए ॥ ७ ॥ मुझे इतनी सुधि कहाँ थी, मुझे तो प्रभु ने कृपा करके बुद्धि प्रदान की । सर्वकाल की मेरे ऊपर दया हुई और सभी कालों में लोह-रक्षक होकर उसने हमारी सुरक्षा की ॥ ८ ॥ परमात्मा हर समय हमारा रक्षक है और वह सर्वदा विशाल प्रभु लोहे की दीवार की भाँति हमारी रक्षा करता है । आपकी कृपा को देखकर मैं कितना ढीठ हो गया हूँ कि घमंड में आकर सबका राजा बना घूम रहा हूँ ॥ ९ ॥ जिस-जिस भाँति मुझे जन्मों का स्मरण होता आया, वैसे-वैसे मैंने ग्रन्थ में वर्णन किया है । पहले जैसे मैंने सतयुग को देखा उसी तरह सबसे पहले देवी के चरित्र को कहा गया है ॥ १० ॥ पहले भी चण्डी-चरित्र कहे गए हैं, परन्तु मैंने नख से लेकर शिख तक क्रमानुसार कह सुनाया है । मेरे द्वारा पहले कही हुई कथाओं को छोड़कर अब मैं और अधिक बृहद् रूप से गुणानुवाद करना चाहता हूँ ॥ ११ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के सर्वकाल के सम्मुख प्रार्थना-वर्णन नामक चौदहवें अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ १४ ॥ अफजू ॥ ४७१ ॥

१ ओं स्री वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

अथ चंडीचरित्र उकति बिलास

॥ स्वैया ॥ आदि अपार अलेख अनंत अकाल अभेख अलक्ख अनासा । कै शिव शकति दए स्रुति चार रजो तम सत्त तिहू पुर बासा । दिउस निसा ससि सूर कै दीप सु सृष्टि रची पंच तत्त प्रकासा । बैर बढाइ लराइ सुरासुर आपहि देखत बैठ तमासा ॥ १ ॥ ॥ दोहरा ॥ क्रिपा सिंध तुमरी क्रिपा जौ कछु मो परि होइ । रचों चंडका की कथा बाणी सुभ सभ होइ ॥ २ ॥ जोत जगमगै जगति मै चंड चमुंड प्रचंड । भुज दंडन दंडनि असुर मंडन भुइ नव खंड ॥ ३ ॥ ॥ स्वैया ॥ तारन लोक उधारन भूमहि दैत संघारन चंड तुही है । कारन ईस कला कमला हरि अद्रसुता जह देखो तुही है । तामस ता ममता नमता कविता कवि के मन मद्धि गुही है । कीनो है कंचन लोह

चंडीचरित्र-उक्ति-विलास

॥ सवैया ॥ आदिपुरुष परमात्मा (वाहिगुरू) सबसे पहले अवस्थित, लेखों, वेशों से परे अविनाशी है । ऐसे परमात्मा ने शिव-शक्ति, चार वेद, तीनों गुणों (रज, सत, तमस्) को बनाया और सब भुवनों में व्याप्त किया । दिन-रात, सूर्य-चन्द्र दीपक बनाए तथा पाँचों तत्त्वों का प्रकाश कर सारे विश्व का सृजन किया । परमात्मा ने सुरों और असुरों का द्वन्द्व बढ़ाया और स्वयं सबमें अंतर्निहित होकर सारे तमाशे को देखता है ॥ १ ॥ ॥ दोहा ॥ हे कृपा-समुद्र ! यदि आपकी कुछ कृपा मुझ पर हो तो मैं चंडिका देवी की कथा की रचना करूँ ताकि मेरी काव्य-प्रतिभा और निखर जाय ॥२॥ तेरी ज्योति विश्व में जगमगा रही है । तू चंड-चामुंडा अत्यन्त प्रचंड है और अपनी बलिष्ठ भुजाओं से दैत्यों का नाश करनेवाली तथा नवखंडों की सर्जक शक्ति है ॥ ३ ॥ ॥ सवैया ॥ लोगों का उद्धार करनेवाली तथा भूमि से दैत्यों का संहार करनेवाली चंडिका तुम ही हो । तुम ही शिव की शक्ति, विष्णु की लक्ष्मी तथा पर्वत-पुत्री (पार्वती) हो । तुम ही तमस् गुण, ममत्व, विनम्रता तथा कवि की काव्य-प्रतिभा हो । तेरे पारसस्वरूप ने जिसका स्पर्श किया है उसे इस संसार

जगत मै पारस मूरत जाहि छुही है ॥ ४ ॥ ॥ दोहरा ॥ प्रमुद करन सभ भै हरन नाम चंडका जास । रचौं चरित्र बचित्र तुअ करो सबुद्ध प्रकास ॥ ५ ॥ ॥ परहा ॥ आइस अब जो होइ ग्रंथ तउ मै रचौं । रतन प्रमुद कर बचन चीन तामै गचौं । भाखा शुभ सम करहो धरिहो क्रित्त मै । अदभुत कथा अपार समझ करि चित्त मै ॥ ६ ॥ ॥ स्वैया ॥ त्रास कुटंब के हुइकै उदास अवास को त्यागि बस्यो बनराई । नाम सुरत्थ मुनीशर भेख समेत समाध समाध लगाई । चंड अखंड खंडे कर कोप भई सुर रच्छन को समुहाई । बूझहु जाइ तिनै तुम साध अगाधि कथा किह भाँति सुनाई ॥ ७ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ ॥ मुनीशरो वाच ॥ हरि सोइ रहे सज सैन तहा । जल जाल कराल बिसाल जहा । भयो नाभ सरोज ते बिसुकरता । स्रुत मैल ते दैत रचे जुगता ॥ ८ ॥ मधु कैटभ नाम धरो तिनके । अति दीरघ देह भए जिनके । तिन देख लुकेश डर्यो हिय मै । जग मात को ध्यानु धर्यो जिय मै ॥ ९ ॥

में लोहे से सोने के स्वरूप में तुमने बदल दिया है ॥४॥ ॥ दोहा ॥ जिसका नाम चंडिका है वह सबको प्रसन्न करनेवाली तथा अभय बनानेवाली है। मेरी बुद्धि प्रकाशित करो ताकि तुम्हारे विचित्र चरित्र का वर्णन कर सकूँ ॥ ५ ॥ ॥ परहा ॥ अब यदि आज्ञा हो तो मैं ग्रंथ की रचना करूँ और प्रमुदित करनेवाले वचनों को इसमें जड़ित कर दूँ । इस कृति में मैं सुन्दर भाषा को प्रयुक्त करूँगा और जो मैंने चित्त में समझा है उस अद्भुत कथा का वर्णन करूँगा ॥ ६ ॥ ॥ सवैया ॥ कुटंब से त्रसित उदासीन होकर घर छोड़कर घने जंगल में आ बैठे ऋषि का नाम सुरथ है, जिसने मुनियों का वेश धारण कर समाधि लगा रखी है। अखंड तेज वाली चंडिका राक्षसों का नाश करने के लिए तथा देवताओं की रक्षा करने के लिए सबके सम्मुख प्रस्तुत है। सुरथ ऋषि ने अपने साथी मुनि से कहा कि हे साधु ! अब तुम बूझो कि यह सुन्दर कथा क्या है ॥ ७ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ ॥ मुनीश्वरोवाच ॥ हरि वहाँ पर शय्या सजाकर सोए हुए हैं, जहाँ अपार जल-समूह है। उनकी नाभि के कमल से विश्वकर्ता ब्रह्मा का जन्म हुआ तथा कान की मैल से राक्षसों को युक्तिपूर्वक रचा गया ॥ ८ ॥ उनके नाम मधु तथा कैटभ रखे गए तथा उनके शरीर अत्यन्त विशाल थे। उन्हें देखकर लोकेश (ब्रह्मा) हृदय में भयभीत हो गया और उसने जगत-माता का ध्यान किया ॥ ९ ॥ ॥ दोहा ॥ निद्रा

॥ दोहरा ॥ छुटी चंड जागे ब्रहम कर्यो जुद्ध को साज । दैत सभै घटि जाहि जिउ बढै देवतन राज ॥ १० ॥ ॥ स्वैया ॥ जुद्ध कर्यो तिन सों भगवंत न मार सकै अति दैत बली (मू०ग्रं०७४) है । साल भए तिन पंच हजार दुहूं लरते नहि बांह टली है । दैतन रीझ कह्यो बर मांग कह्यो हरि सीसन देह भली है । धारि उरू परि चक्र सों काटकै जोति लै आपनै अंग मली है ॥ ११ ॥ ॥ सोरठा ॥ देवन थाप्यो राज मधु कैटभ को मारिकै । दीनो सकल समाज बैकुंठगामी हरि भए ॥ १२ ॥

॥ इति स्री मारकंडे पुराने चंडी चरित्र उकति बिलास मधु कैटभ बधहि प्रथम धिआइ ॥ १ ॥

॥ पउड़ी ॥ बहुरि भयो महखासुर तिन जो किआ कीआ । भुजा जोर करि जुद्ध जीत सभ जगु लीआ । सुर समूह संघारे रणहि पचारकै । टूक टूक कर डारे आयुध धारकै ॥ १३ ॥ ॥ स्वैया ॥ जुद्ध कर्यो महिखासुर दानव

टूटने पर विष्णु ने युद्ध की तैयारी की ताकि दैत्य कम हो जायँ तथा देवताओं के राज्य में वृद्धि हो जाय ॥ १० ॥ ॥ सवैया ॥ भगवान ने दैत्यों से युद्ध किया पर वे उन बलवान दैत्यों को मार न सके । लड़ते-लड़ते पाँच हज़ार वर्ष बीत गए, परन्तु वे थके नहीं । दैत्य विष्णु के पराक्रम से प्रसन्न होकर कहने लगे, तुम कोई वर माँग लो । तब विष्णु ने उनकी देह माँगी अर्थात सिर माँगा जो दैत्यों ने दे दिया । भगवान ने अपनी गोदी में रखकर उनके सिर काट लिये तथा उनकी शक्ति को अपने में मिला लिया ॥ ११ ॥ ॥ सोरठा ॥ मधु-कैटभ को मारकर देवताओं के राज्य की स्थापना की गई । सारा देवसमाज (जो कि बंदी था) उनके हवाले किया तथा भगवान स्वयं वैकुंठधाम को चले गए ॥ १२ ॥

॥ इति श्री मार्कण्डेय पुराण में श्री चंडीचरित्र-उक्ति-विलास में मधु-कैटभ-वध नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

॥ पउड़ी ॥ फिर महिषासुर हुआ उसने जो किया (वह इस प्रकार है); उसने भुजबल से युद्ध कर सारे विश्व को जीत लिया । देवों के झुंड समूह उसने रणक्षेत्र में ललकारकर मार दिये और अपने शस्त्रों से खंड-खंड कर दिए ॥ १३ ॥ ॥ सवैया ॥ महिषासुर ने युद्ध किया और सारी देवसेना को मार गिराया बड़े-बड़े बलियों को उसने दो-दो टुकड़े

मारि सभै सुर सैन गिरायो। कै कै टूक बए अर खेत महाँबरबंड महा रन पायो। स्रउण तरंग सन्यो निसर्यो जसु या छबि को मन मै इहि आयो। मारिकै छत्रनि कुंडकै खेत्र मै मानहु पैठिकै रामजू न्हायो॥ १४॥ ॥ स्वैया॥ लै महखासुर अस्त्र सु शस्त्र सभै कलवत्र जिउ चीर कै डारे। लुत्थ पै लुत्थ रही गुथ जुत्थ गिरे गिर से रथ सैंधव भारे। गूद सने सित लोहू मै लाल कराल परे रन मै गजकारे। जिउ दरजी जम छित के सीत मै बागे अनेक कता करि डारे॥ १५॥ ॥ स्वैया॥ लै सुर संग सभै सुरपाल सु कोप कै सत्र की सैन पै धाए। वै मुख ढार लिए करवार हकार पचार प्रहार लगाए। स्रउन मै दैत सुरंग भए कबि ने मन भाउ इहै छबि पाए। राम मनो रन जीत कै भालक वै सिर पाउ सभै पहराए॥ १६॥ ॥ स्वैया॥ घाइल घूमत है रन मै इक लोटत है धरनी बिललाते। बउरस बीच कबंध फिरै जिह देखत काइर हैं डरपाते। यो महिखासुर जुद्धु कियो तब जंबुक गिरझ भए रंगराते। स्रौन प्रवाह मै पाइ पसार के सोए

करके रणक्षेत्र में फेंक दिया और उस महाबली ने घोर युद्ध किया। रक्त से लथपथ उसे देखकर कवि के मन में वह ऐसा लग रहा है, जैसे क्षत्रियों को मारकर परशुराम उनके रक्त में नहाए हुए हों॥ १४॥ ॥ सवैया॥ महिषासुर ने अपने अस्त्र-शस्त्रों से, आरे से लकड़ी चीरने के समान सबको चीर दिया। लाश पर लाश गिर गई और पहाड़ों के समान बड़े-बड़े घोड़े झुंड के झुंड गिरे पड़े हैं। श्वेत चर्बी और लाल रक्त से सने काले हाथी रणक्षेत्र में गिरे पड़े हैं। ये सब ऐसे मरे पड़े हैं जैसे दर्जी कपड़ों को काट-काटकर ढेरों के ढेर लगा देता है॥ १५॥ ॥ सवैया॥ इंद्र ने सभी देवताओं को लेकर शत्रु की सेना पर धावा बोल दिया। मुँह पर ढाल लगाकर, हाथों में कृपाण पकड़कर तथा ललकारकर घाव किए। दैत्य लहू में रँग गए हैं तथा कवि को ऐसे लग रहे हैं मानो राम ने युद्ध जीतने के बाद सभी रीछों-भालुओं को (लाल रंग का) सिरोपा (सिख-समाज में सम्मान-हित दिया गया वस्त्र एवं भेंट) प्रदान किया है॥ १६॥ ॥ सवैया॥ कई रणक्षेत्र में घायल घूम रहे हैं और कई धरती पर पड़े तड़फ रहे हैं। वहीं पर कबंध घूम रहे हैं, जिन्हें देखकर कायर लोग भयभीत हो रहे हैं। महिषासुर ने ऐसा युद्ध किया कि गीदड़ और चीलें (मांस मिलने की खुशी में) अत्यन्त प्रसन्न हो गई हैं तथा

हैं सूर मनो मदमाते ॥ १७ ॥ ॥ स्वैया ॥ जुद्धु किओ महखासुर दानव देखत भान चलै नही पंथा । स्रोन समूह चल्यो लखिकै चतुरानन भूलि गए सभ ग्रंथा । मास निहारकै ग्रिज्झ रड़ैं चटसार पड़ैं जिमु बारक संथा । सारसुती तट लै भट लोथ स्रिगाल कि सिद्ध बनावत कंथा ॥ १८ ॥ ॥ दोहरा ॥ अगनत (मू०ग्रं०७५) मारे गनै को भजै जु सुर करि त्रास । धारि ध्यान मन शिवा को तकी पुरी कैलास ॥ १९ ॥ ॥ दोहरा ॥ देवन को धन धाम सभ दैतन लिओ छिनाइ । दए काढ सुरधाम से बसे शिवपुरी जाइ ॥२०॥ ॥ दोहरा ॥ कितकि दिवस बीते तहाँ न्हावन निकसी देव । बिध पूरब सभ देवतन करी देव की सेव ॥ २१ ॥ ॥ रेखता ॥ करी है हकीकत मालूम खुद देवी सेती लिया महखासुर हमारा छीन धाम है । कीजै सोई बात मात तुम कउ सुहात सभ सेवकि कदीम तक आए तेरी साम है । दीजै बाज देस हमै मेटिऐ कलेस लेस कीजिए अभेस उनै बडो यह

शूरवीर रक्त-प्रवाह के बीच पाँव पसारकर मस्त हो सो रहे हैं ॥ १७ ॥ ॥ सवैया ॥ महिषासुर के युद्ध को देखकर सूर्य भी रास्ता भूल गया है। रक्त के प्रवाह को देखकर ब्रह्मा भी अपने ग्रंथों की सुधि भूल गए है। मांस को देखकर गिद्ध इस प्रकार पंक्ति में बैठ गये हैं मानो विद्यालय में बैठे बच्चे पढ़ रहे हों। युद्धस्थल में गीदड़ लाशों को ऐसे खींच रहे हैं मानो सरस्वती नदी के किनारे बैठे सिद्धगण अपनी गुदड़ियाँ खींच-तान कर ठीक कर रहे हों ॥ १८ ॥ ॥ दोहा ॥ कितने देवता मारे गए हों, कितने भाग गए —कौन उनकी गिनती कर सकता है ! सभी देवता मन मे शिव का ध्यान कर कैलास पर्वत की ओर चल दिए ॥ १९ ॥ ॥ दोहा ॥ दैत्यों ने देवताओं के सभी धाम और उनका धन छीन लिया। उन्हें सुरपुरी से निकाल दिया और वे सब कैलासपुरी में आकर बस गए ॥ २० ॥ ॥ दोहा ॥ काफ़ी दिन बीतने के बाद जब देवी वहाँ एक दिन नहाने के लिए आयीं तो देवताओं ने विधिपूर्वक उसकी वन्दना अर्चना की ॥ २१ ॥ ॥ रेखता ॥ देवी को देवताओं ने अपनी सारी व्यथा सुनाई और बताया कि महिषासुर ने हमारे धाम छीन लिये हैं। हे माता, आपको जो अच्छा लगे आप करें, हम सब सेवक आपकी शरण में आए हैं। हमें हमारा देश वापस दिलाइए, हमारे क्लेशों का निवारण कीजिए और उन दैत्यों को वस्त्र-रहित निर्धन कर दो; हे माँ ! यह बहुत बड़ा काम है जिसे आप ही कर सकती हैं। कुत्ते को कोई नहीं मारता था

काम है। कूकर को मारत न कोऊ नाम लै कै ताहि मारत है ता को लै कै खावंद को नाम है ॥ २२ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुनत बचन ए चंडका मन मै उठी रिसाइ। सभ दैतन को छै करउ बसउ शिवपुरी जाइ ॥ २३ ॥ दैतन के बध को जबै चंडी किओ प्रकास। सिंघ संख अउ अस्त्र सभ शस्त्र आइगे पास ॥ २४ ॥ दैत संघारन के नमित काल जनमु इह लीन। सिंघ चंड बाहन भयो शत्रुन कउ दुखु दीन ॥ २५ ॥ ॥ स्वैया ॥ दावन दीरघु दिग्गज से बल सिंघहि के बल सिंघ धरे है। रोम मनो सर कालहि के जन पाहन पीत पे बिच्छ हरे है। मेर के मद्धि मनो जमनालर केतकी पुंज पै भ्रिंगु ढरे है। मानो महा प्रिथ लै कै कमान सु भूधर भूम ते न्यारे करे है ॥ २६ ॥ ॥ दोहरा ॥ घंटा गदा त्रिसूल अस संख सरासन बान। चक्र बक्र कर मै लिए जन ग्रीखम रित भान ॥ २७ ॥ चंड कोप करि चंडका ए आयुध कर लीन। त्रिकटि बिकटि पुर दैत के

भला-बुरा कहता, बल्कि उसके स्वामी को भला-बुरा कहता है और फटकारता है, इसी प्रकार यह मार हमें नहीं पड़ी है बल्कि आप हमारी स्वामिनी हैं आप पर पड़ी है ॥ २२ ॥ ॥ दोहा ॥ यह वचन सुनकर चंडिका मन में क्रोधित हो उठी और कहने लगी कि मैं सब दैत्यों का नाश कर देती हूँ, तब तक तुम सब शिवपुरी में निवास करो ॥ २३ ॥ दैत्यो के वध का जैसे ही विचार चंडी के मन में प्रकाशित हुआ तो शेर, शंख तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र उसके पास स्वयं आ गए ॥ २४ ॥ दैत्यों का नाश करने के लिए मानो यह काल ने स्वयं जन्म लिया है। शत्रुओं को महान् दुःख देनेवाला शेर चंडी का वाहन बन गया ॥ २५ ॥ ॥ सवैया ॥ शेर का भयानक रूप हाथी के समान है और वह एक बड़े शेर के समान बलशाली है। शेर के बाल मानो बाण हैं और ऐसे लग रहे हैं जैसे पीले पहाड़ पर वृक्ष उगे हुए हों। शेर की पीठ की लकीर (मेरुदंड) ऐसी लग रही है मानो पर्वत से जमुना की धारा की लकीर हो। शरीर पर काले बाल कहीं-कहीं ऐसे दिखाई दे रहे हैं, मानो केतकी के फूल पर भौंरे बैठे हों। शेर के अलग-अलग दिखनेवाले सुगठित अंग ऐसे दिखाई दे रहे हैं, मानो राजा पृथु ने धनुष उठाकर अपने बल से धरती से पहाड़ों को पृथक्-पृथक् कर दिया हो ॥ २६ ॥ ॥ दोहा ॥ देवी ने अपने भयानक हाथों में घंटा, गदा, त्रिशूल, कृपाण, शंख, धनुष आदि ले लिये हैं। उसके हाथों में पकड़े अस्त्र शस्त्र इतने दुखदायी हैं, मानो ग्रीष्म ऋतु का तपता हुआ सूर्य हो २७ अत्यन्त क्रोधित होकर चंडिका ने ये शस्त्र

घंटा की धुन कोन ॥ २८ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुनि घंटा केहरि शबदि असुरन असि रन लीन । चढ़े कोप कै जूथ हुइ जतन जुदधु को कीन ॥ २९ ॥ पैंतालीस पदम असुर सज्यो कटक चतुरंग । कछु बाएँ कछु दाहनै कछु भट न्रिप के संग ॥ ३० ॥ भए इकट्ठे दल पदम दस पंद्रह अरु बीस । पंद्रह कीने दाहने दस बाएँ संगि बीस ॥३१॥ ॥ स्वैया ॥ दउर सभै इक बार ही दैत सु आए है चंड के सामुहि कारे। लै करि बान कमानन तान घने अरु कोप सों सिंघ प्रहारे । चंड सँभार (मू०ग्रं०७६) तबै कर बार हकार कै शत्र समूह निवारे । खांडव जारन को अगनी तिह पारथ लै जनु मेघ बिडारे ॥ ३२ ॥ ॥ दोहरा ॥ दैत कोप इक सामुहे गयो तुरंगम डारि । सनमुख देवी के भयो सलभ दीप अनुहार ॥ ३३ ॥ ॥ स्वैया ॥ बीर बली सिरदार दईत सु क्रोध कै म्यान ते खगु निकार्यो । एक दयो तन चंड प्रचंड कै दूसर केहिर के सिर झार्यो । चंड सँभार तबै बलुधारि लयो गहि नारि धरा पर मार्यो । जिउ धुबिआ सरता तट जाइकै लै पट को पट साथ पछार्यो ॥ ३४ ॥

हाथ में लिये और दैत्यपुरी के निकट घंटे की भयंकर ध्वनि की ॥ २८ ॥ ॥ दोहा ॥ घंटे और शेर की ध्वनि सुनकर असुरों ने कृपाणें हाथों में लेकर क्रोधित होकर, झुंडों के रूप में युद्ध करने का प्रयत्न आरम्भ किया ॥२९॥ असुरों की पैंतालीस पदम सुसज्जित चतुरंगिणी सेना में से कुछ राजा के साथ तथा कुछ उसके दाएँ-बाएँ होकर चलने लगीं ॥ ३० ॥ पैंतालीस पदम दल इकट्ठा हुआ जिसमें पंद्रह दायीं ओर दस बायीं ओर तथा बीस पदम राजा के साथ-साथ था ॥ ३१ ॥ ॥ सवैया ॥ वे सभी काले दैत्य दौड़कर एक ही बार में चंडी के सम्मुख आ खड़े हुए और हाथों में धनुष-बाण ले-लेकर, तान-तानकर सिंह पर प्रहार करने लगे । चंडी ने सभी वारों को सँभाला और ललकारकर शत्रुसमूह का वैसे ही खंडन कर दिया मानो खांडव वन को जलने से बचाने के लिए आए बादलों को अर्जुन ने छिन्न-भिन्न कर दिया हो ॥ ३२ ॥ ॥ दोहा ॥ एक दैत्य घोड़े को दौड़ाकर देवी के सामने ऐसे जा खड़ा हुआ मानो दीपक के सम्मुख शलभ (पतंगा) जा खड़ा हुआ हो ॥३३॥ ॥ सवैया ॥ उस महाबली दैत्य सरदार ने कुपित हो म्यान से खड्ग निकाला । एक वार उसने चंडी पर और दूसरा शेर के सिर पर किया । चंडी ने सब वारों को सँभालते हुए बलशाली भुजाओं से उसे पकड़कर ऐसे धरती पर दे मारा, जैसे नदी किनारे धोबी

॥ दोहरा ॥ देवी मार्यो दैत इउ लर्यो जु सनमुख आइ। पुनि शत्रुनि की सैन मै धसी सु संख बजाइ ॥ ३५ ॥ ॥ स्वैया ॥ लै करि चंड कुवंड प्रचंड महाँ बरबंड तबै इह कीनो। एक ही बार निहार हकार सुधार बिदार सभै दलु दीनो। दैत घने रन माहि हने लखि स्रोन सने कवि इउ मनु चीनो। जिउ खगराज बडो अहिराज समाज कै काट कता करि लीने ॥ ३६ ॥ ॥ दोहरा ॥ देवी मारे दैत बहु प्रबल निबल से कीन। शस्त्र धार करि करन मै चमूँ चाल कर दीन ॥ ३७ ॥ भजी चमूँ महखासुरी तकी शरनि निज ईस। आइ जाइ तिन इउ कह्यो हन्यो पदम भट बीस ॥ ३८ ॥ सुन महखासुर मूड़ मत मन मै उठ्यो रिसाइ। आज्ञा दीनी सैन को घेरो देवी जाइ ॥ ३९ ॥ ॥ स्वैया ॥ बात सुनी प्रभ की सभ सैनहि सूर मिले इकु मंत्र कर्यो है। जाइ परैं चहूँ ओर ते धाइ कै ठाट इहै मन मध्रि धर्यो है। मार ही मार पुकार परे असि लै करि मै दलु इउ बिहर्यो है। घेरि लई चहूँ ओर ते चंड सु चंद मनो परबेख पर्यो है ॥ ४० ॥ ॥ स्वैया ॥ देखि

कपड़ों को लकड़ी के तख्ते पर पटककर पछाड़ता है ॥३४॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार जो दैत्य भी सामने आया देवी ने मार दिया तथा पुनः शंख बजाकर शत्रुसमूह में जा घुसी ॥ ३५ ॥ ॥ सवैया ॥ महाबलशाली चंडिका हाथ में धनुष लेकर, क्रोधित हो देखकर तथा भयंकर ललकार से शत्रुदल को छिन्न-भिन्न कर दिया। दैत्यों के झुंडों को कटा हुआ तथा रक्तरंजित देखकर कवि को ऐसा लगता है मानो गरुड़ ने सर्पों को काट-काटकर टुकड़े-टुकड़े करके इधर-उधर फेंक दिया हो ॥ ३६ ॥ ॥ दोहा ॥ देवी ने बहुत से दैत्यों को मारा तथा बहुत से प्रबल असुरों को निर्बल कर दिया। हाथों में शस्त्र लेकर देवी ने ऐसा भयंकर रूप दिखाया कि चतुरंगिणी सेना भाग खड़ी हुई ॥ ३७ ॥ महिषासुर की सेना भाग कर अपने स्वामी के पास पहुँची और उसे बताया कि हम लोगों के बीस पदम असुर मारे जा चुके हैं ॥ ३८ ॥ यह सुनकर मूढ़मति महिषासुर मन में क्षुब्ध हो उठा और उसने आज्ञा दी कि देवी को घेर लिया जाय ॥ ३९ ॥ ॥ सवैया ॥ अपने स्वामी की बात सुनकर सबने यह मत व्यक्त किया कि मन में दृढ़ निश्चय के साथ चारों दिशाओं से आक्रमण कर दिया जाय मार-मार की पुकार के साथ दल चारों ओर विचरण करने लगा तथा सबने चंडी को ऐसे घेर लिया मानो चंद्रमा बादलों में

चमूँ महखासुर की करि चंड कुवंड प्रचंड धर्‌यो है। दच्छन बाम चलाइ घने सर कोप भयानक जुद्धु कर्‌यो है। भंजन भे अरि के तन ते छुट स्रउन समूह धरान पर्‌यो है। आठवो सिंध पचायो हुतो मनो या रन मै बिधि ने उगर्‌यो है॥ ४१॥ ॥ दोहरा॥ कोप भई अरि दल बिखै चंडी चक्र सँभार। एक मारि कै दै किए द्वै ते कीने चार॥ ४२॥ ॥ स्वैया॥ इह भांत को जुद्धु कर्‌यो सुनि कै कबलास मै ध्यान छुट्‌यो हरि का। (मू०ग्रं०७१) पुनि चंड सँभार उभार गदा धुनि संख बजाइ कर्‌यो खरका। सिर सत्रुनि के पर चक्र पर्‌यो छुट ऐसो बह्‌यो करि के बरका। जनु खेलन को सरता तट जाइ चलावत है छिठली लरका॥ ४३॥ ॥ दोहरा॥ देख चमूँ महिखासुरी देवी बलहि सँभारि। कछु सिंघहि कछु चक्र सों डारे सभै सँघारि॥ ४४॥ इक भाजे न्रिप पै गए कह्‌यो हती सभ सैन। इह सुनिकै कोप्यो असुर चढ़ि आयो रन ऐन॥ ४५॥ ॥ स्वैया॥ जूझ परी सभ सैन लखी जब तौ महखासुर खग्ग

प्रविष्ट होकर घिर गया हो॥ ४०॥ ॥ सवैया॥ महिषासुर की सेना को देखकर प्रचंड धनुष चंडिका ने हाथ में पकड़ लिया और बाएँ हाथ से घनघोर बाण-वर्षा कर युद्ध किया। शत्रुओं के दलों को काटने पर रक्त का समूह इतना धरती पर गिरा मानो परमात्मा ने सातों समुद्रों के साथ एक आठवाँ (रक्त-) समुद्र और बना दिया हो॥४१॥ ॥ दोहा॥ शत्रु-दल में चक्र को सँभालकर चंडी ने कुपित होकर असुरों के एक से दो, दो से चार-चार टुकड़े कर दिए॥ ४२॥ ॥ सवैया॥ इस प्रकार का भयंकर युद्ध हुआ कि कैलास पर्वत पर शिवजी की समाधि भंग हो गई। चंडी ने पुन: गदा को सँभाला और शंख बजाकर भीषण नाद किया। शत्रुओं के सिर पर चक्र ऐसे घूम रहा है, मानो बच्चे नदी तट पर पानी के ऊपर पतली ठीकरियों को ज़ोर-ज़ोर से चला, पानी के तल को काटने का खेल खेल रहे हों॥ ४३॥ ॥ दोहा॥ महिषासुर की सेना को देखकर देवी ने अपने बल को सँभाला तथा कुछ को शेर के माध्यम से कुछ को चक्र से मारकर सबको नष्ट कर दिया॥ ४४॥ एक दैत्य भागकर अपने राजा (महिषासुर) के पास गया और उससे कहा कि हमारी सब सेना नष्ट कर दी गई है। यह सुनकर महिषासुर युद्ध के लिए सुसज्जित हो चल पड़ा ४५। ॥ सवैया। जब महिषासुर ने देखा कि सारी सेना युद्ध मे जूझ गई है तो उसने अपना खड़ग सँभाला और प्रचंड चंडिका के सम्मुख

सँभार्‌यो। चंड प्रचंड के सामुहि जाइ भयानक भालक जिउ भभकार्‌यो। मुगदर लै अपने करि चंड सु कंबरि ता तन ऊपर डार्‌यो। जिउ हनुमान उखार पहार को रावन के उर भीतर मार्‌यो ॥ ४६ ॥ फेर सरासन को गहिकै कर बीर हने तिन पान न मंगे। घाइल घूम परे रन माँहि कराहत हैं गिर से गज लंगे। सूरन के तन कउचन साथि परे धर भाउ उठे तह चंगे। जानो दवा बन माझ लगे तह कीटन भचछ को दउरे भुजंगे ॥ ४७ ॥ ॥ स्वैया ॥ कोप भरी रन चंड प्रचंड सु प्रेर के सिंघ धसी रन मै। करवार लै लाल किए अरि खेत लगी बड़वानल जिउ बन मै। तब घेरि लई चहूँ ओर ते दैतन इउ उपमा उपजी मन मै। मन ते तन तेजु चल्यो जग मात को दामन जान चले घन मै ॥ ४८ ॥ फूट गई धुजनी सगरी असि चंड प्रचंड जबै करि लीनो। दैत मरै नहि बेख करे बहु तउ बरबंड महाँबल कीनो। चक्र चलाइ दयो करि ते सिर सत्रु को मार जुदा करि दीनो। स्रउनत धार चली नभ को

जाकर भयंकर रीछ की भाँति गर्जने लगा। उसने एक भारी गदा अपने हाथ में लेकर उसे तीर की तरह देवी के ऊपर ऐसे फेंका मानो हनुमान ने पहाड़ को उठाकर रावण की छाती में दे मारा हो ॥ ४६ ॥ फिर उसने धनुष-बाण को हाथ में लेकर वीरों को ऐसे मारा कि किसी ने पानी भी नहीं माँगा और मर गया। वीर युद्ध में घायल होकर ऐसे घूम रहे हैं मानो हाथी लँगड़ाकर चल रहे हों। शूरमाओं के शरीर कवच-समेत धरती पर पड़े ऐसे तड़फ रहे हैं मानो वन में आग लग गई हो और भागते हुए कीड़ों को खाने के लिए सर्प दौड़ रहे हों ॥ ४७ ॥ ॥ सवैया ॥ चंडी क्रोधित होकर युद्ध में अपने शेर को लेकर आ धँसी। हाथ की तलवार से उसने रणक्षेत्र को लहू से ऐसे लाल कर दिया मानो जंगल में आग लग गई हो। दैत्यों ने जब देवी को चारों ओर से घेर लिया तो (कवि के) मन में यह उपमा पैदा हुई कि जगत्-माता का तन, मन से भी तेज़ गति से चल रहा है और देवी इस भाँति तीव्रगामी है मानो घटाओं में बिजली चल रही हो ॥ ४८ ॥ जब देवी ने कृपाण हाथ में ली तो समस्त असुर-सेना खंड-खंड हो गयी। दैत्य भी बड़े महाबली थे, वे मर नहीं रहे थे, अपितु रूप बदल-बदलकर युद्ध कर रहे थे। चंडी ने हाथों से चक्र चलाकर शत्रुओं के सिरों को अलग कर दिया और फलस्वरूप रक्त की धारा ऐसे बह निकली मानो राम ने सूर्य को जल अर्पण किया हो ४९

असु सूर को राम जलांजल दीनो ॥ ४९ ॥ ॥ स्वैया ॥ सभ सूर संघार दए तिह खेत महाँ बरबंड पराक्रम कै । तह स्रउनत सिंध भयो धरनी परि पुंज गिरे असि कै ध्रम कै । जगमात प्रताप हने सुर ताप सुदानव सैन गई जम कै । बहुरो अरि सिंधुर के दल पैठ कै दामन जिउ दुरगा दमकै ॥५०॥ ॥ दोहरा ॥ जब महखासुर मारिओ सभ दैतन को राज । तब काइर भाजे सभै छाड्यो सकल समाज ॥ ५१ ॥ ॥ कबितु ॥ महाबीर कहरी दुपहरी को भान मानो देवन के काज देवी डार्यो दैत (मू०ग्रं०७८) मारिकै । अउर दलु भाज्यो जैसे पउन हूँ ते भाजे मेघ इंद्र दीनो राज बलु आपनो सो धारिकै । देस देस के नरेश डारे है सुरेस पाइ कीनो अभखेक सुरमंडल बिचारिकै । इहाँ भई गुपति प्रगट जाइ तहाँ भई जहाँ बैठे हरि हरि अंबरि को डारिकै ॥ ५२ ॥

॥ इति स्री मारकंडे पुराने स्री चंडी चरित्र उकति बिलास महखासुर बधहि नाम दुतीआ धिआइ ॥ २ ॥

॥ सवैया ॥ जब उस बलशालिनी ने अपने पराक्रम से सभी शूरवीर दैत्यों को मार दिया तब धरती पर रक्त के पुंज गिरने से रक्त का समुद्र बन गया । जगत्-माता ने अपने प्रताप से देवताओं के कष्टों का निवारण कर दिया और असुर यमपुरी चले गए । पुनः देवी हाथियों के दलों में बिजली के समान दमकने लगी ॥ ५० ॥ ॥ दोहा ॥ जब महिषासुर को मारकर देवताओं को राज्य दिया गया तो (बचे-खुचे) कायर डर के मारे अपना सामान आदि भी छोड़कर भाग खड़े हुए ॥ ५१ ॥ ॥ कवित्त ॥ महाबली, दुपहर के सूर्य के समान तेजवान महिषासुर को देवी ने देवताओं को सुख देने के लिए मार डाला । उसका बचा दल ऐसे भागा जैसे पवन के सामने मेघ भाग जाते हैं । देवी ने अपने भुजबल से इन्द्र को राज्य वापस दिलाया । देश-देशान्तरों के नरेश इन्द्र के पैरों पर डाल दिए और सुरमंडली ने विचारपूर्वक इन्द्र का अभिषेक किया । इस प्रकार चंडी यहाँ पर लोप हो गई और वहाँ जा प्रकट हुई जहाँ शिवजी शेर की खाल बिछाकर बैठे थे ॥ ५२ ॥

इति श्री मार्कण्डेय पुराण में श्री चंडीचरित्र-उक्ति-विलास, महिषासुर-वध नामक द्वितीय अध्याय समाप्त २

॥ दोहरा ॥ लोप चंडका होइ गई सुरपति को दे राज । दानव मार अभेख करि कीने संतन काज ॥ ५३ ॥ ॥ स्वैया ॥ याते प्रसंन भए है महाँ मुनि देवन के तप मै सुख पावैं । जग्य करैं इक बेद ररैं भव ताप हरैं मिलि ध्यानहि लावैं । झालर ताल म्रिदंग उपंग रबाब लिए सुर साज मिलावैं । किंनर गंध्रप गान करैं गनि जच्छ अपच्छर निरत दिखावैं ॥ ५४ ॥ संखन की धुन घंटनि की करि फूलन की बरखा बरखावैं । आरती कोटि करै सुर सुंदर पेख पुरंदर के बलि जावैं । दानत दच्छन दै कै प्रदच्छन भाल मैं कुंकम अच्छत लावैं । होत कुलाहल देवपुरी मिलि देवन के कुलि मंगलि गावैं ॥ ५५ ॥ ॥ दोहरा ॥ ऐसे चंड प्रताप ते देवन बढ्यो प्रताप । तीन लोक जै जै करैं ररैं नाम सति जाप ॥ ५६ ॥ इसी भाँति सो देवतन राज कियो सुख मान । असुर सुंभ नैसुंभ दुइ दैत बडे बलिवान ॥ ५७ ॥ ॥ दोहरा ॥ इंद्रलोक के राज हित चढ़ि धाए न्रिप सुंभ ।

॥ दोहा ॥ इस प्रकार इंद्र को राज्य देकर चंडिका लोप हो गई। उसने दानवों को मारकर बेहाल कर दिया था और साधु पुरुषों के (धर्म) कार्य का संरक्षण किया था ॥५३॥ ॥ सवैया ॥ (दानवों के नष्ट हो जाने से) महामुनिगण प्रसन्न हो गए हैं और देवताओं में ध्यान लगाकर सुख-प्राप्ति कर रहे हैं। कहीं यज्ञ किया जा रहा है, कहीं वेदपाठ हो रहा है और कहीं सामूहिक रूप से समाधि लगाई जा रही है। झालर, ताल, मृदंग, रबाब आदि वाद्ययंत्रों के स्वर मिलाए जा रहे हैं। कहीं किन्नर और गंधर्व गायन कर रहे हैं तथा कहीं पर यक्ष एवं अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं ॥ ५४ ॥ (वे) शंखों एवं घंटिकाओं की ध्वनि के बीच फूलों की वर्षा कर रहे हैं। सौंदर्ययुक्त देवता भिन्न प्रकार की आरतियाँ कर रहे हैं और इन्द्र को देखकर न्योछावर हो रहे हैं। दान देकर और इंद्र की परिक्रमा करके मस्तक पर कुंकुम एवं अक्षत आदि का टीका लगा रहे हैं। सारी देवपुरी में उल्लासमय कोलाहल व्याप्त हो गया है और देवताओं के घरों में मंगलगान की ध्वनि सुनाई पड़ रही है ॥ ५५ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार चंडिका के प्रताप से देवताओं के पराक्रम में वृद्धि हुई और तीनों लोकों से जय-जयकार और सत्य के जाप की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी ॥ ५६ ॥ इसी प्रकार देवताओं ने सुखपूर्वक राज किया, परन्तु फिर (कालान्तर मे) ... हो गए । ५७

सैना चतुरंगनि रची पाइक रथ है कुंभ ॥५८॥ ॥ स्वैया ॥ बाजत डंक परी धुन कान सु संक परंदर मूंदत पउरै । सूर मै नाहि रही बुत देखि कै जुद्ध को दैत भए इक ठउरै । कांप समुंद्र उठे सिगरे बहु भार भई धरनी गति अउरै । मेरु हुल्यो दहल्यो सुरलोक जबै दल संभ निसुंभ के दउरै ॥ ५९ ॥ ॥ दोहरा ॥ देव सभै मिलि कै तबै गए सक्र पहि धाइ । कह्यो दैत आए प्रबल कीजै कहा उपाइ ॥ ६० ॥ ॥ दोहरा ॥ सुनि कोप्यो सुरपाल तब कीनो जुद्ध उपाइ । सेख देवगन जे हुते ते सभ लिए बुलाइ ॥६१॥ ॥ स्वैया ॥ भूम को भार उतारन को जगदीश बिचारकै जुद्ध ठटा । गरजै (मू॰ग्रं॰७९) मदमत्त करी बदरा बग पंत लसै जन दंत गटा । पहरे तन त्रान फिरै तह बीर लिए बरछी करि बिज्जु छटा । दल दैतन को अरि देवन पै उमड्यो मानो घोर घमंड घटा ॥ ६२ ॥ ॥ दोहरा ॥ सगल दैत इकठे भए कर्यो जुद्ध

॥ दोहा ॥ इंद्रलोक को जीतने के लिए राजा शुंभ अपनी पैदल, रथ और हाथियों वाली चतुरंगिणी सेना लेकर आ चढ़ा ॥ ५८ ॥ ॥ सवैया ॥ युद्ध के नगाड़ों की ध्वनि सुन मन में शंकायमान हो इंद्र ने (क़िले के) द्वार बंद कर दिये । शूरवीरों में आमने-सामने लड़ने की शक्ति नहीं रही, यह जानकर सभी दैत्य एक स्थान पर एकत्र हो गए । उनके जमाव को देखकर सभी समुद्र कांप उठे तथा धरती की गति भी अन्य प्रकार की (विचित्र) हो गई । शुंभ एवं निशुंभ के दलों को दौड़ते हुए देखकर सुमेरु पर्वत हिल उठा और सुरलोक भयाकुल हो उठा ॥५९॥ ॥ दोहा ॥ सभी देवता तब एकत्र होकर इंद्र के पास गए और कहने लगे कि प्रबल दैत्यों ने धावा बोल दिया है, कोई उपाय कीजिए ॥ ६० ॥ दोहा ॥ यह सुनकर देवराज क्रोधित हो उठा और युद्ध के उपाय करने लगा । इसी क्रम में उसने बाक़ी सब देवताओं को भी बुला लिया ॥६१॥ ॥ सवैया ॥ संसार के स्वामी परमेश्वर ने भूमि का भार हलका करने के लिए इस युद्ध का आयोजन किया । मदमस्त हाथी बादलों की तरह गरजने लगे और उनके सफ़ेद दांत ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो बगुलों की पंक्तियां अवस्थित हों । तन पर लौहकवच पहने और हाथों में बर्छियां लिये वीर विद्युत्-छटा से युक्त दिखाई पड़ रहे थे । दैत्यों के दल अपने शत्रु देवताओं पर ऐसे उमड़ रहे थे मानो घोर घटाएँ चारों ओर से घिर रही हों ॥ ६२ ॥ ॥ दोहा ॥ सभी दैत्यों ने इकट्ठे होकर युद्ध का उपक्रम किया और देवपुरी में जाकर देवराज इंद्र को घेर लिया ॥ ६३ ॥

के साज । अमरपुरी महि जाइ कै घेरि लिओ सुरराज ॥ ६३ ॥
॥ स्वैया ॥ खोलि कै द्वार किवार सभै निकसी असुरार की सैन चली । रन मै तब आनि इकत्र भए लखि सत्र की पत्र जिउ सैन हली । द्रुम दीरघ जिउ गज बाज हले रथ पाइक जिउ फल फूल कली । दल सुंभ को मेघ बिडारन को निकस्यो मघवा मानो पउन बली ॥ ६४ ॥ इत कोप पुरंदर सैन चड़े उत जुद्ध को सुंभ चड़े रन मै । कर बान कमान क्रिपान गदा पहिरे तन त्रान तबै तन मै । सब मार मची दुहूँ ओरन ते न रह्यो भ्रम सूरन के मन मै । बहु जंबुक ग्रिज्झ चले सुनि कै अति कोप बढ्यो सिव के गन मै ॥ ६५ ॥ राज पुरंदर कोप किओ इत जुद्ध को दैत जुरे उत कैसे । सिआम घटा घुमरी घनघोर कै घेरि लिओ हरि को रवि तैसे । सक्र कमान के बान लगे सर फोक लसै अरि के उर ऐसे । मानो पहार करार मै चोंच पसार रहे सिसु सारक जैसे ॥ ६६ ॥ ॥ स्वैया ॥ बान लगे लख सुंभ दईत धसे रन लै करवारन को । रंगभूम मै सत्र

॥ सवैया ॥ (क़िले के) सभी द्वारों और किवाड़ों को खोलकर असुरों के शत्रु इंद्र की सेना बाहर की ओर चली। रणस्थल पर आकर सब इकट्ठे हो गए और इंद्र की सेना को देखकर शत्रु की सेना पत्ते की तरह काँपने लगी। पेड़ों के समान लम्बे हाथी और घोड़े विचरण करने लगे तथा फलों-फूलों और कलियों के समान अगणित रथी और पैदल वीर चलने लगे। शुंभ के मेघ रूपी दल को छिन्न-भिन्न करने के लिए महाबली पवन की तरह इंद्र बाहर निकला ॥ ६४ ॥ इधर कुपित होकर इंद्र निकला उधर शुंभ ने युद्ध के लिए चढ़ाई कर दी। वीरों के हाथों में धनुष-बाण, कृपाण, गदा आदि हैं और तन पर उन्होंने कवच धारण कर रखे हैं। बिना किसी भ्रम के दोनों ओर से भीषण मारकाट प्रारम्भ हो गई जिससे गीदड़, गिद्ध आदि युद्धस्थल में आने लगे और शिव के गणों (भूत-प्रेतादि) का भी हर्षोल्लास बढ़ने लगा ॥ ६५ ॥ देखो, एक ओर तो इंद्र क्रोधित हो रहा है और दूसरी ओर किस प्रकार दैत्यसमूह युद्ध के लिए इकट्ठा हुआ है। दैत्य-सेना ऐसे लग रही है मानो भगवान के (रथ) सूर्य को काली घनघोर घटाओं ने घेर लिया हो। इंद्र के धनुष से निकले तीखे बाणों की शत्रुओं के हृदयों के आर-पार निकली नोकें ऐसी लग रही हैं, मानो पर्वतों को [illegible] में सारस-शिशुओं ने चोंचें फँसा रखी हों ॥ ६६ ॥ ॥ सवैया ॥ सब को बाणों से बिंधता देख असुरगण तलवारें

गिराइ दए बहु स्रउन बह्यो असुरारन को । प्रगटे गन जंबुक ग्रिज्झ पिसाच सु यौ रन भाँति पुकारन को । सु मनो भट सारसुती तट न्हात है पूरब पाप उतारन को ॥ ६७ ॥ जुद्ध निसुंभ भयान रच्यो अस आगे न दानव काहू कर्यो है । लोथन ऊपरि लोथ परी तह गीध स्रिगालनि मासु चर्यो है । गूँद बहे सिर केसन ते सित पुंभ प्रवाह धरान पर्यो है । मानो जटाधर की जट ते जनु रोस कै गंग को नीर ढर्यो है ॥ ६८ ॥ बार सिवार भए तिह ठउर सु फेन जिउ छत्र फिरे तरता । कर अंगुलका सफरी तलफै भुज काट भुजंग करे करता । हय नक्र धुजा द्रुम स्रउणत नीर मै चक्र जिउ चक्र फिरै गरता । तब सुंभ निसुंभ दुहूँ मिल दानव मार करी रन मै सरता ॥६९॥ ॥ दोहरा ॥ सुर हारे जीते असुर (मू०ग्रं०८०) लीने सकल समाज । दीनो इंद्र भजाइकै महाँ प्रबल दल साज ॥ ७० ॥ ॥ स्वैया ॥ छीन भंडार लयो है कुबेर ते शेशहुँ ते मनमाल छडाई । जीत सुकेश दिनेश निशेश गनेश

हाथ में ले रण में कूद पड़े । युद्धभूमि में उन्होंने अनेक शत्रुओं को मार गिराया और इस भाँति देवताओं का काफ़ी रक्त बहा । विभिन्न प्रकार के गण, गीदड़, गिद्ध, पिशाच आदि प्रकट होकर रणभूमि में कई प्रकार की ध्वनियाँ करते हुए ऐसे लग रहे हैं मानो शूरवीर सरस्वती नदी में स्नान करते समय गायन कर विभिन्न प्रकार के पाप उतार रहे हों ॥ ६७ ॥ निशुंभ ने ऐसा भीषण युद्ध प्रारम्भ कर दिया जैसा उससे पहले किसी दानव ने उस समय तक नहीं किया था । लाशों पर लाशें पट गई हैं जिनका मांस गीदड एवं गिद्ध खा रहे हैं। सिरों से बहनेवाली चरबी का श्वेत प्रवाह इस प्रकार धरती पर पड़ रहा है, मानो शिव के बालों से उमड़कर गंगा की धारा बह निकली हो ॥ ६८ ॥ सिरों के बाल सेवार की तरह और राजाओं के छत्र पानी पर झाग की तरह तैर रहे हैं । हाथों की अँगुलियाँ मछली की तरह तड़फ रही हैं और कटी हुई भुजाएँ सर्पों के समान लग रही हैं । रक्त रूपी पानी में घोड़े, रथ, रथों के पहिए भँवर बना-बनाकर घूम रहे हैं । शुंभ और निशुंभ दोनों ने मिलकर इतना घनघोर युद्ध किया है कि रणक्षेत्र में खून की नदी बह निकली है ॥६९॥ ॥ दोहा ॥ इस युद्ध में देवताओं की हार हुई और महाबली असुरों ने सब कुछ छीनकर इंद्र को भगा दिया ॥ ७० ॥ ॥ सवैया ॥ असुरों ने कुबेर से द्रव्य-भंडार छीन लिया और शेषनाग से मणिमाला भी छीन ली उन्होंने ब्रह्मा, सूर्य चन्द्रमा, गणेश, वरुण आदि

कलेश दिओ है भजाई । लोक किए तिन तीनहु आपने दैत पठै तहु दै ठकुराई । जाइ बसे सुर धाम तेऊ तिन सुंभ निसुंभ की फेरी दुहाई ॥ ७१ ॥ ॥ दोहरा ॥ खेत जीत दैतन लिओ गए देवते भाज । इहै बिचार्यो मन बिखै लेहु शिवा ते राज ॥ ७२ ॥ ॥ स्वैया ॥ देव सुरेश दिनेश निशेश महेशपुरी महि जाइ बसे है । भेस बुरे तहाँ जाइ दुरे सिर केस जुरे रन ते जु तसे है । हाल बिहाल महा बिकराल सँभाल नही जनु काल ग्रसे है । बार ही बार पुकार करी अति आरतवंत दरीन धसे है ॥ ७३ ॥ कान सुनी धुनि देवन की सभ दानव मारन को प्रन कीनो । हुइ कै प्रतच्छ महा बरचंड सु क्रुद्ध ह्वै जुद्ध बिखै मन दीनो । भाल को फोरि कै काली भई लखि ता छबि को कबि को मन भीनो । दैत समूहि बिनासन को जमराज ते स्त्रित्त मनो बपु लीनो ॥ ७४ ॥ ॥ स्वैया ॥ पान क्रिपान धरे बलवान सु कोप कै बिज्जुल जिउ गरजी है । मेर समेत हले गरूए गिर शेश के सीस धरा लरजी है । ब्रहम धनेश दिनेश

को मारकर भगा दिया । तीनों लोकों को उन्होंने जीतकर अपना राज्य स्थापित किया । सभी असुर देवपुरियों में जा बसे और उनके नामों से घोषणाएँ होने लगीं ॥ ७१ ॥ ॥ दोहा ॥ दैत्यों ने युद्ध जीत लिया और देवगण भाग गए । अब उन्होंने मंत्रणाएँ कीं और यही विचार तय हुआ कि जगत्-कल्याणकारिणी आदिशक्ति के प्रताप से पुनः राज्य प्राप्त किया जाय ॥ ७२ ॥ ॥ सवैया ॥ देवराज इंद्र, सूर्य एवं चंद्र सभी शिवपुरी मे आकर बस गए । देवताओं के वेश धूल-धूसरित हो गए हैं और सिर पर युद्ध के भय के कारण जटाएँ बढ़ गई हैं। वे अपने-आपको सँभाल नही पा रहे हैं और ऐसा लग रहा है मानो उन्हें काल ने ग्रस लिया हो । बार-बार रक्षात्मक पुकारें लगा रहे हैं तथा अत्यन्त दुःखी होकर कंदराओं में छिपे पड़े हुए हैं ॥ ७३ ॥ महाप्रचंड चंडिका ने जब अपने कानों से देवताओं की पुकार सुनी तो प्रत्यक्ष प्रकट होकर उसने दानवों को मारने का प्रण किया और अपना चित्त युद्ध की ओर लगा दिया । उसी समय चंडी के मस्तक को फोड़कर कालीदेवी प्रकट हुई । इस दृश्य को देखकर कवि को ऐसा लगता है मानो दैत्य-समूह का विनाश करने के लिए स्वयं मृत्यु ने काली-रूप में अवतार धारण किया हो ॥ ७४ ॥ ॥ सवैया ॥ हाथ में कृपाण पकड़कर वह बलशालिनी क्रोधित होकर बिजली के समान गरज उठी है उसकी गर्जना को सुनकर सुमेरु पर्वत जैसे भारी भारी

डर्‌यो सुनिकै हरि को छडिआ तरजी है। चंड प्रचंड अखंड लिए कर काल का काल ही जिउ अरजी है॥ ७५॥
॥ दोहरा॥ निरख चंडका तास को तबै बचन इह कीन। हे पुत्री तूं कालका होहु जु मुझ मै लीन॥ ७६॥ सुनत बचन यह चंड को तां महि गई समाइ। जिउ गंगा की धार मै जमना पैठी आइ॥ ७७॥ ॥ स्वैया॥ बैठ तबै गिरजा अर देवन बुद्धि इहै मन मद्धि बिचारी। जुद्ध किए बिनु फेर फिरै नहि भूम सभै अपनी अवधारी। इंद्र कह्‌यो अब ढील बनै नहि मात सुनो यह बात हमारी। दैतन के बध काज चली रण चंड प्रचंड भुजंगनि कारी॥ ७८॥ ॥ स्वैया॥ कंचन से तन खंजन से द्रिग कंजन की सुखमा सकुची है। लै करतार सुधा कर मै मधु मूरत सी अँग अंग रची है। आनन की सर को सस नाहिन अउर कछू उपमा न बची है। स्रिग (मू०ग्रं०८१) सुमेर के चंड बिराजत मानो सिंघासन बैठी सची है॥ ७९॥
॥ दोहरा॥ ऐसे स्रिग सुमेर के सोभत चंड प्रचंड। चंद्रहास

पर्वत भी हिल गए और शेषनाग के फन पर धरती भी कांप उठी है। ब्रह्मा, कुबेर, सूर्य आदि भी डर गए तथा उसकी भीषण गर्जना को सुनकर शिव की छाती भी धड़क उठी। महाप्रतापिनी चंडी समरस अवस्था में काल के भी काल को हाथ से पकड़कर इस प्रकार कहने लगी॥ ७५॥
॥ दोहा॥ चंडी ने उसको (काली को) देखकर कहा, हे पुत्री ! तुम मुझमें ही लीन हो जाओ॥ ७६॥ चंडी के वचनों को सुनकर कालीदेवी चंडी में ऐसे विलीन हो गई जैसे गंगा की धारा में यमुना की धारा समा जाती है॥ ७७॥ ॥ सवैया॥ तब देवी पार्वती एवं देवताओं ने मिलकर यही विचार किया कि असुरों ने तो सारी भूमि अपनी मान ली है; यह बिना युद्ध किए वापस नहीं मिलेगी। इन्द्र ने कहा, हे माता ! अब देरी मत करो और तब देवी दैत्यों के वध के लिए भयंकर नागिन की तरह चल दी॥ ७८॥ ॥ सवैया॥ देवी का तन सोने के समान और आँखें खंजन पक्षी के समान हैं, जिनके सामने कमल के फूलों की सुषमा भी सकुचा रही है। ऐसा लगता है मानो ब्रह्मा ने अंग-अंग में अमृत भरकर कोई भव्य मूर्ति तैयार की हो। चंद्रमा भी मुंह की बराबर नहीं कर सकता तथा अन्य कोई उपमा उपयुक्त भी नहीं लगती। सुमेरु पर्वत की चोटी पर बैठी देवी सिंहासन पर बैठी इंद्राणी (शचि) के समान प्रतीत हो रही है ७९ दोहा इस प्रकार सुमेरु पर्वत की चोटी पर हाथ में

करि बर धरे जन जम लीने दंड ।। ८० ।। किसी काज को दैत इकु आयो है तिह ठाइ । निरख रूप बरचंड को गिर्‌यो मूरछा खाइ ।। ८१ ।। उठि सँभारि करि जोर कै कही चंड सों बात । न्रिपति सुंभ को भ्रात हौं कह्यो बचन सुकचात ।।८२।। तीन लोक जिन बसि किए अति बल भुजा अखंड । ऐसो भूपति सुंभ है ताहि बरो बरि चंड ।। ८३ ।। सुनि राकश की बात को देवी उत्तर दीन । जुद्ध करैं बिन नहि बरौं सुनहु दैत मतहीन ।। ८४ ।। ।। दोहरा ।। इह सुन दानव चपल गति गयो सुंभ के पास । पर पाइन कर जोर कै करी एक अरदास ।। ८५ ।। अउर रतन न्रिप धाम तुम त्रिआ रतन ते हीन । बधू एक बन मै बसे तिह तुम बरो प्रबीन ।। ८६ ।। ।। सोरठा ।। सुनी मनोहरि बात न्रिप बूझ्यो पुनि ताहि को । मोसो कहियै भ्रात बरनन ताहि सरीर को ।। ८७ ।। ।। स्वैया ।। हरि सो मुख है हरिती दुख है अलिकै हरि हार प्रभा हरनी है । लोचन है हरिसे सरसे हरिसे भरुटे हरिसी बरनी

तलवार लिये चंडिका ऐसी प्रतीत हो रही है मानो यमराज ने अपने हाथ मे कालदंड पकड़ रखा हो ।। ८० ।। किसी कारणवश एक दैत्य उधर आ निकला । काली के भयंकर स्वरूप को देखकर वह मूर्च्छित होकर जा गिरा ।। ८१ ।। जब होश में आया तो वह दैत्य अपना-आप सँभालकर देवी से कहने लगा कि मैं सम्राट् शुंभ का भाई हूँ । तब उसने थोड़ा सकुचाकर कहा ।। ८२ ।। जिसने तीनों लोकों को अपने प्रचंड भुजबल से अपने वश में कर लिया है, वह सम्राट् शुंभ है, आप उसका वरण कीजिए अर्थात् उससे विवाह कीजिए ।। ८३ ।। राक्षस की बात सुनकर देवी ने उत्तर दिया कि हे मतिहीन दैत्य ! मैं युद्ध किए बिना उसका वरण नहीं करूँगी ।। ८४ ।। ।। दोहा ।। यह सुनकर तीव्रगति से वह दानव शुंभ के पास गया और पैरों पर गिरकर तथा हाथ जोड़कर उसने एक प्रार्थना की ।। ८५ ।। हे नृप ! बाक़ी सब रत्न तो पास हैं, परन्तु तुम स्त्री रूपी रत्न से विहीन हो । एक सुंदर वधू वन में रह रही है; हे प्रवीण ! तुम उसका वरण करो ।। ८६ ।। ।। सोरठा ।। राजा ने जब इस मनोहर बात को सुना तो उससे कहा, हे भाई ! मुझे बताओ कि उसका शरीर कैसा है ।।८७।। ।। सवैया ।। उसका मुँह चंद्रमा के समान दुःखों का नाश करनेवाला है और केशराशि शिव के गले में पड़े साँपों के हार के समान बल्कि सर्पों की शोभा को भी मात करनेवाली है उसकी आँखें कमल के फूलों के

है । केहरि सो करहा चलबो हरि पै हरि की हरिनी तरनी है । है कर मै हरि पै हरि सों हरि रूप किए हरि की धरनी है ॥८८॥ ॥ कबितु ॥ मीन मुरझाने कंज खंजन खिसाने अलि फिरत दिवाने बन डोलै जित तितही । कीर अउ कपोत बिंब कोकला कलापी बन लूटे फूटे फिरै मन चैन हूं न कितही । दारम दरक गयो पेख दसननि पाँत रूप ही की क्रांत जग फैल रही सितही । ऐसी गुन सागर उजागर सु नागर है लीनो मन मेरो हरि नैन कोर चितही ॥ ८९ ॥ ॥ दोहरा ॥ बात दैत की सुंभ सुनि बोल्यो कछु मुसकात । चतुर दूत कोऊ भेजिए लखि आवै तिह घात ॥ ९० ॥ ॥ दोहरा ॥ बहुरि कही उन दैत अब कीजै एक बिचार । जो लाइक भट सैन मै भेजहु दै अधिकार ॥ ९१ ॥ ॥ स्वैया ॥ बैठो हुतो न्रिप मद्धि सभा उठि कै करि जोरि कह्यो मम जाऊँ । बातन ते रिझवाइ

समान आनंदित करनेवाली है तथा उसकी भौंहें शिव के धनुष के आकार की हैं तथा बरौनियाँ तीरों की तरह हैं । उसकी कमर शेर के समान पतली है तथा चाल हाथी के समान मदमस्त करनेवाली है । वह तरुणी हर एक के मन मोह लेनेवाली है, उसके हाथ में तलवार है तथा वह शेर की सवारी करनेवाली है । हिरण के समान वह सुंदर स्वरूप वाली स्वर्ण-रूप में शोभायमान है और शिव की पत्नी है ॥८८॥ ॥ कवित्त ॥ चंचल वह इतनी है कि मत्स्य भी उसकी चंचलता देखकर मूर्च्छित हो जाते हैं, नेत्रों को देखकर कमल एवं खंजन भी ईर्ष्यालु हो उठते हैं तथा भ्रमर उसकी भौंहों को देखकर पागल हो उठते हैं तथा वन में इधर-उधर डोला करते हैं । नासिका को देखकर तोते, गर्दन को देखकर कबूतर और आवाज़ को सुनकर कोयल अपने मन का चैन खोकर लुटे-लुटे से जंगलों में घूमते हैं । दाँतों की पंक्तियों को देखकर अनार के दाने लज्जित हो रहे हैं और उसके रूप की कांति से सारा संसार प्रकाशित हो रहा है । वह ऐसे गुणों की सागर एवं सौंदर्यशालिनी है कि उसने अपनी चितवन से मेरा मन मोह लिया है ॥ ८९ ॥ ॥ दोहा ॥ दैत्य की बात सुनकर शुंभ ने मुस्कराकर कहा कि वहाँ सही घात लगाने के लिए तथा सुअवसर की पहचान करने के लिए कोई चतुर दूत भेजा जाय ताकि उसे पकड़कर लाया जा सके ॥९०॥ ॥ दोहा ॥ पुनः उस दैत्य ने कहा, अब यह विचार कीजिए और सारी सेना में जो योग्य शूरवीर हो उसको सभी अधिकार देकर भेजिए ॥ ९१ ॥ ॥ सवैया ॥ राजा सभा के बीच बैठा हुआ था वहीं धूम्रलोचन नामक वीर ने हाथ जोड़कर कहा कि इस कार्य के लिए मैं जाता

मिलाइ हों नातरि केसन ते गहि लाऊँ। क्रुद्ध करै तब जुद्धु करौं (मू०ग्रं०८२) रण स्रउणत की सरतान बहाऊँ। लोचन धूम कहै बल आपनो स्वासन साथ पहार उडाऊँ ॥९२॥ ॥ दोहरा ॥ उठे बीर को देख कै सुंभ कही तुम जाहु। रीझै आवै आनिओ खीझै जुद्ध कराहु ॥ ९३ ॥ तहा धूम्रलोचन चले चतुरंगन दलु साज। गिर घेर्‌यो घन घटा जिउँ गरज गरज गजराज ॥९४॥ धूम्रनैन गिरराज तट ऊचे कही पुकार। कै बर सुंभ न्रिपाल को कै लर चंड संभार ॥ ९५ ॥ रिप के बचन सुनंत ही सिंघ भई असवार। गिर ते उतरी बेग दै कर आयुध सभ धार ॥ ९६ ॥ ॥ स्वैया ॥ कोप कै चंड प्रचंड चड़ी इत क्रुद्ध कै धूम्र चड़े उत सैनी। बान क्रिपानन मार मची तब देवी लई बरछी कर पैनी। दउर दई अरि के मुखि मै कटि ओठ दए जिमु लोह कौ छैनी। दाँत गंगा जमुना तन स्याम सो लोहू बह्यो तिन माहि त्रिबैनी ॥ ९७ ॥ घाउ लगै रिसकै त्रिग

हूँ। पहले तो मैं बातों से रिझाकर अन्यथा केशों से पकड़कर उसे लाऊँगा। यदि उसने मुझे अधिक क्रोधित कर दिया तो मैं युद्ध करके रणस्थल में खून की नदियाँ बहा दूँगा। धूम्रलोचन ने कहा कि मुझमें इतना बल है कि मैं अपने निःश्वासों से पहाड़ तक उड़ा सकता हूँ ॥ ९२ ॥ ॥ दोहा ॥ उस वीर को उठा हुआ देखकर शुंभ ने कहा कि तुम जाओ और यदि वह प्रसन्नतापूर्वक आती है तो ठीक है अन्यथा युद्ध करके उसे लेकर आओ ॥ ९३ ॥ धूम्रलोचन चतुरंगिणी सेना लेकर वहाँ से चल पड़ा और गजराज के समान शक्तिशाली उस दैत्य ने उस पर्वत को घनघोर घटाओं की तरह घेर लिया, जिस पर चंडी विराजमान थी ॥ ९४ ॥ धूम्रलोचन ने पर्वत की चोटी पर खड़े होकर जोर से पुकारकर कहा कि हे चंडिके, या तो नृपति शुंभ का वरण करो अथवा युद्ध करो ॥ ९५ ॥ शत्रु के वचनों को सुनकर देवी सिंह पर सवार हो गई और सभी शस्त्र धारण कर वेग-सहित पर्वत से नीचे उतरी ॥९६॥ ॥ सवैया ॥ उधर से क्रोधित होकर प्रचंड वेग से चंडी ने चढ़ाई की, इधर से धूम्रलोचन की सेना भी आगे बढ़ी। बाणों और कृपाणों की चल रही मार में देवी ने अपने हाथ में एक पैनी बरछी पकड़ी और दौड़कर शत्रु के मुख में ऐसे मारी कि जैसे लोहे को छेनी काटती है, इस बरछी ने उसके ओठों को काट दिया। उस दैत्य का शरीर काला है और दाँत गंगा के समान है। लाल रक्त मिलकर ये तीनो त्रिवेणी का रूप धारण कर गए हैं। ९७ ॥ अपने को घाव लगे

धूम्र सु कै बलि आपनो खग्गु सँभार्यो । बीस पचीसक वार करे तिन केहरि को पगु नैकु न हार्यो । धाइ गदा गहि फोरिकै फउज को घाउ शिवा सिर दैंत के मार्यो । ज्यिउ धराधर ऊपरि को जन कोप पुरंद्रनै बज्र प्रहार्यो ॥ ९८ ॥ लोचन धूम उठे किलकार लए सँग दैतन के कुरमा । गहि पान क्रिपान अचानक तान लगाई है केहरि के उरमा । हरि बंड लयो बरि कै कर ते अरु मूँड कट्यो असुरं पुरमा । मानो आँधी बहे धरनी पर छूट खजूर ते टूट पर्यो खुरमा ॥ ९९ ॥ ॥ दोहरा ॥ धूम्रनैन जब मारिओ देवी इह परकार । असुर सैन बिन चैन हुइ कीनो हाहाकार ॥१००॥

॥ इति स्री मारकंड पुराने चंडीचरित्र उकति बिलास धूम्रनैण बधहि नाम त्रितीय ध्याइ ॥ ३ ॥

॥ स्वैया ॥ शोर सुन्यो जब दैतन को तब चंड प्रचंड तची अखियाँ । हरि ध्यानु छुट्यो मुन को सुनिकै धुनि टूटि खगेस गई पखियाँ । द्रिग ज्वाल बढी बड़वानल जिउँ

देखकर धूम्रलोचन ने बलपूर्वक अपना खड्ग सँभाल लिया । दैत्य ने बीस-पचीस वार लगातार कर दिए, परन्तु शेर एक पैर भी पीछे नहीं हटा । दुर्गा ने गदा पकड़कर सेना की घेरेबंदी तोड़ी और दैत्य धूम्रलोचन के सिर पर ऐसे वार किया मानो इंद्र ने वज्र से किसी पहाड़ी क़िले पर प्रहार किया हो ॥ ९८ ॥ धूम्रलोचन ने किलकारियाँ मारते हुए दैत्यसमूह को साथ ले, हाथ में कृपाण से अचानक शेर के हृदय पर वार किया । चंडी ने भी अपने हाथ के खड़ग से धूम्रलोचन का सिर काटकर असुरों की ओर ऐसे उछाल फेंका है जैसे आँधी आने पर खजूर के पेड़ से खजूर छिटककर दूर जा गिरता है ॥ ९९ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार जब देवी ने धूम्रनैन को मार दिया तो असुर-सेना व्याकुल होकर हाहाकार कर उठी ॥ १०० ॥

॥ इति श्री मार्कण्डेय पुराण के चंडीचरित्र-उक्ति-विलास में धूम्रलोचन-वध नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

॥ सवैया ॥ जब दैत्यों का शोर सुना तो प्रचंड चंडी ने टेढ़ी नजर से देखा । उसके क्रोधित होने पर शिव जैसे ऋषि का ध्यान भंग हो गया तथा गरुड़ जैसे पक्षी के घबराकर पंख छितरा गए । देवी की नेत्र-ज्वाला से दानवदल भस्मीभूत हो गया और इस दृश्य की उपमा कवि ने

कवि ने उपमा तिह की लखियाँ । सभु छार भयो दलु दानव को जिमु धूम हलाहल की मखियाँ ॥१०१॥ ॥ दोहरा ॥ असुर सकल सैना जरी बच्यो सु एकै प्रेत । चंड बचायो जानिकै असुरन मारन हेत (मू०ग्रं०८३) ॥ १०२ ॥ भाज निसाचर मंद मत कही सुंभ पहि जाइ । धूम्रनैन सैना सहित डार्‌यो चंड खपाइ ॥ १०३ ॥ सकल कटे भट कटक के पाइक रथ है कुंभ । यौ सुनि बचन अचरज ह्वै कोप किओ न्रिप सुंभ ॥ १०४ ॥ ॥ दोहरा ॥ चंड मुंड द्वै दैत तब लीने सुंभ हकार । चलि आए न्रिप सभा महि करि लीने असि ढार ॥ १०५ ॥ अभबंदन दोनो किओ बैठाए न्रिप तीर । पान दए मुख ते कह्यो तुम दोनो मम बीर ॥ १०६ ॥ निज कट को फैंटा दयो अरु जमधर कर वार । ल्यावहु चंडी बाँध के ना तर डारो मार ॥ १०७ ॥ ॥ स्वैया ॥ कोप चढ़े रन चंड अउ मुंड सु लै चतुरंगन सैन भली । तब शेश के सीस धरा लरकी जन मद्धि तरंगनि नाव हली । खुर बाजन धूर

इस प्रकार दी है कि दानवदल नेत्र की ज्वाला रूपी बड़वाग्नि से ऐसे जल गया मानो जहरीली मक्खियाँ धुएँ के प्रभाव से सरलता से नष्ट हो जाती है ॥ १०१ ॥ ॥ दोहा ॥ सारी सेना तो जलकर नष्ट हो गई, केवल एक प्रेत बचा और उसे भी देवी ने जान-बूझकर बचाया ताकि वह वापस जाकर इस नाश की बात बता सके तथा अन्यों को मरने के लिए वहाँ ला सके ॥ १०२ ॥ उस मंदमति निशाचर ने भागकर जाकर शुंभ से कहा कि हमारी सारी सेना समेत धूम्रलोचन को देवी ने नष्ट कर दिया है ॥ १०३ ॥ पैदल, रथी एवं हाथियों से युक्त सारी सेना काट डाली गई है, यह सुनकर राजा शुंभ को आश्चर्य हुआ तथा वह क्रोधित हो उठा ॥ १०४ ॥ ॥ दोहा ॥ तब शुंभ ने चंड एवं मुंड नामक दो दैत्यों को पुकारा जो कृपाण-ढाल हाथ में लेकर सभा में आ उपस्थित हुए ॥ १०५ ॥ दोनों ने राजा का अभिवंदन किया और उन्हें राजा के पास बैठाया गया । राजा ने पान का बीड़ा उन्हें देते हुए कहा कि तुम दोनों मेरे शूरवीर हो ॥ १०६ ॥ राजा ने अपना कमरबंद और यमधर नामक तलवार उनको देते हुए कहा कि चंडी को बाँधकर यहाँ ले आओ अथवा जान से मार डालो ॥ १०७ ॥ ॥ सवैया ॥ क्रोधित होकर चतुरंगिणी सेना लेकर चंड और मुंड ने चढ़ाई कर दी । असुरदल की भगदड़ से शेषनाग के सिर पर स्थित पृथ्वी वैसे ही काँप उठी जैसे

उडी नभि को कवि के मन ते उपमा न टली। भव भार अपार निवारन को धरनी मनो ब्रहम के लोक चली ॥ १०८ ॥ ॥ दोहरा ॥ चंड मुंड दैतन दुहूँ सबल प्रबल दलु लीन। निकटि जाइ गिर घेरिकै महाँ कुलाहल कीन ॥ १०९ ॥ ॥ स्वैया ॥ जब कान सुनी धुनि दैतन की तब कोपु किओ गिरजा मन मै। चढ़ सिंघ पु संख बजाइ चली सभि आयुध धार तबै तन मै। गिर ते उतरी दल बैरन के पर यौ उपमा उपजी मन मै। नभ ते बहरी लख छूट परी जनु कूक कुलंगन के गन मै ॥ ११० ॥ चंड कुवंड ते बान छुटे इक ते दस सउ ते सहस तह बाढे। लच्छक हुइ करि जाइ लगे तन दैतन माँझ रहे गडि गाढे। को कवि ताहि सराह करे अति सै उपमा जु भई बिनु काढे। फागन पउन के गउन भए जनु पातु बिहीन रहे तरु ठाढे ॥ १११ ॥ ॥ स्वैया ॥ मुंड लई करवार हकार कै केहरि के अंग अंग प्रहारे। फेर दई तन दउर के गउर को घाइल कै निकसी अँग धारे। स्रउण भरी थहरै कर दैत के को

में नाव काँप जाती है। अश्वों के खुरों से उड़ती धूल को देखकर कवि कहता है कि ऐसा लग रहा है मानो पृथ्वी अपना बोझ हलका करने के लिए ब्रह्मलोक की ओर प्रयाण कर रही हो ॥ १०८ ॥ ॥ दोहा ॥ चंड और मुंड दोनों ने एक सबल एवं प्रचंड सैन्यदल लिया और पर्वत के निकट जाकर भीषण कोलाहल करना प्रारम्भ कर दिया ॥१०९॥ ॥ सवैया ॥ जब दैत्यों की ध्वनियाँ गिरिजा ने अपने कानों से सुनीं तो वह अत्यन्त कुपित हो उठी। वह सब शस्त्रों को धारण कर शंखध्वनि करती हुई सिंह पर सवार होकर आगे बढ़ी। वह पर्वत से सीधी शत्रुओं के दल पर ऐसे टूट पड़ी जैसे चील कूंज नामक चिड़ियों के दल पर आसमान से नीचे की ओर सीधे झपट्टा मारती है ॥ ११० ॥ दुर्गा के धनुष से निकलनेवाले बाण एक से दस, दस से सौ और सौ से हजार-हजार हो गए। यही बाण लाखों की संख्या में राक्षसों के शरीरों में जा गड़े। उन बाणों को निकाले बिना असुरों के शरीरों की उपमा देता हुआ कवि कहता है कि वे बाण-बिधे असुर ऐसे लग रहे हैं, जैसे फाल्गुन के महीने में पवन के चलने से पत्र-झड़े पेड़ दिखाई दे रहे हों ॥ १११ ॥ ॥ सवैया ॥ मुंड ने ललकारकर तलवार हाथ में पकड़कर शेर के अंगों पर प्रहार किया। फिर उसने दौड़कर दुर्गा के शरीर पर तलवार चलायी जो देवी को घायल करती हुई बाहर निकली रक्त से सनी हुई तलवार की उपमा देते हुए कवि कहता है कि

बिदार दई सभ सैन सु चंडका चंड सो आहव कीनो। लै बरछी कर मै अरि को सिर कैवर मार जुदा करि दीनो। लै के महेश त्रिशूल गनेश को रुंड किओ जन मुंड बिहीनो ॥११६॥

॥ इति स्री मारकंडे पुराने स्री चंडी चरित्रे चंडमुंड बधहि चतुर्थ ध्याइ ॥ ४ ॥

॥ सोरठा ॥ घाइल घूमत कोट जाइ पुकारे सुंभ पै। मारे देवी घोट सुभट कटक के बिकट अति ॥ ११७ ॥ ॥ दोहरा ॥ राज गात के बात इह कही सु ताही ठौर। मरिहो जिअसि न छाडिहो कह्यो सत्ति नहि और ॥ ११८ ॥ तुंड सुंभ के चंडका चढि बोली इह भाइ। मानो अपनी म्रित्त को लीनो असुर बुलाइ ॥ ११९ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुंभ निसुंभ सु दुहूँ मिलि बैठ मंत्र तब कीन। सैना सकल बुलाइ कै सुभट बीर चुन लीन ॥ १२० ॥ रकतबीज को भेजिए मंत्रनि कही बिचार। पाथर जिउँ गिर डार कै चंडहि हनै हकार ॥१२१॥ ॥ सोरठा ॥ भेजो कोऊ दूत ग्रह ते ल्यावै ताहि को। जीत्यो जिन पुरहूत भुज बलि जाके अमित है ॥ १२२ ॥

ने चंड दैत्य का सिर धड़ से ऐसे से अलग कर दिया, मानो शिव ने त्रिशूल हाथ में लेकर गणेश का सिर धड़ से अलग कर दिया हो ॥ ११६ ॥

॥ इति श्री मार्कण्डेय पुराण का चंडीचरित्र चंड-मुंड-वध नामक चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

॥ सोरठा ॥ अनेकों घायलों ने दौड़कर शुंभ को जा पुकारा और कहा कि हमारे विकराल सैन्यसमूह एवं सेनापतियों को देवी ने मार दिया है ॥ ११७ ॥ ॥ दोहा ॥ राजा ने उसी स्थान पर यह कहा कि मैं सत्य कह रहा हूँ कि मैं उसे जीवित नहीं छोड़ूँगा ॥ ११८ ॥ यह उक्ति चंडी ने स्वयं शुंभ की जिह्वा पर बैठकर कहलायी और ऐसा लगा मानो असुर ने अपनी मृत्यु को स्वयं निमन्त्रण दिया हो ॥ ११९ ॥ ॥ दोहा ॥ शुंभ एवं निशुंभ दोनों ने बैठकर तब विचार-विमर्श किया कि सारी सेना को बुलाकर उसमें से परम बलवान को (चंडी से युद्ध करने के लिए) चुन लिया जाय ॥ १२० ॥ मंत्रियों ने सलाह दी कि इस कार्य के लिए रक्तबीज को भेजिए, वह पर्वत को एक छोटे से पत्थर के समान उठाकर दे मारेगा और ललकारकर चंडी को नष्ट कर देगा ॥ १२१ ॥ सोरठा किसी दूत को भेजा जाय जो उसे बुलाकर ले आए क्योंकि उसने

॥ दोहरा ॥ स्रोणतबिंद पै दैत इकु गयो करी अरदास । राज बुलावत सभा मै बेग चलो तिह पास ॥ १२३ ॥ रकतबीज न्रिप सुंभ को कीनो आन प्रनाम । असुर सभा मधि बाउ करि कह्यो करहु मम काम ॥ १२४ ॥ ॥ स्वैया ॥ स्रउणत बिंद को सुंभ निसुंभ बुलाइ बिठाइ कै आदर कीनो । दै सिर ताज (मू०ग्रं०८५) बडे गज राज सु बाज दए रिझवाइकै लीनो । पान लै दैत कही इह चंड को खंड करों अब मुंड विहीनो । ऐसे कह्यो तिन मद्धि सभा न्रिप रीझकै मेघ अडंबर दीनो ॥१२५॥ स्रोणतबिंद को सुंभ निसुंभ कह्यो तुम जाहु महाँ दलु लै कै । छार करो गरुए गिरराजहि चंड पचार हनो बलु कै कै । कानन मै न्रिप की सुनि बात रिसात चल्यो चढ़ि ऊपरि गै कै । मानो प्रतच्छ हो अंतक दंत को लै कै चल्यो रन हेत जु छै कै ॥ १२६ ॥ ॥ स्वैया ॥ बीजरकत्र सु दंव बजाइ कै आगै किए गज बाज रथइआ । एक ते एक महाँ बलि दानव मेर को पाइन साथ मथइआ । देखि तिनै सुभ अंग सु बीरन कउच सजे कट

अपने अपरिमित भुजबल से इंद्र को जीता था ॥ १२२ ॥ ॥ दोहा ॥ एक दैत्य गया और उसने रक्तबीज के सम्मुख प्रार्थना की कि आपको राजसभा में बुलाया गया है, कृपया शीघ्र चलिए ॥ १२३ ॥ रक्तबीज ने आकर राजा को प्रणाम किया और राजसभा में विनीत होकर कहा कि बताइए, मेरे योग्य क्या काम है ? ॥ १२४ ॥ ॥ सवैया ॥ रक्तबीज को शुंभ-निशुंभ ने आदरपूर्वक बैठाया । सिर पर धारण करने के लिए मुकुट, हाथी एवं घोड़े उसे प्रदान किये; जिसे दैत्य ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया । पान का बीड़ा लेकर रक्तबीज ने कहा कि मैं अभी चंडिका का सिर धड़ से अलग कर देता हूँ । उसकी सभा-मध्य ऐसी घोषणा से प्रसन्न होकर राजा ने उसे उपहारस्वरूप एक भयंकर गर्जना करनेवाला नगाड़ा तथा छत्र दिया ॥ १२५ ॥ शुंभ-निशुंभ ने कहा कि अब एक बड़ा दल लेकर तुम जाओ तथा जहाँ दुर्गा है उस बड़े पहाड़ को ध्वस्त कर दुर्गा का नाश कर दो । राजा की बात सुनकर रक्तबीज क्रोधित होकर चढ़ाई के लिए चल दिया । वह ऐसा लग रहा है मानों हाथी के रूप में काल स्वयं प्रत्यक्ष होकर उसके (रक्तबीज के) क्षय के लिए उसे युद्धभूमि की ओर ले जा रहा हो ॥ १२६ ॥ ॥ सवैया ॥ रक्तबीज ने नगाड़े आदि की ध्वनि के साथ हाथी, अश्व एवं रथियों को आगे बढ़ाया पर्वतों को पैरों तले रौंद एक से एक बली दानवों के कवच एवं तरकस बँधे अंग अत्यन्त

बाँधि भयइआ । लीने कमानन बान क्रिपान समान कै साथ लए जु सथइआ ॥ १२७ ॥ ॥ दोहरा ॥ रकतबीज दल साजिकै उतरे तट गिरराज । स्रवण कुलाहल सुनि शिवा कर्यो जुद्ध को साज ॥ १२८ ॥ ॥ सोरठा ॥ हुइ सिंघहि असवार गाज गाज कै चंडका । चली प्रबल अस धार रकतिबीज के बध निमित ॥ १२९ ॥ ॥ स्वैया ॥ आवत देख कै चंड प्रचंड को स्रोणतबिंद महा हरख्यो है । आगै ह्वै सस्त्र धसे रन मद्धि सक्रुद्ध कै जुद्धहि को सरख्यो है । लै उमड्यो दलु बादलु सो कवि लै जसु या छबि को परख्यो है । तीर चले इम बीरन के बहु मेघ मनो बलु कै बरख्यो है ॥ १३० ॥ ॥ स्वैया ॥ बीरन के कर ते छुटे तीर सरीरन चीर कै पार परानै । तोर सरासन फोर कै कउचन मीनन के रिप जिउँ थहरानै । घाउ लगे तन चंड अनेक सु स्रउण चल्यो बहि कै सरतानै । मानहु फार पहार हूँ को सुत तच्छक के निकसे करखानै ॥ १३१ ॥ बीरन के कर ते छुटे तीर सु चंडका सिंघनि जिउँ भभकारी । लै करि बान कमान क्रिपान गदा गहि चक्र छुरी अउ कटारी ।

बलिष्ठ एवं दीर्घ दिखाई दे रहे थे । सब साथी सैनिक धनुष, बाण, कृपाणों से सुसज्जित थे ॥ १२७ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार रक्तबीज दल के साथ उस पर्वत के निकट आया जहाँ देवी का निवास था । दूसरी ओर असुर-दल के कोलाहल को सुन देवी ने भी युद्ध का उपक्रम किया ॥ १२८ ॥ ॥ सोरठा ॥ चंडी घोर गर्जन के साथ सिंह पर सवार हुई और प्रबल कृपाण को धारण कर रक्तबीज के वध के लिए चल दी ॥ १२९ ॥ ॥ सवैया ॥ प्रचंड चंडिका को आती हुई देखकर रक्तबीज बहुत प्रसन्न हुआ और आगे बढ़कर क्रोधवान होकर युद्ध करने के लिए उद्यत हुआ । वह सेना के रूप में मानो बादलों को ले चला आ रहा हो और कवि के अनुसार वीरों के बाण इस तरह चलने लगे मानो घनघोर बादल बरस रहे हों ॥ १३० ॥ ॥ सवैया ॥ वीरों के हाथों से छूटे हुए तीर शरीरों को पार कर निकल जा रहे हैं । तीर धनुषों को तोड़ते कवचों को भेदते हुए शत्रुओं के शरीर में ऐसे जा गड़ते हैं, मानो बगुला मछली पकड़ने के ध्यान में जाकर पानी में खड़ा हो । चंडिका के शरीर पर अनेकों घावों के लगने से रक्त की नदियाँ इस प्रकार बह निकली हैं मानो पहाड़ को फोड़कर लाल रंग में रँगे साँप तेजी से गमन कर रहे हों ॥ १३१ ॥ जब चंडिका सिंह के समान दहाड़ी तो वीरों के हाथों से तीर छूटकर जा

काट कै बाखन छेद कै भेद कै सिंधर की करी भिन अँबारी। मानहु आग लगाइ हनू गड़ लंक अवास की डारी अटारी ॥ १३२ ॥ तोर कै मोर कै दैतन के मुख घोर कै चंड महा असि लीनो। जोर कै कोर के ठौर कै और सु राछस को हनि कै तिह दीनो। छोर कै तोर कै बोर कै दानव लै तिन के करे हाड चबीनो। स्रउण को पान (पृ०ग्रं०८६) कर्यो जिउँ दवा हरि सागर को जल जिउँ रिखि पीनो ॥ १३३ ॥ ॥ स्वैया ॥ चंड प्रचंड कुवंड करं गहि जुद्ध कर्यो न गने गट आने। मार दई सभ दैत चमूँ तिह स्रउणत जंबुक ग्रिजन्ह अघाने। भाल भयानक देखि भवानी को दानव इउ रन छाड पराने। पउन के गउन के तेज प्रताप ते पीपर के जिउँ पात उडाने ॥ १३४ ॥ ॥ स्वैया ॥ आहव मै खिझ कै बरचंड करं धर कै हरि पै अर मारे। एकन तीरन चक्र गदा हति एकन के तन केहरि फारे। है दल गै दल पै दल धाइ कै मार रथी बिरथी कर डारे। सिंधुर ऐसे परे तिह ठउर जिउँ भूम मै

गिरे। चंडिका ने बाण, कमान, कृपाण, गदा, चक्र और कटार आदि से छत्रों को छिन्न-भिन्न कर हाथियों के हौदों को इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, मानो हनुमान ने लंका को तहस-नहस कर इधर-उधर फेंक दिया हो॥ १३२ ॥ चंडिका ने हाथ में कृपाण लेकर दैत्यों के मुखों को तोड़कर मरोड़ दिया। असुरों की पंक्तियों की पंक्तियों का हनन कर दिया, दलको और आगे बुला-बुलाकर उनकी हड्डियों को तोड़ डाला। चंडिका ने इस प्रकार रक्तपान किया जैसे अगस्त्य ऋषि ने समुद्र को पी डाला था॥ १३३ ॥ ॥ सवैया ॥ प्रचंड चंडिका ने धनुष हाथ में पकड़कर इतने दैत्यों को मार डाला कि गिना नहीं जा सकता। दैत्यों की चतुरंगिणी सेना मार दी गई और उनके रक्त को गीदड़ों और गिद्धों ने जी भर कर पिया। भवानी के भयानक मस्तक को देखकर दानव इस प्रकार युद्ध से भागे जैसे तेज पवन के प्रभाव से पीपल के पत्ते उड़ते हैं॥ १३४ ॥ ॥ सवैया ॥ प्रचंड दुर्गा ने युद्ध में खीझकर हाथ में कृपाण पकड़कर घोड़े एवं शत्रुओं का विनाश कर दिया। किसी को तीर से, किसी को चक्र से तथा किसी को गदा से मार दिया। कई शत्रुओं के तनों को शेर ने फाड़ डाला। दलों के दल पैदलों को मारकर दुर्गा ने कई रथियों को रथ-विहीन कर दिया। धरती पर पड़े हाथी ऐसे लग रहे हैं, मानो धरती पर बड़े-बड़े पहाड़ लुढ़के पड़े हों। १३५

भूमि गिरे गिर भारे ॥ १३५ ॥ ॥ दोहरा ॥ रक्तबीज की चमूँ सभ भागी करि तिह त्रास । कह्यो दैत पुनि घेरि कै करो चंड को नास ॥ १३६ ॥ ॥ स्वैया ॥ कानन मै सुनिकै इह बात सु बीर फिरे कर मै असि लै कै । चंड प्रचंड सु जुद्धु कर्यो बलि कै अति ही मन क्रुद्धत ह्वै कै । घाउ लगे तिन कै तन मै इम स्रउन गिर्यो धरनी पर च्वै कै । आग लगे जिमु कानन मै तन तिउ रही बानन की धुनि ह्वै कै ॥ १३७ ॥ ॥ स्वैया ॥ आइस पाइकै दानव को दल चंड के सामुहि आइ अर्यो है । ढाल अउ साँग क्रिपानन्हि लै कर मै बर बीरन जुद्ध कर्यो है । फेर फिरे नहि आहव ते मन महि तिह धीरज गाढो धर्यो है । रोक लई चहुँ ओर ते चंड सुभान मनो परवेख पर्यो है ॥ १३८ ॥ कोप कै चंड प्रचंड कुवंड महा बल कै बलबंड सँभार्यो । दामन जिउँ घन से दल पैठकै कै पुरजे पुरजे दलु मार्यो । बानन्हि साथ बिदार दए अरि ता छबि को कबि भाउ बिचार्यो । सूरज की किरनै सर मासहि रेन अनेक तहाँ करि डार्यो ॥ १३९ ॥ ॥ स्वैया ॥ चंड चमूँ बहु दैतन की

॥ दोहा ॥ रक्तबीज की सारी सेना भाग खड़ी हुई। भागती हुई सेना को रोककर दैत्य ने ललकारकर कहा कि घेरकर चंडिका को मार डालो ॥ १३६ ॥ ॥ सवैया ॥ यह सुनकर दैत्य वीर हाथों में तलवारें लिये फिर घूम पड़े और मन में अत्यन्त क्रुद्ध होकर चंडिका से घोर युद्ध करने लगे। उनके शरीरों पर लग रहे घावों से इस प्रकार रक्त बह रहा है और तीरों की आवाज़ ऐसे आ रही है जैसे जंगल में आग प्रवाह-रूप में लगने से तिनकों की चटककर जलने की आवाज़ आ रही हो ॥ १३७ ॥ ॥ सवैया ॥ दानव की आज्ञा पाकर उसका दलसमूह चंडी के सामने आ जुटा है और ढाल, कृपाण, बर्छी लेकर घनघोर युद्ध कर रहा है। अब वे अत्यन्त धैर्य से युद्ध में प्रवृत्त हैं और रण से भाग नहीं रहे हैं। उन्होंने चारों ओर से चंडी को ऐसे घेर लिया है, मानो सूर्य को चारों ओर से बादलों द्वारा घेर लिया गया हो ॥ १३८ ॥ चंडिका ने क्रोधित होकर अपने धनुष को सँभाला और जिस प्रकार बादलों में बिजली चमकती है, दुर्गा ने अरिदल को खंड-खंड कर डाला। बाणों से शत्रुओं को नष्ट करती हुई दुर्गा कवि को ऐसे लगती है कि उसके तीर तो मानो सूर्य की प्रचंड किरणें की तरह चल रहे हों और दैत्यों के मांस के टुकड़े धूल की तरह इधर उधर उड़ रहे हों १३९ सवैया चंडिका ने दैत्यों

हति फेरि प्रचंड कुवंड संभार्यो। बानन सों दल फोर दयो
उत कै बर सिंघ महा भभकार्यो। मार दए सिरदार बड़े
अर स्रउण बहाइ बडो रन पार्यो। एक के सीस दयो धन यो
जनु कोप के गाज के मंडप मार्यो ॥ १४० ॥ ॥ दोहरा ॥ चंड
चमूँ सभ दैत की ऐसे दई सँघार। पउन पूत जिउँ लंक को
डार्यो बाग उखार ॥ १४१ ॥ (मू०ग्रं०८७) ॥ स्वैया ॥ गाज
कै चंड महाँबलि मेघ सी बूंदन जिउँ अर पै सर डारे। दामन
जो खग लै करि मै बहु बीर अधंधर कै धरमारे। घाइल घूम
परे तिह इउ उपमा मन मै कवि यौ अनुसारे। स्रउन प्रवाह
मनो सरता तिह मद्धि धसी करि लोथ करारे ॥ १४२ ॥ ऐसे
परे धरनी पर बीर सु कै कै दुखंड जु चंडहि डारे। लोथन ऊपर
लोथ गिरी बहि स्रउन चल्यो जनु कोट पनारे। लै करि ब्याल
जो ब्याल बजावत सो उपमा कवि यो मन धारे। मानो महाँ
प्रलए बहे पउन सो आपसि मै भिरहैं गिर भारे ॥ १४३ ॥
॥ स्वैया ॥ लै कर मै असि दारुन काम करे रन मै अर सो अरनी

की काफ़ी सेना का हनन कर पुनः प्रचंड धनुष को सँभाला। तीरों से शत्रुदल को फाड़ दिया तथा इधर शेर भी प्रचंड रूप से दहाड़ा। बड़े-बड़े सेनापतियों को मार डाला और रक्त बहाकर घनघोर युद्ध मचा दिया। एक दैत्य के सिर पर धनुष मारकर उसे इस प्रकार गिरा दिया मानो बिजली ने कड़ककर एक स्तम्भ को धरती पर गिराकर ध्वस्त कर दिया हो ॥ १४० ॥ ॥ दोहा ॥ चंडिका ने दैत्यों की चतुरंगिणी सेना को ऐसे नष्ट कर दिया जैसे पवनपुत्र (हनुमान) ने लंका की (अशोक) वाटिका को उखाड़ फेंका था ॥ १४१ ॥ ॥ सवैया ॥ जिस प्रकार बादल जल की बूँदें बरसाता है इसी प्रकार चंडिका ने शत्रुओं पर बाण-वर्षा की। अपने बिजली के समान चमकते खड्ग को हाथ में लेकर कई वीरों को आधा-आधा करके काट डाला। घायल शूरवीर ऐसे पड़े हैं, मानो कवि ने रक्त की नदी बहती हुई देखी है और इन शूरवीरों की लाशें इस रक्त-प्रवाह में धँसकर नदी का किनारा बना रही हैं ॥ १४२ ॥ चंडिका ने वीरों के शरीरों के दो-दो टुकड़े कर उन्हें गिरा दिया है। लाशों पर लाशें पटी पड़ी हैं और करोड़ों नालियों में रक्त बह निकला है। भूत एवं गण आदि अपने हाथों में हाथियों को पकड़कर एक-दूसरे से ऐसे टकरा रहे हैं, मानो प्रलयकाल में बड़े-बड़े पर्वत आपस में भिड़ रहे हों। १४३। ॥ सवैया। भीषण कृपाण हाथ में लेकर (चंडी ने

है । सूर हने बलिकै बलुवान सु स्रउन चल्यो बहि बैतरनी है । बांह कटी अध बीच ते सुंड सो सो उपमा कबि ने बरनी है । आपसि मै लर कै सु मनो गिर ते गिरी सरप की बुह धरनी है ॥ १४४ ॥ ॥ दोहरा ॥ सकल प्रबल दल दैत को चंडी दयो भजाइ । पाप ताप हरि जाप ते जैसे जात पराइ ॥१४५॥ ॥ स्वैया ॥ भान ते जिउं तम पउन ते जिउं घन मोर ते जिउं फन तिउं सुकचाने । सूर ते कातुर कूर ते चातुर सिंघ ते सातुर एणि डराने । सूम ते जिउं जस बिओग ते जिउं रस पूत कपूत ते जिउं बंसु हाने । धरम जिउं क्रुद्ध ते भरम सुबुद्ध ते चंड के जुद्ध ते दैत पराने ॥ १४६ ॥ फेर फिरे सभ जुद्ध के कारन लै करवारन क्रुद्ध ह्वै धाए । एक लै बान कमानन तान कै तुरन तेज तुरंग तुराए । धूर उडी खुर पूरन ते पथ ऊरध ह्वै रबि मंडल छाए । मानहु फेर रचे बिधि-लोक धरा खट आठ अकाश बनाए ॥ १४७ ॥ चंड प्रचंड कुवंड लै बानन दैतन के तन तूलि जिउँ तूंबे । मार गइंद दए करवार लै दानव मान गयो जड धूंबे । बीरन के सिर की सित पाग चली बहि स्रोनत ऊपर

रणस्थल में प्रचंड वेग से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। शूरमाओं को काट डालने के फलस्वरूप रक्तधारा वैतरणी के समान बह निकली है। हाथों को कटी हुई हाथी की सूँड़ के समान कटकर गिरते देखकर कवि को ऐसे लगा है, मानो नागिनें आपस में लड़-लड़कर छिटक-छिटककर दूर जा गिर पड़ रही हैं ॥ १४४ ॥ ॥ दोहा ॥ दैत्यों के प्रबल दल को चंडी ने वैसे ही भगा दिया जैसे हरि-जाप से पाप एवं सब प्रकार के संताप भाग जाते हैं ॥ १४५ ॥ ॥ सवैया ॥ जिस प्रकार सूर्य से अन्धकार, वायु से बादल एवं मोर से सर्प भयभीत होता है; जैसे शूरवीर से कायर एवं झूठ से चतुराई, सिंह से पीड़ा-सहित हिरण डरते हैं; जैसे कृपण से यश, वियोग से आनन्द एवं कुपुत्र से कुल का नाश होता है तथा क्रोध से धर्म एवं संदेह से बुद्धि विनष्ट होती है, उसी प्रकार दुर्गा से युद्ध करते हुए दैत्य भाग गए एवं विनष्ट हो गए ॥ १४६ ॥ पुनः क्रोधित होकर युद्ध करने के लिए दैत्य चले। धनुष-बाणों को तानकर तेज अश्वों पर सवार वे भागे चले आ रहे हैं, उनके अश्वों के खुरों से उड़ी धूल ने रविमंडल को ढँक लिया है और ऐसा लगता है कि ब्रह्मा ने फिर से धरती का सृजन कर चौदह भुवनों का निर्माण-कार्य प्रारम्भ किया है ॥ १४७ ॥ प्रताप-शालिनी दुर्गा ने धनुष-बाण उठाकर दैत्यों के शरीरों को रुई के समान

बूँबे। मानहु सारसुती के प्रवाह मै सूरन के जस के उठे बूँबे ॥ १४८ ॥ ॥ स्वैया ॥ दैतन साथ गदा गहि हाथ सु क्रुद्ध ह्वै जुद्धु निशंग कर्‌यो है। पान क्रिपान लए बलवान सु मार सबै दल छार कर्‌यो है। पाग समेत गिर्‌यो सिर एक को भाउ इहै कबि ताको धर्‌यो है। पूरन पुंन (मू०ग्रं०८८) भए नभ ते सु मनो भुअ टूट नछत्र पर्‌यो है ॥ १४९ ॥ बारद बारन जिउँ गिरबार महाँ बल धार तबै इह कीआ। पान लै बान कमान को तान सँघार सनेह ते स्रउनत पीआ। एक गए कुमलाइ पराइ कै एकन को धरक्यो तन हीआ। चंड के बान किधो कर भानहि देखिकै बैत गई बुल बीआ ॥ १५० ॥ लै कर मै असि कोप भई अति धार महाँबल को रन पार्‌यो। बज्जर कै ठउर हते बहु दानव एक गइंद्र बडो रन मार्‌यो। कउतकि ता छबि को रन पेख तबै कबि इउ मन मद्धि बिचार्‌यो। सागर बाँधन के समए नल मानो पहार उखार के डार्‌यो ॥१५१॥

धुनकर उड़ा दिया। कृपाण से हाथियों को मारकर चंडिका ने राक्षसों के अहंकार को आक की रुई की धज्जियों के समान उड़ाकर छिन्न-भिन्न कर दिया। वीरों के शिर की पगड़ियाँ रक्त-धार में इस प्रकार बह रही हैं जैसे (पानी में) कुकुरमुत्ते बह रहे हों। यह दृश्य ऐसा भी लगता है, मानो सरस्वती के प्रवाह से शूरवीरों के यश रूपी बुलबुले बहते चले जा रहे हैं ॥ १४८ ॥ ॥ सवैया ॥ दुर्गा ने हाथ में गदा लेकर दैत्यों के साथ घनघोर युद्ध किया। कृपाण धारणकर बलवानों के दलों को धूल में मिला दिया। पगड़ी-सहित एक सिर को गिरता हुआ देखकर कवि को ऐसा लगा, मानो पुण्य पूर्ण हो जाने पर नभ-मंडल से नक्षत्र टूटकर भूमंडल पर आ पड़ा हो ॥ १४९ ॥ बादलों के आकार वाले बड़े-बड़े हाथी दूर फेंके जा रहे हैं। हाथ में धनुष-बाण लेकर एवं संहार करके बड़े स्नेह से दुर्गा ने रक्तपान किया है। दुर्गा को देख कर एक ओर तो दैत्यों के चेहरे निस्तेज हो गए हैं तथा दूसरी ओर कुछ दैत्यों का हृदय धड़कने लगा है। दुर्गा के बाण सूर्य की किरणों के समान हैं, जिन्हें देखते ही दैत्य रूपी छोटे-छोटे दीपक बुझते चले जा रहे हैं ॥ १५० ॥ अत्यन्त क्रोधित होकर, हाथ में तलवार लेकर चंडिका ने घनघोर युद्ध किया। दौड़कर दुर्गा ने बहुत से दानवों का नाश किया और एक बहुत बड़े हाथी को युद्धस्थल में विनष्ट किया। रणस्थल की उस छविमय घटना को देखकर कवि को ऐसा लग रहा है मानो समुद्र पर

॥ दोहरा ॥ मार जबै सैना लई तबै दैत इह कीन । शस्त्र धार कर चंड के बधिबे को मन दीन ॥१५२॥ ॥ स्वैया ॥ बाहनि सिंघ भयानक रूप लख्यो सभ दैत महाँ डरपायो । संख लिए कर चक्र अउ बक्र सरासन पत्र बचित्र बनायो । धाइ भुजा बल आपन हवै हम सो तिन यौ अति जुद्धु मचायो । क्रुद्ध कै स्रउणत बिंद कहै रन याही ते चंडका नाम कहायो ॥ १५३ ॥ मारि लयो दलि अउर भज्यो तब कोप कै आपन ही सु भिर्यो है । चंडि प्रचंडि सो जुद्धु कर्यो असि हाथि छुट्यो मन नाहि गिर्यो है । लै कै कुवंड करं बल धारकै स्रोन समूह मै ऐसे तर्यो है । देव अदेव समुंद्र मथ्यो मानो मेर को मधि धर्यो सु फिर्यो है ॥ १५४ ॥ क्रुद्ध कै जुद्ध को दैत बली नद स्रोन को पैर के पार पधार्यो । लै करवार अउ ढार संभार के सिंघ को दउर कै जाइ हकार्यो । आवत पेखिकै चंड कुवंड ते बान लग्यो तन मूरछ पार्यो । राम के भ्रातन जिउँ हनुमान को सैल समेत धरा पर डार्यो ॥ १५५ ॥

पुल बाँधने के लिए नल-नील ने पहाड़ को उखाड़कर फेंका हो ॥ १५१ ॥ ॥ दोहा ॥ जब सेना समाप्त हो गई तब दैत्य ने स्वयं शस्त्र धारण कर चंडिका के बध का संकल्प मन में किया ॥ १५२ ॥ ॥ सवैया ॥ सिंह पर सवार दुर्गा के भयानक रूप को देखकर दैत्य बहुत भयभीत हो गए। देवी ने हाथ में शंख, चक्र एवं धनुष धारण कर विचित्र रूप बना लिया है। रक्तबीज ने आगे बढ़कर अपने भुजबल को जानते हुए दुर्गा को युद्ध करने की चुनौती दी और कहा कि तुमने अपना नाम चंडिका रखा है, मुझसे आकर युद्ध कर ॥ १५३ ॥ जब रक्तबीज का दल नष्ट हो गया और भाग गया तो अत्यन्त क्रोधित होकर वह स्वयं ही युद्ध में आ भिड़ा। उसने चंडिका से प्रचंड युद्ध किया और इस युद्ध में बेशक उसके हाथ से तलवार छूट गई है। फिर भी वह हतोत्साहित नहीं हुआ। हाथ में धनुष लेकर वह रक्त-सागर में ऐसे तैर रहा है, मानो वह देव-दानवों द्वारा समुद्र-मंथन के समय प्रयुक्त किया हुआ सुमेरु पर्वत हो ॥ १५४ ॥ बलवान दैत्य ने क्रोधित होकर युद्ध किया और रक्त-सागर को तैरकर पार करता हुआ हाथ में ढाल-तलवार संभाल कर उसने दौड़कर सिंह को जा ललकारा। उसे आता हुआ देखकर दुर्गा ने अपने धनुष से बाण मारा जिससे दैत्य मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। यह दृश्य ऐसा लग रहा था जैसे संजीवनी बूटी लाते हुए पर्वत-समेत हनुमान को राम के

॥ स्वैया ॥ फेरि उठ्यो कर लै करवार को चंड प्रचंड सिउ जुद्ध कर्यो है। घाइल कै तन केहर ते बहि स्रउन समूह धरान पर्यो है। सो उपमा कबि ने बरनी मन की हरनी तिह नाउ धर्यो है। गेरू नगं पर कै बरखा धरनी परि मानहु रंग ढर्यो है॥ १५६॥ स्रोणत बिंदु सो चंड प्रचंड सु जुद्ध कर्यो रन मद्धि सहेली। पै दल मै दल मीज दयो तिल ते जिमु तेल निकारत तेली। (मू०ग्रं०८६) स्रउन पर्यो धरनी पर स्रवै रंगरेज की रेनी जिउँ फूट कै फैली। घाउ लसै तन दैत के यौ जन दीपक मद्धि फनूस की थैली॥ १५७॥ स्रउनत बिंद को स्रउन पर्यो धरि स्रउनत बिंद अनेक भए है। चंडि प्रचंडि कुवंडि संभारि कै बानन्नि साथ संघार दए है। स्रउन समूह समाइ गए बहुरो सु भए हति फेरि लए है। बारद धार परै धरनी मानो बिबर ह्वै मिट कैं जु गए है॥ १५८॥ ॥ स्वैया॥ जेतक स्रउन की बूंद गिरै रन तेतक स्रउनत बिंद ह्वै आई। मार ही मार पुकार हकार कै चंडि प्रचंडि कै

भाई भरत ने मारकर नीचे गिरा दिया हो ॥१५५॥ ॥ सवैया ॥ (दैत्य) पुनः हाथ में तलवार लेकर प्रचंड चंडिका से युद्ध कर रहा है और उसने सिंह को घायल कर दिया है। सिंह का रक्त धरती पर टपक रहा है। इस दृश्य की उपमा कवि ने अत्यन्त मनोहारी रूप से वर्णित किया है और कहा है कि यह ऐसा लग रहा है, मानो गेरू के पहाड़ से, वर्षा ऋतु में, लाल रंग की धाराएँ धरती पर ढल रही हों॥ १५६॥ दैत्य के साथ प्रचंड चंडिका ने अत्यंत क्रुद्ध होकर घनघोर युद्ध किया। पैदल एवं घुड़सवारों को इस प्रकार मसल दिया, जैसे तिल से तेल निकलते समय तेली तिलों को पेर देता है। धरती पर रक्तधारा इस प्रकार बह निकली है, जैसे रंगरेज की थैली से फूटकर रंग बह निकला हो। दैत्यों के शरीर पर घाव इस प्रकार शोभायमान हो रहे हैं, जैसे दीपकों के बीच में फ़ानूस की थैली शोभायमान प्रतीत हो रही हो॥ १५७॥ रक्तबीज का रक्त धरती पर गिरते ही अनेकों रक्तबीज पैदा हो गए। चंडिका ने धनुष धारण कर बाणों से उन सबका संहार कर दिया। पैदा होनेवाले दैत्य मारे गए, परन्तु उनके रक्त से फिर और दैत्य पैदा हो गए। बादलों की धार के समान उनका रक्त धरती पर प्रवाहित हो रहा था और बुलबुलों के समान वे नष्ट होते चले जा रहे थे॥ १५८॥ ॥ सवैया॥ जितनी रक्त की बूँदें धरती पर गिरती हैं, उतने ही रक्तबीज और पैदा हो जाते

सामुहि धाई । पेखिकै कौतकि ता छिन मै कवि ने मन मै उपमा ठहराई । मानहु शीश महल्ल कै बीच सु मूरति एक अनेक को झाई ।। १५९ ।। स्रउनत बिंद अनेक उठे रन क्रुद्ध कै जुद्ध को फेर जुटे है । चंडि प्रचंडि कमान ते बान सु भान की अंस समान छुटे है । मार बिदार दए सु भए फिर लै मुंगरा जिमु धान कुटे है । चंड दए सिर खंड जुदो करि बिल्लन ते जनु बिल्ल तुटे है ।। १६० ।। स्रउनत बिंब अनेक भए असि लै करि चंडि सु ऐसे उठे है । बूंदन ते उठिकै बहु दानव बानन बारद जानु वुठे है । फेरि कुवंडि प्रचंडि संभारकै बान प्रहार संघार सुटे है । ऐसे उठे फिर स्रउन ते दैत सु मानहु सीत ते रोम उठे है ।। १६१ ।। ।। स्वैया ।। स्रउनत बिंद भए इकठे बरचंड प्रचंड को घेरि लयो है । चंड अउ सिंघ दुहू मिलिकै सभ दैतन को दल मार दयो है । फेरि उठे धुन को करिकै सुनि कै मुनि के छुटि ध्यानु गयो है । भूल गए सुर के अवसान गुमानन स्रउनत बिंद गयो है ।। १६२ ।। ।। दोहरा ।। रकतबीज सो

हैं जो 'मारो, मारो' की आवाज के साथ चंडिका के सामने दौड़े चले आते हैं। यह दृश्य देखकर कवि के मन को यह उपमा सूझती है कि यह दृश्य ऐसा है, मानो शीशमहल में एक ही व्यक्ति की अनेकों मूर्तियाँ दिखाई दे रही हों ।। १५९ ।। अनेकों रक्तबीज उठकर क्रोधित होकर युद्ध में आ जुटे हैं। इधर चंडिका के धनुष से बाण सूर्य की किरणों के समान छूट रहे हैं। दैत्यों के सिर ऐसे कूटे जा रहे हैं, मानो मुंगरी से धान कूटा जा रहा हो। चंडिका ने इस प्रकार सिर धड़ से अलग किए हैं, मानो बेल के पेड़ से बेल टूटकर अलग हो रहे हैं ।। १६० ।। अनेकों रक्तबीज उठकर चंडिका के समक्ष खड़े हैं। दैत्य रक्तबूंदों से बनते चले जा रहे हैं, परन्तु चंडिका के बाण तो मानो साक्षात् बादलों के समान बरस रहे हैं। दुर्गा ने धनुष सँभालकर बाणों से दैत्यों को मार डाला है, परन्तु वे दैत्य पुनः ऐसे पैदा हो गए हैं जैसे सर्दी में पानी से घनघोर कुहरा पैदा होता चला जाता है ।। १६१ ।। ।। सवैया ।। रक्तबीजों ने एकत्र होकर चंडिका को घेर लिया है। चंडी और सिंह दोनों ने मिलकर दैत्यसमूह का सफाया कर दिया है। दैत्य पुनः ध्वनि करते हुए उठते हैं और भीषण कोलाहल से ऋषियों का ध्यान भंग हो गया है। दैत्य रक्तबीज को मारने के देवताओं के सारे प्रयत्न विफल हो गए, परन्तु रक्तबीज का गर्व चूर नहीं हो सका १६२। ।दोहा ।। इस प्रकार

चंडका इउ कीनो बर जुद्धु । अगनत भए दानव तबै कछु न बसायो क्रुद्धु ॥ १६३ ॥ ॥ स्वैया ॥ पेखि दसोदिस ते बहु दानव चंड प्रचंड तची अखियाँ । तब लैके क्रिपान जु काट दए अर फूल गुलाब की जिउँ पखियाँ । स्रउन की छीट परी तन चंड के सो उपमा कवि ने लखियाँ । जनु कंचन मंदर मै जरिआ जरि लाल मनी जु बना रखियाँ ॥ १६४ ॥ क्रुद्ध कै जुद्ध कर्‌यो बहु चंडन एतो कर्‌यो मधु सो अबिनासी । दैतन के बध कारन को निज भाल ते ज्वाल की लाट निकासी । काली प्रतच्छ भई तिह ते (पृ०पं०६०) रन फैल रही भय भीर प्रभासी । मानहु स्रिंग सुमेर को फोरिकै धार परी धर पै जमुनासी ॥१६५॥ ॥ स्वैया ॥ मेरु हल्यो दहल्यो सुरलोकु दसो दिस भूधर भाजत भारी । चालि पर्‌यो तिह चउदहि लोक मै ब्रहम भयो मन मै भ्रम भारी । ध्यान रह्यो न जटी सु फटीधर यो बलि कै रन मै किलकारी । दैतन के बधि कारन को करि कालसी काली क्रिपान सँभारी ॥ १६६ ॥ ॥ दोहरा ॥ चंडी काली दुहूँ मिलि

रक्तबीज से चंडिका ने श्रेष्ठ युद्ध किया, परन्तु अनेकों दानव बनते ही गए और क्रोध करने का कोई फल-विशेष नहीं हुआ ॥ १६३ ॥ ॥ सवैया ॥ दसों दिशाओं में दानवों को देखकर चंडिका की आँखें क्रोध से फैल गयीं और उसने कृपाण से राक्षसों को ऐसे काट डाला, जैसे गुलाब की पंखुड़ियों को काटकर फेंक दिया जाता है। देवी के शरीर पर पड़ी रक्त की बूंदों को देखकर कवि को ऐसे लगता है, मानो सोने के मंदिर में जड़ाऊ लाल मणियाँ सुशोभित हो रही हों ॥ १६४ ॥ दुर्गा ने इतना भयंकर युद्ध किया, जैसे विष्णु ने मधु दैत्य के साथ युद्ध किया था। देवी ने दैत्यों के वध के लिए अपने मस्तक से एक ज्वाला निकाली, जिसके फलस्वरूप कालीदेवी प्रकट हुई और सारा रणस्थल भयभीत हो उठा। काली इस प्रकार प्रकट हुई, मानो सुमेरु पर्वत को फोड़कर यमुना की धारा प्रकट हुई हो ॥ १६५ ॥ ॥ सवैया ॥ सुमेरु पर्वत हिल गया, सुरलोक भयाक्रांत हो उठा और दसों दिशाओं में पर्वत उड़ने लगे। चौदह लोकों में हलचल मच गई और ब्रह्मा के मन में भी तरह-तरह के संदेह पैदा होने लगे। दुर्गा की किलकारी को सुनकर शिव का ध्यान भी लगा न रह सका और धरती फटने लगी। अब कालीदेवी ने दैत्यों को मारने के लिए काल के समान कृपाण को अपने हाथ में सँभाल लिया १६६ ॥ दोहा चंडीदेवी और कालीदेवी दोनों ने मिलकर यह विचार किया

कीनो इहै बिचार। हउ हनिहो तूं स्रउन पी अरि दलि डारहि मारि ॥ १६७ ॥ ॥ स्वैया ॥ काली अउ केहरि संगि लै चंडि सु घेरे सभै बन जैसे दवा पै। चंड के बानन तेज प्रभाव ते दैत जरैं जैसे ईट अवा पै। कालका स्रउन पिओ तिन को कबि ने मन मै लियो भाउ भवा पै। मानहु सिंध को नीर सभै मिलि धाइकै जाइ परे है तवा पै ॥ १६८ ॥ चंड हने अरु कालका कोप कै स्रउनत बिंदन सो इह कीनो। खग्ग सँभार हकार तबै किलकार बिदार सभै दलु दीनो। आमिख स्रोन अच्यो बहु कालका ता छबि मै कबि इउ मन चीनो। मानो छुधातर हुइकै मनुच्छ सु सालन लासहि सो बहु पीनो ॥ १६९ ॥ ॥ स्वैया ॥ जुद्ध रकतबीज कर्‌यो धरनी पर यौ सुर देखत सारे। जेतक स्रोन की बूंद गिरैं उठि तेतक रूप अनेकहि धारे। जुगनि आन फिरी चहूं ओर ले सीस जटा कर खप्पर भारे। स्रोनत बूंद परैं अचवैं सभ खग्ग लै चंड प्रचंड सँघारे ॥ १७० ॥ काली अउ चंड कुवंड सँभार कै दैत सो जुद्ध निशंग मच्यो है।

कि मैं तो दैत्यों को मारूँगी और तुम (काली) उनका रक्त पान करती जाना ॥ १६७ ॥ ॥ सवैया ॥ काली को और सिंह को साथ लेकर चंडी ने दैत्यों को ऐसे घेर लिया, जैसे अग्नि की लपटें वन को घेर लेती हैं। चंडी के बाणों से दैत्य ऐसे जलने लगे, जैसे ईंट के भट्ठे में ईंटें जलती हैं। काली ने ऐसे रक्तपान प्रारम्भ कर दिया और रक्त को समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया, जैसे बादलों का जल बड़े गर्म तवे पर पड़ते ही नष्ट होता चला जाता है ॥ १६८ ॥ चंडी ने दैत्यों का हनन किया और काली ने रक्त के साथ उपर्युक्त व्यवहार किया। खड्ग को सँभालकर और ललकारकर चंडी ने दैत्यदल को नष्ट कर दिया तथा काली को मांसयुक्त रक्त पीते देखकर कवि के हृदय को ऐसे लगा, मानो कोई अत्यन्त भूखा मनुष्य पके मांस के रस को पीकर अपनी भूख मिटाकर तृप्त हो रहा हो ॥ १६९ ॥ ॥ सवैया ॥ रक्तबीज के युद्ध को धरती पर सारे देवता (भय-विस्मय से युक्त होकर) देख रहे हैं कि किस प्रकार रक्तबीज के रक्त की बूंदें गिर रही हैं और कैसे पुनः अनेकों रक्तबीज बनते चले जा रहे हैं। सिर पर जटाओं और भारी खप्परों वाली योगिनियाँ चारों ओर से आकर वहाँ जुट गई हैं। प्रचंड खड्ग के द्वारा देवी ने दैत्यों का संहार किया, परन्तु रक्त की बूंदें गिरते ही ये योगिनियाँ (धरती पर गिरने से पूर्व ही) उसका कर जाती हैं १७० ॥

मार महाँ रन मद्ध भई पहरेक लउ सार सों सार बज्यो है। स्रउनत बिंद गिर्यो धरनी पर इउ असि सो अर सीस भज्यो है। मानो अतीस कर्यो चित को धनवंत सभै निज माल तज्यो है ॥ १७१ ॥ ॥ सोरठा ॥ चंडी दयो बिदार स्रउन पान काली कर्यो। छिन मै डार्यो मार स्रउनत बिंद दानव महाँ ॥ १७२ ॥

॥ इति स्री मारकंडे पुराने स्री चंडी चरित्र उकति बिलास रकतबीज बधहि नाम पंचमो धिआइ ॥ ५ ॥

॥ स्वैया ॥ तुच्छ बचे भज कै रन त्याग कै सुंभ निसुंभ पै जाइ पुकारे। स्रउनतबीज हन्यो दुह ने मिलि अउर महाँ भट मार बिदारे। इउ (मू०ग्रं०८१) सुनिकै उनि के मुख ते तब बोलि उठ्यो करि खग्ग सँभारे। इउ हनि हो बरचंडि प्रचंडि अजा बन मै जिम सिंघ पछारे ॥१७३॥ ॥ दोहरा ॥ सकल कटक के भटन को दयो जुद्ध को साज। शस्त्र पहर कै इउ कह्यो हनिहो चंडहि आजु ॥ १७४ ॥ ॥ स्वैया ॥ कोप कै

काली और चंडी ने धनुष सँभालकर दैत्यों से संदेह-मुक्त होकर भीषण युद्ध किया। रणस्थल में भीषण मारकाट हुई और लगभग एक प्रहर तक लोहे पर लोहा बजता रहा। रक्तबीज धरती पर गिर पड़ा और शत्रु का सिर तलवार से छिटककर ऐसे दूर जा पड़ा, मानो धनवान ने संन्यासी बनकर सारे धन-माल का त्याग कर दिया हो ॥ १७१ ॥ ॥ सोरठा ॥ चंडी ने (रक्तबीज को) समाप्त कर दिया और उसके रक्त का पान काली ने कर लिया। इस प्रकार क्षण-भर में रक्तबीज को मार डाला गया ॥ १७२ ॥

॥ इति श्री मार्कण्डेय पुराण के चंडीचरित्र-उक्ति-विलास में रक्तबीज-वध नामक पाँचवे अध्याय की समाप्ति ॥ ५ ॥

॥ सवैया ॥ जो छोटे-छोटे दैत्य बचे वे रण त्यागकर भागे और शुंभ-निशुंभ के समक्ष जाकर कहने लगे कि चंडी और काली ने मिलकर रक्तबीज तथा अन्य महाबलियों को मार डाला है। यह सुनकर हाथ में खड्ग सँभालकर वे (दोनों) चले कि हम चंडी को ऐसे मार देंगे जैसे सिंह बकरी को मार देता है ॥ १७३ ॥ ॥ दोहा ॥ सारी सेना के बलवानों को युद्ध के लिए सुसज्जित किया और शस्त्रों को पकड़कर वे कहने लगे कि हम आज चंडी का वध कर देंगे। १७४ ॥ सवैया ॥ क्रोधित होकर

सुंभ निसुंभ चढे धुनि दुंदभ की दस हूँ दिस धाई। पाइक अग्र भए मधि बाज रथी रथ साज कै पाँति बनाई। माते मतंग के पुंजन ऊपरि सुंदर तुंग धुजा फहराई। सक्र सो जुद्ध के हेत मनो धरि छाडि सपच्छ उडे गिर राई ॥१७५॥ ॥ दोहरा ॥ सुंभ निसुंभ बनाइ दलु घेरि लयो गिर राज। कवच अंग कसि कोप करि उठै सिंघ जिउ गाज ॥ १७६ ॥ ॥ स्वैया ॥ सुंभ निसुंभ सु बीर बली मन कोप भरे रन भूमहि आए। देखन मै सुभ अंग उतंग तुरा करि तेज धरा पर धाए। धूर उडी तब ता छिन मै तिह के कनका पग सों लपटाए। ठउर अडोठ के जै करबे कहु तेज मनो मन सीखन आए ॥१७७॥ ॥ दोहरा ॥ चंड कालका स्रवन मै तनक भनक सुनि लीन। उतर सिंग गिर राज ते महाँ कुलाहलि कीन ॥ १७८ ॥ ॥ स्वैया ॥ आवत देखि कै चंड प्रचंडि को कोप कर्यो मन मै असि ठानो। नास करो इह को छिन मै करि बान सँभार बडो धनु तानो। काली के बक्र बिलोकन ते सु उठ्यो मन मै भ्रम जिउ जम जानो।

शुंभ और निशुंभ ने चढ़ाई कर दी। नगाड़ों की ध्वनि दसों दिशाओं में फैल गई। सेना में पैदल आगे, बीच में अश्वारोही तथा (पीछे) रथियों ने पंक्तियाँ बना लीं। हाथियों पर सुन्दर ध्वजाएँ फहरा रही हैं और यह दृश्य ऐसा लगता है मानो इन्द्र से युद्ध करने के लिए पंखों की सहायता से पर्वत उड़कर चले जा रहे हों ॥ १७५ ॥ ॥ दोहा ॥ शुंभ-निशुंभ ने पर्वत को घेर लिया और शरीरों पर कवचों को कसकर वे सिंहों के समान दहाड़ उठे ॥ १७६ ॥ ॥ सवैया ॥ शुंभ एवं निशुंभ नामक बलशाली वीर कुपित होकर रणस्थल में प्रविष्ट हुए। देखने में सुंदर अंगों वाले बलिष्ठ अश्व शीघ्र ही धरती पर दौड़ने लगे। उस समय घनी धूल उड़ने लगी और धूल के कण अश्वों के अंगों पर जमने लगे। वे ऐसे लग रहे थे मानो वे घोड़ों से तेज दौड़ने और विजय प्राप्त करने की शिक्षा लेने के इच्छुक (विद्यार्थी) हों ॥ १७७ ॥ ॥ दोहा ॥ चंडी और कालिका के कानों में भी इस आक्रमण की भनक पड़ी और वे गिरिराज (हिमालय) से नीचे उतरकर भीषण रूप से गर्जने लगीं ॥१७८॥ ॥ सवैया ॥ चंडिका को आती हुई देखकर दानवों ने अत्यंत क्रोध किया और कहा कि इसको धनुष-बाण तानकर क्षण भर में नष्ट कर दो। काली की टेढ़ी आँखों को देखकर यम का भ्रम हो रहा था। चंडी एवं काली ने एक ही बार में अनेकों बाण चला दिए और इस प्रकार चिंघाड़ने लगीं मानो

बैरन के घन से दल पैठि लयो करि मै धनु साइकु ऐसे । स्याम पहार से दैत हने तम जैसे हरे रबि की किरनै से । भाज गई धुजनी डरिकै कबि कोऊ कहै तिह की छबि कैसे । भीम को स्रउन भर्यो मुख देखि कै छाडि चले रन कौरउ जैसे ॥ १८० ॥ ॥ कबितु ॥ आज्ञा पाइ सुंभ की सु महां बीर धीर जोधे आए चंड ऊपर सु क्रोध कै बनी ठनी । चंडका लै बान अउ कमान काली किरपान छिन मधि कै कै बल सुंभ को हनी अनी । डरत जि हेत महां प्रेत कीने बानन सो बिचल बिथर ऐसे भाजगी अनी कनी । जैसे बारूथल मै समूह बहे पउन हूँ के धूर उडि चले हुइकै कोटिक कनी कनी । (मू०ग्रं०८२) ॥ १८१ ॥ ॥ स्वैया ॥ खग्ग लै काली अउ चंडी कुवंडि बिलोकि कै दानव इउ दबटे है । केतक चाब गई मुखि कालका केतिन के सिर चंडि कटे है । स्रउनत सिंध भयो धर मै रन छाड गए इक दैत फटे है । सुंभ पै आइ कह्यो तिन इउ बहु बीर महाँ तिह ठउर लटे है ॥ १८२ ॥ ॥ दोहरा ॥ देखि भयानक जुद्ध को कीनो बिशन बिचार । शकति सहाइत के

में बादल गरज रहे हों ॥ १७९ ॥ हाथ में धनुष-बाण लेकर वे शत्रुओं के दल में धंस गई तथा काले पहाड़ों के समान दैत्यों को ऐसे मारने लगीं, जैसे सूर्य की किरणें अंधकार का नाश करती हैं । दैत्यों की सेना भाग खड़ी हुई और इस दृश्य को कवि क्या कहे । सेना भागती हुई ऐसी लग रही है मानो भीम के रक्तपान करते मुख को देखकर कौरव-सेना भाग रही हो ॥ १८० ॥ ॥ कवित्त ॥ शुंभ की आज्ञा पाकर महाबली दैत्य चंडी पर चढ़ आए । चंडिका ने धनुष-बाण और काली ने कृपाण हाथ में लेकर क्षण भर में शुंभ की सेना का हनन कर दिया । वे महाप्रेत बने दानव चंडी के तीरों की नोकों के आगे भाग खड़े हुए और इस प्रकार छिटक गए जैसे मरुस्थल में हवा के झोंकों के साथ करोड़ों रेत के कण इधर-उधर उड़ जाते हैं ॥ १८१ ॥ ॥ सवैया ॥ काली के खड्ग और चंडी के धनुष को देखकर दानव भयभीत हो उठे हैं । अनेकों को कालिका अपने मुंह से चबा गई और अनेकों के सिर चंडी ने काट दिए हैं । रक्त का समुद्र भर गया और एक दैत्य वहाँ से भागकर शुंभ के पास आकर बोला कि युद्धस्थल में हमारे भारी-भारी वीर धराशायी हो गए हैं १८२ । । दोहा युद्ध की भीषणता को देखकर मन में विचार

नमित भेजी रनहि मंझार ॥ १८३ ॥ ॥ स्वैया ॥ आइस पाइ सभै शकती चलि कै तहाँ चंड प्रचंड पै आई । देवी कह्यो तिन को कर आदर आई भले जनु बोल पठाई । ता छबि की उपमा अति ही कबि ने अपने मन मै लखि पाई । मानहु सावन मास नदी चलिकै जल रास मै आन समाई ॥ १८४ ॥ ॥ स्वैया ॥ देखि महाँ दलु देवन को वर बीर सु सामुहि जुद्ध को धाए । बाननि साथि हने बलु कै रन मै बहु आवत बीर गिराए । दाड़न साथि चबाइ गई कलि अउर गहे चहुँ ओर बगाए । रावन सो रिसकै रन मै पति भालक जिउँ गिरराज चलाए ॥ १८५ ॥ फेर लै पान क्रिपान संभार कै दैतन सो बहु जुद्ध कर्यो है । मार बिदार संघार दए बहु भूम परे भट स्रउन भर्यो है । गूद बह्यो अर सीसन ते कबि ने तिह को इह भाउ धर्यो है । मानो पहार को सिखहु ते धरनी पर आन तुसार पर्यो है ॥ १८६ ॥ ॥ दोहरा ॥ भाज गई धुजनी सभै रह्यो न कछू उपाउ । सुंभ निसुंभहि सो कह्यो दलु लै तुमहूँ जाउ ॥ १८७ ॥ ॥ स्वैया ॥ मान कै सुंभ को बोल

करके विष्णु जी ने (भी) अपनी शक्ति को युद्ध में सहायता के लिए भेज दिया ॥ १८३ ॥ ॥ सवैया ॥ आज्ञा पाकर सभी शक्तियाँ प्रचंड चंडिका के पास आयीं । देवी ने उनका स्वागत किया और कहा कि आप अच्छे अवसर पर आ गई हैं । शक्तियों के आने के दृश्य को कवि ने अपने मन में इस प्रकार देखा और कहा कि वे आती हुई ऐसी लग रही हैं मानो सावन महीने में नदियाँ आ-आकर बड़ी जलराशि में मिलती जा रही हों ॥ १८४ ॥ ॥ सवैया ॥ देवताओं के दल को देखकर महाबली वीर युद्ध के लिए दौड़े और बाणों से युद्धस्थल में अनेकों वीरों को गिरा दिया । काली दाँतों से अनेकों को चबा गई और अनेकों को उसने इधर-उधर फेंक दिया । फेंके जा रहे वे ऐसे लगते हैं मानो रावण से युद्ध में क्रुद्ध होकर भालूराज (जाम्बवंत) युद्ध में पर्वत उठा-उठाकर फेंककर मार रहा हो ॥ १८५ ॥ पुनः कृपाण हाथ में लेकर (चंडी ने) दैत्यों से घनघोर युद्ध किया और बहुत से दैत्यों को खंड-खंड करके मार गिराया । रक्त एवं मेधा को बहते देखकर कवि के मन में ऐसा लग रहा है मानो पर्वत की चोटी से नीचे की ओर तुषारापात हो रहा हो ॥ १८६ ॥ ॥ दोहा ॥ सारी सेना भाग खड़ी हुई और शुंभ ने अब निशुंभ को कहा कि अब तुम सेना का नेतृत्व करो ॥ १८७ ॥ ॥ सवैया ॥ शुंभ की आज्ञा

निसुंभु चल्यो दल साज महाँ बल ऐसे। भारथ जिउँ रन मै रिस पारथ क्रुद्ध कै जुद्धु कर्यो रन जैसे। चंडि के बान लगे बहु दैत कउ फोरि कै पार भए तन कैसे। सावन मास किसान के खेत उगे मनो धान के अंकुर जैसे ॥ १८८ ॥ ॥ स्वैया ॥ बानन साथ गिराइ दए बहुरो असि लै करि इउ रन कीनो। मारि बिदारि दई धुजनी सभ दानव को बलु हुइ गयो छीनो। स्रउन समूहि पर्यो तिह ठउर तहाँ कबि ने भयु इउ मन चीनो। सातहुँ सागर को रचिकै बिधि आठवो सिंध कर्यो है नवीनो ॥ १८९ ॥ लै कर मै असि चंड प्रचंड सु (सू०ग्रं०९१) क्रुद्ध भई रन मद्धि लरी है। फोर दई चतुरंग चमूँ बलु कै बहु कालका मार धरी है। रूप दिखाइ भयानक इउ असुरंपति भ्रात की क्रांत हरी है। स्रउन सो लाल भई धरनी सु मनो अंग सूही की सारी करी है ॥ १९० ॥ दैत सँभार सभै अपनो बलि चंडि सो जुद्ध को फेरि अरे है। आयुध धारि लरे रन इउ जनु दीपक मद्धि पतंग परे है। चंड प्रचंड कुवंड सँभार सबै रन मद्धि दुटूक करे है। मानो महाँ बन मै बर ब्रिछन काटि कै बाढी जुदे कै धरे है ॥ १९१ ॥ ॥ स्वैया ॥ मार

मानकर निशुंभ दल लेकर ऐसे चला और युद्ध करने लगा जैसे महाभारत में क्रोधित होकर अर्जुन ने युद्ध किया था। चंडी के बाण दैत्यों के शरीरों को फोड़कर ऐसे पार जा निकले जैसे सावन मास में किसान के खेतों में बीजों के अंकुर फूटकर बाहर आ निकलते हैं ॥ १८८ ॥ ॥ सवैया ॥ बाणों से बहुतों को गिराया और कृपाण पकड़कर ऐसा युद्ध किया कि सारी सेना को मार दिया और दैत्यों के बल को क्षीण कर दिया। रक्त-समूह को पड़ा देखकर कवि कहता है कि सातों समुद्रों को रचकर मानो ब्रह्मा ने अब यह नया आठवाँ (रक्त का) समुद्र बनाया है ॥१८९॥ हाथ में कृपाण ले अत्यन्त क्रोधित होकर चंडिका रण में जूझ उठी है। काली ने अपने बल से चतुरंगिणी सेना को फाड़ दिया है और अपना विकराल रूप को दिखाकर असुरपति के भाई निशुंभ को निस्तेज कर दिया है। सारी धरती रक्त से लाल हो गई है और धरती ऐसी लग रही है, मानो धरती ने लाल साड़ी पहन रखी हो ॥ १९० ॥ दैत्य पुनः पूरे बल से चंडिका से युद्ध करने के लिए आ अड़े तथा शस्त्र धारण कर युद्ध में ऐसे अनुरक्त हुए जैसे पतंगे दीपक की लौ की ओर दौड़ते हैं। चंडिका ने धनुष सँभालकर सबको ऐसे दो टूक कर दिया है मानो महाँ

लयो दलु अउर भज्यो मन मै तब कोप निसुंभ कर्यो है । चंड के सामुहि आनि अर्यो अनि जुद्ध कर्यो पगु नाहि टर्यो है । चंड के बान लग्यो मुख दैत के स्रउन समूह धरान पर्यो है । मानहु राहु ग्रस्यो नभ भानसु स्रउनत को अत बउन कर्यो है ॥ १९२ ॥ साँग सँभार करं बलु धार कै चंड दई रिप भाल मै ऐसे । जोर कै फोर गई सिर त्रान को पार भई पट फार अनैसे । स्रउन की धार चली पथ ऊरध सो उपमा सु भई कहु कैसे । मानो महेश के तीसरे नैन की जोत उदोत भई खुल तैसे ॥ १९३ ॥ दैत निकास कै साँग वहै बलि कै तब चंड प्रचंड के दीनी । जाइ लगे तिह के मुख मै बहि स्रउन पर्यो अति ही छबि कीनी । इउ उपमा उपजी मन मै कबि ने इह भाँत सोई कहि दीनी । मानहु सिंगल दीप की नार गरे मै तंबोर की पीक नवीनी ॥ १९४ ॥ ॥ स्वैया ॥ जुद्ध निसुंभ कर्यो अति ही असु या छबि को कबि को बरनै । नहि भीखम द्रोणि क्रिपा अरु द्रोणज भीम न अरजन अउ करनै । बहु दानव के तन स्रउन की धार छुटी सु लगे सर के फरनै । जनु

ने जंगल में वृक्षों को काटकर खंड-खंड कर दिया हो ॥ १९१ ॥ ॥ सवैया ॥ जब दल मार दिया गया तथा कुछ भाग खड़ा हुआ तो निशुंभ मन में क्रोधित हो उठा । वह चंडी के समक्ष आकर अड़ गया और घनघोर युद्ध करने लगा । चंडी के बाण दैत्य के मुख पर लगे और रक्त-समूह ऐसे गिरने लगा, मानो आकाश में सूर्य को राहु ने पकड़ लिया हो और सूर्य ने रक्त का वमन किया हो ॥ १९२ ॥ बरछी को हाथ में पकड़कर पूरे बल के साथ चंडिका ने शत्रु के माथे पर मारी । बरछी शिरस्त्राण को फाड़कर ऐसे पार निकल गई जैसे कपड़े को फाड़कर निकल गई हो । रक्त की धारा धरती पर बह निकली और इसकी उपमा किससे दी जाय । यह तो ऐसे लगता है, मानो शिव के तीसरे नेत्र की ज्वाला बह निकली हो ॥ १९३ ॥ दैत्य ने वही बरछी निकालकर चंडी के शरीर में घोंप दी । उसके मुंह में लगते ही दृश्य अत्यन्त छबि-युक्त हो गया । कवि के हृदय में उपजी उपमा को उसने इस प्रकार कहा है कि रक्त बहती हुई चंडी ऐसी लग रही है, मानो सिंहलद्वीप की रूपवती स्त्री पान खाकर पीक को थूक रही हो ॥१९४॥ ॥ सवैया ॥ निशुंभ द्वारा किये गए युद्ध का वर्णन किसी कवि द्वारा किया नहीं जा सकता । ऐसा युद्ध भीष्म द्रोणाचार्य, , भीम और अर्जुन ने भी नहीं

रात के दूरि बिभास हसो दिस फैलि चली रवि की किरनै ॥ १९५ ॥ चंड लै चक्र धसे रन मै रिस क्रुद्ध किओ बहु दानव मारे । फेरि गदा गहिकै लहिकै चहिकै रिप सैन हती ललकारे । लै कर खग्ग अदग्ग महाँ सिर दैतन के बहु भू पर झारे । राम के जुद्ध समै हनुमान जु आन मनो गढ़ए गिर डारे ॥ १९६ ॥ ॥ स्वैया ॥ दानव एक बडो बलि बान क्रिपान लै पान हकार कै धायो । काहुकै खग्गु सुचंडका म्यान (मू०ग्रं०६४) ते ता तन बीच भले बर लायो । टूट पर्‌यो सिर धा धर ते जसु या छबि को कबि के मन आयो । ऊच धराधर ऊपरि ते गिर्‌यो काक कराल भुजंगम खायो ॥ १९७ ॥ ॥ स्वैया ॥ बीर निसुंभ को दैत बली इक प्रेर तुरंग गयो रन सामुहि । देखत धीरज नाहि रहे अबि को समरत्थ है बिक्रम जा महि । चंड लै पान क्रिपान हने अरि फेरि दई सिर दानव ता महि । मुंडहि तुंडहि चंडहि चीर पलान कि कान धसी बसुधा महि ॥ १९८ ॥ इउ जब दैत हत्यो बरचंड सु अउर

किया । बहुत से दैत्यों के शरीरों में बाण लगने से रक्त की धाराएँ ऐसे फूट निकलीं, जैसे रात्रि के समाप्त होने पर सूर्य की किरणें चारों ओर फैल रही हों ॥ १९५ ॥ चंडी ने क्रोधित होकर चक्र से अनेकों दानवों को मारा । पुन: गदा को लेकर वह किलकारियाँ मारने लगी और उसने शत्रु-सेना को मार गिराया । हाथ में अजेय खड़ग लेकर चंडी ने दैत्यों के सिरों को इस प्रकार भूमि पर झाड़ गिराया, मानो राम-रावण-युद्ध के समय हनुमान ने बड़े-बड़े पर्वतों को उठा फेंका हो ॥ १९६ ॥ ॥ सवैया ॥ एक बहुत ही बलवान दैत्य हाथ में खड़ग लेकर दौड़कर आगे बढ़ा । इधर चंडी ने भी अपना खड़ग निकालकर उस दैत्य के शरीर पर चला दिया, जिससे उसका सिर धड़ से कटकर ऐसे अलग जा लुढ़का, मानो ऊँचे पर्वत से विषधर का चबाया हुआ विकराल कौआ लुढ़ककर नीचे आ गिरा हो ॥१९७॥ ॥ सवैया ॥ वीर निशुंभ का एक बली दैत्य घोड़े को दौड़ाकर रणस्थल में आ उपस्थित हुआ । उसको देखकर किसी में भी युद्ध करने का धैर्य नहीं रहा । भला कौन उस शक्तिशाली दैत्य के सामने जा सकता था । चण्डिका ने कृपाण हाथ में लेकर अनेकों दैत्यों का वध किया तथा उस दानव के सिर पर भी अपने खड्ग से वार किया । चंडी की कृपाण दैत्य के सिर-मुँहे को चीरती हुई घोड़े की काठी को पार करती हुई तथा घोड़े का भेदन करती हुई धरती में जा धँसी ॥ १९८ ॥ इस प्रकार जब यह

चल्यो रन मद्धि पचारे । केहरि के समुहाइ रिसाइ कै धाइ कै धाइ दु तीनक झारे । चंडि लई करवार सँभार हकार कै सीस दई बलु धारे । जाइ पर्‍यो सिर दूर पराइ जिउँ टूटत अंब बयार के मारे ॥ १९९ ॥ जान निदान को जुद्ध बन्यो रन दैत समूह सभै उठि धाए । सार सों सार की मार मची तब काइर छाड कै खेत पराए । चंड के खग्ग गदा लग दानव रंचक रंचक हुइ तन आए । मूँगर लाइ हुलाइ मनो तक काछी ने पेड ते तूत गिराए ॥ २०० ॥ ॥ स्वैया ॥ देखि चमूँ बहु दैतन की पुनि चंडका आपने शस्त्र सँभारे । बीरन ते तन चीर पचीर से दैत हकार पछार सँघारे । घाउ लगे तिन को रन भूम मै टूट परे धर ते सिर न्यारे । जुद्ध समै सुत भान मनो सस के सभ टूक जुदे कर डारे ॥ २०१ ॥ ॥ स्वैया ॥ चंड प्रचंड तबै बल धार सँभार लई करवार करी कर । कोप दईस निसुंभ के सीस बही इह भाँत रही तरबातर । कउन सराह

दैत्य मारा गया तो एक अन्य दैत्य ललकारता हुआ रणमध्य आ पहुँचा और उसने सिंह के सामने वाले भाग पर क्रोधित होकर दो-तीन घाव कर दिए। चंडिका ने कृपाण सँभालकर भीषण गर्जना के साथ बलपूर्वक उसके सिर पर वार किया और उसका सिर कटकर ऐसे दूर जा छिटका, जैसे वायु के थपेड़ों से वृक्ष का आम टूटकर छिटक जाता है ॥ १९९ ॥ दैत्यों ने अंतिम काल का युद्ध समझकर सारे दैत्य इकट्ठा होकर चंडिका की ओर दौड़ पड़े। युद्ध में लोहे पर लोहा बजने लगा और कायर युद्ध छोड़कर भाग गये। चंडी के खड़ग और गदा के वारों से दैत्यों के तन खण्ड-खण्ड होने लगे और यह दृश्य ऐसा लगता था, मानो माली पेड़ को हिलाकर और दण्डे की मार से सहतूत नीचे गिरा रहा हो ॥ २०० ॥ ॥ सवैया ॥ दैत्यों की चतुरंगिणी सेना को देखकर चंडिका ने पुनः अपने शस्त्रों को सँभाला और वीरों के तनों को चीरते-फाड़ते हुए दैत्यों को ललकार एवं पछाड़कर मार डाला। उनके शरीरों पर घाव लगे और उनके सिर-धड़ इस प्रकार अलग हो गए, मानो सूर्यपुत्र शनि ने चंद्रमा के टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें इधर-उधर फेंक दिया हो ॥ २०१ ॥ ॥ सवैया ॥ उसी समय क्रोधित होकर चंडी ने मजबूती से तलवार को अपने हाथ में पकड़ लिया तथा कुपित होकर उसे निशुंभ के सिर पर आर-पार चला दिया। उस क्षण की प्रशंसा कौन कर सकता है उसका

करैं कहि ता छिन सो बिब होइ परे धरनी पर । मानहु सार की तार लै हाथ चलाई है साबन को सबुनीगर ॥ २०२ ॥

॥ इति स्री मारकंडे पुराने चंडी चरित्र उकति बिलास निसुंभ बधहि खशटमो धिआइ ॥ ६ ॥

॥ दोहरा ॥ जब निसुंभ रन मारिओ देवी इह परकार । भाज दैत इक सुंभ पै गयो तुरंगम डारि ॥ २०३ ॥ आन सुंभ पै तिन कही सकल जुद्ध की बात । तब भाजे दानव सबै मारि लयो तुअ भ्रात ॥ २०४ ॥ ॥ स्वैया ॥ सुंभ निसुंभ हन्यो सुनि कै बर बीरन के चित छोभ (मू०ग्रं०८५) समायो । साज चड्यो गज बाज समाज कै दानव पुंज लिए रन आयो । भूम भयानक लोथ परी लखि स्रउन समूह महाँ बिसमायो । मानहु सारसुती उमडी जल सागर के मिलिबे कहु धायो ॥ २०५ ॥ ॥ स्वैया ॥ चंडि प्रचंडि सु केहरि कालका अउ शकती मिलि जुद्ध कर्यो है । दानव सैन हती इनहूं सभ इउ कहिकै मन कोप भर्यो है । बंध कबंध पर्यो अवलोक कै शोक कै पाइ न

सिर धरती पर ऐसे आ पड़ा है, जैसे साबुन बनानेवाला लोहे की पत्ती से साबुन के टुकड़े काटकर फेंकता चला जाता है ॥ २०२ ॥

॥ इति श्री मार्कण्डेय पुराण के चंडीचरित्र-उक्ति-विलास में निशुंभ-वध नामक छठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

॥ दोहा ॥ इस प्रकार जब देवी ने रणस्थल में निशुंभ को मार दिया तो एक दैत्य घोड़े पर सवार हो भागकर शुंभ के सामने जा खड़ा हुआ ॥ २०३ ॥ उसने शुंभ से सारी युद्धवार्त्ता कही और उसे बताया कि सभी दानव भाग गए हैं और चंडी ने तुम्हारे भाई को मार डाला है ॥ २०४ ॥ ॥ सवैया ॥ शुंभ ने जब निशुंभ के मारे जाने की बात सुनी तो सभी महाबलियों के चित्त में अत्यन्त क्षोभ हुआ । वह हाथी, घोड़ों एवं दानवों के झुंड के साथ युद्धस्थल पर आ पहुँचा । उसे भूमिपर डरावनी लाशें तथा रक्तसमूह को देखकर महान आश्चर्य हुआ और ऐसा लगा, मानो सरस्वती नदी उमड़कर सागर के जल से मिलने के लिए दौड़ रही हो ॥ २०५ ॥ ॥ सवैया ॥ चंडी, सिंह एवं कालीदेवी तथ शक्तियों ने मिलकर युद्ध किया तथा दानव-सेना का विनाश किया है, य सोचकर उसका मन कुपित हो उठा । बंधों और कबंधों को पड़े हुए देखकर

आगै धर्यो है । धाइ सक्यो न भयो भयभीतहु चीतहु मानहु लंग पर्यो है ॥ २०६ ॥ ॥ स्वैया ॥ फेर कह्यो दल को जब सुंभ सु मानि चले तब दैत घने । गजराज सु बाजन के असवार रथी रथु पाइक कउन गने । तहा घेर लई चहूँ ओर ते चंड महाँ तिन के तन दीह बने । मनो भान को छाइ लयो उमडे घनघोर घमंड घटा निस ने ॥ २०७ ॥ ॥ दोहरा ॥ चहूँ ओर घेरो पर्यो तबै चंड इह कीन । काली सो हसि तिन कही नैन सैन करि दीन ॥ २०८ ॥ ॥ कबितु ॥ केते मार डारे असुर केतक चबाइ डारे केतक बगाइ डारे काली कोप तबही । बाज गज भारे तेतो नखन सों फार डारे ऐसो रन भैकर न भयो आगे कबही । भागे बहु बीर काहू सुध न रहा सरीर हाल चाल परी मारे आपस में दबही । पेख सुरराइ मन हरख बढाइ सुर पुंजन बुलाइ करै जै जैकार सबही ॥ २०९ ॥ ॥ कबितु ॥ क्रोधमान भयो कह्यो राजा सभ दैतन को ऐसो जुद्ध कीनो काली डार्यो बीर मार कै । बल को संभार कर

उसका शोकाकुल मन आगे न बढ़ सका और वह इतना भयभीत हो उठा और धीरे-धीरे चलने लगा, मानो चीते की टाँग टूट गई हो और वह लँगड़ाकर चल रहा हो ॥२०६॥ ॥ सवैया ॥ शुंभ ने जब फिर आज्ञा दी तो सभी दैत्य चल पड़े। इस सैन्यदल में अगणित गजराज, घोड़े, अश्वारोही, रथी एवं पैदल थे । इन सबने चारों ओर से अपने दीर्घ शरीरों के साथ चंडिका को घेर लिया और यह ऐसा लग रहा था, मानो सूर्य को चारों ओर से घनघोर काली घटाओं ने घेर लिया हो ॥ २०७ ॥ ॥ दोहा ॥ चारों ओर घेरा पड़ा देखकर चंडी ने हँसकर नयनों के संकेतों से काली को समझा दिया कि अब इन्हें मारा जाय ॥ २०८ ॥ ॥ कवित्त ॥ अनेकों को मार डाला, बहुतों को चबा डाला और कितनों को ही क्रोधित होकर दूर फेंक दिया । हाथियों और घोड़ों को अपने नाखूनों से फाड़ डाला तथा ऐसा लगता है कि इस प्रकार का युद्ध पहले कभी नहीं हुआ । शरीर की सुधि भूलते हुए महाबली भाग खड़े हुए और आपस में ही एक-दूसरे को दबाकर मारने लगे । इस दृश्य को देखकर सुरराज के मन में अत्यन्त हर्ष हुआ और उसने अन्य देवताओं को बुलाकर जय-जयकार करना शुरू कर दिया ॥२०९॥ ॥ कवित्त ॥ दैत्य-राज ने क्रोधित होकर कहा कि काली ने इतना भयंकर युद्ध किया है कि बहुत से वीरों को मार गिराया है हृदय को मजबूत कर तथा हाथ में

लीनी करवार ढार पैठो रन मद्धि मारि मारि इउ उचार कै। साथ भए सुंभ के सु महाँ बीर धीर जोधे लीने हथिआर आप आपने सँभार कै। ऐसे चले दानो रवि मंडल छपानो मानो सलभ उडानो पुंज पंखन सु धार कै॥२१०॥ ॥ स्वैया ॥ दानव सैन लखै बलिवान सु बाहनि चंडि प्रचंडि भ्रमानो। चक्र अलात की बात बघूरन छत्रन ही सम अउ परसानो। तारन माहि सु ऐसो फिर्‍यो जल भउरन ही सर ताहि बखानो। अउर नही उपमा उपजै सु दुहूँ रुखु केहरि के मुखि मानो॥ २११ ॥ जुद्धु महाँ असुरंगनि साथ भयो (मू०ग्रं०८१) सब चंड प्रचंडहि भारी। सैन अपार हकार सुधार बिदार सँघार दई रन कारी। खेत भयो तह चार सउ कोस लउ सो उपमा कवि देखि बिचारी। पूरन एक घरी न परी जि गिरे धर पै बर जिउँ पति झारी॥ २१२ ॥ मार चमूँ चतुरंग लई सब लीनो है सुंभ चमुंड को आगा। चाल गयो अवनी सिगरी हरिजू हरि आसनि ले उठि भागा। सूख पर्‍यो बस कै हरि हारि सु संकति अंक महाँ भयो जागा। लाग रह्यो लपटाइ गरे मधि मानहु मुंड की माल को तागा॥ २१३ ॥

ढाल-तलवार लेकर वह मारो-मारो की ध्वनि के साथ रणस्थल में डट गया। उसके साथ बलिष्ठ योद्धाओं ने भी अपने शस्त्र सँभाले और ये सभी दैत्य इस प्रकार चल पड़े मानो आकाश-मंडल को ढँकते हुए टिड्डी-दल एवं अन्य कीड़े-पतंगे चल रहे हों॥ २१० ॥ ॥ सवैया ॥ दैत्यों की बलवती सेना को देखकर अत्यंत वेग से चंडी ने अपने वाहन सिंह का मुँह इस प्रकार घुमाया कि चक्र, चरखी, वायु, छत्र, जल के भँवर आदि भी उतनी शीघ्रता से नहीं घूम सकते। सिंह का शीघ्रतापूर्वक घूमना ऐसा लग रहा था मानो उसके दोनों तरफ़ मुँह हो॥ २११ ॥ दैत्यों के साथ चंडी का महायुद्ध हुआ और उसने ललकारकर अपार सैन्यसमूह का युद्धस्थल में संहार कर दिया। चार सौ कोस तक बने युद्धस्थल को देखकर कवि को ऐसा लगा है कि अभी एक घड़ी भी नहीं व्यतीत हुई है और दैत्य इस प्रकार धरती पर आ गिरे हैं, जैसे पतझड़ में पत्ते झड़कर गिर जाते हैं॥ २१२ ॥ जब चतुरंगिणी सेना का विनाश हो गया, तब शुंभ स्वयं चंडिका के समक्ष आ खड़ा हुआ। सारी धरती हिल गई एवं शिव जी ध्यान से उठकर भाग खड़े हो गए। उनके गले में पड़ा साँपों का हार डर के मारे सूख गया और मुर्दों की माला गले में धागे के समान सूखकर चिपक

॥ स्वैया ॥ चंडि के सामुहि आइकै सुंभ कह्यो मुखि सों इह मै सभ जानी । काली समेत सभै शकती मिलि दीनो खपाइ सभै दलु बानी । चंड कह्यो मुख ते उनको लेऊ ता छिन गउर के मद्धि समानी । जिउँ सरता के प्रवाह के बीच मिलै बरखा बहु बूंदन पानी ॥ २१४ ॥ ॥ स्वैया ॥ कै बलि चंडि महाँ रन मद्धि सु लै जमदाड़ को ता परि लाई । बैठ गई अरि के उर मै तिह स्रउनत जुग्गनि पूर अघाई । दीरघ जुद्धु बिलोक कै बुद्ध कबीशवर के मन मै इह आई । लोथ पै लोथ गई पर इउ सु मनो सुरलोग की सीढी बनाई ॥ २१५ ॥ सुंभ चमूं संग चंडका क्रुद्ध कै जुद्ध अनेकनि बार गच्यो है । जंबक जुग्गन ग्रिज्झ मजूर रकत्र की कीच मै ईस नच्यो है । लुत्थ पै लुत्थ सुभीत भई सित गूद अउ मेद लै ताहि मच्यो है । भउन रंगीन बनाइ मनो करिमाबिश चित्र बचित्र रच्यो है ॥ २१६ ॥ ॥ स्वैया ॥ दुंद सु जुद्धु भयो रन मै उत सुंभ इतै बरचंड सँभारी । घाइ अनेक भए दुहुँ के तन पउरख ग्यो सभ दैत को हारी । हीन भई बल ते भुज काँपत सो उपमा कबि ऐसे

गई ॥ २१३ ॥ ॥ सवैया ॥ चंडी के सम्मुख आकर शुंभ ने कहा कि मैं जानता हूँ कि तुमने काली तथा अन्य शक्तियों को साथ लेकर मेरे दल को नष्ट कर दिया है। यह सुनकर चंडी के कहने पर सभी शक्तियाँ उसमें (चंडी में) इस प्रकार अन्तर्लीन हो गयीं जैसे सरिता के प्रवाह में वर्षा की बूंदें मिल जाती हैं ॥ २१४ ॥ ॥ सवैया ॥ प्रबल चंडिका ने यम-दाढ़-स्वरूप कृपाण उस दैत्य के शरीर में भोंक दी जो कि शत्रु के हृदय में जा बैठी और दैत्य के शरीर से निकले रक्त से रक्तपान करनेवाली योगिनियों ने जी भरकर रक्त पिया। भीषण युद्ध को देखकर कवि को ऐसे लगा कि लाश पर लाश ऐसे पड़ी है, मानो सुरलोक में चढ़ने के लिए सीढ़ी लगाई गई हो ॥२१५॥ शुंभ की सेना के साथ क्रुद्ध होकर चंडिका ने अनेक प्रकार से युद्ध किया। गीदड़, योगिनियाँ एवं गिद्ध मानो मजदूर हों और रक्त-मांस के कीचड़ में खड़े होकर काम करनेवाला नटराज शिव है। लाश पर चढ़ी लाश दीवार है, जिसे सफ़ेद चर्बी और मेधा (रूपी सीमेंट) लगाकर तैयार किया गया है। इस प्रकार का भवन बना है, मानो विश्वकर्मा ने विचित्र शीशमहल तैयार किया हो ॥ २१६ ॥ ॥ सवैया ॥ रणक्षेत्र में द्वन्द्वयुद्ध चल रहा है; एक ओर शुंभ है तथा दूसरी ओर चंडिका है दैत्य और चंडी के तन पर अनेकों घाव हो गए हैं और

बिसारी । मानहु गारुड़ के बल ते लटी पंचमुखी भुग सापन कारी ।। २१७ ।। कोप भई बरचंड महां बहु जुद्ध कर्‍यो रन मै बलधारी । लै कै क्रिपान महाँ बलवान पचार कै सुंभ के ऊपरि झारी । सार सो सार की धार बजी झनकार उठी तिहु ते चिनगारी । मानहु भादव मास की रैन लसै पटबीजन की चमकारी ।। २१८ ।। घाइन ते बहु स्रउन पर्‍यो बल छीन भयो न्रिप (मू०ग्रं०८७) सुंभ को कैसे । जोत घटी मुख की तन की मनो पूरन ते परिवा ससि जैसे । चंड लयो करि सुंभ उठाइ कह्यो कवि ने मुखि ते जसु ऐसे । रच्छक गोधिन के हित कान्ह उठाइ लयो गिर गोधनु जैसे ।। २१९ ।। ।। दोहरा ।। कर ते गिर धरनी पर्‍यो धर ते गयो अकास । सुंभ संघारन के नमित गई चंड तिह पास ।।२२०।। ।। स्वैया ।। बीच तबै नभ मंडल चंडका जुद्ध कर्‍यो जिम आगे न होऊ । सूरज चंदु निछत्र सचीपति अउर सभै सुर पेखत सोऊ । सीस के मूंड दई करवार की एक को मार किए तब दोऊ । सुंभ दुटूक ह्वै भूमि पर्‍यो तन जिउँ कलवत्र सों चीरत कोऊ ।। २२१ ।।

दैत्य अपना पौरुष हार चुका है । बलहीन भुजा इस प्रकार काँप रही है, मानो गरुड़ के भय से पाँच मुँह वाली नागिन डरकर काँप रही हो ।।२१७।। श्रेष्ठ चंडी ने क्रुद्ध होकर श्रेष्ठ युद्ध किया और कृपाण हाथ में लेकर शुंभ के सिर पर वार किया । लोहे से लोहा बजा और एक झनझनाहट के साथ ऐसी चिंगारियाँ फूट निकलीं, मानो भादों के महीने में जुगनू चमक उठे हों ।। २१८ ।। घावों से बहुत रक्त बह जाने के कारण राजा शुंभ निर्बल पड़ने लगा । उसके मुखमंडल की ज्योति वैसे ही क्षीण हो गई, जैसे पूर्णिमा के बाद चंद्रमा की ज्योति क्षीण हो जाती है । चंडिका ने शुंभ को हाथ से पकड़कर वैसे ही ऊपर उठा लिया, जैसे गोधन की रक्षा करने के लिए कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को ऊपर उठा लिया था ।। २१९ ।। ।। दोहा ।। हाथ से छूटकर दैत्य धरती पर गिरा और धरती से आकाश की ओर चला । शुंभ का वध करने के लिए चंडिका उसके पास गई ।। २२० ।। ।। सवैया ।। तब नभमंडल के बीचोंबीच चंडिका ने अपूर्व युद्ध किया, जिसे सूर्य, चंद्र, नक्षत्र एवं इंद्रादि देवताओं ने देखा । खींचकर कृपाण चंडी ने दैत्य के मुँह पर मारी और उसे एक से दो खंडों में बाँट दिया । शुंभ दो टुकड़े होकर धरती पर ऐसे गिरा मानो किसी ने उसके तन को आरे से चीरकर दो टुकड़े कर दिया हो । २२१ ।

॥ दोहरा ॥ सुंभ मार कै चंडका उठी सु संख बजाइ । तब धुनि घंटा की करी महां मोद मन पाइ ॥ २२२ ॥ दैतराज छिन मै हन्यो देवी इह परिकार । अशट करन महि शस्त्र गहि सैना दई संघार ॥ २२३ ॥ ॥ स्वैया ॥ चंड के कोप न ओप रही रन मै असिधार भई समुहाई । मारि बिदारि संघारि बए तब भूप बिना करै कउन लराई । कांप उठे अरि त्रास हिए धरि छाडि दई सभ पउरखताई । दैत चले तजि खेत इउ जैसे बडे गुन लोभ ते जात पराई ॥ २२४ ॥

॥ इति स्री मारकंडे चंडी चरित्रे सुंभ बधहि नाम सपतमो धिआय संपूरन ॥ ७ ॥

॥ स्वैया ॥ भाजि गयो मघवा जिनके डर ब्रहम से आदि सभै भै भीते । तेई वै दैत पराइ गए रन हार निहार भए बलु रीते । जंबुक ग्रिज्झ निरास भए बन बास गए जुग जामन बीते । संत सहाइ सदा जग माइ सु सुंभ निसुंभ बडे अरि जीते ॥ २२५ ॥ देव सभै मिलिकै इक ठउर सु अच्छत कुंकम

॥ दोहा ॥ शुंभ को मारकर शंख बजाती हुई चंडिका उठी और अत्यन्त प्रसन्न होकर उसने घंटों-घड़ियालों की ध्वनि की ॥ २२२ ॥ इस प्रकार क्षण भर देवी ने दैत्यराज का संहार किया और अपने आठों हाथों में शस्त्र पकड़कर उसने सेना को नष्ट कर दिया ॥ २२३ ॥ ॥ सवैया ॥ चंडिका के क्रोध के समक्ष एवं कृपाण की धार के समक्ष दैत्य निस्तेज हो गए । उन्हें मारकर तहस-नहस कर दिया, क्योंकि अब राजा के बिना वे युद्ध करने में बिलकुल सक्षम नहीं रह गए थे । उनके हृदय भय के मारे काँप उठे और उनका पौरुष धरा का धरा रह गया । दैत्य युद्धस्थल को छोड़कर ऐसे भागे जैसे बड़े-बड़े अच्छे गुण लोभ से दूर भाग जाते हैं ॥२२४॥

॥ इति श्री मार्कण्डेय पुराण के चंडीचरित्र में शुंभ-वध नामक सातवें अध्याय की समाप्ति ॥ ७ ॥

॥ सवैया ॥ जिन दैत्यों के भय से इंद्र भाग गया और ब्रह्मा भयभीत हो उठे थे, वे ही दैत्य अपने-आपको निर्बल मानकर भाग खड़े हुए हैं । रणस्थल में गीदड़, गिद्ध आदि निराश होकर पुनः बनों में चले गए हैं और उन्हें वहाँ पहुँचे हुए दो प्रहर बीत चुके हैं । हे जगत्माया ! तूने संतों की सहायता की है और शुंभ-निशुंभ जैसे भीषण शत्रुओं को जीत लिया है २२५ एक स्थान पर सभी देवताओं ने एकत्र होकर हाथों में

चंदन लीनो । तच्छन लच्छन देकै प्रदच्छन टीका सु चंड के भाल मै दीनो । ता छबि को उपज्यो तह भाव इहै कवि ने मन मै लखि लीनो । मानहु चंद के मंडल मै सुभ मंगल आन प्रवेशहि कीनो ॥ २२६ ॥ ॥ कवितु ॥ मिलि कै सु देवन बडाई करी कालका की एहो जग मात तै तो कट्यो बडो पापु है । दैतन को मार (पृ०सं०६८) राज दीनो तै सुरेश हूं को बडो जसु लीनो जग तेरो ई प्रतापु है । देत है असीस दिज राज रिख बारि बारि तहा ही पढ्यो है ब्रहम कउच हूँ को जापु है । ऐसे जसु पूर रह्यो चंडका को तीन लोक जैसे धार सागर मै गंगा जी को आपु है ॥ २२७ ॥ ॥ स्वैया ॥ देहि असीस सभै सुर नारि सु धारि कै आरती दीप जगायो । फूल सुगंध सु अच्छत दच्छन जच्छन जीत को गीत सु गायो । धूप जगाइ कै संख बजाइकै सीस निवाइ कै बैन सुनायो । हे जगमाइ सदा सुखदाइ तै सुंभ को घाइ बडो जसु पायो ॥ २२८ ॥ सकहि साजि समाजि दै चंड सु मोद महा मन माहि रई है । सूर ससी नभ थापिकै तेजु दै आप तहा ते सु लोप भई है । बीच

अक्षत, कुंकुम एवं चंदन किया और चंडिका की परिक्रमा कर उसके माथे पर तत्क्षण तिलक लगाया । उस छवि को देखकर कवि के हृदय में यह भाव जाग्रत् हुआ है कि ऐसा लग रहा है, मानो चंद्रमा के मंडल में शुभ मंगल ने आकर प्रवेश किया हो ॥ २२६ ॥ ॥ कवित्त ॥ देवताओं ने मिलकर कालीदेवी का गुणानुवाद किया कि हे माता ! तुमने हमारे दारुण पाप का खंडन किया है । यह तेरा ही प्रताप है कि तूने दैत्यों को मारकर इंद्र को राज्य देकर महान् यश का अर्जन किया है । द्विजराज, ऋषि, मुनि बार-बार आशीर्वाद दे रहे हैं और ब्रह्मा भी कवच का जाप कर रहे हैं । इस प्रकार तीनों लोकों में चण्डिका का यश वैसे ही व्याप्त हो गया, जैसे समुद्र मे गंगा की धारा आकर व्याप्त हो जाती है ॥ २२७ ॥ ॥ सवैया ॥ देव-स्त्रियाँ भी शुभकामनाएँ दे रही हैं और उन्होंने आरती के लिए दीपक जला लिये हैं । फूल, सुगन्ध एवं अक्षतों को हाथ में लेकर दक्ष यक्षों ने विजय-गान गाए और अगरबत्ती जला, शंखध्वनि करके शीश झुकाकर विनम्रतापूर्वक कहने लगे कि हे जगत्माता ! तुम सदा सुखदायी हो; शुंभ को मारकर आपने अपूर्व यश पाया है ॥२२८॥ इंद्र को राज्य-समाज देकर चंडिका मन में अतीव प्रसन्न हुई तथा सूर्य-चंद्र को उनके स्थानों पर बैठा उन्हें पुन तेजवान बनाकर स्वयं लोप हो गई बीच में

अकाश प्रकाश बढ्यो तह की उपमा मन ते न गई है। धूर कै धूर मलीन हुतो रवि मानहु चंडका ओप दई है॥ २२६॥ ॥ कवितु॥ प्रथम मधुकैट मद मथन महिखासुरै मान मरदन करन तरन बर बंड का। धूम्र द्रिग धरन धर धूर धानी करन चंड अरु मुंड के मुंड खंड खंड का। रकतबीरज हरन रकत भछन करन दरन अन सुंभ रन रार रिस मंडका। सुंभ बलु धार संघार करवार करि सकल खलु असुर दलु जैत जै चंडका॥ २३०॥ ॥ स्वैया॥ देहि शिवा बर मोहि इहै शुभ करमन ते कबहूं न टरों। न डरों अरि सों जब जाइ लरों निसचै कर आपनी जीत करों। अरु सिख हों आपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरों। जब आव की अउध निदान बनै अति ही रन मै तब जूझ मरों॥ २३१॥ चंड चरित्र कवित्तन मै बरन्यो सभही रस रुद्र मई है। एक ते एक रसाल भयो नख ते सिख लउ उपमा सु नई है। कउतक हेत करी कबि ने सतिसय की कथा इह पूरी भई है। जाहि नमित्त

बड़े प्रकाश की उपमा कवि ने ऐसे दी है कि धूल से आकाश मलीन हो चुका था, चंडिका ने मानो अपना तेज देकर पुनः उसे देदीप्यमान कर दिया है॥२२९॥ ॥ कवित्त॥ हे देवी! पहले तुमने मधु-कैटभ का मान-मर्दन किया तथा महिषासुर का गर्व चूर किया। तुम सब कारणों की कारण अपूर्व वरदानी हो। तुम धूम्रलोचन को धरती पर पछाड़कर फेंकनेवाली एवं अपने खड्ग से चंड और मुंड नामक दैत्यों को टुकड़े-टुकड़े कर देनेवाली हो। रक्तबीज का रक्त पीकर उसे मारनेवाली और शुंभ के साथ रणभेरी बजानेवाली तुम ही हो। तुम ही शुंभ को मारकर सकल दैत्यों का नाश करनेवाली, जय-जयकार करवानेवाली चंडिका हो॥ २३०॥ ॥ सवैया॥ हे परमपुरुष की कल्याणकारी शक्ति! मुझे यह वरदान दो कि मैं कभी भी शुभ कर्म करने से न हिचकिचाऊँ। रण-क्षेत्र में शत्रु से कभी न डरूँ और निश्चयपूर्वक युद्ध को अवश्य जीतूँ। अपने मन को शिक्षा देने के बहाने मैं हमेशा तुम्हारा ही गुणानुवाद करता रहूँ तथा जब मेरा अंतिम समय आ जाय तो मैं युद्धस्थल में (धर्म की रक्षा करते हुए) प्राणों का त्याग करूँ॥ २३१॥ चंडी-चरित्र को मैंने काव्य में रौद्र-रस के अंतर्गत वर्णित किया है। मैंने एक-से-एक रसयुक्त उपमाएँ नख से लेकर शिख तक भरी हैं परन्तु इस सारे सप्तशती काव्य को मात्र लीला वर्णन के निमित्त पूरा किया है जो इसको पढ़ेगा

पढ़ै सुनि है नर सो निसचै करि ताहि दई है ॥ २३२ ॥
॥ दोहरा ॥ ग्रंथ सतिसय को कर्‌यो जा सम अवरु न कोइ। जिह नमित्त कबि ने कह्यो सु देह चंडका सोइ ॥ २३३ ॥ (मू०ग्रं०६६)

और सुनेगा, उसको उसकी इच्छा अनुरूप फल प्राप्त होगा ॥ २३२ ॥
॥ दोहा ॥ सप्तशती ग्रंथ को रचा है। इस ग्रंथ के समान अन्य ग्रंथ कोई नहीं है। हे चडिका ! कवि ने जिस भावना के निमित्त इसे रचा है, उसकी भावना पूर्ण करो ॥ २३३ ॥

१ ओं स्री वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

॥ नराज छंद ॥ महिख दईत सूरयं। बह्यो सु लोह पूरयं। सु देवराज जीतयं। त्रिलोक राज कीतयं ॥ १ ॥ भजे सु देवता तबै। इकत्र होइ कै सभै। महेसुरा चलं बसे। बिसेख चित्त भो त्रसे ॥ २ ॥ जुगेश भेस धार कै। भजे हथिआर डार कै। पुकार आरतं चले। बिसूर सूरमा भले ॥ ३ ॥ बरख किते तहा रहे। सु दुक्ख देह सो सहे। जगत्रमाति ध्याइयं। सु जैत पत्र पाइयं ॥ ४ ॥ प्रसंन देवता भए। चरंन पूजने धए। सनंमुखान ठड्हियं। प्रणाम पान पड्हियं ॥ ५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ तबै देव धाए। सभो सीस न्याये। सुमन धार बरखे। सभै साध हरखे ॥ ६ ॥

॥ नराज छंद ॥ शूरवीर महिषासुर ने लोह (कवच) से पूर्ण सुरक्षित होकर देवराज इन्द्र को जीत लिया और त्रिलोक में अपना राज्य स्थापित कर लिया ॥ १ ॥ सभी देवता एकत्र होकर भागे और चित्त में विशेष रूप से डरकर शिवजी के कैलास पर्वत पर जा बसे ॥ २ ॥ हथियार डालकर योगियों का वेष धारण करके अत्यन्त व्याकुल होकर पश्चात्ताप करते हुए ये शूरवीर मारे-मारे घूमने लगे ॥ ३ ॥ देह पर दुःखों को सहन करते हुए कितने ही वर्षों तक वहाँ रहे और जगत्‌माता का ध्यान करते रहे ताकि विजय प्राप्त कर सकें ॥ ४ ॥ (चंडिका को देखकर) देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसके चरणों की पूजा करने के लिए दौड़े। सम्मुख आकर गिर पड़े तथा प्रणाम कर स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ तब देवता और आगे बढ़े। सबने शीश को झुका लिया, पुष्पों की वर्षा होने लगी तथा साधु-संत प्रसन्न होने

करी देवि अरचा। ब्रहम बेद चरचा। जबै पाइ लागे। तबै सोग भागे ॥ ७ ॥ बिनंती सुनाई। भवानी रिझाई। सबै शस्त्र धारी। करी सिंघ सुआरी ॥ ८ ॥ करे घंट नादं। धुनं निरबिखादं। सुणो दईत राजं। सज्यो जुद्ध साजं ॥ ९ ॥ चढ्यो राछसेसं। रचे चार अनेसं। बली चामरेवं। हठी चिच्छुरेवं ॥ १० ॥ बिड़ालच्छ बीरं। चड़े बीर धीरं। बड़े इक्खु धारी। घटा जान कारी ॥११॥ ॥ दोहरा ॥ बाणि जिते राछसनि मिलि छाडत भए अपार। फूलमाल ह्वै मात उर सोभे सभै सु धार ॥ १२ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ जिते दानवो बान पानी चलाए। तिते देवता आप काटे बचाए। किते ढाल ढाहे किते पास पेले। भरे बस्त्र लोहू जनो फाग खेले ॥ १३ ॥ दुर्गाहूं कियं खेत धुंके नगारे। करं पटि संपरघ पासो सँभारे। तहाँ गोफनै गुरज गोले सँभारं। हठी मारही मार कै कै पुकारं ॥ १४ ॥ तबै अष्ट अशटा हथ्यारं सँभारे। सिरं बान बॅद्रान के ताकि झारे। बबक्यो बली

लगे ॥ ६ ॥ सबने देवी की अर्चना-पूजा वेदादि के अनुसार देवी को ब्रह्म मानकर की। जैसे ही देवगणों ने देवी के चरण स्पर्श किए उनके सभी दुःख भाग खड़े हुए ॥ ७ ॥ प्रार्थना करने से दुर्गा प्रसन्न हुई। उसने सब शस्त्र धारण किए और सिंह पर सवार हो गई ॥ ८ ॥ उसके घंटों का नाद लगातार चलने लगा। उधर दैत्यराज ने भी यह ध्वनि सुनी और युद्ध की तैयारी प्रारम्भ कर दी ॥ ९ ॥ राक्षसराज ने चढ़ाई कर दी और चार राजाओं को सेनापति बनाया। चामर और चिच्छुर बड़े बली एवं हठी दैत्य थे ॥ १० ॥ विडालाक्ष वीर जैसे बड़े-बड़े धैर्यवान वीरों ने बड़े-बड़े धनुष धारण कर ऐसे चढ़ाई की, मानो काली घटा घिर आयी हो ॥ ११ ॥ ॥ दोहा ॥ राक्षसों ने मिलकर जितने भी बाण छोड़े वे चंडिका के गले में फूलमाला बनकर आ गिरे ॥ १२ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ दानवों ने जितने बाण चलाए उन सबको देवताओं ने काट कर अपने-आपको बचा लिया। कहीं ढाल से वार रोका जा रहा है और फाँस लगाकर मारा जा रहा है। वस्त्र रक्त से इस प्रकार भर गए हैं, मानो सब होली खेल रहे हों ॥ १३ ॥ दुर्गा ने रणमंडन किया और हाथों में कुल्हाड़ा, फाँस आदि को सँभाल लिया। गदा, गोला आदि शस्त्रों को पकड़ा और युद्धस्थल में शूरवीरों ने 'मारो, मारो' की पुकार लगा दी ॥ १४ ॥ तभी अष्टभुजाओं वाली देवी ने आठों शस्त्र हाथ में

सिंघ जुद्धं मझारं । करे खंड खंडं सु जोधा अपारं ॥ १५ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ तब दानव रोस भरे सभ ही । जगमाति के बान लगे जब ही । बिबिधायुधु लै सु बली हरखे । घन बूंदन ज्यों बिसखं बरखे ॥ १६ ॥ जनु घोर कै स्याम घटा घुमडी । असुरेस अनीकनि (मू०ग्रं०१००) त्यों उमडी । जग मात बिरूथनि मों धसिकै । धनु साइक हाथ गह्यो हसिकै ॥ १७ ॥ रण कुंजर पुंज गिराइ दिए । इक खंड अखंड दुखंड किए । सिर एकनि चोट निफोट बही । तरवा तर ह्वै तरवार रही ॥ १८ ॥ तन झज्झर ह्वै रण भूम गिरे । इक भाज चले फिरकै न फिरे । इकि हाथ हथिआर लै आन बहे । लरि कै मरि कै गिरि खेत रहे ॥ १९ ॥ ॥ नराज छंद ॥ तहाँ सु दैत राजयं । सजे सु सरब साजयं । तुरंग आप बाहियं । बधं सु मात चाहियं ॥ २० ॥ तबै दुगा बकारिकै । कमाण बाण धारिकै । सु घाव चामरं कियो । उतार हसत तें दियो ॥ २१ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ तबै

पकड़कर दानवेंद्रों के सिरों पर चला दिए । इधर से बलवान सिंह भी दहाड़ने लगा और उसने अनेक बलशाली योद्धाओं को खंड-खंड कर दिया ॥ १५ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ जगत्माता दुर्गा के बाण लगते ही दानव क्रोध से भर उठे । विविध प्रकार के अस्त्रों को लेकर बलवान शूरवीर प्रसन्न होकर उन्हें इस प्रकार चलाने लगे मानो बादलों से विष की बूँदें बरस रही हों ॥ १६ ॥ जिस प्रकार घनघोर काली घटाएँ उमड़ती हैं, वैसे असुरों की सेना उमड़ी पड़ रही है । जगत्माता ने (दैत्य-) सेना में घुसकर हँसते हुए धनुष-बाण हाथ में ले लिया ॥ १७ ॥ रण में हाथियों के समूहों को धराशायी कर दिया और एक को दो-दो टुकड़ों में बाँट दिया । अनेकों के सिरों पर चोट लगने से रक्त बह रहा है और तलवारें लहू से तर हो गई हैं ॥ १८ ॥ शरीर घड़ों के समान रणभूमि में आ गिर रहे हैं और लड़ाई में कुछ ऐसे भाग निकले हैं कि उन्होंने फिर मुड़कर नहीं देखा है । कई शस्त्र पकड़कर सम्मुख आ उपस्थित हुए हैं और लड़-मरकर समाप्त हो गए है ॥ १९ ॥ ॥ नराज छंद ॥ वहाँ दैत्यराज ने सभी प्रकार से अपने-आपको सुसज्जित किया और स्वयं घोड़े को दौड़ाकर सामने आकर देवी को मारने का प्रयत्न करने लगा ॥ २० ॥ तब दुर्गा ने ललकारकर कमान-बाण को धारण कर चामरासुर को घायल कर हाथी से उतार फेंका २१ भुजंग प्रयात छन्द तब बिड़ाक्ष

बीर कोपं बिड़ालाछ नामं । सजे शस्त्र देहं चले जुद्ध धामं । सिरं सिंघ के आन धायं प्रहारं । बली सिंघ सो हाथ सों मारि डारं ॥ २२ ॥ बिड़ालाछ मारे सु पिंगाछ धाए । दुगा सामुहे बोल बाँके सुनाए । करी अभिभ्र ज्यों गरज कै बाण बरखं । महां सूरबीरं भरे जुद्ध हरखं ॥ २३ ॥ तबै देबिअं पाण बाणं सँभारं । हन्यो दुष्ट के धाइ सीसं मझारं । गिर्यो झूम भूमं गए प्राण छुट्टं । मनो मेर को सातवो स्रिंग टुट्टं ॥ २४ ॥ गिरे बीर पिंगाछ देबी सँघारे । चले अउर बीरं हथ्यारं उधारे । तबै रोस देबियं सरोघं चलाए । बिना प्रान कै जुद्ध मद्धं गिराए ॥ २५ ॥ ॥ चौपई ॥ जे जे सत्रु सामुहे आए । सभै देबता मारि गिराए । सैना सकल जबै हनि डारी । आसुरेस कोपा हंकारी ॥ २६ ॥ आप जुद्ध तब किआ भवानी । चुन चुन हने पखरिआ बानी । क्रोध ज्वाल मसतक से बिगसी । ता से आप कालका निकसी ॥२७॥ ॥ मधुभार छंद ॥ मुख बमत ज्वाल । निकसी कपाल । मारे गजेस । छुट्टे हएस ॥२८॥

नामक वीर क्रोधित एवं शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध के लिए चला और उसने सिंह के सिर पर प्रहार किया । बलवान सिंह ने उसे अपने पंजों से ही मार डाला ॥ २२ ॥ बिडालाक्ष के मारे जाने पर पिंगाक्ष नामक राक्षस दौड़ा और दुर्गा के सामने पहुँचकर खरी-खोटी सुनाने लगा । उसने घोर गर्जना के साथ बाणों की वर्षा की, जिसे देख-सुनकर शूरवीर हर्षित हो उठे ॥ २३ ॥ तभी देवी ने हाथ में बाण सँभालते हुए उस दुष्ट के सिर में बाण मारा, जिससे वह झूमता हुआ पृथ्वी पर आ गिरा और उसके प्राण-पखेरू इस प्रकार उड़ गए मानो सुमेरु की सातवीं चोटी टूटकर गिर पड़ी ॥ २४ ॥ देवी द्वारा पिंगाक्ष राक्षस की तरह मारे गए अनेकों वीरों का अंत हुआ । अन्य कई वीर शस्त्रों को निकालकर युद्ध के लिए चले । देवी ने अत्यन्त क्रोध से बाण चलाया और वीरों को मार गिराया ॥ २५ ॥ ॥ चौपाई ॥ जो-जो शत्रु सामने आये उन्हें देवताओं ने मार गिराया । इस प्रकार जब सारी सेना नष्ट हो गई तब अहंकारी दैत्यराज क्रोधित हो उठा ॥ २६ ॥ तब भवानी ने स्वयं युद्ध किया और चुन-चुनकर कई लौह-कवचधारियों को मार डाला । क्रोध की ज्वाला उसके मस्तक से निकल पड़ी जिससे कालका प्रगट हुई ॥ २७ ॥ ॥ मधुभार छंद ॥ उसके मुख से ज्वाला निकल रही थी और वह चंडी के मस्तक से प्रगट हुई है उसने बड़े-बड़े हाथियों एवं घुड़सवारों को

छुट्टंत बाण। झमकत क्रिपाण। सांगं प्रहार। खेलत धमार॥ २९॥ बाहैं निशंग। उट्ठैं झड़ंग। तुप्पक तड़ाक। उट्ठत कड़ाक॥ ३०॥ बबकंत घाइ। भभकंत घाइ। जुज्झे जुआण। नच्चे किकाण॥३१॥ ॥ रूआमल छंद॥ धायो असुरेंद्र तह निज कोप ओप बढाइ। संग लै चतुरंग सैना सुद्ध शस्त्र (मू०ग्रं०१०१) नचाइ। देबि शस्त्र लगै गिरे रण रज्झि जुज्झि जुआण। पील राज फिरे कहूं रण सुच्छ सुच्छ किकाण॥ ३२॥ चीर चामर पुंज कुंजर बज राज अनेक। शस्त्र अस्त्र सुभे कहूं सरदार सुआर अनेक। तेग तीर तुफंग तबर कुहुक बान अनंत। बेधि बेधि गिरे बरच्छिन सूर सोभावंत॥ ३३॥ गिद्ध ब्रिद्ध उडे तहा फिकरंत स्वान सिग्राल। मत्त दंत सपच्छ पब्बै कंक बंक रसाल। छुद्र मीन छुरद्धका अर चरम कछप अनंत। नक्र बक्र सुबरम सोभित स्रोण नीर तुरंत॥ ३४॥ नव सूर नवका से रथी अतिरथी

मार डाला॥ २८॥ युद्ध में बाण छूट रहे हैं, कृपाणें चमक रही हैं, बरछियों के वार हो रहे हैं और ऐसा लग रहा है जैसे होली खेली जा रही हो॥ २९॥ अभय होकर शस्त्र चलाये जा रहे हैं। भीषण नाद हो रहा है, तोपों की तड़-तड़ और गर्जना सुनाई पड़ रही है॥ ३०॥ देवी दहाड़ रही है और घाव फूट रहे हैं। शूरवीर युद्ध में जूझ रहे हैं और अश्व नाच रहे हैं॥ ३१॥ ॥ रूआमल छंद॥ दैत्यराज क्रोधित होकर एवं अपने बल में वृद्धि करता हुआ चतुरंगिणी सेना साथ लेकर, शस्त्रों को नचाता हुआ आगे बढ़ा। देवी के शस्त्र लगते ही शूरवीर धरती पर गिर पड़े और युद्ध में कहीं हाथी और सवार-विहीन घोड़े दौड़ रहे हैं॥ ३२॥ कहीं कपड़े, कहीं पगड़ियाँ, चमर, बहुत से हाथी-घोड़े तथा राजा मरे पड़े हैं। कहीं अस्त्र-शस्त्रधारी अनेकों सेनापति पड़े हैं, कहीं तीर, तलवार, बंदूक, तबर आदि शस्त्रों की ध्वनि सुनाई दे रही है और कहीं पर बरछियों से बिंधे हुए गिरे पड़े शूरवीर शोभायमान हो रहे हैं॥ ३३॥ मैदान में बड़े-बड़े गिद्ध उड़ रहे हैं तथा गीदड़ बोल रहे हैं। मस्त हाथी पंखों वाले पहाड़ों की तरह लग रहे हैं और कौवे भी झुक झुककर मांस भक्षण कर रहे हैं। दैत्यों के शरीरों पर तलवारें छोटी छोटी मछलियों के समान और ढालें कच्छपों के समान प्रतीत हो रही हैं। उनके शरीर पर लौह-कवच सुशोभित हो रहे हैं और बाढ़ की तरह रक्त प्रवाहित हो रहा है॥ ३४॥ नये-नये शूरवीर नावों के समान और रथी महारथी मल्लाहों के समान प्रतीत हो रहे हैं। ये सभी ऐसा लग रहा

जान जहाज । लादि लादि मनो चले धन धीर बीर सलाज ।
मोलु बीच फिरै चुकात दलाल खेत खतंग । गाहि गाहि फिरै
फवजनि झारि तिरव निखंग ।। ३५ ।। अंग भंग गिरे कहूँ
बहु रंग रंगित बस्त्र । चरम बरम सुभे कहूँ रण भूम शस्त्र
रुअस्त्र । मुंड तुंड धुजा पताका टूक टाक अरेक । जूझ जूझ
परे सभै अरि बाचियो नहि एक ।। ३६ ।। कोप कै महिखेस
दानो धाइयो तिह काल । अस्त्र शस्त्र सँभार सूरो रूप कै
बिकराल । काल पाण क्रिपाण लै तिह मारियो ततकाल ।
जोति जोति बिखै मिली तज ब्रहम रंध्र उताल ।। ३७ ।।
।। दोहरा ।। महिखासुर कह मारकर प्रफुलत भी जग माइ ।
ता दिन ते महिखे बलै देत जगत सुख पाइ ।। ३८ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटके चंडी चरित्रे महिखासुर बधह प्रथम धिआय
संपूरनम सतु सुभम सतु ।। १ ।। अफजूं ।।

अथ धूम्रनैन जुद्ध कथनं ।।

।। कुलक छंद ।। देविस सब गाजिय । अनहद बाजिय ।

मानो व्यापारियों की तरह युद्धस्थल से माल लाद-लादकर लज्जापूर्वक भागे जा रहे हैं । युद्धस्थल के बाण मानो दलाल हैं, जो इस सौदे का मोल चुका रहे हैं । सेनाएँ भाग-दौड़कर युद्धस्थल का मंथन कर रही है और अपने तरकश रूपी खजाने को खाली कर रही हैं ।। ३५ ।। कही से बहुरंगी वस्त्र और शरीरों के कटे हुए अंग पड़े हैं । कहीं पर ढाल और कवच तथा कहीं अकेले शस्त्र पड़े हैं । कहीं पर सिर, झण्डे और झण्डियाँ टूटकर पड़ी हैं और युद्धस्थल में सभी शत्रु खेत रहे तथा कोई एक भी शेष नहीं बचा ।। ३६ ।। तभी क्रोधित होकर महिषासुर आगे बढ़ा और उसने विकराल स्वरूप बनाकर अस्त्र-शस्त्रों को सँभाला । कालका देवी ने हाथ में कृपाण लेकर उसे तत्काल मार गिराया और उस दैत्य की ज्योति ब्रह्मरन्ध्र से निकलकर उस परमज्योति में जा मिली ।। ३७ ।।
।। दोहा ।। महिषासुर को मारकर जगत्माता अत्यन्त प्रसन्न हुई और उसी दिन से सारा संसार सुख-प्राप्ति के लिए पशुओं की बलि देता है ।। ३८ ।।

इति श्री बचित्र नाटक के चंडी चरित्र में महिषासुर-बध नामक प्रथम
को शुभ समाप्ति १ अफजू

भई बधाई। सभ सुखदाई॥ १॥ ३९॥ दुंदभ बाजे। सभ सुर गाजे। करत बडाई। सुमन बखाई॥ २॥ ४०॥ कीनी बहु अरचा। जस धुन चरचा। पाइन लागे। सभ दुख भागे॥ ३॥ ४१॥ गाए जै करखा। पुहपनि बरखा। सीस निवाए। सभ सुख पाए॥ ४॥ ४२॥ ॥ दोहरा॥ लोप चंडका जू भए दै देवन को राजु। बहुर सुंभ नैसुंभ द्वै दैत बडे सिरताज॥ ५॥ ४३॥ ॥ चउपई॥ सुंभ निसुंभ चड़े लैकै दल। अरि अनेक जीते जिन जल थल। देव राज (मू०ग्रं०१०२) को राज छिनावा। शेश मुकुट मन भेट पठावा॥ ६॥ ४४॥ छीन लयो अलकेस भंडारा। देस देस के जीति न्रिपारा। जहाँ तहाँ कह दैत पठाए। देस बिदेस जीत फिर आए॥ ७॥ ४५॥ ॥ दोहरा॥ देव सभै त्रासित भए मन मों कियो बिचार। शरन भवानी की सभै भाजि परे निरधार॥ ८॥ ४६॥ ॥ नराज छंद॥ सु त्रास देव भाजिअं। बसेख लाज लाजिअं। बिसिख कारमं

सबको सुख प्राप्त हुआ और सभी बधाई देने लगे॥ १॥ ३९॥ नगाड़े बजने लगे और देवता गरजने लगे। वे पुष्पवर्षा करके देवी का गुणानुवाद करने लगे॥ २॥ ४०॥ उन्होंने बहुत अर्चना और यशोगान किया। देवी के चरण छूते ही उनके सब दुःख दूर हो गए॥ ३॥ ४१॥ जय-जयकार के छंद गाने लगे तथा फूलों की वर्षा करने लगे। उन्होंने शीश झुकाया और सब सुखों को प्राप्त कर लिया॥ ४॥ ४२॥ ॥ दोहा॥ देवताओं को राज देकर चंडिका लोप हो गई, परन्तु पुनः शुम्भ-निशुम्भ नामक दो दैत्य पैदा हो गए॥ ५॥ ४३॥ ॥ चौपाई॥ शुंभ-निशुंभ ने सेना लेकर चढ़ाई की तथा जल-स्थल पर अनेक शत्रुओं को जीत लिया। देवराज इन्द्र का राज्य छीन लिया और शेषनाग ने उन्हें मणि भेटस्वरूप भेजवा दी॥ ६॥ ४४॥ कुबेर के भण्डार को छीनकर उन्होंने देश-देशान्तरों के राजाओं को जीत लिया। अनेक स्थानों को उन्होंने दैत्यों को भेजा जो देश-विदेशों को जीतकर पुनः वापस लौट आये॥ ७॥ ४५॥ ॥ दोहा॥ देवताओं ने भयभीत होकर मन में विचार किया कि भवानी की शरण ग्रहण की जाय तथा सभी निरालंब होकर देवी की ओर भाग चले॥ ८॥ ४६॥ ॥ नराज छंद॥ डर के मारे देवता भाग रहे हैं और विशेष रूप से लज्जित हो रहे हैं। विष-बुझे बाण, धनुष धारण किए हुए देवी के लोक में सब देवता जा बसे ९ ४७

कसे । सु देवलोक मो बसे ॥ ९ ॥ ४७ ॥ तबै प्रकोप देव ह्वै । चली सु शस्त्र अस्त्र लै । सु मुद पान्न पान कं । गजी क्रिपान पान लै ॥ १० ॥ ४८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ सुणी देव बानी । चढ़ी सिंघ रानी । सुभं शस्त्र धारे । सभं पाप टारे ॥ ११ ॥ ४९ ॥ करे नद्द नादं । महाँ मद्द मादं । भयो संख शोरं । सुन्यो चार ओरं ॥ १२ ॥ ५० ॥ उते दैत धाए । बडी सैन ल्याए । मुखं रकत नैणं । बकै बंक बैणं ॥ १३ ॥ ५१ ॥ चवं चार ढूके । मुखं मार कूके । लए बाण पाणं । सु काती क्रिपाणं ॥ १४ ॥ ५२ ॥ मंडे मद्ध जंगं । प्रहारं खतंगं । करउती कटारं । उठी शस्त्र झारं ॥ १५ ॥ ५३ ॥ महाँबीर ढाए । सरोघं चलाए । करैं वार वैरी । फिरे ज्यों गँगैरी ॥ १६ ॥ ५४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ क्रोधतसटायं उते सिंघ धायो । इते संख लै हाथ देवी बजायो । पुरी चउदहूयं रह्यो नाद पूरं । चमक्क्यो मुखं जुद्ध के मद्धि नूरं ॥ १७ ॥ ५५ ॥ तबै धूम्र

जब देवी ने यह देखा तो वह अत्यन्त कुपित हुई और अस्त्र-शस्त्र धारण कर चल पड़ी। अत्यन्त प्रसन्न होकर हाथ में कृपाण लेकर वह गरज उठी ॥ १० ॥ ४८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ देवताओं की बातें सुनकर देवी सिंह पर सवार हुई। उसने पापों को काटनेवाले शुभ शस्त्र धारण कर लिये ॥ ११ ॥ ४९ ॥ महा मदमस्त करनेवाले नगाड़ों का नाद होने लगा तथा शंखों की ध्वनि भी चारों ओर सुनाई देने लगी ॥१२॥५०॥ उधर से दैत्य विशाल सेना के साथ आगे बढ़े और अपनी लाल आँखों और मुखों से विभिन्न बकवाद करने लगे ॥ १३ ॥ ५१ ॥ चारों ओर से शूरवीर पास आकर 'मार-मार' पुकार रहे हैं। उनके हाथों में बाण, कटारी और कृपाणें पकड़ी हुई हैं ॥ १४ ॥ ५२ ॥ उन्होंने घनघोर युद्ध का मंडन कर बाणों से प्रहार शुरू कर दिए हैं। कटार, कृपाण एवं शस्त्रों की वर्षा प्रारम्भ हो उठी है ॥ १५ ॥ ५३ ॥ महाबली आगे बढ़े हैं और उन्होंने बाण-प्रहार प्रारम्भ कर दिए हैं। शत्रुओं के वार ऐसे चल रहे हैं, मानो पक्षी जल पर मछली पकड़ने के लिए झपट रहे हों ॥ १६ ॥ ५४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ उधर क्रोधित होकर सिंह आगे की ओर दौड़ा, इधर देवी ने हाथ में शंख लेकर शंखनाद किया जो चौदह भुवनों में गुंजायमान हो उठा। युद्धस्थल में वीरों के मुख से तेज टपकने लगा १७ ५५ तभी शस्त्रधारी धूम्रनयन क्रोधित हो युद्ध करने

हन्यो सैन सुद्धं । हन्यो धूम्रनैणं । सुन्यो देव गणं ॥ २५ ॥ ॥ ६३ ॥ ॥ दोहरा ॥ भजी बिरूथन दानवी गई भूप के पास । धूम्रनैण काली हन्यो भजियो सैन निरास ॥ २६ ॥ ६४ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक चंडी चरित्र धूम्रनैण बधह दुतीआ धिआइ संपूरनम सतु सुभम सतु ॥ २ ॥ अफजू ॥

अथ चंड मुंड जुद्ध कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ इह बिध दैत सँघार कर धवला चली अवास । जो यह कथा पड़ै सुनै रिद्धि सिद्धि ग्रिह तास ॥ १ ॥ ६५ ॥ ॥ चउपई ॥ धूम्रनैण जब सुणे सँघारे । चंड मुंड तब भूप हकारे । बहु बिधि कर पठए सनमाना । है गै पति दीए रथ नाना ॥ २ ॥ ६६ ॥ प्रिथम निरखि देवी जे आए । ते धवलागिर ओर पठाए । तिनकी तनक भनक सुनि पाई । निसिरी शस्त्र अस्त्र लै माई ॥ ३ ॥ ६७ ॥ ॥ रुआल छंद ॥ साजि साजि चले तहाँ रण राछसेंद्र अनेक ।

देवताओं ने आकाश में सुन लिया ॥ २५ ॥ ६३ ॥ ॥ दोहा ॥ दैत्य-सेना भाग खड़ी हुई और अपने राजा के पास पहुँची । वहाँ जाकर बताया कि धूम्रनयन को काली ने मार दिया है और सेना निराश होकर भाग खड़ी हुई है ॥ २६ ॥ ६४ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के चंडीचरित्र में धूम्रनयन-वध नामक द्वितीय अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ २ ॥ अफजू ॥

चंड-मुंड-युद्ध-कथन

॥ दोहा ॥ इस प्रकार दैत्यों का संहार करके दुर्गादेवी अपने आवास-स्थान को चली गई । जो भी इस कथा को पढ़ेगा अथवा सुनेगा, ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ उसके घर में निवास करेंगी ॥१॥६५॥ ॥ चौपाई ॥ जब राजा ने सुना कि धूम्रनयन मारा जा चुका है, तो उसने चंड-मुंड को ललकारा । उनका अनेक विधियों से सम्मान कर, उन्हें अश्व, हाथी एवं रथ आदि देकर (युद्ध के लिए) भेज दिया ॥ २ ॥ ६६ ॥ ये पहले ही देवी को देख आए थे, अतः इन्हें कैलास पर्वत (देवी का निवास-स्थान) की ओर भेजा गया । इनके आने की बात सुनते ही देवी शस्त्र धारण कर चल पड़ी ३ ६७ । रुआल छंद अनेक प्रकार के शस्त्रों से

अरध मुंडित मुंडितेक जटा धरे सु अरेक। कोपि ओपं दै सभै कर शस्त्र अस्त्र नचाइ। धाइ धाइ करैं प्रहारनि तिच्छ तेग कँधाइ ॥ ४ ॥ ६८ ॥ शस्त्र अस्त्र लगे जिते सभ फूल माल ह्वै गए। कोप ओप बिलोकि अतिभुत दानवं बिसमै भए। दउर दउर अनेक आयुध फेर फेर प्रहारहीं। जूझ जूझ गिरे अरेक सु मार मार पुकारहीं ॥ ५ ॥ ६९ ॥ रेल रेल चले हएंद्रन पेल पेल गजेंद्र। झेल झेल अनंत आयुध हेल हेल रिपेंद्र। गाहि गाहि फिरे फवज्जन बाहि बाहि खतंग। अंग भंग गिरे कहूँ रण रंग सूर उतंग ॥ ६ ॥ ७० ॥ झार झार फिरे सरोतम डारि झारि क्रिपान। सैल से रण पुंज कुंजर सूर सीस बखान। बक्र नक्र भुजा सु सोभत चक्र से रथ चक्र। केस पास सिबाल सोहत असथ चूर सरक्र ॥७॥७१॥ (मू०ग्रं०१०४) सज्जि सज्जि चले हथिआरन गज्जि गज्जि गजेंद्र। बज्जि

सुसज्जित होकर राक्षसराज चल पड़े हैं। अनेकों सिर आधे मुँड़े, कई के पूरे तथा कितने ही राक्षसों ने जटाएँ धारण कर रखी हैं। वे सभी अत्यन्त क्रोधित होकर शस्त्रों को नचा रहे हैं और दौड़-दौड़कर कृपाणों को चमकाकर तीव्र प्रहार कर रहे हैं ॥ ४ ॥ ६८ ॥ जितने भी अस्त्र-शस्त्र दुर्गा को लगे वे सब फूलमाला बन गए। यह सब देखकर सभी दानव क्रोध एवं आश्चर्य से भर उठे। वे दौड़-दौड़कर विभिन्न शस्त्रों से पुनःपुनः प्रहार कर रहे हैं और 'मारो, मारो' की पुकार के साथ जूझ-जूझकर गिरते चले जा रहे हैं ॥ ५ ॥ ६९ ॥ घुड़सवार अश्वों को धक्का दे-देकर आगे ठेल रहे हैं और गजराज को पीलवान मोड़-मोड़कर आगे बढ़ा रहे हैं। अनंत शस्त्रों की मार को झेलकर शत्रुओं के राजागण आक्रमण कर रहे हैं। सेनाएँ सैनिकों को पैरों-तले कुचल-कुचलकर आगे बढ़कर बाण-वर्षा कर रही हैं। रणस्थल में कई शूरवीर अंगहीन होकर गिर पड़े हैं ॥ ६ ॥ ७० ॥ कहीं उत्तम तीरों की वर्षा हो रही है और कहीं झुंड की झुंड कृपाणें चलती दिखाई दे रही हैं। शिलाओं के समान हाथी दिखाई पड़ रहे हैं और शूरवीरों के सिर बड़े-बड़े पत्थरों के समान दिखाई दे रहे हैं। टेढ़ी नाक और भुजाएँ तथा रथचक्रों के समान चक्र पड़े दिखाई दे रहे हैं। केशराशियों के छितरने से मानो पाश बन गए हों और हड्डियाँ चूर-चूर होकर ऐसे पड़ी हैं, मानो रेत पड़ी हो ॥ ७ ॥ ७१ ॥ वीर हथियारों को सजाकर चले हैं और हाथी चिंघाड़ते हुए चले हैं। विभिन्न प्रकार के बाजों की ध्वनि करते अश्वारोही भाग चले आ

बज्जि सबज्ज बाजन भज्जि भज्जि हएंद्र । मार मार पुकार कै हथिआर हाथ सँभार । धाइ धाइ परे निसाचर बाइ संख अपार ॥ ८ ॥ ७२ ॥ संख गोयम गज्जियं अर सज्जियं रिपराज । भाजि भाजि चले किते तज लाज बीर न्रिलाज । भीम भेरी भुंकिअं अरु धुंकिअं सु निसाण । गाहि गाहि फिरे फवज्जन बाहि बाहि गदाण ॥ ९ ॥ ७३ ॥ बीर कंगने बंधहीं अरु अचछरै सिर तेलु । बीनि बीनि बरे बरंगन डारि डारि फुलेल । घालि घालि बिवान लेगी फेर फेर सु बीर । कूदि कूदि परे तहाँ ते झागि झागि सु तीर ॥ १० ॥ ७४ ॥ हाँकि हाँकि लरे तहाँ रण रीझि रीझि भटेंद्र । जीति जीति लयो जिन्है कई बार इंद्र उपेंद्र । काटि काटि दए कपाली बाँटि बाँटि दिसान । डाटि डाटि करद्दलं सुर पग्गु पब्ब पिसान ॥ ११ ॥ ७५ ॥ धाइ धाइ सँघारिअं रिपु राज बाज अनंत । स्रोन की सरता उठी रण मद्धि रूप दुरंत । बाण अउर कमाण सैहथी सूल तिचछु कुठार । चंड मुंड हने दोऊ कर

रहे हैं । हाथों में शस्त्र सँभालकर वीर 'मार, मार' चिल्ला रहे हैं तथा राक्षस शंखध्वनियाँ करते हुए दौड़-दौड़कर टूट पड़ रहे हैं ॥ ८ ॥ ७२ ॥ शंख एवं रणसिंघे गरज रहे हैं और शत्रुराज युद्ध के लिए सुसज्जित है । कहीं-कहीं कायर लज्जा को त्यागकर भागे भी चले जा रहे हैं । वृहद्काय भेरियों की ध्वनि सुनाई पड़ रही है और ध्वजाएँ फहरा रही हैं । शूरवीर सेनाओं का अपनी गदाओं से मंथन कर रहे हैं ॥ ९ ॥ ७३ ॥ अप्सराएँ श्रृंगार कर वीरों को कंगन भेंट कर रही हैं अर्थात् चुनौती दे रही हैं और योगिनियों ने चुन-चुनकर वीरों का वरण किया है । वे अपने विमानों पर चढ़ाकर वीरों को अपने साथ ले गई हैं । युद्ध के लिए मदमस्त वीर कूद-कूदकर फिर तीरों की मार खाकर नीचे गिर पड़ रहे हैं ॥ १० ॥ ७४ ॥ युद्धस्थल में आवाज़ दे-देकर प्रसन्नतापूर्वक उन वीर राजाओं ने युद्ध किया है, जिन्होंने कई बार इंद्र और उपेन्द्रों को जीत लिया था । कपाली दुर्गा ने इन सबको काट-काटकर विभिन्न दिशाओं में फेंक दिया है और उन राक्षसों का उपर्युक्त हाल किया है, जिन्होंने अपने हाथों-पैरों के बल से पर्वतों को भी पीस दिया था ॥ ११ ॥ ७५ ॥ शत्रु दौड़-दौड़कर अनंत घोड़ों को मारे डाल रहे हैं और युद्धस्थल में भीषण रक्त की नदी बह चली है । तीर-कमान, बरछी, कुल्हाड़ा आदि शस्त्र चल रहे हैं और चंडिका ने अपनी कराल कृपाण से चंड-मुंड का वध कर

कोप काल क्रवार ॥ १२ ॥ ७६ ॥ ॥ दोहरा ॥ चंड मुंड मारे दोऊ काली कोप क्रवार । अउर जिती सैना हुती छिन मो दई सँघार ॥ १३ ॥ ७७ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके चंडी चरित्रे चंड मुंड बधह् जितीयो धिआइ संपूरणम सतु सुभम सतु ॥ ३ ॥ अफजू ॥

अथ रकतबीरज जुद्ध कथनं ॥

॥ सोरठा ॥ सुनी भूप इम गाथ चंड मुंड काली हने । बैठ भ्रात सों भ्रात मंत्र करत इह बिध भए ॥ १ ॥ ७८ ॥ ॥ चउपई ॥ रकतबीज तब भूप बुलायो । अमित दरबु दै तहाँ पठायो । बहु बिध दई बिरूथन संगा । है गै रथ पैदल चतुरंगा ॥ २ ॥ ७९ ॥ रकतबीज दै चल्यो नगारा । देव लोग लउ सुनी पुकारा । कंपी भूम गगन थहराना । देवन जुति दिवराज डराना ॥ ३ ॥ ८० ॥ धवलागिर के जब तट आए । दुंदभ ढोल म्रिदंग बजाए । जब ही सुना कुलाहल

दिया है ॥ १२ ॥ ७६ ॥ ॥ दोहा ॥ काली ने अपनी कृपाण से कुपित होकर चंड-मुंड दोनों को मार दिया तथा बाक़ी जितनी सेना थी उसका भी क्षण भर में संहार कर दिया ॥ १३ ॥ ७७ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के चंडीचरित्र में चंड-मुंड-वध नामक तीसरे अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ ३ ॥ अफजू ॥

रक्तबीज-युद्ध-कथन

॥ सोरठा ॥ जब राजा शुंभ ने यह सुना कि काली ने चंड एवं मुंड का वध कर दिया है, तब दोनों भाई (शुंभ एवं निशुंभ) बैठकर विचार-विमर्श करने लगे ॥ १ ॥ ७८ ॥ ॥ चौपई ॥ राजा ने तब रक्तबीज को बुलाकर उसे अपरिमित द्रव्य, विशाल सेना तथा गज, अश्व एवं पैदल सिपाही देकर विदा किया ॥ २ ॥ ७९ ॥ रक्तबीज नगाड़े बजाता हुआ चला और नगाड़ों की यह ध्वनि देवलोक तक सुनाई पड़ने लगी । भूमि काँपने लगी, व्योममण्डल भयभीत हो उठा तथा देवताओं समेत देवराज इन्द्र भी आतंकित हो उठा ॥ ३ ॥ ८० ॥ जब वे धवलागिरि (कैलास) के पास आए तो दुंदुभियाँ और नगाड़े ज़ोर-ज़ोर से बजाने लगे देवी ने जब दैत्यों का कोलाहल सुना तो नाना प्रकार के शस्त्र लेकर वह

काला। उतरी शस्त्र अस्त्र लै नाना॥ ४॥ ८१॥ ढहकर लाइ (मू०ग्रं०१०५) बरखियं बाणं। बाज राज अरु गिरे किकाणं। ढहि ढहि परे सुभट सिरदारा। जनु कर कटे बिरछ सँग आरा॥ ५॥ ८२॥ जे जे शत्रु सामुहे भए। बहुर जिअत घिह को नहो गए। जिह पर परत भई तरवारा। इकि इकि तें भए दो दो चारा॥ ६॥ ८३॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद॥ झिमी तेज तेगं सु रोसं प्रहारं। खिमी दामनी जाण भादो मझारं। उठे नद्द नादं कड़क्के कमाणं। मच्यो लोह क्रोहं अभूतं भयाणं॥ ७॥ ८४॥ बजे भेर भेरी जुझारे झणंके। परी कुट्ट कुट्टं लगे धीर धक्के। चवी चावडीयं नफीरं रणंकं। मनो बिचरं बाघ बंके बबक्कं॥ ८॥ ८५॥ उते कोपियंग स्रोण बिंदं सु बीरं। प्रहारे भली भाँत सों आन तीरं। उते दउर देवी कर्यो खग्ग घातं। गिर्यो मूरछा ह्वै भयो जानु घातं॥ ९॥ ८६॥ छुटी मूरछायं महाँ बीर गज्ज्यो। घरी चार लउ सार सों सार बज्ज्यो। लगे बाण

नीचे उतरी॥ ४॥ ८१॥ उसने मूसलाधार बाण-वर्षा शुरू कर दी। जिससे घुड़सवार एवं घोड़े धराशायी हो गए। अनेकों बड़े-बड़े वीर ऐसे गिरने लगे जैसे आरा से कटे हुए वृक्ष गिरते जाते हैं॥ ५॥ ८२॥ जो-जो शत्रु (देवी के) सामने आया वह जीवित वापस नहीं जा सका। जिस पर भी तलवार पड़ी, वह एक से दो तथा दो से चार टुकड़ों में कट गया॥ ६॥ ८३॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद॥ क्रोध से युक्त होकर जब कृपाण द्वारा 'झम' की ध्वनि करता हुआ प्रहार किया गया है, तो वह ऐसा लगता है मानों भादों मास की घटा की बिजली हो। धनुषों के कड़कने से तेजी से बहते पानी की ध्वनि पैदा हो रही है और युद्धस्थल में अभूतपूर्व लौह-संघर्ष मचा हुआ है॥ ७॥ ८४॥ भेरियों के स्वर के साथ जुझारू वीर शस्त्र चमका रहे हैं और कट-कुट की ध्वनियों के बीच बड़े-बड़े धैर्यवान वीर भी धक्के खा रहे हैं। मैदान में चीलें घूम रही हैं और भेरियों की घनघोर ध्वनि ऐसी लग रही है, मानो वन में विचरण करता हुआ शेर दहाड़ रहा हो॥ ८॥ ८५॥ उधर रक्तबीज ने कुपित होकर भली प्रकार बाण-वर्षा की; इधर दौड़कर देवी ने उस पर खड्ग से आघात किया, जिससे वह ऐसे मूर्च्छित होकर गिर पड़ा जैसे मर ही गया हो॥ ९॥ ८६॥ मूर्च्छा टूटने पर वह वीर फिर गर्जने लगा तथा चार घड़ी तक युद्धस्थल में लोहे से लोहा बजता रहा। रक्तबीज बाणों की मार

भूत प्रेतं ॥ २६ ॥ १०३ ॥ नचे मासहारी । हसे ब्योमचारी । किलक्कार कंकं । मचे बीर बंकं ॥ २७ ॥ १०४ ॥ छुटे छत्रधारी । महिखुआस चारी । उठ छिच्छ इच्छं । चले तीर तिच्छं ॥ २८ ॥ १०५ ॥ गणं गांध्रबेयं । चरं चारणेयं । हसे सिध सिद्धं । मचे बीर क्रुद्धं ॥ २९ ॥ १०६ ॥ डका डक्क डाकैं । हका हक्क हाकैं । भका भुंक भेरी । डमक डाम डेरी ॥ ३० ॥ १०७ ॥ महाँ बीर गाजे । नवं नाद बाजे । धरा गोम गज्जे । द्रगा दैंत बज्जे ॥ ३१ ॥ १०८ ॥ ॥ बिजे छंद ॥ जेतक बाण चले अरि ओर ते फूल की माल ह्वै कंठ बिराजे । दानव कुंगध पेख अचंभव छोड भजे रण एक न गाजे । कुंजर पुंज गिरे तिह ठउर भरे सभ स्रोनत पै गन ताजे । जानुक बीरध मद्धि छपे भ्रमि भूधर के भय ते नग भाजे ॥ ३२ ॥ १०९ ॥ ॥ मनोहर छंद ॥ स्री जगनाथ कमान लै हाथ प्रमाथिन संख सज्यो जब जुद्धं । गाहत सैन सँघारत

शूरवीर शत्रुता में लिप्त होकर एक-दूसरे से हथियारों समेत भिड़े हुए हैं और युद्धस्थल में इन वीरों को देखकर भूत-प्रेतादि नृत्य कर रहे हैं ॥ २६ ॥ १०३ ॥ मांसाहारी जीव प्रसन्नता से नाच रहे हैं और गिद्ध आदि पक्षी मुस्कुरा रहे हैं । इधर बाँके वीर किलकारियाँ मारते हुए युद्ध में लगे हुए हैं ॥ २७ ॥ १०४ ॥ अनेकों छत्रधारी बड़े-बड़े धनुषों को हाथ में लेकर अत्यन्त क्रोधित हो रहे हैं । उनके अन्दर से जीत की तीव्र इच्छा उठ रही है और वे तेज़ बाणों को चला रहे हैं ॥ २८ ॥ १०५ ॥ गण, गन्धर्व एवं स्तुति करनेवाले चारण प्रसन्न हैं तथा इन वीरों के क्रुद्ध युद्ध को देखकर ज्ञानी सिद्ध भी मुस्करा रहे हैं ॥ २९ ॥ १०६ ॥ डाकिनियाँ डकार ले रही है और चारों तरफ़ चीख-पुकार मची हुई है । भकभक एवं डमडम की ध्वनि सुनाई पड़ रही है ॥ ३० ॥ १०७ ॥ शूरवीरों के गर्जन के साथ ऐसा लगता है, मानो भयंकर नाद करनेवाले बाजे बज रहे हैं । धरती पर भेरियों के स्वर गरज रहे हैं और दुर्गा तथा दैत्य एक-दूसरे की ओर भाग रहे हैं ॥ ३१ ॥ १०८ ॥ ॥ बिजे छंद ॥ जितने भी बाण शत्रुओं की ओर से चलते हैं, वे दुर्गा के गले में फूलों की माला बनकर आ बिराजमान होते हैं । दानवों की सेना इस आश्चर्य को देखकर अपनी गर्जनाओं को त्यागकर रणस्थल से भाग खड़ी हुई है । उस स्थल पर हाथियों के झुण्ड गिरकर लोहू से सने हुए हैं और घोड़े ऐसे रक्त-रंजित हो रहे हैं, जैसे पर्वत इन्द्र से डरकर समुद्र में आ छिपे हों ॥ ३२ ॥ १०९ ॥ । मनोहर छन्द जगत्माता दुर्गा ने हाथ में धनुष लेकर और शंख

सूर बबकति सिंघ भ्रम्यो रण क्रुद्धं। कउचह भेद अभेदित अंग सु रंग उतंग सो सोभित सुद्धं। मानो बिसाल बड़वानल ज्वाल समुंद्र के मद्धि बिराजत उद्धं॥ ३३ ॥ ११० ॥ ॥ बिजे छंद ॥ पूर रही भव भूर धनुर धुनि धूर उडी नभमंडल छायो। नूर भरे मुख मार गिरे रण हूरन हेर हियो हुलसायो। पूरण रोस भरे अर तूरण पूरि परे रण भूमि सुहायो। चूर भए अरि रूरे गिरे भट चूरण जानुक बैद बनायो ॥ ३४ ॥ १११ ॥ ॥ संगीत भुजंग प्रयात छंद ॥ कागड़दंग काती कटारी कड़ाकं। तागड़ (मू०ग्रं०१०७) दंग तीरं तुपक्कं तड़ाकं। झागड़दंग नागड़दंग बागड़दंग बाजे। गागड़दंग गाजी महाँ गज्ज गाजे ॥ ३५ ॥ ११२ ॥ सागड़दंग सूरं कागड़दंग कोपं। पागड़दंग परमं रणं पाव रोपं। सागड़दंग शस्त्रं झागड़दंग झारैं। बागड़दंग बीरं डागड़दंग डकारैं॥ ३६ ॥ ११३ ॥ चागड़दंग चउपे बागड़दंग बीरं। मागड़दंग मारे तनो तिच्छ

बजाकर जब युद्ध किया है तो उनका सिंह भी शत्रुदल का मंथन कर उसका सहार करता हुआ रण में क्रोधित होकर चल पड़ा है। जो कवच शरीर पर शोभायमान हैं, उनको सिंह अपने नखों से फाड़ता चला जा रहा है और वे फटे हुए अंग इस प्रकार लग रहे हैं, मानो समुद्र में बड़वानल की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी हो ॥ ३३ ॥ ११० ॥ ॥ बिजे छंद ॥ धनुष की ध्वनि सारे विश्व में व्याप्त हो गई है और रणस्थल की धूल उड़कर सम्पूर्ण नभमण्डल पर छा गई है। तेजस्वी चेहरे मार खाकर गिर पड़े है और उन्हें देखकर योगिनियों का हृदय उल्लसित हो उठा है। अत्यन्त क्रोधित होनेवाले शत्रुओं के दल सम्पूर्ण रणभूमि पर शोभायमान हैं तथा सुन्दर नवयुवक शूरवीर खण्ड-खण्ड होकर इस प्रकार गिर रहे हैं, मानो वैद्य ने मिट्टी को पीसकर चूर्ण तैयार किया हो ॥३४॥१११॥ ॥ संगीत भुजंग प्रयात छंद ॥ कटारियों के कड़कड़ की ध्वनि और तीरों-तोपों की तड़तड़ की ध्वनि सुनाई दे रही है। अन्य बाजों की दगड़-दगड़ ध्वनि के साथ शूरवीर गर्जना कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ ११२ ॥ सनसनाते हुए शूरवीर गुस्से से कड़क रहे हैं तथा शस्त्रों की सायँ-सायँ के बीच रणस्थल में पैर जमाये हुए हैं। शस्त्रों की वर्षा हो रही है और ललकारकर शूरवीर दूसरों को मार रहे हैं और डकार रहे हैं ॥ ३६ ॥ ११३ ॥ प्रसन्न मन से शूरवीर एक-दूसरे को ललकारते हुए एक-दूसरे के तन पर तीखे बाण मार रहे हैं की गहरी ध्वनि के साथ वीर गरज रहे हैं और

तीरं । गागड़दंग गज्जे सु बज्जे गहीरं । कागड़दंग कवियान कत्थे कथीरं ॥ ३७ ॥ ११४ ॥ दागड़दंग दानो भागड़दंग भाजे । गागड़दंग गाजी जागड़दंग गाजे । छागड़दंग छुही छुरे प्रेछड़ाके । तागड़दंग तीरं तुपकं तड़ाके ॥ ३८ ॥ ११५ ॥ गागड़दंग गोमाय गज्जे गहीरं । सागड़दंग संखं नागड़दंग नफीरं । बागड़दंग बाजे बजे बीर खेतं । नागड़दंग नाचे सु भूतं परेतं ॥ ३९ ॥ ११६ ॥ तागड़दंग तीरं बागड़दंग बाणं । कागड़दंग काती कटारी क्रिपाणं । नागड़दंग नादं बागड़दंग बाजे । सागड़दंग सूरं रागड़दंग राजे ॥ ४० ॥ ११७ ॥ सागड़दंग संखं नागड़दंग नफीरं । गागड़दंग गोमाय गज्जे गहीरं । नागड़दंग नगारे बागड़दंग बाजे । जागड़दंग जोधा गागड़दंग गाजे ॥ ४१ ॥ ११८ ॥ ॥ नराज छंद ॥ जितेक रूप धारियं । तितेक देबि मारियं । जितेक रूप धारहीं । तित्यो दुगा संघारहीं ॥ ४२ ॥ ११९ ॥ जितेक शस्त्र वा झरे । प्रवाह स्रोन के परे । जितो कि बिंदुका गिरें । सु पान कालका करें ॥ ४३ ॥ १२० ॥ ॥ रसावल छंद ॥ हुओ स्रोण हीनं ।

कवियों ने कड़कड़ानेवाले छंदों में इनका वर्णन किया है ॥ ३७ ॥ ११४ ॥ दनदनाते हुए दानव भगदड़ मचाकर भाग खड़े हुए हैं । गड़गड़ाहट करने वाले योद्धा गरज रहे हैं तथा छुरी-छुरे आदि शस्त्रों की छनछनाहट की वर्षा हो रही है । युद्धस्थल में तीरों और तोपों की तड़तड़ाहट भी सुनाई पड़ रही है ॥३८॥११५॥ रणभेरियों की गम्भीर गर्जना, शंखों एवं नौबत की ध्वनि चल रही है । वीरों के बाजे युद्धस्थल में बज रहे हैं और भूत-प्रेतादि धड़धड़ाते हुए नंगे नृत्य कर रहे हैं ॥ ३९ ॥ ११६ ॥ तीरों और बाणों के तड़तड़ के बोल तथा कृपाणों और कटारों के कड़कड़ के बोल सुनाई दे रहे हैं । बाजों की और नगाड़ों की नगड़-नगड़ और दगड़-दगड़ सुनाई दे रही है तथा शूरवीर इन ध्वनियों के बीच शोभायमान हो रहे हैं ॥ ४० ॥ ११७ ॥ शंखों की सायँ-सायँ की आवाज हुई, तूतियों की ध्वनि हुई तथा भेरियाँ गूँज उठीं । नगाड़े और बाजे बज उठे तथा घनघोर गर्जन के साथ योद्धागण ललकारने लगे ॥ ४१ ॥ ११८ ॥ ॥ नराज छंद ॥ असुर जितने भी रूप धारण करते हैं, देवी उन सबों को मार देती हैं । वे जितने भी और रूप धारण करेंगे, दुर्गा उनका भी संहार करेगी ॥ ४२ ॥ ११९ ॥ शस्त्र की वर्षा होकर जितने रक्त के प्रवाह बने और रक्त की बूंद गिरीं, कालिका वह सब पीती जाती

भयो अंग छीनं । गिर्यो अंत झूमं । मनो मेघ भूमं ॥४४॥१२१॥ सभै देव हरखे । सुमन धार बरखे । रकतबिंद मारे । सभै संत उबारे ॥ ४५ ॥ १२२ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके चंडी चरित्रे रकतबीरज बधह चतुरथ धिआइ संपूरणम सतु सुभम सतु ॥ ४ ॥ अफजू ॥

अथ निसुंभ जुद्ध कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ सुंभ निसुंभ सुण्यो जबै रकतबीज को नास । आप चड़त भे जोर रल सजे परस अर (मू०ग्रं०१०८) **पासि ॥ १ ॥ १२३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ चड़े सुंभ नैसुंभ सूरा अपारं । उठे नद्द नादं सु धउसा धुकारं । भई अष्ट सै कोस लउ छत्र छायं । भजे चंद सूरं डर्यो देवरायं ॥२॥१२४॥ भका भुंक भेरी ढका ढुंक ढोलं । फटो नख सिंघं मुखं डड्ढ कोलं । डमा डंमि डउरू डका डुंक डंकं । रड़े ग्रिद्ध ब्रिद्धं किलक्कार**

है ॥ ४३ ॥ १२० ॥ ॥ रसावल छंद ॥ (रक्तबीज) रक्तहीन हो गया और उसके अंग क्षीण हो गए । वह झूमकर इस प्रकार धरती पर आ गिरा, मानो बादल भूमि पर आ ठहरा हो ॥ ४४ ॥ १२१ ॥ (उसे गिरते देखकर) देवता प्रसन्न हुए और उन्होंने फूलों की वर्षा की । देवी ने रक्तबीज को मारकर इस प्रकार सभी सन्तों का उद्धार किया ॥४५॥१२२॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के चण्डी-चरित्र में रक्तबीज-वध नामक चौथे अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ ४ ॥ अफजू ॥

निशुम्भ-युद्ध-कथन

॥ दोहा ॥ शुम्भ-निशुम्भ ने जब रक्तबीज के नष्ट होने की बात सुनी तो पूर्ण दलबल-सहित कुल्हाड़े एवं फाँसों आदि को लेकर वे स्वयं युद्ध करने के लिए चल पड़े ॥ १ ॥ १२३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ महान शूरवीर शुम्भ-निशुम्भ ने चढ़ाई की और नगाड़ों तथा अन्य बाजों की ध्वनि गूँज उठी । आठ सौ कोस तक छत्रों की छाया हो गई और इसे देखकर चाँद-सूरज भाग खड़े हुए तथा देवराज इन्द्र आतंकित हो उठे ॥ २ ॥ १२४ ॥ भेरियाँ भायँ-भायँ और ढोल ढायँ-ढायँ बोलने लगे । शेर की दहाड़ और नाखूनों के प्रहार से धरती फट गई । नगाड़े और डमरुओं की आवाज सुनाई पड़ रही है और वृद्ध-वृद्ध गिद्ध एवं

कंकं ॥ ३ ॥ १२५ ॥ खुरं खेह उट्ठी रह्यो गैन पूरं । हले सिंध बिद्धं भए पब्ब चूरं । सुणे शोर काली गहे शस्त्र पाणं । किलंकार जेसी हने जंग जुआणं ॥ ४ ॥ १२६ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ गजे बीर गाजी । तुरे तुंद ताजी । महिखुआस करखे । सरंधार बरखे ॥ ५ ॥ १२७ ॥ इतै सिंध गज्ज्यो । महा संख बज्ज्यो । रह्यो नाद पूरं । छुही गैणि धूरं ॥६॥१२८॥ सभै शस्त्र साजे । घणं जेम गाजे । चले तेज लैकै । अनंत शस्त्र लैकै ॥ ७ ॥ १२९ ॥ चहूँ ओर ढूके । मुखं मार कूके । अनंत शस्त्र बज्जे । महाँ बीर गज्जे ॥ ८ ॥ १३० ॥ मुखं नैण रक्तं । धरे पाण शक्तं । किए क्रोध उट्ठे । सरं ब्रिशटि बुट्ठे ॥ ९ ॥ १३१ ॥ किते दुष्ट कूटे । अनंतास्त्र छूटे । करी बाण बरखं । भरी देबि हरखं ॥ १० ॥ १३२ ॥ ॥ बेली बिद्रम छंद ॥ कह कह सु कूकत कंकियं । बहि बहत बीर सु बंकियं । लह लहत बाणि क्रिपाणयं । गह गहत प्रेत

कौवे किलकारियाँ मारते हुए चले आ रहे हैं ॥ ३ ॥ १२५ ॥ पशुओं के खुरों से जो धूल उठी है, उससे आकाश भर गया है और इन पशुओं ने विन्ध्याचल पर्वत एवं समुद्र को भी चूर-चूर कर दिया है। कोलाहल को सुनकर काली ने हाथों में शस्त्र धारण किए जिन्हें देखकर युद्ध में मांस-भक्षी चील, गिद्ध आदि प्रसन्न हो उठे हैं और कई शूरवीर धराशायी हो गए हैं ॥ ४ ॥ १२६ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ शूरवीर गरज रहे हैं और घोड़े दौड़ रहे हैं। धनुष ताने जा रहे हैं और बाण-वर्षा हो रही है ॥ ५ ॥ १२७ ॥ इधर से सिंह गरजा है, शंख बजा है, जिसकी ध्वनि सब तरफ़ व्याप्त हो गई है। युद्धस्थल से उड़ी धूल से आकाश भर गया है ॥ ६ ॥ १२८ ॥ वीर शस्त्रों को सजाकर, घन गर्जन करते हुए तेजस्वी स्वरूपों में अनंत शस्त्र लेकर चल पड़े हैं ॥ ७ ॥ १२९ ॥ चारों ओर से वीर पास-पास आकर 'मारो, मारो' की कूक-पुकार लगा रहे हैं। युद्धस्थल में वीर गरज रहे हैं और शस्त्रों की टकराहट की ध्वनि सुनाई पड़ रही है ॥ ८ ॥ १३० ॥ हाथों में शक्तियों को पकड़े उनके मुख एवं आँखें लाल हो उठी हैं। वे क्रोधित होकर चल पड़े हैं और बाण-वर्षा हो उठी है ॥ ९ ॥ १३१ ॥ बहुत से दुष्ट मारे जा चुकने के फलस्वरूप अनन्त अस्त्र इधर-उधर बिखरे छूटे पड़े हैं। देवी ने हर्षित हो भीषण बाण-वर्षा की ॥ १० ॥ १३२ ॥ ॥ बेली बिद्रम छंद ॥ कौवे काँव-काँव कर रहे हैं और बाँके वीरों का रक्त बह रहा है। बाण-कृपाण लहलहा कर चल रहे हैं और भूत प्रेत आगे बढकर मृतकों को खाने के लिए

मसाणयं ॥ ११ ॥ १३३ ॥ डह डहत डवर डमंकयं । लह लहत तेग त्रमंकयं । धम धमत सांग धमंकयं । बबकंत बीर सुबंकयं ॥ १२ ॥ १३४ ॥ छुटकंत बाण कमाणयं । हहरंत खेत खत्राणयं । डहकंत डामर डंकणी । कह कहक कूकत जुगणी ॥ १३ ॥ १३५ ॥ उफटंत स्रोणत छिच्छयं । बरखत साइक तिच्छयं । बबकंत बीर अनेकयं । फिकरंत स्यार बसेखयं ॥ १४ ॥ १३६ ॥ हरखंत स्रोणत रंगणी । बिहरंत देबि अभंगणी । बबकंत केहर डोलहीं । रण रंग अभग कलोलहीं ॥ १५ ॥ १३७ ॥ ढम ढमत ढोल ढमक्कयं । धम धमत सांग धमक्कयं । बह बहत क्रुद्ध क्रिपाणयं । जुज्झंत जोध जुआणयं ॥ १६ ॥ १३८ ॥ ॥ दोहरा ॥ भजी चमूँ सभ (मू०ग्रं०१०६) दानवी सुंभ निरख निज नैण । निकट बिकट भट जे हुते तिन प्रति बोल्यो बैण ॥ १७ ॥ १३९ ॥ ॥ निराज छंद ॥ निसुंभ सुभ कोप कै । पठ्यो सु पाव रोप कै । कह्यो कि शीघ्र जाइयो । द्रुगाहि बाँध ल्याइयो ॥ १८ ॥ १४० ॥ चड़्यो सु सैण सज्जिकै । सरोप सूर गज्जिकै । उठे बजंत्र बाजिकै । चल्यो सुरेश भाजिकै ॥ १९ ॥ १४१ ॥ अनंत

पकड़ रहे हैं ॥ ११ ॥ १३३ ॥ डमरू डमडमा रहे हैं और कृपाणें चमचमा रही हैं । बरछियों की धम-धम आवाज और वीरों की घनघोर दहाड़ें सुनाई पड़ रही हैं ॥ १२ ॥ १३४ ॥ कमानों से छूटते हुए बाण युद्ध-स्थल में वीरों को हैरानी में डाल जाते हैं । डमरू की ध्वनि से डाकिनियाँ डर रही हैं और योगिनियाँ घूमती हुई कहकहे लगा रही हैं ॥१३॥१३५॥ तीव्र बाणों की वर्षा से रक्त के छींटे उड़ रहे हैं । अनेकों वीर गरज रहे हैं और गीदड़ विशेष रूप से प्रसन्न होकर चिल्ला रहे हैं ॥ १४ ॥ १३६ ॥ रक्तरंजित अविनाशी दुर्गा प्रसन्न होकर विचरण कर रही है । दहाड़ता हुआ सिंह दौड़ रहा है, रणस्थल में यही खेल चल रहा है ॥ १५ ॥ १३७ ॥ ढोल ढमढमा रहे हैं और बरछियों की धमाधम आवाज आ रही है । जूझते हुए योद्धा क्रुद्ध होकर कृपाणें चला रहे हैं ॥ १६ ॥ १३८ ॥ ॥ दोहा ॥ शुंभ ने भाग चुकी दानव-सेना को स्वयं देखकर अपने पास वाले शक्तिशाली सैनिकों से कहा ॥१७॥१३९॥ ॥ निराज छंद ॥ धरती पर पैर पटक के शुंभ ने निशुंभ को भेजा और कहा कि शीघ्र जाओ और दुर्गा को बाँधकर ले आओ ॥ १८ ॥ १४० ॥ वह क्रोधित हो गर्जना करता हुआ सेना से सुसज्जित हो चल पड़ा । नगाड़े बज उठे और

सूर संग लै। चल्यो सु दुंदभीन दै। हकार सूरमा भरे। बिलोक देवता डरे ॥ २० ॥ १४२ ॥ ॥ मधुभार छंद ॥ कंप्यो सुरेश। बुल्ल्यो महेश। किन्नो बिचार। पुच्छे जुझार ॥ २१ ॥ १४३ ॥ कीजै सु मित्र। कउनै चरित्र। जाते सु माइ। जीतैं बनाइ ॥ २२ ॥ १४४ ॥ शकतै निकार। भेजो अपार। शत्रून जाइ। हनिहैं रिसाइ ॥ २३ ॥ १४५ ॥ सोइ काम कीन। देवन प्रबीन। शकतै निकार। भेजी अपार ॥ २४ ॥ १४६ ॥

बिरध निराज छंद ॥

चली शकत्त शीघ्र सी क्रिपाणि पाणि धारकै। उठे सु ग्रिद्ध ब्रिद्ध डउर डाकणी डकार कै। हसे सु कंक बंकयं कबंध अंध उट्ठही। बिसेख देवतारु बीर बाण धार बुट्ठही ॥२५॥१४७॥ ॥ रसावल छंद ॥ सभै शकत ऐकै। चली सीस न्यैकै। महाँ अस्त्र धारे। महाँ बीर मारे ॥ २६ ॥ १४८ ॥ मुखं रकत

ध्वनि सुन इंद्र भाग खड़ा हुआ ॥ १९ ॥ १४१ ॥ अनंत शूरमाओं को साथ ले दुंदुभि बजाता हुआ वह चला। उसने (इतने) शूरवीरों को पुकार कर इकट्ठा कर लिया कि उन्हे देखकर देवता भयभीत हो उठे ॥ २० ॥ १४२ ॥ ॥ मधुभार छंद ॥ इंद्र काँप उठा और शिव के पास जा अपनी व्यथा सुनाई। वहाँ विचार विमर्श किया तो महेश ने उन्हें पूछा कि तुम्हारे पास कितने शूरवीर हैं ? ॥ २१ ॥ १४३ ॥ किसी भी प्रकार से अपने (राग-द्वेष समाप्त कर) सबको मित्र बना लो ताकि जगत्माता की जीत सुनिश्चित हो जाय ॥ २२ ॥ १४४ ॥ अपनी अपार शक्तियों को निकाल लो और युद्ध में भेज दो ताकि वे शत्रुओं के समक्ष जाकर क्रुद्ध होकर उनका हनन करे ॥ २३ ॥ १४५ ॥ चतुर देवताओं ने वैसा ही किया तथा अपनी अगणित शक्तियों को निकालकर (युद्ध-स्थल की ओर) भेज दिया ॥ २४ ॥ १४६ ॥

॥ बिरध निराज छंद ॥ शीघ्र ही शक्तियों के कृपाणें धारण कर युद्ध की ओर प्रस्थान किया तथा उनके चलते ही बड़े-बड़े गिद्ध एवं डाकिनियाँ डकारती हुई दौड़ पड़ीं। कौवे मुस्कुरा उठे तथा अंधे कबंध भी चल दिए। इधर देवता एवं अन्य वीर बाण-वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥ १४७ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ सभी शक्तियाँ आयीं और शीश नवाकर चली गयीं उन्होने विकराल अस्त्रों को धारण

नैणं । बकै बंक बैणं । धरे अस्त्र पाणं । कटारी क्रिपाणं ॥ २७ ॥ १४९ ॥ उतै दैत गाजे । तुरी नाद बाजे । धरे चार चरमं । सजे क्रूर बरमं ॥ २८ ॥ १५० ॥ चहूं ओर गरजे । सभै देव लरजे । छुटे तिच्छ तीरं । कटे चउर चीरं ॥ २९ ॥ १५१ ॥ रसं रुद्र रत्ते । महां तेज तत्ते । करी बाण बरखं । भरी देबि हरखं ॥ ३० ॥ १५२ ॥ इतै देबि मारै । उतै सिंघु फारै । गणं गूड़ गरजैं । सभै दैत लरजैं ॥ ३१ ॥ १५३ ॥ भई बाण बरखा । गए जीति करखा । सभै दुष्ट मारे । मइया संत उबारे ॥ ३२ ॥ १५४ ॥ निसुंभं संघार्यो । दलं दैत मार्यो । सभै दुष्ट भाजे । इतै सिंघ गाजे ॥ ३३ ॥ १५५ ॥ भई पुहप बरखा । (मू०ग्रं०११०) गए जीत करखा । जयं संत जंपै । त्रसे दैत कंपै ॥३४॥१५६॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके चंडी चरित्रे निसुंभ बधह पंचमो धिआइ संपूरनम सतु सुभम सतु ॥ ५ ॥ अफजू ॥

कर कई महाबलियों को मार दिया ॥ २६ ॥ १४८ ॥ उनके मुख और आँखों से खून उतर रहा है और वे ललकार वाले वचनों का उच्चारण कर रही हैं । उनके हाथों में अस्त्र, कटार, कृपाण आदि शोभायमान हो रहे हैं ॥ २७ ॥ १४९ ॥ उधर से बीहड़ नाद करते हुए दैत्य गरज रहे हैं और हाथों से सुंदर ढालें पकड़कर विकराल लौहकवच धारण कर लिये हैं ॥ २८ ॥ १५० ॥ वे चारों ओर गरजने लगे और उनकी आवाज सुनकर देवगण आतंकित होने लगे । तीखे तीर छूटने लगे तथा युद्धस्थल में चँवर एवं वस्त्र काटे जाने लगे ॥ २९ ॥ १५१ ॥ रौद्र-रस में मदमस्त वीर अत्यन्त तेजस्वी दिखाई दे रहे हैं । देवी दुर्गा ने हर्षित होकर बाणों की वर्षा शुरू कर दी है ॥ ३० ॥ १५२ ॥ इधर देवी मारती जा रही है, उधर सिंह सबको फाड़ता चला जा रहा है । शिव के गणों की गर्जना को सुनकर दैत्य भयभीत हो उठे हैं ॥ ३१ ॥ १५३ ॥ बाणों की वर्षा हुई और उसमें देवी की जीत हुई । देवी द्वारा सभी दुष्ट मारे गए तथा माता ने संतों का उद्धार कर दिया ॥ ३२ ॥ १५४ ॥ देवी ने निशुंभ का संहार कर दिया और दैत्यों के दल को नष्ट कर दिया । इधर शेर गरजा और उधर सभी दुष्ट भाग खड़े हुए ॥ ३३ ॥ १५५ ॥ देव-सेना की जीत पर पुष्प-वर्षा होने लगी । संत जय-जयकार करने लगे और दैत्य भय से आतंकित हो उठे ॥ ३४ ॥ १५६ ॥

इति श्री बचित्र नाटक में चंडीचरित्र के निशुंभ-वध नामक पाँचवें अध्याय की शुभ समाप्ति ५ अफजू

अथ सुंभ जुद्ध कथनं ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥

लघू भ्रात जूझ्यो सुन्यो सुंभरायं । सजे शस्त्र अस्त्रं चड़्यो चउप चायं । भयो नाद उच्चं रह्यो पूर गैणं । त्रसे देवता दैत कंप्यो त्रिनैणं ॥ १ ॥ १५७ ॥ डर्यो चार बकत्रं टर्यो देवराजं । डिगे पब्ब सरबं सजे सुभ्र साजं । परे हूह दै कै भरे लोह क्रोहं । मनो मेर को सातवौ स्रिंग सोहं ॥२॥१५८॥ सज्यो सैण सुंभं कियो नाद उच्चं । सुणे गरभणीआन के गरभ मुच्चं । पर्यो लोह क्रोहं उठी शस्त्र झारं । चवी चावडी डाकणीयं डकारं ॥ ३ ॥ १५९ ॥ वहे शस्त्र अस्त्रं कटे चरम बरमं । भले कै निबाह्यो भटं स्वामि धरमं । उठी कूह जूहं गिरे चउर चीरं । रुले तच्छ मुच्छं परी गच्छ तीरं ॥४॥१६०॥ गिरे अंकुसं बारुणं बीर खेतं । नचे कंप हीणं कबंध अचेतं । उडें ग्रिद्ध ब्रिद्धं रड़ें कंक बंकं । भका भुंक भेरी डहा डूह

शुंभ-युद्ध-कथन

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ शुंभ ने जब छोटे भाई के मृतक होने का समाचार सुना तो वह क्रोधमिश्रित उत्साह के साथ शस्त्र-अस्त्रों से सुसज्जित होकर चढ़ाई के लिए चल पड़ा । भयंकर नाद हुआ और आकाश में व्याप्त हो गया । यह ध्वनि सुनकर देवता, दैत्य एवं शिव सभी काँप उठे ॥ १ ॥ १५७ ॥ ब्रह्मा डर गया और देवराज इंद्र (का सिंहासन) डोल उठा । दैत्य के सुसज्जित स्वरूप को देखकर पर्वत भी चकनाचूर हो उठे । चीखने-पुकारते क्रोधित दैत्य ऐसे लगते हैं, मानो सुमेरु पर्वत का सातवाँ शिखर हों ॥ २ ॥ १५८ ॥ सुसज्जित होकर शुंभ ने भीषण नाद किया जिसे सुनकर गर्भिणी स्त्रियों के गर्भपात हो गए । क्रोधित वीरों का लोहा बरसने लगा और शस्त्रों की वर्षा होने लगी । रणस्थल में चीलों और डाकिनियों की आवाजें सुनाई पड़ने लगीं ॥ ३ ॥ १५९ ॥ अस्त्र-शस्त्रों के चलने से सुंदर लौह-कवच कटने लगे और वीरों ने सुंदर तरीके से अपने धर्म का निर्वाह किया । पूरे रणस्थल में कोलाहल हो उठा और छत्र-वस्त्र गिरने लगे । तत्क्षण शरीरों के टुकड़े होकर गिरने लगे तथा तीरों के वार के कारण वीरों को मूर्च्छाएँ आने लगीं ॥ ४ ॥ १६० ॥ अंकुश एवं हाथियों-समेत वीर युद्धस्थल में गिर पड़े तथा सिर-विहीन कबंध अचेत अवस्था में ही नाचने लगे । बृहद् गिद्ध उड़ने लगे और टेढ़ी चोंच वाले कौवे चिल्लाने लगे मेरियों की

डंकं ॥ ५ ॥ १६१ ॥ टका टुक्क टोपं ढका ढुक्क ढालं । तछा मुच्छ तेगं बके बिक्करालं । हला चाल बीरं धमा धंमि साँगं । परी हाल हूलं सुण्यो लोग नागं ॥ ६ ॥ १६२ ॥ डकी डाकणी जोगणीयं बितालं । नचे कंध होणं कबधं कपालं । हसे देव सरबं रिस्यो दानवेसं । किधो अगन ज्वालं भयो आप भेसं ॥ ७ ॥ १६३ ॥ ॥ दोहरा ॥ संभासुर जेतिक असुर पठए कोपु बढाइ । ते देबी सोखत करे बूंद तवा की न्याइ ॥ ८ ॥ १६४ ॥ ॥ नराज छंद ॥ सु बीर सैण सज्जिकै । चढ्यो सु कोप गज्जिकै । चल्यो सु शस्त्र धारकै । पुकार मार मारकै ॥९॥१६५॥ ॥ संगीत मधुभार छंद ॥ कागड़दं कड़ाक । तागड़दं तड़ाक । सागड़दं सु बीर । गागड़दं गहीर ॥१०॥१६६॥ नागड़दं निशाण । जागड़दं जुआण । नागड़दी निहंग । पागड़दी पलंग ॥ ११ ॥ १६७ ॥ तागड़दी तमक्कि । लागड़दी लहक्कि । (मू०ग्रं०१११) कागड़दं क्रिपाण । बाहैं जुआण ॥ १२ ॥ १६८ ॥ खागड़दी खतंग । नागड़दी निहंग ।

भयानक आवाज तथा डमरुओं की डमडम बजने लगी ॥ ५ ॥ १६१ ॥ लौह-टोपों पर टकटक और ढालों पर ढकढक की आवाज होने लगी । तलवारें विकराल ध्वनियों के साथ शरीरों के टुकड़े कर रही हैं । वीरों के हल्ले पर हल्ले हो रहे हैं और बरछियों की धमाधम सुनाई पड़ रही है । इतना कोलाहल हुआ कि नागलोक अर्थात् पाताल में भी सुनाई पडने लगा ॥ ६ ॥ १६२ ॥ युद्धस्थल में डाकिनियाँ, योगिनियाँ, बैताल, कबंध एव कापालिक नृत्य कर रहे हैं । सभी देवता प्रसन्न हो रहे हैं और दैत्यराज क्रोधित हो रहा है । वह ऐसा लग रहा है, मानो अग्नि की ज्वाला धधक रही हो ॥ ७ ॥ १६३ ॥ ॥ दोहा ॥ शुंभ ने क्रोधित होकर जितने भी असुर भेजे वे देवी ने उसी प्रकार नष्ट कर दिए जैसे गर्म तवे पर पड़ते ही पानी की बूंद नष्ट हो जाती है ॥ ८ ॥ १६४ ॥ ॥ नराज छंद ॥ शूरवीरों की सेना सजाकर वह कुपित हो चढ़ उठा । शस्त्रों को धारण कर वह 'मार, मार' की पुकार के साथ चल पडा ॥ ९ ॥ १६५ ॥ ॥ संगीत मधुभार छंद ॥ कड़कड़ाहट और तड़-तड़ाहट की ध्वनि हुई । शूरवीर गड़गड़ाहट के साथ गम्भीर गर्जन कर रहे हैं ॥ १० ॥ १६६ ॥ नगाड़ों की ध्वनि जवानों को उत्तेजित कर रही है । वे शूरवीर छलांगें लगा रहे हैं ॥ ११ ॥ १६७ ॥ गुस्से से शूरवीरो के मस्तक तमतमा रहे हैं कटाकट कृपाणें शूरवीरो द्वारा

छागड़दी छुटंत । आगड़दी उडंत ॥ १३ ॥ १६९ ॥ पागड़दी पवंग । सागड़दी सुभंग । जागड़दी जुआण । झागड़दी जुझाण ॥ १४ ॥ १७० ॥ झागड़दी झड़ंग । कागड़दी कड़ंग । तागड़दी तड़ाक । चागड़दी चटाक ॥ १५ ॥ १७१ ॥ घागड़दी घबाक । भागड़दी भभाक । कागड़दं कपालि । नच्ची बिकाल ॥१६॥१७२॥ ॥ नराज छंद ॥ अनंत दुष्ट मारियं । बिअंत शोक टारियं । कमंध अंध उट्ठियं । बिसेख बाण बुट्ठियं ॥ १७ ॥ १७३ ॥ कड़ाक कर मुकं उधं । सड़ाक सेहथी जुधं । बिअंत बाणि बरखयं । बिसेख बीर परखयं ॥ १८ ॥ १७४ ॥ ॥ संगीत नराज छंद ॥ कड़ा कड़ी क्रिपाणयं । जटा जुटी जुआणयं । सु बीर जागड़दं जगे । लड़ाक लागड़दं पगे ॥ १९ ॥ १७५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ झमी तेग झट्टं । छुरी छिप्र छुट्टं । गुरं गुरज गट्टं । पलगं पिसट्टं ॥ २० ॥ १७६ ॥ किते स्रोण चट्टं । किते सीस फुट्टं । कहूँ हूह छुट्टं । कहूँ बीर उट्ठं ॥ २१ ॥ १७७ ॥

चलाई जा रही है ॥ १२ ॥ १६८ ॥ वीरों के तीर छूटकर आगे आने वालों को उड़ाकर फेंक रहे हैं ॥ १३ ॥ १६९ ॥ अश्वारोही सुन्दर शूरवीर हड़हड़ाकर जूझ रहे हैं ॥ १४ ॥ १७० ॥ झड़झड़, कड़कड़, तड़तड़ तड़ाक एवं चड़चड़ चटाक की ध्वनि युद्धस्थल में फैल रही है ॥१५॥ ॥१७१॥ घड़घड़ अस्त्र नाच रहे हैं और भड़भड़ रक्त-धारा वह रही है। युद्ध में विकराल रूप धारण करके कापाली दुर्गा नृत्य कर उठी है ॥ १६ ॥ १७२ ॥ ॥ नराज छंद ॥ अनंत दुष्टों को मारकर दुर्गा ने अनेकों कष्टों को दूर कर दिया। अंधे कबंध उठ-उठकर चल रहे हैं और उन्हें बाण-वर्षा से गिराया जा रहा है ॥ १७ ॥ १७३ ॥ धनुषों की कड़ाक की ध्वनि और बरछियों की सड़ाक की ध्वनि युद्ध में सुन पड़ रही है। इस अनंत बाण-वर्षा में विशेष माने जानेवाले वीरों की परख हो गई ॥ १८ ॥ १७४ ॥ ॥ संगीत नराज छंद ॥ कड़ाकड़ी कृपाणों की ध्वनि के बीच जवान एक-दूसरे से गुत्थमगुत्था हो रहे हैं। शूरवीर उत्तेजित हो उठे हैं और लड़ाकुओं से आ भिड़े हैं ॥ १९ ॥ १७५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ कृपाणों की झपटें चमक रही हैं और छुरियाँ तेजी से चल रही हैं। गदाओं की गड़गड़ाहट के साथ वीर शत्रु की पीठ पर मार रहे हैं ॥ २० ॥ १७६ ॥ कहीं रक्तपान हो रहा है, कहीं सिर फूटा पड़ा है, कहीं चीत्कार हो रहा है और कहीं पुन वीर उठ रहे हैं २१ १७७

कहूं धूरि लट्टं । किते मार रट्टं । भणं जस्स भट्टं । किते पेट फट्टं ॥ २२ ॥ १७८ ॥ भजे छत्रि थट्टं । किते खून खट्टं । किते दुष्ट दट्टं । फिरे ज्यों हरट्टं ॥२३॥१७९॥ सजे सूर सारे । महिखुआस धारे । लए खग्गआरे । महा रोह वारे ॥ २४ ॥ १८० ॥ सही रूप कारे । मनो सिंधु खारे । कई वार गारे । सु मारं उचारे ॥ २५ ॥ १८१ ॥ भवानी पछारे । जवा जेमि जारे । बडेई जुझारे । हुते जि हिए वारे ॥ २६ ॥ १८२ ॥ इक बार टारे । ठमं ठोक ठारे । बली मार डारे । डमक्के डढारे ॥ २७ ॥ १८३ ॥ बहे बाणिआरे । किते तीर तारे । लखे हाथ बारे । दिवाने दिदारे ॥ २८ ॥ १८४ ॥ हणे भूमि पारे । किते सिंघ फारे । किते आपु बारे । जिते दैत भारे ॥ २९ ॥ १८५ ॥ सिते अंत हारे । बडेई अड़िआरे । खरेई बरिआरे । करूरं

कहीं वीर धूल में लेटे हुए हैं, कहीं मारो, मारो की रट लगी है, कहीं भाट लोग यशोगान कर रहे हैं और कहीं पेट-फटे योद्धा पड़े हैं ॥ २२ ॥ १७८ ॥ छत्रों को थामनेवाले भाग खड़े हुए हैं और कहीं पर रक्त बहाया जा रहा है। कहीं दुष्टों का नाश किया जा रहा है और वीर ऐसे दौड़ रहे हैं मानो कुएँ पर रहट चल रहा हो ॥ २३ ॥ १७९ ॥ सभी शूरवीर धनुषों से सुसज्जित हैं और सबने विकराल आरे के समान खड्ग पकड़े हुए है ॥ २४ ॥ १८० ॥ काले स्वरूप वाले दानव मृतक सागर की तरह भयंकर दिखाई दे रहे हैं। उनको कई बार मारा गया है, परन्तु वे फिर भी मार-मार का उच्चारण कर रहे हैं ॥ २५ ॥ १८१ ॥ भवानी ने सबको पछाड़ दिया है और जौ के पौधे की तरह सबको जला दिया है। अन्य कई साहसी दैत्यों को पैरों-तले कुचल दिया गया है ॥ २६ ॥ १८२ ॥ शत्रुओं को एक बार में पछाड़कर फेंक दिया और शस्त्रों को उनके शरीर में ठोंककर उनके शरीर को ठंडा कर दिया गया है। बहुत से बलवानों को मार दिया गया है और डमडम की ध्वनि लगातार चल रही है ॥ २७ ॥ १८३ ॥ विचित्र प्रकार के तीर चले हैं और उन तीरों के कारण कितने ही लोग पार हो गए हैं। अनेक भुजबलियों ने जब दुर्गा को प्रत्यक्ष देखा तो वे अपने होश खो बैठे ॥ २८ ॥ १८४ ॥ कितने ही शूरवीरों को सिंह ने फाड़कर भूमि पर मार गिराया और कितने भारी-भारी असुरों को दुर्गा ने स्वयं मारकर नष्ट कर दिया ॥ २९ ॥ १८५ ॥ बहुत ही अड़नेवाले, खरे शूरवीर जो कि अत्यन्त क्रूर एवं कड़े माने जाते थे

करारे ॥ ३० ॥ १८६ ॥ (मू०ग्रं०११२) लपक्के ललारे । अरीले अरिआरे । हणे काल कारे । भजे रोह वारे ॥ ३१ ॥ १८७ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह बिधि दुशट प्रमारकै शस्त्र अस्त्र कर लीन । बाण बूँद प्रिथमै बरख सिंघ नाद पुन कीन ॥ ३२ ॥ १८८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ सुण्यो सुंभ रायं । चढ़्यो चउप चायं । सजे शस्त्र पाणं । चड़े जंग ज्वाणं ॥ ३३ ॥ १८९ ॥ लगे ढोल ढंके । कमाणं कड़ंके । भए नद्द नादं । धुणं निरबिखादं ॥ ३४ ॥ १९० ॥ चमक्की क्रिपाणं । हठे तेज माणं । महाबीर हुंके । सु नीसाण द्रुंके ॥ ३५ ॥ १९१ ॥ चहूँ ओर गरजे । सभै देव लरजे । सरं धार बरखे । मइया पाण परखे ॥ ३६ ॥ १९२ ॥ ॥ चौ ई ॥ जे लए शस्त्र सामुहे धए । तिते निधन कहूँ प्रापत भए । झमकत भई असन की धारा । भभके रुंड मुंड बिकरारा ॥ ३७ ॥ १९३ ॥ ॥ दोहरा ॥ है गै रथ पैदल कटे बच्यो न जीवत कोइ । तब

अन्ततः भाग खड़े हुए ॥३०॥१८६॥ चमकते ललाटोंवाले अकड़नेवाले वीर भागकर आगे की ओर बढ़े और उन महान् आक्रोश वाले वीरों को कराल काल ने मार गिराया ॥ ३१ ॥ १८७ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार दुष्टों का नाश करके दुर्गा ने शस्त्र-अस्त्र पुनः धारण कर लिये । पहले दुर्गा ने बाणों की वर्षा की तथा फिर उसके सिंह ने घनघोर गर्जन किया ॥ ३२ ॥ १८८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जब राजा शुंभ ने यह हाल सुना तो वह उत्तेजित होकर आगे बढ़ा । उसके सैनिक शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध के लिए चढ़ आए ॥ ३३ ॥ १८९ ॥ ढोलों की ढमक, धनुषों की कड़कड़ाहट और नगाड़ों की गड़गड़ाहट निरंतर रूप से सुनाई पड़ने लगी ॥ ३४ ॥ १९० ॥ हठीले मानियों की कृपाणें चमक उठीं । महावीरों ने हुंकार करना शुरू कर दिया और नगाड़ों ने बजना प्रारम्भ कर दिया ॥ ३५ ॥ १९१ ॥ चारों ओर दैत्य गरज उठे तथा देवगण आतंकित हो उठे । बाण-वर्षा कर दुर्गा स्वयं अपने हाथों से सबके बल को परख रही है ॥ ३६ ॥ १९२ ॥ ॥ चौपाई ॥ जितने भी दैत्य शस्त्र लेकर सम्मुख आए, वे सब मृत्यु को प्राप्त हो गए । कृपाणों की धारें चमक रही हैं और मुंड-विहीन कबंध विकराल रूप में भभक रहे है ॥ ३७ ॥ १९३ ॥ ॥ दोहा ॥ हाथी, घोड़े और पैदल सभी काट डाले गए और कोई भी जीवित नहीं बचा । तब राजा शुंभ स्वयं युद्ध के लिए आगे बढ़ा और उसको देखने से ऐसा लगता है कि जो यह चाहेगा

आपे निकस्यो न्रिपति सुंभ करै सो होइ ॥ ३८ ॥ १९४ ॥ ॥ चउपई ॥ शिव दूती इत दुगा बुलाई । कान लाग नीकै समुझाई । शिव को भेज दीजिऐ तहाँ । दैत राज इसथित है जहाँ ॥ ३९ ॥ १९५ ॥ शिव दूती जब इम सुन पावा । शिवहि दूत करि उतै पठावा । शिव दूती ता ते भ्यो नामा । जानत सकल पुरख अरु बामा ॥ ४० ॥ १९६ ॥ शिव कही दैतराज सुनि बाता । इह बिधि कह्यो तुमहु जगमाता । देवन को दै कै ठकुराई । कै माँडहु हम संग लराई ॥ ४१ ॥ ॥ १९७ ॥ दैतराज इह बात न मानी । आप चले जूझन अभिमानी । गरजत कालि काल ज्यों जहाँ । प्रापति भयो असुरपति तहाँ ॥ ४२ ॥ १९८ ॥ चमकी तहाँ असन की धारा । नाचे भूत प्रेत बैतारा । फरके अंध कबंध अचेता । भिभरे भइरव भीम अनेका ॥ ४३ ॥ १९९ ॥ तुरही ढोल नगारे बाजे । भाँत भाँत जोधा रण गाजे । ढडि डफ डमरु डुगडुगी घनी । नाइ नफीरी जात न गनी ॥४४॥२००॥ ॥ मधुभार छंद ॥ धुंके किकाण । धुंके निशाण । सज्जे सु बीर । गज्जे

वही कर लेगा ॥ ३८ ॥ १९४ ॥ ॥ चौपाई ॥ इधर दुर्गा ने (विचार करके) एक शिव-दूती (डाकिनी) को बुलाकर उसके कान में उसे समझाकर कहा कि शिवजी को वहाँ भेज दीजिए जहाँ दैत्यराज (शुंभ) खड़ा है ॥ ३९ ॥ १९५ ॥ शिवदूती ने जब ऐसे सुना तो शिवजी को दूत बनाकर वहाँ भेज दिया । तब से ही दुर्गा का नाम 'शिवदूती' हो गया, इसे सभी स्त्री-पुरुष जानते हैं ॥ ४० ॥ १९६ ॥ शिव ने दैत्यराज से कहा कि तुम मेरी बात को सुनो (और समझो) । जगत्माता ने यह कहा है कि या तो तुम देवताओं को राज दे दो अन्यथा हमसे युद्ध करो ॥४१॥१९७॥ दैत्यराज शुंभ ने यह बात नहीं मानी और अभिमानपूर्वक लड़ने के लिए चल दिया । जहाँ काली काल के समान गर्जन कर रही थी, वह असुरपति वहाँ आ उपस्थित हुआ ॥ ४२ ॥ १९८ ॥ वहाँ कृपाणों की धारें चमक उठीं और भूत, प्रेत, बैताल आदि नाच उठे । वहाँ अंधे कबंध अचेतावस्था में ही हलचल में आ गए और भीमकाय भैरव घूमने लगे ॥ ४३ ॥ १९९ ॥ तुरहियाँ, ढोल और नगाड़े बज उठे तथा भाँति-भाँति के योद्धा युद्धस्थल में गरज उठे । डफलियाँ, डमरू और डुगडुगियाँ घनघोर रूप से बज उठीं और शहनाई आदि बाजे इतने बज रहे हैं कि उनको गिना नहीं जा सकता ४४ २०० । मधुभार छंद घोड़

गहीर ॥ ४५ ॥ २०१ ॥ (मू०ग्रं०११३) झुक्के निसक्क । बज्जे उबक्क । सज्जे सुबाह । अच्छं उछाह ॥ ४६ ॥ २०२ ॥ कट्टे किकाण । फुट्टे चवाण । सूलं सड़ाक । उट्ठे कड़ाक ॥ ४७ ॥ २०३ ॥ गज्जे जुआण । बज्जे निशाण । सज्जे रजेंद्र । गज्जे गजेंद्र ॥ ४८ ॥ २०४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ फिरे बाजियं ताजियं इत्त उत्तं । गजे बारणं दारुणं राज पुत्तं । बजे संख भेरी उठे संख नादं । रणं कै नफीरी धुणं निरबिखादं ॥ ४९ ॥ २०५ ॥ कड़क्के क्रिपाणं सड़क्कार सेलं । उठी कूह जूहं भई रेलपेलं । रुले तत्त मुच्छं गिरे चउर चीरं । कहूं हत्थ मत्थं कहूँ बरम बीरं ॥ ५० ॥ २०६ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ बली बैर रुज्झे । समुह सार जुज्झे । सँभारे हथियारं । बकै मार मारं ॥ ५१ ॥ २०७ ॥ सभै शस्त्र सज्जे । महाँ बीर गज्जे । सरं ओघ छुट्टे । कड़क्कार उट्ठे ॥ ५२ ॥ २०८ ॥ बजैं बादित्रेअं । हसैं गांध्रबेअं ।

हिनहिना रहे हैं और नगाड़े बज रहे हैं। सुसज्जित वीर गम्भीर गर्जन कर रहे हैं ॥ ४५ ॥ २०१ ॥ निडर होकर वीर पास आकर वार करके उछल रहे हैं। सुसज्जित परियों को देखकर अप्सराएँ भी (उनके वरण के लिए) उत्साहित हो रही हैं ॥ ४६ ॥ २०२ ॥ घोड़े कट रहे है, मुँह फट रहे हैं। शूलों की सरं ध्वनि तथा कड़कड़ाहट सुनाई पड़ रही है ॥ ४७ ॥ २०३ ॥ नगाड़े बज रहे हैं और जवान गरज रहे हैं। राजा सुसज्जित हैं और हाथी चिंघाड़ रहे हैं ॥ ४८ ॥ २०४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ अच्छे-अच्छे घोड़े इधर-उधर घूम रहे हैं। राजपुत्रों के हाथी भयंकर रूप से गरज रहे हैं। शंख, भेरियों की आवाजें उठ रही हैं तथा तूतियों की निरंतर आवाजें चल रही हैं ॥ ४९ ॥ २०५ ॥ तलवारें कड़कड़ा रही हैं और बरछियाँ सड़सड़ा रही हैं। सारे युद्ध-स्थल में भीषण भगदड़ मच गई है। शरीर खंड-खंड होकर, चँवर-वस्त्र टूट-फट कर गिरे पड़े हैं। कहीं वीरों के हाथ, कहीं मस्तक और कहीं लौह-कवच पड़े हैं ॥ ५० ॥ २०६ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ महाबली शत्रु लगे हुए हैं और समस्त शस्त्रों को लेकर आपस में जूझ रहे हैं। हथियारों को सँभालकर मार-मार चिल्ला रहे हैं ॥ ५१ ॥ २०७ ॥ शस्त्रों से पूर्ण सुसज्जित होकर महावीर गरज रहे हैं। बाणों के झुंड छूटे हैं और कड़कड़ाने की आवाजें आ रही हैं ॥ ५२ ॥ २०८ ॥ विभिन्न प्रकार के वाद्य बज रहे हैं और गंधर्वगण मुस्कुरा रहे हैं। वीर अपने-अपने झंडों को गाड़कर जुटे हुए हैं तथा उनके लौहकवच बाणों से फूट रहे

मुंडा गड्ड जुट्टे। सरं संज फुट्टे ॥ ५३ ॥ २०९ ॥ चहूँ ओर उट्ठे। सरं ब्रिशट वुट्ठे। करोधी करालं। बकैं बिक्करालं ॥ ५४ ॥ २१० ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ किते कुट्ठिअं बुट्ठिअं ब्रिष्ट बाणं। रणं डुल्लियं बाज खाली पलाणं। जुझे जोधयं बीर देवं अदेवं। सुभे शस्त्र साजा मनो शांतनेवं ॥ ५५ ॥ २११ ॥ गजे गज्जियं सरब सज्जे पवंगं। जुधं जुटीयं जोध छुट्टे खतंगं। तड़क्के तबल्लं झड़ंके क्रिपाणं। सड़क्कार सेलं रणंके निशाणं ॥ ५६ ॥ २१२ ॥ ढमा ढम्म ढोलं ढला ढुक्क ढालं। गहा जूह गज्जे हयं हल्ल चालं। सटा सट्ट सेलं खहा खूनि खग्गं। तुटे चरम बरमं उठे नाल अग्गं ॥ ५७ ॥ २१३ ॥ उठे अग्गि नालं खहे खोल खग्गं। निसा मावसी जाणु मासाण जग्गं। डकी डाकणी डामरू डउर डक्कं। नचे बीर बैताल भूतं भभक्कं ॥ ५८ ॥ २१४ ॥ ॥ बेली बिंद्रम छंद ॥ सब शस्त्रु आवत भे जिते। सभ काटि

हैं ॥ ५३ ॥ २०९ ॥ चारों ओर से (घटाओं की तरह) उठकर बाणों की वर्षा हो रही है। क्रोधी एवं विकराल वीर विभिन्न प्रकार से बकवाद कर रहे हैं ॥ ५४ ॥ २१० ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ कहीं वीर कट रहे हैं और कहीं तीरों की वर्षा हो रही है। युद्धस्थल में घोड़े बिना काठियों के पड़े हुए धूल-धूसरित हो रहे हैं। देवों एवं दानवों के वीर परस्पर जूझ रहे हैं और ऐसे लग रहे हैं, मानो भीषण योद्धा भीष्म पितामह हों ॥ ५५ ॥ २११ ॥ सुसज्जित घोड़े एवं हाथी गरज रहे हैं और युद्धशील शूरमाओं के बाण छूट रहे हैं। कृपाणों की झड़झड़ाहट और मृदंगों की तड़तड़ाहट तथा बरछों एवं नगाड़ों की धमाधम सुनाई पड़ रही है ॥५६॥२१२॥ ढोलों एवं ढालों की ढमाढम चल रही है और घोड़ों ने इधर-उधर भागदौड़ करके हलचल मचा दी है। बरछियाँ सटासट चल रही हैं और खड्ग रक्तरंजित हो रहे हैं। वीरों के शरीरों के लौह-कवच टूट रहे हैं और साथ ही अंग भी निकलकर बाहर आ रहे हैं ॥ ५७ ॥ २१३ ॥ लौह-शिरस्त्राणों पर खड्ग पड़ते ही आग की लपटें निकलती हैं और इतना घनघोर अंधकार (बाण-वर्षा के कारण) छाया हुआ है कि भूत-प्रेतादि (दिवस को) रात्रि मानकर जग गए हैं। डाकिनियाँ डकार रही हैं और डमरू बज रहे हैं तथा इनकी ध्वनि पर बैताल-भूत आदि नृत्य कर रहे हैं ॥ ५८ ॥ २१४ ॥ ॥ बेली बिंद्रम छंद ॥ जितने भी शस्त्रों के वार हो रहे हैं दुर्गादेवी ने उन सबको काट दिया है इसके अतिरिक्त और भ

हीन दुगा तिते । अरि अउर जेतिक डारिअं । तेऊ काटि भूमि उतारिअं ॥ ५९ ॥ २१५ ॥ सर आप काली छंडिअं । सरबास्त्र शस्त्र बिहंडिअं । शस्त्र हीन जबै निहारियो । जै शबद देवन उचारियो (मू०पं०११४) ॥६०॥२१६॥ नभि मद्धि बाजन बाजहीं । अविलोकि देवा गाजहीं । लखि देव बारंबारहीं । जै शबद सरब पुकारहीं ॥६१॥२१७॥ रण कोप काल करालियं । खट अंग पाण उछालियं । सिर सुंभ हृत्थ दुछंडियं । इक चोट दुष्ट बिहंडियं ॥ ६२ ॥ २१८ ॥ ॥ दोहरा ॥ जिम सुंभासुर को हना अधिक कोप कै काल । त्यों साधन के शत्र सभ चाबत जाँहि कराल ॥ ६३ ॥ २१९ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके चंडी चरित्रे सुंभ बधह खसटमो धिआइ संपूरनम सतु सुभम सतु ॥ ६ ॥ अफजू ॥

अथ जैकार शबद कथनं ॥

॥ बेली बिद्रम छंद ॥ जै शबद देव पुकारहीं । सभ फूल फूलन डारहीं । घनसार कुंकम ल्याइकै । टीका दियो

जितने वार हो रहे हैं, उन सबको काटकर दुर्गा ने भूमि पर गिरा दिया है ॥ ५९ ॥ २१५ ॥ काली ने स्वयं शस्त्र चलाए और असुरों के सभी अस्त्रों को काट डाला । जब देवताओं ने शुंभ को शस्त्र-विहीन देखा तो जय-जयकार करने लगे ॥ ६० ॥ २१६ ॥ नभमंडल में बाजे बजने लगे और अब (युद्ध का दृश्य देखकर) देवता भी गर्जन करने लगे । देवता बार-बार देखने लगे और जय-जयकार की ध्वनि का उच्चारण करने लगे ॥ ६१ ॥ २१७ ॥ अब युद्ध में क्रोधित होकर विकराल काली ने छः भुजाओं के हाथों को ज़ोर से उठाकर शुंभ के सिर पर दे मारा और एक ही चोट से दुष्ट का नाश कर दिया ॥६२॥२१८॥ ॥ दोहा ॥ जिस प्रकार काली ने अधिक क्रोधित होकर शुंभ असुर को नष्ट किया, संतो के सभी शत्रुओं का इसी प्रकार नाश होता है ॥ ६३ ॥ २१९ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक में चंडी-चरित्र के शुंभ-वध नामक छठ अध्याय की शुभ समाप्ति ६ अफजू

हरखाइकै ॥ १ ॥ २२० ॥ ॥ चौपई ॥ उसतत सभहूँ करी अपारा । ब्रहम कवच को जाप उचारा । संत सँबूह प्रफुल्लत भए । दुष्ट अरिष्ट नास ह्वै गए ॥ २ ॥ २२१ ॥ साधन को सुख बढे अनेका । दानव दुष्ट न बाचा एका । संत सहाइ सदा जग माई । जह तह साधन होइ सहाई ॥ ३ ॥ ॥२२२॥ ॥ देवी जू की उसतत ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ नमो जोग ज्वालं धरीयं जुआलं । नमो सुंभ हंती नमो क्रूर कालं । नमो स्रोण बीरजारदनी धूम्रहंती । नमो कालका रूप ज्वाला जयंती ॥ ४ ॥ २२३ ॥ नमो अंबका जंभहा जोति रूपा । नमो चंड मुंडारदनी भूपि भूपा । नमो चामरं चीरणी चित्र रूपं । नमो परम प्रग्या बिराजै अनूपं ॥ ५ ॥ २२४ ॥ नमो परम रूपा नमो क्रूर करमा । नमो राजसा सातका परम बरमा । नमो महिख दईत को अंत करणी । नमो तोखणी सोखणी सरब हरणी ॥ ६ ॥ २२५ ॥ बिड़ालाछ हंती कक्राछ छाया । दिजग्गि ब्यार बनिअं नमो जोग माया । नमो भइरवी

टीका लगाया ॥१॥२२०॥ ॥ चौपाई ॥ सबों ने अत्यधिक स्तुति की एवं ब्रह्मकवच का जाप किया । समस्त संत प्रसन्न हो गए क्योंकि दुष्टों का नाश हो गया है ॥ २ ॥ २२१ ॥ साधुओं का सुख अनेक प्रकार से बढ़ने लगा और एक भी दुष्ट दानव नहीं बचा । जगत्माता सदैव सन्तों की सहायता करती है एवं सर्वत्र उनकी सहायक सिद्ध होती है ॥ ३ ॥ २२२ ॥ ॥ देवी जी की स्तुति ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ हे योगज्वाला और धरती को दीप्तिमान करनेवाली ! तुम्हें मेरा नमस्कार है । शुंभ का नाश करनेवाली, क्रूर कालरूपिणी, धूम्रनयन को नष्ट करनेवाली एवं रक्तबीज का दलन करनेवाली तथा ज्वाला-सी जलनेवाली कालिका ! तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥४॥२२३॥ हे अंबिका ! तुम जम्भ दैत्य को मारनेवाली ज्योतिस्वरूपा हो, चंड-मुण्ड नामक राजाओं को मारनेवाली हो । चामरासुर को चीरने वाली परम प्रज्ञा के अनुपम रूप में विराजमान हो, तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥ ५ ॥ २२४ ॥ हे क्रूर कर्म करनेवाली परमरूप ! तुम्हें मेरा नमस्कार है । हे रज, सत्त्व आदि गुणों को धारण करनेवाली, परम लौह-कवच-स्वरूपा, महिषासुर का अंत करनेवाली, सबको नष्ट करनेवाली, सबका संहार करनेवाली ! तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥६॥२२५॥ बिड़ालाक्ष का हनन करनेवाली एवं क्रूर राक्षसों को मारनेवाली तथा ब्रह्मा का रूप धारण कर वेद पढ़नेवाली तुम्हें है । हे योगमाया भैरवी भृगु-सी

भारगवीअं भवानी। नमो जोग ज्वालं धरी सरब मानी ॥ ७ ॥ २२६ ॥ अधी उरधवी आप रूपा अपारी। रमा रसटरी काम रूपा कुमारी। भवी भावनी भइरवी भीम रूपा। नमो हिंगुला पिंगुलायं अनूपा ॥ ८ ॥ २२७ ॥ नमो जुद्धनी क्रुद्धनी क्रूर (मू०ग्रं०११५) करमा। महा बुद्धनी सिद्धनी सुद्ध करमा। परी पद्मनी पारबती परम रूपा। सिवी बासवी ब्राहमी रिद्ध कूपा ॥ ९ ॥ २२८ ॥ भिड़ा भारजनी सूरतवी मोह करता। परा पव्टणी पारबती दुव्ट हरता। नमो हिंगुला पिंगुला तोतलायं। नमो करतिक्यानी शिवा सीतलायं ॥ १० ॥ २२९ ॥ भवी भारगवीयं नमो शस्त्र पाणं। नमो अस्त्र धरता नमो तेज माणं। जया आजया चरमणी चावडायं। क्रिपा कालकायं नयं नीति न्यायं ॥ ११ ॥ ॥ २३० ॥ नमो चापणी चरमणी खड़क पाणं। गदा पाणिणी चक्रणी चित्र माणं। नमो सूलणी सैहथी पाणि माता। नमो ज्ञान बिज्ञान को ज्ञान ज्ञाता ॥ १२ ॥ २३१ ॥ नमो

भवानी, जालंधरी एवं सबके द्वारा मान्य शक्ति! तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥ ७ ॥ २२६ ॥ तुम नीचे-ऊपर सर्वत्र विराजमान होनेवाली लक्ष्मी, कामाख्या एवं कुमारकन्या हो। तुम ही भवानी एवं बृहद् रूप में भैरवी हो। तुम ही हिंगलाज, पिंगलाज आदि स्थानों पर अनुपम रूप से विराजमान हो, तुम्हें प्रणाम है ॥ ८ ॥ २२७ ॥ युद्ध में क्रोधित होकर क्रूर कर्म करनेवाली, महाप्रज्ञा, सिद्धि एवं युद्धकर्मा तुम्हीं हो। तुम्ही अप्सरा, पद्मिनी पार्वती का परमरूप हो और तुम्हीं शिव, इंद्र, ब्रह्मा की शक्ति का स्रोत हो। तुम्हें नमस्कार है ॥ ९ ॥ २२८ ॥ मुर्दों को वाहन बनानेवाली, भूतों-प्रेतों को मोहित करनेवाली, तुम बड़ी से बड़ी अप्सरा, पार्वती एवं दुष्टों का हनन करनेवाली हिंगलाज, पिंगलाज स्थानों पर बच्चों के समान सरल व्यवहार करनेवाली, कार्तिकेय, शिव आदि की शक्ति, तुम्हें नमस्कार है ॥१०॥२२९॥ यम की शक्ति, भृगु की शक्ति और हाथों में शस्त्र धारण करनेवाली (दुर्गा) तुम्हें नमस्कार है। अस्त्रों को धारण करनेवाली, तेजस्विनी, सदैव अजेय रहनेवाली एवं सर्व को विजय करनेवाली, सुन्दर ढालवाली तथा नित्य न्याय करनेवाली, कृपास्वरूपिणी कालिका, तुम्हें नमस्कार है ॥ ११ ॥ २३० ॥ हे धनुष, खड़ग एवं ढाल एवं गदा धारण करनेवाली चक्रवाहिनी तथा विश्व को चित्रित करनेवाली, तुम्हें नमस्कार है तुम त्रिशूल-बरछी को धारण करनेवाली व

पोखड़ी सोखणी अंम्रिड़ाली। नमो दुष्ट सोखारदनी रूप काली। नमो जोग ज्वाला नमो कारतिक्यानी। नमो अंबका तोतला स्री भवानी॥ १३ ॥ २३२॥ नमो दोख दाही नमो दुक्ख्य हरता। नमो शस्त्रणी अस्त्रणी करम करता। नमो रिष्टणी पुष्टणी परम ज्वाला। नमो तारुणीअं नमो ब्रिद्ध बाला॥१४॥ ॥ २३३॥ नमो सिंघबाही नमो दाढ़ गाढ़ं। नमो खग्ग दग्गं झमा झम्म बाड़ं। नमो रूढ़ गूढ़ं नमो सरब ब्यापी। नमो नित्त नाराइणी दुष्ट खापी॥ १५ ॥ २३४॥ नमो रिद्ध रूपं नमो सिद्ध करणी। नमो पोखणी सोखणी सरब भरणी। नमो आरजनी मारजनी कालरात्री। नमो जोग ज्वालंधरी सरब दात्री॥ १६ ॥ २३५॥ नमो परम परमेश्वरी धरम करणी। नई नित्त नाराइणी दुष्ट दरणी। छला आछला ईसुरी जोग ज्वाली। नमो बरमणी चरमणी क्रूर काली॥ १७ ॥ २३६॥ नमो रेचका पूरका प्रात संध्या। जिनै मोहु कै चउदहूँ लोक बंध्या। नमो अंजनी गंजनी सरब अस्त्रा। नमो धारणी

हो एवं सब ज्ञान-विज्ञानों की ज्ञाता हो, तुम्हें नमस्कार है॥ १२॥ २३१॥ तुम सबकी पोषक, संहारक एवं मुर्दों की सवारी करनेवाली हो। काली का स्वरूप धारण कर दुष्टों की नाशक हो, तुम्हें नमस्कार है। हे योग-ज्वाला, कार्तिकेय की शक्ति, अम्बिका, श्री भवानी, तुम्हें मेरा नमस्कार है॥ १३॥ २३२॥ हे दुःखों का दहन कर उन्हें हरण करनेवाली, शस्त्र-अस्त्रों के माध्यम से युद्धकर्म करनेवाली, दुष्ट, पुष्ट परमज्वाला तरुण एवं वृद्ध स्त्रियों की परमस्वरूप, तुम्हें नमस्कार है॥ १४॥ ३३३॥ हे भीषण दाँतोंवाली, सिंह की सवारी करनेवाली, तुम्हें नमस्कार है। तुम खड्गों को खंडित करनेवाली, चमचमाती हुई कृपाण हो। तुम अत्यंत गूढ़ सर्वव्यापी, नित्य एवं दुष्टों का विनाश करनेवाली हो। तुम्हें नमस्कार है॥ १५॥ २३४॥ हे सिद्धियों को देनेवाली, सर्वपालक तथा सर्व-संहारक, चाँदी के समान स्वच्छ स्वरूप वाली एवं कालरात्रि के समान भयानक, जालंधरी एवं सर्वदात्री स्वरूपा! तुम्हें नमस्कार है॥१६॥२३५॥ परम परमेश्वर की धर्मकारक शक्ति, नित्य नव्य नारायणी, दुष्टों का दलन करनेवाली, सबको छलनेवाली, शिव की योगज्वाला, संतों के लिए लौहकवच-स्वरूपा एवं दैत्यों के लिए क्रूर काली, तुम्हें नमस्कार है॥ १७॥ २३६॥ श्वास, निःश्वास एवं प्रातः-संध्या का पूजन, अर्चन तुम्हीं हो। तुम्हीं ने अपनी माया से चौदह भुवनों को बाँध रखा है।

बारणी सरब शस्त्रा ॥ १८ ॥ २३७ ॥ नमो अंजनी गंजनी दुष्ट गरबा । नमो तोखणी पोखणी संत सरबा । नमो शकलणी सूलणी खड़ग पाणी । नमो तारणी कारणीअ क्रिपाणी ॥ १९ ॥ २३८ ॥ नमो रूप काली कपाली अनंदी । नमो चंद्रणी भानवी (मू०ग्रं०११६) अंग्रु बिंदी । नमो छैल रूपा नमो दुष्ट दरणी । नमो कारणी तारणी स्रिष्ट भरणी ॥ २० ॥ ॥ २३९ ॥ नमो हरखणी बरखणी शस्त्र धारा । नमो तारणी कारणीयं अपारा । नमो जोगणी भोगणी परम प्रज्ञा । नमो देव दइत्याइणी देवि दुरग्या ॥ २१ ॥ २४० ॥ नमो घोर रूपा नमो चार नैणा । नमो सूलणी सैथणी बक्र बैणा । नमो ब्रिद्ध बुद्धं करी जोग ज्वाला । नमो चंड मुंडी स्त्रिड़ा क्रूर काला ॥ २२ ॥ २४१ ॥ नमो दुष्ट पुष्टारदनी छेम करणी । नमो दाढ़ गाढ़ा धरी दुख्य हरणी । नमो शास्त्र बेता नमो शस्त्र गामी । नमो जच्छ बिद्या धरी पूर्ण कामी ॥२३॥२४२॥

तुम्हीं अंजनी (हनुमान की माँ) सबके गर्व को चूर करनेवाली तथा सर्व अस्त्रों को धारण कर चलानेवाली हो, तुम्हें नमस्कार है ॥ १८ ॥ २३७ ॥ हे अंजनी, दुष्टों के गर्व को चूर करनेवाली, सर्व संतों का पोषण कर उन्हे प्रसन्न करनेवाली, तुम्हें नमस्कार है । हे त्रिशूलस्वरूपिणी, हाथ में खड़ग धारण करनेवाली, सबको पार करनेवाली एवं कारणों की कारण, कृपाण-स्वरूपा, तुम्हें नमस्कार है ॥ १९ ॥ २३८ ॥ हे स्वरूप की काली, कपाली, आनन्ददात्री, चन्द्र एवं सूर्य की किरणों के समान सुन्दर स्वरूप वाली, दुष्टों का दलन करनेवाली सृष्टि का पोषण करनेवाली एवं सर्वकारणों की कारण ! तुम्हें नमस्कार है ॥ २० ॥ २३९ ॥ हर्षित होकर शस्त्रों की वर्षा करनेवाली ! तुम सबका बेड़ा पार करनेवाली हो, तुम्हें नमस्कार है । हे देवी दुर्गा ! तुम परमप्रज्ञा, योगिनी देवी एवं दैत्याणी हो, तुम्हें नमस्कार है ॥ २१ ॥ २४० ॥ हे भीषण रूप वाली, सुन्दर नेत्रों वाली, तुम त्रिशूल एवं बरछी के समान वक्र दृष्टि वाली हो, तुम्हें नमस्कार है । हे योगज्वाला को प्रज्वलित करनेवाली परमबुद्धिस्वरूपा, चंड-मुंड का नाश कर उनके मृतक शरीर को रौंदने का क्रूर कर्म करनेवाली, तुम्हें नमस्कार है ॥ २२ ॥ २४१ ॥ तुम बड़े-बड़े पापियों को नष्ट करनेवाली, कल्याणकारिणी हो । तुम अपने कराल दाँतों से दुष्टों को नष्ट कर संतों के दुःख का हरण करनेवाली हो । तुम शास्त्रवेत्ता, शस्त्रवेत्ता, यक्षविद्या में निपुण और कामनाओं को पूर्ण करनेवाली हो तुम्हें नमस्कार

रिपं तापणी जापणी सरब लोगा। थपे खापणी थापणी सरब सोगा। नमो लंकुड़ेसी नमो शक्ति पाणी। नमो कालका खड़ग पाणी क्रिपाणी ॥ २४ ॥ २४३ ॥ नमो लंकुड़ेसा नमो नाग्र कोटी। नमो काम रूपा कमिच्छ्या करोटी। नमो कालरात्री कपरदी कल्याणी। महाँ रिद्धणी सिद्धदाती क्रिपाणी ॥ २५ ॥ २४४ ॥ नमो चतुरबाहो नमो अष्टबाहा। नमो पोखणी सरब आलम पनाहा। नमो अंबका जंभहा कारत्यानी। म्रिड़ाली कपरदी नमो स्री भवानी ॥२६॥२४५॥ नमो देव अरद्यारदनी दुष्टहंती। सिता असिसता राज क्रांती अनंती। जुआला जयंती अलासी अनंदी। नमो पार-ब्रह्मी हरी सी मुकंदी ॥ २७ ॥ २४६ ॥ जयंती नमो मंगला कालकायं। कपाली नमो भद्रकाली सिवायं। द्रुगायं छिनायं नमो धात्रिएयं। सुआहा सुधायं नमो सीतलेयं ॥ २८ ॥ २४७ ॥ नमो चरबणी सरब धरमं धुजायं। नमो हिंगुला पिंगुला अंबकायं। नमो दीर्घ दाड़ा नमो स्याम बरणी। नमो अंजनी

है ॥ २३ ॥ २४२ ॥ शत्रुओं को दुःख देनेवाली, सभी लोग तुम्हारा जाप करते हैं। तुम सभी शोकों को पैदा कर उनका नाश करनेवाली भी हो। तुम हनुमान की शक्ति हो और शक्ति को सर्वदा अपने हाथों में धारण करनेवाली कालिका एवं कृपाणस्वरूपा हो, तुम्हें नमस्कार है ॥२४॥२४३॥ हे हनुमंत की स्वामिनी शक्ति! नाग्रकोटि (काँगड़ा) की देवी, कामस्वरूपा, कामाख्या देवी एवं कालरात्रि के समान सबका कल्याण करनेवाली हो। हे महाऋद्धियों, सिद्धियों की दात्री, कृपाण-धारिणी, तुम्हें नमस्कार है ॥ २५ ॥ २४४ ॥ हे देवी! तुम चतुर्भुजी एवं अष्टभुजी हो तथा अखिल विश्व की पोषक हो। हे अंबिका, जंभ राक्षस को मारनेवाली, कार्तिकेय की शक्ति, मृतकों को रौंदनेवाली श्रीभवानी, तुम्हें नमस्कार है ॥ २६ ॥ २४५ ॥ देवताओं के शत्रुओं का हनन करनेवाली, श्वेत श्याम-रक्तस्वरूपा, प्रमाद को जीतकर आनन्द को बढ़ानेवाली ज्वाला! तुम परब्रह्म की माया एवं शिव की शक्ति हो, तुम्हें नमस्कार है ॥२७॥२४६॥ तुम सबका मंगल करनेवाली, सबको जीतनेवाली, काल का स्वरूप हो। हे कपाली, शिवशक्ति एवं भद्रकाली, तुम दुर्गों को छेदन कर तृप्त होनेवाली, शुद्ध अग्निस्वरूप भी हो एवं शीतलता भी हो, तुम्हें नमस्कार है ॥ २८ ॥ २४७ ॥ हे असुरों को चबानेवाली, सर्वधर्मों की ध्वजा-स्वरूपा हिंगलाज पिंगलाज की अधिष्ठात्री शक्ति माँ, तुम्हें नमस्कार है।

भंजनी दैंत दरणी ॥ २६ ॥ २४८ ॥ नमो अरध चंद्राइणी चंद्रचूड़ं। नमो इंद्र ऊरधा नमो दाढ़ गूड़ं। ससं सेखरी चंद्र भाला भवानी। भवी भैहरी भूतराटी क्रिपानी ॥ ३० ॥ २४९ ॥ कली कारणी करम करता कमच्छ्या। परी पद्मनी पूरणी सरब इच्छ्या। जया जोगनी जग्ग करता जयंती। सुभा (मू०ग्रं०११७) स्वामणी स्रिष्टजा शत्रुहंती ॥ ३१ ॥ २५० ॥ पवित्री पुनीता पुराणी परेयं। प्रभी पूरणी पारब्रह्मी अजेयं। अरूपं अनूपं अनामं अठामं। अभीतं अजीतं महाँ धरम धामं ॥ ३२ ॥ २५१ ॥ अछेदं अभेदं अकरमं सु धरमं। नमो बाण पाणी धरे चरम बरमं। अजेयं अभेयं निरंकार नित्यं। निरूपं न्रिबाणं नमित्यं अकित्यं ॥ ३३ ॥ २५२ ॥ गुरी गउरजा कामगामी गुपाली। बली बीरणी बावना जग्ग ज्वाली। नमो सत्र चरबाइणी गरब हरणी। नमो तोखणी सोखणी सरब भरणी ॥ ३४ ॥ २५३ ॥ पिलंगी पवंगी नमो चर चितंगी।

हे कराल दाँतों वाली, काले वर्णवाली अंजनी एवं दैत्यों का दलन करनेवाली, तुम्हें नमस्कार है ॥ २९ ॥ २४८ ॥ हे अर्द्धचन्द्र को धारण करनेवाली एवं चन्द्र को ही आभूषण बनानेवाली, तुम बादलों की शक्ति रखनेवाली तथा विकराल जबड़ोंवाली हो। चन्द्रमा के समान तुम्हारा मस्तक है। हे भवानी, तुम ही भैरवी, भूतनी एवं कृपाणधारिणी हो, तुम्हें नमस्कार है ॥ ३० ॥ २४९ ॥ हे कामाख्या दुर्गा! तुम कलियुग की कारण एवं कर्म हो तथा परियों एवं पद्मिनी स्त्री के समान सर्व इच्छाओं को पूर्ण करनेवाली हो। तुम सबको विजय करनेवाली योगिनी एवं यज्ञ करनेवाली हो। तुम सर्व पदार्थों का स्वभाव हो। सृष्टि की रचयिता हो एवं शत्रुओं का नाश करनेवाली हो ॥३१॥२५०॥ तुम पवित्र, पुनीत, प्राचीन, प्रभुता, पूर्णता, माया एवं अजेय हो। तुम निराकार, अनुपम, अनाम एवं स्थानातीत हो। तुम अभय, अजेय एवं महाधर्म का पुंज हो ॥३२॥२५१॥ तुम अक्षय, अभेद, निष्कर्म, धर्म हो। हे बाण को हाथमें तथा कवच को धारण करनेवाली, तुम्हें नमस्कार है। तुम अजेय, रहस्यों से परे, निराकार, नित्य, अरूप, निर्वाण एवं सर्वकार्यों का निमित्त कारण हो ॥३३॥२५२॥ तुम गौरी, कामनाओं को पूर्ण करनेवाली, कृष्ण की शक्ति, बलशालिनी, बामन की शक्ति, यज्ञ की अग्नि के समान हो। हे शत्रुओं को चबाकर उनका गर्व चूर करनेवाली, प्रसन्नतापूर्वक पोषण एवं संहार करनेवाली, तुम्हें नमस्कार है ॥ ३४ ॥ २५३ ॥ हे सिंह रूपी अश्व पर सवारी करने

नमो भावनी भूत हंता भड़िंगी । नमो भीमि रूपा नमो लोक माता । भवी भावनी भविक्ख्याता बिधाता ॥ ३५ ॥ २५४ ॥ प्रभा पूरणी परम रूपं पवित्री । परी पोखणी पारब्रहमी गइत्री । जटी ज्वाल परचंड मुंडी चमुंडी । बरंदाइणी दुष्ट खंडी अखंडी ॥ ३६ ॥ २५५ ॥ सभै संत उबारी बरं ब्यूह दाता । नमो तारणी कारणी लोक माता । नमसत्यं नमसत्यं नमसत्यं भवानी । सदा राख लै मुहि क्रिपा कै क्रिपानी ॥ ३७ ॥ २५६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके चंडी चरित्रे देवी जू की उसतत बरनन नाम सपतमो धिआइ संपूरणम सतु सुभम सतु ॥ ७ ॥ अफजू ॥

अथ चंडी चरित्र उसतत बरननं ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ भरे जोगणी पत्र चउसठ चारं । चली ठाम ठामं डकारं डकारं । भरे नेह गेहं गए कंक बंकं ।

वाली तथा सुन्दर अंगों वाली भवानी ! तुम युद्ध मे लगे हुए सबों का नाश करनेवाली हो । हे वृहद् कायावाली जगत्माता, तुम यम की शक्ति, संसार मे कर्मों का फल देनेवाली तथा ब्रह्मा की शक्ति भी हो, तुम्हें नमस्कार है ॥ ३५ ॥ २५४ ॥ हे परमात्मा की पवित्रतम शक्ति, तुम्हीं सबका पोषण करनेवाली माया एवं गायत्री हो । मुंडमाल धारण करनेवाली चामुडा एव शिवजटाओं की ज्वाला भी तुम्ही हो । तुम्हीं वरदात्री एवं दुष्टों का खंडन करनेवाली, परन्तु स्वयं अखंडस्वरूप मे बनी रहनेवाली हो ॥ ३६ ॥ २५५ ॥ सर्व संतों का उद्धार करनेवाली, सबको वरदान देनेवाली, सबको भवसागर से पार करनेवाले कारणों की मूल कारण जगत्-माता भवानी ! तुम्हें मेरा बार-बार नमस्कार है । हे कृपाणस्वरूपिणी ! कृपा करके मेरी सदा रक्षा करती रहना ॥ ३७ ॥ २५६ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक में चंडी-चरित्र के देवी जी की स्तुति-वर्णन नामक सातवें अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ ७ ॥ अफजू ॥

चंडीचरित्र-स्तुति-वर्णन

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ योगिनियों ने सुन्दर वर्तन (रक्त से) भर लिये हैं और इधर-उधर स्थानों को डकारती हुई चल पड़ी, उस स्थान को प्रेम करनेवाले सुन्दर कौवे भी घरों को चले गए हैं और **युद्धस्थल** में शूरवीर बिना किसी देखभाल के धराशायी

रुले सूरबीरं अहाड़ं त्रिसंकं ॥ १ ॥ २५७ ॥ चले नारदऊ हाथ बीना सुहाए । बने बारदी डंक डउरू बजाए । गिरे बाज गाजी गजी बीर खेतं । रुले तच्छ मुच्छं नचे भूत प्रेतं ॥ २ ॥ ॥ २५८ ॥ नचे बीर बैताल अद्धं कमद्धं । बधे बद्ध गोपा गुलित्राण बद्धं । भए साधु संबूह भीतं अभीते । नमो लोक-माता भले शत्र जीते ॥ ३ ॥ २५६ ॥ पड़ै मूड़ याको धनं धाम बाढै । सुनै सूम सोफी लरै जुद्ध गाढै । जगै रैणि जोगी जपै जाप याको । धरै परम जोग लहै सिद्धता को ॥ ४ ॥ २६० ॥ पड़ै याहि बिद्यारथी (मू०ग्रं०११८) बिद्य हेतं । लहै सरब शासत्रान को मद्द चेतं । जपै जोग संन्यास बैराग कोई । तिसै सरब पुंन्यान को पुंन होई ॥ ५ ॥ २६१ ॥ ॥ दोहरा ॥ जे जे तुमरे ध्यान को नित उठि ध्यैहैं संत । अंत लहैंगे मुक्ति फलु पावहिंगे भगवंत ॥ ६ ॥ २६२ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके चंडी चरित्रे चंडी चरित्र उसतत बरननं नाम अशटमो धिआइ संपूरनम सतु सुभम सतु ॥ ८ ॥ अफजू ॥

हो गए ॥ १ ॥ २५७ ॥ नारद भी हाथ में वीणा लिये हुए चल पड़े हैं और बैल की सवारी करनेवाले शिव अपना डमरू बजाते हुए शोभायमान हो रहे हैं । युद्धस्थल में गरजनेवाले वीर एवं हाथी-घोड़े गिर पड़े हैं और टुकड़ों-टुकड़ों में धूल-धूसरित पड़े हुए वीरों को देख कर भूत-प्रेत नृत्य कर रहे हैं ॥ २ ॥ २५८ ॥ अंधे कबंध एवं वीर बैताल नृत्य कर रहे हैं तथा कमर में घुंघरू बाँधकर नाचनेवाले तथा युद्ध करनेवाले भी मारे गए हैं । समस्त डटे हुए साधुगण निर्भय हो गए हैं । हे लोकमाता ! तुमने शत्रुओं को जीतकर बहुत भला कार्य किया है, तुम्हें नमस्कार है ॥ ३ ॥ २५९ ॥ कोई मूर्ख भी यदि इसका पाठ करेगा तो उसके यहाँ धन-धान्य की वृद्धि होगी । युद्ध में भाग न लेनेवाला यदि इसे सुनेगा तो उसमें युद्ध करने की शक्ति आ जायेगी तथा जो योगी रात भर जागकर इसका जाप करेगा, वह परमयोग एवं सिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ४ ॥ २६० ॥ जो विद्यार्थी विद्या-प्राप्ति के लिए इसको पढ़ेगा, वह सारे शास्त्रों की चेतना प्राप्त कर लेगा । इसको योगी, संन्यासी, वैरागी जो भी पढ़ेगा, उसे सर्व पुण्यों की प्राप्ति होगी ॥ ५ ॥ २६१ ॥ ॥ दोहा ॥ जो-जो सन्त नित्य तुम्हारा ध्यान करेंगे, वे अंत को मुक्ति प्राप्त करेंगे और परमात्मा में विलीन हो जायेंगे ॥ ६ ॥ २६२ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के चंडीचरित्र में चंडीचरित्र-स्तुति-वर्णन नामक आठवें अध्याय की शुभ समाप्ति ८ अफजू

१ ओं वाहिगुरू जी की फ़तह ॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥
वार स्री भगउती जी की ॥ पातिशाही १० ॥

प्रिथम भगउती सिमर कै गुर नानक लईं धिआइ। फिर अंगद गुर ते अमरदास रामदासै होइ सहाइ। अरजन हरिगोबिंद नूं सिमरौ स्री हरिराइ। स्री हरिकिशन धिआइऐ जिसु डिट्ठे सभ दुख जाइ। तेगबहादर सिमरिऐ घर नउनिधि आवै धाइ। सभ थाईं होइ सहाइ ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ खंडा प्रिथमै साजिकै जिन सभ सैसारु उपाइआ। ब्रहमा बिसन महेश साजि कुदरति दा खेलु रचाइ बणाइआ। सिंध परबत मेदनी बिनु थंम्हा गगनि रहाइआ। सिरजे दानो देवते तिन अंदरि बादु रचाइआ। तैं ही दुरगा साजि कै दैता दा नासु कराइआ। तैथो ही बलु राम लै नाल बाणा दहसिरु घाइआ। तैथों ही बलु किशन लै कंसु केसी पकड़ि गिराइआ। बडे बडे मुनि देवते कई जुगतिनी तनु ताइआ। किनी तेरा अंतु न पाइआ ॥ २ ॥ साधू सतिजुगु बीतिआ अधसीली त्रेता

पहले खड्ग का स्मरण कर फिर गुरु नानक को याद करता हूँ। पुन: अंगद, अमरदास एवं गुरु रामदास का स्मरण करता हूँ, जो मेरे सहायक होंगे। गुरु अर्जुन, हरगोविन्द को स्मरण कर श्री हरिराय को याद करता हूँ। श्री हरिकृष्ण, जिनको देखने से सर्वदु:खों की निवृत्ति हो जाती है, का ध्यान करता हूँ। (गुरु) तेगबहादुर का स्मरण करने से नवनिधियाँ घर की ओर दौड़ी चली आती हैं और ये (गुरु) सर्व स्थानों पर मेरे सहायक होते हैं ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ परमात्मा ने सर्व-प्रथम खड्ग रूपी शक्ति का सृजन कर फिर संसार उत्पन्न किया तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश को उत्पन्न कर सारी प्रकृति का खेल रचा (बना डाला)। समुद्र, पर्वत, धरती एवं बिना स्तंभों के रुका रहनेवाला आकाश बनाया गया। दानव एवं देवता पैदा किए और उनमें परस्पर शत्रुता पैदा की। हे प्रभु! तुमने ही दुर्गा का सृजन कर उसके हाथों से दैत्यों का नाश करवाया। तुमसे ही बल प्राप्त कर राम ने अपने बाणों से रावण का वध किया और तुम्हीं से बल लेकर कृष्ण ने कंस के केशों को पकड़कर उसे नीचे गिरा दिया। हे परमतत्त्व! बड़े-बड़े मुनिगण एवं देवता कई युगों तक घोर तप करने के बाद भी तेरा अन्त न पा सके ॥ २ ॥ तत्त्व गुणवाला सतयुग बीता और आधा शील का पालन त्रेतायुग

आइआ। नच्चो कल्ल सरोसरी कल नारद डउरू वाइआ। अभिमानु उतारन देवतिआं महिखासुर सुंभ उपाइआ। जीति लए तिन देवते तिहु लोकी राजु कमाइआ। वड्डा बीरु अखाइ कै सिर उप्पर छत्रु फिराइआ। दित्ता इंद्रु निकाल कै तिन गिर कैलाश तकाइआ। डरि कै हत्थो दानवी दिल अंदरि त्रासु वधाइआ। पास दुरगा दे इंद्रु आइआ ॥३॥ ॥पउड़ी॥ इक्क दिहाड़े न्हावण आई दुरगशाह। इंदर बिथा सुणाई अपणे (मू०ग्रं०११९) हाल दी। छीन लई ठकुराई साते दानवी। लोकी तिही फिराई दोही आपणी। बैठे वाइ वधाई ते अमरावती। दित्ते देव भजाई सभना राकशाँ। किनै न जित्ता जाई महखे दैत नूं। तेरी साम तकाई देवी दुरगशाह ॥ ४ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुरगा बैण सुणंदी हस्सी हड़हड़ाइ। ओही सीहु मंगाइआ राखश भक्खणा। चिंता करहु न काई देवाँ नूं आखिआ। रोह होई महा माई राकशि मारणे ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ राकशि आए रोहले खेत भिड़न

आया। अब सबके सर पर कलह नाचने लगा, क्योंकि नारद का प्रभाव बहुत बढ़ गया। देवताओं का अहंकार नष्ट करने के लिए परमात्मा ने महिषासुर एवं शुभ आदि असुरों को पैदा किया, जिन्होंने देवताओं को जीतकर त्रिलोक में अपना राज्य स्थापित किया। ये अपने को महाबली कहलाने लगे और इन्होंने छत्र को अपने सर पर धारण किया। इन्होंने इन्द्र को सुरपुरी से निकाल फेंका और उसने कैलास पर्वत की ओर याचक दृष्टि से देखना प्रारंभ कर दिया। दानवों से डरा हुआ इन्द्र बहुत भयभीत होकर दुर्गा के पास आया ॥ ३ ॥ ॥ पउड़ी ॥ एक दिन जब दुर्गा स्नान करने आई तो इन्द्र ने अपनी व्यथा सुनाते हुए कहा कि दानवों ने मेरा राज्य छीन लिया है और अब त्रिलोक में उनकी घोषणाओं को सुना जाता है। उन्होंने वाद्य बजाकर स्वर्गपुरी से सब देवताओं को भगा दिया है। कोई भी महिषासुर को जीत नहीं पाया है, इसलिए हे देवी दुर्गा ! मैं तेरी शरणागत हुआ हूँ ॥४॥ ॥ पउड़ी ॥ बातें सुनती हुई दुर्गा हड़हड़ाकर हँस उठी और उसने राक्षसों का भक्षण करनेवाला अपना सिंह मँगवाया। उसने देवताओं से कहा कि तुम चिंता त्याग दो। यह कहते हुए दुर्गा असुरों का वध करने के लिए क्रोधित हो उठी ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ बलशाली राक्षस युद्ध के उत्साह से आगे चले और युद्धस्थल में कृपाण एवं बरछियाँ इस प्रकार चमकने लगीं कि सूर्य

के वाह । लशकन तेगां बरछिआँ सूरजु नदरि न पाइ ॥ ६ ॥
॥ पउड़ी ॥ दुहाँ कँधारां मुहि जुड़े ढोल संख नगारे बज्जे । राकशि आए रोहले तरवारी बखतर सज्जे । जुट्टे सउहे जुद्ध नूं इक जात न जाणन भज्जे । खेत अंदरि जोधे गज्जे ॥ ७ ॥
॥ पउड़ी ॥ जंग मुसाफा बज्जिआ रण घुरे नगारे चावले । झूलन नेजे बैरका नीसाण लसनि लसावले । ढोल नगारे पउण दे ऊँघण जाण जटावले । दुरगा दानो डहे रण नाद वज्जन खेत भीहावले । बीर परोते बरछीएँ जण डाल चमुट्टे आवले । इक वढ्ढे तेगी तड़फीअन मद पीते लोटनि बावले । इक चुण चुण झाड़उ कढीअन रेत विचों सुइना डावले । गदा त्रिसूलां बरछीआँ तीर वगन खरे उतावले । जण डसे भुजंगम सावले । मर जावन बीर रहावले ॥ ८ ॥ ॥ पउड़ी ॥ देखन चंड प्रचंड नूं रण घुरे नगारे । धाए राकशि रोहले चउगिरदे भारे । हत्थी तेगां पकड़ि कै रण भिड़े करारे । कदे न नट्ठे जुद्ध ते जोधे जुझारे । दिल विच रोह बढाइ कै मारि मारि पुकारे ।

भी दिखाई नहीं पड़ रहा था ॥ ६ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दोनों दल आमने-सामने खड़े हो गए और शंख तथा नगाड़े बजने लगे । लौह-कवचों एवं कृपाणों से सुसज्जित बलशाली राक्षस आगे बढ़े । सम्मुख युद्ध के लिए ऐसे योद्धा खड़े हैं, जो युद्धस्थल से भागना जानते ही नहीं । ये योद्धा युद्धक्षेत्र में गरज रहे हैं ॥७॥ ॥ पउड़ी ॥ रणभेरी बज उठी और नगाड़े गड़गड़ाने लगे । बरछियाँ झूल उठीं और सुन्दर ध्वज फहरा उठे । ढोल-नगाड़ों की ध्वनि से शूरवीर इस प्रकार मस्त हो रहे हैं, जैसे कोई शराबी झूम रहा हो । दुर्गा एवं दानव इस भयानक नाद में एक-दूसरे के सामने होकर लड़ रहे हैं । युद्ध में वीर बरछियों में इस प्रकार पिरोये जा रहे हैं, मानो डाली में आँवले लगे हुए हों । एक ओर कृपाणों से कटे वीर तड़प रहे हैं और दूसरी ओर वीर धरती पर ऐसे लोट रहे हैं, मानो उन्होंने मद्य-पान किया हो । कायरों को झाड़ियों में से खींचकर इस प्रकार मारा जा रहा है, जैसे रेत में से सोने को खींचकर अलग कर लिया जाता हो । गदा, त्रिशूल, बरछियाँ और तीर भीषण रूप से चल रहे हैं और ये काले नागों की तरह डँसते चले जा रहे हैं, जिसके फलस्वरूप बड़े-बड़े शूरवीर मरते जा रहे हैं ॥ ८ ॥ ॥ पउड़ी ॥ प्रचंड चंडिका का सामना करने के लिए दैत्यों के नगाड़े और तेज़ ध्वनि करने लगे और महाबली राक्षसों ने दौड़कर चंडी को चारों ओर से घेर लिया वे हाथों से कृपाणें पकड़कर

मारे चंड प्रचंड नै बीर खेत उतारे। मारे जापन बिज्जुली सिर भार मुनारे ॥ ९ ॥ ॥ पउड़ी ॥ चोट पई दमामे दलां मुकाबला। देवी दसत नचाई सीहणि सार दी। पेट मलंदे लाई महखे दैत नूं। गुरदे आँदाँ खाई नाले रुक्कड़े। जेही दिल विच आई कही सुणाइकै। चोटी जाण दिखाई तारे धूम केत ॥ १० ॥ ॥ पउड़ी ॥ चोटां पवन नगारे अणीआं जुट्टीआँ। धूह लईआं तरवारी देवाँ दानवी। वाहन वारो वारी सूरे संघरे। (मू०ग्रं०१२०) वगै रत्तु झुलारी जिउँ गेरू बसतरा। देखन बैठ अटारी नारी राकशाँ। पाई धूम सवारी दुरगा दानवी ॥ ११ ॥ ॥ पउड़ी ॥ लख नगारे वज्जण आमो साम्हणे। राकश रणो न भज्जण रोहे रोहले। शीहाँ वांगू गज्जण सभे सूरमे। तणि तणि कैबर छड्डण दुरगा साम्हणे ॥१२॥ ॥ पउड़ी ॥ घुरे नगारे दोहरे रण संगली आले।

भिड़ गए हैं। ये ऐसे वीर हैं, जो कभी भी रणस्थल से पीछे नहीं हटे हैं। अत्यन्त क्रोधित होकर ये मार, मार की ध्वनि कर रहे हैं। प्रचंड चंडी ने अनेकों वीरों को रणस्थल में ऐसे मार गिराया है, मानो बिजली पड़ने के कारण बड़ी-बड़ी मीनारें नीचे आ गिरी हों ॥९॥ ॥ पउड़ी ॥ नगाड़ों पर चोटें पड़ रही हैं और दलों में मुक़ाबला चल रहा है। देवी ने सिंहनी-जैसी कृपाण को हाथ में नचाया है और पेट को मल रहे महिषासुर पर वार किया। देवी की कृपाण दैत्य के पेट को खंड-खंड करती हुई उसकी अँतड़ियों एवं गुर्दों को बाहर खींच लायी है। तलवार की नोक दूसरी ओर ऐसे निकली है, मानो धूमकेतु की चोटी दिखाई दे रही हो। कवि कहता है कि यह उपमा जैसी मुझे अच्छी लगी है, मैंने कह सुनाई है ॥ १० ॥ ॥ पउड़ी ॥ नगाड़े पर चोटें पड़ रही हैं और सेनाएँ एक-दूसरे से भिड़ गई हैं। देव और दानव तलवारें खींचकर अपने-अपने दाँव लगाकर चलाना शुरू कर दिया है। जैसे कपड़े से कच्चा रंग उतर कर बह उठता है, वैसे रक्त शरीर रूपी कच्चे वस्त्र से बह निकला है, जिसे राक्षसों की स्त्रियाँ अट्टालिकाओं पर बैठकर देख रही हैं। दानवों में दुर्गा की सवारी की धूम मच गई है ॥११॥ ॥ पउड़ी ॥ बेशक भयंकर नगाड़े लाखों बार बज रहे हैं, परन्तु महाबली राक्षस युद्ध से भाग नहीं रहे हैं। शेरों की तरह शूरवीर गरज रहे हैं और दुर्गा के सामने तन-तनकर तीर छोड़ रहे हैं ॥ १२ ॥ ॥ पउड़ी ॥ जंजीरों से बाँधे हुए नगाड़े बज रहे हैं और धूल से लिपटे जटाओं वाले असुर दिखाई पड़ रहे हैं इन राक्षसों

घूड़ि लपेटे धूहरे सिरदार जटाले। उखलिआँ नासाँ जिना मुहि जापन आले। धाए देवी साहमणे बीर मुछलीआले। सुरपत जेहे लड़ हटे बीर टले न टाले। गज्जे दुरगा घेरि कै जणु घणीअर काले ॥ १३ ॥ ॥ पउड़ी ॥ चोट पई खरचामी दलाँ मुकाबला। घेर लई वरिआमी दुरगा आइ कै। राकश वडे अलामी भज्ज न जाणदे। अंत होए सुरगामी मारे देवता ॥ १४ ॥ ॥ पउड़ी ॥ अगणत घुरे नगारे दलाँ भिड़ंदिआँ। पाए महखल भारे देवाँ दानवाँ। वाहन फट्ट करारे राकशि रोहले। जापन तेगीआरे मिआनो धूहीआँ। जोधे वडे मुनारे जापन खेत विचि। देवी आप सवारे पब्ब जवेहणे। कदे न आखण हारे धावन साम्हणे। दुरगा सभ संघारे राकशि खड़ग लै ॥ १५ ॥ ॥ पउड़ी ॥ उम्मल लत्थे जोधे मारू बज्जिआ। बद्दल जिउँ महिखासुर रण विचि गज्जिआ। इंदर जेहा जोधा मैथउ भज्जिआ। कउणु विचारी दुरगा जिन

के नाक के छिद्र ओखलियों के समान हैं और मुँह दीवारों में अलमारियो के समान बड़े-बड़े हैं। ये मूँछों वाले वीर दौड़कर दुर्गा के सामने आए ये सुरपति से लड़कर भी अटल बने रहनेवाले वीर है; इन्होंने दुर्गा को घेरकर इस प्रकार गर्जन प्रारम्भ कर दिया मानो बादल गरज रहे हों ॥ १३ ॥ ॥ पउड़ी ॥ खर के चमडे से बने नगाड़ों पर चोट पड गई और दलों का मुक़ाबला चल रहा है। राक्षसों ने बलशालिनी दुर्गा को घेर लिया है और ये बलशाली ऐसे राक्षस हैं जो युद्धस्थल मे भाग जाना तो जानते ही नहीं। ये कई देवताओं को नष्ट करके अन्त में स्वय भी स्वर्ग सिधार गए ॥ १४ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दलों के भिड़ते ही नगाड़े घरघराने लगे। देवताओं, दानवों दोनों ने भारी कवच धारण कर रखे थे। राक्षस भीषण प्रहार कर रहे हैं। उनकी म्यानों से निकाली हुई तलवारें आरे के समान लग रही हैं। योद्धा, युद्धस्थल में बड़े-बड़े स्तम्भों की तरह लग रहे हैं। देवी ने इन पर्वतों के समान आकार वाले राक्षसों को स्वयं मार दिया, परन्तु फिर भी ये राक्षस अपनी पराजय स्वीकार नहीं करते हैं और दुर्गा के सामने दौड़-दौड़कर जा रहे हैं। दुर्गा ने अपने हाथ में खड्ग लेकर सभी राक्षसों का संहार कर दिया ॥ १५ ॥ ॥ पउड़ी ॥ उमड़-घुमड़कर योद्धागण भिड़ गए और मारो, मारो की ध्वनि गूँज उठी। इसी समय बादलों के समान महिषासुर युद्धस्थल में गरजा और बोला कि इंद्र जैसा वीर भी युद्धस्थल में मेरे सामने से

रणु सज्जिआ ॥ १६ ॥ ॥ पउड़ी ॥ वज्जे ढोल नगारे दलां मुकाबला। तीर फिरै रैबारे आम्हो साम्हणे। अगणत बीर संघारे लगदी कैबरी। डिग्गे जाणि मुनारे मारे बिज्जु दे। खुल्ली वाली दैत अहाड़े सभे सूरमे। सुत्ते जान जटाले भंगां खाइकै ॥ १७ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुहाँ कंधाराँ मुहि जुणे नालि धउसा भारी। कड़क उठिआ फउज ते वडा अहंकारी। लै कै चलिआ सूरमे नालि वडे हजारी। मिआनो खंडा धूहिआ महखासुर भारी। उम्मल लत्थे सूरमे मार मची करारी। जापे चल्ले रत दे सलले जटधारी ॥ १८ ॥ ॥ पउड़ी ॥ सट्ट पई जमधाणी दलाँ मुकाबला। धूहि लई क्रिपाणी दुरगा म्यान ते। चंडी राकशि खाणी बाही दैत नूं। कोपर चूर (मू०ग्रं०१२१) चवाणी लत्थी करग लै। पाखर तुरा पलाणी रड़की धोल जाइ। लैंदी अघा सिधाणी सिंगाँ धउलदिआँ। कूरम सिर

भाग खड़ा हुआ था। यह कौन बेचारी दुर्गा है, जिसने युद्ध करने की हिम्मत की है ॥ १६ ॥ ॥ पउड़ी ॥ ढोल-नगाड़ों की ध्वनि के बीच दलों का मुक़ाबला शुरू हो गया और दोनों दलों के बीच में बाण बरसने लगे। तीरों के लगते ही अगणित वीरों का संहार हुआ और वे ऐसे गिरने लगे, जैसे बिजली पड़ने से स्तम्भ ढहकर गिर जाते हैं। खुले केशों वाले राक्षस वीर युद्धस्थल में ऐसे पड़े हैं, मानो भंग पीकर जटाओं वाले मुनि लेटे हों ॥ १७ ॥ ॥ पउड़ी ॥ नगाड़ों की घनघोर ध्वनि के साथ दोनों दल आमने-सामने भिड़ गए। अपनी सेना से भी बड़ा अहंकारी (महिषासुर) कड़क उठा और हज़ारों वीरों को मारनेवाले वीरों को साथ लेकर आगे बढ़ा। महिषासुर ने अपने म्यान से भारी खड़ग को खींच लिया और उसके ऐसा करते ही शूरवीर इकट्ठा होकर मारकाट मचाते हुए टूट पड़े। रक्त इस प्रकार बह निकला, मानो शिव की जटाओं से जलधारा बह निकली हो ॥ १८ ॥ ॥ पउड़ी ॥ यम के वाहन भैंसे की खाल से बने नगाड़े पर चोट पड़ी और संघर्ष शुरू हो गया। दुर्गा ने राक्षसों को मारकर खानेवाली कृपाण से महिषासुर पर वार किया। दुर्गा की तलवार राक्षस महिषासुर की खोपड़ी को काटती, मुख एवं शरीर को चीरती, वाहन की काठी को खंड-खंड करती हुई, धरती को छेदती हुई धरती को उठानेवाले बैल के सींगों से जा टकरायी। तलवार और आगे बढ़कर कच्छप की पीठ पर जा टकरायी। दुश्मनों को ऐसे काटकर डाल दिया गया, जैसे बढ़ई ने जंगल में लकड़ी के टुकड़े काटकर फेंके हों

लहिलाणी दुशमन मारकै। वड्ढे गज्ज लिखाणी मूए खेत विच। रण विच घत्ती घाणी लोहू मिज्झ दी। चारे जुग कहाणी चल्लग तेग दी। बिद्धण खेत विहाणी महखे दैत नूं॥ १९॥ ॥ पउड़ी॥ इती महखासर दैत मारे दुरगा आइआ। चउदह लोका राणी सिंघु नचाइआ। मारे बीर जटाणी दल विच अग्गले। मंगण नाही पाणी दली हँघारकै। जण करी समाइ पठाणी सुणि कै राग नूं। रत्तू दे हड़वाणी चले बीर खेत। पीता फुल्लु इआणी घूमन सूरमे॥ २०॥ ॥ पउड़ी॥ होई अलोपु भवानी देवाँ नूं राजु दे। ईशर दी वरदानी होई जित्त दिन। सुंभ निसुंभ गुमानी जनमे सूरमे। इंदर दी रजधानी तक्की जित्तणी॥ २१॥ ॥ पउड़ी॥ इंद्रपुरी ते धावणा वडजोधी मता पकाइआ। संज़ पटेला पाखरा भेड़ संदा साज बणाइआ। जुंमे कटक अछूहणी असमानु गरदी छाइआ। रोह सुंभ निसुंभ सिधाइआ॥ २२॥ ॥ पउड़ी॥ सुंभ निसुंभ अलाइआ वडजोधी संघरवाए। रोह दिखाली दित्तीआ

रक्त और मेधा (चर्बी) का कीचड़ युद्धस्थल में भर गया। देवी की कृपाण की यशगाथा चारों युगों तक रहेगी। वह अवसर महिषासुर दैत्य के लिए एक कठिन समय था॥ १९॥ ॥ पउड़ी॥ महिषासुर दैत्य को मारकर दुर्गा इधर आई और उसने चौदह भुवनों मे अपना सिंह नचाया। दल के अगले भीषण वीरों को मार दिया गया। वीर पानी माँगे बिना मर रहे हैं और ऐसे मस्त हो रहे हैं, जैसे पठान राग को सुनकर मस्ती से झूमते है। रक्त की बाढ़ रणस्थल में चल निकली है और शूरमा युद्धस्थल में ऐसे मस्त घूम रहे हैं, मानो उन्होंने मद्यपान कर रखा हो॥ २०॥ ॥ पउड़ी॥ देवताओं को राज देकर भवानी लोप हो गई। इधर शिव के वरदान से शुंभ और निशुंभ दो अभिमानी शूरवीर राक्षस पैदा हो गए, जिन्होंने इंद्र की राजधानी जीतने की योजना बनाई॥ २१॥ ॥ पउड़ी॥ योद्धाओं ने इंद्रपुरी पर धावा करने का कार्यक्रम बनाया और पेटियोंवाले लौहकवच एवं काठियाँ लेकर लड़ने के लिए अपने-आपको ससुज्जित किया। अगणित (अक्षौहिणी) दल पैदा हुआ और इस दल के चलने से उड़ी धूल आकाश में छा गई। शुंभ-निशुंभ यह सब देखकर और अधिक उत्तेजित हो उठे॥ २२॥ ॥ पउड़ी॥ दोनों दैत्यों—शुंभ एवं निशुंभ ने बड़े-बड़े शूरवीरों को ललकारा है और रणस्थल में धकेल दिया है भीषण रोष व्याप्त हो गया है और शूरवीरों

दलाँ मुकाबला। रोह भवानी आई उत्ते राकशाँ। खब्बै दसत नचाई शीहण सार दी। बहुतिआँ दे तन लाई कीती रंगुली। भाईआँ मारन भाई दुरगा जाणिकै। रोह होइ चलाई राकशि राइ नूं। जमपुर दिआ पठाई लोचन धूम नूं। जापे दित्ती साई मारन सुंभ दी॥ २८॥ ॥ पउड़ी॥ भन्नै दैत पुकारे राजे सुंभ थै। लोचन धूम सँघारे सणै सिपाहिआं। चुणि चुणि जोधे मारे अंदर खेत दै। जापन अंबरि तारे डिग्गनि सूरमे। गिरे परब्बत भारे मारे बिज्जु दे। दैताँ दे दल हारे दहशत खाइकै। बचे सु मारे मारे रहदे राइ थै॥ २९॥ ॥ पउड़ी॥ रोह होइ बुलाए राकशि राइ ने। बैठे मता पकाए दुरगा लिआवणी। चंड अर मुंड पठाए बहुता कटकु दै। जापे छप्पर छाए बणीआ के जमा। जेते राइ बुलाए चल्ले जुद्ध नो। जण जमपुर पकड़ चलाए सभे मारने॥ ३०॥ ॥ पउड़ी॥ ढोल नगारे वाए दलाँ मुकाबला। रोह रुहेले

और क्रोधित होकर भवानी राक्षसों पर टूट पड़ी। देवी ने लौह-देवी को अपने हाथों पर नचाया, उसे बहुतों के शरीरों में घुसेड़ा और रक्त-रंजित कर दिया। युद्ध की भगदड़ में राक्षस, राक्षसों को ही दुर्गा समझकर मार डाल रहे हैं। दुर्गा ने क्रोधित होकर राक्षसराज धूम्रलोचन पर कृपाण चलाई और उसे यमपुरी पहुँचा दिया। धूम्रलोचन को मारना ऐसा लगा मानो उसे मारकर दुर्गा ने शुंभ को मारने का अग्रिम दिया हो॥ २८॥ ॥ पउड़ी॥ प्रताड़ित दैत्य राजा शुंभ के पास जाकर पुकारने लगे कि धूम्रलोचन को सिपाहियों समेत मार डाला गया है और चुन-चुनकर योद्धाओं को रणस्थल में मार डाला गया है। शूरवीर ऐसे गिरते थे जैसे आकाश से तारे टूटकर गिर रहे हों या फिर ऐसा लगता था कि बिजली पड़ने से पर्वत गिर पड़े हों। दैत्यों के दल भयभीत होकर हार गये और जो बचे-खुचे थे, उनको भी (देवी द्वारा) मार डाला गया॥ २९॥ ॥ पउड़ी॥ राक्षसराज ने क्रोधित होकर अपने वीरों को बुलाया और यह निर्णय किया कि दुर्गा को पकड़कर लाना है। चंड और मुंड को वहाँ से बहुत सी सेना देकर भेजा और उसकी चतुरंगिणी सेना से ऐसा लगता था मानो आकाश ढक गया हो। जितने भी राजाओं को शुंभ ने बुलाया था, वे सभी युद्ध के लिए चल दिये और ऐसे लग रहे थे मानो इन्हें स्वयं मरने के लिए भेजा जा रहा है॥३०॥ ॥ पउड़ी॥ ढोल नगाड़ों की गूंज के साथ मुक़ाबला शुरू हो गया राक्षसों पर भी क्रोधित

आए उते राकशाँ। सभनी तुरे नचाए बरछे पकड़ि कै। बहुते मार गिराए अंदर खेत दै। तीरी छहबर लाए बुट्ठी देवता ॥ ३१ ॥ ॥ पउड़ी ॥ भेरी संख वजाए संघरि रचिआ। तणि तणि तीर चलाए दुरगा धनख लै। जिनी दसत उठाए रहे न जीवदे। चंड अरु मुंड खपाए दोन्नो देवता ॥ ३२ ॥ ॥ पउड़ी ॥ सुंभ निसुंभ रिसाए मारे दैत सुण। जोधे सभ बुलाए अपणे मजलसी। जिनी देउ भजाए इंदर जेहवे। तेई मार गिराए पल विच देवता। ओनी दसती दसति वजाए तिना चित करि। फिर स्रणवतबीज चलाए बोळे राइ दे। संज पटेला पाए चिलकत टोपिआँ। लुज्झण नो अरड़ाए राकश रोहले। कदे न किनै हटाए जुद्ध मचाइकै। मिल तेई दानो आए हुण संघरि देखणा ॥ ३३ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दैती डंड उभारी नेड़ै आइकै। सिंघ करी असवारी दुरगा शोर सुण। खब्बै दसत उभारी गदा फिराइकै। सैना सभ संघारी स्रणवत-बीज दी। जण मद खाइ मदारी घूमन सूरमे। अगणत पाउ

वीर चढ़ उठे। सबने बरछियाँ पकड़कर घोड़ों को नचाना शुरू कर दिया। बहुतों को, देवताओं की बाण-वर्षा में मार गिराया गया ॥ ३१ ॥ ॥ पउड़ी ॥ भेरी और शंख बजाकर दुर्गा ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया और तन-तनकर अपने धनुष से बाण चलाना शुरू कर दिया। जिसने भी दुर्गा के सामने हाथ उठाया, वह जीवित नहीं बचा। इस प्रकार चंड और मुंड दोनों को देवताओं की ओर से (दुर्गा ने) मार डाला ॥ ३२ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दैत्यों का मारा जाना सुनकर शुंभ और निशुंभ अत्यंत क्रोधित हो उठे और उन्होंने अपने साथ उठने-बैठनेवाले उन दरबारी योद्धाओं को बुलाया, जिन्होंने इन्द्र-जैसे देवों को कई बार युद्ध में दौड़ा दिया; ऐसे दैत्यों को पल भर में देवताओं ने मार गिराया यह जानकर उन राक्षसों ने अपने हाथ मले। अब राक्षस-राज शुंभ का भेजा हुआ रक्तबीज चला। उसके वीरों ने लौहकवच और चमकीली टोपियाँ पहन रखी थीं। वे सब युद्ध करने के लिए अधीर हो उठे। वे युद्ध से कभी पीछे नहीं हटनेवाले वीर थे। ये सभी दानव आगे बढ़े हैं, अब देखना है कैसा भीषण युद्ध होता है ॥ ३३ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दैत्यों ने पास आकर शोर और तेज कर दिया तथा इधर देवी ने ध्वनि सुनकर सिंह पर सवारी की। देवी ने बायें हाथ में गदा उभारी और रक्तबीज की सब सेना का संहार कर दिया। शूर-वीर मैदान में ऐसे वावले होकर घूम रहे हैं, मानो वे करके घूम

पसारी रुले अहाड़ विचि। जापै खेड खिडारी सुत्ते फागनूं ॥ ३४ ॥ ॥ पउड़ी ॥ स्रणवतबीज हकारे रहदे (मू०ग्रं०१२३) सूरमे। जोधे जेडु मुनारे दिस्सण खेत विचि। सभनी दसत उभारे तेगाँ धूहि कै। मारो मार पुकारे आए साम्हणे। संजाते ठणिकारे तेगी उब्भरे। घाट घड़नि ठठिआरे जाणि बणाइकै ॥ ३५ ॥ ॥ पउड़ी ॥ सट्ट पई जमधाणी दलाँ मुकाबला। घूमर बरगसताणी दल विचि घत्तिओ। सणे तुरा पलाणी डिग्गण सूरमे। उठि उठि मंगणि पाणी घाइल घूमदे। एवडु मार विहाणी उप्पर राकशाँ। बिज्जल जिउँ झरलाणी उट्ठी देवता ॥३६॥ ॥ पउड़ी ॥ चोबी धउस उभारी दलाँ मुकाबला। सभो सैना मारी पल विचि दानवी। दुरगा दानो मारे रोह बढाइकै। सिर विचि तेग वगाई स्रणवतबीज दे ॥ ३७ ॥ ॥ पउड़ी ॥ अगणत दानो भारे होए लोहुआ। जोधे जेडु मुनारे अंदरि खेत दै। दुरगा नो ललकारे आवण साम्हणे। दुरगा सभ संघारे राकश आँवदे। रत्तू दे परनाले तिन ते भुइ पए। उठि कारणिआरे

रहे हों। युद्ध में कई पाँव पसारे पड़े हुए ऐसे लग रहे हैं जैसे खिलाड़ी होली खेलकर थककर सो गए हों ॥ ३४ ॥ ॥ पउड़ी ॥ बचे हुए शूरवीरों को रक्तबीज ने ललकारा। वे योद्धा युद्धस्थल में ऐसे लग रहे थे मानो मीनारें खड़ी हों। उन सबने तलवारें खींचकर हाथ ऊपर उठाए और 'मार-मार' की पुकार के साथ (देवी के) सामने आ गए। लौह-कवचों पर तलवारों की झनकार उभर पड़ी और ऐसे लग रहा था मानो ठठेरा ठोंक-ठोंककर बर्तन बना रहा हो ॥ ३५ ॥ ॥ पउड़ी ॥ नगाड़ों पर चोट पड़ी और युद्ध शुरू हो गया तथा सेना में भगदड़ मच गई। घोड़ों और काठियों समेत शूरवीर गिर रहे हैं और घायल कराह-कराहकर पानी माँग रहे हैं। राक्षसों पर ऐसी मार पड़ी मानो देवताओं की ओर से उठकर बिजली उन पर जा गिरी हो ॥ ३६ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दलों के संघर्ष ने नगाड़ों की ध्वनि को और तेज कर दिया तथा दानवों की सेना पल भर में नष्ट हो गई। दुर्गा ने एक ओर क्रोधित होकर दानवों को मारा तथा दूसरी ओर कुपित होकर रक्तबीज के सिर पर तलवार से वार किया ॥ ३७ ॥ ॥ पउड़ी ॥ अगणित भारी दानव लहूलुहान हो उठे और मीनारों-जितने बड़े बड़े असुर युद्धस्थल में आकर दुर्गा को ललकारने लगे दुर्गा ने आने वाले सभी राक्षसों का संहार कर दिया और उनके रक्त की धाराएँ धरती

राकश हड़हड़ाइ ।। ३८ ।। ।। पउड़ी ।। धगा संगली आली संघर वाइआ । बरछी बंबली आली सूरे संघरे । भेड़ मचिआ बीराली दुरगा दानवीं । मार मची मुहराली अंदरि खेत दै । जण नट लत्थे छाली ढोलि बजाइकै । लोहू फाथी जाली लोथी जमधड़ी । घण विचि जिउँ छंछाली तेगाँ हसीआँ । घुंमर-आरि सिआली बणिआँ के जमाँ ।। ३९ ।। ।। पउड़ी ।। धग्गा सूलि बजाइआँ दलाँ मुकाबला । धूहि मिआनो लाइआँ जुआनी सूरमी । स्रणवतबीज वधाइआँ अगणत सूरताँ । दुरगा सउहे आइआँ रोह बढाइकै । सभनी आन वगाइआँ तेगाँ धूहि कै । दुरगा सभ बचाइआँ ढाल सँभाल कै । देवी आप चलाइआँ तकि तकि दानवी । लोहू नालि डुबाइआँ तेगाँ नंगिआँ । सारसुती जण न्हाइआँ मिलकै देविआँ । सभे मार गिराइआँ अंदरि खेत दै । तिदूं फेरि सवाइआँ होइआँ सूरताँ ।। ४० ।। ।। पउड़ी ।। सूरी संघरि रचिआ ढोल संख

पर बहने लगी । (उसी रक्त-धारा में से) पुनः राक्षस अट्टहास करके युद्ध के लिए उठ खड़े हुए ।। ३८ ।। ।। पउड़ी ।। जंजीरों से बाँधी हुई भेरियों की आवाज ने युद्ध को भीषण बना दिया और पताकाएँ लगी हुई बरछियाँ चलने लगीं । दुर्गा और दानवों की सेना का भीषण युद्ध हुआ और रणस्थल में मार-काट मच गई । वीर ऐसे उछल रहे हैं मानो नट उछलकर छलांगें लगा रहे हों और कृपाणें ऐसे शरीरों और लौह-कवचों में फँसी पड़ी हैं मानो मछलियाँ जाल में फँसी पड़ी हों । कृपाणों की चमचमाती मुस्कुराहट ऐसे लग रही है मानो बादल में बिजली चमक रही हो । शोर ऐसा हो रहा है मानो सर्दी में गीदड़ चिल्ला रहे हों, अथवा वणिक् की दुकान पर सौदा लेने-देनेवालों का शोर हो ।। ३९ ।। ।। पउड़ी ।। बड़े नगाड़े की घड़घड़ाहट के साथ मुक़ाबला चल रहा है और म्यानों से खींच-खींचकर तलवारें शूरवीरों के शरीरों में मारी जा रही हैं । रक्तबीज ने अपनी शक्ल के अनेक दानव पैदा कर लिये और वे सभी क्रोधित होकर दुर्गा के सामने आ पहुँचे । वे तलवारों से वार करने लगे, जिन्हें दुर्गा ने अपनी ढाल सँभालते हुए बचाया । दुर्गा ने रक्त में तलवारों को डुबाते हुए चुन-चुनकर दानवों पर वार किये । तलवारें ऐसी लग रही हैं मानो देवियाँ सरस्वती नदी में स्नान करने आई हों । देवी ने रक्तबीज के सभी रूपों को मार गिराया, परन्तु पुनः उससे सवा गुना अधिक सूरतें (रक्तबीज की) बन गईं ४० पउड़ी सूरमाओं ने ढोल,

नगारे वाइकै। चंड चितारी कालका मन बहुला रोसु बढाइकै। निकली मत्था फोड़िकै जण फते नीशाण बजाइकै। जाग सु जंमी जुद्ध नूं जरवाणा जण मरड़ाइकै। दल विचि घेरा घतिआ (सू०ग्रं०१२४) जन शीह तुरिआ गणिणाइकै। आप विसूला होइआ तिहु लोकाँ ते खुनसाइकै। रोह सिधाइआँ चक्रपाण कर निंदा खड़ग उठाइकै। अगै राकश बैठे रोहले तीरी तेगी छहबर लाइकै। पकड़ पछाड़े राकशाँ दल दैंता अंदरि जाइकै। बहु केसी पकड़ि पछाड़िअनि तिन अंदरि धूम रचाइकै। बडे बडे चुण सूरमे गहि कोटी दए चलाइकै। रण काली गुस्सा खाइकै॥ ४१॥ ॥ पउड़ी॥ दुहा कँधाराँ मुहि जुड़े अणिआरा चोइआँ। धूहि क्रिपानाँ तिक्खीआँ नाल लोहू धोइआँ। हूराँ स्रणवतबीज नूं घति घेरि खलोइआँ। लाड़ा देखन लाड़ीआँ चउगिरदै होइआँ॥ ४२॥ ॥ पउड़ी॥ चोबी धउसा पाइआँ दलाँ मुकाबला। दसती धूह नचाइआँ तेगाँ नंगिआँ। सूरिआँ दे तन लाइआँ गोशत गिद्धिआँ। बिद्धणराती

शंख और नगाड़े बजाकर युद्ध चालू रखा। चंडी ने क्रोधित हो इधर कालिका का स्मरण किया जो कि सुनिश्चित जीत के प्रतीक के रूप में चंडी का मस्तक फाड़कर प्रकट हुई। उसके पैदा होते ही युद्ध में और तेज़ी आ गई और दैत्य और भी कोलाहल करने लगे। (दुर्गा और कालिका ने) दल को ऐसे घेर लिया है जैसे शेर ने पशुओं को घेर लिया हो। परमात्मा स्वयं त्रिलोकी पर क्रुद्ध हो क्षुब्धचित्त हो उठा। विष्णु की सभी शक्तियाँ राक्षसों को बुरा-भला कहते देवताओं की ओर से क्रोधित होकर चल निकलीं और आगे बढ़कर उन्होंने देखा कि भयंकर राक्षस बाणों एवं कृपाणों की वर्षा बैठकर कर रहे हैं। शक्तियों ने राक्षसो के दलों में घुसकर दैत्य को पकड़ पछाड़ा। काली ने क्रोधित होकर अनेकों को केशों से पकड़कर पछाड़ दिया तथा कई शूरमाओं को चुन-चुनकर पकड़-पकड़कर उठा दूर दूर फेंका है॥ ४१॥ ॥ पउड़ी॥ दोनों सेनाएँ आमने-सामने हैं और तीरों की नोकों से रक्त चू रहा है। तेज कृपाणों को निकालकर दुर्गा रक्त से धो रही है। ये कृपाणें ऐसे लग रही हैं, मानो रक्तबीज को अप्सराएँ घेरकर खड़ी हों या फिर दूल्हे को देखने के लिए स्त्रियाँ उसे घेरे खड़ी हों॥ ४२॥ ॥ पउड़ी॥ नगाड़ों पर चोटें पड़ रही हैं और मुकाबला जारी है। हाथों में नंगी कृपाणें नृत्य कर रही हैं और इन मांसप्रियाओं को शूरवीरों के तन में घुसेड़ा जा रहा है। घोड़ों और मर्दों

आइआँ मरदाँ घोड़िआँ । जोगणीआँ मिलि धाइआँ लोहू भक्खणा । फउजाँ मार हटाइआँ देवाँ दानवाँ । भजदी कथा सुणाईआँ राजे सुंभ थै । भुइँ न पउणै पाइआँ बूँदाँ रकत दिआँ । काली खेत खपाइआँ सभे सूरताँ । बहुती सिरी विहाइआँ घड़िआँ काल किआँ । जाणि न जाए माइआँ जूझे सूरमे ।।४३।। ।। पउड़ी ।। सुंभ सुणी करहाली स्रणवतबीज दी । रण विचि किनै न झाली दुरगा आँवदी । बहुते बीर जटाली उट्ठे आख के । चोटाँ पान तबाली जासन जुद्ध नूं । थरि थरि प्रिथमी चाली दलाँ चड़ंदिआँ । नाव जिवे है हाली शहु दरीआउ विचि । धूड़ि उताहाँ घाली छड़ी तुरंगमाँ । जाणि पुकारू चाली धरती इंद्र थै ।। ४४ ।। ।। पउड़ी ।। आहरि मिलिआ आहरीआँ सैण सूरिआँ साजी । चल्ले सउहे दुरगशाह जण काबै हाजी । तीरी तेगी जमधड़ी रण वंडी भाजी । इक घाइल घूमन सूरमे जण मकतब काजी । इक बीर परोते बरछिए जिउं झुक पउन

पर ये कालरात्रि बनकर आई हैं । रक्त पीनेवाली योगिनियाँ दौड़ रही हैं । देवों द्वारा दानवों की भगाई सेना ने राजा शुंभ को जाकर सुनाया कि रक्तबीज के रक्त की बूंदें धरती पर नहीं गिरने दी गयीं और काली ने रक्तबीज के सभी रूपों को नष्ट कर डाला है । बहुत से लोगों पर यह समय कालरात्रि के समान बीता है और शूरवीर इतने बेहाल हो गए है कि माताएँ अपने पुत्रों को भी नहीं पहचान पा रही हैं ।। ४३ ।। ।। पउड़ी ।। शुंभ ने रक्तबीज के अंत का हाल सुना और जाना कि युद्ध में दुर्गा के सम्मुख कोई नहीं टिक सका । उसी समय बहुत से जटाधारी वीर उठे और कहने लगे कि नगाड़ची नगाड़ों पर चोटें दें; हम युद्ध को जायँगे । अब इस दल की चढ़ाई देखकर पृथ्वी भय से ऐसे थरथरा उठी जैसे विस्तृत नदी में छोटी सी नाव काँप उठी हो । घोड़ों की चाल से धूल इस प्रकार ऊपर उड़ी है, मानो धरती स्वयं इंद्र के दरबार में पुकार करने चल दी हो ।। ४४ ।। ।। पउड़ी ।। लड़ाई का अवसर देख रहे शूरमाओं को एक अच्छा उद्यम का अवसर मिल गया और उन्होंने सेना को सुसज्जित किया । वे दुर्गा के सामने इस प्रकार झुंड के झुंड बनाकर चले मानो हाजी हज के लिए काबा को जा रहे हों । तीरों और तलवारों के माध्यम से रण में वीरों को निमन्त्रण दिया जा रहा है । शूरवीर घायल होकर ऐसे घूम रहे हैं, मानो अपने स्थान पर लोकचिन्ता से ग्रस्त क़ाज़ी परेशान घूम रहे हों । वीर बरछियों में पिरोये जाकर बरछियों को ऐसे झुका रहे हैं, जैसे पवन पेड़ की टहनियों को झुका देती है कुछ दुर्गा के सामने क्रोधित

निवाजी । इक दुरगा सउहे खुनसकै खुनसाइन ताजी । इक धावन दुरगा सामणे जिउँ भुखिआए पाजी । कदे न रज्जे जुज्झ ते रज्ज होए राजी ॥ ४५ ॥ ॥ पउड़ी ॥ बज्जे संगलीआले संघर डोहरे । डहे जु खेत जटाले हाठाँ जोड़िकै । नेजे बंबली आले दिस्सन ओरड़े । (मू०ग्रं०१२५) चल्ले जाण जटाले नावण गंग नूं ॥ ४६ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुरगा अतै दानवी सूल होइआँ कंगाँ । वाछड़ घत्ती सूरिआँ विच खेत खतंगाँ । धूहि क्रिपाणा तिक्खीआँ बढ लाहनि अंगाँ । पहिला दलाँ मिलंदिआँ भेड़ पइआ निहंगाँ ॥ ४७ ॥ ॥ पउड़ी ॥ ओरड़ फउजाँ आईआँ बीर चड़े कंधारी । सड़क मिआनो कढीआँ तिखीआँ तरवारी । कड़क उठे रण मच्चिआ वड्डे हंकारी । सिर धड़ बाहाँ गनले फुल जे है बाड़ी । जापे कटे बाढिआँ रुख चंदनि आरी ॥४८॥ ॥ पउड़ी ॥ दुहाँ कंधाराँ मुहि जुड़े जा सट्ट पई खरवार कउ । तक तक कैबरि दुरगशाह तक मारे भले जुझार कउ । पैदल मारे हाथीआँ संग रथ गिरे असवार कउ । सोहन संजा बागड़ा

होकर घोड़ों को दौड़ाकर भूखे भेड़ियों के समान दौड़ रहे हैं। ये ऐसे वीर थे जो कभी भी रण से तृप्त नहीं हुए थे, परन्तु आज ये सब तृप्त हो रहे हैं ॥ ४५ ॥ ॥ पउड़ी ॥ युद्ध में ज़ंजीरों से बँधे नगाड़े बज उठे है और पीठ से पीठ जोड़कर जटाधारी दैत्य भिड़ रहे हैं। उनके हाथों में पताकाओंवाली बरछियाँ दिखाई दे रही हैं और वे ऐसे लग रहे हैं, मानो ऋषि गंगास्नान को जा रहे हों ॥ ४६ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुर्गा और दानवों की सेनाएँ एक दूसरे के सामने तीखे काँटों की तरह एक-दूसरे को चुभ रही हैं। शूरवीरों ने युद्धस्थल में बाण-वर्षा की है और कृपाणें म्यान से निकालकर शत्रुओं के अंगों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए हैं। दलों के आपस मे मिलते ही तलवारों से मारकाट प्रारम्भ हो गई ॥ ४७ ॥ ॥ पउड़ी ॥ इधर सेनाएं आयीं और वृहद् एवं बलशाली वीरों ने चढ़ाई कर दी तथा खींचकर तलवारों को म्यानों से निकाल लिया। सभी क्रोधित हो उठे और इन अहंकारियों ने भीषण युद्ध प्रारम्भ कर दिया है। सिर, धड़ और भुजाएँ बगीचे में टूटे हुए फूलों के समान पड़ी हैं और शरीर ऐसे कटे पड़े हैं, मानो बढ़ई ने चंदन के वृक्षों को टुकड़े-टुकड़े कर काट फेंका हो ॥ ४८ ॥ ॥ पउड़ी ॥ जब नगाड़े पर चोट पड़ी तो दोनों दल भीषण रूप से भिड़ पड़े और दुर्गा ने लक्ष्य बाँधकर बड़े-बड़े जुझारू वीरों को बाण मारे उसने पैदल, हाथी एव रथियों को मार गिराया लोह-कवचो

जनु लगी फुल्ल अनार कउ । गुस्से आई कालका हथि सज्जे लै तरवार कउ । एदूँ पारउ ओत पार हरिनाकशि कई हज़ार कउ । जिण इक्का रही कँधार कउ । सद रहमत तेरे वार कउ ॥ ४९ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुहाँ कँधाराँ मुहि जुड़े सट्ट पई जमधाण कउ । तद खिंग नसुंभ नचाइआ डाल उपरि बरगसताण कउ । फड़ी बिलंद मँगाइओस फुरमाइस करि मुलतान कउ । गुस्से आई साम्हणे रण अंदरि घत्तण घाण कउ । अगै तेग वगाई दुरगशाह बढ्ढ सुंभन बही पलाण कउ । रड़की जाइ कै धरत कउ बढ्ढ पाखर बढ्ढ किकाण कउ । बीर पलाणो डिग्गिआ करि सिजदा सुंभ सुजाण कउ । शाबाश सलोणे खाणकउ । सदा शाबाश तेरे ताण कउ । तारीफाँ पान चबाण कउ । सद रहमत कैफाँ खाण कउ । सद रहमत तुरे नचाण कउ ॥५०॥ ॥ पउड़ी ॥ दुरगा अतै दानवी गहसंघरि कत्थे । ओरड़ उट्ठे सूरमे आ

में तीरों की नोकें ऐसी शोभायमान हो रही हैं, जैसे अनारों के पौधों में लाल-लाल फूल लगे हों । दायें हाथ में तलवार पकड़कर क्रोधित होकर कालिका आगे बढ़ी है और उसके ऐसे स्वरूप ने हिरण्यकशिपु के समान बड़े-बड़े कई हज़ार दैत्यों को मौत के घाट उतार दिया । अकेली दुर्गा ही सारी सेना को जीतती चली जा रही है । उसके भीषण प्रहारों को साधुवाद है ॥ ४९ ॥ ॥ पउड़ी ॥ फिर नगाड़े पर चोट पड़ी और दोनों सेनाएँ एक-दूसरे से जूझ उठीं । तब निशुंभ ने घोड़े पर भी कवच पहनाकर उसे नचा दिया । मुल्तान नरेश को कहकर उसने एक बड़ा धनुष मँगाया । इधर युद्धस्थल को लहू और चरबी के कीचड़ से भर देने के लिए दुर्गा आगे बढ़ी । और उसने कृपाण खींचकर मारी जो निशुंभ-समेत घोड़े की काठी को काटती हुई एवं घोड़े के कवच-समेत घोड़े को चीरती हुई धरती पर जा लगी (यहाँ "नसुंभ" के स्थान पर कवि ने छंद की लय के प्रवाह को बनाए रखने के लिए "सुंभन" लिखा है) । वीर निशुंभ शुभ को प्रणाम करता हुआ धरती पर गिर पड़ा । निशुंभ की निर्भयता एवं वीरता को देखता हुआ कवि कहता है कि हे वीर! तुम्हें भी शाबाश है, तेरे बल को भी शाबाश है । तुम्हारा अभय होकर पान चबाना भी तारीफ के लायक़ है । तुम्हारे बाण खाने को भी साधुवाद है और तुम्हारा घोड़े को अभय होकर नचाना भी तारीफ़ के क़ाबिल है ॥ ५० ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुर्गा और दानवों ने घनघोर युद्ध किया और शूरवीर एक दूसरे से आ भिड़

डाहे मत्थे। कट्ट भुजंगी केबरी दल गाहि निकत्थे। वेखनि जंग फरेशते असमानो लत्थे॥ ५१॥ ॥ पउड़ी॥ दुहाँ कँधाराँ मुह जुड़े दल घुरे नगारे। ओरड़ आए सूरमे सिरदार रणिआरे। लै कै तेगाँ बरछिआँ हथिआर उभारे। टोप पटेला पाखराँ गलि संज सवारे। लै कै बरछी दुरगशाह बहु दानव मारे। चड़े रथी गज घोड़िईं मार भुइ तेडारे। जण हलवाई सीख नाल विन्ह वड़े उतारे (मू०ग्रं०१२६)॥ ५२॥ ॥ पउड़ी॥ दुहाँ कँधाराँ मुहि जुड़े नाल धउसा भारी। लई भगउती दुरगशाह वर जागन भारी। लाई राजे सुंभ नो रतु पीऐ पिआरी। सुंभ पलाणो डिग्गिआ उपमा बीचारी। डुब रत्तू नालहु निकली बरछी दुधारी। जाण रजादी उतरी पैन्ह सूही सारी॥ ५३॥ ॥ पउड़ी॥ दुरगा अते दानवी भेड़ पइआ सबाही। शस्त्र पजूते दुरगशाह गह सभनी बाही। सुंभ निसुंभ सँघारिआ वथ जेहे साही। फउजाँ राकशिआरीआँ

तलवारों और तीरों से दलों का मंथन किया गया और इस युद्ध को देखने के लिए व्योममंडल के फ़िरिश्ते भी चलकर पहुँचे॥ ५१॥ ॥ पउड़ी॥ नगाड़ों के बजने से दोनों ओर की सेनाएँ और उत्तेजित होकर लड़ने लगीं और बड़े-बड़े शूरवीर युद्ध में शामिल हो गए। उन्होंने तलवारों, बरछियों को पकड़कर उछाला और शरीरों पर शिरस्त्राण, कवच आदि भलीभाँति लगा लिये। दुर्गा ने बरछी से बहुत से दानवों को मारा और हाथी, घोड़ों पर चढ़नेवालों और पैदलों को नष्ट कर धराशायी कर दिया। बरछी से दुर्गा ने वीरों को ऐसे बींध दिया, जैसे लौह-शलाका को लेकर हलवाई पकौड़ों को बींधकर कड़ाही से बाहर निकालता है॥ ५२॥ ॥ पउड़ी॥ दोनों सेनाओं का आमने-सामने नगाड़ों की चोट पर युद्ध चल रहा है और दुर्गा ने वज्र के समान अग्नि फेंकनेवाली कृपाण को हाथ में पकड़कर उसे शुंभ का रक्त पिलाने के लिए शुंभ पर चला दिया है। वह प्रेमिका के समान शुंभ का रक्त पीने लगी और शुंभ घोड़े की काठी से गिरकर नीचे आ पड़ा। रक्तरंजित बरछी जब शुंभ के शरीर से बाहर निकली है, तो कवि ने यह उपमा दी है कि वह ऐसी लग रही है, मानो राजकन्या लाल साड़ी पहनकर महल से बाहर निकली हो॥५३॥ ॥ पउड़ी॥ दुर्गा और दानवों का भीषण संग्राम हुआ और दुर्गा ने अपनी सभी भुजाओं में बड़े-बड़े शस्त्र पकड़े हुए हैं। देवी ने शुंभ-निशुंभ जैसे बलियों को मार गिराया है और असुरों की सेना यह दृश्य देखकर भीषण चीत्कार एवं विलाप कर रही है। शस्त्रों को फेर मुँह मे था—

देखि रोवनि धाही । मोहि कुड़चे घाह दे छड्ड घोड़े राही । भजदे होए मारीअन मुड़ झाकन नाही ।।५४।। ।। पउड़ी ।। सुंभ निसुंभ पठाइआ जम दे धाम नो । इंदर सद्द बुलाइआ राज अभखेखनो । सिर पर छत्र फिराइआ राजे इंद्र दे । चउदह लोकाँ छाइआ जसु जगमात दा । दुरगा पाठ बणाइआ सभे पउड़ीआँ । फेर न जूनी आइआ जिन इह गाइआ ।। ५५ ।।

तिनके पकड़कर अपनी हार मानकर घोड़ों को छोड़कर दैत्य भाग खड़े हुए हैं। उन भागे जाते हुओं को भी मार पड़ रही है और वे फिर पलटकर पीछे नहीं देखते ।। ५४ ।। ।। पउड़ी ।। देवी ने शुंभ और निशुंभ को यमपुरी भेजकर इंद्र को अभिषेक कर उसे राज देने के लिए बुलाया और उसके सिर पर छत्र धारण करवाया। इस प्रकार चौदह भुवनों में जगत्माता का यश व्याप्त हो गया। यह दुर्गा-पाठ सभी 'पउड़ी' छंदों मे रचा गया है, जिसने भी इसका गायन किया है वह आवागमन से मुक्त हो गया है ।। ५५ ।।

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।। स्री भगउती जी सहाइ ।।

अथ गिआन प्रबोध ग्रंथ लिख्यते ।।

पातिशाही १० ।। भुजंग प्रयात छंद ।। त्व प्रसादि ।।

नमो नाथ पूरे सदा सिद्ध करमं । अछेवी अभेदी सदा एक धरमं । कलंकं बिना निहकलंकी सरूपे । अछेदं अभेदं अखेदं अनूपे ।। १ ।। नमो लोक लोकेस्वरं लोक नाथे । सदैवं सदा सरब साथं अनाथे । नमो एक रूपं अनेकं सरूपे । सदा

ज्ञानप्रबोध ग्रंथ का लेखन

।। भुजंग प्रयात छंद ।। ।। तेरी कृपा से ।। हे नाथ एवं सम्पूर्ण सिद्धि कर्मों के स्वामी ! तुम्हें नमस्कार है। तुम अक्षय, अभेद तथा समरूप रहनेवाले निष्कलंक हो। तुम अक्षय, अभेद, शोक-रहित एवं अनुपम हो। १ ।। हे लोकेश्वर एवं सर्वलोकों के नाथ ! तुम्हें है तुम

सरब शाहं सदा सरब भूपे ।। २ ।। अछेदं अभेदं अनामं अठामं । सदा सरबदा सिद्धदा बुद्धि धामं । अजंत्रं अमंत्रं अकंत्रं अभरमं । अखेदं अभेदं अछेदं अकरमं ।। ३ ।। अगाधे अबाधे अगंतं अनंतं । अलेखं अभेखं अभूतं अगंतं । न रंगं न रूपं न जातं न पातं । न सत्रो न मित्रो न पुत्रो न मातं ।। ४ ।। अभूतं अभंगं अभिखं भवानं । परेयं पुनीतं पवित्रं प्रधानं । अगंजे अभेजं अकामं अकरमं । अनते बिअते अभूमे (मू०ग्रं०१२७) अभरमं ।। ५ ।। नही जान जाई कछू रूप रेखं । कहा बासु ताको फिरै कउन भेखं । कहा नाम ताको कहा कै कहावै । कहा मै बखानो कहे मै न आवै ।। ६ ।। अजोनी अजै परम रूपी प्रधानै । अछेदी अभेदी अरूपी महानै । असाधे अगाधे अगंजुल गनीमे । अरंजुल अराधे रहाकुल रहीमे ।। ७ ।। सदा सरबदा सिद्ध दा बुद्धि दाता । नमो लोक लोकेश्वरं लोक ज्ञाता । अभेदी अभै आदि रूपं अनंतं । अछेदी अछै आदि

नित्य, सबके साथी एवं सबके नाथ हो । हे एक स्वरूप में तथा अनेकों स्वरूपों में दिखाई देनेवाले, सबके स्वामी तथा सबके सम्राट् ! तुम्हें नमस्कार है ।। २ ।। तुम अक्षय, अभेद, अनाम, स्थानातीत, सर्वसिद्धियों के स्वामी, बुद्धि के सागर, यंत्रों, मंत्रों, क्रियाओं एवं भ्रमों से परे, शोकातीत, भेदातीत, अक्षय तथा निष्कर्म हो ।। ३ ।। तुम अगाध, अबाध, गतियों से परे, अनन्त, अगोचर, निर्वेश, अभूत एवं निराकार हो । तुम्हारा न रंग है, न रूप, न जाति, न शत्रु, न मित्र, न पुत्र तथा न ही माता है ।। ४ ।। तुम अभूत, अभंजनशील एवं किसी से भी कुछ न माँगनेवाले, सर्वातीत, पुनीत, पवित्र तथा सबसे प्रधान हो । तुम अनश्वर, अभंजनशील, कामनातीत निष्कर्म, अनंत, व्यापक तथा भ्रम-रहित हो ।। ५ ।। तुम्हारे आकार-प्रकार के बारे में नहीं जाना जा सकता । तुम्हारा कौन सा वेष तथा आवास है और तुम कहाँ किस नाम से जाने जाते हो, इसका मैं क्या वर्णन करूँ ? मुझसे यह वर्णन नहीं हो सकता ।। ६ ।। हे प्रभु ! तुम अयोनि, अजेय तथा सारे संसार का परम रूप हो । तुम अक्षय, अभेद, अरूप, महान, असाध्य, अगाध एवं शत्रुओं द्वारा नष्ट न होनेवाले हो । तुम सब आराधनाओं से परे तथा दुःखों की फाँस को काटनेवाले कृपालु हो ।। ७ ।। तुम सर्वदा सिद्धि एवं बुद्धिप्रदाता हो तथा हे लोक-लोकेश्वर तथा संसार के सभी रहस्यों के वेत्ता ! तुम्हें नमस्कार है । तुम भेदातीत, अभय एवं आदिस्वरूप हो तथा अक्षय एवं घोर कठिनाई से भी प्राप्त न हो सकने

अद्वै दुरंतं ॥ ८ ॥ ॥ नराज छंद ॥ अनंत आदि देव हैं। बिअंत भरम भेव हैं। अगाधि ब्याधि नास हैं। सदैव सरब पास हैं ॥ १ ॥ ९ ॥ बचित्र चित्र चाप हैं। अखंड दुष्ट खाप हैं। अभेद आदि काल हैं। सदैव सरब पाल हैं ॥ २ ॥ १० ॥ अखंड चंड रूप हैं। प्रचंड सरब भूप हैं। कि काल हूँ के काल हैं। सदैव रच्छपाल हैं ॥ ३ ॥ ११ ॥ क्रिपाल द्याल रूप हैं। सदैव सरब भूप हैं। अनंत सरब आस हैं। परेव परम पास हैं ॥ ४ ॥ १२ ॥ अद्रिष्ट अंत्र ध्यान हैं। सदैव सरब मान हैं। क्रिपाल कालहीन हैं। सदैव साध अधीन हैं ॥ ५ ॥ १३ ॥ भजस तुयं। भजस तुयं ॥ रहाउ ॥ अगाधि ब्याधि नासनं। परेय परम उपाशनं। त्रिकाल लोक मान हैं। सदैव पुरख प्रधान हैं ॥ ६ ॥ १४ ॥ तथस तुयं। तथस तुयं ॥ रहाउ ॥ क्रिपाल द्याल करम हैं। अगंज भंज भरम हैं। त्रिकाल लोकपाल हैं। सदैव सरब

वाले अद्वैतस्वरूप हो ॥ ८ ॥ ॥ नराज छंद ॥ आदिदेव परमात्मा अनंत है तथा संसार में उससे संबंधित भ्रम भी अनंत हैं। वह परमात्मा गम्भीर व्याधियों का नाशक है तथा सर्वदा सबके पास बना रहनेवाला भी है ॥ १ ॥ ९ ॥ उसका स्वरूप विभिन्न प्रकार की चित्रकला का स्वरूप है और वह भयंकर शत्रुओं का नाश करनेवाला है। वह आदिकाल से ही अभेद है तथा सर्वदा सबका पोषण करनेवाला है ॥ २ ॥ १० ॥ वह प्रचंड रूप से अखंड ज्योतिस्वरूप है और सबको अपने प्रचंड तेज से प्रकाशित करनेवाला है। वह काल का भी काल है और सर्वदा सबका रक्षक है ॥ ३ ॥ ११ ॥ वह कृपालु दयालुता का रूप है तथा सबका सम्राट् है। वह अनन्त जीवों की आशा है तथा दूर से दूर होता हुआ भी सबके परम समीप है ॥ ४ ॥ १२ ॥ वह प्रभु अदृष्ट एवं सबके ध्यान में सदैव बना रहनेवाला, सबका स्वाभिमान है। वह कृपालु कालातीत है, परन्तु सर्वदा सन्तों के अधीन है ॥ ५ ॥ १३ ॥ सदैव उसी का भजन करो ॥ रहाउ ॥ वह प्रभु भीषण व्याधियों का नाशक एवं दूर-से-दूर होने के बावजूद सबकी उपासना का परम लक्ष्य है। वह तीनों कालों में लोगों द्वारा मान्य है तथा सर्वदा प्रधान (तत्त्व) है ॥ ६ ॥ १४ ॥ वह तू ही है, वह तू ही है ॥ रहाउ ॥ वह कृपालु दयालुता के कर्म करता है, अभंजनशील तथा भ्रमों का नाशक है। तीनों कालों में वह लोकपाल परमात्मा सर्वदा दयालु बना रहता है ७ १५ उसी का जाप

द्याल हैं ॥ ७ ॥ १५ ॥ जपस तुयं । जपस तुयं ॥ रहाउ ॥ महान मोन मान हैं । परेव परम प्रधान हैं । पुरान प्रेत नासनं । सदेव सरब पासनं ॥ ८ ॥ १६ ॥ प्रचंड अखंड मंडली । उदंड राज सु थली । जगंत जोति ज्वाल का । जलंत दीपमाल का ॥ ९ ॥ १७ ॥ क्रिपाल द्याल लोचनं । मचंक बाण मोचनं । सिरं किरीट धारियं । दिनेश क्रित हारियं ॥ १० ॥ १८ ॥ बिसाल लाल लोचनं । मनोज मान मोचनं । सुभंत सीस सु प्रभा । चकंत चारु चंद्रका ॥ ११ ॥ ॥ १९ ॥ जगंत जोत ज्वालका । छकंत राज सु प्रभा । जगंत जोति जैतसी । बदंत (मू०ग्रं०१२८) क्रित ईसुरी ॥ १२ ॥ ॥ २० ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ अनकाद सरूपं अमित बिभूतं अचल सरूपं बिसु करणं । जग जोति प्रकासं आदि अनासं अमित अगासं त्रब भरणं । अनगंज अकालं बिसु प्रतिपालं दीन दिआलं सुभ करणं । आनंद सरूपं अनहदि रूपं

करो ॥ रहाउ ॥ वह शान्त रहनेवाला महान है तथा परे-से-परे अवस्थित परमप्रधान है । वह भयंकर प्रेतों का नाशक है तथा सर्वदा सबके समीप बसनेवाला है ॥ ८ ॥ १६ ॥ अखंड मंडलों में निवास करने वाला, वह प्रचण्ड रूप से प्रकाशित होनेवाला, भव्य स्थल पर विराजमान तथा निडर है । उसकी ज्योति की ज्वाला दीपमालिका की तरह जलती रहती है ॥९॥१७॥ उसके कृपालु लोचन सदैव दयालु हैं और वह कामदेव के बाणों को नष्ट करनेवाला है । उसने सिर पर सुन्दर मुकुट धारण कर रखा है तथा उसके कृत्यों को देखकर सूर्य भी लज्जित होता है ॥१०॥१८॥ उसके विशाल लाल नेत्र कामदेव का भी दर्प चूर करनेवाले हैं तथा उसके शीश की सुप्रभा को देखकर चन्द्रमा की सुन्दर किरणें भी चकित हो जाती हैं ॥ ११ ॥ १९ ॥ उसकी जलती हुई ज्योति को देखकर उसकी राज्य-सभा (विश्व) परम आनन्द को प्राप्त करती है । उसी की परम ज्योति की पार्वती भी वंदना करती है ॥ १२ ॥ २० ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ दुःखों से रहित, अपरिमित विभूतियों के स्वामी, नित्यस्वरूप वाले हे प्रभु ! तुम विश्व के मूल कारण हो । तुम आदिकाल से अनश्वर हो और तुम्हारी ज्योति जगत को प्रकाशित करती चली आ रही है तथा संपूर्ण आकाश को भरे हुए है। तुम अभंजनशील, कालातीत, विश्व-पालक, दीनदयालु एवं शुभकर्मों के कर्ता हो । हे आनन्द एवं अनहद-स्वरूप अपरिमित विभूतियों के प्रतीक परमात्मा ! मैं तुम्हारा शरणागत

अमित बिभूतं तव सरणं ॥ १ ॥ २१ ॥ बिस्वंभर भरणं जगत प्रकरणं अधरण धरणं स्रिष्ट करं । आनंद सरूपी अनहृद रूपी अमित बिभूती तेज बरं । अनखंड प्रतापं सभ जग थापं अलख अतापं बिस्सु करं । अद्वै अबिनासी तेज प्रकासी सरब उदासी एक हरं ॥ २ ॥ २२ ॥ अनखंड अमंडं तेज प्रचंडं जोति उदंडं अमित मतं । अनभै अनगाधं अलख अबाधं बिस्सु प्रसाधं अमित गतं । आनंद सरूपी अनहृद रूपी अचल बिभूती सभ सरणं । अनगाधि अबाधं जगत प्रसाधं सरब अराधं तव शरणं ॥ ३ ॥ २३ ॥ अकलंक अबाधं बिस्सु प्रसाधं जगत अराधं भव नासं । बिसिभंभर भरणं किलविख हरणं पतत उधरणं सभ साथं । अनाथन नाथे अकित अगाथे अमित अनाथे दुख हरणं । अगंज अबिनासी जोति प्रकासी जगत प्रणासी तुव सरणं ॥ ४ ॥ २४ ॥ ॥ कलस ॥ अमित तेज जग जोति प्रकासी । आदि अछेद अछै अबिनासी । परम तत्त परमार्थ

हूँ ॥ १ ॥ २१ ॥ हे प्रभु ! तुम विश्व के भरण-पोषण करनेवाले, जगत के कारण, निरालम्बों के आश्रय एवं सृष्टि के कर्ता हो । हे आनंद एवं अनहद के स्वरूप ! तुम अनंत विभूतियों के स्वामी परम तेजवान हो । सारे विश्व की स्थापना करनेवाले अखंड प्रतापी हे ईश्वर ! तुम विश्व के कर्ता, अद्वैत, अविनाशी, प्रकाशमान, निर्लिप्त, एक ही परमात्मा हो ॥ २ ॥ २२ ॥ तुम अखंड, अमडनशील, प्रचंड ज्योति एवं तेज वाले अपरिमित बुद्धि के स्वामी हो । तुम अभय, अबाध, विश्व के लिए साध्य एवं अनंत गतिशील हो । हे प्रभु ! तुम आनंद एवं अनहदस्वरूप हो, अचल विभूतियों के स्वामी तथा विश्व के तारणहार हो । हे परमात्मा ! तुम अगाध, अबाध, विश्व की चेतना का लक्ष्य एवं सबके आराध्य हो । मैं तुम्हारा शरणागत हूँ ॥ ३ ॥ २३ ॥ हे विश्व के लिए साधना योग्य निष्कलंक, अबाध, जगत् के आराध्यदेव तथा कष्टों का नाश करनेवाले, विश्व का पोषण करने वाले, क्लेशों का नाश करनेवाले, पतितों का उद्धार करनेवाले परमात्मा तुम सबके साथ बने रहनेवाले हो । हे अनाथों के नाथ, सभी क्रियाओं से परे सभी कथाओं से परे तुम अमित दुःखों को दूर करनेवाले हो । अभंजनशील, अविनाशी, प्रकाशमान ज्योति तथा जगत् के संहारक प्रभु ! मैं तुम्हारी शरण में हूँ ॥ ४ ॥ २४ ॥ ॥ कलस (छंद) ॥ हे अपरिमित तेज वाले तथा अपने ज्योति से जगत को प्रकाशित करनेवाले प्रभु आदि, अक्षय एवं अविनाशी हो तुम त्व एवं परमार्थ का मार्ग प्रकाशित

प्रकासी । आदि सरूप अखंड उदासी ॥५॥२५॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ अखंड उदासी परम प्रकासी आदि अनासी बिस्व करं । जगतावल करता जगत प्रहरता सभ जग भरता सिद्ध परं । अछै अबिनासी तेज प्रकासी रूप सुरासी सरब छितं । आनंद सरूपी अनहद रूपी अलख बिभूती अमित गतं ॥ ६ ॥ २६ ॥ ॥ कलस ॥ आदि अभै अनगाधि सरूपं । राग रंगि जिह रेख न रूपं । रंक भयो रावत कहुँ भूपं । कहुँ समुंद सरता कहुँ कूपं ॥ ७ ॥ २७ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ सरता कहुँ कूपं समुद सरूपं अलख बिभूतं अमित गतं । अद्वै अबिनासी परम प्रकासी तेज सुरासी अक्रित क्रितं । जिह रूप न रेखं अलख अभेखं अमित अद्वैखं सरब मई । सभ किलबिख हरणं पतित उधरणं असरणि सरणं एक दई ॥ ८ ॥ २८ ॥ ॥ कलस ॥ (मू०ग्रं०१२८) आजानुबाहु सारं कर धरणं । अमित जोति जग जोत प्रकरणं । खड़ग पाण खल दल बल हरणं । महाबाहु बिस्वंभर

करनेवाले हो तथा तुम सबका परमस्वरूप होते हुए भी सबसे निर्लिप्त हो ॥ ५ ॥ २५ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ हे प्रभु ! तुम निरन्तर तटस्थ, परम-प्रकाश, आदि-अनश्वर एवं विश्वकर्ता हो । जगत के कारण, संहारक एवं पोषणकर्ता तथा सभी सिद्धियों के भंडार हो । तुम अक्षय, अविनाशी, तेजस्वी एवं सारी पृथ्वी की रूपराशि हो । हे प्रभु ! तुम ही आनन्द, अनहद-स्वरूप, अदृश्य विभूतिस्वरूप एवं अपरिमित गतियों के स्वामी हो ॥ ६ ॥ २६ ॥ ॥ कलस ॥ हे प्रभु ! तुम आदिकारण, अभय एवं गम्भीर स्वरूप वाले हो । तुम्हें राग रंग, आकार-प्रकार से कोई सरोकार नहीं । कहीं तुम भिखारी हो तथा कहीं तुम ही राजा के स्वरूप में शोभायमान हो । कहीं तुम विशाल समुद्र हो, कहीं तुम नदी हो तथा कहीं तुम ही एक छोटे से कुएँ के समान हो ॥७॥२७॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ कहीं तुम कूप, समुद्र, सरिता एवं अदृश्य विभूतिस्वरूप अनंत रूप से गतिशील हो । तुम अद्वैत, अविनाशी, परम प्रकाशमान, तेज-राशि एवं निष्कर्म हो । जिसका रूप, आकार, वेश, शत्रु, कोई नहीं है और जो अनन्त रूप से सर्वमय है, वह सर्वदु:खहर्ता, पतितों के उद्धार करनेवाले निरालम्बों को शरण देनेवाले एक परमात्मा ही हैं ॥ ८ ॥ २८ ॥ ॥ कलस ॥ वह लम्बी भुजाओं वाला शस्त्रधारी, अपरिमित ज्योति वाला सारे विश्व के कारणों का कारण है । वह खड्ग को धारण कर दुष्टों को बलहीन करनेवाला महाबाहु एवं विश्व का भरण-पोषण करनेवाला है । ९ २९ ।

भरणं ॥९॥२९॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ खल दल बल हरणं दुस्ट बिडरणं असरण सरणं अमित गतं । चंचल चख चारण मच्छ बिडारण पाप प्रहारण अमित मतं । आजान सु बाहं शाहन शाहं महिमा माहं सरब मई । जल थल बन रहिता बन त्रिनि कहिता खल दलि दहिता सु नरि सही ॥ १० ॥ ३० ॥ ॥ कलस ॥ अति बलिस्ट दल दुस्ट निकंदन । अमित प्रताप सगल जग बंदन । सोहत चारु चित्र कर चंदन । पाप प्रहरन दुस्ट दल दंडन ॥ ११ ॥ ३१ ॥ ॥ छपै छंद ॥ बेद भेद नहि लखै ब्रहमु ब्रहमा नही बुझै । ब्यास परासुर सुक सनादि शिव अंतु न सुझै । सनतिकुअर सनकादि सरब जउ समा न पावहि । लख लखमी लख बिशन किशन कई नेत बतावहि । असंभ रूप अनभै प्रभा अति बलिस्ट जलि थलि करण । अचुत अनंत अद्वै अमित नाथ निरंजन तव शरण ॥ १ ॥ ३२ ॥ अचुत अभै अभेद अमित आखंड अतुल बल । अटल अनंत अनादि अखै

॥ त्रिभंगी छंद ॥ दुष्टों के बल को हरनेवाले, शत्रुओं को नष्ट करनेवाले अनन्त रूपों से गतिशील प्रभु ! तुम ही हो । तुम्हारे चंचल नेत्र मछलियों की चंचलता को भी मात देनेवाले हैं । तुम अपने अपरिमित बुद्धि-कौशल से पापों का नाश करनेवाले हो । हे प्रभु ! तुम लम्बी भुजाओं वाले शहंशाह हो, तुम्हारी महिमा सर्वत्र व्याप्त है । तुम जल, स्थल आदि में सर्वत्र व्याप्त हो और वन, तृण सब तेरा यही गुणानुवाद कर रहे हैं कि तुम ही शत्रुओं के दलों का नाश करनेवाले परमपुरुष हो ॥ १० ॥ ३० ॥ ॥ कलस ॥ हे परमात्मा ! तुम अत्यन्त बलवान और दुष्टों के दलों का खंडन करनेवाले हो । तुम अनन्त प्रतापशाली और संपूर्ण जगत के लिए वंदनीय हो । प्रभु की चन्द्रमा के समान सुन्दर चित्रकारी शोभायमान लगती है तथा हे प्रभु ! तुम ही पापों का हरण करनेवाले तथा दुष्टों को दंडित करने वाले हो ॥ ११ ॥ ३१ ॥ ॥ छप्पय छंद ॥ ब्रह्म का रहस्य वेद, ब्रह्मा, व्यास, पराशर, शुक, सनकादि तथा शिव भी नहीं जान सके । सनत्कुमार आदि भी उसकी प्राप्ति के समय का वर्णन नहीं कर सकते । लक्ष्मी, लाखों विष्णु तथा कृष्ण उसे नेति, नेति कहते हैं । वह स्वयं से उद्भूत, अभय, प्रभायुक्त, अतिबलशाली एवं जल-स्थल का निमित्त एवं उपादान कारण है । हे प्रभु ! तुम अच्युत, अनन्त, अद्वैत, अपरिमित, नाथों के नाथ, निरंजन हो, मैं तुम्हारा शरणागत हूँ ॥ १ ॥ ३२ ॥ हे प्रभु ! तुम अटल, अभय, अद्वैत, अखंड एवं अतुल बलशाली हो । तुम अनन्त, अनादि, अक्षय, मखण्ड एवं प्रबल शक्तियों के स्वामी हो तुम अपरिमित तौल वाले,

आखंड प्रबल दल । अमित अमित अनतोल अभू अनभेद अभंजन । अनबिकार आतम सरूप सुर नर मुन रंजन । अबिकार रूप अन भै सदा मुन जन गन बंदत चरन । भव भरन करन दुख दोख हरन अति प्रताप भ्रम भै हरन ॥२॥३३॥ ॥ छपै छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ मुख मंडल परिलसत जोति उदोत अमित गत । जटित जोत जगमगत लजत लख कोटि निखतिपति । चक्रवरति चक्रवै चक्रत चउचक्र करि धरि । पदमनाथ पदमाछ नवल नाराइण नरहरि । कालख बिहंत किलबिख हरण सुर नर मुन बंदत चरण । खंडण अखंत मंडण अभै नमो नाथ भव भै हरण ॥ ३ ॥ ३४ ॥ ॥ छपै छंद ॥ नमो नाथ म्रिदुदाइ नमो निम रूप निरंजन । अगंजाण अगजण अभंज अनभेद अभंजन । अछै अखै अबिकार अभै अनभिज्ज अभेदन । अखै दान खेदन अखिज्ज अनछिद्र अछेदन । आजानबाहु सारंगधर (मू०ग्रं०१३०) खड्ग पाण दुरजन दलण । नर वर नरेश नाइक न्रिपणि नमो नवल जल

अजन्मा, अभेद एवं अभंजनशील हो। हे प्रभु ! तुम निर्विकार आत्मस्वरूप एवं सुर, नर तथा मुनियों की प्रसन्नता में वृद्धि करनेवाले हो। हे विकारों से परे प्रभु पिता ! मुनिगण सदैव तुम्हारी चरण-वंदना करते हैं और तुम संसार के पोषक, दुःख-दोषों के हर्ता अतिप्रतापी तथा भ्रम और भय को दूर करनेवाले हो ॥ २ ॥ ३३ ॥ ॥ छप्पय छंद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ अपरिमित गतियुक्त ज्योति तुम्हारे मुखमंडल पर शोभित है और यह ज्योति करोड़ों चन्द्रमाओं की ज्योति के समान लग रही है। कालचक्र को धारण किए हुए तुम्हें देखकर बड़े चक्रवर्ती सम्राट् चकित हो उठते हैं। तुम ही पदमनाथ विष्णु एवं पद्म-नेत्रों वाली लक्ष्मी हो। तुम ही नारायण एवं हरिस्वरूप नर हो। तुम समस्त कालिमाओं को नष्ट करनेवाले, विकारों के हर्ता हो और सुर, नर, मुनि आदि तुम्हारी ही चरण-वंदना करते हैं। तुम ही अखंड माने जानेवालों का खण्डन कर उन्हें पुनः मंडित कर देनेवाले अभय हो। हे भयहरण नाथ ! तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥ ३ ॥ ३४ ॥ ॥ छप्पय छंद ॥ हे दयालु ! विनम्रता के स्वरूप निरंजननाथ ! तुम्हें नमस्कार है। हे अभंजनशील एवं अभेद प्रभु ! तुम्हें नमस्कार है। हे अक्षय दानी, अविकार, नष्ट न होनेवाले, छिद्रातीत प्रभु ! तुम्हें नमस्कार है। हे आजानबाहु, धनुष एवं खड्ग को धारण कर दुर्जनों को नष्ट करनेवाले, नरेश, नायक जल-स्थल सर्वत्र रमण करनेवाले प्रभु ! तुम्हें नमस्कार

थल रवण ॥ ४ ॥ ३५ ॥ दीन दयाल दुख हरण दुरत हंता दुख खंडण । महाँ मोन मन हरन मदन मूरत मह मंडन । अमित तेज अबिकार अखै आभंज अमित बल । निरभंज निरभउ निरवैर निरजुर न्रिप जल थल । अछै सरूप अछू अछित अछै अछान अछै अछर । अद्वै सरूप अदिय अमर अभिबंदत सुर नर असुर ॥ ५ ॥ ३६ ॥ कुल कलंक करि हीन क्रिपा सागर करुणाकर । करण कारण समरत्थ क्रिपा की सूरत क्रित धर । काल करम कर हीन क्रिआ जिह कोइ न बुज्झै । कहा कहै कह करै कहा कालन कै सुज्झै । कंजल्क नैन कबू ग्रीवहि कटि केहर कुंजर गवन । कदली कुरंक करपूर गत बिन अकाल दुज्जो कवन ॥ ६ ॥ ३७ ॥ ॥ छपै छंद ॥ अलख अरूप अलेख अभै अनभूत अभंजन । आदि पुरख अबिकार अजै अनगाध अगंजन । निरबिकार निरजुर सरूप निरद्वैख निरंजन । अभंजान भंजन अनभेद अनभूत अभंजन । शाहान शाह सुंदर सुमत बड सरूप बडवै बखत । कोटिक

है ॥ ४ ॥ ३५ ॥ तुम दीनदयालु, दुःखहर्ता, दुःख एवं दुर्बुद्धि के नाशक, परम शान्त, मनोहर कामदेव धरती के कर्ता हो । तुम अपरिमित तेजस्वी, अविकारी एवं अक्षय बलशाली हो । तुम कभी भी न टूट सकनेवाले, अभय, शत्रुता-रहित जल-स्थल के अधिपति हो । हे प्रभु ! तुम अक्षयस्वरूप, कभी भी स्पर्श न किए जा सकनेवाले अक्षर (ब्रह्म) हो; तुम ही अद्वैत दिव्य अमर हो और सुर, नर, असुर सब तेरी ही वंदना करते हैं ॥ ५ ॥ ३६ ॥ समस्त लोगों को कलंकों से दूर करनेवाले कृपासागर ! तुम करुणा करनेवाले हो । तुम ही करण, कारण समर्थ कृपा की मूर्ति हो । तुम काल, कर्म एवं करों से रहित हो, परन्तु फिर भी तुम्हारी क्रियाओं का रहस्य कोई नहीं जान सकता । किसे पता है कि कब तुम क्या कहोगे और क्या करोगे । तुम कमलनयन, शंख-ग्रीवा (गर्दन), सिंह के समान कमर वाले और मस्त हाथी की चालवाले हो । तुम्हारी जँघाएँ केले के समान, गति हिरण के समान, सुगन्ध कपूर के समान है । हे अकाल (पुरुष) ! इन गुणों वाला तुम्हारे सिवा अन्य कौन हो सकता है ॥ ६ ॥ ३७ ॥ ॥ छप्पय छंद ॥ हे प्रभु ! तुम अदृश्य, अरूप, अलेख, अभय, अभूत, अभंजन, आदिपुरुष, निर्विकार, अजय, अगाध एवं अविनाशी हो । तुम अविकारी, सुन्दर स्वरूप वाले, द्वेषरहित निरंजन (कालिमाओं से रहित) हो । न नष्ट हो सकनेवालों के नाशक, अभेद, भूतातीत एव हो तुम सम्राटो के सम्राट सुन्दर

प्रताप भूअ भान जिम तपत तेज इसथित तखत ॥ ७ ॥ ३८ ॥
॥ छपै छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ चक्कल चार चक्कवै चक्कत चउकुंट चवग्गन । कोट सूर सम तेज तेज नही दून चवग्गन । कोट चंद चक परै तुल्ल नही तेज बिचारत । ब्यास परासर ब्रहम भेद नहि बेद उचारत । शाहान शाह साहिब सुघरि अति प्रताप सुंदर सबल । राजान राज साहिब सबल अमित तेज अच्छै अछल ॥८॥३९॥ ॥ कबितु ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ गह्यो जो न जाइ सो अगाह कै कै गाइअतु छेद्यो जो न जाइ सो अछेद कै पछानिऐ । गंज्यो जो न जाइ सो अगंज कै कै जानिअतु भंज्यो जो न जाइ सो अभंज कै कै मानिऐ । साध्यो जो न जाइ सो असाधि कै कै साध कर छल्यो जो न जाइ सो अछल कै प्रमानिऐ । मंत्र मै न आवै सो अमंत्र कै कै मानु मन जंत्र मै न आवै सो अजंत्र कै कै जानिऐ ॥ १ ॥ ४० ॥
॥ कबितु ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ जात मै न आवै सो अजात कै कै जानु जीअ (मू०ग्रं०१२१) पात मै न आवै सो अपात कै बुलाइऐ ।

सुमति एवं विराट् स्वरूप वाले दानी हो । करोड़ों सूर्यों का तेज लेकर तुम अपने सिंहासन पर विराजमान हो ॥ ७ ॥ ३८ ॥ ॥ छप्पय छंद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ चारों दिशाएँ, सुन्दर चक्रवर्ती राजा तुम्हारे सौन्दर्य को देखकर आश्चर्यचकित है । करोड़ों सूर्यों से भी दूना, चौगुना तेज तुम्हारे पास है । तुम्हारे तेज का विचार करोड़ों चन्द्रमा भी नहीं कर सकते हैं । व्यास, पराशर ऋषि, वेद आदि भी ब्रह्म के रहस्य का उच्चारण नहीं कर सकते । तुम सम्राटों के सम्राट् अति सुन्दर एवं बलशाली हो । तुम अमित तेज वाले, अक्षय एवं किसी के द्वारा भी न छले जानेवाले हो ॥ ८ ॥ ३९ ॥
॥ कवित्त ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ जिसको पकड़ा न जा सके उसे अगम्य एवं जिसका भेदन न किया जा सके उसे अभेद के नाम से जाना जाता है । जिसका नाश न हो सके उसे अनश्वर तथा जिसको तोड़कर विभक्त न किया जा सके उसे अभंजन के नाम से जाना जाता है । जिसकी साधना न हो सके उसे असाध्य तथा जिसे छला न जा सके उसे अछल के नाम से जाना जाता है । जो मन्त्रों से वश में नहीं आता उसे मन्त्रातीत तथा जो किसी यन्त्र से वश में नहीं आता उसे सब यन्त्रों से परे जाना जाता है ॥ १ ॥ ४० ॥ ॥ कवित्त ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ हे मन ! जो किसी जाति में नहीं आता उसे अजाति समझ और जो किसी भी पंक्ति में नहीं बाँधा जा सकता उसे अपाँति के नाम से पुकारा जाता है । जो सब भेदों

भेद मै न आवै सो अभेद कै कै भाखिअतु छेद्यो जो न जाइ सो अछेद कै सुनाइऐ । खंड्यो जो न जाइ सो अखंड जू को ख्यालु कीजै ख्याल मै न आवै गम्मु ताको सदा खाइऐ । जंत्र मै न आवै सो अजंत्र कै कै जापिअतु ध्यान मै न आवै ताको ध्यानु कीजै ध्याइऐ ॥ २ ॥ ४१ ॥ ॥ कबितु ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ छत्र-धारी छत्रीपति छैलरूप छितनाथ छोणी कर छाइआ बर छत्रीपत गाइऐ । बिस्वनाथ बिस्वंभर बेदनाथ बाला कर बाजीगरि बान धारी बंधन बताइऐ । निउली करम दूधाधारी बिद्याधर ब्रहमचारी ध्यान को लगावै नैक ध्यान हूँ न पाइऐ । राजन के राजा महाराजन के महाराजा ऐसो राज छोडि अउर दूजा कउन ध्याइऐ ॥ ३ ॥ ४२ ॥ ॥ कबितु ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ जुद्ध के जितइआ रंगभूम के भवइआ भारभूम के मिटइआ नाथ तीन लोक गाइऐ । काहू के तनइआ है न मइआ जा के भइआ कोऊ छउनी हू के छइआ छोड का सिउ प्रीत

से परे है उसे अभेद के नाम से और जो छेदा न जा सके उसे अछेद के नाम से जाना जाता है । जिसका खंडन नहीं हो सकता, जो एक रस है, उस अखंड के नाम से उसका ध्यान करो और जो विचारातीत है सदैव उसी का स्मरण करो । जो यन्त्रों में नहीं बँधता, उस अयन्त्र का जाप करना चाहिए और जो सब मानसिक चेष्टाओं (ध्यानों) से परे है उसका सदैव ध्यान कीजिए ॥ २ ॥ ४१ ॥ ॥ कवित्त ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ उस परमात्मा को छत्रधारी, सुन्दर स्वरूप वाला, पृथ्वीपति छत्रनाथ के नाम से जाना जाता है । वही विश्वनाथ, विश्वपोषक, वेदों का स्वामी, बालाजी, बाजीगर अर्थात् विभिन्न कौतुक दिखानेवाला तथा जीवों को बंधनों में भी डालनेवाला है । कितने ही न्यौली कर्म करनेवाले, मात्र दूध का आहार करनेवाले, विद्वान एवं ब्रह्मचारी उसका ध्यान लगाते हैं, परन्तु उसका ध्यान नहीं कर पाते । हे प्रभु ! तुम राजन के राजा और महाराजाओं के भी सम्राट् हो । तुम्हारे जैसे को छोड़कर अन्य किस पर ध्यान लगाया जा सकता है (अर्थात् किसी पर नहीं ।) ॥ ३ ॥ ४२ ॥ ॥ कवित्त ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ युद्ध को जितानेवाले, रंगभूमियों में भ्रमण करनेवाले तथा पृथ्वी के भार के हलका करनेवाले नाम का तीनों लोकों में गुणानुवाद किया जाता है । वह न किसी का पुत्र, माता या भाई है, वह धरती का आश्रय है, उसे छोड़कर अन्य किसके साथ प्रीति, प्रेम किया जाय समस्त साधनाओं का साध्य, का स्तंभ, सपूर्ण पृथ्वी को धारण

लाइऐ । साधना सधइआ धूल धानी के धुजइआ धोमधार के धरइआ ध्यान ताको सदा लाइऐ । आउ के बढइआ एक नाम के जपइआ अउर काम के करइआ छोड अउर कउन ध्याइऐ ॥ ४ ॥ ४३ ॥ ॥ कबितु ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ काम को कुनिंदा खैर खूबी को दहिंदा गज गाजी को गजिंदा सो कुनिंदा कै बताइऐ । चाम के चलिंदा घाउ घाम ते बचिंदा छत्र छैनी के छलिंदा सो दहिंदा कै मनाइऐ । जर को दहिंदा जानमान को जनिंदा जोत जेब को गजिंदा जान मान जान गाइऐ । दोख के दलिंदा दीन दानश दहिंदा दोख दुजन दलिंदा ध्याइ दूजो कउन ध्याइऐ ॥ ५ ॥ ४४ ॥ ॥ कबितु ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ सालिस सहिंदा सिद्धताई को सधिंदा अंग अंग मै अविंदा एकु एको नाथ जानिऐ । कालख कटिंदा खुरासान को खुनिंदा ग्रब गाफल गलिंदा गोल गंजख बखानिऐ । गालब गरिंदा जीत तेज के दहिंदा चित्र चाप के चलिंदा छोड अउर

करनेवाले उस प्रभु पर ही सर्वदा ध्यान लगाया जाना चाहिए । आयु को बढ़ानेवाला उसका नाम ही जाप करने योग्य है । वह सर्व कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है, उसे छोड़कर अन्य किसका ध्यान किया जाय ॥ ४ ॥ ४३ ॥ ॥ कवित्त ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ वह सर्वकामनाओं की पूर्ति करनेवाला, सभी सुख एवं समृद्धि-दाता, महान गजों के समान शूरवीरों को नष्ट करनेवाला है । वह धनुषधारी, सब प्रकार के आघातों से रक्षा करनेवाला, छलधारियों को छलनेवाला और बिना माँगे सब कुछ देनेवाला है । प्रयत्नपूर्वक उसी को मनाना चाहिए । वह धन-दौलत देनेवाला जीव एवं सम्मान को जाननेवाला, ज्योतिस्वरूप, मान-प्रतिष्ठा योग्य है । उसी का गुणानुवाद किया जाना चाहिए । वह दोषों को मिटानेवाला, बुद्धिप्रदाता तथा दुर्जनों का दलन करनेवाला है । उसकी आराधना कर लेने के बाद अन्य दूसरा कौन है जिसकी आराधना की जाय ॥ ५ ॥ ४४ ॥ ॥ कवित्त ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ वह शीतलतापूर्वक सब कुछ सहन करनेवाला, साधक-सिद्ध-पुरुष एवं अंग-अंग में विराजमान, जानने योग्य नाथ है । वह समस्त कालिमाओं को नष्ट करनेवाला, बड़े-बड़े अहंकारी, खुराशानी पठानों को पद-दलित करनेवाला एवं सैन्यसमूह को (क्षण भर में) नष्ट कर देनेवाला कहा जाता है वह शक्तिशालियों को धराशायी करनेवाला, सबको तेज प्रदान और चित्त रूपी धनुष को है उसे छोड़

कउन आनिऐ । सत्तता दहिंदा सतताई को सुखिदा करम काम को कुनिंदा (मू०ग्रं०१३२) छोड दूजा कउन मानिऐ ।। ६ ।। ४५ ।। ।। कबित ।। ।। त्व प्रसादि ।। जोत को जगिंदा जंग जाफरी दहिंदा मित्र मारी के मलिंदा पैं कुनिंदा कै बखानिऐ । पालक पुनिंदा परम पारसो प्रगिंदा रंग राग के सुनिंदा पैं अनंदा तेज मानिऐ । जाप के जपिंदा खैर खूबी के दहिंदा खून माफ के कुनिंदा है अभिज्ज रूप ठानिऐ । आरजा दहिंदा रंग राग के बढिंदा दुष्ट द्रोह के दलिंदा छोड दूजो कौन मानिऐ ।। ७ ।। ४६ ।। ।। कबित ।। ।। त्व प्रसादि ।। आतमा प्रधान जाहि सिद्धता सरूप ताहि बुद्धता बिभूत जाहि सिद्धता सुभाउ है । राग भी न रंग ताहि रूप भी न रेख जाहि अंग भी सुरंग ताहि रंग के सुभाउ है । चित्र सो बिचित्र है परमता पवित्र है सु मित्र हूँ के मित्र है बिभूत को उपाउ है । देवन के देव है कि शाहन को शाह है कि राजन को राज है कि रावन को राउ है ।। ८ ।। ४७ ।।

अन्य किसका स्मरण किया जाय । वह सत्य प्रदान करनेवाला एवं झूठ का नाश करनेवाला तथा सर्व काम्य कर्मों को करनेवाला है । उसे छोड़कर किसी अन्य को कैसे माना जाय ।। ६ ।। ४५ ।। ।। कवित्त ।। ।। तेरी कृपा से ।। वह जगमगाती हुई ज्योति, युद्ध में विजय प्रदान करने वाले, मित्र-घातियों को नष्ट करनेवाले रूप में जाना जाता है । पुण्य-पालक एवं पारस के समान लोहे को सोना बनानेवाला तथा विभिन्न रंग-रागों में आनंदित होनेवाला भी उसी को माना जाता है । भिन्न प्रकार के जाप करनेवाला एवं सब प्रकार की सुख-समृद्धि को देनेवाला, सबके दोषों को क्षमा करनेवाला, परन्तु फिर भी सबसे अलिप्त माना जाता है । वह आयु-प्रदाता, आनन्द को बढ़ानेवाला एवं दुष्टों तथा द्रोहियों का दलन करनेवाला है । इसे छोड़कर दूसरे किसको मानें ।। ७ ।। ४६ ।। ।। कवित्त ।। ।। तेरी कृपा से ।। वह प्रधान रूप में आत्मा है, सिद्धि जिसका स्वरूप है, बुद्धि जिसकी विभूति है और सिद्धता जिसका स्वभाव है । जिसका राग, रंग, आकार, प्रकार कुछ भी नहीं है, फिर भी उसके सुन्दर अंग हैं तथा आनन्द उसका स्वभाव है । विश्व रूपी उसकी चित्रकारी विचित्र एवं परमपवित्र है तथा मित्रों का भी मित्र, सर्वविभूति प्रदाता है । वह देवताओं का देव साहूकारों का साहूकार तथा राजाओं का भी राजा

॥ बहिर तवील छंद पसचमी* ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ कि अगंजस । कि अभंजस । कि अरूपस । कि अरंजस ॥ १ ॥ ४८ ॥ कि अछेदस । कि अभेदस । कि अनामस । कि अकामस ॥ २ ॥ ४९ ॥ कि अभेखस । कि अलेखस । कि अनादस । कि अगाधस ॥ ३ ॥ ५० ॥ कि अरूपस । कि अभूतस । कि अदाबस । कि अरागस ॥ ४ ॥ ५१ ॥ कि अभेदस । कि अछेदस । कि अछाबस । कि अगाधस ॥५॥ ॥ ५२ ॥ कि अगंजस । कि अभंजस । कि अभेदस । कि अछेदस ॥ ६ ॥ ५३ ॥ कि असेअस । कि अधेअस । कि अगंजस । कि इकंजस ॥ ७ ॥ ५४ ॥ कि उकारस । कि निकारस । कि अखंजस । कि अभंजस ॥ ८ ॥ ५५ ॥ कि अघातस । कि अकिआतस । कि अचलस । कि अछलस ॥ ९ ॥ ५६ ॥ कि अजातस । कि अझातस । कि अछलस । कि अटलस ॥१०॥५७॥ ॥ बहिर तवील पसचमी ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ अटाटसच । अडाटसच । अडंगसच । अणंगसच ॥११॥५८॥ अतानसच । अथानसच । अदंगसच

है ॥८॥४७॥ ॥ बहिर तवील छंद पश्चिमी* ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ वह परमात्मा अगण्य, अभंजन, अरूप एवं शोक-रहित है ॥ १ ॥ ४८ ॥ वह अछेद, अभेद, अनाम एवं सर्व कामनाओं से परे है ॥ २ ॥ ४९ ॥ वह निर्वेश, अदृश्य, अनादि एवं अगाध रूप से बृहद् है ॥ ३ ॥ ५० ॥ वह अरूप, अभूत, निर्दोष एवं रागातीत है ॥ ४ ॥ ५१ ॥ वह अभेद, अछेद, विराट् एवं गहन गम्भीर है ॥ ५ ॥ ५२ ॥ वह अगण्य, अभंजनशील, अभेद एवं अछेद है ॥ ६ ॥ ५३ ॥ ऐसा प्रभु जो उपर्युक्त गुणों वाला है, वह निरालम्ब है, सर्व गणनाओं से परे है तथा माया से रहित एक ही परमतत्त्व है ॥ ७ ॥ ५४ ॥ परमात्मा कभी ओंकार-स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है और कभी रूप-रंग से भिन्न प्रतीत होकर विराजमान होता है। वह न तो कभी क्लेषयुक्त होता है और न तो कभी टूटता है ॥ ८ ॥ ५५ ॥ वह आघातों से परे है एवं अग्नि से दूर है। वह अचल एवं अछल है ॥ ९ ॥ ५६ ॥ वह अजन्मा एवं अदृश्य है। वह अछल एवं अटल है ॥ १० ॥ ५७ ॥ ॥ बहिर तवील पश्चिमी ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ वह टेढ़ा-मेढ़ा नहीं है, ताड़नाओं से परे है, उसे डसा नहीं जा सकता और वह

---

* यह फ़ारसी और पश्तो भाषा का छन्द है, जिसका प्रयोग सीमा-प्रान्त की भाषाओं में किया जाता है।

। ॥ १२ ॥ ५९ ॥ अपारसच । अफारसच ।
। । अभेअसतु ॥ १३ ॥ ६० ॥ अमानसच ।
ब । अड़ंगसच । (मू०ग्रं०१२२) अभंगसच ॥१४॥६१॥
ब । अलामसच । अजोधसच । अबोजसच ॥ १५ ॥
। ॥ पसचमी ॥ असेअसतु । अभेअसतु । अअंगसतु ।
॥ १६ ॥ ६३ ॥ उकारसतु। अकारसतु ।
। । अडंगसतु ॥ १७ ॥ ६४ ॥ कि अतापहि । कि
। कि अबंगहि । कि अनंगहि ॥ १८ ॥ ६५ ॥
ापहि । कि अथापहि । कि अनीलहि । कि
॥ १९ ॥ ६६ ॥ ॥ अरध नराज छंद ॥ ॥ त्व
। सजस तुयं । धजस तुयं । अलस तुयं । इकस
॥ ६७ ॥ जलस तुयं । थलस तुयं । पुरस तुयं ।
ं ॥२॥६८॥ गुरस तुयं । गुफस तुयं । निरस तुयं ।
घं ॥ ३ ॥ ६९ ॥ रवस तुयं । ससस तुयं । रजस

हुँच के परे है ॥ ११ ॥ ५८ ॥ बल अथवा राग की तान से
ु स्थान, कलह एवं इन्द्रियों की पहुँच से दूर है ॥ १२ ॥ ५९ ॥
सत्य है । जो अकाट्य है, वह अभय है ॥ १३ ॥ ६० ॥ वह
ाथा हानि से दूर है । वह इन्द्रियों में समा नहीं सकता तथा
लहरों से भी परे है ॥ १४ ॥ ६१ ॥ यही सत्य है कि वह परम
प्राप्त है, परम विद्वान है, अपने आप को स्थापित करने के लिए
ओं की आवश्यकता नहीं पड़ती तथा फिर भी वह अविजित
। १५ ॥ ६२ ॥ ॥ पश्चिमी ॥ वह उपर्युक्त अभय परमात्मा
था 'इकार' अर्थात् पुरुष और नारी दोनों है ॥ १६ ॥ ६३ ॥
रूप शब्द ब्रह्म भी वही है तथा विभिन्न आकारों में माना जाने
वही परमात्मा अखंड एवं सर्वयुक्तियों से परे है ॥ १७ ॥ ६४ ॥
तापों (दैविक, भौतिक एवं आध्यात्मिक) से परे सर्व स्थापनाओं
वं दोषों से परे निराकार है ॥ १८ ॥ ६५ ॥ वह तापातीत,
से परे एवं सर्व प्रकार की गणनाओं से दूर है ॥ १९ ॥ ६६ ॥
ाज छंद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ हे एक ही परमात्मा ! तुम ही
हो, ध्वजा अर्थात् मान-सम्मान भी तुम ही हो और तुम ही
हो ॥ १ ॥ ६७ ॥ जल, स्थल, पर्वत, वन सब जगह तू ही
६८ ॥ उद्यानों में, कन्दराओं, नदियों में रसस्वरूप, परन्तु
तीतीत तुम ही हो ३ ६९ रवि, चन्द्र, रजस्, तमस्

सुयं। तमस तुयं ॥ ४ ॥ ७० ॥ धनस तुयं। मनस तुयं। ब्रिछस तुयं। बनस तुयं ॥ ५ ॥ ७१ ॥ मतस तुयं। गतस तुयं। ब्रतस तुयं। चितस तुयं ॥ ६ ॥ ७२ ॥ पितस तुयं। सुतस तुयं। मतस तुयं। गतस तुयं ॥ ७ ॥ ७३ ॥ नरस तुयं। त्रियस तुयं। पितस तुयं। ध्रिदस तुयं ॥ ८ ॥ ७४ ॥ हरस तुयं। करस तुयं। छलस तुयं। बलस तुयं ॥ ९ ॥ ॥ ७५ ॥ उडस तुयं। पुडस तुयं। गडस तुयं। दधस तुयं ॥ १० ॥ ७६ ॥ रथस तुयं। छपस तुयं। गरबस तुयं। बिरबस तुयं ॥ ११ ॥ ७७ ॥ जैअस तुयं। खैअस तुयं। पैअस तुयं। त्रैअस तुयं ॥ १२ ॥ ७८ ॥ ॥ नराज छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ चकंत चारु चंद्रका। सुभंत राज सु प्रभा। दवंत दुष्ट मंडली। सुभंत राज सु थली ॥ १ ॥ ॥ ७९ ॥ चलंत चंड मंडका। अखंड खंड दुपला। खिवंत बिजु ज्वालका। अनंत गद्दि बिद्दसा ॥ २ ॥ ८० ॥ लसंत भाव उज्जलं। दलंत दुक्ख दुद्दलं। पवंग पात सोहियं।

आदि गुण भी तुम ही हो ॥ ४ ॥ ७० ॥ धन, मन, वृक्ष एवं वनस्पति तुम स्वयं ही हो ॥ ५ ॥ ७१ ॥ मति, गति, व्रत तथा चित्त आदि भी तुम स्वयं ही हो ॥ ६ ॥ ७२ ॥ हे प्रभु ! पिता, पुत्र एवं माता आदि संसार को गतिशील बनाए रखनेवाले स्रोत भी तुम ही हो ॥ ७ ॥ ७३ ॥ पुरुष, स्त्री, पिता एवं धर्म तुम ही हो ॥ ८ ॥ ७४ ॥ (दु:ख-सुख के) हर्ता, कर्ता भी तुम ही हो तथा बल-छल भी तुम ही हो ॥ ९ ॥ ७५ ॥ नक्षत्र, चन्द्र, समुद्र आदि के स्वरूप में स्थापित तुम ही हो ॥ १० ॥ ७६ ॥ गति एवं गतियों में प्रच्छन्न शक्ति, अहम् तथा द्रव्य तुम ही हो ॥ ११ ॥ ७७ ॥ जीतनेवाला, नष्ट करनेवाला, दुग्ध एवं त्रिगुण (सत्त्व, रजस्, तमस्) तुम ही हो ॥ १२ ॥ ७८ ॥ ॥ नराज छंद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ हे राजन् ! तुम्हारी सुप्रभा देखकर चन्द्रमा की सुन्दर चाँदनी भी चकित है। तुम्हारे तेज से दुष्ट मंडलियों का नाश होता है तथा तुम्हारी राजधानी (विश्व) शोभायमान होता है ॥ १ ॥ ७९ ॥ चंडिका के समान तेजी से युद्ध का मण्डन करते हुए तुम दो ही पलों में अखण्ड समझे जानेवाले महाबलियों का खण्डन कर देते हो। बिजली की ज्वाला जैसे तुम शोभायमान होते हो और अनन्त परमात्मा सारी दिशाओं में तुम्हारा सिंहासन विराजमान है। २ ८०। तुम उज्ज्वल स्वरूप में शोभायमान हो तथा दु:खों के दलों को नष्ट करनेवाले हो तुम्हारे (कर्म रूपी) अश्वों की पंक्ति

समुंद्र बाज लोहियं ॥ ३ ॥ ८१ ॥ निनंद गेद ब्रिद्दयं । अखेद नाद दुद्धरं । अठट्ट बट्ट बट्टकं । अघट्ट नट्ट सुक्खलं ॥ ४ ॥ ८२ ॥ अखुट्ट तुट्ट छिब्बकं । अजुट्ट छुट्ट सुच्छकं । अघुट्ट तुट्ट आसनं । अलेख अभेख अनासनं ॥ ५ ॥ ८३ ॥ सुभंत दंत पव्वुकं । (मू०ग्रं०१३४) जलंत साम सु घटं । सुभंत छुद्र घंटका । जलंत भार कच्छटा ॥६॥ ॥ ८४ ॥ सिरी सु सीस सुभियं । घटाक बान उभियं । सुभंत सीस सिखरं । जलंत सिद्धरी नरं ॥ ७ ॥ ८५ ॥ चलंत वंत पत्तकं । भजंत देखि दुद्दलं । तजंत शस्त्र अस्त्रकं । चलंत चक्र चउदिसं ॥ ८ ॥ ८६ ॥ अगंम तेज सोभियं । रिखीश ईस लोभियं । अनेक बार ध्यावही । न तत्र पार पावही ॥ ९ ॥ ८७ ॥ अधो सु धूम धूम ही ।

शोभायमान और तुम हो महाक्रोधित स्वरूप वाले भी हो ॥ ३ ॥ ८१ ॥ वह सांसारिक आनन्दों से परे वृहद् सूर्य के गोले के समान तेजस्वी है तथा शोक-रहित अनहद नाद की तरह धरती आकाश का आश्रय है। वह अक्षयवट के समान चिरंजीवी है तथा वह सब सांसारिक प्रपंचों से परे होता हुआ भी सर्व सुखों से परिपूर्ण है ॥ ४ ॥ ८२ ॥ उसका द्रव्य-भण्डार कभी भी नष्ट नहीं होनेवाला है। वह पवित्र परमात्मा किसी से भी जुड़ा हुआ नहीं है अर्थात् माया के बन्धन से परे है। उसका आसन सदा स्थिर रहनेवाला है तथा वह अदृश्य, निर्वेश परमात्मा अविनाशी है ॥ ५ ॥ ८३ ॥ उसकी सुन्दर दन्तपंक्ति एवं चरण शोभायमान हैं और उनका दर्शन करके दुःख रूपी काली घटाएं नष्ट हो जाती हैं। कमर में सुन्दर छोटी-छोटी घंटियाँ शोभा पाती हैं और उसको देखकर विद्युत्-प्रकाश भी फीका पड़ जाता है ॥ ६ ॥ ८४ ॥ सिर पर "श्री"-स्वरूपी ऐश्वर्य शोभायमान है तथा सिर पर मौलि ऐसी लग रही है, मानो बादलों में इन्द्रधनुष बना हो। सिर पर मुकुट ऐसा शोभायमान है, जिसे देखकर सागर भी ईर्ष्यालु हो रहा है ॥ ७ ॥ ८५ ॥ तुम्हें देखकर असुरों की सेनाएं भाग खड़ी होती हैं और दुर्जनों के दल खण्डित हो जाते हैं। हे प्रभु ! जब तुम अस्त्र-शस्त्र को चलाते हो तो तुम्हारे विधान का चक्र चारों दिशाओं में चलने लगता है ॥ ८ ॥ ८६ ॥ तुम्हारे तेज तक किसी की पहुँच नहीं और तुम्हारे तेज प्रताप के ऐश्वर्य के लिए ऋषि एवं शिव भी ललचा जाते हैं। तुम्हें प्राप्त करने के लिए अनेक विधियों से तुम्हारा ध्यान करते हैं, फिर भी तुम्हारा अन्त नहीं जान पाते ९ ८७। अनेको तपस्वी उलटे लटककर धूनी रमाते हैं तथा निद्रा का परित्याग कर नेत्रों को लाल कर, यत्र-तत्र भ्रमण

अधूर नेत्र धूम ही। सु पंच अगन साधियं। न ताम पार लाधियं ॥ १० ॥ ८८ ॥ निवल आदि करमणं। अनंत दान धरमणं। अनंत तीर्थ बासनं। न एक नाम के समं ॥ ११ ॥ ॥ ८९ ॥ अनंत जग्य करमणं। गजादि आदि धरमणं। अनेक देस भरमणं। न एक नाम के समं ॥ १२ ॥ ९० ॥ इकंत कुंट बासनं। भ्रमंत कोटकं बनं। उचाट नाद करमणं। अनेक उदास भरमणं ॥ १३ ॥ ९१ ॥ अनेक भेख आसनं। करोर कोटकं ब्रतं। दिसा दिसा भ्रमेसनं। अनेक भेख पेखनं ॥ १४ ॥ ९२ ॥ करोर कोट दानकं। अनेक जग्य क्रतब्यं। सन्यास आदि धरमणं। उदास नाम करमणं ॥१५॥ ॥ ९३ ॥ अनेक पाठ पाठनं। अनंत ठाट ठाटनं। न एक नाम के समं। समस्त स्रिस्ट के भ्रमं ॥ १६ ॥ ९४ ॥ जगादि आदि धरमणं। बैराग आदि करमणं। दयादि आदि कामणं। अनाद संजमं ब्रिदं ॥ १७ ॥ ९५ ॥ अनेक देस भरमणं।

करते रहते हैं। कई लोग पंचाग्नि जलाकर साधना करते हैं, परन्तु फिर भी तुम्हारा रहस्य नहीं जान पाते ॥ १० ॥ ८८ ॥ अनेकों व्यक्ति न्योली आदि क्रिया करके दान-धर्म आदि के कार्य करते हुए अनेकों तीर्थों पर निवास करते हैं, परन्तु ये सब क्रियाएँ तुम्हारे एक नाम के समकक्ष नहीं हैं ॥ ११ ॥ ८९ ॥ अनन्त यज्ञकर्म, गज आदि का दान-धर्म, देश-विदेशों का भ्रमण आदि ये सब भी तुम्हारे एक नाम के तुल्य नहीं हैं ॥१२॥९०॥ कई लोग एकान्तवास करते हैं तथा कई अनेकों वनों में भ्रमण करते हैं। कई उदासीन होकर मन्त्र गायन करते हैं तथा अनेकों विरक्त-भाव से भ्रमण करते हैं ॥ १३ ॥ ९१ ॥ हे प्रभु ! तुम्हें पाने के लिए कई लोग अनेकों वेश एवं आसन, व्रत आदि का पालन करते हैं तथा कई लोग भिन्न प्रकार के वेशों को देखते धारण करते हुए दसों दिशाओं में भ्रमण करते रहते हैं ॥ १४ ॥ ९२ ॥ करोड़ों जीव, करोड़ों प्रकार के दान देकर यज्ञ-कर्तव्य को पूरा करते हैं, संन्यास-कर्म का पालन करते हैं तथा उदासीन व्यक्तियों की तरह कर्म करते हैं ॥ १५ ॥ ९३ ॥ अनेकों व्यक्ति पाठ करते हैं तथा अनेकों विभिन्न प्रकार के आडम्बर करते हैं, परन्तु ये सब उस एक परमात्मा के नाम के समकक्ष नहीं हैं और ये सब क्रियाएँ सृष्टि के भ्रम के समान हैं ॥ १६ ॥ ९४ ॥ यज्ञ आदि धर्म, वैराग्य आदि कर्म तथा दयालुता की कामना —ये सब वृहद् संयम हैं, जो अनादि काल से चले आ रहे हैं ॥ १७ ॥ ९५ ॥ अनेक देशों का भ्रमण और करोड़ों दान, संयम आदि क्रियाएँ, हे प्रभु ! तुम्हारी प्राप्ति के लिए की जाती हैं।

करोर दान संजमं। अनेक गीत ज्ञाननं। अनंत ज्ञान ध्याननं ॥ १८ ॥ ९६ ॥ अनंत ज्ञान सुत्तमं। अनेक क्रित सु क्रितं। व्यास नारद आदकं। सु ब्रह्मु मरम नहि लहं ॥ १९ ॥ ९७ ॥ करोर जंत्र मंत्रणं। अनंत तंत्रणं बणं। बसेख ब्यास नासनं। अनंत न्यास प्रासनं ॥ २० ॥ ९८ ॥ जपंत देव दैतनं। थपंत जच्छ गंध्रबं। बदंत बिद्दणो धरं। गणंत शेश उरगणं ॥ २१ ॥ ९९ ॥ जपंत पारवारयं। समुंद्र सप्त क्षारयं। जणंत चार चक्रणं। भ्रमंत चक्र बक्रणं ॥२२॥ ॥ १०० ॥ जपंत पंनगंनकं। बरंनरं बनसपतं। अकास उरबिअं (मू०ग्रं०१२५) जलं। जपंत जीव जल थलं ॥२३॥१०१॥ सु कोट चक्र बकत्रणं। बदंत बेद चत्रकं। असंभ असंभ मानिऐ। करोर बिशन ठानिऐ ॥ २४ ॥ १०२ ॥ अनंत सुरसुती सती बदंत क्रित ईसुरी। अनंत अनंत भाखिऐ। अनंत अनंत लाखिऐ ॥ २५ ॥ १०३ ॥ ॥ ब्रिध नराज

अनेक ज्ञान-गीतों का गायन किया जाता है तथा अनेकों प्रकार से ज्ञान, ध्यान किया जाता है ॥ १८ ॥ ९६ ॥ जीव अनेक प्रकार से ज्ञान अर्जित करता है और अनेक प्रकार के कृत्यों द्वारा व्यास, नारद आदि की तरह अपनी वृत्तियों को एकाग्र करता है, परन्तु इन सबके बावजूद ब्रह्म के रहस्य को नहीं जान पाता ॥ १९ ॥ ९७ ॥ करोड़ों यन्त्रों, मन्त्रों एवं तन्त्रों तथा ऋषियों द्वारा प्रचलित आसनों का अभ्यास करते हुए तथा चित्त को आशाओं, चिंताओं से मुक्त करते हुए जीव तुम्हें पाने का प्रयत्न करता है ॥ २० ॥ ९८ ॥ हे प्रभु ! देव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व सभी तुम्हारा जाप करते हैं और तुम्हें अपने हृदय में स्थापित करते हैं। विद्याधर एवं शेषनाग जैसे भी तुम्हारी बंदना करते हैं ॥ २१ ॥ ९९ ॥ यह सारा विश्व, समुद्र आदि तुम्हारा जाप करते हैं और यह भली प्रकार चारों दिशाओं में जाना जाता है कि तुम्हारे विधान का वक्र-चक्र सर्वदा चलता ही रहता है ॥ २२ ॥ १०० ॥ सर्प एवं अन्य जीव तथा वनस्पति सभी तुम्हारा ध्यान करते हैं। आकाश, धरती, जल तथा इनमें बसनेवाले जीव सभी तुम्हारा जाप करते हैं ॥ २३ ॥ १०१ ॥ चार मुखों वाला ब्रह्मा तथा करोड़ों जीव उस प्रभु की वन्दना करते हैं तथा शिव भी उस परमात्मा तक पहुँचने को असंभव मानते हैं और करोड़ों विष्णुओं का भी ऐसा ही विश्वास है ॥ २४ ॥ १०२ ॥ सरस्वती, लक्ष्मी एवं सती पार्वती भी उसको अनन्त-अनन्त कहकर स्मरण करती हैं ॥ २५ ॥ १०३ ॥ । वृद्ध नराज छन्द वह उत्पत्ति के कष्टों से परे है, गहन

छंद ।। अनादि अगाधि व्याधि आदि अनादि को मनाइऐ । अगंज अभंज अरंज अगंज गंज कउ धिआइऐ । अलेख अभेख अद्वैख अरेख असेख को पछानिऐ । न भूल जंत्र तंत्र मंत्र भरम भेख ठानिऐ ।। १ ।। १०४ ।। क्रिपाल लाल अकाल अपाल दयाल को उचारिऐ । अधरम करम धरम भरम करम मै बिचारिऐ । अनंत दान ध्यान ज्ञान ध्यानवान पेखिऐ । अधरम करम के बिना सु धरम करम लेखिऐ ।। २ ।। १०५ ।। ब्रतादि दान संजमादि तीर्थ देव करमणं । हयादि कुंजमेद राजसु बिनान भरमणं । निवल आदि करम भेख अनेक भेख मानिऐ । अदेख भेख के बिना सु करम भरम जानिऐ ।। ३ ।। १०६ ।। अजात पात अमात तात अजाति सिद्ध है सदा । असत्र मित्र पुत्र पउत्र जत्र तत्र सरबदा । अखंड मंड चंड उदंड अखंड खंडु भाखिऐ । न रूप रंग रेख अलेख भेख मै न राखिऐ ।।४।।१०७।। अनंत तीर्थ आदि आसनादि नारद आसनं । बराग अउ संन्यास

गम्भीर है, सबका स्रोत है, अतः सर्वप्रथम उसी का मनन करो। वह रोग, क्रोध-रहित, अभंजनशील एवं शोक-रहित है। अतः उसी का ध्यान करो। वह निर्वेश, अदृश्य, द्वेषातीत, निराकार एवं अशेष है। अतः उसी की पहचान करो तथा उसकी प्राप्ति के लिए भी भूलकर भी यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, भ्रम एवं किसी वेश का आश्रय न लो ।। १ ।। १०४ ।। वह प्रभु कृपालु, कालातीत एवं सर्व प्रकार के पोषणों से परे दयालु है। उसी का नाम उच्चारण करना चाहिए। अधर्मों में, भ्रमों में एवं धर्म के कर्मों में अर्थात् सदैव उसी प्रभु का विचार करना चाहिए। वह प्रभु अनन्त दानी, ध्यानी, ज्ञानी है उसको केवल उसके ध्यान में मग्न ही जान सकते हैं। वह सदैव अधर्म से दूर तथा धर्म-कर्म में विराजमान रहता है ।। २ ।। १०५ ।। व्रत, दान, संयम आदि तथा तीर्थस्नान आदि के तथाकथित देवकर्म एवं पशु-पक्षियों को एकत्र कर उनकी बलि देते हुए राजसूय यज्ञ आदि और न्योली कर्म तथा वेश आदि को धारण करना कोरा पाखण्ड माना जाना चाहिए। उस अदृश्य प्रभु के बिना सभी प्रकार के तथाकथित सुकर्मों को मात्र भ्रम ही माना जाना चाहिए ।। ३ ।। १०६ ।। वह प्रभु अजन्मा, तात-मात से परे सर्वदा स्वयं सिद्ध है। उसका शत्रु, मित्र, पुत्र कोई नहीं तथा वह यत्र, तत्र, सर्वत्र व्याप्त है। वह महाबलशालियों को खण्डित करनेवाला, प्रचण्ड तेज-स्वरूप है, जिसे किसी भी रूप, रंग एवं वेश की कोटि में नहीं रखा जा

अउ अनादि जोग आसनं । अनादि तीर्थ संजमादि बरत नेम पेखिऐ । अनादि अगाधि के बिना समस्त भरम लेखिऐ ॥ ५ ॥ ॥ १०८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ दयादि आदि धरमं । संन्यास आदि करमं । गजादि आदि दानं । हयादि आदि थानं ॥१॥ ॥ १०९ ॥ सुबरन आदि दानं । समुंद्र आदि शनानं । बिसुवादि आदि भरमं । बिकतादि आदि करमं ॥ २ ॥ ११० ॥ निवल आदि करणं । सुनील आदि बरणं । अनील आदि ध्यानं । जपत तत प्रधानं ॥ ३ ॥ १११ ॥ अमितकादि भगतं । अविकतादि ब्रकतं । प्रछसतुवा प्रजापं । प्रभगतवा अथापं ॥ ४ ॥ ११२ ॥ सु भगतु आदि करणं । अजगतुआ प्रहरणं । बिरकतुआ प्रकासं । अबिगतुआ प्रणासं (मू०ग्रं०१३६) ॥ ५ ॥ ११३ ॥ समसतुआ प्रधानं । धुजसतुआ धरानं । अविकतुआ अभंगं । इकसतुआ अनंगं ॥६॥११४॥ उअसतुआ अकारं । क्रिपसतुआ क्रिधारं । खितसतुआ अखंडं ।

सकता ॥ ४ ॥ १०७ ॥ अनन्त तीर्थों पर स्नान एवं आसनादि, वैराग्य, सन्यास एवं योग के प्रयत्न, संयम, व्रत, यम, नियम उस अनादि परमात्मा के बिना समस्त क्रियाएँ भ्रम मात्र हैं ॥ ५ ॥ १०८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ दया, सन्यास आदि धर्म-कर्म, अच्छे स्थानों पर जाकर हाथी एवं घोड़ों का दान परमात्मा-प्राप्ति के लिए किया जाता है ॥ १ ॥ १०९ ॥ स्वर्ण का दान, (गंगा-) सागर का स्नान, विश्व में भ्रमण करने का कार्य तथा विरक्त व्यक्तियों के समान कर्म उस प्रभु-प्राप्ति के लिए किये जाते हैं ॥२॥११०॥ न्यौली कर्म, नीले वेश धारण करना तथा ध्यान लगाना आदि कर्मों में सबसे प्रधान कर्म उस परमतत्त्व (परमात्मा) पर ध्यान लगाना है ॥ ३ ॥ १११ ॥ उस प्रच्छन्न एवं सर्वभक्तियों की स्थापनाओं से परे परमात्मा की अपरिमित विधियों से भक्ति की जाती है तथा अनेक अव्यक्त तरीक़ों से सांसारिक विरक्ति को अपनाया जाता है ॥ ४ ॥ ११२ ॥ वह भक्तों के कार्यों को करनेवाला एवं अनुपयुक्त अर्थात् पापियों का नाश करने वाला है । वास्तविक रूप से अनासक्त व्यक्तियों को अपने तेज से प्रकाशित करता है और दुष्टों का नाश करता है ॥ ५ ॥ ११३ ॥ वह सबमें प्रधान है और धर्म की ध्वजा है । वह निरन्तर अभंजनशील है तथा निराकार है ॥ ६ ॥ ११४ ॥ वह स्वयं ही आकार ग्रहण करता है और कृपापात्रों पर कृपा करता है । वह धरती की शक्ति के रूप में धरती के साथ अखण्ड रूप से विराजमान है, परन्तु उसको किसी के साथ

गलसतुआ अगंडं ॥७॥११५॥ घरसतुआ घरानं । ङिअसतुआ ङिहालं । चितसतुआ अतापं । छितसतुआ अछापं ॥ ८ ॥ ॥ ११६ ॥ जितसतुआ अजापं । झिकसतुआ अझापं । ञिकसतुआ अनेकं । टुटसतुआ अटेटं ॥९॥११७॥ ठटसतुआ अठाटं । डटसतुआ अडाटं । ढटसतुआ अढापं । णकसतुआ अणापं ॥ १० ॥ ११८ ॥ तपसतुआ अतापं । थपसतुआ अथापं । दलसतुआ दिदोखं । नहिसतुआ अनोखं ॥११॥११९॥ अपकतुआ अपानं । फलकतुआ फलानं । बदकतुआ बिसेखं । भजसतुआ अभेखं ॥ १२ ॥ १२० ॥ मतसतुआ फलानं । हरिकतुआ हिरदानं । अड़कतुआ अड़ंगं । त्रिकसतुआ त्रिभंगं ॥१३॥१२१॥ रँगसतुआ अरंगं । लवसतुआ अलंगं । यकसतुआ यकापं । इकसतुआ इकापं ॥१४॥१२२॥ वदिसतुआ वरदानं । यकसतुआ इकानं । लवसतुआ अलेखं । ररिसतुआ अरेखं ॥ १५ ॥ १२३ ॥ त्रिअसतुआ त्रिभंगे । हरिसतुआ

बाँधा नहीं जा सकता ॥ ७ ॥ ११५ ॥ घरों में वह श्रेष्ठ घर है तथा गृहस्थियों में वह महान् गृहस्थी है । वह चित्तस्वरूप होकर तापों से परे है तथा प्रच्छन्न रूप से धरती पर विराजमान है ॥ ८ ॥ ११६ ॥ वह जापों से परे है तथा युद्धस्थल में जितानेवाला अभय एवं अदृश्य है। अनेकता में एकता का सूत्र वह स्वयं आप है तथा वह कभी खण्डित नहीं होता ॥ ९ ॥ ११७ ॥ वह परमात्मा सर्वप्रपंचों से परे एवं सर्व दबाओं से दूर है । वह किसी के द्वारा गिराया नहीं जा सकता तथा किसी से भी उसकी सीमा नापी नहीं जा सकती ॥ १० ॥ ११८ ॥ वह ताप-क्लेश से परे है, उसकी स्थापना नहीं की जा सकती । वह बिना दल (समूह) के रहता है और मंगलमय तथा अनोखा है ॥११॥११९॥ वह परम पवित्र तथा सृष्टि को फलने-फूलने में सहायक है । वह विशेष रूप से संहारक भी है और सभी उसी निर्वेश का भजन करते हैं ॥ १२ ॥ १२० ॥ फलों-फूलों में मादकता भरनेवाला तथा हृदय को उत्साहित करनेवाला भी वही है। अड़नेवालों के समक्ष स्थिर रूप में अड़ जानेवाला वही है तथा तीनों लोकों एवं तीनों गुणों का नाश करनेवाला भी वही है ॥ १३ ॥ १२१ ॥ रंगों का रंग एवं रंगों से दूर भी वही है, सौन्दर्य और सौन्दर्य को चाहने वाला भी वही है। वह अद्वितीय है और आज भी मात्र एक ही है ॥ १४। १२२ । सबसे श्रेष्ठ दानी वह स्वय आप एक ही है। वह अदृश्य रूप से लावण्ययुक्त है, परन्तु फिर भी निराकार है । १५ १२३ ।

हरंगे । महिसतुआ महेसं । भजसतुआ अभेसं ॥१६॥१२४॥ बरसतुआ बरानं । पलसतुआ पलानं । नरसतुआ नरेसं । दलसतुआ दलेसं ॥ १७ ॥ १२५ ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ दिन अजब एक आतमाराम । अनभउ सरूप अनहद अकाम । अनछिज्ज तेज आजानबाहु । राजान राज शाहान शाहु ॥ १ ॥ १२६ ॥ उचर्यो आतमा परातमा संग । उतभुज सरूप अबिगत अभंग । इह कउण आहि आतमा सरूप । जिह अमित तेजि अतिभुति बिभूति ॥२॥ ॥ १२७ ॥ ॥ परातमा बाच ॥ यहि ब्रहम आहि आतमा राम । जिह अमित तेजि अबिगत अकाम । जिह भेद भरम नही करम काल । जिह सत्र मित्र सरबा दिआल ॥३॥१२८॥ डोब्यो न डुबै सोख्यो न जाइ । काट्यो न कटै बार्यो न (मू०ग्रं०१३७) बराइ । छिज्जै न नैक सत शस्त्र पात । जिह शत्र मित्र नही जात पात ॥ ४ ॥ १२९ ॥ शत्रू सहंस सति सति प्रघाइ । छिज्जै न नैक खंड्यो न जाइ । नही

वह त्रिलोकी में बैठ तीनों गुणों (रज, सत्त्व, तमस्) का नाश करनेवाला सभी रंगों में विराजमान है । वह धरती और धरती का स्वामी स्वयं है और सभी उसी निर्वेश का जाप करते हैं ॥ १६ ॥ १२४ ॥ वह श्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ है और पलक झपकते ही फल प्रदान करनेवाला है । वह नरों मे नरेश है और दुर्जनों के दलों को नष्ट करनेवाला है ॥ १७ ॥ १२५ ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ एक दिन जीवात्मा (माया से बद्ध अपने मूल रूप से अनभिज्ञ आत्मा) ने परमात्मा से, जो अनुभूति से ही जाना जानेवाला, अनहद, अकाल, अक्षय, लम्बी भुजाओं वाला एवं सम्राटों का भी सम्राट् है, पूछा ॥ १ ॥ १२६ ॥ जीवात्मा ने सम्पूर्ण वनस्पति स्वरूप अव्यक्त, अभंजनशील परमात्मा से कहा कि यह अपरिमित तेजवान माना जानेवाला विभूतियुक्त आत्मा क्या है ? ॥२॥१२७॥ ॥ परमात्मा उवाच ॥ परमात्मा ने कहा कि हे जीवात्मा ! यह आत्मा ही ब्रह्म है जो अपरिमित तेजवान एवं अव्यक्त है । आत्मा को कोई भेद, भ्रम एवं कालचक्र प्रभावित नहीं करता और न तो इसका कोई शत्रु अथवा मित्र है । यह पूर्ण रूप से सबके साथ दयालु है ॥ ३ ॥ १२८ ॥ यह न डूबती है, न सूखती है, न कटती है, न जलती है, न शस्त्रों के प्रहार से आहत होती है तथा इसका न शत्रु. मित्र अथवा जाति-पाँति है ॥ ४ ॥ १२९ । हजारों शस्त्रों से इस पर प्रघात करने पर भी न तो यह कम होती है और न खण्डित

जरै नैक पावक मंझार। बोरै न सिंध सोखै न ब्यार॥ ५॥
॥ १३०॥ इक कर्‌यो प्रश्न आतमा देव। अनभंग रूप
अनभउ अभेव। यहि चतुर वरग संसार दान। किहु चतुर
बरग किज्जै बखिआन॥ ६॥ १३१॥ इक राजु धरम इक
दान धरम। इक भोग धरम इक मोछ करम। इक चतुर
बरग सभ जग भणंत। से आतमाह प्रातमा पुछंत॥७॥१३२॥
इक राज धरम इक धरम दान। इक भोग धरम इक मोछ
थान। तुम कहो चत्र चत्रे बिचार। जे जे त्रिकाल भए जुग
अपार॥ ८॥ १३३॥ बरनंन करो तुम प्रिथम दान। जिम
दान धरम किनै न्रिपान। सतिजुग करम सुर दान बंत।
भूमादि दान कीने अकंथ॥ ९॥ १३४॥ त्रै जुग महीप
बरने न जात। गाथा अनंत उपमा अगात। जो किए जगत
मै जग्ग धरम। बरने न जाहि ते अमित करम॥१०॥१३५॥
कलजुग ते आदि जो भए महीप। इहि भरथ खंडि महि जंबु
दीप। त्व बल प्रताप बरणो सु ब्रेण। राजा युधिष्टर भू
भरथ एण॥ ११॥ १३६॥ खंडे अखंड जिह चतुर खंड।

होती है। अग्नि द्वारा यह जलती भी नहीं है, समुद्र द्वारा डूबती भी नहीं है और वायु द्वारा सूखती भी नहीं है॥ ५॥ १३०॥ तब जीवात्मा ने उस अनुभूति-रूप परम रहस्यमय परमात्मा से एक प्रश्न किया। संसार मे दान के चार वर्ग हैं, कृपया इसकी व्याख्या कीजिए॥ ६॥ १३१॥ एक राजधर्म, एक दानधर्म, एक योगधर्म और एक मोक्षधर्म संसार में माना जाता है, ये सब क्या हैं, इसके बारे में जीवात्मा ने परमात्मा से पूछा॥ ७॥ १३२॥ राजधर्म, दानधर्म, योगधर्म एवं मोक्षधर्म —ये जो चारों धर्म हुए हैं, इनका तुम विचार मुझे कहो और इन धर्मों को पालन करनेवाले जो लोग हुए हैं, उनके बारे में भी बताओ॥ ८॥ १३३॥ सर्वप्रथम दानधर्म का वर्णन करते हुए उन राजाओं का वर्णन करें, जिन्होंने दानधर्म का पालन किया है। सतयुग में देवताओं के तुल्य नरेशों ने भूमि आदि अनेकों दान किए हैं, उन सबका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ९॥ १३४॥ तीनों युगों के राजाओं का और उनकी महान महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। उन्होंने जितने यज्ञकर्म किए हैं वे गणनातीत हैं॥ १०॥ १३५॥ कलियुग में जो इस भरतखण्ड के जम्बुद्वीप में राजा हुए, उनके बल-प्रताप का वर्णन करता हुआ मैं तुम्हें हूँ कि में एक राजा युधिष्ठिर हुआ ११। १३६।

कैरो कुरखेत्र मारे प्रचंड । जिह चतुर कुंड जीत्यो दुबार । अरजन भीमादि भ्राता जुझार ॥ १२ ॥ १३७ ॥ अरजन पठ्यो उत्तर दिसान । भीमहि कराइ पूरब पयान । सहिदेव पठ्यो दच्छण सु देस । नुकलहि पठाइ पच्छम प्रवेस ॥१३॥१३८॥ मंडे महीप खंड्यो खत्राण । जित्ते अजीत मंडे महान । खंड्यो सु उत्र खुरासान देस । दच्छन पूरब जीते नरेश ॥ १४ ॥ १३९ ॥ खग खंड खंड जीते महीप । बज्यो निशान इह जंबुदीप । इक ठउर किए सभ देस राउ । मख राजसूअ को किओ चाउ ॥ १५ ॥ १४० ॥ सभ देस देस पठे सु पत्र । जित जित गुनाढ कीए इकत्र । मख राजसूअ को कियो अरंभ । (मू०ग्रं०१३८) न्रिप बहु बुलाइ जित्ते असंभ ॥ १६ ॥ १४१ ॥ ॥ रूआल छंद ॥ कोटि कोटि बुलाइ रित्तज कोटि ब्रहम बुलाइ । कोटि कोटि बनाइ बिंजन भोगिअहि बहु भाइ । जत्र तत्र समग्रका कहुँ लाग है न्रिपराइ । राजसूइ करहि लगे सभ धरम को चित चाइ ॥ १ ॥ १४२ ॥ एक एक

उसने चारों दिशाओं के अजेय राजाओं का मान-मर्दन कर प्रचण्ड कौरवों आदि को कुरुक्षेत्र में मारा और चारों दिशाओं को पुनः जीता । अर्जुन, भीम आदि महाबलशाली उसके भाई थे ॥ १२ ॥ १३७ ॥ अर्जुन को उसने उत्तर दिशा में, भीम को पूर्व दिशा में, सहदेव को दक्षिण एवं नकुल को पश्चिम दिशा में भेजा ॥ १३ ॥ १३८ ॥ इन सबने क्षत्रियों को जीता, अनेक महान राजाओं को परास्त कर उनके स्थान पर अन्य लोगों को राजा बनाया । उत्तर में खुरासान देश तक सबका बल खण्डित किया तथा दक्षिण, पूर्व में भी नरेशों को जीत लिया ॥ १४ ॥ १३९ ॥ अपने खड्ग-बल से नरेशों को विजित कर सम्पूर्ण जम्बुद्वीप में अपना नगाड़ा बजवाया । तत्पश्चात् सभी नरेशों को एक स्थान पर एकत्र कर राजसूय यज्ञ का आयोजन किया ॥ १५ ॥ १४० ॥ सब देश-देशान्तरों को पत्र भेज दिए गए और सब गुणी जनों को एकत्र कर लिया गया । राजसूय यज्ञ आरम्भ करने से पहले बहुत से राजाओं को बुलाया गया और जो नहीं आये उनको जीत लिया गया ॥ १६ ॥ १४१ ॥ ॥ रूआल छंद ॥ करोड़ों ब्राह्मणों एवं कर्मकांडियों को बुलाया गया तथा विभिन्न प्रकार के अनेकों व्यंजन तैयार करवाये गए । इधर-उधर सामग्री फैली पड़ी थी और स्वयं सम्राट उस सारे कार्य में लगे हुए थे । सभी राजाओं के हृदय में इस धार्मिक कार्य के प्रति भारी उत्साह

सुवरन को बिज एक दीजै भार। एक सउ गज एक सउ रथि दुइ सहंस्र तुखार। सहंस चतुर सुवरन सिंगी महिख दान अपार। एक एकहि दीजिऐ सुन राज राज अउ तार॥ २॥ ॥ १४३॥ सुवरन दान सु रुकन दान सु तांबदान अनंत। अंन दान अनंत दीजत देख दीन दुरंत। बस्त्र दान पटंब दान सु शस्त्र दान बिहंत। भूप भिच्छक हुइ गए सभ देस देस दुरंत॥३॥ ॥ १४४॥ चत्र कोस बनाइ कुंडक सहंस्र लाइ परनार। सहंस्र होम करै लगै दिज बेद ब्यास अउतार। हसत सुंड प्रमान घ्रित की परत धार अपार। होत भसम अनेक बिजन लपट झपट कराल॥ ४॥ १४५॥ म्रितका सभ तीर्थ की सभ तीर्थ को लै बार। कास्टका सभ देस को सभ देस को जिउ नार। भांत भांतन के महां रस होमिऐ तिह माहि। देख चक्रत रहै दिजंबर रीझ ही नर नाह॥ ५॥ १४६॥ भांत भांत अनेक बिजन होमिऐ तिह आन। चतुर बेद पड़ै चत्र सभ बिप्प ब्यास समान। भांत भांत अनेक भूपत देत दान अनंत। धूम भूर उठी जयत धुन जत्र तत्र दुरंत॥ ६॥ १४७॥ जीत

था॥ १॥ १४२॥ राजा ने मुख्य पुरोहित से कहा कि प्रत्येक ब्राह्मण को एक भार (ढाई मन के बराबर) स्वर्ण दिया जाय। एक सौ हाथी, एक सौ रथ, दो हजार घोड़े, चार हजार स्वर्ण-सींगों वाली भैंसे प्रत्येक ब्राह्मण को दान-स्वरूप दी जायँ॥ २॥ १४३॥ इस प्रकार स्वर्णदान, रजतदान एवं ताम्रदान, अन्नदान इतना दिया गया कि अब लेनेवाले छिपने लगे, अर्थात् किसी को लेने की इच्छा न रही। वस्त्रदान एवं शस्त्रदान इतना किया गया कि भिक्षुक भी राजा बन गए और दूर-दूर देशों को चले गए॥ ३॥ १४४॥ चार कोस का यज्ञकुण्ड बनाया गया, जिसमें एक हजार पनाले बनाये गए और वेदव्यास आदि एक हजार ब्राह्मण उसमें होम करने लगे। हाथी के सूंड़ की तरह मोटी घृतधारा उसमें पड़ने लगी और अनेक प्रकार के व्यंजन अग्निज्वाला में भस्म होने लगे॥ ४॥ १४५॥ सब तीर्थों की मिट्टी एवं जल, सब देशों की लकड़ी एवं विशेष भोज्य-सामग्री तथा भाँति-भाँति के रसों का उस कुण्ड में हवन किया गया। यह सब देखकर श्रेष्ठ ब्राह्मण एवं अन्य सम्राट् चकित एवं प्रसन्न हुए॥ ५॥ १४६॥ उस होमकुण्ड में विभिन्न प्रकार के व्यंजन डाले जा रहे हैं और व्यास के समान महान विप्र चारों वेदों का पाठ कर रहे हैं अनेकों राजा, अनेक प्रकार के दान कर रहे हैं और दूर-दूर तक

जीत मवास आसन अरब खरब छिनाइ । आनि आनि दिए दिजानन जग्ग मै कुरराइ । भाँत भाँत अनेक धूप सु धूपिऐ तिह् आन । भाँत भाँत उठी जयं धुनि जत्र तत्र दिसान ॥ ७ ॥ ॥ १४८ ॥ जरासिंधह् मार कै पुनि कैरवा ह्थि पाइ । राजसूइ कियो बडो मखि किशन के मति भाइ । राजसूइ सु कै किते दिन जीत शत्र अनंत । बाजमेध अरंभ कीनो बेद ब्यास मतंत ॥ ८ ॥ १४९ ॥

॥ प्रिथम जग्ग समापतह् ॥

॥ स्रीबरण* बधह् ॥

चंद्र बरणी सुकरनि स्याम सुवरन पूछ समान । रतन तुंग उतंग (मू०ग्रं०१३६) बाजत उचस्रवाह् समान । निरत रवत चलै धरा परि काम रूप प्रभाइ । देखि देखि छकै सभै

भूमण्डल पर जय-जयकार की ध्वनि उठ रही है ॥ ६ ॥ १४७ ॥ सिर उठानेवाले राजाओं को जीतकर उनके अरबों, खरबों के कोषों को छीन लिया गया और सम्राट् युधिष्ठिर ने वह सब ब्राह्मणों में बाँट दिया। यज्ञमण्डप में अनेक प्रकार की धूपबत्ती जलाई गई है और यत्र-तत्र, सर्वत्र दिशाओं में जय-जयकार की ध्वनि उठ रही है ॥ ७ ॥ १४८ ॥ जरासन्ध को मारकर पांडवों ने कौरवों को भी अपने वश में कर लिया और कृष्ण के मतानुसार राजसूय यज्ञ का आयोजन किया। राजसूय यज्ञ के अन्तर्गत अनन्त शत्रुओं को जीतकर युधिष्ठिर ने वेदव्यास की सलाह के अनुसार फिर अश्वमेध यज्ञ किया ॥ ८ ॥ १४९ ॥

॥ प्रथम यज्ञ समाप्त ॥

श्रीबरण*-वध

चन्द्रमा की तरह (श्वेत) रंग, सुन्दर काले कान हैं और पूंछ सोने के रंगवाली है। उसके नेत्र भी रत्न के समान सुन्दर हैं और ऊँचाई भी ऐसी है, मानो वह सूर्य का घोड़ा हो। धरती पर उसे नृत्य करता हुआ देखकर कामदेव भी लजा जाता है। उसे देखकर सभी राजा एवं

---

* 'स्रीबरण' अश्वमेध यज्ञ के लिए बलि हेतु, श्वेत रंग, श्याम कर्ण और पीले रंग की पूँछ वाला अश्व।

न्रिप रीझि इउ न्रिपराइ ॥ ९ ॥ १५० ॥ बीण बेण म्रिदंग बाजत बासुरी सुर नाइ । मुरज तूर मुचंग मंडल चंग बंगस नाइ । ढोल ढोलक खंजका डफ झाँझ कोट बजंत । जंग घुंघरू टलका उपजंत राग अनंत ॥ १० ॥ १५१ ॥ अमित शब्द बजंत भेर हरंत बाज अपार । जात जउन दिसान को पछ लाग ही सिरदार । जउन बाध तुरंग जूझत जीतिऐ करि जुद्ध । आन जौन मिलै बचै नहि मारिऐ करि क्रुद्ध ॥ ११ ॥ १५२ ॥ हय फेर चार दिसान मै सभ जीत के छितपाल । बाजमेध कर्यो सपूरन अमित जग्ग रिसाल । भाँत भाँत अनेक दान सु दीजिअहि दिजराज । भाँत भाँत पटंबरादिक बाजियो गज-राज ॥ १२ ॥ १५३ ॥ अनिक दान दिए दिजानन अमित दरब अपार । हीर चीर पटंबरादि सुबरन के बहु भार । दुष्ट पुष्ट त्रसे सभै थरहर्यो सुनि गिरराइ । काटि काटिन दै हमै न्रिप बाँट बाँट लुटाइ ॥ १३ ॥ १५४ ॥ फेर कै सभ देस मै हय मारिओ मख जाइ । काटि के तिह को तबै पल कै करै चतु भाइ । एक बिप्रन एक छत्रन एक इसत्रिन दीन । चतु अंस

सम्राट् युधिष्ठर भी प्रसन्न होते हैं ॥ ९ ॥ १५० ॥ वीणा, मृदंग, बाँसुरियाँ, मुरज, तुरहियाँ, चंग आदि तथा ढोल, ढोलक, खँजड़ी, डफली, झाँझ, घुंघरू आदि अनेक वाद्य-यंत्र बज रहे हैं और उनमें से अनंत राग-स्वर उत्पन्न हो रहे हैं ॥ १० ॥ १५१ ॥ इस प्रकार के अनंत शब्दों के बीच मे अनेकों लोग अश्व के साथ घूम रहे हैं और वे जिस दिशा में जाते हैं, शूरवीर उनके पीछे जाते हैं। जो भी घोड़े को बाँध लेता है ये शूरवीर उसके साथ युद्ध करके उसको जीत लेते हैं और जो इनसे आकर मिल नहीं जाता उसे क्रोधित हो ये शूरवीर मार देते हैं ॥ ११ ॥ १५२ ॥ चारों दिशाओं में घोड़े को घुमाकर एवं सब राजाओं को जीतकर राजा ने सुंदर अश्वमेध यज्ञ किया। उसने ब्राह्मणों को भाँतिभाँति के दान, गज, अश्व, वस्त्रादि दिए ॥ १२ ॥ १५३ ॥ विप्रों को अपरिमित द्रव्य हीरे, वस्त्र एवं कई मन सोना दान में दिया गया। उस दान को देखकर सभी भयभीत हो गए एवं सुवर्ण पर्वत भी आतंकित हो उठा कि सम्राट् कहीं मुझे भी काट-काटकर सबको बाँट न दे ॥ १३ ॥ १५४ ॥ अश्व को सब देशों मे भ्रमण कराकर यज्ञ में लाकर मार डाला गया और उसको काटकर चार भागों में बाँट दिया गया। एक भाग ब्राह्मणों को, एक क्षत्रियों को तथा एक स्त्रियों को प्रदान किया गया चौथा भाग जो बचा था उसे कुंडयज्ञ

बाज अउ गजराज। साज साज सभै दिए बहु राज कौ न्रिपराज ॥ ३ ॥ १५९ ॥ ऐसि भात किओ तहाँ बहु बरख लउ तिह राज। करन बेद प्रमान लउ अर जीत कै बहु साज। एक दिवस चड़्यो न्रिप बर संग काज अखेट। देख म्रिग भइओ तहाँ मुनिराज सिउ भइ भेट ॥ ४ ॥ १६० ॥ पैंड याहि गयो नहो म्रिग के रखीसर बोल। उत्र भूपहि ना दियो मुनि आँखि भी इक खोल। म्रितक सरप निहारकै जिह अग्र ताह उठाइ। तउन के गर डारकै न्रिप जात भ्यो न्रिपराइ ॥ ५ ॥ १६१ ॥ आँख उघार लखैं कहा मुनि सरप देख डरान। क्रोध करत भयो तहाँ दिज रकत नेत्र चुवान। जउन मो गरि डारि ग्यो तिह काटि है अहिराइ। सप्त दिवसन मै मरै यहि सत्ति स्राप सदाइ ॥ ६ ॥ १६२ ॥ स्राप को सुनिकै डर्यो न्रिप मंद्र एक उसार। मद्धि गंग रच्यो धउलहरि छुइ सकै न बिआर। सरप की कह गंमता को काटि है तिह जाइ। काल पाइ कट्यो तबै तहि आन कै अहिराइ ॥ ७ ॥ १६३ ॥ साठ बरख

वस्त्र, घोड़े और हाथी आदि बहुत से राजाओं को राजा परीक्षित ने दिए ॥ ३ ॥ १५९ ॥ इस भाँति सबको जीतकर राजा ने बहुत वर्षों तक राज किया। एक दिन राजा शिकार खेलने चला और उसने एक मृग को भागते देखा। आगे आकर उसकी भेंट एक मुनि से हो गई ॥ ४ ॥ १६० ॥ राजा ने ऋषि से पूछा कि हे ऋषि ! बताओ, क्या मृग इसी रास्ते से गया है ? मुनि ने न तो आँख खोली और न ही राजा को कोई उत्तर दिया। राजा ने (क्रोधित हो) एक मरा हुआ साँप वहाँ से उठाया और मुनि के गले में डालकर वहाँ से चल दिया ॥ ५ ॥ १६१ ॥ मुनि ने जब आँख खोलकर देखा तो वह सर्प को गले में पड़ा देखकर डर गया तथा साथ ही मारे क्रोध के उसकी आँखों में रक्त उतर आया। मुनि ने कहा कि जिसने इसे मेरे गले में डाला है, यह तक्षक नाग बनकर उसी को काटेगा और मेरा यह श्राप है कि सात दिन के अंदर वह मृत्यु को प्राप्त होगा ॥ ६ ॥ १६२ ॥ श्राप को सुन राजा डरा और उसने गंगा के बीचोंबीच एक घर (बड़ी नाव पर) बनवाया और उसमें ऐसे स्थान पर छुप गया जहाँ हवा भी नहीं जा सकती थी। सर्प को वहाँ पहुँच नही हो सकती, इस बात से राजा आश्वस्त होकर वहाँ रहने लगा, परन्तु समय के अंदर ही तक्षक ने (वहाँ प्रवेश कर) राजा को डस लिया ॥ ७ ॥ १६३ ॥ साठ वर्ष दो माह एवं चार दिन की अवधि भोगकर राजा की ज्योति उस

प्रमान लउ दुइ मास यौ दिन चार । जोति ओति बिखै रली न्रिप राज को करतार । भूम भरथ भए तबै जनमेज राज महान । सूरबीर हठी तपी दस चार चार निधान ॥८॥१६४॥

॥ इति राजा प्रीछत समापतं भए ॥

राजा जनमेजा राज पावत भए ॥

॥ रूआल छंद ॥ राज को ग्रिह पाइकै जनमेज राज महान । सूरबीर हठो तपी दस चार चार निधान । पितर के बध कोप ते सभ बिप्र लीन बुलाइ । सरप मेध कर्यो लगे मख धरम के चित चाइ ॥ १ ॥ १६५ ॥ एक कोस प्रमान लउ मख कुंड कीन बनाइ । मंत्र शकत करनै लगे तहि होम बिप्र बनाइ । आन आन गिरै लगे तहि सरप कोट अपार । जत्र तत्र उठी जैत धुन भूम भूर उदार ॥ २ ॥ १६६ ॥ हसत एक (मू०ग्रं०१४१) दु हसत तीन चउ हसत पंच प्रमान । बीस हाथ इकीस हाथ पचीस हाथ समान । तीस हाथ बतीस हाथ छतीस हाथ गिराहि । आन आन गिरै तहा सभ भसम भूत होइ जाहि ॥ ३ ॥ १६७ ॥

परमकर्ता में विलीन हो गई । तब भारत भूमि में जनमेजय नामक महान् राजा हुए जो शूरवीर, हठ, तपस्वी एवं अठारह पुराणों तथा विद्याओ मे पारंगत थे ॥ ८ ॥ १६४ ॥

॥ इति राजा परीक्षित समाप्त हुए ॥

राजा जनमेजय को राज्य-प्राप्त

॥ रूआल छंद ॥ राजा के घर जन्म लेकर महान् जनमेजय शूरवीर, हठी, तपस्वी और सर्व विद्याओं एवं पुराण-शास्त्रों में पारगत हुआ । पिता की अकाल मृत्यु से कुपित होकर उसने सभी विप्रो को बुलाया और धर्म का विचार कर उसने सर्पमेध यज्ञ का आयोजन किया ॥ १ ॥ १६५ ॥ एक कोस में उसने यज्ञकुंड बनवाया, जिसमे मंत्रशक्ति से सारे विप्र होम करने लगे । उस कुड में चारों ओर से सर्प आकर गिरने लगे और संपूर्ण धरती पर राजा की जय-जयकार की ध्वनि उठने लगी ॥ २ ॥ १६६ ॥ एक हाथ, दो हाथ, तीन-चार-पाँच हाथ, बीस-इक्कीस-पच्चीस हाथ तीस-बत्तीस छत्तीस हाथ सबे सर्प आकर कुड में गिरकर भस्म होने लगे ३ १६७ एक

एक सौ हसत प्रमान दो सौ हसत प्रमान । तीन सौ हसत प्रमान चत्र सै सु समान । पाँच सै खट सै लगे तहि बीच आन गिरंत । सहंस हसत प्रमान लउ सम होम होत अनंत ॥ ४ ॥ ॥ १६८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ रच्यो सरप मेधं बडो जग्य राजं । करै बिप्र होमै सरै सरब काजं । दहे सरब सरपं अनंतं प्रकारं । भुजं भोग अनंतं जुगं राज द्वारं ॥ १ ॥ १६९ ॥ किते अष्ट हसतं सतं ग्राइ नारं । किते द्वादिसे हस्त लौ परम भारं । किते द्वै सहंसर किते जोजनेकं । गिरे होमकुंडं अपारं अचेतं ॥ २ ॥ १७० ॥ किते जोजने दुइ किते तीन जोजन । किते चार जोजन दहे भूम भोगन । किते मुष्ट अंगुष्ट ग्रिष्टं प्रमानं । किते डेढ़ गिष्टे अंगुष्टं अरधानं ॥ ३ ॥ १७१ ॥ किते चार जोजन लउ चार कोसं । छुऐ ग्रित जैसे करै अगन होमं । फणं फटकै फेणका फंत कारं । छुटै लपट ज्वाला बसै बिख धारं ॥ ४ ॥ १७२ ॥ किते सपत जोजन लौ कोस अष्टं । किते अष्ट जोजन महा परम पुष्टं । भयो घोर बधं जरे कोट नागं । भज्यो तच्छकं भच्छकं जेम कागं ॥ ५ ॥ १७३ ॥

सौ हाथ, दो सौ, तीन सौ, चार सौ, पाँच सौ, छः सौ तथा हज़ार हाथ लम्बे सर्प उस कुंड में आकर गिरने लगे और भसम होने लगे ॥ ४ ॥ १६८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ इस प्रकार राजा ने महान् सर्पमेध यज्ञ का आयोजन किया, जिसमें सर्व कामनाओं की पूर्ति के लिए विप्र-होम करने लगे। अनेकों प्रकार के सर्पों का दहन हुआ और राजद्वार तक पहुँचनेवाले सभी सर्प नष्ट हो गये ॥ १ ॥ १६९ ॥ कहीं सात-आठ हाथ मोटी गर्दनवाले, बारह हाथों जितने मोटे, कहीं दो हज़ार हाथ लंबे और कहीं एक योजन लंबे सर्प अचेत होकर होमकुंड में गिरने लगे ॥ २ ॥ १७० ॥ कहीं एक योजन, कहीं दो-तीन एवं चार योजन लंबे सर्पों का दहन हुआ और कहीं मुट्ठी भर, अँगूठे भर लंबे सर्पों का होम हुआ। कहीं डेढ़ हाथ (अँगूठे से छोटी अँगुली तक की लम्बाई अथवा बित्ता भर), कहीं आधे अँगूठे जितने लंबे सर्प जल उठे ॥ ३ ॥ १७१ ॥ कहीं चार योजन एवं चार कोस लंबे सर्प जैसे ही घी को छूते थे, उनका होम कर दिया जाता था। सर्प फनों को फेंक-फेंककर फुफकार रहे थे और लपटों के साथ विष की धाराएँ फेंक रहे थे ॥ ४ ॥ १७२ ॥ कहीं सात योजन (लम्बाई की प्राचीन नाप) से लेकर आठ कोस तक और कहीं आठ योजन तक लंबे परम पुष्ट सर्पों का घोर वध इस मे हुआ तक्षक डर के मारे इस प्रकार

कुलं कोट होमै बिखै रचण कुंडं । बचे बाध डारे घने कुंड झुंडं । भज्यो नाग रागं तक्यो इंद्रलोकं । जर्यो बेद मंत्रं भर्यो सक्र सोकं ॥ ६ ॥ १७४ ॥ बध्यो मंत्र जंत्रं गिर्यो भूम मद्धं । अड़्यो आसतीकं महा बिप्र सिद्धं । भिड़्यो भेड़ भूपं छिण्यो छेड़ छाड़ं । महा क्रोध उठयो तणो तोड़ ताड़ं ॥ ७ ॥ १७५ ॥ तज्यो सरप मेधं भज्यो एक नाथं । क्रिपा मंत्र सूझै सभै स्रिष्ट साजं । सुनहु राज सरदूल बिद्या निधानं । तपै तेज सावंत ज्वाला समानं ॥ ८ ॥ १७६ ॥ महो माह रूपं तपै तेज भानं । दसं चार चउदाह बिद्या निधानं । सुनहु राज शास्त्रग्ग सारंग पानं । तजहु सरप मेधं दिजै मोहि दानं ॥ ९ ॥ १७७ ॥ तजहु जो न सरपं जरौ अगन आपं । करौ (मू०ग्रं०१४२) दगध तोको दियो ऐस स्रापं । हण्यो पेट मद्धं छुरी जम दाड़ं । लगे पाप तोको सुनहु राजगाड़ं ॥ १० ॥ १७८ ॥ सुने बिप्प बोलं उठ्यो आप राजं । तज्यो सरपमेधं पिता बैर काजं । बुल्यो

भागा जैसे कौवे के डर के मारे कीड़ा भागता है ॥ ५ ॥ १७३ ॥ उसके कुल के करोड़ों सर्प यज्ञकुंड में होम कर दिए गए और जो बचे थे उनको वैसे मार डाला गया । नागराज तक्षक भागकर इंद्रलोक पहुंचा । इंद्रलोक भी वेदमंत्रों के तेज से जलने लगा जिसे देखकर इंद्र चिंतातुर हो उठा ॥६॥१७४॥ मंत्रयंत्रों से बंधा हुआ तक्षक भूमि पर आ गिरा और उसे देखकर आस्तीक नामक एक सिद्ध विप्र (ब्राह्मण) राजा के समक्ष आ खड़ा हुआ । वह महाक्रोधित होकर राजा से भिड़ गया और उसने अपने वस्त्रों की रस्सियों को तोड़कर अपना क्रोध प्रकट किया ॥ ७ ॥ १७५ ॥ वह कहने लगा, हे राजन् ! सर्पमेध यज्ञ को बंद करो और केवल एक परमात्मा का भजन-ध्यान करो, जिससे सृष्टि-रचयिता की तुम पर कृपा हो । हे सिंह के समान बलशाली राजा ! तुम विद्या के सागर हो और तुम्हारा तपःतेज ज्वाला के समान धधक रहा है ॥ ८ ॥ १७६ ॥ सारी सृष्टि में तुम्हारा तेज प्रताप सूर्य के समान चमक रहा है और चौदह विद्याओं में तुम निपुण हो । हे महाधनुषधारी राजन् ! तुम शास्त्रों के ज्ञाता हो, तुम सर्पमेध का त्याग करो और मुझे दान-दक्षिणा प्रदान करो ॥९॥१७७॥ यदि तुम तक्षक को और सर्पमेध को नहीं छोड़ोगे तो मैं स्वयं अग्नि में जल मरूँगा और तुम्हें ऐसा श्राप दूंगा कि तुम भी जल मरोगे । मैं पेट में कटार भोंककर जान दे दूंगा, जिससे हे राजन ! तुम्हें गम्भीर पाप लगेगा ॥ १० । १७८ ब्राह्मण की बात सुनकर राजा स्वयं उठा और उसने पिता के वध का बदला लेने के निमित्त किए जा रहे सर्पमेध यज्ञ

ब्यास पासं कर्‌यो मंत्र चारं। महा बेद ब्याकरण बिद्या बिचारं ॥ ११ ॥ १७९ ॥ सुनी पुत्रका दुइ ग्रिहं कासि राजं। महा सुंदरी रूप सोभा समाज। जिणउ जाइ ताको हणो दुस्ट पुस्टं। कर्‌यो ध्यान ताने लदे भार उस्टं ॥ १२ ॥ १८० ॥ चली सैन सूकर पराची दिसानं। चड़े बीर धीरं हठे शस्त्र पानं। दुर्‌यो जाइ दुरगं सु बाराणसीसं। घेर्‌यो जाइ फउजं मच्यो एक ईसं ॥ १३ ॥ १८१ ॥ मच्यो जुद्ध सुद्धं बहै शस्त्र घातं। गिरे अद्ध बद्धं सनद्धं बिपातं। गिरे हीर चीरं सु बीरं रजाणं। कटे अद्धु अद्धं छुटं रुद्र ध्यानं ॥ १४ ॥ १८२ ॥ गिरे खेत्र खत्राण खत्री खत्राणं। बजी भेर भुंकार ढुकिआ निशाणं। करे पैज बारं प्रजारै सु बीरं। फिरे रुंड मुंडं तणं तच्छ तीरं ॥ १५ ॥ १८३ ॥ बिधे दंत बरमं प्रछेदं तनानं। करै मरदनं अरदनं मरद मानं। कटे चरम बरमं छुटे चउर चारं। गिरे बीर धीरं छुटे शस्त्र धारं ॥ १६ ॥ १८४ ॥ जिण्यो

का त्याग कर दिया। राजा ने वेद-व्याकरण एवं विद्याओं के ज्ञाता वेदव्यास को अपने पास बुलाया और उससे विचार-विमर्श किया ॥ ११ ॥ ॥१७९॥ (क्रोध को शान्त करने के लिए) राजा ने कहा कि मैंने सुना है कि काशीराज के घर में दो सुन्दर कन्याएँ हैं जो महान रूपवती हैं। व्यास ने सलाह दी कि जाओ, जाकर उनको जीतो और शत्रुओं का नाश करो। ऊँटों पर शस्त्रास्त्र लादकर राजा ने सेना-समेत चढ़ाई कर दी ॥ १२ ॥ १८० ॥ वायुवेग से सेना पूर्व दिशा की ओर चलने लगी और महान शूरवीर हाथों में शस्त्र लेकर चढ़ उठे। वाराणसी-नरेश क़िले में जा छिपा और इधर सेना ने परमात्मा का ध्यान धर दुर्ग को घेर लिया ॥ १३ ॥ १८१ ॥ शस्त्रों के आघात होने लगे और वीर टुकड़े-टुकड़े होकर गिरने लगे। वीर लाल वस्त्रों को धारण किए अर्थात् रक्त से लथपथ होकर गिरने लगे और इतनी भीषण मारकाट हुई कि ध्यानावस्थित रुद्र का भी ध्यान खण्डित हो गया ॥ १४ ॥ १८२ ॥ रणक्षेत्र में क्षत्रिय गिरने लगे और भेरियों, नगाड़ों की भीषण ध्वनि होने लगी। शूरवीर ललकार कर प्रतिज्ञाएँ कर रहे हैं और वार कर रहे हैं तथा रणस्थल में कटे-फटे छिले हुए घूम रहे हैं ॥ १५ ॥ १८३ ॥ तीर लौह-कवचों को भेदते हुए शरीरों में घुस रहे हैं और बलशाली वीर अन्यों का मान-मर्दन कर रहे हैं। शरीर एवं कवच कट रहे हैं और छत्र टूट रहे हैं और शस्त्रों के वारों के साथ धीर वीर गिर रहे हैं १६। १८४

काशकौशं हण्यो सरब सैनं । वरी पुत्रका ताह कंन्यो बिनेन । भयो मेल गेलं मिले राज राजं । भई मित्रचारं सरे सरब काजं ॥ १७ ॥ १८५ ॥ मिली राज दाजं सु दासी अनूपं । महा बिद्यवंती अपारं सरूपं । मिले हीर चीरं किते सिआउ करनं । मिले मत्तवंती किते सेत बरनं ॥ १८ ॥ १८६ ॥ कर्यो व्याह राजा भयो सु प्रसंनं । भली भाँत पोखे दिजंसरब अंनं । करे भाँत भाँतं महा गज्ज दानं । भए दोइ पुत्रं महाँ रूप मानं ॥ १९ ॥ १८७ ॥ लखी रूपवंती महाराज दासी । मनो चीरकं चार चंद्रा निकासी । लहैं चंचला चार बिद्या लतासी । किधौ कंजकी भाँस सोभा प्रकासी ॥ २० ॥ १८८ ॥ किधौ फूल माला लखै चंद्रमासी । किधौ पदमनी मै बनी मालतीसी । किधौ पुहप धंन्या फुली राइ बेलं । तजे अंग ते बासु चंपा फुलेलं ॥ २१ ॥ (मू०ग्रं०१४३) १८९ ॥ किधौ देव

काशीराज को जीत लिया गया और उसकी सेना को नष्ट कर दिया गया और राजा ने उन कन्याओं से विवाह कर लिया । राजा का रौद्र रूप देखकर शिव भी काँप उठे । राजाओं में संधि हो गई और सभी कार्यों मे मित्राचार का पालन किया गया ॥ १७ ॥ १८५ ॥ दहेज में राजा को अनुपम सुन्दरी दासियाँ प्राप्त हुईं जो महान् विद्यावती थीं । राजा को हीरे, वस्त्र एवं काले-श्वेत हाथी-घोड़े भी प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ १८६ ॥ विवाह करके राजा सुप्रसन्न हुआ और उसने भलीभाँति सभी विप्रों को सर्व प्रकार के अन्नों का दान दिया । राजा ने भाँति-भाँति के हाथी दान किये और उन कन्याओं से दो रूपवान पुत्रों ने जन्म लिया ॥ १९ ॥ १८७ ॥ दहेज में आई रूपवान दासी को एक दिन महाराज ने देखा और उसे लगा कि मानो चन्द्रमा की चाँदनी में से किरणों को खींचकर परमात्मा ने उस रूपवती का निर्माण किया हो । वह ऐसी लगी मानो सर्वविद्याओं की लता के समान हो अथवा कमल के फूलों की गंध साक्षात् प्रकट हुई हो ॥ २० ॥ ॥ १८८ ॥ वह ऐसी लगी मानो सुगंधित फूलमाला हो अथवा स्वयं चंद्रमा ही हो । वह मानो मालती का फूल हो अथवा पद्मिनी हो । वह ऐसी लगी मानो रति हो अथवा फूलों की श्रेष्ठ बेल हो । उसके अंगों से चंपा के फूलों की गंध आ रही थी ॥ २१ ॥ १८९ ॥ ऐसी लग रही थी मानो देवकन्या पृथ्वी पर घूम रही हो अथवा कोई यक्षिणी या किन्नर-कन्या के समान विचरण कर रही हो वह इस प्रकार असह्य प्रतीत हो रही थी, जैसे शिव का अपरिमित बलशाली वीर्य एक सामान्य बालिका

कन्या प्रिथीलोक डोलै । किधौं जच्छनी किन्नरी सिद्ध कलोलै । किधौं चंद्र बीजं फिरै नृद्धि बालं । किधौं पत्र पानं नचै कउल नालं ॥ २२ ॥ १९० ॥ किधौं रागमाला रची रंग रूपं । किधौं इसत्रि राजा रची भूप भूपं । किधौं नाग कन्या किधौं बासवी है । किधौं संखनी चित्रनी पद्मनी है ॥ २३ ॥ १९१ ॥ लसै चित्र रूपं बचित्रं अपारं । महा रूपवंती महाँ जोवनारं । महा ग्यानवंती सु बिज्ञान करमं । पढ़ें कंठि बिद्या सु बिद्यादि धरमं ॥ २४ ॥ १९२ ॥ लखी राज कंनिआन ते रूपवंती । लसै जोत ज्वाला अपारं अनंती । लख्यो ताहि जनमेजए आप राजं । करे परम भोगं लिए सरब साजं ॥ २५ ॥ १९३ ॥ बढ़्यो नेहु तासो तजी राजकन्या । हुती शिस्ट की दिष्ट महि पुष्ट धन्या । भयो एक पुत्र महाँ शस्त्रधारी । बसं चार चउदाह बिद्या बिचारी ॥ २६ ॥ १९४ ॥ धर्‌यो अस्वमेधं प्रिथम पुत्र नामं । भयो असमेधान दूजो प्रधानं । अजैसिंघ राख्यो रजी पुत्र सूरं । महाँ जंग जोधा महाँ जस पूरं ॥ २७ ॥

के लिए असह्य हो । ऐसी चंचल एवं सुन्दर लग रही थी मानो कमल-पत्र पर पानी की बूँदें नाच रही हों ॥ २२ ॥ १९० ॥ वह दासी ऐसी लग रही थी मानो स्वरों की रागमाला हो और रूप की प्रतिमूर्ति हो । ऐसी लग रही थी मानो स्त्रियों में श्रेष्ठ मोहिनी स्त्री हो । वह ऐसी लग रही थी मानो कोई नागकन्या हो अथवा शेषनाग की पत्नी हो । पता नहीं लग पा रहा था कि वह चित्रणी, शंखिनी है अथवा पद्मिनी स्त्री है ॥ २३ ॥ १९१ ॥ वह नारी चित्रवत् स्वरूप वाली महान रूपवती नवयौवना थी जो महान ज्ञानवान एवं विज्ञान क्रीडाओं में रुचि लेने वाली थी । वह विद्या-धर्म को भी समझनेवाली विदुषी थी ॥ २४ ॥ ॥१९२॥ राजा ने उसको राजकन्या से भी अधिक रूपवान पाया और वह ज्वाला के समान राजा के हृदय में देदीप्यमान होने लगी । राजा जनमेजय ने स्वयं उसे देखा और उससे विवाह करने के लिए सर्व प्रकार से साज-सज्जा की और परम भोग में लिप्त हो गया ॥ २५ ॥ १९३ ॥ राजा का प्रेम उससे इतना बढ़ गया कि उसने उस राजकन्या का त्याग कर दिया, जो कभी संसार की दृष्टि में धन्य मानी जाती थी । उस दासी से एक महान् शस्त्रधारी पुत्र पैदा हुआ, जो चौदह विद्याओं में निपुण था ॥२६॥१९४॥ राजा ने पहले पुत्र का नाम अश्वमेध रखा और दूसरे पुत्र का नाम रखा इस दासी के सूरवीर पुत्र का नाम अजयसिंह रखा

॥ १९५ ॥ भयो तनदुरुसतं बलिष्टं महानं । महाँ जंग जोधा सु शस्त्रं प्रधानं । हणे दुष्ट पुष्टं महाँ शस्त्र धारं । बड़े शत्र जीते जिवे रावणारं ॥ २८ ॥ १९६ ॥ चड़्यो एक दिवसं अखेटं नरेशं । लखे म्रिग धायो गयो अउर देसं । स्रम्यो परम बाटं तक्यो एक तालं । तहा दउरके पीठ पानं उतालं ॥ २९ ॥ ॥ १९७ ॥ कर्‌यो राज सैनं कढ्यो बार बाजं । तकी बाजनी रूप राजं समाजं । लग्यो आन ताको रह्यो ताहि गरभं । भयो स्याम करणं सु बाजी अदरबं ॥ ३० ॥ १९८ ॥ कर्‌यो बाजमेधं बडो जग्ग राजा । जिणे सरब भूपं सरे सरब काजा । गड़्यो जग्ग थंभं कर्‌यो होम कुंडं । भलीभाँत पोखे बली बिप्र झुंडं ॥ ३१ ॥ १९९ ॥ दए कोट दानं पके परमपाकं । कलू मद्धि कीनो बडो धरमसाकं । लगी देखने आप जिउँ राज बाला । महा रूपवंती महा ज्वाल आला ॥ ३२ ॥ २०० ॥ उड़्यो पउन के बेग सिउँ अग्र पत्रं । हसे देख नगनं त्रियं (मू०ग्रं०१४४) बिप्र छत्रं । भयो कोप राजा गहे बिप्र सरबं । वहे खीर खंडं बडे

यह महाबली एवं यशस्वी था ॥ २७ ॥ १९५ ॥ यह लड़का बहुत ही स्वस्थ एवं बलिष्ठ तथा महान शस्त्रधारी योद्धा बना जिसने अनेकों दुष्टों एवं शस्त्रधारियों को ऐसे मार गिराया, जैसे रावण को राम ने मार गिराया था ॥ २८ ॥ १९६ ॥ एक दिन राजा शिकार खेलने गया और उसने एक मृग को देखा जो उसे एक सुदूर देश में ले गया। राजा थक गया और उसने एक तालाब देखा। उस सरोवर से राजा ने पानी पिया और स्नान किया ॥ २९ ॥ १९७ ॥ राजा तो वहाँ सो गया, परन्तु सरोवर से एक घोड़ा निकला जिसने राजा की सुन्दर घोड़ी को देखा। उस अश्व ने इस घोड़ी के साथ संभोग किया। जिससे यह गर्भवती हो गई और समय पाकर उसने एक काले कानों वाले अमूल्य घोड़े को जन्म दिया ॥३०॥१९८॥ राजा ने बाद में अश्वमेध यज्ञ किया और सारे राजाओं को जीतकर अपने साम्राज्य को बढ़ाया। राजा ने यज्ञ-स्तम्भ बनवाकर कुंड में भलीभाँति होम किया और ब्राह्मणों के झुंडों को पूरी तरह प्रसन्न किया ॥३१॥१९९॥ करोड़ों दान उसने दिए और अनेकों व्यंजन तैयार करवाए। इस कलियुग में उसने बहुत बड़ा धर्म-कार्य किया। इस सारे दृश्य को देखने के लिए महारूपवती पटरानी वहाँ स्वयं आ गयी ॥ ३२ ॥ २०० ॥ (दैवयोग से) वायु के झोंके से उसके अंग के वस्त्र उड़ गए और उसे नग्न देखकर विप्र हँसने लगे राजा यह देखकर क्रोधित हो उठा उसने

परम गरभं ॥ ३३ ॥ २०१ ॥ प्रिथम बाधिकै सरब मूंडे मुँडाए । पुनर एडुआ सीस ताके टिकाए । पुनर तपत कै खीर के मद्धि डार्‍यो । इमं सरब बिप्रान कउ जारि मार्‍यो ॥ ३४ ॥ ॥ २०२ ॥ किते बाँधि कै बिप्र बाजे दिवारं । किते बाँध फासी दिए बिप्र मारं । किते बारि बोरे किते अगनि जारे । किते अद्धि चीरे किते बाँध फारे ॥ ३५ ॥ २०३ ॥ लग्यो दोख भूपं बढ्यो कुस्ट देही । सभै बिप्र बोले कर्‍यो राज नेही । कहो कउन सो बैठि कीजै बिचारं । बहै देह दोखं मिटै पाप भारं ॥ ३६ ॥ २०४ ॥ बोले राज द्वारं सभै बिप्र आए । बडे ब्यास ते आदि लै कै बुलाए । दिखं लाग शास्त्रं बोले बिप्र सरबं । कर्‍यो बिप्रमेधं बढ्यो भूप गरबं ॥ ३७ ॥ २०५ ॥ सुनहु राज सरदूल बिद्या निधानं । कर्‍यो बिप्रमेधं सु जग्गं प्रमानं । भयो अकसमातं कह्यो नाहि कउनं । करी जउ न होती भई बात तउनं ॥ ३८ ॥ २०६ ॥ सुनहु ब्यास ते परब

सभी विप्रों को पकड़ा तथा दूध और खाँड़ के कुंडों में उनको गर्वपूर्वक फेंककर मार डाला ॥ ३३ ॥ २०१ ॥ पहले तो उनको बाँधकर उनके सिर मुँड़वा दिए गए और उनके सिरों पर सनई की बनी गोल एवं चौड़ी गेंदें बाँधी गयीं । फिर उन्हें गर्म दूध के कुंडों में डालकर जलाकर मार दिया गया ॥ ३४ ॥ २०२ ॥ कहीं विप्रों को दीवारों में जिंदा दफ़न कर दिया तथा बहुतों को फाँसी दे दी । कइयों को पानी में डुबाया तथा कइयों को अग्नि में जला दिया । कइयों को आधा चीरकर फाड़ दिया गया ॥३५॥२०३॥ ब्राह्मणों को इस प्रकार मार डालने के कारण राजा के शरीर में कुष्ट हो गया, तब राजा ने अन्य विप्रों को बुलाया और उनसे बड़ा स्नेह किया तथा कहा कि अब मुझे वह तरीक़ा बताइए, जिससे मेरा यह पापकर्म नष्ट हो और मेरी देह का कोढ़ समाप्त हो ॥ ३६ ॥ २०४ ॥ राजद्वार पर आकर सभी विप्र बोले तथा व्यास आदि ऋषियों को भी बुलाया गया । ब्राह्मणों ने अपने शास्त्रादि देखे और कहा कि अधिक अभिमान हो जाने के कारण राजा ने विप्रमेध कर दिया है ॥३७॥२०५॥ हे सिंह के समान बलशाली राजा ! तुम विद्याओं के समुद्र हो, परन्तु अब यह सारा संसार जानता है कि तुमने विप्रमेध कर दिया है । वैसे यह घटना किसी के कहने से नहीं हुई है अकस्मात हुई है । जो नहीं किया जाना चाहिए था, वही सब कुछ हो गया ॥ ३८ ॥ २०६ ॥ आप व्यास से महाभारत के अठारह पर्वों को श्रवण करें आपके शरीर का सारा कुष्ट समाप्त हो जायगा व्यास और विप्रों ने कहा कि हे राजन

अष्टं दसानं । दहै देह ते कुष्ट सरबं न्रिपानं । बोलै बिप्र ब्यासं सुनै लाग परबं । पर्यो भूप पाइन तजे सरब गरबं ॥ ३९ ॥ २०७ ॥ सुनहु राज सरदूल बिद्या निधानं। हुओ भरथ के बंस मै रघुरानं । भयो तउन के बंस मैं राम राजा । दीजै छत्र दानं निधानं बिराजा ॥ ४० ॥ २०८ ॥ भयो तउन की जद्द मै जद्दुराजं । दसं चार चौदह सु बिद्या समाजं । भयो तउन के बंस मै संतनेअं । भए ताहि के कउरओ पांडवेअं ॥ ४१ ॥ २०९ ॥ भए तउन के बंस मै घ्रितराष्ट्रं । महा जुद्ध जोधा प्रबोधा महास्त्रं । भए तउन के कउरवं कूर करमं । कियो छत्रणं जैन कुल छंण करमं ॥४२॥ ॥ २१० ॥ कियो भीखमे अग्र सैना समाजं । भयो क्रुद्ध जुद्धं समुह पंड राजं । तहाँ गरजिओ अरजनं परम बीरं । धनुर-बेद ज्ञाता तजे परम तीरं ॥ ४३ ॥ २११ ॥ तजी बीर बाना बरी बीर खेतं । हण्यो भीखमं सभै सैना समेतं । दई बाण सिज्जा गरे भीखमैणं । जयं पत्र पायो सुखं पांडवैणं ॥ ४४ ॥ ॥ २१२ ॥ भए द्रोण (मू०ग्रं०१४५) सैनापती सैनपालं । भयो घोर जुद्धं तहाँ तउन कालं । हण्यो ध्रिष्टदोनं तजे द्रोण प्राणं ।

मन लगाकर आप सारे पर्वों को सुनें । तब राजा अहंकार त्यागकर विप्रों के पैरों को छूने लगा ॥ ३९ ॥ २०७ ॥ हे विद्यानिधान एवं सिंह के समान राजा! सुनो, भरत के वश में रघु नामक एक राजा हुआ, जिसके वश में आगे चलकर राम नामक राजा हुआ, जिसने अपना राज्य (अपने भाई भरत को) दान करके स्वयं शोभा-प्रशसा प्राप्त की ॥ ४० ॥ २०८ ॥ उन्हीं के वश में आगे चलकर राजा यदु हुए, जो सर्वविद्याओं से सुसज्जित थे । उनके वंश में राजा शान्तनु हुए, जिनसे कौरव और पांडव पैदा हुए ॥४१॥२०९॥ उनके वश मे आगे चलकर धृतराष्ट्र नामक महाबली एवं पराक्रमी राजा पैदा हुए । उन्हीं धृतराष्ट्र से क्रूरकर्म करनेवाले कौरव पैदा हुए, जिन्होंने अपने कर्मों से अपने कुल का क्षय किया ॥ ४२ ॥ ॥२१०॥ (कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में) उन्होंने भीष्म को सेनापति बनाया और पांडवों ने भीषण युद्ध किया । वहीं अर्जुन, जो धनुर्वेद का परम ज्ञाता था, गरजा और उसने बाण-वर्षा की ॥ ४३ ॥ २११ ॥ युद्धस्थल में वीरों ने बाणों की घनघोर वर्षा कर भीष्म को सेना-समेत मार डाला । भीष्म को शर शय्या पांडवों ने प्रदान की और उस दिन का युद्ध जीत लिया ४४। २१२ तब द्रोणाचार्य सेनापति हुए और वहाँ घमासान युद्ध

कर्यो जुद्ध ते देवलोकं पियाणं ॥ ४५ ॥ २१३ ॥ भए करण सैनापता छत्रपालं । मच्यो जुद्ध क्रुद्धं महाँ बिकरालं । हण्यो ताहि पंथं सदं सीसु कप्यो । गिर्यो तउण जुद्धिष्टरं राजु थप्यो ॥ ४६ ॥ २१४ ॥ भए सैण पालं बली सूल सल्यं । भलीभाँति कुप्यो बली पंड दल्यं । पुनर हसत जुद्धिष्टरं शकत बेधं । गिर्यो जुद्ध भूपं बली भूप बेधं ॥ ४७ ॥ २१५ ॥ ॥ चौपई ॥ सल राजा जउनै दिन जूझा । कउरउ हार तवन ते सूझा । जूझत सल्ल भयो असतामा । कूट्यो कोट कटकु इक जामा ॥ १ ॥ २१६ ॥ ध्रिष्टदोनु मार्यो अति रथी । पांडव सैन भले करि मथी । पांडव के पाँचो सुत मारे । द्वापर मै बड कीन अखारे ॥२॥२१७॥ कउरउ राज कियो तब जुद्धा । भीम संगि हुइकै अति क्रुद्धा । जुद्ध करत कबहू नही हारा । कालबली तिह आन सँघारा ॥ ३ ॥ २१८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ तहा भीम कुरराज सिउ जुद्ध मच्च्यो ।

होने लगा । धृष्टद्युम्न ने द्रोण पर आक्रमण कर उसे मार डाला और द्रोणाचार्य युद्धक्षेत्र से देवलोक प्रयाण कर गए ।। ४५ ।। २१३ ।। तब कर्ण सेनापति हुए और महाप्रलयकारी विकराल युद्ध प्रारम्भ हो गया । उस रथ से नीचे उतरे हुए को अर्थात् रास्ते में खड़े हुए को मार डाला गया, जिसे देखकर सत्य (सत्याचरण) का शीश भी (नियम-प्रतिकूल युद्ध को देखकर) काँप उठा । कर्ण के गिरते ही पांडवों की जीत सुनिश्चित हो गयी और युधिष्ठिर राजा के तौर पर (मानो) स्थापित हो गए ।। ४६ ।। ।। २१४ ।। अब शत्रुओं के लिए शूल के समान चुभनेवाला राजा शल्य (कौरव) सेना का संरक्षक नियुक्त हुआ । इसने कुपित होकर पांडवों का दलन किया, परन्तु युधिष्ठिर ने इसे अपनी शक्ति से वेध डाला और राजा शल्य भी युद्धभूमि मे गिर पड़ा ।। ४७ ।। २१५ ।। ।। चौपाई ।। जिस दिन राजा शल्य रणक्षेत्र में वीरगति पा गया, उसी दिन कौरवों को भान हो गया कि उनकी हार निश्चित है । शल्य के मरते ही अश्वत्थामा सेनापति बना और उसने एक ही रात मे असंख्य सेना को मार डाला ।। १ ।। २१६ ।। उसने अतिरथी धृष्टद्युम्न को मार डाला और पांडव सेना का भलीभाँति मथन किया । उसने पांडवों के पाँचों पुत्र मार डाले और इस प्रकार द्वापर मे भीषण युद्ध किया ।।२।।२१७।। तब कौरवराज (दुर्योधन) ने अत्यन्त क्रोधित होकर भीम के साथ युद्ध किया । जो युद्ध में कभी नहीं हारा था, युद्धस्थल में उसका भी महाकाल ने संहार कर दिया ३ २१८

छुटी ब्रह्म तारी महाँ रुद्र नच्चयो। उठै शब्द निरघात आघात बीरं। भए रुंड मुंडं तणं तच्छ तीरं॥ १॥ २१९॥ गिरे बीर एकं अनेकं प्रकारं। गिरे अद्ध अद्धं छुधं शस्त्रधारं। कटे कउरवं दूर सिंदूर खेतं। नचे गिद्ध आवद्ध सावंत खेतं॥ २॥ २२०॥ बली मंडलाकार जुज्झै बिराजै। हसै गरज ठोकैं भुजा हर बु गाजै। दिखावै बली मंडलाकार थानै। उभारै भुजा अउ फटाकैं गजानै॥ ३॥ २२१॥ सुभै स्वरन के पत्र बाँधे गजा मै। भई अगनि सोभा लखी कैं धुजा मै। भिड़ामै भ्रमै मंडलाकार बाहै। अपो आप मै नेक घाइं सराहै॥ ४॥ २२२॥ तहाँ भीम भारी भुजा शस्त्र बाहै। भली भाँति कै कै भलै सैन गाहै। जतै कउर पालं धरं छत्र धरमं। करै चित्र पावित्र बाचित्र करमं॥ ५॥ २२३॥ सुभै बाजुबंदं छकैं भूखनाणं। लसै मुकत का हार दुमालिअं हाणं। बोऊ

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ वहाँ जब दुर्योधन और भीमसेन में युद्ध हुआ तो ब्रह्मा का भी ध्यान भंग हो गया और रुद्र भी नृत्य करने लगा। वीरों के आघातों-प्रत्याघातों का भीषण शब्द होने लगा तथा वीरों के तन सिर-विहीन होकर लकड़ी के तनों के समान गिरने लगे। तीरों से शरीर छिलने लगे॥ १॥ २१९॥ वीर अनेकों प्रकार से गिरने लगे और शस्त्रों की धार छूने के फलस्वरूप उनके आधे शरीर धराशायी होने लगे। कौरव कटने लगे और रणक्षेत्र लाल हो उठा तथा बलशाली शूरवीरों के शरीरों पर गिद्ध नाचने लगे॥२॥२२०॥ मंडलाकार व्यूह बनाकर वीर जूझने लगे और भुजाओं को ठोंककर अट्टहास करने लगे। उस मंडलाकार व्यूह को सभी देख और एक-दूसरे को दिखा रहे हैं तथा भुजाओं को उभारकर गदाओं से प्रहार कर भीषण ध्वनि निकाल रहे हैं॥ ३॥ ॥ २२१॥ गदाओं पर चढ़े हुए स्वर्णपत्र शोभायमान प्रतीत हो रहे हैं। ध्वजाएँ युद्धस्थल में अग्नि की शिखाओं के समान ऊपर को उड़ रही हैं। आपस में भिड़ रहे वीर गोल-गोल चक्कर लगाकर आपस में भिड़ रहे हैं और भारी घाव लगानेवालों की सराहना कर रहे हैं॥ ४॥ २२२॥ वहाँ महाबली भीम अपनी भारी भुजाओं से शस्त्र चला रहा है और भली-भाँति सेना का मंथन कर रहा है। उधर कौरवों की ओर के राजा विचित्र प्रकार से युद्ध करते हुए युद्धधर्म का पालन कर अपने चित्त को पवित्र कर रहे हैं अर्थात मरने की तैयारी कर रहे हैं॥५॥२२३॥ वीरों के बाजूबंद आभूषण, मोतियों के हार एवं पगड़ियाँ शोभित हो रही हैं, दोनों ही सेनाओं

मीर धीरं दोऊ धरम ओजं । दोऊ मानधाता महीपं कि भोजं ॥६॥ ॥ २२४ ॥ दोऊ बीरबाना बधै अद्ध (मू०ग्रं०१४६) अद्धं । दोऊ शस्त्रधारी महाँ जुद्ध क्रुद्धं । दोऊ क्रूर करमं दोऊ जान बाहं । दोऊ ह्द्दि हिंदून शाहान शाहं ॥ ७ ॥ २२५ ॥ दोऊ शस्त्र धारं दोऊ परम दानं । दोऊ ढाल ढोवाल हिंदू हिंदानं । दोऊ शस्त्र बरतो दोऊ छत्रधारी । दोऊ परम जोधा महाँ जुद्ध कारी ॥ ८ ॥ २२६ ॥ दोऊ खंड खंडी दोऊ मंड मंडं । दोऊ जोध जैतवार जोधा प्रचंडं । दोऊ बीर बानी दोऊ बाहु साहं । दोऊ सूर सैनं दोऊ सूरमाहं ॥ ९ ॥ २२७ ॥ दोऊ चक्रवरती दोऊ शस्त्रबेता । दोऊ जंग जोधी दोऊ जंगजेता । दोऊ चित्र जोती दोऊ चित्र चापं । दोऊ चित्र बरमा दोऊ दुष्ट तापं ॥ १० ॥ २२८ ॥ दोऊ खंड खंडी दोऊ मंड मंडं । दोऊ चित्र जोती सु जोधा प्रचंडं । दोऊ मत्त बारंन बिक्रम समानं । दोऊ शस्त्रबेता दोऊ शस्त्रपानं ॥ ११ ॥ २२९ ॥

में परम वीर एवं ओजस्वी व्यक्ति हैं । दोनों ही वीर (दुर्योधन और भीम) मांधाता अथवा परमवीर भोज के समान हैं ॥ ६ ॥ २२४ ॥ दोनों ने खंड-खंड कर देनेवाले तीरों को कसा हुआ है और दोनों शस्त्रधारी महा-क्रोधित होकर युद्ध करने लगे । दोनों ही क्रूरता से युद्ध करनेवाले आजानबाहु हैं और दोनों ही हिन्दूधर्म की चरम सीमा तक शान रखनेवाले सम्राट् हैं ॥ ७ ॥ २२५ ॥ दोनों ही शस्त्रधारी परमदानी और ढाल से अपनी सुरक्षा करनेवाले भारतवर्ष के भारतीय हैं । दोनों ही शस्त्रों के व्यवहार, परमचतुर और दोनों ही छत्रधारी राजा हैं । दोनों ही परम योद्धा एवं युद्ध के कारण हैं अर्थात् दोनों की एक-दूसरे से गहरी शत्रुता है ॥ ८ ॥ २२६ ॥ दोनों ही शत्रुओं को खंडित करनेवाले तथा इच्छानुसार उन्हें पुनः राज्य से मंडित कर देनेवाले प्रचंड रूप से विजेता योद्धा हैं । दोनों ही वीर बाण चलाने में निपुण, भुजाओं के बली, बलशाली सेना वाले शूरवीर हैं ॥ ९ ॥ २२७ ॥ दोनों ही चक्रवर्ती एवं शस्त्रों के रहस्य एवं व्यवहार को भलीभाँति जाननेवाले हैं । दोनों ही युद्ध के योद्धा एवं विजेता है । दोनों ही सौंदर्ययुक्त हैं, सुन्दर धनुषों वाले, लौह-कवचों वाले तथा दुष्टों का नाश करनेवाले हैं ॥ १० ॥ २२८ ॥ दोनों ही खड्गों से शत्रुओं का नाश कर युद्ध का मंडन करनेवाले, सुंदर स्वरूप वाले प्रचंड योद्धा हैं । मस्त हाथियों जैसे दोनों ही विक्रम के समान दिखाई देने वाले शस्त्रों के व्यवहार में निपुण हाथों में शस्त्र पकड़े हुए हैं ॥ ११ ॥ २२९ ॥ दोनों परम क्रुद्ध योद्धा, शस्त्रवेत्ता एवं सौंदर्य की खान हैं ।

दोऊ परम जोधी दोऊ क्रुद्धवानं। दोऊ शस्त्रवेता दोऊ रूप-खानं। दोऊ छत्रपालं दोऊ छत्र धरमं। दोऊ जुद्ध जोधा दोऊ क्रूर करमं ॥ १२ ॥ २३० ॥ दोऊ मंडलाकार जूझै बिराजै। हथै हर दु ठाकै भुजा पाइ गाजै। दोऊ खत्रहाणं दोऊ खत्र खंडं। दोऊ खग्ग पाणं दोऊ छेत्र मंडं ॥१३॥२३१॥ दोऊ चित्र जोती दोऊ चार बिचारं। दोऊ मंडलाकार खंडा अबारं। दोऊ खग्ग खूनी दोऊ खत्रहाणं। दोऊ खत्र खेता दोऊ छत्र पाणं ॥ १४ ॥ २३२ ॥ दोऊ बीर बिब आस्त्र धारे निहारे। रहे ब्योम मै भूप गउनै हकारे। हका हक्क लागो धनं धंन जंप्यो। चक्यो जच्छराजं प्रिथी लोक कंप्यो ॥ १५ ॥ ॥ २३३ ॥ हन्यो राज दुरजोधनं जुद्धभूमं। भजे सभै जोधा चली धाम धूमं। कर्यो राज निहकंटकं कउरपालं। पुनर जाइकै मंझि सिज्झे हिवालं ॥ १६ ॥ २३४ ॥ तहा एक गंध्रब सिउ जुद्ध मच्चयो। तहा भूरपालं धुरारंगु रच्चयो। तहा शत्र

ये दोनों ही छत्रपाल, क्षत्रिय धर्म को पूरा करनेवाले तथा युद्ध में क्रूर कर्म करनेवाले बलशाली हैं ॥ १२ ॥ २३० ॥ दोनों गोल-गोल घूमकर एक-दूसरे से जूझ रहे हैं और शोभायमान हो रहे हैं और दोनों ही भुजाओं और पैरों को पटककर ध्वनि कर रहे हैं। दोनों ही क्षत्रिय है और दोनों ही क्षत्रियों का खंडन करनेवाले भी हैं। दोनों ने ही हाथ में खड्ग धारण कर रखे हैं तथा दोनों ही रणक्षेत्र का मंडन करनेवाले हैं ॥ १३ ॥ ॥२३१॥ दोनों ही परम सुन्दर एवं विचारवान है और गोल-गोल घूमकर खड्ग से वार कर रहे हैं। क्षत्रियों को मारनेवाले इन दोनों क्षत्रियो के खड्ग बहुत सा रक्त बहा देने में सक्षम हैं। दोनों ही युद्धस्थल में प्राण तक की बाज़ी लगा देनेवाले हैं ॥ १४ ॥ २३२ ॥ दोनों बीरों ने अस्त्रों को हाथ में पकड़ रखा है और ऐसा दिखाई दे रहा है कि व्योममंडल मे पहुँचे हुए वीर नरेश इन दोनों को बुला रहे हैं। इनके घमासान युद्ध को देखकर वे 'धन्य, धन्य' कह रहे हैं और इस युद्ध के प्रभाव से यक्षराज भी चकित हो उठा है तथा संपूर्ण पृथ्वी कांप रही है ॥ १५ ॥ २३३ ॥ युद्धस्थल में राजा दुर्योधन मार डाला गया है और इस तथ्य की धूम मचते ही सारी सेना भाग खड़ी हुई। पांडवों ने कौरववंशियों पर निष्कंटक राज किया और अन्त में हिमालय पर्वत पर चले गए ॥ १६ ॥ २३४ ॥ वहीं एक गंधर्व से युद्ध हुआ और उस गंधर्व ने विचित्र वेश धारण कर लिया वहीं भीम ने शत्रु के हाथियों को उठा- ऊपर की ओर

के भीम हस्ती चलाए। फिरै मद्धि गैणं अजउ लउ न आए ॥ १७ ॥ २३५ ॥ सुनै बैन कउ भूप इउ ऐंठ नाकं। कर्यो हास मंदै बुल्यो इम बाकं। रह्यो नाक मै कुश्ट छलो सवानं। भई तउन हो रोग ते भूप हानं ॥ १८ ॥ २३६ ॥ ॥ चउपई ॥ इम चउरासी बरख प्रमानं। सपत (मू०ग्रं०१४७) माह चउबीस दिनानं। राजु कियो जनमेजा राजा। काल निशानु बहुरि सिरि गाजा ॥ १९ ॥ २३७ ॥

॥ इति जनमेजा समापत भइआ ॥

॥ चउपई ॥ असुमेध अरु असमेद हारा। महासूर सतवान अपारा। महाँबीर बरिआर धनखधर। गावत कीर्ति देस सभ घर घर ॥१॥२३८॥ महाँबीर अरु महाँ धनख-धर। काँपत तीन लोक जा के डर। बड महीप अस अखंड प्रतापा। अमित तेज जापत जग जापा ॥२॥२३९॥ अजैसिंघ उत सूर महाना। बड महीप दस चार निधाना। अनबिकार

फेंका और वे हाथी आज तक आकाश में घूम रहे हैं तथा वापस धरती पर नहीं आए ॥ १७ ॥ २३५ ॥ इस वचन को सुनकर राजा (जनमेजय) इस प्रकार नाक सिकोड़कर मुस्कुराया, मानो ये वाक्य (हाथियों को ऊपर फेंकनेवाले) ऐसे ही (अर्धसत्य) हों। राजा के इस प्रकार अविश्वास करने के कारण उसकी नाक पर कुष्ट बच ही गया और अन्ततः इसी रोग से राजा की मृत्यु हुई ॥ १८ ॥ २३६ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार चौरासी वर्ष, सात महीने, चौबीस दिन राज्य करने के पश्चात जनमेजय के सिर पर भी काल का नगाड़ा आ बजा अर्थात् वह मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥१९॥२३७॥

॥ इति जनमेजय कालगत हुआ ॥

॥ चौपाई ॥ अश्वमेध और असमेद दोनों ही परम शूरवीर एवं सत्यव्रती थे। ये महाबलशाली और धनुषधारी थे। इनकी कीर्ति घर-घर में गाई जाती थी ॥ १ ॥ २३८ ॥ इन महावीर एवं धनुषधारियों के डर से तीनों लोक काँपते थे। ये बड़े महान् अखंड प्रतापशाली राजा थे और इनका अपरिमित तेज सारे संसार में जाना जाता था ॥ २ ॥ २३९ ॥ दूसरी ओर अजयसिंह महान् शूरवीर एवं चौदह विद्याओं का समुद्र था। यह अतुल बलशाली शूरवीर निर्विकार था और इसने अपने से

अनतोल अतुल बल । अर अनेक जीते जिन दल मल ॥ ३ ॥ ॥ २४० ॥ जिन जीते संग्राम अनेका । शस्त्र अस्त्र धरि छाडम एका । महा सूर गुनवान महाना । मानत लोक सगल जिह जाना ॥ ४ ॥ २४१ ॥ मरन काल जनमेजे राजा । मंत्र कियो मंत्रीन समाजा । राज तिलक भूपत अवरेखा । निरखत भए न्रिपत की रेखा ॥ ५ ॥ २४२ ॥ इन महि राज कवन कउ दीजै । कउन न्रिपत सुत कउ न्रिप कीजै । रजिआ पूत न राज की जोगा । याहि के जोग न राज के भोगा ॥ ६ ॥ २४३ ॥ असुमेद कह दीनो राजा । जै पति भाख्यो सकल समाजा । जनमेजा की सुगति कराई । असुमेद कै बजी बधाई ॥ ७ ॥ २४४ ॥ दूसर भाइ हुतो जो एका । रतन दिए तिह दरब अनेका । मंत्री कै अपना ठहरायो । दूसर ठउर तिसहि बैठायो ॥ ८ ॥ २४५ ॥ तीसर जो रजिआ सुत रहा । सैनपाल ताको पुन कहा । बखशी करि ताको ठहरायो । सभ दल को तिह कामु चलायो ॥ ९ ॥ २४६ ॥

अनेकों दलों को जीतकर उनकी कांति को मलिन कर दिया था ॥ ३ ॥ ॥ २४० ॥ इसने अनेक संग्रामों को जीता था और किसी भी शत्रु को हाथ में अस्त्र-शस्त्र पकड़ जीवित नहीं छोड़ा था । यह महान् गुणवान एवं शूरवीर था, इसे सारा संसार मानता था ॥ ४ ॥ २४१ ॥ मृत्यु के समय राजा जनमेजय ने अपने मंत्री-समाज से विचार-विमर्श किया कि राज्यतिलक किसको दिया जाय । इसी तात्पर्य को ध्यान में रखकर सभी राजपुत्रों के हाथ की राज्य पाने की रेखाओं को देखने-समझने लगे ॥ ५ ॥ २४२ ॥ इनमें से राज्य किसको दिया जाय, यह विचार होने लगा । सभी सोचने लगे कि राजा के किस पुत्र को राजा बनाया जाय । दासीपुत्र तो राज्य के योग्य नहीं है और न ही यह राज्य के भोगों के लिए उपयुक्त है ॥ ६ ॥ २४३ ॥ असमेद को राज्य दे दिया गया और सारे समाज ने जय-जयकार की ध्वनि की । इसके बाद जनमेजय का क्रिया-कर्म किया गया और असमेद के घर खुशी के गीत गाए जाने लगे ॥ ७ ॥ २४४ ॥ उसका जो दूसरा एक भाई था, उसे रत्न तथा अपार द्रव्य दिया तथा उसे अपना मंत्री बनाकर अपने साथ ही दूसरे स्थान पर बैठाया ॥ ८ ॥ २४५ ॥ तीसरा जो दासी का पुत्र था, उसे सेनापति बना दिया और उसे कर आदि इकट्ठा करने का काम दे दिया । उसने सब सैन्यदल का काम देखना शुरू कर दिया ९

राजु पाइ सभहू सुख पायो। भूपत कउ नाचब सुख आयो। तेरह सै चौसठ मरदंगा। बाजत है कई कोट उपंगा ॥१०॥२४७॥ दूसर भाइ भए मद अंधा। देखत नाचत लाइ सुगंधा। राज साज दुहहूँ ते भूला। वाहि कै जाइ छत्र सिर झूला ॥ ११ ॥ ॥ २४८ ॥ करत करत बहु दिन अस राजा। उन दुहूँ भूल्यो राज समाजा। मद करि अंध भए दोउ भ्राता। राज करन की बिसरी बाता ॥ १२ ॥ २४९ ॥ ॥ दोहरा ॥ (मू०पं०१४८) जिह चाहे ताको हने जो बाछै सो लेइ। जिह राखै सोई रहै जिह जानै तिह देइ ॥ १३ ॥ २५० ॥ ॥ चउपई ॥ ऐसी भांत कीनो इह जब ही। प्रजालोक सभ बस भए तब ही। अउ बसि होइ गए नेबख बासा। जो राखत थे न्रिप की आसा ॥ १ ॥ २५१ ॥ एक दिवस तिहूँ भ्रात सुजाना। मंडस चौपर खेल खिलाना। दाउ समै कछु रशक बिचार्यो। अजै सुनत इह भांत उचार्यो ॥२॥२५२॥ ॥ दोहरा ॥ कहा

॥ २४६ ॥ राज्य प्राप्त कर सभी प्रसन्न हो गए और अब राजा को नृत्य देखने में सुख मिलने लगा। तेरह सौ चौंसठ प्रकार के मृदंग तथा अन्य कई वाद्ययंत्र उसके सामने बजने लगे ॥ १० ॥ २४७ ॥ दूसरे भाई शराब पीकर मस्त रहने लगा और इत्रादि सुगंध लगाकर नृत्य देखने में सुख पाने लगा। राजकाज दोनों को भूल गया और अब उसी (अजय सिंह) के सिर पर छत्र झूलने लगा ॥ ११ ॥ २४८ ॥ उन दोनों भाइयों ने इसी प्रकार बहुत से दिन व्यतीत किए और धीरे-धीरे उनको राज-समाज और उसके व्यवहार भूलने लगे। नृत्य और शराब की मस्ती में दोनों भाई बुरी तरह लिप्त हो गए और राज करने की बात उन्हें भूल ही गई ॥ १२ ॥ २४९ ॥ ॥ दोहा ॥ (दासीपुत्र अजयसिंह) जिसको चाहता है, पकड़कर मार देता है और जो कोई जो कुछ चाहता है, उसी से प्राप्त भी कर लेता है। जिसको वह चाहे सुरक्षा प्रदान करता है और जिसे जो चाहे वह दे देता है ॥ १३ ॥ २५० ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने जब इस प्रकार का व्यवहार करना शुरू किया तो प्रजा उसके वश में हो गई। सब चौकीदार, चोबदार उसके वश में हो गए। ये सब पहले अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए राजा की ओर ताका करते थे ॥ १ ॥ २५१ ॥ एक दिन तीनों बुद्धिमान भाइयों ने चौपड़ का खेल खेलने का आयोजन किया। दाँव लगाते समय कुछ परस्पर रोष को देखकर अजयसिंह को सुनाकर इस प्रकार कहा ॥ २ ॥ २५२ ॥ ॥ दोहा ॥ यह दाँव कैसे खेलें, कैसे इससे दूसरे को बाँधें और जो दासीपुत्र के रूप में मत्त है

करै बा कह परै कह यह बाधै सूत । कहा शत्रु याते मरै जो रजिआ का पूत ॥ ३ ॥ २५३ ॥ ॥ चउपई ॥ यहै आज हम खेल बिचारी । सो भाखत है प्रगट पुकारी । एकहि रतन राज धनु लीना । दुतिऐ अस्व उसट गज लीना ॥ १ ॥ २५४ ॥ कुअरै बाट सैन सभ लीआ । तीनहु बाट तीन कर कीआ । पासा डार धरै कस दावा । कहा खेल धौ करै करावा ॥ २ ॥ ॥ २५५ ॥ चउपर खेल परी तिह माहा । देखत ऊच नीच नर नाहा । ज्वाला रूप सुपरधा बाढी । भूपन फिरत सँघारत काढी ॥ ३ ॥ २५६ ॥ तिनके बीच परी अस खेला । कटन सुहित भयो मिटन दुहेला । प्रिथमै रतन दरब बहु लायो । हस्त बाज गज बहुत हरायो ॥ ४ ॥ २५७ ॥ दुहूँअन बीच सपरधा बाढा । दुह दिस उठे सुभट असि काढा । चमकहि कहूँ असन की धारा । बिछ गई लोथ अनेक अपारा ॥ ५ ॥ ॥ २५८ ॥ जुग्गन दैत फिरहि हरिखाने । गीध सिवा बोलहि अभिमाने । भूत प्रेत नाचहि अरु गावहि । कहूँ कहूँ शबद बैताल सुनावहि ॥ ६ ॥ २५९ ॥ चमकत कहूँ खगन की

उसको कैसे मारा जाय ? ॥३॥२५३॥ ॥ चौपाई ॥ पुनः वे प्रकट रूप से कहते हैं, आज हम लोगों ने खेल का विचार किया है । यह कहते हुए एक ने राज्य-रत्नादि ले लिये तथा दूसरे ने अश्व-हाथी व ऊँट ले लिये ॥ १ ॥ ॥२५४॥ उन कुँअरों ने सारी सेना बाँट ली और तीन हिस्से करके बाँट लिये । अब वे सोचने लगे कि पाँसा फेंककर कैसे दाँव लगाया जाय और कैसे समझा जाय कि कौन क्या दाँव लगाएगा ? ॥२॥२५५॥ चौपड़ का खेल वहाँ शुरू हो गया और नर-नारी, ऊँच-नीच सभी खेल देखने लगे । आपसी स्पर्धा ज्वाला रूप से बढ़ने लगी और यह ईर्ष्या उनको (राजकुमारों को) जलाने लगी ॥३॥२५६॥ उनके बीच में ऐसा पेचीदा खेल आरम्भ हो गया कि अब दूसरे को हर हाल में काटना हित बन गया और स्वयं हारना कठिन प्रतीत होने लगा । पहले रत्न-द्रव्य आदि लाए गए और बहुत से हाथी-घोड़ों को हारा गया ॥ ४ ॥ २५७ ॥ दोनों पक्षों में (अजयसिंह तथा उसके भाइयों में) स्पर्धा इतनी बढ़ गई कि दोनों पक्षों के शूरवीरों ने तलवारें खींच लीं । तलवारों की धारें चमकने लगीं और धरती पर अनेकों लाशें बिछ गयीं ॥ ५ ॥ २५८ ॥ योगिनियाँ एवं दैत्य प्रसन्न हो घूमने लगे तथा गिद्ध एवं शिव के गण अभिमानपूर्वक बोलने लगे । भूत-प्रेतादि नाचने-गाने लगे और बैताल भी अनेक प्रकार की आवाजें निकालने

धारा। बिथ गए रुंड भसुंड अपारा। चिसत कहूँ गिरे गज माते। सोवत कहूँ सुभट रण ताते॥ ७॥ २६०॥ हिसत कहूँ गिरे है घाए। सोवत क्रूर सलोक पठाए। कटि गए कहूँ कउर अरु चरमा। कटि गए गज बाजन के बरमा॥८॥२६१॥ जुग्गन देत कहूँ किलकारी। नाचत भूत बजावत तारी। बावन बीर फिरैं चहुँ ओरा। बाजत मारू राग सिधउरा॥९॥ ॥ २६२॥ रण असकाल जलध जिम गाजा। भूत पिसाच भीर भै भाजा। रण मारू इह दिस ते बाज्यो (मू०ग्रं०१४६)। काइरु हुतो सो भी नहि भाज्यो॥ १०॥ २६३॥ रहि गई सूरन खग की टेका। कटि गए सुंड भसुंड अनेका। नाचत जोगन कहूँ बितारा। धावत भूत प्रेत बिकरारा॥ ११॥ ॥ २६४॥ धावत अद्ध कमद्ध अनेका। मंडि रहे रावत गहि टेका। अनहद राग अनाहद बाजा। काइरु हुता वहै नही भाजा॥ १२॥ २६५॥ भंवर तूर कक्कर करोरा। गाज

लगे॥ ६॥ २५९॥ खड़ग की धारें चमकने लगीं और सिरों के बिना धड़ मुंडित होकर धराशायी होने लगे। कहीं चिंघाड़ते हुए मदमस्त हाथी गिरने लगे तथा कहीं बड़े-बड़े शूरवीर धरती पर लोटने लगे॥ ७॥ ॥ २६०॥ कहीं घोड़े हिनहिनाते हुए घाव खाकर गिर पड़े और क्रूर शूरवीर स्वर्गलोक जाने लगे। कहीं कवच और तन कट गए तथा कहीं गज-अश्वों के कवच भी छिन्न-भिन्न हो गए॥ ८॥ २६१॥ कहीं योगिनियाँ किलकारियाँ मार रही हैं और भूत नाचकर तालियाँ बजा रहे है। बावन (बैताल) वीर चारों ओर घूम रहे हैं और मारू राग (युद्ध का राग) बजाकर ध्वनि कर रहे हैं॥ ९॥ २६२॥ युद्ध ऐसे हुआ मानो समुद्र गरज रहा हो और गर्जन सुनकर भूत-पिशाच भागने लगे। युद्ध की ओर आकर्षित करनेवाला युद्ध का नगाड़ा इस प्रकार बजने लगा कि कायरों का भी मन लड़ने के लिए उद्यत हो उठा और वे भी युद्धस्थल से नहीं भागे॥ १०॥ २६३॥ शूरवीरों को अब मात्र खड़ग का ही आश्रय था और खड़गों द्वारा अनेक हाथियों की सूँड़ें कट गयीं। योगिनियाँ और बैताल नाचने लगे और विकराल भूत-प्रेत दौड़ने लगे॥ ११॥ २६४॥ कबंध आधे धड़ों के साथ इधर-उधर दौड़ने लगे और राजागण युद्ध में स्थिर होकर युद्ध करने लगे। इस प्रकार के बाजे बजने लगे कि कायर भी युद्ध से नहीं भागे॥ १२॥ २६५॥ करोड़ों ढोल तथा बाजे आदि बजने लगे और गरजकर हाथी भी राग अलापने लगे तलवारें

सरावत राग सिधौरा। झमकसि दामन जिम करवारा। बरसत बानन मेघ अपारा ॥ १३ ॥ २६६ ॥ घूमहि घाइल लोहू चुचाले। खेल बसंत मनो मद माते। गिर गए कहूँ जिरह अरु ज्वाना। गरजत गिद्ध पुकारत स्वाना ॥ १४ ॥ ॥ २६७ ॥ उन दल दुहूँ भाइन को भाजा। ठाँढ न सक्यो रंकु अरु राजा। लक्यो ओडछा देस बिचच्छन। राजा न्रिपत तिलक सुभ लच्छन ॥ १५ ॥ २६८ ॥ मद करि मत्त भए जे राजा। तिनके गए ऐस ही काजा। छीन छान छित छत्र फिरायो। महाराज आप ही कहायो ॥ १६ ॥ २६९ ॥ आगे चले असमेध हारा। धावहि पाछे फउज अपारा। गेजहि न्रिपत तिलक महाराजा। राज पाट बाहू कउ छाजा ॥ १७ ॥ २७० ॥ तहा इक आहि सनउढी ब्रहमन। पंडत बडो महा बड गुन जन। भूपहि को गुर सभहूँ की पूजा। तिह बिनु अवरु न मानहि दूजा ॥ १८ ॥ २७१ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ कहूँ ब्रहम बानी करहि बेद चरचा। कहूँ बिप्र बैठे करहि ब्रहम अरचा। तहा बिप्र सनौढ ते एक लच्छन।

बिजलियों की तरह चमकने लगीं और बाण बादलों की तरह बरसने लगे ॥ १३ ॥ २६६ ॥ घायल वीर रक्त निचोड़ते हुए ऐसे घूम रहे थे, मानो बसंत ऋतु में होली खेल रहे हों। कहीं जवान तथा कहीं उनके कवच पड़े हुए हैं तथा गिद्ध और कुत्ते चिल्ला रहे थे ॥ १४ ॥ २६७ ॥ उन दोनों भाइयों की सेना भाग खड़ी हुई और कोई राजा-रंक युद्धस्थल में टिक न सका। राजा दौड़कर उड़ीसा देश के राजा तिलक की ओर भाग गया ॥ १५ ॥ २६८ ॥ जो भी राजा अपने मद में मस्त हो जाते हैं, उनके सभी कार्य ऐसे ही विनष्ट हो जाते हैं। अजयसिंह ने इस प्रकार राज्य छीनकर अपने सिर पर छत्र धारण किया तथा स्वयं को महाराजा कहलाया ॥ १६ ॥ २६९ ॥ असमेद हारकर आगे-आगे भागा और पीछे-पीछे अपार सेना उसे दौड़ाए चली। वह जिस सम्राट्-तिलक के पास गया, उसका भी राजपाट भव्य था ॥ १७ ॥ २७० ॥ वहाँ एक सनौढ्य कुल का ब्राह्मण रह रहा था जो महान् पंडित और गुणी था। वह राजा का गुरु था और सभी उसकी पूजा करते थे और उसके बिना अन्य किसी को मान्यता नहीं देते थे ॥ १८ ॥ २७१ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ कहीं विप्र अपने मुख से वेद-चर्चा कर रहे थे और वहाँ पर बैठे विप्र कहीं ब्रह्म का पूजन कर रहे थे। उस सनौढ्य ब्राह्मण की एक

करैं बकल बस्त्रं फिरै बाइ भच्छन ॥ १ ॥ २७२ ॥ कहूँ बेद स्यामं सुरं साथ गावैं । कहूँ जुजरबेदं पड़ै मान पावैं । कहूँ रिगं बाचै महा अथरबेदं । कहूँ ब्रहम सिच्छा कहूँ बिशन भेदं ॥ २ ॥ २७३ ॥ कहूँ अष्ट द्वै अवतार कत्थै कथानं । दसं चार चउदाह बिद्या निधानं । तहा पंडतं बिप्र परमं प्रबीनं । रहे एक आसं निरासं बिहीनं ॥ ३ ॥ २७४ ॥ कहूँ कोकसारं पड़ै नीत धरमं । कहूँ न्याइ शास्त्रं पड़ैं छत्र करमं । कहूँ ब्रहम बिद्या पड़ै ब्योमबानी । कहूँ प्रेम सिउ पाठि पठिऐ पिड़ानी ॥ ४ ॥ २७५ ॥ (मू०ग्रं०१५०) कहूँ प्राक्रितं नाग भाखा उचारहि । कहूँ सहसक्रित ब्योमबानी बिचारहि । कहूँ शास्त्र संगीत मै गीत गावैं । कहूँ जच्छ गंध्रब बिद्या बतावैं ॥५॥ ॥ २७६ ॥ कहूँ न्याइ मीमांसका तरक शास्त्रं । कहूँ अगनिबाणी पड़ै ब्रहम अस्त्रं । कहूँ बेद पातंजलं शेख कानं । पड़ैं चक्र चवदाह बिद्या निधानं ॥ ६ ॥ २७७ ॥ कहूँ भाख बाचैं कहूँ कोमदीअं । कहूँ सिद्धका चंद्रका सरसुतीअं । कहूँ

विशेषता थी कि वह वल्कल वस्त्र धारण करता था और आहार के नाम पर वायु का आहार करता था अर्थात् कुछ नहीं खाता था ॥ १ ॥ २७२ ॥ (उस राज्य में) कहीं सामवेद का गायन हो रहा था और यजुर्वेद पढ़कर सम्मान प्राप्त किया जा रहा था। कहीं ॠगवेद तथा कहीं अथर्ववेद का पठन हो रहा था; कहीं ब्रह्मशिक्षा और कहीं विष्णु-भेदों की चर्चा चल रही थी ॥ २ ॥ २७३ ॥ कहीं दशावतार की कथा चल रही थी और लोग चौदह विद्याओं के समुद्र थे। वहाँ वह पंडित रहता था, जो परम प्रवीण और सब आशाओं-निराशाओं से विहीन था ॥ ३ ॥ २७४ ॥ कहीं कोकशास्त्र, नित्यधर्म, न्यायशास्त्र, क्षत्रिय-कर्म का पठन-पाठन हो रहा था और कहीं ब्रह्मविद्या तथा व्योमविद्या का अध्ययन चल रहा था। कहीं प्रेमपूर्वक युद्धदेवी के स्तोत्र का पाठ चल रहा था ॥४॥२७५॥ कहीं प्राकृत भाषा, नागलोक भाषा का उच्चारण हो रहा है तथा कहीं सहसकृत तथा व्योमवाणी (संस्कृत) का विचार चल रहा है। कहीं शास्त्र-संगीत में गायन चलता है, तो कहीं यक्ष-गंधर्व विद्या का विचार चल रहा है ॥ ५ ॥ २७६ ॥ कहीं न्याय, मीमांसा, तर्कशास्त्र तथा कहीं अग्नि-बाणों और कहीं ब्रह्मास्त्रों को पढ़ने की विद्या का विचार चल रहा है। कहीं पातंजल योग और सांख्य का चौदह विद्याओं के समुद्र पठन कर रहे हैं ॥ ६ ॥ २७७ ॥ कहीं कौमुदी का वाचन एवं व्याख्या हो रहा है

ब्याकरण बैसिकालाप कत्थै । कहूँ प्राक्रिआकास का सरब मत्थै ॥ ७ ॥ २७८ ॥ कहूँ बैठ मानोरमा ग्रंथ बाचै । कहूँ गाइ संगीत मै गीत नाचै । कहूँ शस्त्र को सरब बिद्या बिचारै । कहूँ अस्त्र बिद्या बाचै शोक टारै ॥ ८ ॥ २७९ ॥ कहूँ गदा को जुद्ध कै कै दिखावै । कहूँ खड्ग बिद्या जुझै मानु पावै । कहूँ बाक बिबिआहि छोरं प्रबानं । कहूँ जलतुरं बाक बिद्या बखानं ॥ ९ ॥ २८० ॥ कहूँ बैठके गारड़ी ग्रंथ बाचैं । कहूँ साँभवी रास भाखा सु राचै । कहूँ जामनी तोरकी बीर बिद्या । कहूँ पारसी कोच बिदिआ अभिद्या ॥ १० ॥ २८१ ॥ कहूँ शस्त्र को घाउ बिदिआ बतैगो । कहूँ अस्त्र को पातका पै चलैगो । कहूँ चरम को चार बिद्या बतावै । कहूँ ब्रहम बिद्या करै दरब पावै ॥ ११ ॥ २८२ ॥ कहूँ न्रित्त बिद्या कहूँ नाद भेदं । कहूँ परम पौरान कत्थै कतेबं । सभै अच्छ्र बिद्या सभै देस बानी । सभै देस पूजा समसतो प्रधानी ॥ १२ ॥ २८३ ॥ कहूँ सिघनी दूध बच्छे चुँघावै । कहूँ सिघ लै संग गउआँ चरावै ।

और कहीं सिद्धियों से संबंधित चंद्रिकाओं की विद्या पढ़ी जा रही है। कहीं व्याकरण से संबधित कथन कहे जा रहे हैं। कहीं काशी की क्रियाओं-विद्याओं का मंथन चल रहा है ॥ ७ ॥ २७८ ॥ कही मनोरम ग्रंथों का पाठ चल रहा है, कही गीत-संगीत और नृत्य चल रहा है। कहीं शस्त्र-विद्या का विचार और कहीं भय को दूर करनेवाली अस्त्र-विद्या का अध्ययन चल रहा है ॥ ८ ॥ २७९ ॥ कहीं गदायुद्ध का प्रदर्शन चल रहा है, तो कहीं खड्ग-विद्या में जूझकर लोग मान प्राप्त कर रहे हैं। कहीं प्रवीण गुणीजन वाक्य-विद्या और कहीं जलक्रीडा-विद्या का व्याख्यान कर रहे हैं ॥ ९ ॥ २८० ॥ कहीं गरुड़ पुराण का वाचन चल रहा है, कहीं शिवस्तोत्रों की रचना हो रही है। कहीं यवन तथा कहीं तुर्की वीर विद्या और पारसी कवच-विद्या का अध्ययन चल रहा है ॥ १० ॥ ॥ २८१ ॥ कहीं शस्त्रों के घावों से संबंधित विद्या का व्याख्यान और कहीं अस्त्र को गिराने पर वार्त्ता चल रही है। कहीं चर्म की चार विद्याओं के बारे में बताया जा रहा है और ब्रह्मविद्या को व्याख्यायित कर द्रव्य अर्जन किया जा रहा है ॥ ११ ॥ २८२ ॥ कहीं नृत्य-विद्या, कहीं नाद-विवेचन, कहीं पुराणों का कातिब लोग अर्थात् विद्वान लोग व्याख्यान कर रहे हैं। सभी अक्षरों अर्थात् सब प्रकार की विद्या और वाणियों तथा सभी देशों की पूजा-पद्धतियों को दी जा रही है १२ २८३

फिरै सरब न्रिकुद्ध तौ निस्थलानं । कहूँ शास्त्री सत्र कत्थे कथानं ॥ १३ ॥ २८४ ॥ तथा सत्र मित्रं तथा मित्र सत्रं । जथा एक छत्री तथा परम छत्रं । महाँ ग्यो अजैसिंघ सूरा सु कुद्धं । हन्यो अस्समेधं कर्यो धरम जुद्धं ॥ १४ ॥ २८५ ॥ रजोआ पुत्र दिक्ख्यो डरे दोइ भ्रातं । गही शरण बिप्पं बुल्यो एव बातं । गुवा हेम सरबं मिले प्रान दानं । सरन्नं सरन्नं सरन्नं गुरानं ॥ १५ ॥ २८६ ॥ ॥ चउपई ॥ तब भूपति तह दूत पठाए । बिपत सकल बिज किए रिझाए । अस्समेध अरु असुमेध हारा । भाज परे घर ताक (मू०ग्रं०१५१) तिहारा ॥१॥ ॥ २८७ ॥ कै दिज बाँध देहु ढुँ मोहू । ना तर धरो दुजनवा तोहू । करउ न पूजा देउ न दाना । तो को दुख देवौ बिध नाना ॥ २ ॥ २८८ ॥ कहा म्रितक दुइ कंठ लगाए । देहु

कहीं सिहनी गाय के बछड़ों को दूध पिला रही थी तथा अभयता इतनी थी कि सिंह और गायें साथ-साथ चरती थीं । सभी क्रोध-विहीन होकर शिथिल अवस्था मे विचरण कर रहे थे और उस देश में ऐसा अच्छा वातावरण था कि कहीं वैर-भाव त्यागकर शत्रु शास्त्री बनकर शत्रु को उपदेश दे रहे थे ॥ १३ ॥ २८४ ॥ वहाँ जैसे शत्रु थे वैसे ही मित्र थे तथा जैसे मित्र थे वैसे ही शत्रु थे अर्थात् शत्रु-मित्र कोई नहीं था । जैसे एक क्षत्री था, वैसे ही सभी अन्य क्षत्री थे । वहाँ शूरवीर अजयसिंह क्रोधित अवस्था में जा पहुँचा । यह वही अजयसिंह था, जिसने युद्ध में नियमानुसार अश्वमेध का गर्व चूर किया था ॥ १४ ॥ २८५ ॥ दोनों भाइयों ने जब दासीपुत्र को देखा तो भयभीत होकर उस ब्राह्मण की शरण में गए और बोले कि यदि हमें प्राणदान मिल जाय तो आपको सोने की गाय दान करने के तुल्य पुण्य की प्राप्ति होगी । हे गुरुदेव ! हम आपके शरणागत हैं, हमारी रक्षा कीजिए ॥ १५ ॥ २८६ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब राजा (अजयसिंह) ने अपने दूत उस प्रदेश के राजा (तिलक) के पास भेजे; जिन्हें उस महान ब्राह्मण ने भलीभाँति प्रसन्न किया । इन दूतों ने कहा कि अश्वमेध और असमेद दोनों भाई हारकर इस ओर भागे हैं और आपके घर में आकर छिपे हैं ॥ १ ॥ २८७ ॥ हे ब्राह्मण ! या तो मुझे उन दोनों को बाँधकर पकड़वा दें, नहीं तो आपको भी उन दोनों के साथ मार डाला जायेगा । न तो आपको दान दिया जायेगा और न तो आपकी पूजा की जायेगी । प्रत्युत् तुम्हें विभिन्न प्रकार के कष्ट दिए जायेंगे ॥ २ ॥ २८८ ॥ आपने क्यों मृतकों अर्थात् निराश्रितों को गले लगा रखा है और आप हमें उन लोगों को वापस दे देने में क्यों

हमै तुम कहा लजाए । जउ द्वै ए तुम देहु न मोहू । तउ हम सिक्ख न होइहै तोहू ॥ ३ ॥ २८९ ॥ तब बिज प्रात कियो इशनाना । देव पित्र तोखे बिध नाना । चंदन कुंकम खोर लगाए । चलकर राजसभा मै आए ॥४॥२९०॥ ॥ द्विजो बाच ॥ हमरो वै न परै द्वै डीठा । हमरी आइ परै नही पीठा । झूठ कह्यो जिन तोहि सुनाई । महाराज राजन के राई ॥ १ ॥ २९१ ॥ महाराज राजन के राजा । नाइक अखल धरण सिरताजा । हम बैठे तुम देह असीसा । तुम राजा राजन के ईसा ॥ २ ॥ २९२ ॥ ॥ राजा बाच ॥ भला चहो आपन जो सभही । वै दुइ बाँध देहु मुहि अबही । सभ ही करौं अगन का भूजा । तुमरो करउ पिता जिउँ पूजा ॥ ३ ॥ ॥ २९३ ॥ जौ न परै वै भाज तिहारे । कहे लगो तुम आजु हमारे । हम तुमको बिजनादि बनावें । हम तुम वै तीनो मिल खावें ॥ ४ ॥ २९४ ॥ द्विज सुन बात चले सभ धामा । पूछै भ्रात सुपूत पितामा । बाँध देहु तउ छूटे धरमा । भोज

सुकोच कर रहे हैं। यदि आप इन दोनों भाइयों को हमें नही देंगे, तो हम कदापि आपके शिष्य नही बनेगे ॥ ३ ॥ २८९ ॥ तब उस ब्राह्मण ने दूसरे दिन प्रातः स्नान कर अपने देवों तथा पितरों की विभिन्न प्रकार पूजा-अर्चना की तथा माथे पर चंदन और कुमकुम आदि लगाकर राजसभा मे आ पहुँचा ॥ ४ ॥ २९० ॥ ॥ द्विज उवाच ॥ मैंने न तो उन दोनों को देखा है और न तो वे मेरी शरण में आये हैं। हे राजाओं के महाराज ! आपको किसी ने इस संबंध में झूठ कहा है ॥ १ ॥ २९१ ॥ हे महाराजाधिराज ! आप अखिल विश्व के नायक एवं छत्र धारण करनेवाले है, मैं यहाँ बैठकर आपको आशिर्वाद देता हूँ कि आप महाराजाधिराज बने रहें ॥ २ ॥ २९२ ॥ ॥ राजा उवाच ॥ यदि आप सब अपना भला चाहते हो तो तत्काल उन दोनों को बाँधकर मेरे हवाले कर दीजिए अन्यथा मैं सबको अग्नि में जलाकर भून दूंगा और आपको भी पितरों की तरह स्वाहा कर दूंगा ॥ ३ ॥ २९३ ॥ यदि वे लोग भागकर यहाँ नहीं आये हैं, तो आप हमारा एक कहना मानिए। हम आपके लिए स्वादिष्ट व्यंजन बनवाते हैं और हम तीनों मिलकर भोजन करें ॥ ४ ॥ २९४ ॥ राजा की बात सुनकर सभी ब्राह्मण घरों को चले गए और अपने बड़े भाइयों और पितामहों से पूछने लगे कि यदि इन दोनों को बाँधकर उनके हवाले कर देते हैं तो धर्म नहीं रहता और यदि इनके साथ बैठकर भोजन करते हैं तो

भुजे तउ छूटे करमा ॥ ५ ॥ २९५ ॥ यहि रजिआ का पूत महा बल । जिन जीते छत्री गन दल मल । छत्रापन आपन बल लीना । इनको काढि धरन ते दीना ॥ ६ ॥ २९६ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ इम बात जबै न्रिप ते सुनियं । ग्रहि बैठ सभै दिज मंत्र कियं । अज सैन अजै भट दाससुतं । अति दुहकर कुतसित क्रूर मतं ॥ ७ ॥ २९७ ॥ मिल खाइ तउ खोवै जनम जगं । नहि खात तु जात है काल मगं । मिल मित्र सु कीजै कउन मतं । जिह भाँत रहे जग आज पतं ॥ ८ ॥ २९८ ॥ सुन राजन राज महान मतं । अनभीत अजीत समस्त छितं । अनगाह अथाह अनंत दलं । अनभंज अगंज महाँ प्रबलं ॥ ९ ॥ ॥ २९९ ॥ इह ठउर न छत्री एक नरं । सुर साचु महा न्रिपराज बरं । कहिकै दिज यउ उठि जात (मू०ग्रं०१५२) भए । वेह आनि जसूस बताइ दए ॥ १० ॥ ३०० ॥ तहाँ सिंघ अजै मनि रोस बढो । करि कोप चमूँ चतुरंग चढी । तह जाइ परी

ब्राह्मणोचित धर्म नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥ २९५ ॥ यह दासीपुत्र महाबली है, जिसने अपने बल से क्षत्रियों को दलन कर उन्हें जीत लिया है । अपने बाहुबल से इसने क्षत्रियत्व प्राप्त किया है और इन सबको राज्य से निकाल दिया है ॥ ६ ॥ २९६ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ जब अपने राजा से लोगों ने यह बात सुनी तब सब ब्राह्मणों ने बैठकर यह सलाह की कि यह अजयसिंह परम बली है और दासीपुत्र होने के नाते यह बहुत ही कुत्सित, क्रूर एवं दुर्मति वाला है ॥ ७ ॥ २९७ ॥ यदि इसके साथ मिलकर खाते है, तो यह जन्म भ्रष्ट हो जाता है और यदि नहीं खाते हैं तो इसके हाथों मरना पड़ता है । अपने सभी मित्रों से मिलकर, क्या उपाय किया जाय, जिससे इस संसार में हम लोगों का सम्मान बचा रहे ॥ ८ ॥ २९८ ॥ सबों ने सोच-समझकर यह कहा कि हे बुद्धिमान राजन् ! आप अभय एवं सारे संसार में अजेय हैं । आप इतने शूरवीर हैं कि अनन्त शत्रुओं द्वारा भी नहीं मारे जा सकते और आपके पास महाप्रबल, कभी भी नष्ट न होने वाली सेना है ॥ ९ ॥ २९९ ॥ इस स्थान पर, हे सम्राट् ! सत्य जानिए कि एक भी क्षत्रिय नहीं है । इतना कहकर सभी ब्राह्मण उठकर चले गए, परन्तु वास्तविक तथ्य (कि दोनों भाई वहीं हैं) जासूसों ने आकर अजयसिंह को बता दिया ॥ १० ॥ ३०० ॥ उस समय अजयसिंह के मन मे क्रोध बढ़ा और वह कुपित होकर अपनी चतुरंगिणी सेना को लेकर चढ़ उठा और जहाँ उन दोनों क्षत्रियों ने ब्राह्मणों के घरों में शरण ली थी, आ

जहु खत्न बरं । बहु कूदि परे द्विज साम घरं ॥ ११ ॥ ३०१ ॥ द्विज मंडल बैठि बिचार कियो । सम ही बिजमंडल गोद लियो । कहु कउन सु बैठि बिचार करें । न्रिप साथ रहैं नही एउ मरें ॥ १२ ॥ ३०२ ॥ इह भांत कही तिह ताहि सभैं । तुम तोर जनेवन देहु अबैं । जोउ मानि कह्यो सोई तेत भए । तेउ बैस हुइ बाणज करत भए ॥ १३ ॥ ३०३ ॥ जिह तोर जनेउ न कीन हठं । तिन सिउ उन भोजु कियो इकठं । फिर आइ जसूसहि ऐस कह्यो । इन मै उन मै इक भेदु रह्यो ॥ १४ ॥ ३०४ ॥ पुनि बोलि उठ्यो न्रिप सरब द्विजं । निहछत्र सु देह सु ताहि तुअं । मरि गे सुनि बात मनो सभ ही । उठि कै ग्रिहि जात भए तब ही ॥ १५ ॥ ३०५ ॥ सभ बैठि बिचारन मंत्र लगे । सभ शोक के सागर बीच डुबे । इहि बाध बहिठ अति तेउ हठं । हम ए दोऊ भ्रात चलै इकठं ॥ १६ ॥ ३०६ ॥ हठ कीन द्विजै तिन लीन सुता । अति रूप महाँ छबि परम प्रभा । तियो पेट सनोढ ते पूत भए । वहि जाति सनोढ कहात भए ॥ १७ ॥ ३०७ ॥ सुत अउरन

पहुँचा ॥ ११ ॥ ३०१ ॥ द्विजमंडली ने बैठकर पुनः विचार किया कि सभी ब्राह्मणों ने इन क्षत्रियों को गोद लिया है, अब क्या उपाय किया जाय जिससे राजा भी हम लोगों से नाराज़ न हो और ये दोनों भी न मारे जायँ ॥ १२ ॥ ३०२ ॥ इसके बाद उन्होंने सभी ब्राह्मणों को कहा कि सभी अपने जनेऊ को तत्काल तोड़ दें। जिन्होंने उनकी बात को मानकर जनेऊ तोड़ दिए वे वैश्य बन गए और व्यापार आदि करने लगे ॥ १३ ॥ ॥ ३०३ ॥ जिन्होंने जनेऊ न तोड़ने का हठ किया, उन्होंने अजयसिंह के साथ एक साथ बैठकर भोजन किया। परन्तु फिर जासूसों ने आकर पुनः इस सारे रहस्य को अजयसिंह से बता दिया ॥ १४ ॥ ३०४ ॥ राजा पुनः सारे ब्राह्मणों से कहने लगा कि या तो मुझे दोनों क्षत्रियों को दे दो अन्यथा अपनी पुत्रियों को मुझे दे दो। इस बात को सुनकर सभी मुर्दों के समान हो गए और तत्काल उठकर घरों को चल दिए ॥ १५ ॥ ॥ ३०५ ॥ सभी ब्राह्मण बैठकर शोक-सागर में डूबते हुए पुनः विचार करने लगे। इन ब्राह्मणों ने यह हठ बाँध लिया है कि हम इन दोनों भाइयों को अकेले न जाने देकर इनके साथ इकट्ठा राजा के सम्मुख चलेंगे ॥ १६ ॥ ३०६ । ब्राह्मण ने हठ किया और राजा ने उनकी परम सुन्दरी कन्याओं को ले लिया उन स्त्रियों से जो पुत्र पैदा हुए वह

के उह ठाँ जु अहे । उत छत्रिय जाति अनेक भए । न्रिप के संगि जो मिलि जातु भए । नर सो रजपूत कहात भए ॥१८॥ ॥ ३०८ ॥ तिन जीत बिजै कह राउ चढ्यो । अति तेजु प्रचंडु प्रतापु बढ्यो । जोउ आनि मिले अरु साक दए । नर ते रजपूत कहात भए ॥ १९ ॥ ३०९ ॥ जिन साक दए नहि रारि बढी । तिन को इन लै जड़ मूल कढी । दल ते बल से धन टूटि गए । वहि लागत बानज करम भए ॥ २० ॥ ३१० ॥ जोउ आनि मिले नहि जोरि लरे । वहि बाध महाँगनि होम करे । अनगंध जरे महाँ कुंड अनलं । भयो छत्रियमेध महाँ प्रबलं ॥ २१ ॥ ३११ ॥

॥ इति अजैसिंघ का राज संपूरन भइआ ॥ ६ ॥ ४ ॥

जगराज ॥

॥ तोमर छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ बिआसी बरख परमान । दिन (मू०ग्रं०१५३) दोइ मास अशटान । बहु

सनाढ्य जाति के लोग कहलाने लगे ॥ १७ ॥ ३०७ ॥ उस स्थान पर अन्य ब्राह्मण स्त्रियों से जो पुत्र पैदा हुए वे अनेक क्षत्रिय जातियों वाले हो गए और जो राजा के साथ मिल गए वे राजपूत कहलाने लगे ॥ १८ ॥ ॥ ३०८ ॥ राजा सभी ब्राह्मणों को जीतकर चढ़ाई के लिए आगे बढ़ा और उसका प्रताप और बढ़ने लगा। जो-जो उसके साथ मिलकर, लड़कियाँ देकर उससे संबंध बनाते गए, वे सब राजपूत कहलाते गए ॥१९॥३०९॥ जिन्होंने रिस्ता नहीं दिया और युद्ध किया, उन्हें अजयसिंह ने समूल नष्ट कर दिया। उन राजाओं का दल, बल और धन समाप्त हो गया और उन्होंने वाणिज्य कर्म करना शुरू कर दिया ॥ २० ॥ ३१० ॥ जो आकर इसके साथ नहीं मिले और लड़ने लगे, उन्हें बाँधकर अग्नि में जला दिया गया। वे अग्निकुंडों में अंजान स्थिति में हो जला डाले गए और इस प्रकार अजयसिंह ने महा प्रबल क्षत्रियमेध किया ॥ २१ ॥ ३११ ॥

॥ इति अजयसिंह का राज्य सम्पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥ ४ ॥

जगराज

॥ तोमर छंद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ बयासी वर्ष. दो माह. आठ दिन तक राज्य को भोगकर राजाधिराज अजयसिंह की मृत्यु हो गई १ ३१२

राजु भागु कमाइ । पुनि न्रिप को न्रिपराइ ॥ १ ॥ ३१२ ॥ सुन राज राज महान । दस चारि चारि निधान । दस दोइ द्वादस मंत । धरनी धरान महंत ॥ २ ॥ ३१३ ॥ पुनि भ्यो उदोत न्रिपाल । रस रीति रूप रसाल । अतिभान तेज प्रचंड । अनखंड तेज प्रचंड ॥ ३ ॥ ३१४ ॥ तिनि बोलि बिप्र महान । पसुमेध जग्ग रचान । बिज प्राग ओत बुलाइ । अपि काम रूप कहाइ ॥ ४ ॥ ३१५ ॥ दिज काम रूप अनेक । न्रिप बोलि लीन बिसेख । सभ जीअ जग्ग अपार । मख होम कीन अबिचार ॥ ५ ॥ ३१६ ॥ पसु एक पं दस बार । पढ़ि बेल मंत्र अबिचार । अग्नि मद्धि होम कराइ । धनु भूप ते बहु पाइ ॥ ६ ॥ ३१७ ॥ पसुमेध जग्ग कराइ । बहु भांत राजु सुहाइ । बरख असीह अष्ट प्रमान । दुइ मास राजु कमान ॥ ७ ॥ ३१८ ॥ पुन कठन काल करवाल । जग मारिआ जिह ज्वाल । वहि खंडिआ अनखंड । अनखंड राज प्रचंड ॥ ८ ॥ ३१९ ॥

॥ इति पंचमो राज समापतम सतु सुभम सतु ॥

इसके बाद मंत्रियों ने राजा के राजपुत्रों से कहा कि आप चौदह विद्याओं के समुद्र हैं और द्वादस अक्षरों का "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" मंत्र का जाप करनेवाला धरती को धारण करनेवाला महान राजा (आपका पिता) हुआ है ॥ २ ॥ ३१३ ॥ अब आप पुनः उसी राजा का प्रतिरूप हैं और अनुपम सुन्दर सूर्य के समान तेजस्वी और प्रचंड रूप से अखण्ड बने रहनेवाले हैं ॥ ३ ॥ ३१४ ॥ महान विप्रों ने इस प्रकार कहकर पशु-मेध यज्ञ का आयोजन किया और महान् प्रज्ञाशील अर्थात् विद्वान ब्राह्मणों को बुलाया जो कामदेव के समान रूपवान भी थे ॥ ४ ॥ ३१५ ॥ अनेकों सुन्दर ब्राह्मणों को राजा ने विशेष तौर से बुलाया और संसार के अनेकों जीव-जन्तुओं को पकड़कर इस यज्ञ में होम किया गया ॥ ५ ॥ ॥ ३१६ ॥ एक पशु पर दस बार मंत्र का पाठ कर ब्राह्मणों ने यज्ञ में उसका होम किया और इस प्रकार राजा से पर्याप्त धन-धान्य प्राप्त किया ॥ ६ ॥ ३१७ ॥ इस प्रकार पशुमेध यज्ञ करके और अनेक प्रकार से राज्य को शोभायमान कर अट्ठासी वर्ष, दो माह तक राजा ने राज्य किया ॥ ७ ॥ ३१८ ॥ कठिन काल ने, जिसने अपनी ज्वाला से सारे जगत को भस्म कर डाला है, उस बलशाली अखण्ड एवं प्रचंड राजा को भी समाप्त कर दिया ॥ ८ ॥ ३१९ ॥

इति पाँचवें राजा की शुभ समाप्ति

॥ तोमर छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ पुन भए मुनी छितराइ । इह लोक के हरि राइ । अरि जीति जीति अखंड । महि कीन राजु प्रचंड ॥ १ ॥ ३२० ॥ अरि घाइ घाइ अनेक । रिपु छाडियो नही एक । अनखंड राजु कमाइ । छित छीन छत्र फिराइ ॥ २ ॥ ३२१ ॥ अनखंड रूप अपार । अनमंड राजु जुझार । अबिकार रूप प्रचंड । अनखंड राज अमंड ॥ ३ ॥ ॥ ३२२ ॥ बहु जीति जीति न्रिपाल । बहु छाडि कै सर जाल । अरि मारि मारि अनंत । छित कीन राज दुरंत ॥४॥ ॥ ३२३ ॥ बहु राज भाग कमाइ । इम बोलिओ न्रिपराइ । इक कीजिऐ मखसाल । बिज बोलि लेहु उताल ॥ ५ ॥ ३२४ ॥ दिज बोलि लीन अनेक । ग्रिह छाडिओ नही एक । मिलि मत्र कीन बिचार । मति मित्र मंत्र उचार ॥ ६ ॥ ३२५ ॥ तब बोलिओ न्रिपराइ । करि जग को चित चाइ । किव कीजिऐ मखसाल । कहु मंत्र मित्र उताल ॥ ७ ॥ ३२६ ॥

॥ तोमर छंद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ पुनः इस धरती पर मुनि राजा हुआ, जो इस संसार में सिंह के समान जाना जाता था । उसने शत्रुओं को परास्त कर अपने प्रचंड तेज से पृथ्वी पर राज्य किया ॥ १ ॥ ३२० ॥ उसने अनेकों शत्रुओं को मारा और अपने एक भी शत्रु को जीवित नहीं छोड़ा । उसने अखंड राज्य किया और संपूर्ण पृथ्वी के छत्रधारियों के छत्रों को छोड़कर स्वयं धारण किया ॥ २ ॥ ३२१ ॥ वह खंडित न होनेवाला और बिना किसी की सहायता से राज्य स्थापित करनेवाला शूरवीर राजा था । वह बल में प्रचंड था तथा उसका राज्य अखंडित था, परन्तु स्वभाव से वह निर्विकार था ॥ ३ ॥ ३२२ ॥ बहुत से राजाओं को परास्त कर और अनेकों अवसरों पर बाण-वर्षा कर उसने अनन्त शत्रुओं को धराशायी बना दिया और धरती पर दूर-दूर तक राज्य किया ॥ ४ ॥ ३२३ ॥ बहुत दिन राज्य कर लेने पर एक दिन राजा ने कहा कि एक यज्ञशाला बनवाई जाय और ब्राह्मणों को बुलाया जाय ॥ ५ ॥ ३२४ ॥ अनेक ब्राह्मणों को बुलाया गया और कोई भी घर ऐसा नहीं बचा जहाँ से ब्राह्मणों को आमंत्रित न किया गया हो । मंत्रियों ने विचार-विमर्श किया और मित्रों आदि के साथ मंत्रों का उच्चारण होने लगा ॥ ६ ॥ ३२५ ॥ तब राजा, जिसको यज्ञ के लिए अत्यंत उत्साह था, बोला कि आप लोग मुझे सलाह दीजिए कि यज्ञ किस प्रकार किया जाय ? ७ ३२६ तब मंत्रियों और मित्रों ने विचार

तब मंत्र मित्रन कीन । न्रिप संग (मू०ग्रं०१५४) यउ कहि दीन । सुनि राज राज उदार । दस चारि चारि अपार ॥८॥ ॥ ३२७ ॥ सतिजुग्ग मै सुनि राइ । मख कीन चंड बनाइ । अरि मार कै महिखेश । बहु तोख कीन पसेश ॥ ९ ॥ ३२८ ॥ महिखेश कउ रण घाइ । सिरि इंद्र छत्र फिराइ । करि तोख जोगनि सरब । करि दूर दानव गरब ॥ १० ॥ ३२९ ॥ महिखेश कउ रणि जीति । दिज देव कीन अभीत । त्रिदशेश लीन बुलाइ । छित छीन छत्र फिराइ ॥ ११ ॥ ३३० ॥ मुख-चार लीन बुलाइ । चित चउप सिउ जग माइ । करि जग्ग को आरंभ । अनखंड तेज प्रचंड ॥ १२ ॥ ३३१ ॥ तब बोलियो मुखचार । सुनि चंडि चंडि जुहार । जिम होइ आइस मोहि । तिम भाखऊ मत तोहि ॥ १३ ॥ ३३२ ॥ जग जीअ जंत अपार । निज लीन देव हकार । अरि काटि कै पल खंड । पढ़ि बेद मंत्र उदंड ॥ १४ ॥ ३३३ ॥ ॥ रूआल छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ बोलि बिप्पन मंत्र मित्रन जग्ग कीन अपार । इंद्र अउर उपिंद्र लैकै बोलिकै मुखचार । कउन भांतन कीजिऐ अब जग्ग को आरंभ । आजि मोहि उचारिऐ सुनि मित्र मंत्र

विमर्श कर राजा से ऐसा कहा कि हे चौदह विद्याओं के ज्ञाता, उदार राजा, आप सुनिए ॥ ८ ॥ ३२७ ॥ सतयुग में चंडिका ने महिषासुर को मार कर तथा शिव को प्रसन्न कर यज्ञ किया था ॥ ९ ॥ ३२८ ॥ चंडी ने महिषासुर को युद्ध में मारकर इन्द्र के सिर पर छत्र धारण करा कर और रक्तपान करनेवाली योगिनियों का प्रसन्न कर दानवों के गर्व को चूर किया था ॥ १० ॥ ३२९ ॥ महिषासुर को जीतकर ब्राह्मणों और देवों को अभय किया था तथा इंद्र को बुलाकर उसे धरती का छत्र धारण करवाया था ॥ ११ ॥ ३३० ॥ जगत-माता ने प्रसन्न होकर ब्रह्मा को बुलाया था और अखंड प्रचंड तेजवाला यज्ञ प्रारंभ किया था ॥ १२ ॥ ३३१ ॥ तब ब्रह्मा ने कहा, हे चंडिका ! मेरा तुम्हें नमस्कार है और जो मुझे आज्ञा हो उसे मैं पूरा करूँ ॥ १३ ॥ ३३२ ॥ संसार के सभी जीव-जन्तु देवी ने पुकारकर बुला लिये और शत्रुओं में क्षण भर में काटकर वेद-मंत्रों का उच्चारण शुरू कर दिया ॥१४॥३३३॥ ॥ रूआल छंद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ विप्रों ने मंत्रों का उच्चारण कर यज्ञ आरंभ किया । यज्ञ में इन्द्र, उपेन्द्र और ब्रह्मा आदि को भी बुलाया गया राजा ने पुन कहा कि अब किस प्रकार यज्ञ आरभ किया जाय ? हे मित्रो इस असमय कार्य मे सलाह

असंभ ॥ १ ॥ ३३४ ॥ मास के पल काटिकै पड़ि बेदमंत्र अपार । अगनि भीतर होमिऐ सुनि राज राज अबिचार । छेदि चिच्छुर बिड़ारासुर धूलि करणि खपाइ । मार दानव कउ कर्‌यो मख दैतमेध बनाइ ॥ २ ॥ ३३५ ॥ तैस ही मख कीजिऐ सुनि राज राज प्रचंड । जीति दानव देस के बलवान पुरख अखंड । तैस ही मख मार कै सिरि इंद्र छत्र फिराइ । जैस सुर सुखु पाइओ तिव संत होहि सहाइ ॥ ३ ॥ ३३६ ॥

१ ओं स्री वाहिगुरू जी की फ़तह ॥ पातिशाही १० ॥

अथ चउबीस अउतार ॥

॥ चउपई ॥ अब चउबीस उचरों अवतारा । जिह बिध तिन का लखा अखारा । सुनिअहु संत सभै चित लाई । बरनत स्याम जथा मत भाई ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ जब जब होत अरिष्ट अपारा । तब तब देह धरत अवतारा । काल

दीजिए ॥ १ ॥ ३३४ ॥ मित्रों ने सलाह दी कि मांस के टुकड़े काटकर वेदमंत्रों को पढ़कर उन्हें अग्नि में तत्काल होम कीजिए । देवी ने तो चक्षरासुर, बिड़ालासुर आदि दानवों को मारकर दैत्यमेध यज्ञ किया था ॥२॥३३५॥ हे बलशाली राजन् ! आप भी वैसा यज्ञ कीजिए और देश-देशान्तरों के बलवान राजाओं को जीतकर अखंड राज्य कीजिए । जैसे दैत्यों का वध कर दुर्गा ने इन्द्र के सिर पर छत्र झुलाया था और देवताओं को सुख प्रदान किया था, उसी प्रकार आप अत्याचारी शत्रुओं को मारकर संतों की सहायता कीजिए ॥ ३ ॥ ३३६ ॥

चौबीस अवतार

॥ चौपाई ॥ अब जिस प्रकार चौबीस अवतारों की लीला को देखा, उनका वर्णन करता हूँ । हे संतो ! इसे ध्यानपूर्वक सुनो; श्याम कवि इसका अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन कर रहा है ॥१॥ ॥ चौपाई ॥ जब-जब अनेक शत्रु उत्पन्न होते हैं (और धर्म की हानि होती है) तब-तब देह धारण कर अवतरित होता है । काल सबका तमाशा

सभन को पेख तमासा। अंतह (मू०पं०१५५) काल करत है नासा॥ २॥ ॥ चौपई॥ काल सभन का करत पसारा। अंत काल सोई खापनहारा। आपन रूप अनंतन धरही। आपहि मध लीन पुन करही॥ ३॥ ॥ चौपई॥ इन महि स्रिशटि सु दस अवतारा। जिन महि रमिया राम हमारा। अनत चतुरदस गन अवतारू। कहो सु तिन तिन किए अखारू॥ ४॥ ॥ चौपई॥ काल आपनो नामु छपाई। अवरन के सिरि दे बुरिआई। आपन रहत निरालम जग ते। जान लए जा नामै तब ते॥ ५॥ ॥ चौपई॥ आप रचै आपे कल घाए। अवरन कै दै मूंड हताए। आप निरालमु रहा न पाया। ताते नामु बिअंत कहाया॥ ६॥ ॥ चौपई॥ जो चउबीस अवतार कहाए। तिन भी तुम प्रभ तनक न पाए। सभ ही जग भरमे भव रायं। ता ते नामु बिअंत कहायं॥ ७॥ ॥ चौपई॥ सभ ही छलत न आप छलाया। ता ते छलिआ

देखता है और अन्त में सबको नष्ट कर देता है॥२॥ ॥ चौपाई॥ काल ही सबको जन्म देता है और काल ही सबको नष्ट कर देनेवाला है। काल ही अपने अनत रूप धारण करता है और पुन: सबको अपने अंदर समाहित कर लेता है॥ ३॥ ॥ चौपाई॥ इसी काल में ही सृष्टि और दशावतारों की रचना हुई और इन सबमें ही हमारा राम (परब्रह्म) रमण करता है। दस के अतिरिक्त चौदह अन्य अवतार भी गिने गए हैं और उन्होंने क्या-क्या लीलाएँ कीं उनका वर्णन किया जाता है॥ ४॥ ॥ चौपाई॥ काल (अनत परब्रह्म) अपने नाम को प्रच्छन्न रखकर अपने सिर पर कोई दोष न लेकर अन्य सबको ही उनकी बुराई के लिए उत्तरदायी ठहराता है। इस तथ्य को मैं पहले से ही जानता हूँ कि वह स्वयं इस जगत-प्रपंच से विलग बना रहता है॥ ५॥ ॥ चौपाई॥ काल स्वयं रचता है और स्वयं संहार करता है, परन्तु इन सबका निमित्त अन्यों को बनाकर बुराई भलाई उनके मत्थे मढ़ देता है। वह स्वयं सब कलुषों से दूर रहता है और उसकी सीमा को कोई नहीं जान सका, इसीलिए उसका नाम 'अनंत' भी कहा जाता है॥६॥ ॥ चौपाई॥ जो तथाकथित चौबीस अवतार हैं, हे प्रभु! वे तनिक भर भी तुम्हें प्राप्त नहीं कर सके। ये सब संसारी राजा बनकर जगत-प्रपंच में ही भ्रमित होते रहे और अनेकों नामों से जाने जाते रहे॥७॥ ॥ चौपाई॥ हे प्रभु! तुम सबको तो छलते रहे हो, परन्तु स्वयं किसी से भी छले नही गए इसीलिए तुमको 'छलिया भी कहा

आप कहाया । संतन दुखी निरख अकुलावै । दीनबंध ता ते कहलावै ॥ ८ ॥ ॥ चौपई ॥ अंत करत सभ जग को काला । नामु काल ता ते जग डाला । सभै संत पर होत सहाई । ता ते संख्या संत सुनाई ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ निरख दीन पर होत दिआरा । दीनबंध हम तबै बिचारा । संतन पर करुणा रस ढरई । करुणानिधि जग तबै उचरई ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ संकट हरत साधवन सदा । संकटहरन नामु भयो तदा । दुख दाहत संतन के आयो । दुखदाहन प्रभ तदिन कहायो ॥ ११ ॥ ॥ चौपई ॥ रहा अनंत अंत नही पायो । याते नामु बिअंत कहायो । जग मो रूप सभन के धरता । याते नामु बखनियत करता ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ किनहूँ कहूँ न ताहि लखायो । इह कर नामु अलख कहायो । जोन जगत मै कबहुँ न आया । याते सभों अजोन बताया ॥ १३ ॥ ॥ चौपई ॥ ब्रहमादिक सभ ही पचहारे । बिशन महेश्वर

जाता है । तुम संतों को दुःखी देखकर आकुल हो उठते हो, इसीलिए तुमको 'दीनबंधु' भी कहा जाता है ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ समय-समय पर तुम विश्व का अंत कर देते हो, इसलिए संसार ने तुम्हारा एक नाम 'काल' भी रखा है । भिन्न-भिन्न अवसरों और युगों में तुम संतों की सहायता करते रहे हो, अतः संतों ने तदनुसार तुम्हारे अवतारों की गणना की है ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम दीनों को देखकर दयालुता दिखाते हो, यही देखकर हम आपको 'दीनबंधु' कहते हैं । आपका करुणा-रस संतों पर बरसता रहता है, इसलिए जगत् आपको करुणानिधि' कहता है ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम साधुओं के संकट को सदैव दूर करते हो, इसलिए आपका नाम 'संकटहरण' भी पड़ गया है । तुम संतों के कष्टों का नाश करते आये हो, अतः तुम्हें 'कष्टनाशक' कहा जाता है ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम सदैव अनादि हो और तुम्हारा रहस्य नहीं जाना जा सका, इसी से तुम्हारा नाम 'अनंत' भी जाना जाता है । जगत में तुम सबका स्वरूप धारण करते हो, अतः तुम्हारा नाम 'कर्ता' भी कहा जाता है ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ कोई भी तुम्हें आज तक देख नहीं सका, अतः तुम्हारा नाम 'अलख' भी जाना जाता है । तुम कभी भी जगत में जन्म धारण नहीं करते हो, अतः तुम्हें 'अयोनि' कहा जाता है ॥ १३ ॥ चौपाई ब्रह्मा विष्णु, महेश आदि सभी बेचारे तुम्हारा रहस्य जानने की प्रक्रिया में थक चुके हैं चाँद और सूर्य भी तुम्हारा ही विचार करते

कउन बिचारे। चंद सूर जिन करे बिचारा। ता ते जनियत है करतारा ॥१४॥ ॥ चौपई ॥ सदा अभेख अभेखी रहई। ता ते जगत अभेखी कहई। अलख रूप किनहूँ नहि जाना। तिह कर जात अलेख बखाना ॥१५॥ (मू०ग्रं०१५६) ॥ चौपई ॥ रूप अनूप सरूप अपारा। भेख अभेख सभन ते न्यारा। दाइक सभो अजाची सभ ते। जान लयो करता हम तब ते ॥ १६ ॥ ॥ चौपई ॥ लगन सगन ते रहत निरालम। है यह कथा जगत मै मालम। जंत्र मंत्र तंत्र न रिझाया। भेख करत किनहूँ नहि पाया ॥ १७ ॥ ॥ चौपई ॥ जग आपन आपन उरझाना। पारब्रहम काहू न पछाना। इक मड़िअन कबरन वे जाँही। दुहुँअन मै परमेश्वर नाही ॥ १८ ॥ ॥ चौपई ॥ ए दोऊ मोह बाद मो पचे। इन ते नाथ निराले बचे। जा ते छूटि गयो भ्रम उर का। तिह आगै हिंदू क्या तुरका ॥ १९ ॥ ॥ चौपई ॥ इक तसबी इक माला धरही। एक कुरान पुरान उचरही। करत बिरुद्ध गए

हैं और इसीलिए तुमको इन सबका कर्ता जाना जाता है ॥ १४ ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम सदा निर्वेश हो, रहोगे। इसीलिए संसार तुम्हें 'सर्ववेशों से परे' कहता है। तुम्हारा अदृश्य रूप किसी ने नहीं जाना है, इसलिए तुमको 'अलक्ष्य' कहकर तुम्हारा वर्णन किया जाता है ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम्हारा रूप अनुपम है और स्वरूप अनन्त है। तुम वेश-अवेश सबसे भिन्न हो, तुम सबको देनेवाले हो और स्वयं अयाचक हो। इसलिए हम तुम्हें कर्ता के रूप में जानते हैं ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम शकुन, लग्न आदि से प्रभावित नहीं होते, इस तथ्य को सारा जगत जानता है। कोई भी यंत्र, मंत्र, तंत्र तुम्हें प्रसन्न नहीं कर सकता और भिन्न प्रकार के वेशों को बनाकर भी तुम्हें कोई नहीं पा सका है ॥ १७ ॥ ॥ चौपाई ॥ जगत के जीव सब अपने-अपने स्वार्थों में ही उलझे हुए हैं और परब्रह्म की पहचान किसी ने नहीं की है। तुम्हें पाने के लिए कई श्मशान में और कई क़ब्रगाहों में जाते हैं, परन्तु इन दोनों में परमेश्वर नहीं है ॥ १८ ॥ ॥ चौपाई ॥ ये दोनों ही प्रकार के लोग मोह और वाद-विवाद में नष्ट हो रहे हैं, परन्तु, हे नाथ! तुम इन दोनों से निराले हो। जिसको पाने से हृदय का भ्रम दूर हो जाता है, उस परमात्मा के समक्ष न कोई हिन्दू है, न मुसलमान ॥ १९ ॥ ॥ चौपाई ॥ एक तस्वीर और दूसरा माला धारण करता है। एक क़ुरान का पाठ करता है और दूसरा पुराणों का उच्चारण करता है। ये दोनों ही मतों वाले

मर मूड़ा । प्रभ को रंगु न लागा गूड़ा ॥२०॥ ॥चौपई॥ जो जो रंग एक के राचे । ते ते लोक लाज तजि नाचे । आदिपुरख जिन एकु पछाना । दुतीआ भाव न मन महि आना ॥ २१ ॥ ॥ चौपई ॥ जो जो भाव दुतिय महि राचे । ते ते मीत मिलन ते बाचे । एक पुरख जिनं नंक पछाना । तिन ही परम तत्त कह जाना ॥ २२ ॥ ॥ चौपई ॥ जोगी संनिआसी है जेते । मुंडिआ मुसलमान गन केते । भेख धरे लूटत संसारा । छपत साध जिह नामु अधारा ॥ २३ ॥ ॥ चौपई ॥ पेट हेत नर डिंभु दिखाहीं । डिंभ करे बिनु पइयत नाहीं । जिन नर एक पुरख कह ध्यायो । तिन कर डिंभ न किसी दिखायो ॥ २४ ॥ ॥ चौपई ॥ डिंभ करे बिनु हाथि न आवै । कोऊ न काहू सीस निवावै । जो इहु पेट न काहू होता । राव रंक काहू को कहता ॥२५॥ ॥चौपई॥ जिन प्रभ एक वहै ठहरायो । तिन कर डिंभ न किसू दिखायो ।

परस्पर एक-दूसरे का विरोध करते हुए मर रहे हैं और इनमें से किसी को भी प्रभु-प्रेम का पक्का रंग नहीं लगा है ॥२०॥ ॥ चौपाई ॥ जो उस एक प्रभु के रंग में रँग गये हैं, वे लोक-लाज को त्यागकर प्रसन्न भाव से नाच उठते हैं। जिन्होंने उस एक आदिपुरुष को पहचान लिया है, उनके हृदय मे से द्वैतभाव विनष्ट हो चुका है ॥ २१ ॥ ॥ चौपाई ॥ जो-जो द्वैतभाव मे लीन हैं अर्थात् परमात्मा को आपे से अलग समझते हैं, वे ही उस परममित्र परमात्मा के मिलन से दूर हैं। जिसको परमपुरुष की थोड़ी सी भी पहचान आ गई है, उन्होंने उसे परमतत्त्व के रूप में जान लिया है ॥ २२ ॥ ॥ चौपाई ॥ जितने भी योगी, संन्यासी, मुँड़िया एवं मुसलमान, फ़क़ीर आदि हैं, ये सब विभिन्न वेश धारण करके संसार को लूट रहे हैं। जिन परम संतों का आधार केवल प्रभु का ही नाम है, वे तो प्रकट रूप से लोगों के सामने आते ही नहीं और गुप्त ही रहते हैं ॥ २३ ॥ ॥ चौपाई ॥ सांसारिक प्राणी पेट भरने के लिए पाखण्ड दिखाते हैं, क्योंकि पाखंड के बिना उन्हें अर्थ-लाभ नहीं होता। जिस व्यक्ति ने केवल एक परमपुरुष का ध्यान किया है, उसने कभी भी किसी को पाखण्ड नहीं दिखलाया ॥ २४ ॥ ॥ चौपाई ॥ पाखंड के बिना स्वार्थ पूरा नहीं होता और कोई भी किसी के आगे सिर नहीं झुकाता। यदि यह पेट किसी के साथ भी न लगा होता तो इस संसार में न तो कोई राजा और न कोई रंक कहा जाता है २५ । चौपाई ॥ जिन्होंने एक को ही केवल सबों का स्वामी माना है, उन्होंने कभी

सीस दियो उन सिरर न दीना। रंच समान देह करि कीना ॥ २६ ॥ ॥ चौपई ॥ कान छेद जोगी कहवायो। अति प्रपंच कर बनहि सिधायो। एक नामु को तत्तु न लयो। बन को भयो न ग्रिह को भयो ॥ २७ ॥ ॥ चौपई ॥ कहा लगै कब कथै बिचारा। रसना एक न पइयत पारा। जिहबा कोटि कोटि कोऊ धरै। गुण समुंद्र त्वै पार न परै ॥ २८ ॥ ॥ चौपई ॥ प्रथम काल (मू०ग्रं०१५७) सभ जग को ताता। ता ते भयो तेज बिख्याता। सोई भवानी नामु कहाई। जिन सिगरी यह स्रिशटि उपाई ॥ २९ ॥ ॥ चौपई ॥ प्रिथमै ओअंकार तिन कहा। सो धुन पूर जगत मो रहा। ता ते जगत भयो बिसथारा। पुरख प्रक्रित जब दुहू बिचारा ॥ ३० ॥ ॥ चौपई ॥ जगत भयो ता ते सभ नियत। चार खान कर प्रगट बखनियत। शकत इती नही बरन सुनाऊँ। भिन भिन कर नाम बताऊँ ॥ ३१ ॥ ॥ चौपई ॥ बली अबली दोऊ उपजाए।

भी कोई पाखंड करके किसी को नहीं दिखाया है। ऐसा व्यक्ति अपना सिर कटा देता है परन्तु सत्य का परित्याग नहीं करता, और ऐसा ही व्यक्ति इस देह को भी धूल के कण के समान मानता है ॥ २६ ॥ ॥ चौपाई ॥ कानों को छेदकर व्यक्ति योगी कहलाता है और कई प्रपच करके वन में चला जाता है। परन्तु जिसने एक प्रभु-नाम के तत्त्व को हृदयंगम नहीं किया, वह न तो घर का ही रहा और न वन रूपी घाट का ही हो पाया ॥ २७ ॥ ॥ चौपाई ॥ ये कवि विचारा कहाँ तक वर्णन करे, क्योंकि एक जीव से उस अनन्त का रहस्य नहीं जाना जा सकता। बेशक किसी की करोड़ों जिह्वाएँ भी हो जायँ तब भी तुम्हारे गुण रूपी समुद्र का पार नहीं पाया जा सकता ॥ २८ ॥ ॥ चौपाई ॥ सर्वप्रथम काल रूपी परमात्मा ही सारी सृष्टि का आदि पिता है और उसी से प्रचण्ड तेज का प्रादुर्भाव हुआ। वही तेज भवानी के नाम से माना गया, जिसने इस सारी सृष्टि को उत्पन्न किया ॥ २९ ॥ ॥ चौपाई ॥ सर्वप्रथम उसने ओंकार का उच्चारण किया और ओंकार की ध्वनि इस सारे जगत मे व्याप्त हो उठी। इसी से एवं प्रकृति-पुरुष के संयोग से सारे जगत का विस्तार हुआ ॥ ३० ॥ ॥ चौपाई ॥ जगत उत्पन्न हुआ और तभी से सब लोग इसे जगत के रूप में जानते हैं और संसार को स्थूल रूप से उत्पन्न करनेवाले चार स्रोतों का वर्णन किया जाता है। (ये चार स्रोत हैं—अंडज, पिंडज स्वेदज उदभिज) मेरे में इतनी शक्ति नही है कि मैं भिन्न-भिन्न नामों का वर्णन कर सकूँ ३१ चौपाई उस

ऊच नीच कर भिन दिखाए । बपु धर काल बली बलवाना । आपन रूप धरत भयो नाना ॥ ३२ ॥ ॥ चौपई ॥ भिन भिन जिमु देह धराए । तिमु तिमु कर अवतार कहाए । परम रूप जो एक कहायो । अंत सभो तिह मद्धि मिलायो ॥ ३३ ॥ ॥ चौपई ॥ जितिक जगति के जीव बखानो । एक जोत सभ ही महि जानो । काल रूप भगवान भनैबो । ता महि लीन जगति सभ ह्वैबो ॥ ३४ ॥ ॥ चौपई ॥ जो किछु दिष्ट अगोचर आवत । ता कहु मन माया ठहरावत । एकहि आप सभन सो ब्यापा । सभ कोई भिन भिन कर थापा ॥ ३५ ॥ ॥ चौपई ॥ सभ ही महि रम रह्यो अलेखा । मागत भिन भिन ते लेखा । जिन नर एक वहै ठहरायो । तिनही परम ततु कह पायो ॥ ३६ ॥ ॥ चौपई ॥ एकहि रूप अनूप सरूपा । रंक भयो राव कहूँ भूपा । भिन भिन सभहुन उरझायो । सभ ते जुदो न किनहूँ पायो ॥३७॥ ॥ चौपई ॥ भिन भिन सभहूँ उपजायो । भिन भिन कर तिनो खपायो ।

परमात्मा ने बली एवं निर्बल दोनों को पैदा किया और ऊँचे और नीचे की भिन्नता भी स्पष्ट की । काल-रूप महाबली ने शरीर धारण कर अपने स्वरूपों को विभिन्न रूप से प्रकट किया ॥ ३२ ॥ ॥ चौपाई ॥ (परमात्मा ने) जैसे-जैसे भिन्न-भिन्न देह धारण की, वैसे ही वैसे वह भिन्न-भिन्न अवतारों के रूप में प्रसिद्ध हुआ । परन्तु जो परमात्मा का परम रूप है, अन्त में सब उसी में विलीन हो गए ॥ ३३ ॥ ॥ चौपाई ॥ जगत में जितने भी जीव हैं, सबमें एक ही ज्योति का प्रकाश समझो । भगवान जिसे काल-रूप में जाना जाता है, उसी में ही सारा जगत विलीन होगा ॥ ३४ ॥ ॥ चौपाई ॥ जो कुछ हमें अगोचर लगता है, मन उसे माया का नाम देता है । वह एक परमात्मा ही सबमें व्याप्त है और उसे ही लोग भिन्न-भिन्न रूप से अपनी मान्यताओं के अनुसार स्थापित किए हुए हैं ॥ ३५ ॥ ॥ चौपाई ॥ वह अदृष्ट (प्रभु) सबमें रम रहा है और सभी जीव अपने-अपने लेखों के अनुसार उससे माँगते रहते हैं । जिसने उस प्रभु को एक करके ही जाना है, उसी ने परमतत्त्व को प्राप्त किया है ॥ ३६ ॥ ॥ चौपाई ॥ उस एक का ही अनुपम रूप स्वरूप है और वह ही कहीं राजा है कहीं रंक है । उसने भिन्न-भिन्न तरीक़ों से सबको उलझा रखा है, परन्तु स्वयं वह सबसे अलग है और कोई भी उसके रहस्य को नहीं जान सका है ३७ । चौपाई । उसने भिन्न-भिन्न

हठी फाग जूपं ॥४३॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ बहे खग्गयं खेल खिगं सु धीरं । सुभै शस्त्र संजान सो सूरबीरं । गिरे गउर गाजी खुले हत्थि बत्थं । नच्यो रुद्र रुद्रं नचे मच्छ मत्थं ॥४४॥ ॥ रसावल छंद ॥ महा बीर गज्जे । सुभं शस्त्र सज्जे । बधे गज्ज गाहं । सु हूरं उछाहं ॥ ४५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ ढला ढुक ढालं । झमी तेग कालं । कटा काट बाहैं । उभै जीत चाहैं ॥ ४६ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ मुखं मुच्छ बंकी । तमं तेग अतंकी । फिरैं गउर गाजी । नचैं तुंद ताजी ॥ ४७ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ भर्यो रोस संखासुरं देख सैणं । तपे बीर बक्त्रं किए रकत नैणं । भुजा ठोक भूपं कर्यो नाद उच्चं । सुणे गरभणीआन के गरभ मुच्चं ॥ ४८ ॥ ॥ भुजंग ॥ लगे ठाम ठामं दमामं दमंके । खुले खेत मो खग्ग खूनी खिमंके ।

धराशायी होने लगे । भीमकाय हाथियों के सूंड़ और सिर कटकर गिरने लगे और ऐसा दृश्य बन गया, मानो हठी युवकों का झुंड होली खेल रहा हो ॥ ४३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ धैर्यवान शूरवीरों के खड़ग और कृपाणें चलने लगीं और महाबली वीर शस्त्रों और कवचों से सुसज्जित हो रहे हैं । बड़े-बड़े वीर खाली हाथ गिरे पड़े है और इस सारे दृश्य को देखकर रुद्रदेव एक ओर नृत्य कर रहे हैं और दूसरी ओर मत्स्य भी प्रसन्न होकर (सागर का) मंथन कर रहा है ॥ ४४ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ शुभ शस्त्रों से सुसज्जित वीर गरज रहे हैं और हाथियों के समान बलशाली वीरों का वध होता देखकर स्वर्ग में अप्सराएँ उनका वरण करने के लिए प्रसन्न हो रही हैं ॥ ४५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ ढालों की ढकढक और तलवारों की झमझम सुनाई पड़ रही है । कृपाणें कटाकट की आवाज से चल रही हैं और दोनों ही पक्ष अपनी जीत की कामना कर रहे हैं ॥ ४६ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ वीरों के मुख पर मूँछें और हाथों में कराल कृपाणें शोभायमान हो रही हैं । युद्धस्थल में महावीर लोग विचरण कर रहे हैं और अत्यन्त वेगवान घोड़े नृत्य कर रहे हैं ॥ ४७ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ शंखासुर सेना को देखकर रोष से भर उठा । अन्य वीर भी क्रोध से जलकर चिल्लाने लगे और उन सबके नयनों में रक्त भर उठा । राजा (शंखासुर) ने भुजाओं को ठोंककर भीषण गर्जन किया और उसकी भयंकर आवाज़ को सुनकर गर्भवती स्त्रियों के गर्भपात हो गए ॥ ४८ ॥ ॥ भुजंग ॥ सभी अपने-अपने स्थानों पर अड़ गए और इधर नगाड़े जोर-शोर से बजने लगे रणस्थल में खूनी खड़ग निकलकर चमकने लगे । क्रूर धनुर्धों के कड़कने की आवाजें आने लगीं और भूत-बैताल आदि

भए क्रूर भांतं कमाणं कड़क्के । नचे बीर बैताल भूतं भड़क्के ॥ ४९ ॥ ॥ भुजंग ॥ गिर्‌यो आयुधं सायुधं बीर खेतं । नचे कंध हीणं कमद्धं अचेतं । खुले खग्ग खूनी खियालं खतंगं । भजे कातरं सूर बज्जे निहंगं ॥ ५० ॥ ॥ भुजंग ॥ कटे चरम बरमं गिर्‌यो शत्रु शस्त्रं । भके भैं भरे भूत भूमं न्रिशत्रं । रणं रंग रत्ते सभी रंग भूमं । गिरे जुध मद्धं बली झूम झूमं ॥५१॥ ॥ भुजंग ॥ भयो द्वंद जुद्धं रणं संख मच्छं । मनो दो गिरं जुद्ध जुट्टे सपच्छं । कटे मास टुक्कं भखे गिद्ध ब्रिद्धं । हसी जोगणी चउसठा सूर सुद्धं ॥ ५२ ॥ ॥ भुजग ॥ कियो उधार बेदं हते संख बीरं । तज्यो मच्छ रूपं । सज्यो सुंद्र चीरं । सबं देव थापे कियो दुष्ट नासं । टरे सरब दानो भरे जीअ त्रासं ॥ ५३ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ संखासुर मारे बेद उधारे शत्रु संघारे जसु लीनो । देवे सु बुलायो राज बिठायो छत्र फिरायो सुख दीनो । कोटं बज बाजे सुर सभ गाजे संभ घरि

भड़ककर नाचने लगे ॥ ४९ ॥ ॥ भुजंग ॥ शूरवीर शस्त्रों-समेत रणस्थल में गिरने लगे और कबंध, अचेतावस्था में युद्ध में नृत्य करने लगे । खूनी खड्ग एवं तीखे तीर चलने लगे; नगाड़े (घनघोर रूप से) बजने लगे तथा शूरवीर इधर-उधर भागने लगे ॥ ५० ॥ ॥ भुजंग ॥ शत्रुओं के कवच और शरीर कटने लगे तथा शस्त्र गिरने लगे । भयभीत होकर भूमि पर भूत विचरण करने लगे । युद्धभूमि में सभी युद्ध के रंग में रँगे गए अर्थात् युद्ध में लीन हो गए और युद्धस्थल में महाबली वीर झूमझूम कर गिरने लगे ॥ ५१ ॥ ॥ भुजंग ॥ शंखासुर और मत्स्य में इतना भीषण द्वन्द्व युद्ध हुआ, मानो स्पष्ट रूप से दो पर्वत आपस में युद्ध कर रहे हों । मांस के टुकड़े गिरने लगे जिन्हें बड़े-बड़े गिद्ध खाने लगे और चौंसठ योगिनियाँ शूरवीरों के इस भीषण युद्ध को देखकर हँसने लगीं ॥ ५२ ॥ ॥ भुजंग ॥ शंखासुर को मारकर मत्स्य ने वेदों का उद्धार किया और (परमात्मा) मत्स्य-रूप त्यागकर सुंदर वस्त्रों में सुसज्जित हुआ । दुष्टों का नाश कर परमात्मा ने सभी देवताओं को पुनः स्थापना की और जीवों को भयभीत करनेवाले सभी दानव नष्ट हो गए ॥ ५३ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ (परमात्मा ने) शंखासुर को मारकर वेदों का उद्धार करके तथा शत्रुओं का संहार करके यश प्राप्त किया । देवेश इन्द्र को बुलाया, उसे राज-छत्र प्रदान कर सुखी किया । करोड़ों वाद्य-यन्त्र बजने लगे, देवता आनन्द-ध्वनि करने लगे और सबके घरों से शोक का नाश हो गया

साजे शोक हरे । दै कोटक दछना क्रोर प्रदछना (मू०ग्रं०१५६)
आनि सु मच्छ के पाइ परे ॥ ५४ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके ग्रंथे प्रथम मच्छ अउतार संखासुर संघह कथनं ॥

अथ कच्छ अउतार कथनं ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ कितो काल बीत्यो कर्यो देव राजं । भरे राज धामं सुभं सरब साजं । गजं बाज बीणं बिना रतन भूपं । कर्यो बिशन बीचार चित्तं अनूपं ॥ १ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ ससं देव एकत्र कीने पुरिंद्रं । ससं सूरजं आदि लै कै उपिंद्रं । हुते दइत जे लोक मद्ध्यं हंकारी । भए एकठे भ्राति भावं बिचारी ॥ २ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ बद्यो अरध अरधं दुहू बाटि लीबो । सभो बात मानी यहै काम कीबो । करो मत्थनी कूट मंद्राचलेयं । तक्यो छीर सामुंद्र देवं अदेवं ॥ ३ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ करी मत्थका बासकं सिंध मद्धं ।

सभी देवता अनेक प्रकार से दक्षिणा और करोड़ों परिक्रमा कर मत्स्यावतार के चरणों में आ पड़े ॥ ५४ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथ के प्रथम मत्स्यावतार में शंखासुर-वध-कथन की समाप्ति ॥

कच्छप-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ काफ़ी समय तक देवराज इन्द्र ने राज किया और उसके महल सर्व प्रकार के सुखों को देनेवाले थे । परन्तु एक बार विष्णु ने अपने चित्त में अनुपम विचार किया कि यह राजा हाथी, घोड़े एवं रत्नों से विहीन राजा है (इसके लिए कुछ प्रबंध किया जाना चाहिए) ॥ १ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ इन्द्र ने चन्द्र, सूर्य, उपेन्द्र आदि सभी देवताओं को एकत्र किया । अहंकारी दैत्य भी जो उस समय थे, देवताओं के इस जमाव को कोई षड्यंत्र समझकर इकट्ठा हो गए ॥ २ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ अब दोनों झुंडों में यह तय हुआ कि जो भी प्राप्ति होगी, उसे आधा-आधा बाँट लिया जायगा । सबने यह बात मानकर कार्य शुरू कर दिया । मंदराचल पर्वत को मंथन के लिए मथानी बनाकर देवों-अदेवों दोनों ने क्षीरसागर के मंथन का कार्यक्रम बनाया ॥ ३ ॥ ॥ भुजंग छंद वासुकि नाग को मथानी की रस्सी बनाया गया और दल को आधा

मथै लाग दोऊ भए अद्ध अद्धं । सिरं दैंत लागे गही पूछ देवं । मथ्यो छीर सिद्धं मनो माटकेवं ॥ ४ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ इसो कउण बीयो परे भार पब्बं । उठे काँप बीरं दित्यादित्य सब्बं । तबै आप ही बिशन मंत्रं बिचार्यो । तरे परबतं कच्छपं रूप धार्यो ॥ ५ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथे दुतीआ कछ अउतार संपूरनम सत ॥

अथ छीर समुंद्र मथन चउदह रतन कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ मिलि देव अदेवन सिंध मथ्यो । कब स्याम कवित्तन मद्ध कथ्यो । तब रतन चतुरदस यों निकसे । असता निस मो सस से बिगसे ॥१॥ ॥ तोटक छंद ॥ अमरांतक सीस की ओर हुअं । मिलि पूछ गही दिस देव दुअं । रतनं निकसे बिगसे ससि से । जनु घूटन लेत अमी रस के ॥ २ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ निकस्यो धनु साइक

आधा बाँटकर उस रस्सी के दोनों किनारों को पकड़ लिया गया। सिर की ओर दैत्यों ने पकड़ा और पूँछ देवताओं ने पकड़कर क्षीरसमुद्र को ऐसे मथना शुरू किया मानो मटकी में (दही) मथा जाता हो ॥ ४ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ अब यह विचार होने लगा कि ऐसा अन्य कौन वीर है, जो पर्वत के भार को अपने पर सहन कर सकता है (क्योंकि पर्वत को नीचे आधार की आवश्यकता है)। यह सुनकर दित्य, आदित्य आदि सभी वीर असमंजस में पड़कर काँप उठे। तब देवों-अदेवों की इस कठिनाई को देखकर विष्णु ने स्वयं ही विचार किया और कच्छप-रूप धारण कर पर्वत के तल में विराजमान हो गए ॥ ५ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के द्वितीय कच्छप-अवतार-वर्णन की समाप्ति ॥

क्षीरसमुद्र-मंथन और चौदह रत्न-कथन का प्रारम्भ ॥

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ तोटक छंद ॥ देव और दैत्यों ने मिलकर समुद्र का मंथन किया, जिसका श्याम कवि ने कवित्तों में वर्णन किया है। तब चौदह रत्न ऐसे निकलकर शोभायमान हुए, मानो रात्रि में चंद्रमा निकलकर शोभायमान हुआ हो ॥ १ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ सिर की ओर दैत्य हुए और देवों ने पूँछ की दिशा अर्थात् तरफ़ से वासुकि को पकड़ा। रत्नों को निकलते देखकर सभी ऐसे प्रसन्न होते दिखाई देने लगे, मानो अमृत के घूँट पीकर प्रसन्न हो रहे हों ॥ २ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ धुद्ध

सुद्ध सितं । मदु पान कढ्यो घट मद्य मतं । गज बाज सुधा लछमी निकसी । घन मो मनो बिद्दुलता बिगसी ॥ ३ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ कलपाद्रम माहुर अउ रंभा । जिह मोहि रहै लख इंद्र सभा । मणि कौसतकं ससि रूप सुभं । जिह मज्जत दैत बिलोक जुधं ॥ ४ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ निकसो गवराज सु धेन भली । जिह छीन लयो सहसास्त्र बली । गन रतन गनउ उपरतन अबै । तुम संत सुनो चित लाइ (मू०ग्रं०१६०) सबै ॥ ५ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ गन जोक हरीतकी और मधं । जन पंच सु नामय संख सुभं । सस बेल बिजिया अर चक्र गदा । जुवराज बिराजत पान सदा ॥ ६ ॥ ॥ तोटक ॥ धनु सारंग नंदग खग्ग भणं । जिन खंडि करै गन दइत रणं । शिव सूल बड़वानल कपल मुनं । त धनंतर चउदसवो रतनं ॥ ७ ॥ गन रतन उपरतन औ धात गनो । कहि धात सभै उपधात भनो । सभ नाम जथामत स्याम धरो । घट जान कबो जिन निंद करो ॥ ८ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ प्रिथमो गन लोह सिका

श्वेत वर्ण का धनुष-बाण निकला और उन मदमस्तों ने एक घड़े में मद्य भी (सागर से) निकाला । (ऐरावत) हाथी, अश्व, अमृत और लक्ष्मी इस प्रकार निकलकर शोभायमान होने लगे, मानो बादलों में विद्युत् चमक उठी हो ॥ ३ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ कल्पद्रुम (वृक्ष), विष और रम्भा नामक अप्सरा भी निकली जिसे देखकर इन्द्र-सभा के लोगों का मन ललचा उठा । कौस्तुभमणि और चंद्रमा भी निकले जिनकी आराधना (कामना) युद्धस्थल में दैत्यगण किया करते हैं ॥ ४ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ कामधेनु गाय भी निकली, जिसे बली सहस्रार्जुन ने छीन लिया था । रत्नों की गणना कर अब मैं उपरत्नों की गणना करता हूँ, अतः हे संतो ! तुम ध्यानपूर्वक सुनो ॥ ५ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ ये उपरत्न हैं, जोक, हारिड, हकीक, मधु, शुभ पाञ्चजन्य शंख, सोमलता, भांग और चक्र-गदा जो कि युवराजों के हाथों में सदा शोभायमान होते हैं ॥ ६ ॥ ॥ तोटक ॥ धनुष-बाण, नंदी एवं खड्ग जिसने दैत्यों का नाश किया था, भी सागर से निकले । शिव का त्रिशूल, बड़वानल और कपिल मुनि तथा धनवंतरि चौदहवें रत्न के रूप में निकले ॥ ७ ॥ रत्नों, उपरत्नों की गणना कर अब धातुओं की गणना करता हूँ तथा फिर उपधातुओं की गणना करूँगा । ये सब नाम श्याम कवि ने अपनी बुद्धि के अनुसार गिनाए हैं इन्हें कम समझकर कविगण कृपया मेरी निन्दा न करें ८ तोटक छद पहले

स्वरनं । चतुरथ भन धात सितं रुकमं । बहुरो कथ तांबर कली पितरं । कथि अष्टम जिसतु है धात धरं ।। ९ ।। ।।तोटक छंद।। ।। उपधात कथनं ।। सुरमं शिंगरफ हरताल गणं । चतुरथ तह सिबल खार भणं । त्रितसंख मनासिल अभ्रकयं । भन अष्टम लोण रसं लवणं ।। १० ।। ।। दोहरा ।। धात उपधात जथाशकति सो हौं कही बनाइ । खानन महि भी होत है कोई कहूं कमाइ ।। ११ ।। ।। चौपई ।। रतन उपरतन निकासे तब ही । धात उपधात बिरख भी सब ही । तिह तब ही बिशनहि हिर लयो । अवरनि बाट अवर नहि दयो ।।१२।। ।। चौपई ।। सारंग सर अस चक्र गदा लिअ । पांचाजन लै नाद अधिक किअ । सूल पिनाक बिसह कर लीना । सो लै महादेव कउ दीना ।। १३ ।। ।। भुजंग छंद ।। दियो इंद्र ऐरावतं बाज सूरं । उठे दोह दानो जुधं लोह पूरं । अनी दानवी देख उट्ठी अपारं । तबै बिशन जू चित्त कीनो बिचारं ।। १४ ।।

लोहा, सीसा, और सोने की गणना करता हूँ और चौथी धातु श्वेत चाँदी कहता हूँ। फिर तांबे, क़लई और पत्र का वर्णन करता हुआ आठवीं धातु जिस्त मानता हूँ जो धरती के गर्भ में है ।।९।। ।। तोटक छंद ।। ।। उपधातु कथन ।। शूरमा, सिंहरफ, हरताल, सिंबल, खार, मृतुशंख, अभ्रक, लवण, रस आदि उपधातुएँ हैं ।। १० ।। ।। दोहा ।। ये धातुएँ, उपधातुएँ मैंने यथाशक्ति वर्णित की हैं और ये सब धरती की खानों में भी होती हैं। जो इनका इच्छुक हो इन्हें अर्जित कर सकता है ।। ११ ।। ।। चौपाई ।। रत्न, उपरत्न, धातु, उपधातु आदि जैसे निकले, उन्हें विष्णु ने अपहृत कर लिया और अन्य वस्तुएँ सबमें बाँट दिया ।। १२ ।। ।। चौपाई ।। धनुष-बाण, कृपाण, चक्र, गदा, पांचजन्य शंख आदि स्वयं ले लिया और त्रिशूल, पिनाक नामक धनुष, विष अपने हाथ में लेकर महादेव शिव को दे दिया ।। १३ ।। ।। भुजंग छंद ।। इन्द्र को ऐरावत और सूर्य को अश्व दे दिया गया, जिसे देखकर दानव क्रोधित होकर युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। दानवों की अपार सेना को चढ़कर आता देखकर विष्णु ने अपने मन में विचार किया ।। १४ ।।

अथ नर नाराइण अवतार कथनं ॥

॥ भुजंग छंद ॥ नरं अउर नाराइणं रूपधारी । भयो सामुहे शस्त्र अस्त्र सँभारी । भटं ऐंठ फेंटे भुजं ठोक भूपं । बजे सूल सेलं भए आप रूपं ॥ १५ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ पर्यो आप मो लोहि क्रोहं अपारं । धर्यो ऐस कै बिशन त्रितीआवतारं । नरं एक नाराइणं द्वै सरूपं । दिपै जोति सउबरजु धारे अनूपं ॥ १६ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ उठे टूप टोपं गुरजं प्रहारे । जुटे जंग को जंग जोधा जुझारे । उडी धूरि पूरं छुही ऐन गैनं । डिगे देवता दैत कंप्यो त्रिनैनं ॥ १७ ॥ ॥ भुजंग ॥ गिरे बीर (मू०ग्रं०१६१) एकं अनेकं प्रकारं । सुभे जंग मो जंग जोधा जुझारं । परी लुच्छ मुच्छं सुभे अंग भंगं । मनो पान कै भंग पौढे मलंगं ॥ १८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ बिसामउन आई अनी दैतराजं । भजे सरब देवं तजे सरब साजं । गिरे संज पुंजं सिरं बाहु बीरं । सुभे बान जिउं

नर-नारायण-अवतार-कथन प्रारंभ

॥ भुजंग छंद ॥ विष्णु नर और नारायण के रूप में अस्त्र-शस्त्र सँभालकर उस दैत्य-सेना के सामने आ डटे । शूरवीरों ने वस्त्र कसकर बाँध लिये और राजा लोग भुजाओं को ठोंकने लगे । त्रिशूल और भाले उस युद्ध में टकराने लगे ॥ १५ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ परस्पर क्रोध एवं लोहा बरसने लगा और ऐसे क्षण में विष्णु ने तीसरा अवतार धारण किया । नर और नारायण दोनों एक ही स्वरूप वाले हैं और एक-दूसरे से सौ गुना अधिक देदीप्यमान हो रहे हैं ॥ १६ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ लौह-टोप पहने हुए वीर गदाओं के प्रहार कर रहे हैं और महाबली योद्धा युद्ध में लीन हो गये हैं । धूल इतनी अधिक उड़कर आकाश में छा गई कि देवता और दैत्य उसी में भटककर गिरने लगे तथा शिव भी भयभीत हो उठे ॥ १७ ॥ ॥ भुजंग ॥ अनेकों प्रकार से वीर धराशायी होने लगे और बड़े-बड़े जुझारू वीर युद्ध में शोभायमान होने लगे । खण्ड-खण्ड होकर वीर गिरने लगे और ऐसा लग रहा है, मानो पहलवान भांग पीकर मस्त पड़े हों ॥ १८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ एक अन्य दिशा से दैत्यों की और सेना आ गई, जिसे सब साज-सामान छोड़कर देवता लोग भाग खड़े हुए । अंगों के झुंड गिरने लगे और बाण इस प्रकार शोभायमान होने लगे जैसे चैत्र के महीने मे करील के पेड़ में फूल शोभायमान हो रहे हों ॥ १९

अेत पुहपं करीरं ॥१९॥ ॥ भुजंग छंद ॥ सुरे जंग हार्यो कियो बिशन मंत्रं । भयो अंतध्यानं कर्यो जान तंत्रं । महाँ मोहनी रूप धार्यो अनूपं । छके देखि दोऊ दित्याविति भूपं ॥ २० ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे नर वितीय अते नाराइण चतुरथ अवतार संपूरनं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ महा मोहनी अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ महा मोहनी रूप धार्यो अपारं । रहे मोहिकै दिति आदिति कुमारं । छके प्रेम जोगं रहे रीझ सरबं । तजे शस्त्र अस्त्रं दियो छोर गरबं ॥ १ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ फँदे प्रेमफाँधं भयो कोप हीणं । लगे नैन बैनं धयो पान पीणं । गिरे झूमि भूमं छुटे जान प्राणं । सभै चेत हीणं लगे जान बाणं ॥२॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ लखे

॥ भुजंग छंद ॥ देवता युद्ध में हार गए और तब विष्णु विचार-विमर्श करके अपनी तंत्र-विद्या की सहायता से अन्तर्ध्यान हो गए। तब विष्णु ने महामोहनी-रूप धारण किया, जिसे देखकर दैत्य और देवता दोनों ही अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २० ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथ के नर तृतीय और नारायण चतुर्थ अवतार-कथन की समाप्ति ॥ ३ ॥ ४ ॥

महामोहिनी-अवतार-कथन प्रारंभ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ (विष्णु ने) महा-मोहिनी रूप धारण किया, जिसे देखकर देवता और दैत्य दोनों मोहित हो गए। सभी उसको प्रसन्न कर उसके प्रेमभाजन बनने का संकल्प करने लगे तथा सभी ने अस्त्र-शस्त्र एवं गर्व का त्याग कर दिया ॥ १ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ सभी उसके प्रेम-पाश में बँधकर क्रोध-विहीन हो गए और उसके नेत्रों की चंचलता और बातों की मधुरता का रसपान करने के लिए उसकी ओर उमड़ पड़े। सभी झूम-झूमकर उसके सामने इस प्रकार धरती पर गिरने लगे मानो उन सबके प्राण निकलने ही वाले हों। उस महामोहिनी के सामने सभी इस प्रकार चेतना-विहीन हो गए जैसे युद्धस्थल में बाण लगने पर शूरवीर अचेत हो जाते हैं ॥ २ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद उन सबको चेतना विहीन देखकर देवताओं के अनन्त अस्त्र शस्त्र

चेत हीणं भए सूर सरबं । छुटे शस्त्र अस्त्रं सभै अरब खरबं । भयो प्रेम जोगं लगे नैन ऐसे । मनो फाध फांधे म्रिगीराज जैसे ॥ ३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ जिने रतन बांटे तुमूं ताहि जानो । कथा ब्रिद्ध ते बात थोरी बखानो । सभै पांत पांतं बहिट्ठे सु बीरं । कटं पेच छोरे तजे तेग तीरं ॥४॥ ॥ चौपई ॥ सभ जग को जु धनंतरि दीआ । कलप ब्रिछ लछमी कर लीआ । शिव माहुर रंभा सभ लोकन । सुख करता हरता सभ सोकन ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ ससि किस दे करबे नमित मनि लछमी कर लीन । उर राखी तिह ते चमक प्रगट दिखाई दीन ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ गाइ रखीशन कउ दई कहु लउं करों बिचार । शास्त्र सोध कबियन मुखन लीजहु पूछ सुधार ॥ ७ ॥ ॥ भुजंग ॥ रहे रीझ ऐसे सभै देव दानं । म्रिगीराज जैसे सुने नाद कानं । बटे रतन सरबं गई छूट रारं । धर्यो ऐस स्री बिशन पंचमवतारं ॥ ८ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके ग्रंथे महा मोहनी पंचम अवतार संपूरनं ॥५॥ (मू०ग्रं०१६२)

चल निकले । दैत्य मरने लगे और अनुभव करने लगे, जैसे वे मोहिनी के प्रेम के योग्य मान लिये गए हों । वे सब ऐसे लग रहे थे जैसे सिंह को फंदे में क़ैद कर लिया गया हो ॥ ३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ जितने रत्न बाँटे गए उसे आप जानते ही हैं, इसलिए कथावृद्धि के भय के कारण मैं संक्षेप में वर्णन करता हूँ । सभी वीर अपने कमर के वस्त्रों को ढीला कर और तलवार का परित्याग कर एक पंक्ति में बैठ गए ॥४॥ ॥ चौपाई ॥ संसार के लिए धन्वन्तरि को दे दिया और कल्पवृक्ष तथा लक्ष्मी देवताओं को दे दिया । शंकर को विष और अन्य सब लोगों को (नृत्य आदि देखने के लिए) रम्भा नामक अप्सरा दे दी जो सब सुखों को देनेवाली और शोक का नाश करनेवाली थी ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ चन्द्रमा को किसी को देने के लिए और मणि तथा लक्ष्मी को (स्वयं रखने के लिए) महामोहिनी ने अपने हाथ में लिया । मणि को उसने अपने हृदय में छिपा लिया, परन्तु उसकी चमक स्पष्ट दिखाई देती रही ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ कामधेनु गाय ऋषियों को दे दी और मैं इन सब बातों का कहाँ तक विचार करूँ । आप स्वयं शास्त्रों को विचार कर और कवियों से पूछकर सुधार कर लीजिए ॥ ७ ॥ ॥ भुजंग ॥ देव और दानव सब इस प्रकार झूम रहे थे, मानो मृगों का राजा नाद की आवाज़ सुनकर मस्त हो रहा हो । सभी रत्न बँट गए और झगड़ा समाप्त हो गया । इस प्रकार श्री विष्णु का पाँचवाँ अवतार हुआ ॥ ८ ॥

इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथ के महामोहिनी पञ्चम अवतार की समाप्ति ५

अथ बैराह अवतार कथनं ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ दयो बांट मदियं अमदिय भगवानं । गए ठाम ठामं सभै देव दानं । पुनर द्रोह बढ्यो सु आपं मझारं । भजे देवता दइत जित्ते जुझारं ॥ १ ॥ ॥ भुजंग ॥ हिरिन्यो हिरंनाछसं दोइ बीरं । सभै लोक कै जीत लीने गहीरं । जलं बा थलेयं कियो राज सरबं । भुजा देख भारी बढ्यो ताहि गरबं ॥ २ ॥ ॥ भुजंग ॥ चहै जुद्ध मो सो करे आन कोऊ । बली होइ वा सो भिरे आन सोऊ । चढ्यो मेर स्रिंगं परो गुरज सगं । हरे बेद भूमं किए सरब भंगं ॥ ३ ॥ धसी भूम बेधं रही ह्वै पतारं । धर्यो बिशन तउ दाड़ गाड़ावतारं । धस्यो नीर मद्धं कियो ऊच नादं । रही धूरि पूरं धुनं निरबिखादं ॥ ४ ॥ ॥ भुजंग ॥ बजे डाक डउरू दोऊ बीर जागे । सुणे नादि बंके महाँ भीर भागे । झिमी तेग तेजं सरोसं प्रहारं । खिवी दामनी जाण भादों मझारं ॥ ५ ॥

वाराह-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ इस प्रकार भगवान ने मद्य एवं अमृत बाँट दिया तथा सभी देव-दानव अपने-अपने स्थानों को चले गए। पुनः इन दोनों में परस्पर शत्रुता बढ़ी और युद्ध हुआ, जिसमें शूरवीर दैत्यों के समक्ष देवता भाग खड़े हुए ॥१॥ ॥ भुजंग ॥ हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दोनों दैत्य वीरों ने सभी लोकों के खजानों को जीत लिया। जल, स्थल सर्वत्र स्थानों पर उन्होंने राज किया और अपने भारी भुजबल को देखकर उनका अभिमान बहुत बढ़ गया ॥ २ ॥ ॥ भुजंग ॥ ये चाहने लगे कि कोई बलवान हमसे आकर युद्ध करे, परन्तु इनसे वही भिड़ता जो महाबलशाली होता। उसने सुमेरु पर्वत के शिखर पर चढ़ गदा-प्रहार किया और वेद और भूमि का हरण कर सभी प्राकृतिक नियमों को तहस-नहस कर दिया ॥ ३ ॥ धरती धँसकर पाताललोक में चली गई। तब विष्णु ने भयंकर एवं कठोर दाँतों वाले वाराह-रूप में अवतार लिया। इसने जल में धँसकर घनघोर ध्वनि की, जो सारे विश्व में समरूप होकर व्याप्त हो गई ॥ ४ ॥ ॥ भुजंग ॥ इस भयंकर ध्वनि और नगाड़ों की आवाज को सुनकर दोनों वीर जाग उठे। इनकी गर्जना को सुनकर कायर लोग भाग खड़े हुए। युद्ध हुआ और कृपाणों की झमझम ध्वनि और सरोष प्रहारों की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी कृपाणों का चमकना

॥ भुजंग ॥ मुखं मुच्छ बंकी बकै सूरबीरं । तड़ंकार तेगं सड़ंकार तीरं । धमक्कार सागं खड़क्कार खगं । टुटे टूक टोपं उठे नाल अग्गं ॥ ६ ॥ ॥ भुजंग ॥ उठे नद्द नादं ढमक्कार ढोलं । ढलंकार ढालं मुखं मार बोलं । खहे खग्ग खूनी खुले बीर खेतं । नचे कंधि हीणं कमद्धं न्रिचेतं ॥७॥ ॥भुजंग॥ भरे जोगणी पात्र चउसठ चारी । नची खोल सीसं बकी बिकरारी । हसै भूत प्रेतं महा बिक्रालं । बजे डाक डउरू करूरं करालं ॥ ८ ॥ ॥ भुजंग ॥ प्रहारंत मुश्टं करै पाव घातं । मनो सिंघ सिंघं डहे गज मातं । छुटी ईस ताड़ी डग्यो ब्रहम धिआनं । भज्यो चंद्रमा कांप भानं मध्यानं ॥९॥ ॥भुजंग॥ जले बा थलेयं थलं तथ नीरं । किधो संधियं बाण रघु इंद्र बीरं । करै दैत आघात मुश्टं प्रहारं । मनो चोट बाहै घरियारी घरियारं ॥ १० ॥ बजे डंक बंके सु क्रूरं करारे । मनो गज

ऐसा लग रहा था, मानो भादों मास में बिजली चमक रही हो ॥ ५ ॥ ॥ भुजंग ॥ बाँकी मूँछों वाले शूरवीर चिल्ला रहे हैं तथा तलवारों की तड़तड़ाहट और तीरों की सड़सड़ाहट सुनाई पड़ रही है । बछियों की धमक और खड्गों की खड़खड़ाहट से शिरस्त्राण टूटकर गिर रहे हैं और उनमें से चिनगारियाँ निकल रही हैं ॥ ६ ॥ ॥ भुजंग ॥ नगाड़ों-ढोलों की गड़गड़ाहट और ढालों की ढमाढम के साथ मुँह से मारो-मारो की आवाज सुनाई पड़ रही है । युद्धस्थल में वीरों के खूनी खड्ग निकले हुए हैं और अचेतावस्था में कबन्ध नृत्य कर रहे हैं ॥७॥ ॥ भुजंग ॥ चौंसठ योगिनियों ने रक्त से अपने खप्परों को भर लिया है और जटाएँ खोलकर बिकराल रूप से किलकारियाँ मार रही हैं । महा विकराल भूत-प्रेत अट्टहास कर रहे हैं और कराल डाकिनियों की डमाडम ध्वनि सुनाई पड़ रही है ॥ ८ ॥ ॥ भुजंग ॥ वीर एक-दूसरे पर मुष्टिका प्रहार एवं पदाघात इस प्रकार कर रहे हैं, मानो सिंह एक-दूसरे पर गरज कर टूट पड़े हों । युद्ध की भीषण ध्वनि सुनकर शिव एवं ब्रह्मा का ध्यान डगमगा उठा । चन्द्रमा भी काँप उठा और दोपहर का सूर्य भी भयभीत होकर भाग उठा ॥ ९ ॥ ॥ भुजंग ॥ ऊपर-नीचे सब ओर जल ही जल था और इसी में विष्णु ने बाणों से निशाना साधा । दैत्यगण भी इस प्रकार भीषण मुष्टिका प्रहार कर रहे थे, मानो एक घड़ियाल दूसरे घड़ियाल पर चोट कर रहा हो १० नगाड़े बज उठे और महाबली क्रूर वीर इस प्रकार आपस मे भिड़ उठे मानो लम्बे दाँतों वाले हाथी आपस

जुट्टे वंतारे वंतारे। ढमंकार ढोलं रणंके नफीरं। सड़ंकार सांगं तड़ंक्कार तीरं॥ ११॥ ॥ भुजंग॥ दिनं अष्ट जुद्धं भयो अष्ट रैणं। डगी भूम सरबं उठ्यो कांप गैणं। रणं रंग रत्ते सभै रंग भूमं। हण्यो बिशन सत्रं गिर्यो अंत भूमं॥ १२॥ ॥ भुजंग॥ धरे दाड़ अग्रं चतुर (मू०ग्रं०१६३) बेद तबं। हठी दुष्ट जित्ते भजे दंत सबं। दई ब्रहम आज्ञा धनुरबेद कीयं। सभै संतनंतान को सुख दीयं॥ १३॥ ॥ भुजंग॥ धर्यो छष्टमं बिशन अंसावतारं। सभै दुष्ट जिते कियो बेद उधारं। थप्यो धरमराजं जिते देव सरबं। उतार्यो भली भांत सों ताहि गरबं॥ १४॥

इति स्री बचित्र नाटके छेवां अवतार बैराह॥ ६॥

॥ अथ नरसिंघ अवतार कथनं॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ॥ ॥ पाधरी छंद॥ इह भांत कियो दिव राज राज। भंडार भरे सुभ सरब साज। जब

मे भिड़ रहे हों। ढोलों और तूतियों की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी और बर्छियों की सनसनाहट तथा बाणों की तड़तड़ाहट सुनाई पड़ रही थी॥ ११॥ ॥ भुजंग॥ आठ दिन और आठ रात युद्ध हुआ, जिसमें धरती डगमगा उठी और आकाश काँप उठा। युद्धभूमि में सभी रणमत्त दिखाई दे रहे थे और युद्धस्थल में ही विष्णु ने शत्रु को मार गिराया॥ १२॥ ॥ भुजंग॥ तभी दाँत के अग्र भाग पर चारों वेदों को टिकाया और हठी शत्रु दैत्यों को मार भगा दिया। ब्रह्मा को (विष्णु ने) आज्ञा दी और उन्होंने धनुर्वेद का सृजन किया तथा सभी सन्तों को सुख दिया॥ १३॥ ॥ भुजंग॥ इस प्रकार यह विष्णु का छठवाँ अंशावतार हुआ, जिसने शत्रुओं का नाश किया और वेदों का उद्धार किया। धर्म की विजय हुई और देवतागण जीत गए तथा उन्होंने भली-भाँति सबके गर्व का निवारण किया॥ १४॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के छठवें अवतार वाराह की समाप्ति॥ ६॥

नरसिंह-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय॥ ॥ पाधरी छंद॥ इस प्रकार देवराज ने राज किया और सर्व प्रकार से अपने भण्डारों को भरा। जब देवताओं का गर्व अधिक बढ़

देवतान बढियो गरूर । बलवंत दैत उट्ठे करूर ॥ १ ॥
॥ पाधरी छंद ॥ लिन्नो छिनाइ दिव राज राज । बाजिन्न नेक उठे सु बाज । इह भाँति जगत दोही फिराइ । जल वा थलेअं हिरनाछराइ ॥ २ ॥ ॥ पाधरी छंद ॥ इक द्योस गयो निज नारि तीर । सजि सुद्ध साज निज अंग बीर । किह भाँत सु त्रिय मो भ्यो निरुक्त । तब भयो दुष्ट को बीर्य मुक्त ॥ ३ ॥
॥ पाधरी छंद ॥ प्रह्लाद भगत लीनो वतार । सभ करनि काज संतन उधार । चटसार पड़न सउप्यो न्रिपाल । पटियहि कहियो लिखदै गुपाल ॥ ४ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ इकि द्योस गयो चटसार न्रिपं । चित चौक रह्यो सुभ देख सुतं । जु पड़्यो दिज ते सुनि ताहि रड़ो । निरभै सिस नामु गुपाल पड़ो ॥ ५ ॥ ॥ तोटक ॥ सुनि नामु गुपाल रिस्यं असुरं । बिनु मोहि सु कउणु भजो दुसरं । जिय माहि धरो सिस याहि हनो । चढ़ किउँ भगवान को नाम भनो ॥६॥ ॥ तोटक ॥ जल

गया तो उनका गर्व चूर करने के लिए क्रूर बलशाली दैत्य पुनः उठ खड़े हुए ॥ १ ॥ ॥ पाधरी छंद ॥ देवराज का राज्य छीन लिया गया और सब ओर अनेक वाद्य बजा-बजाकर सारे जगत में यह घोषणा करवा दी गई कि जल-स्थल सब स्थानों पर हिरण्यकशिपु ही सम्राट् है ॥ २ ॥
॥ पाधरी छंद ॥ एक दिन यह महाबली सुसज्जित होकर अपनी स्त्री के पास गया और उसमें इतना लिप्त हो गया कि उससे संभोग करते समय इसका वीर्यपात हो गया ॥ ३ ॥ ॥ पाधरी छंद ॥ उससे प्रह्लाद भक्त ने सब सन्तों के कार्य करने एवं उनका उद्धार करने के लिए अवतार लिया । राजा ने उसे पाठशाला में जब पढ़ने के लिए भेजा तो उसने शिक्षक से आग्रह किया कि उसकी पट्टिका पर वह परमात्मा का नाम लिख दे अर्थात् भक्त प्रह्लाद परमात्मा-चिन्तन में लीन हो गया ॥ ४ ॥
॥ तोटक छंद ॥ एक दिन राजा पाठशाला गया और अपने पुत्र को देखकर चौंक पड़ा । राजा ने जब पूछा तो बालक ने जो पढ़ना सीखा था, वह बताया और निर्भय होकर प्रह्लाद ने परमात्मा के नाम को पढ़ना शुरू कर दिया ॥ ५ ॥ ॥ तोटक ॥ परमात्मा का नाम सुनकर असुर क्रोधित हो उठा और कहने लगा कि मेरे बिना अन्य कौन है जिसका तुम ध्यान कर रहे हो । इस शिष्य को मार डालना है, यह उसने निश्चय कर लिया और कहा कि हे जड़ ! तुम भगवान का नाम क्यों पुकार रहे हो ? ।६। तोटक । जल और स्थल में तो एक ही वीर

अउर थलं इक बीर मनं। इह काहि गुपाल को नामु भणं। तब ही तिह बाँधत थंम भए। सुन स्रवनन दानव बैन धए॥ ७॥ ॥ तोटक॥ गहि मूड़ चले सिस मारन कों। निकस्योव गुपाल उबारन कों। चकचउध रहे जनु देख सभै। निकस्यो हरि फारि किवार जबै॥ ८॥ ॥ तोटक॥ लखि देव दिवार सभै थहरे। अविलोक चराचर हूहि हिरे। गरजे नरसिंघ नरांत करं। द्रिग रत्त किए मुख स्रोण भरं॥ ९॥ ॥ तोटक॥ लख दानव भाज चले सम ही। गरज्यो नरसिंघ रणं जब ही। इक भूपति ठाढि रह्यो रण मैं। गहि हाथ गदा निरभै (मू०ग्रं०१६४) मन मै॥ १०॥ ॥ तोटक॥ लरजे सभ सूर न्रिपं गरजे। सभुहात भए भट केहर के। जु गए सभुहे छित तै पटके। रण ते रणधीर बटा नट के॥ ११॥ ॥ तोटक॥ बबके रणधीर सु बीर घणे। रहिगे मनो किंसक स्रोण सणे। उमगे चहुँ ओरन ते रिप यों। बरसात बहारन अभ्रन ज्यों॥ १२॥ ॥ तोटक॥ बरखे सर सुद्धि सिला

(हिरण्यकशिपु) माना जाता है। तब तुम क्यों भगवान का नाम ले रहे हो? तब प्रह्लाद को स्तम्भ से बांधने की आज्ञा पाकर दैत्यों ने ऐसा ही किया॥ ७॥ ॥ तोटक॥ वे मूढ़ इस शिष्य को मारने के लिए जैसे ही आगे बढ़े, उसी समय शिष्य का उद्धार करने के लिए परमात्मा प्रकट हुए। सभी भगवान को देखकर उस समय चकित हो उठे जब भगवान सभी अवरोधों को नष्ट करते हुए प्रकट हुए॥ ८॥ ॥ तोटक॥ देव-दानव सभी उसको देखकर थरथरा उठे और चराचर सभी हृदय मे भयभीत हो उठे। नरसिंहस्वरूप परमात्मा लाल आँखें किए तथा मुंह में रक्त भरे हुए भयानक रूप से गरज उठे॥ ९॥ ॥ तोटक॥ यह देखकर और नरसिंह की गर्जना सुनकर सभी दानव भाग खड़े हुए। केवल एक सम्राट् (हिरण्यकशिपु) युद्धस्थल में हाथ में गदा पकड़े हुए निर्भय मन से डटा रहा॥ १०॥ ॥ तोटक॥ जब सम्राट् ने घोर गर्जन किया तो सभी शूरवीर कांप उठे और सभी शूरवीर उस सिंह के सामने मुंह बांधकर आने लगे। जो नरसिंह के सामने गए उन सभी रणधीरों को नट के समान पकड़कर नरसिंह ने धरती पर दे मारा॥ ११॥ ॥ तोटक॥ शूरवीर घनघोर रूप से एक-दूसरे को ललकारने लगे और रक्त से सने हुए गिरने लगे। चारों ओर से शत्रु इस प्रकार उमड़ने लगे, जैसे वर्षाऋतु में बादल उमड़ते हैं १२ तोटक दसों दिशाओं

सितयं। उमड़े बर बीर दसो दिसयं। चमकंत क्रिपाण सु बाण जुधं। फहरंत धुजा जनु बीर क्रुधं ॥ १३ ॥ ॥ तोटक ॥ हहरंत हठी बरखंत सरं। जन सावण मेघ बुठ्यो दुसरं। फहरंत धुजा हहरंत हयं। उपज्यो जिअ दानव राइ भयं ॥१४॥ ॥ तोटक ॥ हहनात हयं गरजंत गजं। भट बाँह कटी जनु इंद्रधुजं। तरफंत भटं गरजंत गजं। सुणि कै धुनि सावण मेघ लजं ॥ १५ ॥ ॥ तोटक ॥ बिचल्यो पग द्वैक फिर्यो पुन ज्यों। कर पुंछ लगे अहि क्रुद्धत ज्यों। रण रंग समै मुख यों चमक्यो। लख सूर सरोरह सो दमक्यो ॥ १६ ॥ ॥ तोटक ॥ रण रंग तुरंगन ऐस भयो। शिव ध्यान छुट्यो ब्रहमंड गयो। सर सैल सिला सित ऐस बहे। नभ अउर धरा दोऊ पूर रहे ॥ १७ ॥ ॥ तोटक ॥ गन गंध्रब देख दोऊ हरखे। पुहपावलि देव सभै बरखे। मिलि गे भट आप बिखै

से उमड़कर शूरवीर बाणों और शिलाओं की वर्षा करने लगे। युद्ध में कृपाण, बाण चमकने लगे और वीर क्रोधित होकर अपनी ध्वजाओं को फहराने लगे ॥ १३ ॥ ॥ तोटक ॥ हठी शूरवीर हड़हड़ाकर तीरों की वर्षा इस प्रकार कर रहे हैं, मानो सावन में दूसरी मेघघटा बरस रही हो। ध्वजाएँ फहरा रही हैं और अश्व हिनहिना रहे हैं और इस सारे दृश्य को देखकर दानवराज का हृदय भी भयभीत हो उठा ॥१४॥ ॥ तोटक ॥ घोड़े हिनहिना रहे हैं और हाथी गरज रहे हैं। शूरवीरों की लम्बी कटी हुई भुजाएँ इंद्र की ध्वजा के समान दिखाई दे रही हैं। शूरवीर तड़प रहे हैं और हाथी इस प्रकार गरज रहे हैं कि उनकी गर्जना को सुनकर सावन के बादल भी लजायमान हो रहे हैं ॥ १५ ॥ ॥ तोटक ॥ जैसे ही हिरण्यकशिपु थोड़ा सा घूमा तो वह स्वयं विचलित होकर दो पग पीछे हटा, परन्तु फिर भी वह इस प्रकार क्रोधित हो रहा था जैसे सर्प की पूँछ पर पैर पड़ने से सर्प क्रोधित होता है। उसका मुख युद्धस्थल में इस प्रकार चमक रहा था, जिस प्रकार सूर्य को देखकर कमल खिल उठता है ॥ १६ ॥ ॥ तोटक ॥ घोड़े भी युद्धस्थल में इतने मस्त होकर विचरण एवं ध्वनि करने लगे कि शिव का ध्यान भी भग हो गया और ऐसा लगने लगा, मानो ब्रह्माण्ड हिल गया हो। बाण बर्छियाँ और शिलाएँ उड़कर धरती और आकाश दोनों को भर रही थी ॥ १७ ॥ ॥ तोटक ॥ गण-गन्धर्व दोनों को देखकर प्रसन्न हो उठे और देवताओं ने पुष्प-वर्षा की। ये दोनों शूरवीर इस प्रकार आपस में भिड़ रहे थे जैसे रात में बच्चे एक

दोऊ यों । सिस खेलत रेण हुडू हुड ज्यों ।। १८ ।। ।। बेली बिद्रम छंद ।। रणधीर बीर सु गज्जहीं । लखि देव अदेव सु लज्जहीं । इक सूर घाइल घूंमहीं । जन धूम अधोमुख धूमहीं ।। १६ ।। ।। बेली बिद्रम छंद ।। भट एक अनेक प्रकार ही । जुज्झे अजुज्झ जुझार ही । फहरंत बैरक बाणयं । ठहरंत जोध किकाणयं ।। २० ।। ।। तोमर छंद ।। हिहणात कोट किकान । बरखंत सेल जुआन । छुटकंत साइक सुद्ध । मच्यो अनूपम जुद्ध ।। २१ ।। ।। तोमर छंद ।। भट एक अनिक प्रकार । जुज्झे अनंत स्वार । बाहे क्रिपाण निशंग । मच्यो अपूरब जंग ।। २२ ।। ।। दोधक छंद ।। बाह क्रिपाण सुबाण भट्टगण । अंति गिरे पुनि जूझ महांरण । घाइ लगै इम घाइल झूलें । फागनि अंति बसत सफूलें ।।२३।। ।। दोधक छंद ।। बाहि कटी (मू०ग्रं०१६५) भट एकन ऐसी । सुंड मनो गज राजन जैसी । सोहत एक अनेक प्रकारं । फूल खिरे जनु मद्धि फुलवारं ।।२४।। ।। दोधक ।। स्रोण रँगे अर एक अनेकं । फूल रहे जनु किंसुक नेकं । धावत घाव क्रिपाण प्रहारं । जानक कोपु प्रतच्छ

दूसरे से होड़ लगाकर खेल रहे हों ।। १८ ।। ।। बेली बिद्रम छंद ।। युद्ध में वीर गरज रहे हैं और उन्हें देखकर देव-दानव दोनों लजायमान हो रहे हैं । शूरवीर घायल घूम रहे हैं और ऐसा लग रहा है कि जैसे धुआँ ऊपर की ओर उड़ रहा हो ।।१९।। ।। बेली बिद्रम छंद ।। अनेक प्रकार के वीर आपस में वीरतापूर्वक जूझ रहे हैं । भाले और बाण फहरा रहे हैं और योद्धाओं के घोड़े रुक-रुककर आगे बढ़ रहे हैं ।।२०।। ।। तोमर छंद ।। करोड़ों घोड़े हिनहिना रहे हैं और वीर बाण वर्षा कर रहे हैं । धनुष छूटकर हाथों से गिर रहे हैं और इस प्रकार अनुपम भीषण युद्ध छिड़ा हुआ है ।। २१ ।। ।। तोमर छंद ।। अनेकों प्रकार के शूरवीर और अगणित सवार आपस में जूझ रहे हैं । वे शंका-विहीन होकर कृपाणें चला रहे हैं और इस प्रकार अपूर्व युद्ध चल रहा है ।। २२ ।। ।। दोधक छंद ।। कृपाण और बाण चलाकर शूरवीर अन्ततः उस महायुद्ध में गिर पड़े । घाव लगे हुए घायल इस प्रकार झूलते डोल रहे हैं, मानो फागुन के अन्त में वसन्त फूली हुई हो ।। २३ ।। ।। दोधक छंद ।। कहीं शूरवीरों की कटी हुई बाँहें ऐसी लग रही थीं मानो हाथियों की सूँड़ें पड़ी हों । वीर इस प्रकार से सुन्दर लग रहे थे मानो फुलवाड़ी में फूल खिले हों ।। २४ ।। ।। दोधक ।। खून से शत्रु इस प्रकार रँगे थे मानों अनेकों फूल खिले हुए हों कृपाणों से

बिथारं ॥ २५ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ जूझ गिरे अर एक अनेकं । घाइ लगे बिसंभार बिसेखं । काटि गिरे भट एकहु वारं । साबन जान गई बह तारं ॥ २६ ॥ ॥ तोटक ॥ पूर परे भए चूरि सिपाहो । स्वामि के काज को लाज निबाहो । बाहि क्रिपाणन बाण सु बीरं । अंत भजे भय मान अधीरं ॥ २७ ॥ ॥ चौपई ॥ त्याग चले रण को सभ बीरा । लाज बिसरि गई भए अधीरा । हिरनाछस तब आप रिसाना । बाँधि चल्यो रण को कर गाना ॥ २८ ॥ ॥ चौपई ॥ भर्यो रोस नरसिंघ सरूपं । आवत देख समुहि रण भूपं । निज घावन को रोस न माना । निरख सेवकहि दुखी रसाना ॥ २९ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ कँपाई सटा सिंघ गरज्यो करूरं । उड्यो हेरि बीरान के मुख नूरं । उठ्यो नादि बंके छुही गैण रज्जं । हसे देव सरबं भए दैत लज्जं ॥ ३० ॥ ॥ भुजंग ॥ मच्यो बंब जुद्धं मचे दुइ जुआणं । तड़क्कार तेगं कड़क्के कमाणं । भिर्यो

घाव लगने के बाद शूरवीर ऐसे घूम रहे थे मानो क्रोध स्वयं प्रत्यक्ष होकर घूम रहा हो ॥ २५ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ अनेकों शत्रु जूझकर गिर पड़े और विष्णु रूपी नरसिंह को भी कई घाव लगे । शूरवीर ऐसे कटकर रक्त में बह रहे थे मानो झाग के बुलबुले बहते चले जा रहे हों ॥ २६ ॥ ॥ तोटक ॥ लड़नेवाले सैनिक चूरचूर होकर गिर पड़े, परन्तु फिर भी उन सबने अपने स्वामी के वैभव को लाज नहीं लगने दी । कृपाण और बाणों की वर्षा करते हुए अन्त में शूरवीर भयभीत होकर भाग खड़े हुए ॥ २७ ॥ ॥ चोपाई ॥ सब शूरवीर लज्जा को त्यागकर और अधीर होकर युद्धस्थल को छोड़कर भाग निकले । यह देखकर हिरण्यकशिपु स्वयं क्रोधित होकर युद्ध करने के लिए चल पड़ा ॥ २८ ॥ ॥ चोपाई ॥ सामने सम्राट् को आते देखकर नरसिंह भी क्रोध से भर उठा । उसे अपने घावों की चिन्ता न थी, अपितु वह सेवकों (भक्तों) के दुःख को देख कर अत्यन्त दुःखी था ॥ २९ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ गर्दन को झटक कर सिंह क्रूर रूप से गरज उठा और उसकी गर्जना को सुनकर वीरों के मुख निस्तेज हो गए । उस भीषण नाद के फलस्वरूप (धरती कम्पायमान हो उठी और) धरती की धूल आसमान को छूने लगी । सभी देवता मुस्कुराने लगे और दैत्यों के शिर लज्जा से झुक गए ॥ ३० ॥ ॥ भुजंग ॥ दोनों शूरवीरों का भीषण द्वन्द्वयुद्ध भड़क उठा और कृपाणों की तड़तड़ाहट तथा कमानों की सुनाई पड़ने लगी

क्रोध कै दानवं सुलतानं । हड़ं स्रोन चले मधं मुलतानं ॥३१॥ ॥ भुजंग ॥ कड़क्कार तेगं तड़क्कार तीरं । भए टूक टूकं रणं बीर धीरं । बजे संख तूरं सु ढोलं ढमंके । रड़ं कंक बंके डहे बीर बंके ॥ ३२ ॥ ॥ भुजंग ॥ भजे बाज गाजी सिपाही अनेकं । रहे ठाढ भूपाल आगे न एकं । फिर्यो सिंघ सूरं सु क्रूरं करालं । कँपाई सटा पूछ फेरी बिसालं ॥ ३३ ॥ ॥ दोहरा ॥ गरजत रण नरसिंघ के भज्जे सूर अनेक । एक टिक्यो हिरनाछ तह अवरु न जोधा एक ॥ ३४ ॥ ॥ चौपई ॥ मुष्ट जुद्ध जुट्टे भट दोऊ । तीसर ताहि न पेखिअत कोऊ । भए दुहन के राते नैणा । देखत देव तमासे गैणा ॥ ३५ ॥ ॥ चौपई ॥ अष्ट दिवस अष्टैनि सु जुद्धा । कीनो दुहूँ भटन मिलि क्रुद्धा । बहुरो असुर किछुकु मुरझाना । गिर्यो भूम जन ब्रिछ पुराना ॥ ३६ ॥ ॥ चौपई ॥ सीच बार पुन ताहि जगायो । जगी मूरछना (मू०ग्रं०१६६) पुन जिय आयो । बहुरो भिरे सूर दोई क्रुद्धा । मंड्यो बहुर आप

दैत्यराज क्रोधित होकर भिड़ उठा और युद्धस्थल में रक्त की बाढ़ आ गई ॥३१॥ ॥ भुजंग ॥ कृपाणों की कड़कड़ाहट और तीरों की तड़तड़ाहट से युद्धस्थल में महाबलशाली धैर्यवान वीर खण्ड-खण्ड हो गए । शंख, तुरहियाँ एवं ढोल ढमकने लगे और तीव्र घोड़ों पर सवार बाँके वीर युद्धस्थल में डट गए ॥ ३२ ॥ ॥ भुजंग ॥ घोड़े और हाथियों पर सवार अनेकों सैनिक भाग खड़े हुए और कोई भी राजा नरसिंह के समक्ष खड़ा न रह सका । वह क्रूर एवं विकराल सिंह युद्धस्थल में विचरण करने लगा और अपनी गर्दन और पूँछ को हिलाने लगा ॥३३॥ ॥ दोहा ॥ नरसिंह की गर्जना के साथ ही अनेकों शूरवीर भाग खड़े हुए और युद्धस्थल में हिरण्यकशिपु के अतिरिक्त कोई भी टिक न सका ॥ ३४ ॥ ॥ चौपाई ॥ दोनों शूरवीरों का मुष्टिका-युद्ध प्रारम्भ हुआ और उन दोनों के अतिरिक्त युद्ध-स्थल में तीसरा कोई दिखाई न पड़ता था । दोनों के नेत्र लाल हो उठे थे तथा गगनमंडल से सभी देवगण यह लीला देख रहे थे ॥ ३५ ॥ ॥ चौपाई ॥ आठ दिन और आठ रात इन दोनों शूरवीरों ने क्रोधित होकर भीषण युद्ध किया । इसके पश्चात् दैत्यराज कुछ निस्तेज हो गया और धरती पर इस प्रकार गिर पड़ा मानो कोई पुराना वृक्ष गिर पड़ा हो ३६ चौपाई नरसिंह ने अमृत छिड़ककर पुन उसे अचेतावस्था से जगाया और मूर्च्छा टूटते ही वह पुन सँभला फिर दोनों

नहि जुद्ध ।। ३७ ।। ।। भुजंग छंद ।। हुला चाल कै कै पुनर बीर ढूके । मच्यो जुद्ध ज्यों करन संगं घडूके । नखं घात दोऊ करे दैत घातं । मनो गज्ज जुट्टे बनं मसत मातं ।।३८।। ।। भुजंग ।। पुनर नारसिघं धरा ताहि मार्‌यो । पुरानो पलासी मनो बाइ डार्‌यो । हन्यो देख दुष्टं भई पुहप बरखं । किए देवत्यो आनकै जीत करखं ।। ३९ ।। ।। पाधरी छंद ।। कीनो न्रसिघ दुष्टं सँघार । धरियो सु बिश्न सप्तम वतार । लिनो सु भगत अपनो छिनाइ । सभ सिष्ट धरम करमम चलाइ ।।४०।। ।। पाधरी छंद ।। प्रहलाद कर्‌यो न्रिप छत्र फेर । दीनो सँघार सभ इम अँधेर । सभ दुष्ट अरिष्ट दिसो खपाइ । पुन लई जोत जोतहि मिलाइ ।। ४१ ।। ।। पाधरी छंद ।। सभ दुष्ट मार कीने अभेख । पुनि मिल्यो जाइ भीतर अलेख । कबि जथा मत्त कथ्यो बिचार । इम धर्‌यो बिशन सपतमवतार ।। ४२ ।।

।। नरसिंघ सपतमो अवतार समापतं ।। ७ ।।

वीर क्रोधित होकर भिड़ पड़े और पुनः भयकर युद्ध प्रारम्भ हो गया ।।३७।। ।। भुजंग छंद ।। एक दूसरे को ललकार कर पुनः दोनों वीर आपस में आ भिड़े और एक दूसरे को जीतने के लिए भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया । दोनों एक दूसरे पर नखों से घातक प्रहार कर रहे थे और ऐसे लग रहे थे मानो वन में दो मदमस्त हाथी आपस में भिड़े हों ।।३८।। ।। भुजंग ।। पुनः नरसिंह ने हिरण्यकशिपु को धरती पर इस प्रकार दे मारा जैसे वायु के झोंके से पुराना पलास का वृक्ष धरती पर आ गिरता है । दुष्ट को मरा हुआ देखकर पुष्पवर्षा होने लगी और देवताओं ने आकर अनेक प्रकार से विजय-गान गाये ।। ३९ ।। ।। पाधरी छंद ।। नरसिंह ने दुष्ट का संहार किया और इस प्रकार विष्णु ने सातवाँ अवतार धारण किया । अपने भक्त की रक्षा की और धरती पर धर्म-कर्म का प्रसार किया ।। ४० ।। ।। पाधरी छंद ।। प्रह्लाद के शिर पर छत्र झुलाकर उसे राजा बनाया गया और इस प्रकार अंधकार रूपी दैत्यों का नाश कर दिया गया । नरसिंह ने सभी दुष्टों एवं दुर्जनों को नष्ट करके पुनः अपनी ज्योति उस परम ज्योति में विलीन कर ली ।।४१।। ।। पाधरी छंद ।। सभी दुष्टों को मारकर लज्जित कर दिया तथा वह अदृष्ट परमात्मा पुनः अपने स्वरूप में विलीन हो गया । कवि ने अपनी बुद्धि के अनुसार विचार कर उपर्युक्त कथन कहा है कि इस प्रकार विष्णु का सातवाँ अवतार हुआ ।। ४२ ।।

नरसिंह का सातवाँ अवतार समाप्त ७

अथ बावन अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ भए दिवस केते नरसिंघावतारं । पुनर भूंम सों पाप बाढ्यो अपारं । करे लाग जग्गं पुनर दैत दानं । बलर राज की देह बढ्ढ्यो गुमानं ॥ १ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ न पावै बलं देवता जग बासं । भई इंद्र की राजधानी बिनासं । करी जोग आराधना सरब देवं । प्रसंनं भए काल पुरखं अभेवं ॥२॥ ॥ भुजंग ॥ दियो आइसं काल पुरखं अपारं । धरो बावना बिश्न अश्टमवतारं । लई बिशन आज्ञा चल्यो धाइ ऐसे । लह्यो दारदी भूप भंडार जैसे ॥ ३ ॥ ॥ निराज छंद ॥ सरूप छोट धारिकै । चल्यो तहाँ बिचारिकै । सभा नरेश जानियो । तही सु पाव ठानियो ॥ ४ ॥ ॥नराज छंद॥ सु बेद चार उचारकै । सुण्यो न्रिपं सुधारकै । बुलाइ बिप्प को लयो । मलयागर मूड़का दयो ॥ ५ ॥ ॥ नराज ॥ पखार्य पीत दान दै । प्रदच्छना

वामन-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ नरसिंह अवतार को पर्याप्त समय बीत जाने पर धरती पर पुनः पाप बहुत अधिक बढ़ने लगा। दैत्य-दानव पुनः यज्ञ आदि करने लगे और राजा बली को अपनी महानता पर बहुत अभिमान हो गया ॥ १ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ बली के यज्ञ में देवताओं को कोई भी स्थान न रह गया और इन्द्र की राजधानी भी विनष्ट हो गई। दुःखी होकर सभी देवताओं ने आराधना की, जिससे परम कालपुरुष प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ ॥ भुजंग ॥ अकाल पुरुष ने देवताओं में से विष्णु को कहा कि आप अपना आठवाँ अवतार वामन-रूप में धारण करें। विष्णु ने आज्ञा ली और ऐसे चल पड़े जैसे कोई सेवक राजा की आज्ञा पाकर चल पड़ता है ॥ ३ ॥ ॥ निराज छंद ॥ छोटा सा रूप धारण कर तथा मन में कुछ विचार कर वह चल पड़े तथा राजा बली की सभा में पहुँचकर दृढ़तापूर्वक खड़े हो गए ॥ ४ ॥ ॥ नराज छंद ॥ चारों वेदों का उच्चारण करके इस ब्राह्मण ने सुनाया, जिसे राजा ने ध्यान से सुना। राजा बली ने विप्र को बुलाया और सम्मानपूर्वक चन्दन के आसन पर बैठाया ५। नराज राजा ने ब्राह्मण का चरणामृत लेकर दान पुण्य किया और अनेक बार ब्राह्मण के चारों ओर प्रदक्षिणा की तत्पश्चात्

अनेक के । करोरि दच्छना दई । न हाथ बिप्र नै लई ॥६॥ ॥ नराज छंद ॥ कह्यो न मोर (मू०ग्रं०१६७) काम है । मिथ्या इह तोर साज है । अढाइ पाव भूँम दै । बसेख पूर कीति लै ॥७॥ ॥ चौपई ॥ जब दिज ऐस बखानी बानी । भूपत सहत न जान्यो रानी । पैर अढाइ भूँम दे कही । दिड़ करि बात दिजोतम गही ॥ ८ ॥ दिजबर शुक्र हुतो न्रिप तीरा । जान गयो सभ भेदु वजीरा । ज्यो ज्यो देन प्रिथवी न्रिप कहै । तिमु तिमु नाहि प्रोहतु गहै ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ जब न्रिप देन धरा मन कीना । तब ही उत्र शुक्र इम दीना । लघु दिज याहि न भूप पछानो । बिश्नुवतार इसो कर मानो ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ सुनत बचन दानव सभ हसे । उचरत शुक्र कहा घर बसे । ससिक समान न दिज महि मासा । कस कर है इह जग बिनासा ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ ॥ शुक्रबाच ॥ जिम चिनगारी अगन की गिरत सघन बन माहि । अधिक तनक ते होत है तिम दिजबर नर नाहि ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ हस

राजा ने करोड़ों दक्षिणाएँ प्रस्तुत की परन्तु उस विप्र ने किसी को भी हाथ नहीं लगाया ॥ ६ ॥ ॥ नराज छंद ॥ ब्राह्मण ने कहा कि ये सब मेरे किसी काम का नहीं और तुम्हारा यह आडम्बर सब मिथ्या है । तुम मुझे केवल ढाई क़दम भूमि दे दो और विशेष यश को अर्जित करो ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब विप्र ने ऐसी बात कही तो रानी-समेत राजा इसको समझ नहीं पाया । उस विप्र ने पुनः दृढ़ होकर यही कहा कि मैंने आपसे केवल ढाई क़दम भूमि माँगी है ॥ ८ ॥ गुरुवर शुक्राचार्य उस समय राजा के पास थे और वे तथा सभी मंत्री भूमि माँगने के रहस्य को समझ गए । राजा जितनी बार पृथ्वी देने की बात कहता है उतनी बार पुरोहित शुक्राचार्य नहीं देने के लिए राजा को समझाते हैं ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ परन्तु जब राजा ने भूमि दान करने का दृढ़ संकल्प कर ही लिया, तब शुक्राचार्य ने इस प्रकार उत्तर देते हुए राजा से कहा कि हे राजन् ! इसे तुम छोटा सा ब्राह्मण मत समझो और इसे विष्णु का अवतार जानो ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ यह सुनकर सभी दानव हँस पड़े और कहने लगे कि शुक्राचार्य जी क्या व्यर्थ की बातें सोच रहे हैं । जिस ब्राह्मण के शरीर पर ख़रगोश जितना मांस नहीं है, वह कैसे जगत का विनाश कर सकता है ॥ ११ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ शुक्र उवाच ॥ जैसे सघन वन में अग्नि की चिनगारी गिरकर बढ जाती है (और वन का नाश कर देती है) उसी प्रकार यह छोटा सा ब्राह्मण मनुष्य नही है १२

भूपत इह बात बखानी । सुनहु शुक्र तुम बात न जानी । फुनि इह समो समो छल जैहे । हरि सो फेरि न भिच्छक ऐहै ॥ १३ ॥ ॥ चौपई ॥ मन महि बात इहै ठहराई । मन सो धरी न किसू बताई । भ्रित ते माँग कमंडल एसा । लग्यो दान तिह देन नरेसा ॥ १४ ॥ ॥ चौपई ॥ शुक्र बात मन मो पहिचानी । भेद न लहत भूप अभिमानी । धार मकर के जार सरूपा । पैठ्यो मद्ध कमंडल भूपा ॥ १५ ॥ ॥ चौपई ॥ न्रिपबर पान सुराही लई । दान समै द्विजबर को भई । बान हेत जब हाथ चलायो । निकस नीर कर ताहि न आयो ॥ १६ ॥ ॥ तोमर छंद ॥ चमक्यो तबै द्विजराज । करिऐ न्रिपे सु इलाज । तिनका मिले इह बीच । इक चच्छ हुए है नीच ॥ १७ ॥ ॥ तोमर ॥ तुनका न्रिपत कर लीन । भीतर कमंडल दीन । शुक्र आँख लगिआ जाइ । इक चच्छ भयो द्विजराइ ॥ १८ ॥ ॥ तोमर छंद ॥ नेत्र ते जु गिर्यो नीर । सोई लियो कर द्विज बीर । करि नीर चुवन न दीन ।

॥ चौपाई ॥ राजा बली ने हँसकर यह बात शुक्राचार्य से कही कि हे शुक्राचार्य ! आप समझ नहीं रहे हैं, क्योंकि यह समय फिर मेरे हाथ नहीं आयेगा । क्योंकि फिर मैं परमात्मा जैसा भिक्षुक कभी भी प्राप्त न कर सकूँगा ॥ १३ ॥ ॥ चौपाई ॥ मन में राजा ने संकल्प कर लिया, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से किसी से कुछ नहीं कहा । सेवक से कमण्डल माँगकर राजा ने दान देने का उपक्रम किया ॥१४॥ ॥ चौपाई ॥ शुक्राचार्य ने उसके मन की बात को समझ लिया, परन्तु अज्ञानी राजा इस भेद को न समझ सका । शुक्राचार्य मछली का सूक्ष्म रूप धारण कर राजा के कमण्डल में जा बैठे ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा ने हाथ में कमण्डल लिया और ब्राह्मण को दान देने का समय आ गया । जब राजा ने दान देने के लिए हाथ में जल लेकर चलाना चाहा तो कमण्डल से जल न निकला ॥ १६ ॥ ॥ तोमर छंद ॥ तभी द्विजराज भड़क उठा और राजा से कहने लगा कि इस कमण्डल को ठीक कीजिए । एक तिनके से कमण्डल की नली को खोदा गया और उस खोदने से शुक्राचार्य की एक आँख जाती रही ॥ १७ ॥ ॥ तोमर ॥ राजा ने तिनका अपने हाथ में लिया और भीतर कमण्डल में घुमाया । वह शुक्राचार्य की आँख में जा लगा और द्विजराज शुक्राचार्य की एक आँख फूट गई १८
तोमर छद शुक्राचार्य की आँख से जो पानी गिरा उसे राजा ने

हम स्वामिकारज कीन ॥ १९ ॥ ॥ चौपई ॥ चक्छ नीर कर भीतर परा । वहै संकल्प द्विजह करि धरा । ऐस तबै निज देह बढायो । लोक छेद पर लोक सिधायो ॥ २० ॥ ॥ चौपई ॥ (मू०ग्रं०१६८) निरख लोग अदभुत बिसमए । दानव देख मूरछन भए । पाव पतार छुयो सिर कासा । चकृत भए लखि लोक तमासा ॥ २१ ॥ ॥ चौपई ॥ एकै पाव पतारह छूआ । दूसर पाव गगन लउ हूआ । छिद्र्यो अंड ब्रहमंड अपारा । तिह ते गिरी गंग की धारा ॥ २२ ॥ ॥ चौपई ॥ इह बिधि भूप अचंभव लहा । मन क्रम बचन चकृत ह्वै रहा । सु कछु भ्यो जोऊ शुक्र उचारा । सो अखियन हम आज निहारा ॥ २३ ॥ ॥ चौपई ॥ अरधि देहि अपनी मिन दीना । इह बिधि कै भूपत जसु लीना । जब लउ गंग जमन को नीरा । तब लउ चली कथा जग धीरा ॥ २४ ॥ ॥ चौपई ॥ बिशन प्रसंनि प्रतच्छ ह्वै कहा । चोबदार द्वारे

अपने हाथ में लिया । शुक्राचार्य ने जल को चूने नहीं दिया और इस प्रकार अपने स्वामी के विनाश-कार्य को बचाने की कोशिश की ॥ १९ ॥ ॥ चौपाई ॥ आँख का पानी हाथ पर पड़ते ही उसी को संकल्प रूप में राजा ने ब्राह्मण के हाथ पर दानस्वरूप दे दिया । इसके बाद बामन ने अपनी देह का विस्तार किया और उसकी देह लोक-परलोक का भेदन करने लगी ॥ २० ॥ ॥ चौपाई ॥ यह देखकर सभी लोग अद्भुत रूप से आश्चर्य में पड़ गए और विष्णु के वृहद् स्वरूप को देखकर दानव अचेत हो गए । विष्णु के पाँव पाताल तथा शिर आकाश को छूने लगे । यह दृश्य देखकर सभी लोग आश्चर्य में पड़ गए ॥ २१ ॥ ॥ चौपाई ॥ एक ही क़दम में उन्होंने पाताल तथा दूसरे क़दम से आकाश को नाप लिया । सारे ब्रह्माण्ड का इस प्रकार विष्णु ने भेदन कर दिया और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से गंगा की धार नीचे की ओर गिरने लगी ॥ २२ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा बली भी असमंजस में पड़ गया और मन-वचन एवं कर्म से किंकर्तव्यविमूढ़ होकर सोचने लगा कि जो कुछ शुक्राचार्य ने कहा था वही हुआ और इस सबको मैंने आज अपनी आँखों से स्वयं देख लिया ॥ २३ ॥ ॥ चौपाई ॥ आधे क़दम में अपने शरीर को नपवाकर इस प्रकार राजा बली ने यश अर्जित किया । जब तक गंगा-यमुना में जल है, तब तक इस धैर्यवान की कथा संसार में चलती रहेगी ॥ २४ ॥

चौपाई विष्णु ने तब प्रसन्न हो प्रत्यक्ष होकर कहा हे राजा मैं स्वय

ह्वै रहा । कह्यो चले तब लगै कहानी । जब लग गंग जमुन को पानी ॥ २५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जह साधन संकट परैं तह तह भए सहाइ । द्वारपाल ह्वै दर बसे भगत हेत हरि राइ ॥२६॥ ॥ चौपई ॥ अशटम अवतार बिशन अस धरा । साधन सभै क्रितारथ करा । अब नवमों बरनो अवतारा । सुनहु संत चित लाइ सुधारा ॥ २७ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे बावन अवतार अशटमो कथनं
बल छलन समापतम सत ॥ ८ ॥

अथ परसराम अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ पुन केतक दिन भए बितीता । छत्रनि सकल धरा कह जीता । अधिक जगत महि ऊच जनायो । बासव बलि कहूँ लैन न पायो ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ बिआकल सकल देवता भए । मिलि करि सभ बासव पैं गए । छत्री रूप धरे सभ असुरन । आवत कहा

तुम्हारा सेवक बनकर तुम्हारे द्वार पर पहरा दूंगा और जब तक गंगा-यमुना में पानी रहेगा तब तक तुम्हारे दान की कहानी चलती रहेगी ॥ २५ ॥ ॥ दोहा ॥ जहाँ-जहाँ साधु पुरुषों पर संकट पड़ता है, वहाँ-वहाँ अकाल पुरुष सहायता करते हैं । परमात्मा भक्त के वश में होकर द्वारपाल के रूप में उस भक्त के द्वार पर बने रहे ॥ २६ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार विष्णु ने आठवाँ अवतार धारण कर सभी साधुओं को कृतार्थ किया । अब मैं नवें अवतार का वर्णन करता हूँ । इसे कृपया सभी महात्मा ध्यान-पूर्वक सुधारकर सुनें और समझें ॥ २७ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के आठवें वामन-अवतार-कथन
राजा बली-छलन की समाप्ति ॥ ८ ॥

परशुराम-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ पुनः कितना ही समय बीत गया और क्षत्रियों ने सभी पृथ्वी को जीत लिया । वे अपने-आप को जगत में सर्वोच्च मानने लगे और उनका बल अपरिमित हो उठा ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ इससे सभी देवता व्याकुल हो उठे और सभी मिलकर सब इन्द्र के पास गए और बोले कि सभी असुरों ने क्षत्रियों का रूप धारण

भूप तुमरे मन ॥ २ ॥ सभ देवन मिलि कर्‌यो बिचारा । छीरसमुद्र कहु चले सुधारा । कालपुरख की करी बडाई । इम आज्ञा तह ते तिन आई ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ दिज जमदगन जगत मो सोहत । नित उठि करत अघन ओघन हत । तह तुम धरो बिशन अवतारा । हनहु शक्र के शत्रु सुधारा ॥ ४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ जयो जामदगनं दिजं आवतारी । भयो रेणका ते कवाची (मू०ग्रं०१९९) कुठारी । धर्‌यो छत्रियापात को काल रूपं । हन्यो जाइ जउने सहंस्रास्त्र भूपं ॥ ५ ॥ ॥ भुजंग ॥ कहा गंम एती कथा सरब भाखउ । कथा बिद्ध ते थोरिऐ बात राखउ । भरे गरब छत्री नरेशं अपारं । तिनै नास को पाण धार्‌यो कुठारं ॥ ६ ॥ ॥ भुजंग ॥ हुती नंदनी सिध जाकी सुपुत्री । तिसै मांग हार्‌यो सहंसास्त्र छत्री । लियो छीन गायं हत्यो राम तातं । तिसी बैर कीने सभै भूप पातं ॥ ७ ॥ ॥ भुजंग ॥ गई बात

कर लिया है । हे राजन् ! अब बताइए आपका क्या विचार है ? ॥ २ ॥ सब देवताओं ने मिलकर विचार-विमर्श किया और क्षीरसागर की ओर चल पड़े । वहाँ उन्होंने कालपुरुष (परमात्मा) की स्तुति की और वहाँ से उन्हें इस प्रकार का आदेश प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ कालपुरुष ने कहा कि पृथ्वी पर यमदग्नि नामक ऋषि निवास करते हैं जो कि नित्य उठकर अपने पुण्य कर्मों से पापों का नाश करते हैं । हे विष्णु ! तुम उसके यहाँ अवतरित होवो और इन्द्र के शत्रुओं का नाश करो ॥ ४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ यमदग्नि ऋषि अवतारीपुरुष की जय हो, जिसकी पत्नी रेणुका से कवच और कुठार वाले (परशुराम) का जन्म हुआ । उसने क्षत्रियों के विनाश के लिए काल-रूप धारण किया और सहस्रबाहु-जैसे राजन का भी नाश किया ॥ ५ ॥ ॥ भुजंग ॥ मेरी इतनी बुद्धि कहाँ कि मैं सारी कथा का वर्णन करूँ, इसलिए कथावृद्धि की भय से संक्षेप में ही मैं अपनी बात कहता हूँ । क्षत्रिय नरेश गर्व से मदमस्त हो चुके थे और उनका नाश करने के लिए परशुराम ने अपने हाथ में फरसा (कुठार) धारण किया ॥ ६ ॥ ॥ भुजंग ॥ नन्दिनी (कामधेनु गाय) यमदग्नि की पुत्री के समान थी और सहस्रबाहु क्षत्रिय राजा उस गाय को ऋषि से माँगकर थक चुके थे । अन्त में उसने गाय छीनकर परशुराम के पिता यमदग्नि का वध कर दिया और इसी बैर का बदला चुकाने के लिए परशुराम ने सभी क्षत्रिय राजाओं का नाश कर दिया ७

ताते लियो सोध ताको। हन्यो तात मेरो कहो नामु वाको। सहंसास्त्र भूपं सुण्यो स्त्रउण नामं। गहे शस्त्र अस्त्र चल्यो तउन ठामं॥ ८॥ ॥ भुजंग॥ कहो राज मेरो हन्यो तात कैसे। अबै जुद्ध जीतो हनो तोहि तैसे। कहा मूड़ बैठो सु अस्त्रं सँभारो। चलो भाज ना तो सभै शस्त्र डारो॥ ९॥ ॥ भुजंग॥ सुणे बोल बंके भर्‌यो भूप कोपं। उठ्‌यो राज सरदूल लै पाण धोपं। हण्यो खेत खूनी दिजं खेत्र हायो। चहे आज ही जुद्ध मो सो मचायो॥ १०॥ ॥ भुजंग॥ धए सूर सरबं सुने बैन राजं। चड़्यो क्रुद्ध जुद्धं सजे सरब साजं। गदा सैहथी सूल सेलं सँभारी। चले जुद्ध काजं बडे छत्रधारी॥ ११॥ ॥ नराज छंद॥ क्रिपाण पाण धारिकै। चले बली पुकारिकै। सु मारि मारि भाखही। सरोध स्रोण चाखही॥ १२॥ ॥ नराज॥ सँजोह सैहथीन लै। चड़े सु बीर रोस कै। चटाक चाबकं उठे। सहंस्र साइकं

॥ भुजंग॥ बचपन से ही परशुराम ने उसको शुद्ध रूप से मन में बनाये रखा कि मेरे पिता का वध किसी ने किया है और मुझे उसका नाम जानना है। जैसे ही परशुराम ने यह सुना कि वह व्यक्ति सहस्रबाहु राजा है, वैसे ही वह अस्त्र-शस्त्र लेकर उसके स्थान की ओर चल पड़े॥ ८॥ ॥ भुजंग॥ राजा से परशुराम ने कहा कि राजा! तुम मुझे बताओ कि तुमने मेरे पिता का वध कैसे किया। मैं अभी तुमसे युद्ध करके तुम्हारा वध करूँगा। परशुराम ने यह भी कहा कि ऐ मूर्ख! अपने अस्त्रों को सम्हाल लो, नहीं तो शस्त्र डालकर यहाँ से भाग निकलो॥ ९॥ ॥ भुजंग॥ इन व्यंग्य-भरी बातों को सुनकर राजा क्रोध से भर उठा और अपने हाथ में शस्त्र लेकर सिंह के समान उठ खड़ा हुआ। वह दृढ़शाली युद्धक्षेत्र में यह जानकर आ पहुँचा कि ब्राह्मण परशुराम आज ही मुझसे युद्ध करने के लिए परम उत्सुक हैं॥ १०॥ ॥ भुजंग॥ राजा की बात सुनकर सभी शूरवीर अत्यन्त क्रोधित एवं सुसज्जित होकर युद्ध के लिए चढ़ उठे। त्रिशूल, भाला, गदा आदि शस्त्र को सँभालते हुए बड़े-बड़े छत्रधारी राजा युद्ध करने के लिए चल पड़े॥ ११॥ ॥ नराज छंद॥ हाथों में कृपाण पकड़कर महाबली चिल्लाते हुए चल पड़े। मारो-मारो की आवाजें कर रहे हैं और उनके तीर रक्तपान कर रहे हैं॥ १२॥ ॥ नराज॥ कवच एवं खड्गों को लेकर क्रोधित शूरवीर चढ़ पड़े। घोड़ों पर चाबुक चटाक की ध्वनि कर उठे और हजारों तीर छूट पड़े १३

बुठे ।। १३ ।। ।। रसावल छंद ।। भए एक ठउरे । सभं सूर दउरे । लयो घेर रामं । घटा सूर स्यामं ।। १४ ।। ।। रसावल छंद ।। कमाणं कड़ंके । भए नाद बंके । घटा जाणि स्याहं । चढ़्यो तिउ सिपाहं ।। १५ ।। ।। रसावल छंद ।। भए नाद बंके । सु सेलं धमंके । गजा जूह गज्जे । सुभं संज सज्जे ।। १६ ।। ।। रसावल छंद ।। चहूँ ओर ढूके । गजं जूह झूके । सरं ब्यूह छूटे । रिपं सीस फूटे ।। १७ ।। ।। रसावल ।। उठे नाद भारी । रिसे छत्रधारी । घिर्‌यो राम सैनं । शिवं जेम मैनं ।। १८ ।। ।। रसावल ।। रणं रंग रत्ते । त्रसे तेज तत्ते । उठी सैण धूरं । रह्यो गैण पूरं ।। १९ ।। ।। रसावल ।। घणे ढोल बज्जे । महाँ बीर गज्जे । मनो सिंघ छुट्टे । (मू०ग्रं०१७०) इमं बीर जुट्टे ।।२०।। ।। रसावल ।। करैं मारि मारं । बकैं बिकरारं । गिरे अंग भंगं । दवं जान बंगं ।। २१ ।। ।। रसावल ।। गए छूट अस्त्रं ।

।। रसावल छंद ।। सभी शूरवीर दौड़कर एक स्थान पर एकत्र हो गए और उन्होंने परशुराम को ऐसे घेर लिया, जैसे सूर्य को बादल घेर लेते हैं ।। १४ ।। रसावल छंद ।। धनुषों की कड़कड़ाहट से विचित्र प्रकार की ध्वनि पैदा होने लगी और सेना इस प्रकार से चढ़ उठी मानो काली घटा घिर आई हो ।।१५।। ।। रसावल छंद ।। बर्छियों की धमाधम की विचित्र ध्वनि होने लगी । हाथियों के झुड गरजने लगे तथा सभी लोग कवचों से सुसज्जित हो शोभायमान होने लगे ।। १६ ।। ।। रसावल छंद ।। चारों ओर से इकट्ठे होकर हाथियों के झुंड भिड़ उठे । तीरों के समूह छूटने लगे और राजाओं के सिर फूटने लगे ।। १७ ।। ।। रसावल ।। भयंकर ध्वनि होने लगी और सभी राजा क्रोधित हो उठे । परशुराम सेना से उसी प्रकार घिर गये, जैसे कामदेव की सेना ने शिव को घेर लिया हो ।। १८ ।। ।। रसावल ।। सब युद्ध के रंग में मस्त होकर एक दूसरे के तेज से त्रसित होने लगे । सेना के कारण इतनी धूल उठी कि सारा आसमान धूल से भर उठा ।। १९ ।। ।। रसावल ।। ढोल घनघोर रूप से बजने लगे और महाबलशाली वीर गरजने लगे । शूरवीर इस प्रकार आपस में भिड़ रहे थे मानो सिंह स्वतंत्र घूम रहे हों तथा आपस में भिड़ रहे हों ।। २० ।। ।। रसावल ।। मार-मार की चिल्लाहट के साथ शूरवीर विकराल रूप से बोलियाँ बोल रहे हैं । वीरों के अंग कट-कटकर गिर रहे हैं और ऐसा लग रहा है मानो चारों ओर आग लगी हुई हो ।। २१ ।। ।। रसावल ।। हाथों से अस्त्र छूटने लगे और निहत्थे होकर वीर भागने लगे घोड़े हिनहिना रहे

भजे ह्वै न्रिअस्त्रं । खिलें सार बाजी । तुरे तुंद ताजी ॥२२॥ ॥ रसावल छंद ॥ भुजा ठोक बीरं । करे घाइ तीरं । नेजे गड्ड गाढे । मचे बैर बाढे ॥ २३ ॥ ॥ रसावल ॥ घणं घाइ पेलें । मनो फाग खेलें । करें बाण बरखा । भए जीत करखा ॥ २४ ॥ ॥ रसावल ॥ गिरे अंत घूमं । मनो ब्रिच्छ झूमं । टुटे शस्त्र अस्त्रं । भजे हुइ न्रिअस्त्रं ॥ २५ ॥ ॥ रसावल ॥ जिते शत्रु आए । तिते राम घाए । चले भाज सरबं । भयो दूर गरबं ॥ २६ ॥ ॥ भुजंग ॥ महाँ शस्त्र धारे चल्यो आप भूपं । लए सरब सैना किए आप रूपं । अनंत अस्त्र छोरे भयो जुद्ध मानं । प्रभा काल मानो सभै रसम भानं ॥ २७ ॥ ॥ भुजंग ॥ भुजा ठोक भूपं कियो जुद्ध ऐसे । मनो बीर ब्रितरासुरे इंद्र जैसे । सभै काट रामं कियो बाँहं हीनं । हती सरब सैना भयो गरब छीनं ॥ २८ ॥ ॥ भुजंग ॥ गह्यो राम पाणं कुठारं करालं । कटी सुंड सी राज बाहं बिसालं । भए अंग भंगं करं काल हीणं । गयो

है और तेज़ी से इधर-उधर दौड़ रहे हैं ॥ २२ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ वीर भुजाओं को ठोंककर बाण-वर्षा करके शत्रु को घायल कर रहे हैं । अपनी-अपनी बर्छियों को गड़ाकर और मन में वैर-भाव को और बढ़ाकर भीषण युद्ध कर रहे हैं ॥२३॥ ॥ रसावल ॥ अनेक घाव लग रहे हैं और घायल वीर ऐसे लग रहे हैं मानो होली खेल रहे हों । सभी बाणों की वर्षा करते हुए जीत के लिए लालायित हैं ॥ २४ ॥ ॥ रसावल ॥ वीर इस प्रकार से घूम-घूमकर गिर रहे हैं मानो वृक्ष झूम रहे हों । अस्त्र-शस्त्र टूट जाने के बाद शस्त्र-विहीन होकर शूरवीर भाग खड़े हुए ॥२५॥ ॥ रसावल ॥ जितने भी शत्रु सामने आए, परशुराम ने उन सबको मार गिराया । अंत में सभी भाग निकले और उनका गर्व चूर हो गया ॥ २६ ॥ ॥ भुजंग ॥ महान् शस्त्रों को धारण कर राजा स्वयं अपने ही समान सैनिकों को लेकर युद्ध के लिए चला । उसने अनन्त अस्त्रों को छोड़ भीषण युद्ध किया । राजा स्वयं युद्ध में प्रभात के सूर्य के समान दिखाई पड़ रहा था ॥ २७ ॥ ॥ भुजंग ॥ भुजाओं को ठोंककर राजा ने दृढ़तापूर्वक वैसा ही युद्ध किया जैसे वृत्रासुर ने इन्द्र के साथ किया था । परशुराम ने उसकी समस्त भुजाएँ काटकर भुजा-विहीन कर दिया और उसकी सभी सेना को नष्ट कर उसके गर्व को चूर कर दिया २८ भुजंग परशुराम ने अपने हाथ में विकराल फरसा पकड़ा और हाथी के सूँड के समान राजा

गरब सरबं भई सैण छीणं ॥ २९ ॥ ॥ भुजंग ॥ रह्यो अंत खेतं अचेतं नरेशं । बचे बीर जेते गए भाज देसं । लई छीन छउनी करे छत्र घातं । चिरंकाल पूजा करी लोग मातं ॥ ३० ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके राजा सहंस्रबाहु बधहि स…पतम सतु ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ लई छीन छउनी करे बिप्प भूपं । हरी फेर छत्रिन दिजं जीत जूपं । दिजं आरतं तीर रामं पुकारं । चल्यो रोस सी राम लीने कुठारं ॥ ३१ ॥ ॥ भुजंग ॥ सुन्यो सरब भूपं हठी राम आए । सभं जुद्ध को शस्त्र अस्त्रं बनाए । चड़े चउप कै कै किए जुद्ध ऐसे । मनो राम सो रावणं लंक जैसे ॥ ३२ ॥ ॥ भुजंग ॥ लगे शस्त्र अस्त्रं लखे राम अंगं । गहे बाण पाणं किए शत्रु भंगं । भुजाहीण एकं सिरं हीण केते । सभै मार डारे गए बीर

की भुजा को काट दिया । इस प्रकार अंग-भंग होकर राजा की सारी सेना विनष्ट हो गई और उसका अभिमान भी चूर हो गया ॥ २९ ॥ ॥ भुजंग ॥ अंत में राजा अचेत होकर युद्धभूमि में गिर पड़ा और उसके जितने भी वीर बचे थे, अपने-अपने देशों को भाग खड़े हुए । परशुराम ने उसकी राजधानी को छीनकर क्षत्रियों का नाश किया और बहुत समय तक लोगों ने उनकी पूजा-अर्चना की ॥ ३० ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के राजा सहस्रबाहु-वध की समाप्ति ॥

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ (परशुराम ने) राजधानी को छीनकर एक ब्राह्मण को राजा बनाया, परन्तु फिर क्षत्रियों ने ब्राह्मणों के समूह को जीतकर पुनः उनके नगर को छीन लिया । ब्राह्मणों ने कष्ट में होकर श्री परशुराम को पुकारा और परशुराम जी क्रोधित होकर हाथ में परशु धारण कर चल दिये ॥ ३१ ॥ भुजंग ॥ सब राजाओं ने जब सुना कि क्षत्रियों को मारने का व्रत लेनेवाले हठी परशुराम आ पहुँचे हैं, तो सबों ने युद्ध के लिए अस्त्र-शस्त्र बनाकर युद्ध की तैयारी की । सभी क्रोधित होकर युद्ध में इस प्रकार आ भिड़े, मानो राम-रावण का लंका में युद्ध हो रहा हो ॥ ३२ ॥ ॥ भुजंग ॥ परशुराम ने देखा कि अस्त्र-शस्त्रों से उनपर प्रहार किया जा रहा है तो उन्होंने बाणों को हाथ में लेकर शत्रुओं का मर्दन कर दिया । कई वीर भुजा-विहीन और कई सिर विहीन हो गए परशुराम के सम्मुख जितने भी

जेते ॥ ३३ ॥ ॥ भुजंग ॥ करी छत्रहीणं छितं कीस बारं । (मू०ग्रं०१७१) हणे ऐस ही भूप सरबं सुधारं । कथा सरब जउ छोर ते लै सुनाऊं । ह्रिदै ग्रंथ के बाढबे ते डराऊं ॥ ३४ ॥ ॥ चौपई ॥ करि जग मो इह भांत अखारा । नवम बतार बिशन इम धारा । अब बरनो दसमो अवतारा । संत जना का प्रान अधारा ॥ ३५ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके नवमो अवतार कथनं ॥ परसराम अवतार ॥ ६ ॥ समापतम सतु सुभम सतु ॥

अथ ब्रह्मा अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ अब उचरो मै कथा चिरानी । जिम उपज्यो ब्रह्मासुर ज्ञानी । चतुरानन अघ ओघन हरता । उपज्यो सकल स्रिष्टि को करता ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ जब जब बेद नाश होइ जाही । तब तब पुन ब्रह्मा प्रगटाही । ता ते बिशन ब्रहम बपु धरा । चतुरानन

वीर गए, उन्होंने उन सबको मार डाला ॥ ३३ ॥ भुजंग ॥ इक्कीस बार धरती को उन्होंने क्षत्रिय-विहीन कर दिया और इस प्रकार सारे राजाओं को समूल रूप से नष्ट कर डाला । यदि मैं एक किनारे से लेकर अंत तक संपूर्ण कथा कहूँ तो मुझे भय है कि ग्रंथ का आकार बहुत बढ़ जायेगा ॥३४॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार जगत में लीला करने के लिए विष्णु ने नौवाँ अवतार धारण किया । अब मैं दसवें अवतार का वर्णन करता हूँ, जो संतों के प्राण का आधार है ॥ ३५ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के नवें अवतार-कथन की समाप्ति ॥ परशुराम अवतार ॥ ६ ॥ शुभ समाप्ति ॥

ब्रह्मा-अवतार-कथन प्रारंभ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ अब मैं उस प्राचीन कथा का वर्णन करता हूँ, जिस प्रकार ज्ञानवान् ब्रह्मा उत्पन्न हुए । चार मुखों वाले ब्रह्मा पापनाशक और समस्त सृष्टि के कर्ता के रूप में उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब-जब वेदविहित सिद्धान्तों का नाश होता है, तब-तब ब्रह्मा प्रगट होते हैं । इसीलिए विष्णु ने ब्रह्मा का शरीर धारण किया और जगत मे उन्हें चतुरानन के नाम से जाना २

कर जगत उचरा ।। २ ।। ।। चौपई ।। जब ही बिशन ब्रहम बपु धरा । तब सभ बेद प्रचुर जग करा । शास्त्र सिम्रित सकल बनाए । जीव जगत के पंथ लगाए ।।३।। ।।चौपई।। जे जे हुते अघन के करता । ते ते भए पाप ते हरता । पाप करमु कह प्रगटि दिखाए । धरम करम सभ जीव चलाए ।।४।। ।। चौपई ।। इह बिधि भयो ब्रहम अवतारा । सभ पापन को मेटनहारा । प्रजालोकु सभ पंथ चलाए । पाप करम ते सबै हटाए ।। ५ ।। ।। दोहरा ।। इह बिधि प्रजा पवित्र कर धर्यो ब्रहम अवतार । धरम करम लागे सभै पाप करम कह डार ।। ६ ।। ।। चौपई ।। दसम अवतार बिशन को ब्रहमा । धर्यो जगति भीतरि सुभ करमा । ब्रहम बिशन महि भेदु न लहिऐ । शास्त्र सिम्रित भीतर इम कहिऐ ।। ७ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटके दसमो अवतार ब्रहमा कथनं ।। १० ।। समापतम सतु ।।

अथ रुद्र अवतार बरननं ।।

।। स्री भगउती जी सहाइ ।। ।।तोटक छंद।। सभ ही जन

।। चौपाई ।। जब विष्णु ने ब्रह्मा के रूप में अवतार लिया तो जगत में वेदों का प्रचार किया । उन्होंने शास्त्रों, स्मृतियों की रचना की और जगत के जीवों को मार्ग-दर्शन दिया ।। ३ ।। ।। चौपाई ।। (वेद-ज्ञान को जानकर) जो लोग पाप-कर्म करनेवाले थे वे सब पाप को दूर करनेवाले बन गए । पाप-कर्मों की स्पष्ट व्याख्या की गई और सभी जीव धर्म-कर्म में प्रवृत्त हो गए ।। ४ ।। ।। चौपाई ।। इस प्रकार ब्रह्मा का अवतार हुआ, जो सब पापों को मिटानेवाला है । संपूर्ण प्रजा धर्ममार्ग पर चलने लगी और पाप-कर्मों से विरत हो गई ।। ५ ।। ।। दोहा ।। इस प्रकार प्रजा को पवित्र करने के लिए ब्रह्मावतार हुआ और सभी जीव पाप-कर्मों को त्यागकर धर्म-कर्म करने लगे ।।६।। ।।चौपाई।। विष्णु का दसवाँ अवतार ब्रह्मा है, जिसने जगत में शुभ कर्मों की स्थापना की। शास्त्रों एवं स्मृतियों में यही कहा गया है कि ब्रह्मा और विष्णु में कोई भी भेद नहीं है ।। ७ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक के दसवें अवतार ब्रह्मा के वर्णन की समाप्ति ।। १० ।। शत् समाप्ति ।।

रुद्र-अवतार-वर्णन प्रारम्भ

श्री भगवती जी सहाय तोटक छंद । सभी लोग धर्म के

धरम के करम लगे। तज जोग की रीत की प्रीत भगे। जब धरम चले तब जीउ बढे। जन कोट सरूप के ब्रहमु गढे ॥ १ ॥ ॥ तोटक ॥ जगजीवन भार भरी धरणी। दुख आकल जात नही (मू०ग्रं०१७२) बरणी। धर रूप गऊ दधसिंध गई। जगनाइक पै दुखु रोत भई ॥ २ ॥ ॥ तोटक ॥ हस काल प्रसंनि भए तब ही। दुख स्रउनन भूम सुन्यो जब ही। ढिग बिशन बुलाइ लयो अपने। इह भाँत कह्यो तिहको सु पने ॥ ३ ॥ ॥ तोटक ॥ सु कह्यो तुम रुद्र सरूप धरो। जगजीवन को चलि नास करो। तब ही तिह रुद्र सरूप धर्यो। जग जंत सँघार कै जोग कर्यो ॥ ४ ॥ ॥ तोटक ॥ कहिहों शिव जैसक जुद्ध किए। सुख संतन को जिह भाँत दिए। गनि हों जिह भाँत बरी गिरजा। जगजीत सुयंबर मो सप्रभा ॥ ५ ॥ ॥ तोटक ॥ जिम अंधक सों हरि जुद्धु कर्यो। जिह भाँत मनोज को मान हर्यो। दल दैत दले कर कोप जिमं। कहिहों सभ छोरि प्रसंग तिमं ॥६॥ ॥पाधरी छंद॥ अब

कार्य में लग गए। परन्तु कालान्तर में योग और भक्ति की मान्यताएँ त्याग दी गई। जब धर्म का प्रचलन होता है, तभी जीवात्माएँ प्रसन्न होती हैं और परस्पर समानता का व्यवहार करती हुई सबमें एक ब्रह्म का अनुभव करती हैं ॥ १ ॥ ॥ तोटक ॥ यह धरती जगत के जीवों के दुःखों के बोझ से दब उठी और इसके दुःख एवं संतापों का वर्णन करना असंभव था। तब पृथ्वी ने गाय का रूप धारण किया और क्षीरसमुद्र में जगत (अकालपुरुष) के सम्मुख रोती हुई पहुँची ॥ २ ॥ ॥ तोटक ॥ जब अपने कानों से पृथ्वी के कष्ट को सुना, तब कालपुरुष प्रसन्न होकर मुस्कराने लगे। उन्होंने विष्णु को अपने पास बुलाया और इस भाँति कहा ॥ ३ ॥ ॥ तोटक ॥ कालपुरुष ने विष्णु से कहा कि तुम रुद्र का रूप धारण कर जगत के जीवों का संहार करो। तब विष्णु ने रुद्र का स्वरूप धारण किया और जगत में जीवों का संहार कर योग की स्थापना की ॥ ४ ॥ ॥ तोटक ॥ शिवजी ने जैसे युद्ध किये और जिस प्रकार संतों को सुख प्रदान किया मैं उसका वर्णन करूँगा। मैं यह भी बताऊँगा कि किस प्रकार उन्होंने पार्वती को स्वयंवर में जीतकर उसका वरण किया ॥ ५ ॥ ॥ तोटक ॥ शिव ने कैसे अंधकासुर से युद्ध किया। कामदेव का गर्व चूर किया और क्रोधित होकर दैत्यों के समूह का दलन किया मैं इन सब प्रसंगों का वर्णन करूँगा। ६

होत धरन भारा करांत । तब परत नाहि तिह ह्रिदे शांत । चल दध समुंद्र करई पुकार । तब धरत बिशन रुद्रावतार ॥७॥ ॥ पाधरी छंद ॥ तब करत सकल दानव संघार । कर दनुज प्रलय संतन उधार । इह भांति सकल करि दुष्ट नास । पुनि करति ह्रिदै भगतान बास ॥ ८ ॥ ॥ तोटक ॥ त्रिपुरै इक दैत बढ्यो त्रिपुरं । जिह तेज तपै रवि जिउं त्रिपुरं । बरदाइ महासुर ऐस भयो । जिन लोक चतुरदस जीत लयो ॥ ९ ॥ ॥ तोटक ॥ जोऊ एक ही बाण हणै त्रिपुरं । सोऊ नास करै तिह दैत दुरं । अस को प्रगट्यो कब ताहि गनै । इक बाण ही सो पुर तीन हनै ॥ १० ॥ ॥ तोटक ॥ शिव धाइ चल्यो तिह मारन को । जग के सभ जीव उधारन को । कर कोप तज्यो सित सुद्ध सरं । इक बार ही नास कियो त्रिपुरं ॥ ११ ॥ ॥ तोटक ॥ लख कउतक साध सभै हरखे । सुमनं बरखा नभ ते बरखे । धुनि पूरि रही जय सद्द हुअं । गिर हेम हलाचल

॥ पाधरी छंद ॥ जब धरती पाप के बोझ से दब जाती है, तब उसके हृदय में शांति नहीं बनी रह सकती । तब वह चलकर क्षीरसागर में पुकार लगाती है और विष्णु का रुद्रावतार होता है ॥ ७ ॥ ॥ पाधरी छंद ॥ तब रुद्र अवतार लेकर दानवों का संहार करते हैं— और दैत्यों का दलन कर संतों का उद्धार करते हैं । इस प्रकार सकल दुष्टों का नाश कर पुनः भक्तों के हृदय में निवास करते हैं ॥ ८ ॥ ॥ तोटक ॥ त्रिपुरा (प्रदेश) में तीन पंखों वाला एक दैत्य रहता था और उसका तेज सूर्य के तीनों लोकों को प्रभावित करनेवाले तेज के समान था । बरदान प्राप्त करने के बाद वह असुर इतना महाबली हो गया कि उसने चौदह भुवनों को अर्थात समस्त ब्रह्माण्ड को जीत लिया ॥ ९ ॥ ॥ तोटक ॥ (उस राक्षस को यह वरदान था कि) जो कोई उसे एक ही बाण में मारने की शक्ति रखता हो, वही उस विकराल राक्षस को मार सकता है अर्थात् एक से अधिक बाणों से नहीं मरेगा । कवि अब यह वर्णन करना चाहता है कि ऐसा कौन है, जो एक ही बाण से तीन पंखों वाले इस असुर का नाश कर देने में समर्थ हो ॥ १० ॥ ॥ तोटक ॥ जगत के जीवों का उद्धार करने के लिए और उस असुर का वध करने के लिए शिवजी चल पड़े । क्रोधित होकर शिवजी ने एक बाण छोड़ा और एक ही बार में त्रिपुर राक्षस का नाश कर दिया ॥ ११ ॥ ॥ तोटक ॥ यह लीला देखकर सभी संतजन प्रसन्न हुए और आकाश से (देवताओं द्वारा) पुष्पवर्षा होने लगी जय-जयकार की ध्वनि गूंज उठी, हिमालय पर्वत

कंप भुअं ॥ १२ ॥　॥ तोटक ॥ दिन केतक बीत गए जब ही । असुरंधक बीर बियो तब ही । तब बैल चड़्यो गहि सूल शिवं । सुर चउक चले हरि कोप किवं ॥ १३ ॥　॥ तोटक ॥ गण गंध्रब जच्छ सभै उरगं । बर दान दयो शिव को दुरगं । हनिहो निरखंत मुरार सुर । त्रिपुरार हन्यो जिम कै (मू०ग्रं०१७२) त्रिपुरं ॥ १४ ॥　॥ तोटक ॥ उहु ओर चड़े दल लै दुजनं । इह ओर रिस्यो गहि सूल शिवं । रण रंग रँगे रण धीर रणं । जन शोभत पावक ज्वाल बणं ॥ १५ ॥　॥ तोटक ॥ दनु देव दोऊ रण रंग रचे । गहि शस्त्र सभै रस रुद्र मचे । सर छाडत बीर दोऊ हरखे । जनु अंत प्रलै घन से बरखे ॥ १६ ॥ ॥ रुआमल छंद ॥ घाइ खाइ भजे सुरारदन कोपु ओप मिटाइ । अंधि कंधि फिर्‌यो तबै जय दुंदभीन बजाइ । सूल सैहथ परघ पटसि बाण ओघ प्रहार । पेल पेल गिरे सु बीरन केल जान धमार ॥ १७ ॥　॥ रुआमल छंद ॥ सेल रेल भई तहा अर

में हलचल मच गई और भूमण्डल काँप उठा ॥ १२ ॥　॥ तोटक ॥ काफ़ी दिन बीत जाने के बाद अंधकासुर नामक एक राक्षस हुआ । तब बैल पर सवार हो और त्रिशूल हाथ में पकड़कर शिवजी चल पड़े ॥ उनके भयंकर स्वरूप को देखकर देवगण भी चौंक उठे ॥ १३ ॥ ॥ तोटक ॥ गण-गंधर्व, यक्ष, नाग लेकर शिवजी चले और दुर्गा ने भी शिव को (विजय के लिए) वरदान दिये । देवगण देखने लगे कि शिवजी अंधकासुर को भी वैसे ही मार डालेंगे जैसे उन्होंने त्रिपुरासुर को मार डाला था ॥ १४ ॥　॥ तोटक ॥ उधर से दलबल लेकर वह दुर्मति राक्षस चला । इधर से क्रोधित होकर हाथ में त्रिशूल लेकर शिवजी चले । युद्ध की मस्ती में मस्त सभी बलशाली योद्धा ऐसा दृश्य उपस्थित कर रहे थे मानो वन में अग्नि की ज्वालाएँ दहक रही हों ॥ १५ ॥ ॥ तोटक ॥ दानव और देवता दोनों ही युद्ध में प्रवृत्त हो गए और शस्त्रों को धारण कर सभी रौद्ररस का आनन्द लेने लगे । दोनों ओर के वीर तीर चलाते हुए परम प्रसन्न हैं तो बाण-वर्षा ऐसे हो रही है मानो प्रलय-काल में बादल बरस रहे हों ॥ १६ ॥　॥ रुआमल छंद ॥ दैत्यगण घायल होकर और तेजहीन होकर भागने लगे और तभी अन्धकासुर दुन्दुभियाँ बजाता हुआ घूमकर युद्धस्थल की तरफ़ बढ़ आया । त्रिशूल, कृपाण, बाण एवं अन्य अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार होने लगे और शूरवीर इस प्रकार झूम-झूम गिरने लगे मानो कोई रास रग चल रहा हो　१७

तेग तीर प्रहार। गाहि गाहि फिरे फवज्जन बाहि बाहि हथियार। अंग भंग परे कहूँ सरबंग स्रोनत पूर। एक एक बरी अनेकन हेरि हेरि सु हूर ॥१८॥ ॥ रुआमल छंद ॥ चउर चीर रथी रथो तम बाज राज अनंत। स्रोण की सरता उठी सु बिअंत रूप दुरंत। साज बाज कटे कहूँ गजराज ताज अनेक। उशटि पुशटि गिरे कहूँ रिप बाचियं नही एक ॥ १९ ॥ ॥ रुआमल छंद ॥ छाडि छाडि चले तहा न्रिप साज बाज अनंत। गाज गाज हने सदा शिव सूरबीर दुरंत। भाज भाज चले हठी हथिआर हाथि बिसार। बाण पाण कमाण छाडि सु चरम बरम बिसार ॥ २० ॥ ॥ नराज छंद ॥ जितेक सूर धाइयं। तितेक रुद्र घाइयं। जितेक अउर धावही। तिस्यो महेश घावही ॥ २१ ॥ ॥ नराज छंद ॥ कमंध अंध उठही। बसेख बाण बुठही। पिनाक पाण ते हणे। अनंत सूरमा बणे ॥ २२ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ सिलह संजि सज्जे। चहूँ ओर गज्जे। महाँ बीर बंके। मिटै नाहि डके ॥ २३ ॥

॥ रुआमल छंद ॥ कृपाणों और बाणों के प्रहारों से युद्धस्थल में ठेलपेल मच गई और शूरवीर हथियार चलाते हुए फ़ौजों का मथन करने लगे। कहीं पर अंगविहीन वीर तथा कहीं पर पूरे शरीर रक्त में डूबे पड़े हैं और वीरगति-प्राप्त वीरों ने ढूंढ़-ढूंढ़कर अप्सराओं का वरण किया है ॥ १८ ॥ ॥ रुआमल छंद ॥ वस्त्र, रथ एवं रथों पर सवार तथा अनेकों घोड़े इधर-उधर पड़े हुए हैं तथा युद्धस्थल में रक्त की विकराल नदी बह निकली है। कही पर सुसज्जित घोड़े और हाथी कटे पड़े हैं और कहीं पर ढेर-के-ढेर वीर पड़े हुए हैं और एक भी शत्रु जीवित नहीं बचा है ॥ १९ ॥ ॥ रुआमल छंद ॥ राजागण अपने सुसज्जित हाथी-घोड़ों को छोड़कर चल दिये है और शिवजी ने गरज-गरजकर महाबली वीरों का नाश किया है। शूरवीर हथियारों को भी त्यागकर भाग चले हैं और उनके धनुष-बाण, लौह-कवच आदि भी पीछे छूट गए हैं ॥ २० ॥ ॥ नराज छंद ॥ जितने भी शूरवीर सामने जाते हैं रुद्र उनका नाश कर देते हैं। जितने और आगे बढ़ेंगे शिवजी उनका भी नाश कर देंगे ॥ २१ ॥ ॥ नराज छंद ॥ अन्धे कबन्ध युद्धस्थल से उठ रहे हैं और विशेष बाण-वर्षा कर रहे हैं। अनन्त शूरवीर धनुष द्वारा तीर चलाकर शूरवीर होने का प्रमाण दे रहे हैं ॥ २२ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ लौह-कवचों से सुसज्जित शूरवीर चारों ओर गरज रहे हैं। किसी भी प्रकार नष्ट

॥ रसावल ॥ बजे घोरि बाजं । सजे सूर साजं । घणं जेम गज्जे । महिखुआस सज्जे ॥२४॥ ॥ रसावल ॥ महिखुआस धारी । चले ब्योमचारी । सुभं सूर हुरखे । सरंधार बरखे ॥ २५ ॥ ॥ रसावल ॥ धरे बाण पाणं । चड़े तेज माणं । कटा कट्टि बाहैं । अधो अंग लाहैं ॥ २६ ॥ ॥ रसावल ॥ रिसे रोस रुद्रं । चलै भाज छुद्रं । (मू०ग्रं०१७४) महाँ बीर गज्जे । सिलहि संजि सज्जे ॥२७॥ ॥रसावल॥ लए शकत पाणं । चड़े तेज माणं । गणं गाड़ गाजे । रणं रुद्र राजे ॥ २८ ॥ भभंकंत घायं । लरे चउप चायं । डकी डाकणीयं । रड़े काकणीयं ॥ २९ ॥ मथं रोस रुद्रं । हणे दैंत छुद्रं । कटे अध अद्धं । भई सैण बद्धं ॥ ३० ॥ रिस्यो सूल पाणं । हणे दैंत माणं । सरं ओघ छुट्टे । घणं जेम टुट्टे ॥ ३१ ॥ रणं रुद्र गज्जे । तबै दैंत भज्जे । तजे शस्त्र सरबं । मिट्यो देह गरबं ॥ ३२ ॥ ॥ चौपई ॥ धायो तबै

न होनेवाले बाँके शूरवीर शोभायमान हो रहे हैं ॥ २३ ॥ ॥ रसावल ॥ वाद्यों की घोर ध्वनि सुनाई पड़ रही है और सुसज्जित शूरवीर दिखाई पड़ रहे हैं। धनुष इस प्रकार बज रहे हैं मानो बादल गरज रहे हों ॥ २४ ॥ ॥ रसावल ॥ देवगण भी धनुषों को धारण कर चल पड़े हैं और सभी शूरवीर प्रसन्न होकर बाण-वर्षा कर रहे हैं ॥ २५ ॥ ॥ रसावल ॥ हाथों में बाण धारण कर अत्यन्त तेजस्वी और गर्वीले वीर चढ़ उठे हैं और उनके शस्त्रों के कटाकट चलने से शत्रुओं के शरीर दो भागों में कटते चले जा रहे हैं ॥ २६ ॥ ॥ रसावल ॥ रुद्र के क्रोध को देखकर क्षुद्र दानव भाग खड़े हुए हैं। महाबलशाली वीर कवच से सुसज्जित होकर गरज रहे हैं ॥ २७ ॥ ॥ रसावल ॥ हाथों में शक्ति लेकर अत्यन्त तेजस्वी और गहन गर्जन करनेवाले शिव युद्ध में चढ़ उठे हैं और शोभायमान हो रहे हैं ॥ २८ ॥ घावों में से भभककर रक्त बह रहा है और सभी उत्साह के साथ लड़ रहे हैं। डाकिनियाँ प्रसन्न हो रही हैं और अश्व आदि धराशायी हो रहे हैं ॥ २९ ॥ रुद्र ने क्रोधित होकर दैत्यों का नाश कर दिया है और उनके शरीरों को खण्ड-खण्ड करके उनकी सेना का वध कर दिया है ॥ ३० ॥ त्रिशूलधारी शिव अत्यन्त क्रोधित हो उठे हैं और उन्होंने दैत्यों को नष्ट कर दिया है। बाणों के समूह इस प्रकार छूट रहे हैं मानो बादल टूटकर गिर रहे हों ॥ ३१ ॥ जब रुद्र ने युद्धस्थल में गर्जना की तब सभी दैत्य भाग खड़े हुए। सभी ने शस्त्र त्याग दिये और सबका गर्व चूर हो गया ३२

अंधिक बलवाना। संग लै सैन दानवी नाना। अमित बाण नंदी कह मारे। बेध अंग कह पार पधारे॥ ३३॥ जब ही बाण लगे बाहण तन। रोस जग्यो तब ही शिव के मन। अधिक रोस कर बिसख चलाए। भूम अकाश छिनक महि छाए॥ ३४॥ बाणावली रुद्र जब साजी। तब ही सैण दानवी भाजी। तब अंधिक शिव सामुहि धायो। दुंद जुद्ध रण मद्धि मचायो॥ ३५॥ ॥ अड़िल॥ बीस बाण तिन शिवहि प्रहारे कोप कर। लगे रुद्र के गात गए ओहु घाव कर। गहि पिनाक कह पाण पिनाकी धाइयो। हो तुमल जुद्ध दुहूँअन रण मद्धि मचाइयो॥ ३६॥ ॥ अड़िल॥ ताड़ शत्र कह बहुरि पिनाकी कोपु हुऐ। हणे दुष्ट कह बाण निखंग ते काढ दुऐ। गिर्‌यो भूम भीतरि सिर शत्रु प्रहारियो। हो जनक गाज करि कोप बुरज कह मारियो॥ ३७॥ ॥ तोटक॥ घट एक बिखै रिप चेत भयो। धन बाण बली पुन पाण लयो। कर कोप कुवंड करं करख्यो। सर धार बली घन ज्यों

॥ चौपाई॥ उसी समय बलवान अन्धकासुर दानवी सेना को लेकर आगे की तरफ़ दौड़ा। उसने अनेकों बाण नन्दी को मारे जो कि उसके अगों को बेधकर पार कर गये॥ ३३॥ जब अपने वाहन के तन में बाण लगे देखे तब शिव के मन में और अधिक क्रोध जाग उठा। उन्होंने क्रोधित होकर विषमय बाण चलाए, जो क्षण भर में धरती और आकाश में छा गये॥ ३४॥ जब रुद्र ने बाण-वर्षा की तब आसुरी सेना भाग खड़ी हुई। तब अंधकासुर शिव के सामने आया और युद्धस्थल में अब द्वन्द्व-युद्ध छिड़ गया॥ ३५॥ ॥ अड़िल॥ राक्षस ने क्रोधित होकर शिव पर बीस बाणों से प्रहार किया, जो कि शिव के शरीर में लगे और घाव कर दिये। शिव भी धनुष हाथ में लेकर आगे की ओर दौड़े और दोनों में भयंकर युद्ध छिड़ गया॥ ३६॥ ॥ अड़िल॥ शत्रु पर निशाना लगाकर शिव अत्यन्त क्रोधित हुए और उन्होंने अपने तरकश से दो बाण निकालकर दुष्ट (अंधकासुर) की ओर मारा। ये बाण शत्रु के शिर में लगा और वह भूमि पर गिर पड़ा। वह ऐसे गिरा जैसे किसी बड़े स्तम्भ पर बिजली गिरने से वह धराशायी हो जाता है॥ ३७॥ ॥ तोटक॥ एक घड़ी बाद शत्रु अंधकासुर पुन: चेतनावस्था में आया और उस महाबली ने पुन: हाथों में धनुष-बाण ले लिया। क्रोधित होकर उसके हाथों में धनुष खिचने लगा और मेघवर्षा के समान बाणों की वर्षा होने लगी ३८

असुर बलवाना। लयो कुबेर को लूट खजाना। पकर समसते ब्रहमु रुवायो। इंद्र जीत सिर छत्र ढुरायो॥ ४॥ जीत देवता पाइ लयाए। रुद्र बिशन निज पुरी बसाए। चउदह रतन आन राखे ग्रिह। जहाँ तहाँ बैठाए नवग्रिह॥ ५॥ ॥ दोहरा॥ जीत बसाए निज पुरी असुर सकल असुरार। पूजा करी महेश की गिर कैलाश मझार॥६॥ ॥ चौपई॥ ध्यान बिधान करे बहु भाँता। सेवा करी अधिक दिन राता। ऐस भाँत तिह काल बितायो। अब प्रसंगि शिव ऊपर आयो॥ ७॥ ॥ चौपई॥ भूतराट को निरख अतुल बल। कांपत भए अनिक अरि जल थल। दचछ प्रजापत होत न्रिपत बर। दस सहंस्र दुहिता ताके घर॥ ८॥ तिन इक बार सुयंबर कीया। दस सहंस्र दुहिता इस दीया। जो बरु रुचै बरहु अब सोई। ऊच नीच राजा हुइ कोई॥ ९॥ जो जो जिसै रुचा तिनि बरा। सभ प्रसंग नही जात उचरा। जो बिरतांत कहि छोर सुनाऊँ। कथा ब्रिध ते अधिक

इसने ब्रह्मा को भी पकड़कर रुला दिया और इन्द्र को भी जीतकर उसका छत्र अपने सिर पर धारण किया॥ ४॥ देवताओं को जीतकर अपने चरणों में गिराया और रुद्र तथा विष्णु को भी अपने ही नगर में बसने के लिए ही बाध्य कर दिया। चौदह रत्न भी उसने अपने घर मे इकट्ठे कर लिये, अपनी इच्छानुसार नवग्रहों को भी यहाँ-वहाँ नियुक्त कर दिया॥ ५॥ ॥ दोहा॥ दैत्यराज ने सभी को जीतकर अपने यहाँ बसा लिया। देवताओं ने कैलास पर्वत पर जाकर महेश की वन्दना की॥ ६॥ ॥ चौपाई॥ भिन्न प्रकार से ध्यान, पूजा और दिन-रात सेवा की गई और इस प्रकार बहुत समय बीता। अब शिव के ऊपर ही सारी बात आ पड़ी थी॥ ७॥ ॥ चौपाई॥ भूतनाथ शिव का अतुल बल देखकर शत्रु जल, स्थल सभी स्थानों पर कांप रहे थे। राजाओं में श्रेष्ठ राजा दक्ष प्रजापति था, जिसके घर दस हज़ार पुत्रियाँ थीं॥ ८॥ उस राजा के यहाँ एक बार स्वयंवर हुआ और उसने अपनी दस हजार पुत्रियों को यह आज्ञा दी कि ऊँच-नीच राजा के विचार को छोड़कर जो जिसकी रुचि हो उसके अनुसार वह अपना विवाह करे॥ ९॥ जिस-जिसको जो-जो अच्छा लगा, उसने उसका वरण किया; परन्तु इन सारे प्रसंगों का वर्णन नहीं किया जा सकता। यदि सब वृत्तांतों का विस्तार पूर्वक वर्णन करना हो तो कथा के लम्बे हो जाने का भय सदैव बना

डराऊँ ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ चार सुता कश्यप कह दीनी । केतक ब्याह चंद्रमा लीनी । केतक गई अउर देसन महि । बर्‍यो गउरजा एक रुद्र कहि ॥ ११ ॥ जब ही ब्याह रुद्र ग्रिह आनी । चली जग की बहुरि कहानी । सभ दुहिता तिह बोल पठाई । लीने संग भतारन आई ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ जे जे हुते देस परदेसा । जात भए ससुरार नरेसा । निरख रुद्र को अउर प्रकारा । किनहू न भूपत ताहि चितारा ॥ १३ ॥ नहन गउरजा दच्छ बुलाई । सुनि नारद ते ह्रिदे रिसाई । बिन बोले पित के ग्रिह गई । अनिक प्रकार तेज तन तई ॥ १४ ॥ जग्ग कुंड (मू०ग्रं०१७६) महि परी उछर कर । सत प्रताप पावक भई सीतरि । जोगअगन कहु बहुरि प्रकाशा । ता तन कियो प्रान को नासा ॥ १५ ॥ आइ नारद इम शिवहि जताई । कहाँ बैठिहो भाँग चड़ाई । छुट्यो ध्यान कोपु जिय जागा । गहि त्रिसूल तिह को उठि भागा ॥ १६ ॥ जब ही जात भयो तिह थलै । लयो उठाइ

रहेगा ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ चार कन्याएँ तो कश्यप ऋषि को दे दी गई और कईयों के साथ चंद्रमा ने विवाह कर लिया । कई अन्य देशों को चली गईं परन्तु गौरी (पार्वती) ने कहकर शिव (रुद्र) से विवाह किया ॥ ११ ॥ जब पार्वती विवाह के पश्चात रुद्र के घर पहुँची तो कई प्रकार की कथा-वार्त्ताएँ प्रचलित हो उठीं । राजा ने सब पुत्रियों को बुलवा भेजा और वे सब अपने पतियों के साथ पिता के घर आ गईं ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ जो-जो नरेश देश-विदेशों में थे वे सब ससुराल पहुँचने लगे । रुद्र की कुछ विचित्र वेश-भूषा को ध्यान में रखकर किसी ने भी उसको स्मरण तक नहीं किया ॥ १३ ॥ दक्षपति ने गौरी को आमंत्रित नहीं किया । यह जब गौरी ने नारद के मुँह से सुना तो वह मन में अत्यन्त क्षुब्ध हो वह बिना बताए ही पिता के घर चली गई और उसका तन-मन भावावेश में जल रहा था ॥ १४ ॥ अत्यन्त क्रोधित अवस्था में वह यज्ञकुंड में कूद गई और उस सती के प्रताप से अग्नि ठंडी हो गई, परन्तु सती ने योग-अग्नि प्रज्ज्वलित की और उससे उसका शरीर नष्ट हो गया ॥ १५ ॥ नारद ने इधर शिव से आकर कहा कि आप क्या भांग चढ़ाकर यहाँ बैठे हैं (वहाँ तो गौरी जीवित जल गई है) । यह सुनकर शिव का ध्यान छूटा और हृदय क्रोध से भर उठा । उन्होंने त्रिशूल पकड़ा और उस तरफ दौड़ चले १६

सूल कर बलै। भाँत भाँत तिन करे प्रहारा। सकल बिधुंस जग्ग कर डारा ॥ १७ ॥ ॥ चौपई ॥ भाँत भाँत तन भूप संघारे। इक इक ते कर दुइ दुइ डारे ॥ जाकहु पहुच त्रिसूल प्रहारा। ता कहु मार ठउर ही डारा ॥ १८ ॥ जग्गकुंड निरखत भयो जब ही। जूट जटान उखारस तब ही। बीर-भद्र तब किआ प्रकाशा। उपजत करो नरेशन नासा ॥ १९ ॥ केतक करे दुखंड न्रिपत बर। केतक पठै दए जम के घर। केतक गिरे धरण बिकरारा। जन सरता के गिरे कनारा ॥२०॥ तब लउ शिवहू चेतना आई। गहि पिनाक कहु परो रिसाई। जा के ताण बाण तन मारा। प्रान तजे तिन पानजु-चारा ॥ २१ ॥ ॥ चौपई ॥ डमा डम्म डउरू बहु बाजे। भूत प्रेत दसउ दिस गाजे। झिम झिम करत असन की धारा। नाचे रुंड मुंड बिकरारा ॥ २२ ॥ बज्जे ढोल सनाइ नगारे। जुटे जंग को जोध जुझारे। खहि खहि मरे अपर रिस बढे।

जब शिव उस सतीस्थल पर पहुँचे तो उन्होंने अपने त्रिशूल को भी दृढता से पकड़ लिया। विभिन्न प्रकार से प्रहार कर उन्होंने सारे यज्ञ को विध्वस कर दिया ॥ १७ ॥ ॥ चौपाई ॥ अनेकों राजाओं का संहार कर उनके शरीरों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। जिस पर भी त्रिशूल का प्रहार हुआ, वह उसी स्थल पर मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥ १८ ॥ जब शिव ने यज्ञकुंड देखा अर्थात गौरी को जली हुई देखा तो शोकाकुल होकर वे अपनी जटाओं को नोचने लगे (और अचेत होने लगे)। तभी वीरभद्र वहाँ प्रकट हुए और प्रकट होते ही उन्होंने राजाओं को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया ॥ १९ ॥ कई राजाओं को दो टुकड़े कर दिया और कइयों को यमराज के पास भेज दिया अर्थात मार दिया। जैसे नदी में बाढ आने पर नदी के किनारे ढहकर गिर पड़ते हैं, ऐसे कई विकराल वीर धरती पर गिरने लगे ॥ २० ॥ तब तक शिवजी भी चेतनावस्था मे आ गये और धनुष हाथ में लेकर क्रोधित होकर टूट पड़े। जिसको भी खींचकर शिव ने बाण मारा उसने वहीं प्राण त्याग दिये ॥ २१ ॥ ॥ चौपाई ॥ डमडम डमरू बजने लगे और दसों दिशाओं में भूत-प्रेतादि गरजने लगे। कृपाणें झमाझम बरसने लगीं और सिर कटे हुए धड़ चारों तरफ नाचने लगे ॥ २२ ॥ ढोल और नगाड़े बजते हुए सुनाई पड़ने लगे और योद्धागण युद्ध में भिड़ उठे। एक-दूसरे से टकराते हैं- आपस में क्रोधित होते हैं और पुन उन्हे घोड़े पर चढ नही देखा जाता अर्थात वे

बहुरि न देखियत ताजिअन चढे ॥ २३ ॥ जा पर मुशत त्रिसूल प्रहारा। ताकहु ठउर मार ही डारा। ऐसो भयो बीर घमसाना। भकभकाइ तह जगे मसाना ॥ २४ ॥
॥ दोहरा ॥ तीर तबर बरछी बिछुअ बरसे बिसख अनेक। सभ सूरा जूझत भए साबत बचा न एक ॥२५॥ ॥ चौपई ॥ कटि कटि मरे नरेश दुखंडा। बाइ हने गिर गे जन झंडा। सूल संभार रुद्र जब पर्यो। चित्र बचित्र अयोधन कर्यो ॥२६॥ भाज भाज तब चले नरेसा। जग्ग बिसार संभार्यो देसा। जब रण रुद्र रुद्र रूऐ धाए। भाजत भूप न बाचन पाए ॥२७॥ तब सभ भरे तेज तन राजा। बाजन लगे अनंतन बाजा। मच्यो बहुरि घोरि संग्रामा। जम को (मू०ग्रं०१७७) भरा छिनक महि धामा ॥ २८ ॥ भूपत फिरे जुद्ध के कारन। लै लै बाण पाण हथियारन। धाइ धाइ अर करत प्रहारा। जन कर चोट परत घरियारा ॥ २९ ॥ खंड खंड रण गिरे अखंडा। काँप्यो खंड नवे ब्रहमंडा। छाडि छाडि अस गिरे नरेशा। मच्यो जुद्ध

धराशायी हो जाते है ॥ २३ ॥ जिस पर भी शिव की मुट्ठी में पकड़े हुए त्रिशूल का वार हुआ, वह वहीं पर मार डाला गया। ऐसा घमासान वीरभद्र ने किया कि हड़बड़ाकर श्मशानों से भूत-प्रेत भी जग उठे ॥ २४ ॥ ॥ दोहा ॥ तीर, बरछी, बिछुए तथा अनेकों अन्य शस्त्र-अस्त्र चले और सभी शूरवीर वीरगति को प्राप्त हो गये, कोई भी बाक़ी नही बचा ॥ २५ ॥ ॥ चौपाई ॥ टुकड़े हो चुके राजा ऐसे पड़े थे मानो प्रबल वायु के प्रहारों से पेडों के झुंड टूटकर गिरे हों। त्रिशूल को सम्हालकर जब रुद्र ने तबाही मचाई तो वहाँ का दृश्य विचित्र ही दिखाई पडने लगा ॥२६॥ तब राजागण यज्ञ को भूलकर अपने-अपने देशों की ओर भागने लगे। जब रुद्र ने रौद्ररूप धारण कर उनका पीछा किया तो भागनेवाला कोई भी राजा बच नही पाया ॥ २७ ॥ तब सभी राजा भी सावधान होकर रजस्गुण से भर उठे और सब ओर अनेकों वाद्य बजने लगे। पुनः घोर संग्राम छिड़ गया और यम का घर मृतकों से भरने लगा ॥ २८ ॥ राजागण युद्ध करने के लिए विभिन्न प्रकार के बाण एवं शस्त्र लेकर वापस मुडे। दौड़-दौड़कर वे ऐसे वार करने लगे मानो घड़ियाल पर चोटे पड रही हों ॥ २९ ॥ खंड-खंड होकर बलशाली वीर गिरने लगे और नव खंड पृथ्वी तथा सम्पूर्ण ब्रह्मांड काँप उठा। तलवारें छोड़-छोड़कर राजा गिरने लगे और वहां युद्ध स्थल में स्वयंवर जैसा दृश्य उपस्थित हो

सुयंबर जैसा ॥ ३० ॥ ॥ नराज छंद ॥ अरुज्झे किकाणी । धरे शस्त्रपाणी । परी मार बाणी । कड़क्के कमाणी ॥ ३१ ॥ झड़क्के क्रिपाणी । धरे धूर धाणी । चड़े बान साणी । रटे एक पाणी ॥ ३२ ॥ ॥ नराज छंद ॥ चबी चांव डाणी । जुटे हाण हाणी । हसी देव राणी । झमक्के क्रिपाणी ॥३३॥ ॥ ब्रिध नराज छंद ॥ सु मार मार सूरमा पुकार मार कै चले । अनंत रुद्र के गणो बिअंत बीरहा दले । घमंड घोर सावणी अघोर जिउ घटा उठी । अनंत बूँद बाण धार सुद्ध क्रुद्ध कै बुठी ॥ ३४ ॥ ॥ नराज छंद ॥ बिअंत सूर धावही । सु मार मार घावही । अघाइ घाइ उट्ठहीं । अनेक बाण बुट्ठहीं ॥ ३५ ॥ ॥ नराज छंद ॥ अनंत अस्त्र सज्जकैं । चले सु बीर गज्जकैं । निरभै हथ्यार झारहीं । सु मार मार उचारहीं ॥ ३६ ॥ घमंड घोर जिउँ घटा । चले बनाइ तिउ थटा । सु शस्त्र सूर सोमहीं । सुता सुरान लोमहीं ॥ ३७ ॥ सु बीर बीन कै बरैं । सुरेश लोग बिचरैं । सु त्रास भूप जे

गया ॥ ३० ॥ ॥ नराज छंद ॥ घोड़ों पर बैठे वीर स्वतन्त्र होकर हाथों मे शस्त्र पकड़कर घूमने लगे । बाणों की मार पड़ने लगी और कमान कडकड़ाने लगे ॥ ३१ ॥ कृपाणें झडने लगीं और धरती से धूल उड़कर ऊपर जाने लगी । एक ओर तेज़ किये हुए तीर चल रहे हैं और दूसरी ओर लोग पानी की रट लगा रहे है ॥३२॥ ॥ नराज छंद ॥ चीलें झपट रही हैं और बराबरी के शूरवीर आपस में भिड़ पड़े हैं । दुर्गा हँस रही है और कृपाणें झमाझम बरस रही हैं ॥ ३३ ॥ ॥ वृहद नराज छंद ॥ शूरवीर 'मार-मार' की पुकार के साथ चल पड़े और इधर रुद्र के गणों ने अनत वीरों को नष्ट कर दिया । जैसे सावन की घनघोर घटा उठती दिखाई देती है, वैसे ही बूंदों की भांति क्रुद्ध बाण बरस रहे हैं ॥ ३४ ॥ ॥ नराज छंद ॥ अनेकों शूरवीर दौड़ रहे हैं और शत्रुओं पर वार कर-करके उन्हें घायल कर रहे हैं । कई घायल होकर फिर उठ रहे हैं और बाणवर्षा कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ ॥ नराज छंद ॥ अनेकों अस्त्रों से सुसज्जित होकर, गर्जना करते हुए वीर चल पड़े हैं और अभय होकर शस्त्रो से प्रहार कर मार-मार की पुकार लगा रहे हैं ॥ ३६ ॥ घनघोर उठ रही घटाओं की तरह ठाट-बाट बनाते हुए वीर चल पड़े है । वे शस्त्रो से सुसज्जित इतने सुन्दर लग रहे हैं कि देवकन्याएं भी उनपर मोहित हो रही हैं ३७ वे चुन चुनकर वीरो का वरण कर रही हैं और सभी

बजे। सु देव पुत्रका तजे ॥ ३८ ॥ ॥ ब्रिध नराज छंद ॥ सु शस्त्र अस्त्र सज्जके परे हकार कै हठी। बिलोक रुद्र रुद्र को बनाइ सैण ऐकठी। अनंत घोर सावणी दुरंत ज्यो उठी घटा। सु सोभ सूरमा नचैं सु छीन छत्र की छटा ॥ ३९ ॥ ॥ ब्रिध नराज ॥ कि पाइ खग पाण मो नपाइ ताजियन तहाँ। जुआन आन कै परे सु रुद्र ठाढबो जहाँ। बिअंत बाण सैहथी प्रहार आनके करैं। धकेल रेल लै चलै पछेल पाव ना टरैं ॥ ४० ॥ सड़क्क सूल सैहथी तड़क्क तेग तीरयं। बबक्क बाघ ज्यों बली भभक्क घाइ बीरयं। अघाइ घाइकै गिरे पछेल पाव ना टरे। सु बीन बीन अच्छरे प्रबीन बीन हुइ बरे ॥४१॥ ॥ चौपई ॥ इह बिधि जूझ गिर्यो सभ साथा। रहिय्यो दच्छ अकेल अनाथा। बचे बीर ते बहुरि बुलाइस (मू०ग्रं०१७८) पहर कवच दुंदभी बजाइस ॥ ४२ ॥ आपन चला जुद्ध कह राजा। जोर करोर अयोधन साजा। छूटत बाण कमाण अपारा। जनु दिन ते हुइ गयो अँधारा ॥ ४३ ॥ भूत परेत मसाण

वीर युद्ध-स्थल में देवराज इन्द्र के समान शोभायमान होकर विचरण कर रहे हैं। जो राजा भयभीत हो रहे हैं, उन्हें देव-पुत्रियों ने त्याग दिया है ॥ ३८ ॥ ॥ वृहद नराज छंद ॥ घनघोर गर्जन करते हुए और अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर शूरवीर टूट पड़े और उन्होंने रुद्र का रौद्ररूप देखकर सभी सेनाओं को एकत्र किया। सावन की उठती हुई घनघोर घटा-समान शूरवीर उमड़ पड़े और शूरवीर आकाश की शोभा को अपने में समेटते हुए मदमस्त होकर नृत्य करने लगे ॥ ३९ ॥ ॥ वृहद नराज ॥ हाथों मे खड्ग धारण कर और घोड़ों को तेज दौड़ाते हुए महाबली नवयुवक वहाँ आ रुके, जहाँ रुद्र उपस्थित थे। वीरों ने अनेकों बाणों और शस्त्रो से ये प्रहार प्रारम्भ कर दिये और धकधकाकर बिना पीछे हटे आगे बढ़ने लगे ॥ ४० ॥ बर्छियों की सड़सड़ाहट और तलवारों की तड़तड़ाहट सुनाई पड़ रही है। बाघों की तरह दहाड़ कर वीर एक-दूसरे पर घाव कर रहे है। घाव लगने पर वीर गिर पड़ रहे हैं, परन्तु पाँव पीछे नहीं हटा रहे हैं ॥ ४१ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार सभी साथी तो गिर पड़े तथा दक्ष अकेला रह गया। बचे हुए वीरों को उसने पुनः बुलाया और कवच पहनकर रणवाद्य फिर बजाया ॥ ४२ ॥ राजा दक्ष स्वयं युद्ध के लिए अनंत योद्धाओं का बल लेकर चला। उसके धनुष से अनंत बाण छूटने लगे और ऐसा दृश्य उपस्थित हो गया मानो दिन में ही अंधकार

हकारे । डुहूँ ओर डउरू डमकारे । महाँ घोर मच्यो संग्रामा । जैसक लंक रावण अरु रामा ॥ ४४ ॥ ॥ भुजंग ॥ भयो रुद्र कोपं धर्यो सूल पाणं । करे सूरमा सरब खाली पलाणं । उते एक दच्छं इते रुद्र एकं । कर्यो कोप कै जुद्ध भांतं अनेकं ॥ ४५ ॥ ॥ भुजंग ॥ गिर्यो जान कूटसथली ब्रिछ मूलं । गिर्यो दच्छ तैसे कट्यो सीस सूलं । पर्यो राज राजं भयो देह घातं । हन्यो जान बज्रं भयो पब्ब पातं ॥ ४६ ॥ गयो गरब सरबं भजो सूर बीरं । चल्यो भाज अंतहपुरं हुइ अधीरं । गरे गार अंचर परे रुद्र पायं । अहो रुद्र कीजै क्रिपा कै सहायं ॥४७॥ ॥ चौपई ॥ हम तुमरो हरि ओज न जाना । तुमहो महाँ तपी बलवाना । सुनत बचन भए रुद्र क्रिपाला । अजा सीस न्रिप जोर उताला ॥ ४८ ॥ रुद्र काल को धरा धिआना । बहुरि जियाइ नरेश उठाना । राज सुता पत सकल जियाए । कउतक निरख संत त्रिपताए ॥ ४९ ॥ नार

हो गया हो ॥ ४३ ॥ भूत-प्रेत आदि चिल्लाने लगे और दोनों ओर से डमरू डमडमाने लगे । घोर संग्राम छिड़ उठा और ऐसा लग रहा था मानो लंका मे राम-रावण युद्ध हो रहा हो ॥ ४४ ॥ ॥ भुजग ॥ कुपित होकर रुद्र ने हाथ में त्रिशूल पकड़ा और कई अश्वों की काठियों को खाली करते हुए कई शूरवीरों को मार डाला । उधर दक्ष भी अकेला और इधर रुद्र भी अकेले थे; दोनों ने क्रोधित होकर अनेक प्रकार से युद्ध किया ॥४५॥ ॥भुजंग॥ दक्ष का सिर त्रिशूल से रुद्र ने काट डाला और वह ऐसे गिर पड़ा मानो वृक्ष जड़ से उखड़कर गिरा हो । राजाओं का राजा दक्ष शरीर कट जाने से ऐसे गिर पड़ा मानो इन्द्र ने वज्र से पर्वत के पंख काट दिये हों और पर्वत गिर पड़ा हो ॥ ४६ ॥ दक्ष का सारा गर्व जाता रहा और शूरवीर रुद्र ने उसका पूर्णरूप से भंजन किया । तब रुद्र दौड़कर अधीर होकर अंत:पुर में जा घुसे, जहाँ सभी गले में आँचल डालकर उनके चरणों में गिरकर कहने लगे कि हे रुद्र ! कृपा करके हमारी रक्षा करो, सहायता करो ॥ ४७ ॥ ॥ चौपाई ॥ हे शिव! हमने तुम्हारे तेज को पहचाना नहीं, तुम महाबलशाली और तपस्वी हो । यह सुनकर रुद्र दयालु हो उठे और उन्होंने दक्ष को जीवित कर उठा दिया ॥ ४८ ॥ पुनः रुद्र ने अकाल-पुरुष का ध्यान किया और अन्य राजाओं को भी जीवित कर दिया । राजकन्याओं के सभी पतियों को जीवित कर दिया और इस लीला को देखकर सभी साधु सत ""न्त हर्षित हो उठे ४९ पत्नी विहीन

हीन शिव काम खिझायो। ता ते संभु घनो दुखु पायो। अधिक कोप कै काम जरायस। बितन नाम तिह तदिन कहायस ॥ ५० ॥

॥ इति स्री रुद्र प्रबंध दच्छ बधह रुद्र महातमो गउर बधह ॥
धिआइ यारां संपूरनम सतु सुभम सतु ॥ ११ ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ बहु जो जरी रुद्र की दारा। तिन हिमगिर ग्रिह लिय अवतारा। छुटी बालता जब सुधि आई। बहुरो मिली नाथ कह जाई ॥ १ ॥ जिह बिध मिली राम सो सीता। जैसक चतुर बेद तन गीता। जैसे मिलत सिंध तन गंगा। त्यों मिलि गई रुद्र कै संगा ॥ २ ॥ जब तिह ब्याह रुद्र घर आना। निरख जलंधर ताहि लुभाना। दूत एक तह दियो पठाई। ल्याउ रुद्र ते नार छिनाई ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ ॥ जलंधर बाच ॥ कै शिव नारि सींगार कै मम ग्रिह देहु पठाइ। नातर सूल सँभारकै

शिव को कामदेव ने बहुत तंग किया, जिससे शिव ने काफ़ी कष्ट भोगा। अत्यधिक तंग होकर एक बार क्रुद्ध होकर शिव ने कामदेव को भस्म कर दिया और उसी दिन से कामदेव अनंग कहलाने लगा ॥ ५० ॥

॥ रुद्रावतार-प्रबन्ध में दक्ष-वध, रुद्र-महत्व एवं गौरी-वध ग्यारहवाँ
अध्याय संपूर्ण ॥ ११ ॥

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ रुद्र की पत्नी ने जलने और मृत्यु को प्राप्त करने के पश्चात हिमालय के घर पर जन्म लिया। उसका बचपन समाप्त होने पर जब वह नवयुवती हुई तो पुनः वह अपने नाथ (शिव) के साथ जा मिली ॥ १ ॥ जैसे सीता राम से मिलकर एक हो गई, गीता और वैदिक विचारधारा एक रूप है, अथवा जैसे समुद्र से मिलकर गंगा एकात्म हो जाती है, वैसे वह (पार्वती) शिव (रुद्र) के साथ मिलकर एक हो गयी ॥ २ ॥ जब उसको ब्याहकर रुद्र अपने घर पर लाये तो जलंधर दैत्य उसे देखकर उस पर मोहित हो उठा। उसने एक दूत को भेजा और कहा कि जाओ जाकर उस स्त्री को रुद्र से छीनकर ले आओ ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ जलंधर उवाच ॥ (जलंधर ने दूत से शिव को यह कहने के लिए कहा) शिव की पत्नी को शृंगार करके या तो मेरे घर पर भेज दो अन्यथा शिव से कह दो कि वह त्रिशूल सँभालकर मुझसे

संग लरहु (मू०ग्रं०१७६) सुर आइ ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ कथा भई इह दिस इह भाता । अब कहो बिशन त्रिया की बाता । ब्रिदारिक दिन एक पकाए । दैंत सभा तै बिशन बुलाए ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ आइ गयो तह नारद रिख बर । बिशन नार के धाम छुधातर । बैंगन निरख अधिक ललचायो । माँग रह्यो पर हाथ न आयो ॥ ६ ॥ नाथ हेत मै भोग पकायो । मनुछ पठं कर बिशन बुलायो । नारद खाइ जूठ हो जैहै । पीअ कुपत हमरे पर हुइहै ॥७॥ ॥ नारद बाच ॥ माँग थक्यो मुन भोज न दीआ । अधिक रोसु मुनिबर तब कीआ । ब्रिंदा नाम राछसी बपु धर । त्रिअ हुअं बसो जलंधर के घर ॥ ८ ॥ देकर स्राप जात भयो रिखबर । आवत भयो बिशन ताके घर । सुनत स्राप अति ही दुख पायो । बिहस बचन त्रिय संग सुनायो ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ त्रिय को छाया लै तबै ब्रिंदा रची बनाइ । धूम्रकेस दानव सदन जनम धरत भई जाइ ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ जैसक रहत कमल जल भीतर ।

आकर युद्ध करें ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ यह कथा भी किस प्रकार हुई, इसी से संबंधित अब मैं विष्णु-पत्नी की भी बात कहता हूँ । एक दिन उसने अपने घर मे बैंगन की सब्जी बनाई और उसी समय दैत्य-सभा में से विष्णु का बुलावा आ गया जहाँ वे चले गए ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसी समय ऋषिवर नारद विष्णु के घर आ पहुँचे जो कि भूख से पीड़ित थे ! बैंगन की भोज्य-सामग्री देखकर उनका मन ललचा गया, परन्तु माँगने पर भी उन्हें कुछ हाथ न लगा ॥ ६ ॥ विष्णुपत्नी ने कहा कि मैंने यह भोग अपने स्वामी के लिए पकाया है और मैं देने में असमर्थ हूँ । मैंने एक व्यक्ति को उन्हे बुलाने को भेजा है और वे आते ही होंगे ! विष्णुपत्नी ने सोचा कि नारद द्वारा खा लेने पर मेरा भोजन जूठा हो जायगा तथा मेरे स्वामी मुझपर क्रोधित हो जायँगे ॥ ७ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ मुनि भोजन माँगता हुआ थक गया पर तुमने मुनि को भोजन नहीं दिया । (मुनिवर इससे अत्यधिक क्रोधित हो उठे और कहने लगे कि) तुम वृन्दा नामक राक्षसी का शरीर धारण कर जलधर दैत्य की पत्नी होकर उसके घर में रहोगी ॥८॥ जैसे ही ऋषि श्राप देकर गया, विष्णु अपने घर पहुँच गए । श्राप की बात सुनते ही उन्हें बहुत दुःख हुआ और मुस्कुराकर पत्नी ने भी बात की पुष्टि करते हुए वही बात कही ॥ ९ ॥ ॥ दोहा ॥ अपनी पत्नी की छाया लेकर विष्णु ने तभी वृन्दा की रचना की, जिसने धरती पर धूम्रकेश दानव के घर जन्म लिया १० चौपाई जैसे

पुनि न्रिप बसी जलंधर के घर । तिह निमित जलंधर अवतारा । धर है रूप अनूप मुरारा ।। ११ ।। कथा ऐस इह दिस सो भई । अब चल बात रुद्र पर गई । माँगी नार न दीनी रुद्रा । ताँ ते कोप असुर पत छुद्रा ।। १२ ।। ।। चौपई ।। बज्जे ढोल नफीरि नगारे । दुहू दिसा डमरू डमकारे । माचत भयो लोह बिकरारा । झमकत खग्ग अवग्ग अपारा ।। १३ ।। गिर गिर परत सुभट रण माहीं । धुक धुक उठत मसाण तहाहीं । गजी रथी बाजी पैदल रण । जूझ गिरे रण की छित अनगण ।। १४ ।। ।। तोटक ।। बिचरे रणबीर सु धीर क्रुधं । मचियो तिह दारुण भूम जुधं । हहरंत हयं गरजंत गजं । सुणकै धुन सावण मेघ लजं ।। १५ ।। बरखे रण बाण कमाण खगं । तह घोर भयानक जुद्ध जगं । गिर जात भटं हहरंत हठी । उमगो रिप सैण किए इकठी ।। १६ ।। चहूँ ओर घिर्‌यो सर सोधि शिवं । करि कोप घनो असुरार इवं । दुहूँ

कमलपत्र जल में जल की बूँदों से अप्रभावित बना रहता है, वैसे ही वृन्दा जलंधर के घर में उसकी गृहिणी होकर रहने लगी । उसी के लिए (विष्णु ने) जलधर के रूप में अवतार लिया और इस भाँति विष्णु ने एक अनुपम स्वरूप धारण किया ।। ११ ।। इस प्रकार यह कथा इस दिशा में चल पड़ी और अब बात आकर रुद्र पर रुक गई । रुद्र से जलंधर ने स्त्री को माँगा जिसे रुद्र ने नहीं दिया, इस पर असुरपति जलंधर शीघ्र ही क्रोधित हो उठा ।। १२ ।। ।। चौपाई ।। चारों ओर ढोल और नगाड़े बजने लगे और चारों दिशाओं में डमरुओं की डमाडम सुनाई पड़ने लगी । लोहे से लोहा विकराल रूप में बजने लगा और खड्गों की झमाझम अपार रूप से दिखाई पड़ने लगी ।। १३ ।। शूरवीर युद्धस्थल में गिरने लगे और भूत-बैताल आदि चारों ओर उठ-उठकर दौड़ने लगे । गज-रथ और अश्वों पर सवार युद्धस्थल में अगणित संख्या में वीर जूझकर गिरने लगे ।। १४ ।। ।। तोटक ।। युद्धस्थल में शूरवीर क्रोधित होकर विचरने लगे और भीषण युद्ध छिड़ गया । घोड़ों की हिनहिनाहट और हाथियों की गर्जना सुनकर सावन के मेघ भी लजाने लगे ।। १५ ।। युद्ध में बाण और खड्ग बरसने लगे और इस प्रकार यह जगत में भयानक एवं घोर युद्ध हुआ । शूरवीर गिरते हैं परन्तु हठ करके फिर भी भयंकर ध्वनियाँ निकालते हैं । इस प्रकार युद्धस्थल में शत्रुसेना चारों ओर से उमड़कर इकट्ठी हो गई ।। १६ ।। चारों ओर से घिरकर शिव ने बाण सम्हाला और असुरों पर घोर रूप से क्रोधित हो उठे । दोनों ओर से इस प्रकार

ओरन ते इम बाण बहे । नभ अउर धरा दोऊ छाइ रहे ॥१७॥ गिरगे तह टोपनि टूक घने । रहगे जन किंसक स्रोण सने । रण हेर अगंम अनूप (मू०ग्रं०१८०) हरं । जिय मो इह भाँत बिचार करं ॥ १८ ॥ जिय मो शिव देख रहा चक कै । दल दैतन मद्धि परा हुक कै । रण सूल सँभार प्रहार करं । सुणकै धुनि देव अदेव डरं ॥ १९ ॥ ॥ तोटक ॥ जिय मो शिव ध्यान धरा जब ही । कलकाल प्रसंनि भए तब ही । कह्यो बिशन जलंधर रूप धरो । पुनि जाइ रिपेश को नास करो ॥ २० ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ दई काल आज्ञा धर्यो बिशन रूपं । सजे साज सरबं बन्यो जान भूपं । कर्यो नाथ यों आप नारं उधारं । लिया राज बिशा सती सत्त टारं ॥२१॥ तज्यो देहि दैतं भई बिशन नारं । धर्यो द्वादसं बिशन दइता-वतारं । पुनर जुद्ध सज्ज्यो गहे शस्त्र पाणं । गिरे भूम मो सूर सोभे बिमाणं ॥ २२ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ मिट्यो

बाणों की वर्षा हुई कि आकाश और धरती पर छाया हो गई ॥ १७ ॥ युद्धस्थल में शिरस्त्राण टूटकर इस प्रकार गिरे मानो रक्त से सने फूल गिरे हों । रणस्थल में अगम्य और अनुपम शिव ने इस भाँति मन में विचार किया ॥ १८ ॥ और हृदय में आश्चर्य-चकित होकर शिव दैत्यों के दल में ललकार कर कूद गए । त्रिशूल को सम्हालकर वह प्रहार करने लगे और उनके प्रहार की ध्वनि को सुनकर देव-दानव सभी भयभीत होने लगे ॥ १९ ॥ ॥ तोटक ॥ शिव ने जैसे ही मन में अकालपुरुष का ध्यान किया तो कलिकाल उसी समय प्रसन्न हो उठे । विष्णु को आज्ञा हुई कि तुम जलंधर का रूप धारण करो और इस प्रकार शत्रु-नरेश का नाश करो ॥ २० ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ कालपुरुष ने आज्ञा दी और विष्णु ने जलंधर का रूप धारण किया और सभी प्रकार सुसज्जित हो राजा का स्वरूप दिखाई देने लगा । विष्णु ने इस प्रकार का रूप अपनी स्त्री के उद्धार के लिए धारण किया और इस प्रकार महासती वृन्दा का सतीत्व भंग किया ॥ २१ ॥ राक्षसी का शरीर त्यागकर वृन्दा पुनः विष्णुपत्नी लक्ष्मी के रूप में प्रकट हुई और इस प्रकार विष्णु ने बारहवाँ अवतार दैत्यावतार के रूप में धारण किया । पुनः युद्ध चलने लगा और वीरों ने हाथों में शस्त्र धारण कर लिये । युद्धस्थल में वीर गिरने लगे और युद्धस्थल में ही वायुयान वीरों को ले जाने के लिए सुशोभित होने लगे ॥ २२ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ इधर स्त्री का सतीत्व भंग हुआ

सति नारं कट्यो सैन सरबं । मिट्यो भूप जालंधरं देह गरबं । पुनर जुद्ध सज्यो हठे तेज हीणं । भजे छाड कै संग साथी अधीणं ।। २३ ।। ।। चौपई ।। दुहूँ जुद्ध कीना रण माही । तीसर अवरु तहाँ को नाही । केतक मास मच्यो तह जुद्धा । जालंधर हुए शिव पर क्रुद्धा ।। २४ ।। तब शिव ध्यान शकत कौ धरा । ता ते शकत क्रिपा कह करा । ता ते भयो रुद्र बलवाना । मंड्यो जुद्ध बहुरि बिधि नाना ।। २५ ।। उत हरि लयो नारि रिप सत हरि । इत शिव भयो तेज देवी करि । छिनमो कियो असुर को नासा । निरख रीझ भट रहे तमासा ।। २६ ।। जालंधरी ता दिन ते नामा । जपहु चंडका को सम जामा । ता ते होत पवित्र सरीरा । जिम नाए जल गंग गहीरा ।। २७ ।। ता ते कही न रुद्र कहानी । ग्रंथ बढन की चित पछानी । ता ते कथा थोर ही भासी । निरख भूलि कबि करो न हासी ।। २८ ।।

।। इति जलंधर अवतार बारहवाँ समापतम सत सुभम सत ।। १२ ।।

और उधर सारी सेना कट गई, इससे जलंधर का अभिमान चूर हो गया । परन्तु फिर भी तेजहीन राजा ने युद्ध जारी रखा और उसके सभी साथी और अधीनस्थ लोग युद्ध छोड़कर भाग खड़े हुए ।।२३।। ।। चौपाई ।। दोनों (शिव और जलंधर) ने युद्ध किया और युद्ध-स्थल में तीसरा अन्य कोई नहीं था । कई महीनों तक युद्ध चलता रहा और जलंधर शिव पर अत्यन्त क्रोधित हो उठा ।। २४ ।। तब शिव ने शक्ति का ध्यान किया और शक्ति ने उनपर कृपा की । रुद्र ने अब और अधिक बलशाली होकर युद्ध करना शुरू कर दिया ।। २५ ।। उधर तो विष्णु ने स्त्री के सतीत्व का हरण कर लिया इधर शिव भी देवी के तेज से और अधिक शक्तिशाली हो उठे इसलिए इन्होंने क्षणभर में जलंधर दैत्य का नाश कर दिया । इस दृश्य को देखकर सभी लोग प्रसन्न हो उठे ।। २६ ।। चण्डिका का जाप करनेवाले यह जानते हैं कि उसी दिन से चण्डिका का एक नाम जालंधरी भी पड़ गया । उसके नाम का जाप करने से शरीर उसी प्रकार पवित्र होता है, जिस प्रकार गंगा-स्नान से पवित्रता आती है ।। २७ ।। ग्रन्थ के बढ़ने की चिन्ता को ध्यान में रखकर मैंने रुद्र की पूरी कथा नहीं कही है । इस कथा को संक्षेप में ही कहा गया है । (कृपया) यह देखकर कविगण मेरी हँसी न उड़ाएँ ।। २८ ।।

इति बारहव की शुभ समप्ति १२

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ अब मै गनो बिशन अवतारा । जैसक धर्यो सरूप मुरारा । बिआकल होतु धरन जब भारा । कालपुरख पहि करत पुकारा ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ असुर देवतन देति भजाई । छीन लेत भू की ठकुराई । करत पुकार धरण (मू०ग्रं०१८१) भर भारा । कालपुरख तब होत क्रिपारा ॥२॥ ॥ दोहरा ॥ सभ देवन को अंस लै तत आपन ठहराइ । बिशन रूप धारत तदिन ग्रिह अदित्त के आइ ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ आन हरत प्रिथवी को भारा । बहु बिधि असुरन करत संघारा । भूम भार हर सुर पुर जाई । कालपुरख मो रहत समाई ॥ ४ ॥ सकल कथा जउ छोर सुनाऊँ । बिशन प्रबंध कहत स्रम पाऊँ । ता ते थोरिऐ कथा प्रकाशो । रोग सोग ते राखि अबिनाशो ॥ ५ ॥

॥ इति तेरवाँ बिशन अवतार ॥ १३ ॥ समापतम सत सुभम सत ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ दोहरा ॥ कालपुरख की देहि मो कोटिक बिशन महेश । कोटि इद्र ब्रहमा किते

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ अब मैं विष्णु के अवतारों की गणना करता हूं कि विष्णु ने किस प्रकार के अवतार धारण किए । जब धरती पाप के बोझ से व्याकुल हो उठती है, तो वह कालपुरुष के समक्ष अपना दुःख प्रकट करती है ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब असुर देवताओं को भगा देते हैं और भूमि का राज्य उनसे छीन लेते हैं, तब धरती पाप के बोझ से दबकर पुकार करती है तथा तब कालपुरुष कृपा करते हैं ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ तब सभी देवताओं का अंश लेकर और मूल रूप से स्वय उसमे अवस्थित होकर विष्णु विभिन्न रूप धारण कर आदित्यकुल में जन्म लेते हैं ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार अवतरित होकर पृथ्वी का भार दूर करते हैं और त्रिविध प्रकार से असुरों का संहार करते हैं । धरती का बोझ हरण कर पुनः सुरपुर चले जाते हैं और कालपुरुष में लीन हो जाते हैं ॥४॥ यदि इन सारी कथाओं को मैं विस्तार से कहूं तो इसे विष्णु-प्रबन्ध ही कहने का श्रम करना होगा । इसलिए इससे संक्षेप में ही कथा कहता हूं और हे परमात्मा ! आप रोग और शोक से मेरी रक्षा करें ॥ ५ ॥

॥ इति तेरहवाँ विष्णु-अवतार समाप्त ॥ १३ ॥ शुभ सत समाप्त ॥

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ दोहा ॥ कालपुरुष के (सर्वातिशायी) शरीर में करोड़ों विष्णु और महेश निवास करते हैं । करोड़ों इन्द्र,

रवि ससि और जलेश ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ स्रमित बिशन तह रहत समाई । सिंध बिंध जह गन्यो न जाई । शेशनाग से कोटक तहाँ । सोवत सैन सरप की जहाँ ॥ २ ॥ सहंस्र सीस तब धरतन जंगा । सहंस्र पाव कर सहंस अभंगा । सहंसराछ सोभत हैं ताके । लछमी पाव पलोसत याके ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ मधु कीटभ के बध नमित जा दिन जगत मुरार । सु कबि स्याम ताको करे चौदसवो अवतार ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ स्रवण मैल ते असुर प्रकाशत । चंद सूर जन दुतिय प्रभाशत । माया तजत बिशन कह तब ही । करत उपाध असुर मिलि जब ही ॥ ५ ॥ तिन सों करत बिशन घमसाना । बरख हजार पंच धरमाना । कालपुरख तब होत सहाई । दुहूँअनि हनत क्रोध उपजाई ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ धारत है ऐसो बिशन चौदसवों अवतार । संत संबूहनि सुख नमित दानव दुहूँ सँघार ॥ ७ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक चवदसवो अवतार समापतं ॥
चौधवाँ अवतार ॥ १४ ॥

ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, वरुण उसी के (दिव्य) शरीर में अवस्थित हैं ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ श्रम से थके विष्णु उसी में लीन रहते हैं और उस कालपुरुष मे कितने सागर और कितनी पृथ्वियाँ हैं उनकी गणना नही की जा सकती । वह अकालपुरुष जिस महासर्प (काल) की शय्या पर शयन करता है, उसके आसपास करोड़ों शेषनाग सुशोभित होते हैं ॥ २ ॥ उसके हज़ारों सिर, धड़ एवं जंघाएँ हैं । अभंजनशील के हज़ारों हाथ और पैर हैं । हज़ारो उसके नेत्र हैं और सर्व प्रकार का ऐश्वर्य उसके चरण चूमता है ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ मधु और कैटभ के वध के निमित्त जिस दिन विष्णु ने जो अवतार धारण किया, श्याम कवि उसे चौदहवें अवतार के रूप में जानता है ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ कान की मैल से असुर पैदा हुए और चंद्र-सूर्य के समान तेजवान माने जाने लगे । कालपुरुष की आज्ञा से विष्णु ने माया को त्यागकर तब अवतार धारण किया, जब ये असुर लोग विभिन्न प्रकार के उत्पात मचाना प्रारम्भ कर दिए ॥ ५ ॥ उनसे विष्णु ने पाँच हज़ार वर्षों तक घमासान युद्ध किया । कालपुरुष ने तब विष्णु की सहायता की और दोनों असुरों का क्रोधित होकर नाश किया ॥६॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार विष्णु चौदहवाँ अवतार धारण करते हैं और संतों को सुख देने के लिए इन दोनों दानवों का संहार करते हैं ॥ ७ ॥

इति श्री बचित्र नाटक का चौदहवाँ समाप्त चौदहवाँ अवतार १४

अथ अरहंत देव अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ जब जब दानव करत पसारा । तब तब बिशन करत संघारा । सकल असुर इकठे तहाँ भए । सुर अरु गुर मंदर चल गए ॥ १ ॥ सभहूँ मिलि अस कर्‌यो बिचारा । दईतन करत घात (मू०ग्रं०१८२) असुरारा । ता ते ऐस करौ किछु घाता । जा ते बने हमारी बाता ॥२॥ दइत गुरू इम बचन बखाना । तुम दानवो न भेद पछाना । वे मिलि जग्ग करत बहु भाँता । कुशल होतु ता ते दिन राता ॥ ३ ॥ तुमहूँ करो जग्ग आरंभन । बिजै होइ तुमरी ता ते रण । जग्ग अरंभ्य दानवन करा । बचन सुनत सुर पुर थरहरा ॥४॥ बिशन बोल करि करो बिचारा । अब कछु करो मंत्र असुरारा । बिशन नवीन कह्‌यो बपु धरिहो । जगिग बिघन असुरन को करिहो ॥ ५ ॥ बिशन अधिक कीनो इशनाना । दीने अमित दिजन कह दाना । मन मो कवला

अरिहंतदेव-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ जब-जब दानव अपने-आप को अधिक शक्तिशाली बनाकर अपना प्रसार करना आरम्भ करते हैं, तब-तब विष्णु उनका संहार करते है। एक बार सारे असुर एकत्र हुए और उन्हें देखकर देवता और उनके गुरु अपने-अपने आवासों में चले गये ॥ १ ॥ सभी असुरों ने मिलकर विचार-विमर्श किया और अनुभव किया कि विष्णु (हमेशा) दैत्यों का नाश कर देते हैं। अब कुछ इस प्रकार से आघात किया जाना चाहिए, जिससे हम असुरों की मान-मर्यादा बनी रह सके ॥ २ ॥ दैत्यों के गुरु (शुक्राचार्य) ने कहा कि हे दानवो ! तुम लोगों ने अभी तक इस रहस्य को नहीं समझा है। वे देवता लोग मिलकर भिन्न-भिन्न प्रकार से यज्ञ करते हैं, इसी से वे हमेशा सकुशल रहते है ॥ ३ ॥ तुम लोग भी यज्ञ आरम्भ करो और देखो उसी क्षण तुम्हारी विजय होगी। दानवों ने भी यज्ञ प्रारम्भ कर दिया और इस बात को सुनकर देवलोक भयभीत हो उठा ॥ ४ ॥ सब देवता विष्णु से मिलकर बोले कि हे असुरघातक ! अब कुछ उपाय कीजिए। विष्णु ने कहा कि मैं नया शरीर धारण कर अवतरित होऊँगा और असुरों का यज्ञ नष्ट करूँगा ५ विष्णु ने अनेकों तीर्थों के स्नान किए और ब्राह्मणों को अपरिमित दान दिया। विष्णु के हृदय में कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने

सिरजो ज्ञाना । कालपुरख को धरियो ध्याना ॥ ६ ॥
कालपुरख तब भए दयाला । दास जान कह बचन रिसाला ।
धर अरहंत देव को रूपा । नास करो असुरन के भूपा ॥ ७ ॥
बिशन देव आज्ञा जब पाई । कालपुरख की करी बड़ाई ।
भू अरहंत देव बन आयो । आन अउर ही पंथ चलायो ॥ ८ ॥
जब असुरन को भ्यो गुरु आई । बहुति भाँति निज मतहि
चलाई । स्त्रावग मत उपराजन कीआ । संत सबूहन को सुख
दीआ ॥ ९ ॥ समहूँ हाथ मोचना दीए । सिखा हीण दानव
बहु कीए । सिखा हीण कोई मंत्र न फुरै । जो कोई जपै
उलट तिह परै ॥ १० ॥ बहुर जग्ग को करब मिटायो ।
जिअ हिंसा ते समहुँ हटायो । बिन हिंसा किअ जग्ग न होई ।
ता ते जग्ग करै ना कोई ॥ ११ ॥ याते भयो जगन को नासा ।
जो जीय हने होइ उपहासा । जीअ मरे बिनु जग्ग न होई ।
जग्ग करै पावै नही कोई ॥ १२ ॥ इह बिधि वियो सभन

ज्ञान का संचार किया और विष्णु ने कालपुरुष का ध्यान किया ॥ ६ ॥
कालपुरुष ने तब दया की और अपने दास (विष्णु) को मीठे वचनों से
संबोधित किया । हे विष्णु ! तुम अरिहंत स्वरूप धारण करो और असुरों
के राजाओं का नाश करो ॥ ७ ॥ विष्णु ने कालपुरुष की आज्ञा पाकर
उसका गुणानुवाद किया । भूमि पर अरिहंतदेव बनकर अवतरित हुआ
और एक नया ही पंथ चला दिया ॥ ८ ॥ जब यह असुरों का गुरु बन
गया तो इसने विभिन्न प्रकार के मत चला दिये । उनमें से एक श्रावक
(जैन) मत को उत्पन्न किया और साधु-संतों को परमसुख प्रदान
किया ॥ ९ ॥ सबके हाथ में उसने बाल उखाड़नेवाली चिमटियाँ पकड़ा
दी और इस प्रकार बहुत से दानवों को शिखा-विहीन कर दिया । केश एवं
शिखा-विहीनों को कोई मंत्र याद ही नहीं आता था और यदि कोई मंत्र
का जाप करता भी था तो उसी पर विपरीत प्रभाव उस मंत्र का पडता
था ॥ १० ॥ पुनः उसने यज्ञकर्म को समाप्त कर किया और जीव-हिंसा
से सबको विरत कर दिया । बिना जीव-हिंसा के यज्ञ हो नहीं सकता,
इसलिए अब कोई यज्ञ नहीं करता था ॥११॥ इस प्रकार यज्ञों का नाश हो
गया और जो कोई भी जीवों को मारता था वह उपहास का पात्र बनता
था । जीवहत्या बिना यज्ञ नहीं हो सकता था और वैसे यदि कोई यज्ञ
करता था तो उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता था ॥१२॥ इस प्रकार अरिहत-
ने सबको इस प्रकार का उपदेश दिया कि कोई भी राजा यज्ञ न

उपदेशा । जगत सकै को कर न नरेशा । अपंथ पंथ सभ लोगन लाया । धरम करम कोऊ करन न पाया ॥ १३ ॥ ॥ दोहरा ॥ अंनि अंनि ते होतु ज्यो घासि घासि ते होइ । तैसे मनुछ मनुछ ते अवरु न करता कोइ ॥ १४ ॥ ॥ चौपई ॥ ऐस ग्यान सभहून द्रिड़ायो । धरम करम कोऊ करन न पायो । इह बित बीच सभो चित दीना । असुर बंस ताते भ्यो छीना ॥१५॥ ॥ चौपई ॥ नावन दैंत न पावैं कोई । बिनु इशनान पवित्र न होई । बिनु पवित्र कोई (मू०ग्रं०१८३) फुरे न मंत्रा । निफल भए ता तैं सभ जंत्रा ॥ १६ ॥ दस सहंस्र बरख किअ राजा । सभ जग मो मत ऐसु पराजा । धरम करम सभ ही मिटि गयो । ता ते छीन असुर कुल भयो ॥ १७ ॥ देवराइ जिअ मो भल माना । बडा करमु अब बिशन कराना । आनंद बढा शोकु मिट गयो । घरि घरि सभहूं बधावा भयो ॥ १८ ॥ ॥ दोहरा ॥ बिशन ऐस उपदेश दै सभ हूँ धरम छुडाइ । अमरावति सुर नगर मो बहुरि बिराज्यो जाइ ॥ १९ ॥

कर सके । सबको कुमार्ग पर लगा दिया गया और कोई भी धर्म-कर्म नहीं कर पा रहा था ॥ १३ ॥ ॥ दोहा ॥ जिस प्रकार अन्न के बीजों से अन्न पैदा होता है, घास से घास पैदा होती है, उसी प्रकार मनुष्य से मनुष्य पैदा होता है (इसका कर्ता कोई ईश्वर नहीं है) ॥ १४ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार का ज्ञान सबको दिया गया कि कोई भी धर्म-कर्म का कार्य नहीं करता था । सबका मन इसी प्रकार की बातों में लग गया और इस प्रकार असुर-वंश क्षीण होने लगा ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ ऐसे नियम प्रचलित कर दिए गए थे कि अब कोई दैत्य स्नान भी नहीं कर पाता था और बिना स्नान किए कोई पवित्र नहीं हो पाता था । बिना पवित्र हुए किसी मंत्र का स्मरण नहीं होता था और इस प्रकार सब क्रियाएँ निष्फल हो जाती थीं ॥ १६ ॥ इस प्रकार अरिहंतराज ने दस हज़ार वर्ष तक राज्य किया और सारे संसार में अपना मत चलाया । संसार से धर्म-कर्म समाप्त हो गया और इस प्रकार असुर-वंश क्षीण हो गया ॥ १७ ॥ देवराज इंद्र को मन में यह सब बहुत अच्छा लगा कि विष्णु ने हम लोगों के लिए बहुत बड़ा काम किया है । सभी शोक को त्यागकर आनंदित हो गए और घर-घर में खुशी के गीत गाए जाने लगे ॥१८॥ ॥ दोहा ॥ विष्णु ने इस प्रकार उपदेश देकर सबका धर्म-कर्म छुड़वा दिया और पुनः स्वर्गपुरी में जा विराजमान हुए ॥ १९ ॥ श्रावकों के परमगुरु का अवतार

स्रावगेश को रूप धर दैत कुपथ सम डार । पद्रसवों अवतार इम धारत भयो मुरार ॥ २० ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटके पंद्रसवों अरहंत अवतार ॥ १५ ॥

अथ मनु राजा अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ स्रावग मत सभ ही जन लागे । धरम करम सभ ही तज भागे । त्याग दई सभ हूँ हरि सेवा । कोइ न मानत भे गुरदेवा ॥ १ ॥ साधि असाधि सभै हुइ गए । धरम करम सभ हूँ तज दए । कालपुरख आज्ञा तब दीनी । बिशन चंद सोई बिधि कीनी ॥ २ ॥ मनु ह्वै राजवतार अवतरा । मनु सिम्रितहि प्रचुर जग करा । सकल कुपंथी पंथ चलाए । पाप करन ते लोग हटाए ॥ ३ ॥ राज अवतार भयो मनु राजा । सभ ही सजे धरम के साजा । पाप करा ताको गहि मारा । सकल प्रजा कहु मारग डारा ॥ ४ ॥ पाप करा जाही तह मारस ।

धारण कर और दैत्यों को कुमार्ग पर लगाने के लिए इस प्रकार विष्णु ने पन्द्रहवाँ अवतार धारण किया ॥ २० ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक का पन्द्रहवाँ अरिहंत अवतार समाप्त ॥ १५ ॥

मनुराजा-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ सभी लोग श्रावक मत में प्रवृत्त हो गए और सबने धर्म-कर्म का त्याग कर दिया । सबने हरि-सेवा त्याग दी और कोई भी परम गुरुदेव (कालपुरुष) को नहीं मानता था ॥ १ ॥ साधु लोग असाधु हो गए और सबने धर्म-कर्म का त्याग कर दिया । तब कालपुरुष ने आज्ञा दी तथा विष्णुचन्द्र ने पुन: उसी की आज्ञानुसार कार्य किया ॥ २ ॥ राजा मनु का रूप धारण कर विष्णु अवतरित हुए और संसार में मनुस्मृति का प्रचार किया । सभी कुमार्गियों को सद्मार्ग पर चलाया और लोगों को पापकर्म से विरत किया ॥ ३ ॥ विष्णु ने राजा मनु के रूप में अवतार लिया और सभी धर्मकार्यों को पुन: शोभायमान किया । जो,पाप करता था, अब उसे मार डाला जाता था और इस प्रकार राजा ने सम्पूर्ण प्रजा को सुमार्ग पर चलाने का कार्य किया ४ पापी को तत्क्षण समाप्त कर दिया जाता था और सारी

सकल प्रजा कहु धरम सिखारस । नाम दान सभहूँन सिखारा । स्रावग पंथ दूर कर डारा ॥ ५ ॥ जे जे भाज दूर कहु गए । स्रावग धरम सोऊ रहि गए । अउर प्रजा सभ मारग लई । कुपंथ पंथ ते सुपंथ चलई ॥ ६ ॥ राज अवतार भयो मनु राजा । करम धरम जग मो भल साजा । सकल कुपंथी पंथ चलाए । पाप करम ते धरम लगाए ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ पंथ कुपंथी सभ लगे स्रावग मत भयो दूर । मनु राजा को जगत मो रह्यो सु जसु भरपूर ॥ ८ ॥ (मू०ग्रं०१८४)

॥ इति स्री बचित्र नाटके मनु राजा अवतार सोलवाँ ॥ १६ ॥ सतु सुभम सतु ॥

अथ धनंतर बैद अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ सभ धनवंत भए जग लोगा । एक न रहा तिनो तन सोगा । भाँत भाँत भच्छत पकवाना । उपजत रोग देह तिन नाना ॥ १ ॥

प्रजा को धर्म की शिक्षा दी जाती थी । (अब सबने) प्रभु-नाम और दान-पुण्य की शिक्षा प्राप्त की और इस प्रकार राजा ने श्रावक (जैनधर्म) मार्ग का परित्याग करवा दिया ॥५॥ जो-जो लोग राजा मनु के राज्य से दूर भाग गए वे ही श्रावक धर्म में बने रह सके, बाकी सारी प्रजा धर्म के मार्ग पर चल पड़ी और कुमार्ग का त्याग कर धर्म के मार्ग को ग्रहण करने लगी ॥ ६ ॥ मनु राजा विष्णु के अवतार थे और उन्होंने सारे संसार मे धर्म-कर्म का भलीभाँति प्रचलन किया । सभी कुमार्गियों को ठीक मार्ग पर चलाया और पापकर्मों में प्रवृत्त लोगों को धर्म की ओर लगाया ॥ ७ ॥ ॥ दोहा ॥ गलत रास्तों पर चलनेवाले सभी सुमार्ग पर चलने लगे और इस प्रकार श्रावक मत लोगों से दूर हट गया । इस कार्य के लिए राजा मनु का सारे संसार में भरपूर यशोगान हुआ ॥ ८ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक का मनुराजा सोलहवाँ अवतार समाप्त ॥ १६ ॥ शुभ सत्य ॥

धन्वन्तरि वैद्य-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ सारे संसार के लोग धनवान हो गए और उनके तन और मन पर किसी प्रकार का शोक अथवा चिन्ता न रही । लोग भाँति भाँति के पकवान खाने लगे और फलस्वरूप नाना प्रकार के रोग उनके शरीर में पैदा होने लगे १ सब लोग

रोगाकुल सभ ही भए लोगा । उपजा अधिक प्रजा को सोगा । परमपुरख की करी बडाई । क्रिपा करी तिन पर हरि राई ॥२॥ बिशन चंद को कहा बुलाई । धर अवतार धनंतर जाई । आयुरबेद को करो प्रकाशा । रोग प्रजा को करियहु नासा ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ ता ते देव इकत्र हुइ मथ्यो समुंद्रहि जाइ । रोग बिनासन प्रजा हित कढ्यो धनंतर राइ ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ आयुरबेद तिन कियो प्रकाशा । जग के रोग करे सभ नासा । बइद शास्त्र कहु प्रगट दिखावा । भिन भिन अउखधी बतावा ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ रोग रहत कर अउखधी सभ ही करी जहान । काल पाइ तच्छक हन्यो सुरपुर कियो पयान ॥ ६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके धनंत्र अवतार सतारवों ॥ १७ ॥ सुभम सत ॥

अथ सूरज अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ बहुर बढे दिति

रोगों से व्याकुल हो गए और प्रजा अत्यन्त दुःखी हो उठी । सबने परमपुरुष (परमात्मा) का गुणानुवाद किया और परमात्मा ने सब पर कृपा की ॥ २ ॥ विष्णुचन्द्र को परमपुरुष ने बुलाया और धन्वंतरि के रूप में अवतार लेने की आज्ञा दी । उससे यह भी कहा कि तुम आयुर्वेद के ज्ञान का प्रसार कर प्रजा के रोगों का नाश करो ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ तब सभी देवता एकत्र हुए, उन्होंने समुद्र-मंथन किया तथा प्रजा की भलाई के लिए और उनके रोगों को नष्ट करने के लिए धन्वंतरि को समुद्र में से प्राप्त किया ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने आयुर्वेद का प्रसार किया और सारे संसार से रोगों का नाश किया । वैद्यक शास्त्रों को प्रकट कर लोगों के सामने रखा और भिन्न-भिन्न औषधियों का वर्णन किया ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ सारे संसार की दवा-दारू कर उसने जगत को रोग-रहित कर दिया और समय पाकर तक्षक द्वारा डसे जाने पर वे पुनः स्वर्गलोक में जा विराजमान हुए ॥ ६ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के सत्तरहवें धन्वंतरि-अवतार की समाप्ति ॥ १७ ॥ शुभ सत्य ॥

सूर्य-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ दिति के पुत्र दैत्यों का

पुत्र अतुल बलि। अरि अनेक जीते जिन जल थल। काल पुरख की आग्या पाई। रवि अवतार धर्यो हरिराई ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ जे जे होत असुर बलवाना। रवि मारत तिन को बिधि नाना। अंधकार धरनी ते हरे। प्रजा काज ग्रिह के उठि परे ॥ २ ॥ ॥ नराज छंद ॥ बिसार आलसं सभै प्रभात लोग जागहीं। अनंत जाप को जपैं बिअंत ध्यान पागहीं। दुरंत करम को करैं अथाप थाप थापहीं। गाइत्री संधियान कै अजाप जाप जापहीं ॥ ३ ॥ सु देव करम आदि लै प्रभात जाग कै करैं। सु जग्ग धूप दीप होम बेद ब्याकरनु चरैं। सु पित्र करम हैं जिते सो बितबित को करैं। सु शास्त्र सिम्रिति उचरंत सु धरम ध्यान को धरैं ॥४॥ ॥ अरध निराज छंद ॥ सु धूंम धूंम धूंम ही। करंत सैन भूंम ही। बिअंत ध्यान ध्यावहीं। दुरंत ठउर पावहीं ॥ ५ ॥ अनंत मंत्र उचरैं। सु जोग जापना करैं। न्रिबान पुरख ध्यावहीं। बिमान अंति

अतुल बल बहुत ही बढ़ गया और उन्होंने जल-स्थल पर अनेकों शत्रुओं को पददलित कर डाला। कालपुरुष की आज्ञा पाकर विष्णु ने सूर्य-अवतार धारण किया ॥१॥ ॥ चौपाई ॥ जहाँ-जहाँ असुरगण बलशाली होते थे, विभिन्न प्रकार से सूर्य उन्हें मार डालते थे। धरती पर से सूर्य अंधकार का नाश करते थे और प्रजा को सुख देने के लिए घर से निकलकर इधर-उधर घूमा करते थे ॥ २ ॥ ॥ नराज छंद ॥ (सूर्य को देखकर) सब लोग आलस्य का त्याग कर प्रातःकाल जागते थे और सर्वव्यापी ईश्वर का ध्यान करते हुए अनेकों प्रकार से जाप करते थे। दुष्कर कर्मों को करते हुए उस कभी भी स्थापित न हो सकनेवाले परमात्मा को मन में स्थापित करते थे और गायत्री-संध्या आदि के जाप करते थे ॥ ३ ॥ सभी लोग प्रभात-बेला में जाप कर देवकर्मों को करते थे और धूप-दीप तथा हवन, यज्ञ आदि के साथ वेद-व्याकरण आदि का विचार करते थे। पितृ-कर्म आदि को अपनी सामर्थ्य आदि के अनुसार करते थे और शास्त्र-स्मृति आदि का उच्चारण करते हुए धर्म-कार्य पर ध्यान लगाते थे ॥ ४ ॥ ॥ अर्ध निराज छंद ॥ चारों ओर यज्ञों का धुआँ ही धुआँ दिखाई देता था और सभी लोग भूमि पर शयन करते थे। अनेकों प्रकार से लोग ध्यान-पूजा करते हुए अगम्य स्थानों (लोकों) की प्राप्ति करते थे ॥ ५ ॥ अनेकों प्रकार के मंत्रों का उच्चारण करते हुए लोग योगों की साधना एवं जाप करते थे। उस निर्वाण परमपुरुष का ध्यान करते थे और अन्त में स्वर्ग-

पावहीं ।। ६ ।। (मू०ग्रं०१८५) ।। दोहरा ।। बहुत काल इम बीत्यो करत धरमु अरु दान । बहुरि असुरि बढियो प्रबल दीर्घ काइ बुलमान ।। ७ ।। ।। चौपई ।। बाण प्रजंत बढत नित-प्रति तन । निस दिन घात करत दिज देवन । दीरघु काइऐ सो रिपु भयो । रवि रथ हटक चलन ते गयो ।। ८ ।। ।। अड़िल ।। हटक चलत रथु भयो भान कोप्यो तबै । अस्त्र शस्त्र लै चल्यो संग लै दल सभै । मंड्यो बिबध प्रकार तहाँ रण जाइकै । हो निरख देव अरु दैत रहे उरझाइकै ।। ९ ।। गह गह पाण क्रिपाण बुबहिया रण भिरे । टूक टूक हुए गिरे न पग पाछे फिरे । अंगनि सोभे घाइ प्रभा अत ही बढे । हो बस्त्र मनो छिटकाइ जनेती से चढे ।। १० ।। ।। अनभव छंद ।। अनहद बज्जे । धुण घण लज्जे । घण हण घोरं । जण बण मोरं ।। ११ ।। ।। मधुर धुन छंद ।। ढल हल ढालं । जिम गुल लालं । खड़ भड़ बीरं । तड़ सड़ तीरं ।। १२ ।। रण

आरोहण के लिए विमानों की प्राप्ति करते थे ।। ६ ।। ।। दोहा ।। इस प्रकार धर्मदान करते हुए बहुत समय बीता और पुनः दीर्घकार्य नामक प्रबल तेजवान असुर पैदा हुआ ।। ७ ।। ।। चौपाई ।। उसका शरीर एक बाण की लम्बाई के बराबर अर्थात् लगभग एक गज रोज़ बढ़ता था और वह रात-दिन देवताओं और द्विजों का नाश करता था । दीर्घराय जैसे शत्रु के पैदा हो जाने पर सूर्य का रथ भी चलने से हिचकिचाने लगा ।। ८ ।। ।। अड़िल ।। जब रथ चलना बन्द हो गया तो सूर्य अत्यन्त क्रोधित होकर अस्त्र-शस्त्र और अपने दल को साथ लेकर चल पड़े । उन्होंने विविध प्रकार से युद्ध प्रारम्भ कर दिए, जिसे देख देवता और दैत्य दोनों ही उलझन में पड़ गए ।। ९ ।। हाथों में कृपाणें लेकर दोनों ओर के लोग रणस्थल मे एक-दूसरे से भिड़ पड़े । वे खण्ड-खण्ड होकर गिरने लगे, परन्तु फिर भी पैर पीछे नहीं हटाते थे । उनके अंगों पर घाव लगने से उनकी शोभा और भी बढ़ने लगी और वे ऐसे लगने लगे, मानो बराती अपने वस्त्रों का प्रदर्शन करते हुए चल रहे हों ।। १० ।। ।। अनभव छंद ।। नगाड़ों की ध्वनि सुनकर बादल भी लजा रहे हैं । चारों ओर से बादलों के समान सेना उमड़ रही है और ऐसा लग रहा है जैसे वन में मोरों का विशाल समूह इकट्ठा हो गया हो ।। ११ ।। ।। मधुर धुन छंद ।। ढालों की चमक ऐसे दिखाई पड़ रही है मानो लाल गुलाब हों । वीरों की खड़बड़ाहट और तीरों की सड़सड़, तड़तड़ ध्वनि सुनाई दे रही है १२ रण में इस

झुण बाजे। जण घण गाजे। ढंमक ढोलं। खड़ रड़ खोलं॥ १३॥ थर हर कंपै। हरि हरि जंपै। रण रंग रत्ते। जण गण मत्ते॥ १४॥ थरकत सूरं। निरखत हूरं। सरबर छुट्टे। कट भट लुट्टे॥ १५॥ चमकत बाणं। फरह निशाणं। चट पट जूटे। अर उर फूटे॥१६॥ नर बर गज्जे। सर बर सज्जे। सिलह सँजोयं। सुरपुर पोयं॥ १७॥ सरबर छूटे। अर उर फूटे। चट पट चरमं। फट फुट बरमं॥ १८॥ ॥ नराज छंद॥ दिनेश बाण पाण लै रिपेश ताक धाइयं। अनंत जुद्ध क्रुद्ध सुद्धु भूम मै मचाइयं। कितेक भाज चालियं सुरेश लोग को गए। निसंत जीत जीत कै अनंत सूरमा लए॥ १९॥ समट्ट सेल सामुहे सरक्क सूर झाड़हीं। बबक्क बाघ ज्यों बली हलक्क हाक मारहीं। अभंग अंग भंग ह्वै उतंग जंग मो गिरे। सुरंग सूरमा सभै निशंग

प्रकार की ध्वनि सुनाई दे रही है, मानो बादल गरज रहे हों। ढोलों की ढमढम और रिक्त पड़े तरकशों आदि की खड़खड़ाहट सुनाई पड़ रही है॥ १३॥ वीर थरथरा रहे हैं और युद्ध की भीषणता देखकर परमात्मा का ध्यान कर रहे हैं। सभी लोग युद्ध में मस्त हैं और युद्ध के रंग में डूबे हुए हैं॥ १४॥ योद्धा इधर-उधर विचरण कर रहे हैं और अप्सराएँ उन्हें निहार रही हैं। वीरों ने सर्वस्व त्याग दिया है और कई सुभट कट कर अपने प्राणों को लुटा चुके हैं॥ १५॥ बाण चमक रहे हैं और ध्वज फहरा रहे हैं। शीघ्रता से बीर एक-दूसरे के समक्ष जुट रहे हैं और उनकी छातियों से रक्त फूटकर बह रहा है॥ १६॥ तीरों से सुशोभित नर वीर गरज रहे हैं। वे लौह-कवचों से सुसज्जित हैं और स्वर्गपुरी को प्रयाण कर रहे है॥ १७॥ श्रेष्ठ बाणों के छूटते ही शत्रु का सीना फट उठता है। ढालें चटपटाकर कट रही हैं और कवच फाड़े जा रहे हैं॥ १८॥ ॥ नराज छंद॥ सूर्य हाथ में बाण लेकर दीर्घकाय शत्रु की ओर दौड़ा और क्रुद्ध होकर भूमि पर भीषण युद्ध छेड़ दिया। कितने ही लोग देवताओं की शरण में भागकर आ गए। निशा का अंत करनेवाले सूर्य ने अनेकों शूरवीरों को जीत लिया॥ १९॥ सामने होकर बरछी को सँभालते हुए शूरवीर बरछी चला रहे हैं और शेर की तरह दहाड़ कर बलवान शूरवीर एक-दूसरे को ललकार रहे हैं। दृढ अंग युद्ध में उछल-गिर रहे हैं और सुदर शूरवीर अभय होकर एक दूसरे के सम्मुख

जान कै अरे ॥ २० ॥ ॥ अरध नराज छंद ॥ नवं निशाण बाजियं । घटा घमंड लाजियं । तबल्ल तुंदरं बजे । सुणंत सूरमा गजे ॥ २१ ॥ सु जूझि जूझि कै परं । सुरेश लोग बिचरं । चड़े बिवान सोभही । अदेव देव लोभही ॥ २२ ॥ ॥ बेली बिद्रम छंद ॥ (मू०ग्रं०१८६) डह डह सु डामर डंकणी । कह कह सु कूकत जोगणी । झम झमक साँग झमक्कियं । रण गाज बाज उथक्कियं ॥ २३ ॥ ढम ढमक ढोल ढमक्कियं । झल झलक तेग झलक्कियं । जट छोर रुद्र तह नच्चियं । बिक्रार मार अह मच्चियं ॥ २४ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ उथके रण बीरण बाज बरं । झमकी घण बिज्जु क्रिपाण करं । लहके रण धीरण बाण उरं । रंग स्रोणत रत्त कढे दुसरं ॥ २५ ॥ फहरंत धुजा थहरंत भटं । निरखंत लजी छबि स्याम घटं । चमकंत सु बाण क्रिपाण रणं । जिम कवँधित सावण बिज्जु घणं ॥ २६ ॥ ॥ दोहरा ॥ कथा ब्रिध

अड़ रहे हैं ॥ २० ॥ ॥ अर्ध नराज छंद ॥ नगाड़ों के बजने की आवाज से घटाएँ भी लजायमान हो रही है । बँधे हुए नगाड़े बज उठे हैं और उनकी ध्वनि सुनकर शूरवीर गरज रहे हैं ॥ २१ ॥ जूझ-जूझकर लड़ाई करते हुए देवगण और देवों के राजा विचरण कर रहे हैं । वे विमानों पर चढ़कर घूम रहे हैं और देव-अदेव सबका हृदय उन्हें देखकर ललचा रहा है ॥ २२ ॥ ॥ बेली बिद्रम छंद ॥ डाकिनियों के डमरू की ध्वनि, योगिनियों का चीत्कार सुनाई पड़ रहा है । बरछे झम-झमाझम चमक रहे हैं और रणस्थल में हाथी-घोड़े उछल रहे हैं ॥ २३ ॥ ढोल की ढमा-ढम सुनाई पड़ रही है और कृपाणों की चमक झलक रही है । रुद्र भी वहाँ जटाओं को खुला छोड़कर नृत्य कर रहे हैं और विकराल युद्ध वहाँ छिड़ा हुआ है ॥ २४ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ युद्ध में वीरों के सुन्दर अश्व उछल पड़े हैं और जिस प्रकार बादल में बिजली चमकती है, वीरों के हाथों में कृपाणें चमक उठी हैं । रणधीरों के वक्षों में बाण घुसे हुए दिखाई दे रहे हैं और एक-दूसरे का रक्त निकाल रहे हैं ॥ २५ ॥ ध्वजाएँ फहरा रही हैं और शूरवीर भयभीत हो उठे हैं । बाणों और कृपाणों की चमक को देखकर काली घटाओं में बिजली भी लजायमान हो उठी है । अथवा [illegible] दृश्य ऐसा लग रहा है मानो सावन की घनघोर घटा में बिजली कौंध रही हो ॥ २६ ॥ ॥ दोहा ॥ [illegible] के लड़ा हे [illegible] भय के कारण मैं

ते मै डरो कहाँ करो बख्यान । निसाहंत असुरेश सो सर ते भयो निदान ॥ २७ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके सूरज अवतार अशटदसमो अवतार समापत ॥ १८ ॥

अथ चंद्र अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ दोधक छंद ॥ फेरि गनो निसराज बिचारा । जैस धर्यो अवतार मुरारा । बात पुरातन भाख सुनाऊँ । जा ते कबकुल सरब रिझाऊँ ॥ १ ॥ ॥ दोधक ॥ नैक क्रिसा कहु ठउर न होई । भूखन लोग मरं सम कोई । अंधि निसा दिन भानु जरावै । ताते क्रिस कहूँ होम न पावै ॥ २ ॥ लोग सभै इह ते अकुलाने । भाजि चले जिम पात पुराने । भाँत ही भाँत करे हरि सेवा । ताँ ते प्रसंन भए गुरदेवा ॥ ३ ॥ नारि न सेव करैं निज नाथं । लीने ही रोसु फिरैं जिय साथं । कामनि कामु कहूँ न संतावै । काम बिना कोऊ कामु न भावै ॥ ४ ॥ ॥ तोमर छंद ॥ पूजे

कहाँ तक वर्णन करूँ कि अन्त में सूर्य का बाण ही उस दैत्य के अन्त का कारण बना ॥ २७ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक में सूर्य-अवतार अठारहवें की समाप्ति ॥ १८ ॥

चन्द्र-अवतार-कथन प्रारम्भ ॥

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ दोधक छंद ॥ अब मैं चन्द्रमा का विचार करता हूँ कि किस प्रकार विष्णु ने (चन्द्र) अवतार धारण किया । मैं बहुत ही प्राचीन कथा कह रहा हूँ, जिसे सुनकर सभी कविगण प्रसन्न हो उठेंगे ॥ १ ॥ ॥ दोधक ॥ कहीं पर भी तनिक सी भी कृषि नहीं होती थी और लोग भूखे मर रहे थे । रातें अंधकारपूर्ण थीं और दिन में सूर्य जलाता था, इसी कारण से कहीं पर भी कुछ भी उत्पन्न नहीं हो पाता था ॥ २ ॥ इस कारण सब जीव आकुल थे और इसी प्रकार नष्ट हो रहे थे जैसे पुराने पत्ते नष्ट हो जाते हैं । सबने विभिन्न प्रकार से पूजा, अर्चना, सेवा की जिससे परम गुरुदेव (अकालपुरुष) प्रसन्न हो उठे ॥ ३ ॥ (उस समय स्थिति यह थी कि) स्त्री अपने पति की सेवा नहीं करती थी और सदैव उससे अप्रसन्न ही विचरण करती थी । स्त्रियों को कभी काम नहीं सताता था और काम वासना के अभाव में सृष्टि की प्रगति के बारे

न को त्रिया नाथ। ऐंठी फिरै जिय साथ। दुखु वै न तिन कहु काम। ता ते न बिनवत बाम ॥ ५ ॥ करहै न पति की सेव। पूजै न गुर गुरदेव। धरहैं न हरि को ध्यान। करिहैं न नित इशनान ॥ ६ ॥ तब कालपुरख बुलाइ। बिशनै कह्यो समझाइ। ससि को धरहु अवतार। नही आन बात बिचार ॥ ७ ॥ तब बिशन सीस निवाइ। करि जोरि कही बनाइ। धरिहों दिनांतवतार। जित होइ जगत कुमार ॥८॥ तब महाँ तेज मुरार। धरियो सु चंद्र अवतार। तन कै मदन को बान। मार्यो त्रियन कह तान ॥ ९ ॥ ता ते भई त्रिय (मू०ग्रं०१८७) दीन। सभ गरब हुइ ग्यो छीन। लागी करन पति सेव। याते प्रसंनि भए देव ॥१०॥ बहु क्रिसा लागी होन। लख चंद्रमा की जौन। सभ भए सिध बिचार। इम भयो चंद्र अवतार ॥ ११ ॥ ॥ चौपई ॥ इम हरि धरा चंद्र अवतारा। बढ्यो गरब लहि रूप अपारा। आन किसू

कार्य ठप्प पड़ गए थे ॥ ४ ॥ ॥ तोमर छंद ॥ कोई स्त्री पति की पूजा नहीं करती थी अपितु अपनी ही अकड़ में रहती थी। न कोई उनको दुःख था और न ही वे काम-वासना से पीड़ित थीं, इसलिए उनमें विनय की भावना का भी अभाव हो गया था ॥ ५ ॥ न तो वे पति की सेवा करती थीं और न ही गुरुजनों की पूजा-अर्चना करती थी। न तो वे परमात्मा का ध्यान करती थीं और न ही नित्यप्रति स्नान आदि करती थीं ॥ ६ ॥ तब कालपुरुष ने विष्णु को बुलाकर उसे समझाकर कहा कि तुम बिना किसी अन्य बात का विचार किये हुए चन्द्रमा का अवतार धारण करो ॥ ७ ॥ तब विष्णु ने सिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर कहा कि मैं चन्द्रावतार धारण करता हूँ, ताकि जगत् में सौंदर्य की वृद्धि हो सके ॥ ८ ॥ तब महातेजस्वी विष्णु ने चंद्रावतार धारण किया और कामदेव के बाणों को खींच-खींचकर उसने स्त्रियों की ओर चलाया ॥ ९ ॥ इससे स्त्रियाँ विनम्र हो गयीं और उनका सारा गर्व क्षीण हो गया। वे पुनः पति-सेवा करने लगीं जिससे सभी देवगण भी प्रसन्न हो उठे ॥ १० ॥ चन्द्र को देखकर कृषि-कार्य प्रभूत मात्रा में होने लगा। इस प्रकार सभी विचाराधीन कार्य सिद्ध होने लगे और इस प्रकार चन्द्रावतार का प्रादुर्भाव हुआ ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार विष्णु ने चन्द्रावतार धारण किया, परन्तु चन्द्रमा भी अपने स्वरूप की सुन्दरता पर गर्व करने लग गया उसने भी अन्य किसी का ध्यान करना बंद कर दिया इसी कारण

कहु चित न लिआयो। ता ते ताहि कलंक लगायो ॥ १२ ॥ भजत भयो अंबर की दारा। ता ते किय मुन रोस अपारा। किसनारजुन म्रिग चरम चलायो। तिह करि ताहि कलंक लगायो ॥ १३ ॥ स्राप लग्यो ताँको मुन संदा। घटत बढत ता दिन ते चंदा। लजित अधिक हिरदे मो भयो। गरब अखर्ब दूर हुइ गयो ॥ १४ ॥ तपसा करी बहुत तिह काला। कालपुरख पुन भयो दिआला। छई रोग तिह सकल बिनासा। भयो सूर ते ऊच निवासा ॥ १५ ॥

॥ इति चंद्र अवतार उनीसवों ॥ १९ ॥ सुभम सतु ॥

१ ओं अथ बीसवाँ राम अवतार कथनं ॥

॥ चौपई ॥ अब मै कहो राम अवतारा। जैस जगत मो करा पसारा। बहुतु काल बीतत भ्यो जबै। असुरन बंस प्रगट भ्यो तबै ॥ १ ॥ असुर लगे बहु करै बिखाधा। किनहूँ

उस पर भी कलंक लग गया ॥ १२ ॥ वह गौतम ऋषि की स्त्री में अनुरक्त हो गया जिससे ऋषि मन में अत्यन्त क्रोधित हुआ। ऋषि ने मृगचर्म से इस पर प्रहार किया जिससे इसके शरीर पर दाग़ पड़ गया और इसको कलंक लग गया ॥ १३ ॥ मुनि का श्राप इसे लगा जिससे यह नित्य घटता-बढ़ता रहता है। इस सारे घटनाक्रम से यह अत्यन्त लज्जित हुआ और इसका अत्यधिक गर्व चूर हो गया ॥ १४ ॥ पुन: इसने लम्बी अवधि तक तपस्या की, जिससे कालपुरुष पुनः इस पर दयालु हो उठे। चन्द्रमा के क्षयरोग का नाश हो गया और (परमपुरुष) काल-पुरुष की कृपा से इसे सूर्य से भी ऊँचा स्थान प्राप्त हो गया। (योगी लोग मानते हैं कि शरीर में अवस्थित गगनमंडल में चन्द्र का स्थान सूर्य से ऊपर है और चन्द्र से हमेशा अमृत झरता रहता है जो सूर्य पर पड़ते ही सूख जाता है। अत: योगी खेचरी मुद्रा के माध्यम से इस अमृत पान का प्रयत्न करते हैं।) ॥ १५ ॥

॥ इति चन्द्र-अवतार उन्नीसवाँ समाप्त ॥ १९ ॥ शुभ सत्य ॥

बीसवाँ राम-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ चौपाई ॥ अब मैं रामावतार कहता हूँ और वर्णन करता हूँ कि जगत में (इस अवतार ने) कैसी लीला दिखाई। बहुत समय बीतने पर असुरों के वंश में पुन वृद्धि होने लगी १। असुर बहुत उत्पात

न तिनै तनक मै साधा । सकल देव इकठे तब भए । छीर समुंद्र जह थो तिह गए ॥ २ ॥ बहु चिर बसत भए तिह ठामा । बिशन सहित ब्रहमा जिह नामा । बार बार ही दुखत पुकारत । कान धरी कल के धुनि आरत ॥ ३ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ बिशनादक देव लगे बिमनं । म्रिद हास करी कर काल धुनं । अवतार धरो रघुनाथ हरं । चिर राज करो सुख सो अवधं ॥ ४ ॥ बिशनेश धुणं सुण ब्रहम मुखं । अब सुद्ध चली रघुबंस कथं । जु पै छोर कथा कवि याह रढै । इन बातन को इक ग्रंथ बढै ॥ ५ ॥ तिह ते कही थोरिऐ बीन कथा । बलि त्वं उपजी बुध मद्धि जथा । जह भूलि भई हम ते लहियो । सु कबो तह अच्छ्र बना (मू०ग्रं०१८८) कहियो ॥ ६ ॥ रघुराज भयो रघुबंस मणं । जिह राज कर्यो पुर अउध घणं । सोऊ काल जिण्यो न्रिपराज जबं । भुअ राज कर्यो अज राज तबं ॥ ७ ॥ अज राज हण्यो जब काल बली । सु न्रिपत कथा दसरथ चली । चिर राज करो

करने लगे और कोई भी उन्हें सीधा न कर सका। तब सभी देवता एकत्र हुए और क्षीरसागर में गए ॥ २ ॥ वहाँ विष्णु और ब्रह्मा-समेत वे बहुत समय तक रहे। बार-बार वे दुःखी होकर पुकारने लगे और उनकी यह आकुलता पूर्ण कालपुरुष के कानों में जा पड़ी ॥ ३ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ विष्णु आदि देवताओं को जब विमानों में वहाँ देखा तो कालपुरुष ध्वनि करते हुए मुस्कुराने लगे। (कालपुरुष ने विष्णु को कहा कि) हे विष्णु ! तुम रघुनाथ (राम) का अवतार धारण करो और अवध में एक लबी अवधि तक राज करो ॥ ४ ॥ परब्रह्म के मुख से विष्णु ने आज्ञा सुनी (और शिरोधार्य की)। अब रघुवंश की कथा प्रारम्भ होती है। यदि कवि पूरी कथा कहने लगे तो इस कथा की सम्पूर्ण बातों से एक अन्य ग्रंथ भर जाएगा ॥ ५ ॥ इसलिए मैं महत्त्वपूर्ण कथा को, हे परमात्मा ! तुम्हारी दी हुई बुद्धि के बल से संक्षेप में कहता हूँ। जो भूल हमसे हो जाय, उसके लिए मैं उत्तरदायी हूँ, इसलिए, हे प्रभु ! अच्छी भाषा के माध्यम से वह काव्य कहने की कृपा करना ॥ ६ ॥ राजा रघु रघुवंश की माला मे मणि के समान शोभायमान थे। उन्होंने अवध नगरी में बहुत समय तक राज किया। जब काल के प्रभाव से राजा रघु का अन्त हुआ तो राजा अज ने भूमंडल पर राज किया ॥ ७ ॥ जब राजा अज भी बलशाली कालपुरुष के चक्र के कारण नष्ट हुए तो रघुवंश की

सुख सो अवधं। ब्रिग मार बिहार बणं सु प्रभं ॥ ८ ॥ जग धरम कथा प्रचुरी तब ते। सु मित्रेश महीप भयो जब ते। दिन रैंण बनेसन बीच फिरै। म्रिगराज करी म्रिग नेत हरै ॥ ९ ॥ इह भाँति कथा उह ठौर भई। अब राम जया पर बात गई। कुहड़ाम महाँ सुनिऐ शहरं। तह कौसलराज न्रिपेश बरं ॥ १० ॥ उपजी तह धाम सुता कुशलं। जिह जीत लई सस अंग कलं। जब ही सुध पाइ सुयंब्र कर्यो। अवधेश नरेशह चीन्ह बर्यो ॥ ११ ॥ पुनि सैन समित्र नरेश बरं। जिह जुध लयो मद्र देस हरं। सुमित्रा तिह धाम भई दुहिता। जिह जीत लई सस सूर प्रभा ॥ १२ ॥ सोऊ बारि सबुद्ध भई जब ही। अवधेशह चीन बर्यो तब ही। गन ब्याह भयो कशटुआर न्रिपं। जिह केकई धाम सु तासु प्रभं ॥ १३ ॥ इन ते ग्रह मो सुत जउन थिओ। तब बैठ नरेश बिचार किओ। तब केकई नार बिचार करी। जिह

कथा राजा दशरथ के कंधों पर आगे बढ़ी। उसने भी सुखपूर्वक अवध मे राज किया और मृगया करते हुए वनों में सुखपूर्वक विचरण किया ॥८॥ जब से सुमित्रा के पति दशरथ राजा बने, तब से यज्ञधर्म आदि का और अधिक प्रसार-प्रचार हो गया। राजा रात-दिन वनों में भ्रमण करता था और शेर, हाथी तथा मृगों का शिकार किया करता था ॥ ९ ॥ इस प्रकार यह कथा वहाँ (अवध में) चलती रही और अब राम की जननी की बात हमारे समक्ष आती है। कुहड़ाम नामक नगर में एक वीर राजा था जिसे कौशलराज कहते थे ॥ १० ॥ उसके घर में चन्द्रमा की कलाओं की सुन्दरता को भी जीत लेनेवाली अत्यन्त रूपवती कन्या कौशल्या पैदा हुई। जब वह बड़ी हुई तो उसने स्वयंवर के माध्यम से स्वयं चुनकर अवधनरेश (दशरथ) का वरण कर लिया ॥ ११ ॥ मद्र देश को जीतने वाला बलवान और प्रतापी राजा सौमित्र था और उसके घर पर सुमित्रा नामक कन्या थी। वह कन्या इतनी रूपवती और तेजवान थी मानो उसने सूर्य और चन्द्रमा की कलाओं को जीत लिया हो ॥ १२ ॥ जब उसका बचपन बीता और उसने यौवनकाल में प्रवेश किया तब उसने भी अवधनरेश (दशरथ) से विवाह कर लिया। इसी प्रकार केकय प्रदेश के राजा के साथ हुआ, जिसके घर में कैकेयी नामक प्रभायुक्त कन्या थी; अर्थात् राजा दशरथ का विवाह कैकेयी के साथ हो गया ॥ १३ ॥ (कैकेयी के पिता ने यह जानते हुए कि पहले ही राजा की दो रानियाँ है) कैकेयी के साथ विचार विमर्श किया कि जो पुत्र कैकेयी से पैदा होगा,

ते सस सूरज सोम धरी ।। १४ ।। तिह ब्याहत माँग लए दुवरं । जिह ते अवधेश के प्राण हरं । समझी न नरेशर बात हिए । तब ही तह को बर दोइ दिए ।। १५ ।। पुन देव अदेवन जुद्ध परो । जह जुद्ध घणो न्रिप आप करो । हत सारथो स्यंदन नार हक्यो । यह कौतक देख नरेश चक्यो ।।१६।। पुन रीझ दए दोऊ तीअ बरं । चित मो सु बिचार कछू न करं । कही नाटक मद्ध चरित्र कथा । जय दीन सुरेश नरेश जथा ।। १७ ।। अरि जीति अनेक अनेक बिधं । सभ काज नरेश्वर कीन सिधं । दिन रैण बिहारत मद्धि बणं । जल नैन दिजाइ तहां स्रवणं ।। १८ ।। पित मात तजे दोऊ अंध भुयं । गहि पात चल्यो जलु लैन सुयं । मुनि नो दिल काल सिधार तहाँ । न्रिप बैठ पतउवन बाँध तहाँ ।। १९ ।। भभकंत घटं (मू०ग्रं०१८६) अति नादि हुअं । धुनि कान परी अज राजसुअं । गहि पाण सु बाणहि तान धनं । म्रिग जाण दिजं सर सुद्ध

उसका भविष्य क्या होगा । कैकेयी सूर्य-चन्द्र के समान अत्यन्त रूपवती थी ।। १४ ।। विवाह करते ही उसने राजा से दो वर माँग लिये और (बाद में) इन्हीं वरदानों के कारण राजा का प्राणान्त हुआ । उस समय राजा इस बात के रहस्य को न समझ सका और उसने दोनों वरदान रानी को दे दिए ।। १५ ।। फिर एक बार देव-दानवों का युद्ध हुआ और उसमें राजा ने (देवों की ओर से) भीषण युद्ध किया । उस युद्ध में राजा का सारथी मारा गया तो कैकेयी ने रथ का संचालन किया । यह देखकर राजा आश्चर्यचकित रह गया ।। १६ ।। राजा ने फिर प्रसन्न होकर रानी को दो वरदान दिए । राजा ने किसी भी आशंका का चित्त में विचार नहीं किया । राजा ने किस प्रकार देवराज इन्द्र की जीत होने में सहयोग दिया, इस कथा को नाटक में बतला दिया गया है ।। १७ ।। अनेकों प्रकार से शत्रुओं को जीतकर राजा ने अपनी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण कीं । दिन-रात राजा वनों में (क्रीडाएँ करते हुए) विचरण करता था । वहीं एक बार श्रवणकुमार नामक द्विज पानी लेने के लिए घूम रहा था ।। १८ ।। अंधे माता-पिता को धरती पर बैठा छोड़कर वह पुत्र घड़ा हाथ में लेकर पानी के लिए निकला था । उस ब्राह्मण मुनि को कालचक्र ने उस ओर भेज दिया, जहाँ राजा अपना खेमा लगाकर (विश्राम करने) रुका था ।। १९ ।। घड़े को पानी से भरने पर घड़घड़ की आवाज़ हुई और यह ध्वनि राजा ने सुनी । राजा ने बाण को धनुष पर चढ़ाकर

हनं ॥ २० ॥ गिर ग्यो सु लगे सर सुद्ध मुनं । निसरी मुख ते हहकार धुनं । म्रिगनांत कहा न्रिप जाइ लहै । दिज देख दोऊ कर दांत गहै ॥ २१ ॥ ॥ सरवण बाचि ॥ कछु प्रान रहे तिह मद्ध तनं । निकरंत कहा जिय बिप्र न्रिपं । मुर तातरमात न्रिचचछ परे । तिह पान पिआइ न्रिपाध मरे ॥ २२ ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ बिन चचछ भूप दोऊ तात मात । तिन देह पान तुह कहौ बात । मम कथा न तिन कहियो प्रबीन । सुनि मर्यो पुत्र तेउ होहि छीन ॥ २३ ॥ इह भांत जबै दिज कहै बैन । जल सुनत भूप चुइ चले नैन । ध्रिग मोह जिनसु कीनो कुकरम । हति भयो राज अरु गयो धरम ॥ २४ ॥ जब लयो भूप तिह सर निकार । तब तजे प्राण मुन बर उदार । पुन भयो राव मन मै उदास । ग्रिह पलट जान की तजी आस ॥ २५ ॥ जिय ठटी की धारो जोग भेस । कहूँ बसौ जाइ बनि त्यागि देस । किह काज मोर यह राज साज ।

खींचा और उस ब्राह्मण को मृग समझकर उस पर बाण चला दिया और उसे मार दिया ॥ २० ॥ बाण लगते ही वह तपस्वी गिर पड़ा और उसके मुँह से हाहाकार की ध्वनि निकली । मृग कहाँ मरा है, यह देखने के लिए राजा उस ओर चला परन्तु ब्राह्मण को देखकर दाँतों-तले उँगली दबा बैठा ॥ २१ ॥ ॥ श्रवण उवाच ॥ श्रवण के शरीर में अभी कुछ प्राण बाक़ी थे । निकलते हुए प्राणों के साथ द्विज ने राजा से कहा कि मेरे माता-पिता अंधे हैं और उस ओर पड़े हुए हैं । तुम उन्हें पानी पिला दो, ताकि मैं संशय-रहित होकर मर सकूँ ॥ २२ ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ हे राजा ! मेरे माता-पिता दोनों चक्षुविहीन हैं । तुम मेरी बात सुनो और उन्हें पानी दे दो । मेरी कहानी उनसे मत कहना, अन्यथा वे तड़प-तड़प कर क्षीण होकर मर जायँगे ॥ २३ ॥ जब इस प्रकार ब्राह्मण श्रवणकुमार ने ये बातें कहीं और राजा ने पानी की बात सुनी तो उसकी आँखों से आँसू बहने लगे । राजा कहने लगा कि मुझे धिक्कार है, जिसने यह कुकर्म किया है । इससे मेरा राजधर्म नष्ट हो गया है और मैं धर्महीन हो गया हूँ ॥ २४ ॥ जब राजा ने श्रवण को सरोवर में से निकाल लिया, तब उस तपस्वी श्रवण ने प्राण त्याग दिए । पुनः राजा उदास हो गया और उसने वापस अपने घर पहुँचने की आशा त्याग दी ॥ २५ ॥ उसके मन में आया कि अब मैं योगी का वेश धारण कर लूँ और त्याग कर वन में जा बसूँ मेरे इस राजसाज का क्या अर्थ है, जिसने ब्राह्मण

द्विज मारि कियो जिन अस कुकाज ।।२६।। इह भाँत कही पुनि न्रिप प्रबोल । सभ जगति काल कर मै अधीन । अब करो कछू ऐसो उपाइ । जा ते सु बचै तिह तात माइ ।। २७ ।। उरि लयो कुंभ सिर पै उठाइ । तह गयो जहाँ द्विज तात माइ । अब गयो निकट तिन के सु धार । तब लखी दुहूँ तिह पाव चार ।। २८ ।। ।। दिज बाच राजा सों ।। कह कहो पुत्र लागी अबार । सुनि रह्यो मोन भूपत उदार । फिरि कह्यो काहि बोलत न पूत । चुप रहे राज लहिकैं कसूत ।। २९ ।। न्रिप दियो पान तिह पान जाइ । चकि रहे अंध तिह कर छुहाइ । कर कोप कह्यो तू आहि कोइ । इम सुनत शबद न्रिप दयो रोइ ।। ३० ।। ।। राजा बाच दिज सों ।। हउ पुत्र घात तव ब्रहमणेश । जिह हन्यो स्रवण तव सुत सुवेश । मै पर्यो सरण दसरथ राइ । चाहो सु करो मोहि बिप्प आइ ।। ३१ ।। राखै तु राख मारै तु मार । मै परो शरण तुमरै दुआर । तब कही किनो दसरथ राइ । बहु काष्ट अगन (मू०ग्रं०१९०) दूं देह

को मारकर आज यह कुकर्म किया है ।। २६ ।। इस प्रकार राजा ने पुनः कहा कि मैंने सारे ससार के घटना-चक्र को अपने वश में कर लिया है (परन्तु यह मुझसे क्या हो गया) । अब मुझे कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे इसके माता-पिता जीवित बचे रह सकें ।। २७ ।। राजा ने पानी का घड़ा भरकर सिर पर उठा लिया और वहाँ पहुँचा जहाँ श्रवण के माता-पिता थे । जब राजा दबे पाँव उनके निकट पहुँचा तो उन दोनों ने (किसी के आने की) पदचाप सुनी ।। २८ ।। ।। द्विज उवाच राजा के प्रति ।। हे पुत्र ! कहो इतनी देर क्यों लग गई ? यह सुनकर विशाल हृदय राजा चुप ही रहा । फिर उन्होंने कहा, पुत्र ! तुम बोलते क्यों नहीं हो । राजा फिर भी अनिष्ट की आशंका से चुप ही रहा ।। २९ ।। राजा ने पास जाकर उनके हाथ में पानी दिया तो राजा के हाथ को छूते ही वे नेत्रहीन चकित हो उठे और क्रोधित होकर पूछने लगे कि बता तू कौन है ? यह शब्द सुनते ही राजा रो उठा ।। ३० ।। ।। राजा उवाच द्विज के प्रति ।। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे पुत्र का घातक हूँ । मैंने ही तुम्हारे पुत्र को मार डाला है । मैं दशरथ आपकी शरण में हूँ । हे ब्राह्मण ! आप जैसा चाहें मुझसे व्यवहार करें ।। ३१ ।। आप चाहें तो मेरी रक्षा करें अन्यथा मुझे मार दें· मैं आपकी शरण में हूँ आपके समक्ष पड़ा हूँ तब राजा दशरथ ने उनके कहने पर अपने किसी अनुचर से

मँगाइ ।। ३२ ।। तब लियो अधिक काशट मँगाइ । चड़ बैठे तहाँ सल्ह कुँड बनाइ । चहूँ ओर दई ज्वाला जगाइ । द्विज जान गई पावक सिराइ ।।३३।। तब जोग अगनि तन ते उप्राज । दुहूँ मरन जरन को सज्यो साज । ते भसम भए तिह बीच आप । तिह कोप दुहूँ न्रिप दियो स्राप ।। ३४ ।। ।। द्विज बाच राजा सों ।। जिम तजे प्राण हम सुति बिछोह । तिम लगो स्राप सुन भूप तोह । इम भाख जर्‌यो द्विज सहित नारि । तज देह कियो सुरपुर बिहार ।। ३५ ।। ।। राजा बाच ।। तब चहो भूप हउँ जरों आज । कै अतिथ होउँ तज राज साज । कै ग्रहि जै कै करहों उचार । मै दिज आयो निज कर सँघार ।। ३६ ।। ।। देवबानी बाच ।। जब भई देववानी बनाइ । जिन करो दुक्ख दसरथ राइ । तब धाम होहिगे पुत्र बिशन । सभ काज आज सिध भए जिसन ।। ३७ ।। ह्वैहै सु नाम रामावतार । कर है सु सकल जग को उधार । कर है सु तनक मै दुश्ट नास । इह भाँत कीर्ति करहै प्रकास ।। ३८ ।। ।। नराज छंद ।। नबित भूप चित धाम राम

कहा कि बहुत सी लकड़ी जलाने के लिए मँगाई जाय ।। ३२ ।। बहुत सी लकड़ी मँगाई गई, तब वे चिता बनवाकर उस पर जा बैठे और चारों ओर अग्नि प्रज्वलित कर दी गई तथा इस प्रकार अग्नि के कारण द्विजों का प्राणान्त हुआ ।। ३३ ।। तब उन्होंने अपने शरीर से योगाग्नि पैदा की और भस्मीभूत होने को उद्यत हुए । वे दोनों स्वयं भस्म हो गए और (अन्तिम समय) क्रोधित होकर उन्होंने राजा को श्राप दिया ।। ३४ ।। ।। द्विज उवाच राजा के प्रति ।। जिस प्रकार पुत्र-वियोग में हम प्राण त्याग रहे हैं, हे राजा ! यही अवस्था तुम्हारी भी होगी ! यह कहकर द्विज अपनी पत्नी-सहित जल गया और स्वर्ग सिधार गया ।। ३५ ।। ।। राजा उवाच ।। तब राजा ने इच्छा व्यक्त की कि वह भी या तो आज जल मरेगा अन्यथा राजकाज त्यागकर वन में चला जायगा । मैं घर जाकर क्या कहूँगा कि मैं आज अपने हाथों से ब्राह्मण की हत्या करके आ रहा हूँ ।। ३६ ।। ।। देववाणी उवाच ।। तब आकाशवाणी हुई कि हे दशरथ ! शोक मत करो, तुम्हारे घर में पुत्र के रूप में विष्णु जन्म लेगा और उससे तुम्हारे आज के पापकर्म का नाश होगा ।। ३७ ।। वह रामावतार के नाम से प्रसिद्ध होगा और वह सारे संसार का उद्धार करेगा वह क्षण भर में दुष्टों का नाश कर देगा और इस प्रकार उसकी कीर्ति चारों ओर

राइ आइहैं। दुरंत दुष्ट जीत कै सु जैत पत्र पाइहैं। अखरब गरब जे भरे सु सरब गरब घाल हैं। फिराइ छत्र सीस पै छतीस छोण पाल हैं॥ ३९॥ अखंड खंड खंड कै अडंड डंड डंड हैं। अजीत जीत जीत कै बिसेख राज मंड हैं। कलंक दूर कै सभै निशंक लंक घाइ हैं। सु जीत बाहु बीस गरब ईस को मिटाइ हैं॥ ४०॥ सिधार भूप धाम को इतो न शोक को धरो। बुलाइ बिप्प छोड़ के अरंभ जग्ग को करो। सुणंत बैण राव राजधानिऐ सिधारिअं। बुलाइकै बशिष्ट राजसूइ को सु धारिअं॥ ४१॥ अनेक देस देस के नरेश बोलकै लए। दिजेश बेस बेस के छितेश धाम आ गए। अनेक भांत मान कै दिवान बोलकै लए। सु जग्ग राजसूइ को अरंभ ता दिना भए॥ ४२॥ सु पादि अरघ आसनं अनेक धूप दीप कै। पखार पाइ ब्रहमणं प्रदच्छणा बिसेख दै। करोर कोर दच्छना दिजेक एक कउ दई। सु जग्ग राजसूइ को अरंभ ता दिना (मू०ग्रं०१९१) भई॥ ४३॥ नटेश देस देस के अनेक

प्रकाशित होगी॥ ३८॥ ॥ नराज छंद॥ हे राजा! तुम चिन्ता को छोड़कर अपने घर जाओ। तुम्हारे घर पर राजा राम आयेंगे। दुष्टों को जीतकर वे सबसे विजयपत्र प्राप्त करेंगे। जो लोग गर्व से भरे हैं, उनका गर्व चूर करेंगे। वे सिर पर छत्र फिराकर सबका पालन करेंगे॥३९॥ वह महाबलशालियों का खंडन कर ऐसे लोगों को दंडित करेंगे, जिन्हें आज तक कोई दण्डित नहीं कर सका है। वे अजेय लोगों को जीतकर अपने राज्य को बढ़ायेंगे और सभी कलंकों को दूर करते हुए निश्चित रूप से लंका को विजय करेंगे तथा रावण को जीतकर उसका गर्व चूर करेंगे॥ ४०॥ हे राजन्! तुम शोक को त्यागकर अपने घर जाओ और विप्रों को बुलाकर यज्ञ आरंभ करो। यह बात सुनकर राजा राजधानी में आ गया और वशिष्ठ मुनि को बुलाकर उसने राजसूय यज्ञ करने का निश्चित किया॥ ४१॥ अनेक देशों के राजाओं को बुलाया गया और विभिन्न वेशधारी ब्राह्मण भी राजा के पास आ गए। राजा ने अनेक प्रकार से सबका सम्मान किया और राजसूय यज्ञ आरंभ हो गया॥ ४२॥ ब्राह्मणों के चरण धोकर उन्हें समुचित आसन देकर एवं धूप-दीप जलाकर राजा ने विशेष रूप से ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा की। करोड़ों मुद्राओं की दक्षिणा प्रत्येक ब्राह्मण को दी गई और इस प्रकार राजसूय यज्ञ का आरम्भ हुआ ४३ विभिन्न देशों के नट एवं गायक

गीत गावही । अनंत दान मान लै बिसेख सोभ पावही । प्रसन्नि लोग जे भए सु जात कउन ते कहे । बिमान आसमान के पछान मो न हुइ रहे ॥ ४४ ॥ छुती छिती अपचछरा चली सुवर्ग छोर कै । बिसेख हाइ भाइ कै नचंत अंग मोर कै । बिअंत भूप रीझही अनंत दान पावहीं । बिलोक अछरान को अपचछरा लजावहीं ॥ ४५ ॥ अनंत दान मान दै बुलाइ सूरमा लए । दुरंत सैन संग दै दसो दिसा पठै दए । नरेश देस देस के न्रिपेश पाइ पारिअं । महेश जीत कै सभै सु छत्रपत्र धारिअं ॥ ४६ ॥ ॥ रूआमल छंद ॥ जीत जीत न्रिपं नरेसुर शत्र मित्र बुलाइ । बिप्र आदि बिशिष्ट ते लै कै सभै रिखराइ । क्रुद्ध जुद्ध करे घने अवगाहि गाहि सुदेश । आन आन अवधेश के पग लागिअं अवनेश ॥ ४७ ॥ भाँति भाँतिन दै लए सनमान आन न्रिपाल । अरब खरबन दरब दै गजराज बाज बिसाल । हीर चीर न को सकै गन जटत जीन जराइ । भाउ भूखन को

गीत गाने लगे और विभिन्न प्रकार के मान-सम्मान प्राप्त कर विशिष्ट प्रकार से शोभायमान होने लगे । लोगों की प्रसन्नता का वर्णन नहीं किया जा सकता और आकाश में देवताओं के विमान भी इतने थे कि पहचाने नहीं जा रहे थे ॥ ४४ ॥ स्वर्ग की अप्सराएँ स्वर्ग छोड़कर विशेष हाव-भाव से अपने अंगों को मोड़कर नृत्य कर रही थीं । अनेकों राजा प्रसन्न होकर दान दे रहे थे तथा सुन्दर रानियों को देखकर अप्सराएँ भी लज्जित हो रही थीं ॥ ४५ ॥ राजा ने अनेक शूरवीरों को अनेक प्रकार के दान और सम्मान देकर बुलाया और दुर्जेय सेना देकर उन्हें दसों दिशाओं में भेज दिया । उन्होंने देश-देशान्तरों के राजाओं को विजय कर राजा दशरथ के चरणों में गिरा दिया और इस प्रकार सारी पृथ्वी के राजाओं को जीतकर क्षत्रपति सम्राट् दशरथ के सम्मुख ला उपस्थित किया ॥४६॥ ॥ रूआमल छंद ॥ राजा ने अन्य नरेशों को जीतकर शत्रुओं एवं मित्रों तथा वशिष्ठ आदि ऋषियों से लेकर सामान्य ब्राह्मणों तक सबको अपनी ओर मिला लिया । (जो राजा की ओर नहीं मिले उनसे) राजा ने क्रुद्ध होकर युद्ध में उनका विनाश कर दिया और इस प्रकार सारी धरती के राजा अवध-नरेश के चरणों में आ पड़े ॥ ४७ ॥ सभी राजाओं को विभिन्न प्रकार से सम्मानित किया गया और उन्हें अरबों-खरबों मुद्राओं के बराबर द्रव्य एवं हाथी-घोड़े दिए गए । हीरे-वस्त्र आदि क्या मणि-जटित घोड़ों की काठियों की तो गणना ही नहीं की जा सकती और आभूषणों

कहै बिध ते न जात बताइ ॥ ४८ ॥ पशम ब्रस्त्र पटंबरादिक दिए भूखन भूप । रूप अरूप सरूप सोभित कउन इंद्र कुरूपु । दुस्ट पुस्ट त्रसैं सभै थरहर्यो सुनि गिरराइ । काटि काटिन दै मुझैं न्रिप बाँटि बाँटि लुटाइ ॥ ४९ ॥ बेदधुन करि कै सभै दिज किअस जग्य अरभ । भाँति भाँति बुलाइ होमत रित्तजात असंभ । अधिक मुनिबर जउ कियो बिध पूरब होम बनाइ । जग कुंडहु ते उठे तब जगपुरख अकुलाइ ॥ ५० ॥ छीर पात्र कढाइ लै करि दीन न्रिप के आन । भूप पाइ प्रसंनि भ्यो जिमु दारदी लै दान । चत्र भाग कर्यो तिसैं निज पान लै न्रिपराइ । एक एक दयो दुहू त्रिय एक को दुइ भाइ ॥ ५१ ॥ गरभवंत भई त्रियो त्रिय छीर को करि पान । ताहि राखत भी भलो दस दोइ मास प्रमान । मास त्रिउदसमो चढ्यो तब संतन हेत उधार । रावणारि प्रगट भए जग आन राम अवतार ॥ ५२ ॥ भरथ लछमन शत्रघन पुन भए तीन कुमार । भाँति भाँतिन बाजियं न्रिपराज बाजन द्वार । पाइ लाग बुलाइ बिप्पन

की महिमा का वर्णन तो ब्रह्मा भी नहीं कर सकते ॥ ४८ ॥ रेशमी वस्त्र एव पटम्बरादिक राजा ने दिए और सभी लोगों की सुन्दरता को देखकर ऐसा लगता था, मानो इन्द्र भी उनके सामने कुरूप है। सभी दुष्ट भयभीत हो गए और सुमेरु पर्वत भी भय से थरथरा उठा कि कहीं राजा मुझे भी काट-काटकर सबको बाँट न दे ॥ ४९ ॥ वेद-मन्त्रों का उच्चारण करते हुए सभी ब्राह्मणों ने यज्ञ प्रारंभ किया और भिन्न प्रकार से बोलते हुए ऋचाओं के अनुसार होम करना आरंभ किया। अनेक मुनियों ने जब विधिपूर्वक होम किया तो यज्ञकुण्ड से यज्ञ-पुरुष व्याकुल होकर प्रगट हुए ॥ ५० ॥ उनके हाथ में खीर का एक पात्र था जो उसने राजा को दिया। राजा दशरथ उसे पाकर वैसे ही प्रसन्न हुए जैसे कोई दरिद्र दान पाकर प्रसन्न होता है। राजा ने अपने हाथों से उसके चार भाग किए और एक-एक भाग तो उसने दोनों रानियों को दिया तथा दो भाग एक रानी को दिए ॥ ५१ ॥ रानियाँ उस दूध (खीर) का पान कर गर्भवती हो गयीं और बारह मास तक गर्भवती रहीं। तेरहवाँ महीना प्रारम्भ होते ही संतों के उद्धार के लिए रावण के शत्रु राम ने अवतार लिया ॥ ५२ ॥ फिर भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नामक तीन राजकुमारों ने जन्म लिया और राजा दशरथ के राजद्वार पर विभिन्न प्रकार के वाद्य बजने लगे ब्राह्मणों की चरण वंदना कर राजा ने उन्हें अपार दान

दीन दान (मू०ग्रं०१६२) दुरंति। शत्र नासत होहिगे सुख पाइ हैं सभ संत ॥ ५३ ॥ लाल जाल प्रवेष्ट रिखबर बाज राज सभाज। भाँति भाँतिन देत भ्यो दिज पतन को न्रिपराज। देस अउर बिदेस भीतरि ठउर ठउर महंत। नाच नाच उठे सभै जनु आज लाग बसंत ॥ ५४ ॥ किकणीन के जाल भूखित बाज अउ गजराज। साज साज दए दिजेशन आज कउशल-राज। रंक राज भए घने तह रंक राजन जैस। राम जनमत भयो उतसव अउधपुर मै ऐस ॥ ५५ ॥ दुंदभ अउर म्रिदंग तूर तुरंग तान अनेक। बीन बीन बजंत छीन प्रबीन बीन बिसेख। झांझ बार तरंग तुरही भेरनादि निथान। मोहि मोहि गिरे धरा पर सरब ब्योम बिवान ॥ ५६ ॥ जत्र तत्र बिदेस देसन होत मंगलचार। बैठ बैठ करैं लगे सभ बिप्र बेद बिचार। धूप दीप महीप ग्रेह सनेह देत बनाइ। फूल फूल फिरैं सभै गण देव देवन राइ ॥ ५७ ॥ आज काज भए सभै इह भाँति बोलत

दिया और सभी यह अनुभव करने लगे कि अब शत्रुओं का नाश होगा और संतों को सुख की प्राप्ति होगी ॥ ५३ ॥ हीरे-लालों के हार धारण किए हुए ऋषिवर राजसमाज में शोभा बढ़ा रहे हैं और राजा द्विजों को भाँति-भाँति के सोने-चाँदी के पलक भेंट कर रहा है। देश-देशान्तरों के महंतगण स्थान-स्थान पर प्रसन्नता व्यक्त कर रहे हैं और सभी लोग इस प्रकार नृत्य कर रहे हैं, मानो बसंत के मौसम में लोग प्रसन्न होकर नाच-गा रहे हों ॥ ५४ ॥ हाथियों और घोड़ों पर घंटिकाओं के जाल शोभित हो रहे हैं और ऐसे अश्व तथा हाथी सजा-सजाकर राजाओं ने कौशल्यापति दशरथ को भेंट किए हैं। राम के जन्म पर अयोध्या मे ऐसा महान् उत्सव हुआ है कि भिखारी भी दान पा-पाकर राजा हो गए हैं ॥ ५५ ॥ दुंदुभियों, मृदंगों और तुरहियों की तानें सुनाई दे रही हैं और बीनों तथा वीणाओं की विशिष्ट ध्वनि सुनाई पड़ रही है। झांझ, जलतरंगें और भेरियों के नाद सुनाई पड़ रहे हैं और यह ध्वनियाँ इतनी आकर्षक हैं कि देवताओं के विमान भी आकर्षित होकर धरती पर आ गिर पड़ रहे हैं ॥ ५६ ॥ यत्र-तत्र-सर्वत्र देश-विदेशों में मंगलगीत गाए जा रहे हैं और विप्रगणों ने वेदचर्चा प्रारम्भ कर दी है। धूप और दीपों के कारण राजा के घर की ऐसी शोभा बन गई है कि सभी देव और देवराज आदि प्रसन्न होकर वहीं चक्कर लगा रहे हैं ॥ ५७ ॥ सभी यह कह रहे हैं कि आज हमारी सभी इच्छाएँ पूरी हो गई हैं भूमि जयर

ताक अउधह आइयो तब रोस कै मुनिराइ। आइ भूपत कउ कहा सुत देहु मोकउ राम। नात (मू०ग्रं०१९३) तोकउ भसम करि हउ आज ही इह ठाम ॥ ६३ ॥ कोप देख मुनीश कउ न्रिप पूत ता संग दीन। जग्ग मंडल कउ चल्यो लै ताहि संगि प्रबीन। एक मारग दूर है इक निअर है सुनि राम। राह मारत राछसी जिह तारका गनि नाम ॥ ६४ ॥ जउन मारग तीर है तिह राह चालहु आज। चिंत्त चित न कीजिऐ दिब देव के हैं काज। बाटि चापै जात हैं तब लउ निसाचर आन। जाहुगे कत राम कहि मगि रोकियो तजि कान ॥ ६५ ॥ देख राम निसाचरी गहि लीन बान कमान। भाल मध्य प्रहारियो सुर तान कान प्रमान। बान लागत ही गिरो बिसंभार देहि बिसाल। हाथि स्त्रौ रघुनाथ के भ्यो पापनी को काल ॥ ६६ ॥ ऐस ताहि सँघार कै कर जग्ग मंडल मंड। आइगे तब लउ निसाचर दीह दोइ प्रचंड। भाज भाज चले सभै रिख ठाढ भे

होम-सामग्री को लुटता और उस पर कोई वश न चलता देखकर क्षुब्ध होकर मुनिराज विश्वामित्र अयोध्या नगरी में आया। उसने आकर राजा से कहा कि मुझे अपना पुत्र राम (थोड़े दिनों के लिए) दे दो, नहीं तो मैं तुम्हें इसी स्थान पर भस्म कर दूंगा ॥ ६३ ॥ मुनि का क्रोध देखकर राजा ने अपना पुत्र उसके साथ कर दिया और ऋषि उसे साथ लेकर पुन: यज्ञ प्रारम्भ करने के लिए चल दिया। ऋषि ने कहा कि हे राम ! सुनो, एक रास्ता दूर का है और एक पास का है, परन्तु (पासवाले) रास्ते में एक राक्षसी रहती है जिसका नाम ताड़का है और जो राहगीरों को मार डालती है ॥ ६४ ॥ राम ने कहा जो पास का रास्ता है, आज उसी से चलिए और चिन्ता को छोड़िए। ये कार्य (राक्षसों को मारना) तो दिव्य देवताओं का कार्य है। इन्होंने मार्ग पर चलना शुरू कर दिया। इधर तब तक राक्षसों ने आकर यह कहते हुए कि राम ! तुम बचकर कहाँ जाओगे, रास्ता रोक लिया ॥ ६५ ॥ राम ने राक्षसी (ताड़का) को देखकर हाथ में धनुष-बाण पकड़ लिया और बाण खींचकर उसके माथे पर दे मारा। बाण लगते ही उसकी भारी देह गिर पड़ी और इस प्रकार श्री रघुनाथ के हाथों उस पापिनी का अंत हो गया ॥ ६६ ॥ इस प्रकार उस राक्षसी का संहार कर जब यज्ञ प्रारम्भ किया गया तो वहाँ पर तब तक दो दीर्घ-काय विशाल राक्षस (मारीच और सुबाहु) आ प्रकट हुए। उन्हें देखकर सभी ऋषि भाग खड़े हुए और केवल राम ही हठपूर्वक वहाँ डटे रहे और

हठि राम। जुद्ध क्रुद्ध कर्यो तिहूं तिह ठउर सोरह जाम ॥६७॥ मार मार पुकार दानव शस्त्र अस्त्र सँभार। बान पान कमान कउ धर तबर तिच्छ कुठार। घेरि घेरि दसो दिशा नहि सूरबीर प्रमाथ। आइकै जूझे सभै रण राम एकल साथ ॥६८॥ ॥ रसावल छंद ॥ रणं पेख रामं। धुजं धरम धामं। चहूं ओर ढूके। मुखं मार कूके ॥ ६९ ॥ बजे घोर बाजे। धुणं मेघ लाजे। झंडा गड्ड गाड़े। मंडे बैर बाड़े ॥ ७० ॥ कड़क्के कमाणं। झड़क्के क्रिपाणं। ढला ढुक्क ढालै। चली पीत पालै ॥ ७१ ॥ रणं रंग रत्ते। मनो मल्ल मत्ते। सरं धार बरखे। महिखुआस करखे ॥ ७२ ॥ करी बान बरखा। सुणे जीत करखा। सुबाहं मरीचं। चले बाछ मीचं ॥७३॥ इकै बार टूटे। मनो बाज छूटे। लयो घेरि रामं। ससं सोम कामं ॥ ७४ ॥ घिर्यो दैत सैणं। जिमं रुद्र मैणं।

उन तीनों में सोलह प्रहर तक भीषण युद्ध चलता रहा ॥ ६७ ॥ अस्त्र-शस्त्रों को सँभालकर दानव 'मार-मार' की पुकार मचाने लगे और उन्होंने हाथों में कुल्हाड़े, तीर, कमान पकड़ लिये। दसों दिशाओं से उमड़कर शूरवीर आ गए और आकर अकेले राम के साथ युद्ध में जूझने लगे ॥ ६८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ धर्म रूपी (ध्वजा को फहरानेवाले) राम को रणस्थल में देखकर, मुखों से विभिन्न ध्वनियाँ निकालते हुए राक्षस चारों ओर से उमड़कर इकट्ठे हो गए ॥ ६९ ॥ घोर बाजे बजने लगे और उनकी ध्वनि को सुनकर बादल भी लजाने लगे। अपने-अपने ध्वजों को पृथ्वी पर गाड़कर राक्षसों ने शत्रुतापूर्ण युद्ध का संचालन प्रारम्भ कर दिया ॥ ७० ॥ धनुष कड़कने लगे और कृपाणें चलने लगीं। ढालों पर ढकाढुक की ध्वनि शुरू हो गई और कृपाणें उन पर गिरकर (उनका मुख चूमकर) प्रीत की रीति का निर्वाह करने लगीं ॥ ७१ ॥ सभी वीर युद्ध में ऐसे मस्त थे, मानो मल्लयुद्ध में पहलवान मस्त हों। तीरों की वर्षा होने लगी और धनुषों की टंकार सुनाई पड़ने लगी ॥७२॥ अपनी जीत की इच्छा करते हुए (राक्षसों के द्वारा) बाण-वर्षा होने लगी। सुबाहु और मारीच भी दाँत कटकटाते हुए क्रोधित होकर आगे बढ़े ॥ ७३ ॥ वे दोनों इकट्ठे ही बाज की तरह झपट पड़े और उन्होंने राम को इस प्रकार घेर लिया, मानो चन्द्रमा को कामदेव ने घेर लिया हो ॥ ७४ ॥ राम [illegible] की सेना में ऐसे घिर गए जैसे रुद्र कामदेव की सेना से घिर गए थे।

उसी पर रुककर (वैर्य) [illegible] युद्ध करने लगे जैसे गंगा समुद्र में

हके राम जंगं । मनो सिंध गंगं ॥ ७५ ॥ रणं राम बज्जे । धुणं मेघ लज्जे । रुले तच्छ मुच्छं । गिरे सूर स्वच्छं ॥७६॥ चलै ऐंठ मुच्छं । कहाँ राम पुच्छे । अबै हाथि लागे । कहा जाहु भागे ॥ ७७ ॥ रिपं पेख रामं । हठ्यो धरम धामं । करै नैण रातं । धुनरबेद ज्ञातं ॥ ७८ ॥ धनं उग्र करख्यो । सरंधार बरख्यो । हणी शत्र सैण । हसे देव गैण ॥ ७९ ॥ भजी सरब सैणं । लखी म्रीच (मू०ग्रं०१८४) नैणं । फिर्‍यो रोस प्रेर्‍यो । मनो साप छेड़्यो ॥ ८० ॥ हण्यो राम बाणं । कर्‍यो सिंध प्याणं । तज्यो राम देसं । लयो जोग भेसं ॥८१॥ सु बस्त्रं उतारे । भगवे बस्त्र धारे । बस्यो लंक बागं । पुनर द्रोह त्यागं ॥ ८२ ॥ सरोसं सुबाहं । चढ़्यो लै सिपाहं । हठ्यो आण जुद्धं । भयो नाद उद्धं ॥ ८३ ॥ सुभं सैण साजी । तुरे तुंद ताजी । गजा जूह गज्जे । धुणं मेघ लज्जे ॥ ८४ ॥

मिलकर शांत तो हो जाती है परन्तु समुद्र के समान शक्तिशाली एवं गम्भीर हो जाती है ॥ ७५ ॥ युद्ध में राम इस प्रकार गरजने लगे कि उनकी गर्जना को सुनकर बादल भी लज्जित होने लगे । वीर धूल-धूसरित होने लगे और बड़े-बड़े महाबली धरती पर गिरने लगे ॥ ७६ ॥ मूँछों पर ताव देकर (मारीच और सुबाहु) राम को ढूँढ़ने लगे और कहने लगे, ये हमारे हाथ से बचकर कहाँ जायेगा । इसे हम अभी पकड़ लेंगे ॥७७॥ राम शत्रुओं को देखकर हठपूर्वक और गम्भीर हो उठे और उस धनुर्वेद के ज्ञाता की आँखें लाल हो उठीं ॥ ७८ ॥ राम का धनुष उग्र रूप से ध्वनि कर उठा और उससे बाणों की वर्षा होने लगी । शत्रुओं की सेना नष्ट होने लगी और यह देखकर आकाश में देवगण मुस्कराने लगे ॥ ७९ ॥ भागती हुई सेना को मारीच ने देखा और क्रोधित होकर उसने अपनी सेना को ऐसे ललकारा मानो सर्प को छेड़ा जा रहा हो ॥ ८० ॥ राम ने बाण मारीच की तरफ़ चलाया और मारीच समुद्र की ओर भाग खड़ा हुआ । उसने अपना राज्य और देश त्यागकर योगी का वेष धारण कर लिया ॥८१॥ उसने सुन्दर वस्त्रों को त्यागकर योगियों वाले वस्त्र धारण कर लिये और सारे शत्रु-भाव त्याग कर लंका की एक वाटिका में रहने लगा ॥ ८२ ॥ सुबाहु क्रोधित होकर, सैनिकों को साथ लेकर आगे बढ़ा और उसके भी बाण-युद्ध से भयंकर नाद होने लगा ॥ ८३ ॥ सुसज्जित सेना में तीव्र गति से चलनेवाले घोड़े दौड़ने लगे । चारों दिशाओं में हाथी गरजने लगे और उनकी गर्जना के सामने बादलों की गडगड़ाहट भी फीकी पड़ने

ढका ढुक्क ढालं । सुभी पीत लालं । गहे शस्त्र उट्ठे । सरंधार बुट्ठे ॥ ८५ ॥ बहै अगन अस्त्रं । छुटे सरब शस्त्रं । रँगे स्रोण ऐसे । चड़े ब्याह जैसे ॥ ८६ ॥ घणे घाइ घूमे । मदी जैस झूमे । गहे बीर ऐसे । फुले फूल जैसे ॥ ८७ ॥ हन्यो दानवेसं । भयो आप भेसं । बजे घोर बाजे । धुणं अब्भ लाजे ॥ ८८ ॥ रथी नाग कूटे । फिरैं बाज छूटे । भयो जुद्ध भारी । छुटी रुद्र तारी ॥ ८९ ॥ बजे घंट भेरी । डहे डाम डेरी । रणके निशाणं । कणंछे किकाणं ॥ ९० ॥ धहा धूह धोपं । टका टूक टोपं । कटे चरम बरमं । पल्यो छत्र धरमं ॥ ९१ ॥ भयो दुंद जुद्धं । भर्यो राम क्रुद्धं । कटी दुष्ट बाहं । सँघार्यो सुबाहं ॥ ९२ ॥ त्रसे दैंत भाजे । रणं राम गाजे । भुअं भार उतार्यो । रिखीशं उबार्यो ॥ ९३ ॥ सभै साध हरखे । भए जीत करखे ।

लगी ॥ ८४ ॥ ढालों पर ढक-ढक की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी और पीले तथा लाल रंग की ढालें शोभायमान प्रतीत होने लगीं। शूरवीर हाथों में शस्त्र पकड़कर उठने लगे और तीरों की धारा बहने लगी ॥ ८५ ॥ अग्नि-बाण चलने लगे और वीरों के हाथों से शस्त्र छूटने लगे। शूरवीर इस प्रकार रक्त रंजित थे मानो वे लाल वस्त्र धारण कर किसी विवाह में शामिल होने जा रहे हों ॥ ८६ ॥ बहुत से लोग घायल होकर इस प्रकार घूम रहे हैं, मानो कोई शराबी शराब पीकर झूम रहा हो। वीर इस प्रकार से एक-दूसरे को पकड़े हुए हैं, मानो फूल एक-दूसरे से मिल रहे हों और प्रसन्न हो रहे हों ॥ ८७ ॥ दानवराज मारा गया और वह अपने असली स्वरूप को प्राप्त हो गया। वाद्य-यंत्र बजने लगे और उनकी ध्वनि से मेघ लज्जित होने लगे ॥ ८८ ॥ कई रथी मारे गए और युद्धस्थल में घोड़े लावारिस घूमने लगे। यह युद्ध इतना भीषण हुआ कि शिव का ध्यान भी टूट गया ॥८९॥ घंटों और भेरियों तथा डमरुओं की डम-डम शुरू हो गई। नगाड़े बजने लगे और घोड़े हिनहिनाने लगे ॥९०॥ युद्धस्थल में विभिन्न ध्वनियाँ उठने लगीं और शिरस्त्राणों पर टका-टक की ध्वनि होने लगी। शरीर के कवच कटने लगे और वीरगण क्षत्रिय-धर्म का पालन करने लगे ॥ ९१ ॥ भीषण युद्ध को चलते देखकर राम क्रोधित हो उठे। उन्होंने सुबाहु की भुजाओं को काटकर उसका संहार कर दिया ॥ ९२ ॥ यह देखकर भयभीत दैत्य भाग गए और युद्धस्थल में राम गरजने लगे राम ने पृथ्वी का भार हलका किया और ऋषियों

करै देव अरचा । ररै बेद चरचा ॥ ९४ ॥ भयो जग्ग पूरं । गए पाप दूरं । सुरं सरब हरखे । धनंधार बरखे ॥ ९५ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे रामावतारे कथा सुबाहु मरीच बधह जग्य संपूरन करनं समापतम ॥

अथ सीता सुयंबर कथनं ॥

॥ रसावल छंद ॥ रच्यो सुयंब्र सीता । महाँ सुद्ध गीता । बिधं चार बैणी । म्रिगीराज नैणी ॥ ९६ ॥ सुण्यो मोन-नेसं । चतुर चार देसं । लयो संग रामं । चल्यो धरम धामं ॥ ९७ ॥ सुनो राम प्यारे । चलो साथ हमारे । सीआ सुयंब्र कीनो । न्रिपं बोल लीनो ॥ ९८ ॥ तहा प्रात जइऐ । सिया जीत लइऐ । कहो मान मेरी । बनी बात तेरी ॥ ९९ ॥ बली (मू०ग्रं०१९५) ... ... । निपातो पिनाके । सिया जीत आनो । हनो सरब दानो ॥ १०० ॥

का उद्धार किया ॥ ९३ ॥ साधुगण विजय पर प्रसन्न हो उठे । देवताओं की पूजा होने लगी और वेद-चर्चा आरंभ हो गई ॥ ९४ ॥ (विश्वामित्र का यज्ञ पूर्ण हुआ और सभी पापों का नाश हुआ । यह देखकर देवतागण प्रसन्न हो पुष्प-वर्षा करने लगे ॥ ९५ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथ के रामावतार में सुबाहु, मारीच-वध और यज्ञ पूर्ण करने की कथा की समाप्ति ॥

सीता-स्वयंवर-कथन प्रारम्भ

॥ रसावल छंद ॥ सती सीता का स्वयंवर रचा गया । सीता मधुरकंठी एवं मृगनयनी थी ॥ ९६ ॥ मुनि (विश्वामित्र) ने भी स्वयंवर के बारे में सुना कि उसमें चारों दिशाओं के चतुर एवं बलशाली राजा आ रहे हैं । मुनि ने देखा कि राम ने संग्राम जीत लिया है और धर्म का प्रचलन कर दिया है ॥ ९७ ॥ वे राम से कहने लगे कि हे राम ! आप हमारे साथ चलें, क्योंकि सीता का स्वयंवर हो रहा है और उसमें राजा ने हमें आमंत्रित किया है ॥ ९८ ॥ प्रातः वहाँ चला जाय और सीता को जीत लिया जाय । मेरी बात मानिए, इससे आपका कल्याण होगा ॥ ९९ ॥ तुम अपने बलिष्ठ हाथों से धनुष को तोड़कर, सीता को जीतकर, सभी दानवों का नाश करो १०० तरकश से सुशोभित

चले राम संगं। सुहाए निखंगं। भए जाइ ठाढे। महा मोद बाढे। १०१ ॥ पुरं नार देखैं। सही काम लेखैं। रिपं शत्र जानैं। सिधं साध मानैं ॥ १०२ ॥ सिसं बाल रूपं। लह्यो भूप भूपं। तप्यो तज्ञहारी। भ्रमं शस्त्रधारी ॥ १०३ ॥ निसा चंद जान्यो। दिनं भान मान्यो। गणं रुद्र रेख्यो। सुरं इंद्र देख्यो ॥ १०४ ॥ स्रुतं ब्रहम जान्यो। दिजं ब्यास मान्यो। हरी बिशन लेखे। सिया राम देखे ॥ १०५ ॥ सिया पेख रामं। बिधी बाण कामं। गिरी झूमि भूमं। मदी जाणु घूमं ॥ १०६ ॥ उठी चेत ऐसे। महाबीर जैसे। रही नैन जोरी। ससं जिउँ चकोरी ॥ १०७ ॥ रहे मोह दोनो। टरे नाहिं कोनो। रहे ठाँढ ऐसे। रणं बीर जैसे ॥ १०८ ॥ पठे कोट दूतं। चले पउन

राम ऋषि के साथ चले और नगरी (जनकपुर) जा पहुँचे, जिससे वहाँ के लोग अत्यन्त प्रसन्न हो उठे ॥ १०१ ॥ नगर की नारियाँ उन्हें देख रही है और वे उन्हें कामदेव के समान दृष्टिगोचर हो रहे है। प्रतिद्वन्द्वी शत्रु राजा भी उनके आने के तथ्य से अवगत हो गये हैं और सिद्ध एवं साधु भी उनके आगमन से प्रसन्न हैं ॥ १०२ ॥ राजा ने इन बालकों के स्वरूप को देखा और प्रसन्न हो उठा। तपस्वी लोग और प्रसन्न हो उठे और शस्त्रधारी राजा भ्रम में पड़ गए ॥ १०३ ॥ कई लोग उन्हें रात्रि के चन्द्रमा के समान और कई लोग उन्हें सूर्य के समान मानने लगे। रुद्र एवं उनके गण भी तथा इन्द्र एवं अन्य देवता लोग भी यह देखने लगे ॥ १०४ ॥ श्रुतियों के ज्ञाता उन्हें (राम को) ब्रह्म-रूप में और ब्राह्मण आदि उन्हें महान् व्यास के रूप में देखने लगे। लोग उन्हें शिव और विष्णु के रूप में भी देखकर प्रसन्न होने लगे और इसी सारी चहल-पहल में सीता ने राम को देखा ॥ १०५ ॥ राम को देखकर सीता कामदेव के बाणों से बिंध गई। वह झूमकर इस प्रकार धरती पर गिर पड़ी, मानो कोई मदमस्त होकर गिर पड़ रहा हो ॥ १०६ ॥ पुन: वह युद्ध में अचेत महावीर के समान चेतना अवस्था में आने पर उठ बैठी और उसके नेत्र इस प्रकार राम के सौंदर्य की ओर एकटक लग गए जैसे चकोरी चन्द्रमा को देख रही हो ॥ १०७ ॥ दोनों एक-दूसरे को देखकर मोहित हो उठे और उनमें से कोई भी एक-दूसरे के सामने से नहीं हट रहा था। वे दोनों एक-दूसरे के सामने ऐसे खड़े थे, जैसे युद्ध में दो वीर खड़े हों १०८ राजा ने कई दूतों को तीव्र गति के साथ विभिन्न नरेशों के

धूतं । कुवंडान डारे । नरेशो दिखारे ॥ १०६ ॥ लयो राम पानं । भर्यो बीर मानं । हस्यो ऐंच लीनो । उभै टूक कीनो ॥ ११० ॥ सभै देव हरखे । घनं पुहप बरखे । लजाने नरेशं । चले आप देसं ॥ १११ ॥ तबै राजकन्या । तिहूँ लोक धन्या । धरे फूल माला । बर्यो राम बाला ॥ ११२ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ किधौ देवकन्या किधौ बासवी है । किधौ जच्छनी किन्नरी नागनी छै । किधौ गंध्रबी दैतजा देवता सी । किधौ सूरजा सुध सोधी सुधा सी ॥ ११३ ॥ किधौ जच्छ बिद्याधरी गंध्रबी है । किधौ रागनी भाग पूरे रची है । किधौ सुवर्न की चित्र की पुत्रका है । किधौ काम की कामनी की प्रभा है ॥ ११४ ॥ किधौ चित्र की पुत्रका सी बनी है । किधौ संखनी चित्रनी पद्मनी है । किधौ राग पूरे भरी रागमाला । बरी राम तैसी सिया आज बाला ॥ ११५ ॥ छके प्रेम दोनो लगे नैन ऐसे । मनो फाध फाँधे म्रिगीराज जैसे । बिधु बाक बैणी कटं देस छीणं ।

पास भेजा और उन्हें पड़ा हुआ धनुष दिखाया गया ॥ १०९ ॥ राम ने उस धनुष को हाथ में लिया और सभी योद्धा द्वेष से भर उठे । राम ने मुस्कराकर धनुष को खींचा और उसे दो टुकड़े कर दिया ॥ ११० ॥ सभी देवता प्रसन्न हो उठे और फूलों की वर्षा करने लगे । राजा लज्जित होकर अपने-अपने देशों को चल दिए ॥ १११ ॥ तभी राजकन्या सीता ने, जो तीनों लोक में सुन्दर थी, हाथ में जयमाल लेकर राम का वरण कर लिया ॥ ११२ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ सीता इस प्रकार लग रही थी मानो वह देवकन्या, नागकन्या, यक्षिणी, किन्नरनी हो । वह ऐसी लग रही थी मानो गन्धर्वी, दैत्यपुत्री अथवा देवी हो । वह सूर्य-पुत्री के समान लग रही थी और चन्द्रमा की अमृत-तुल्य चाँदनी के समान भी लग रही थी ॥११३॥ वह ऐसी लग रही है मानो यक्षविद्या को धारण करनेवाली गंधर्व-स्त्री हो अथवा वह संगीत का स्वर हो । सीता ऐसी लग रही थी मानो स्वर्ण के स्वरूपवाली कोई पुतली हो अथवा काम में मदमस्त कोई सौन्दर्यमयी कामिनी हो ॥ ११४ ॥ वह चित्र के समान सुन्दर दिखने वाली सौन्दर्य की प्रतिमा है अथवा शंखिनी, चित्रिणी, पद्मिनी स्त्री है । वह स्वरलहरियों की माला दिखनेवाली रागिनी है और इस प्रकार की सुन्दरी सीता का राम ने वरण कर लिया ॥ ११५ ॥ दोनों प्रेम में मस्त होकर इस प्रकार एक-दूसरे की ओर एकटक देख रहे हैं मानो प्रेम के

रँगे रंग रामं सुनैणं प्रबीणं ॥ ११६ ॥ जिणी राम सीता सुणी स्रउण रामं । गहे शस्त्र अस्त्रं रिस्यो तज्जन जामं । कहा जात भाख्यो रमो राम ठाढे । लखो आज कैसे भए (पृ०ग्रं०१८६) बीर गाढे ॥११७॥ ॥भाखा पिंगल दी॥ ॥ सुंदरी छंद ॥ झट हुंके धुंके बंकारे । रण बज्जे गज्जे नगारे । रण हुल्ल कलोलं हुल्लालं । ढल हल्लं ढल्लं उच्छालं ॥ ११८ ॥ रण उट्ठे कुट्ठे मुच्छाले । सर छुट्टे जुट्टे भीहाले । रतु डिग्गे भिग्गे जोधाणं । कणणंक्के कच्छे किकाणं ॥ ११९ ॥ जोगणीयं भेरी भुंकारं । मल लंके खंडे दुद्धारं । जुद्धं जुज्झारं बुब्बाड़े । रुलिए पक्खरिए आहाड़े ॥ १२० ॥ बक्के बब्बाड़े बंकारं । नच्चे पक्खरिए जुझारं । बज्जे सँगलीए भीहाले । रण रत्ते मत्ते मुच्छाले ॥ १२१ ॥ उछलीए कच्छी कच्छाले । उड्डे जणु पब्बं पच्छाले । जुट्टे भर छुट्टे मुच्छाले । रुलिए आहाड़ं पक्खर ले ॥ १२२ ॥ बज्जे संधूरं नग्गारे । कच्छे कच्छीले

वन्यस्थल में बँधे हुए मृग एक-दूसरे को देख रहे हों। मधुर कण्ठ वाली और क्षीण कटिवाली सीता राम के नयनों के रंग में रँगी हुई परम सुन्दर प्रवीण दिखाई पड़ रही हैं ॥ ११६ ॥ जब परशुराम ने यह सुना कि सीता को राम ने जीत लिया है (और धनुष तोड़ दिया है), तो वह उसी क्षण अस्त्र-शस्त्र धारण कर क्रोधित हो उठे। उसने राम को रुक जाने के लिए कहा और ललकारा कि मैं देखता हूं कि तुम कैसे वीर हो ॥ ११७ ॥ ॥ भाषा पिंगल की ॥ ॥ सुन्दरी छंद ॥ युद्धस्थल का दृश्य बन गया और शूरवीरों की जय-जयकार की ध्वनियाँ तथा नगाड़ों के घड़घड़ाहट की ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगीं। युद्ध की तैयारी देख वीर प्रसन्न हो उठे और अपने शस्त्रों तथा ढालों को उछालने लगे ॥ ११८ ॥ मुड़ी हुई मूँछोंवाले वीर युद्ध के लिए उठ खड़े हुए और भीषण बाण-वर्षा करते हुए एक-दूसरे से भिड़ गए। रक्त से भीगे योद्धा गिरने लगे और युद्धस्थल में घोड़े रौंदे जाने लगे ॥ ११९ ॥ योगिनियों की भेरियों की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी और दो धारों वाले खड्ग चमकने लगे। बड़बड़ाकर युद्ध में जूझने लगे। लौह-कवच पहननेवाले वीर धूल-धूसरित होने लगे ॥ १२० ॥ वीर दहाड़ने लगे और लौह-कवच पहने हुए योद्धा मदमस्त होकर नृत्य करने लगे। भीषण नगाड़े बजने लगे और भयानक मूँछोंवाले वीर युद्ध में भिड़ने लगे ॥ १२१ ॥ काटनेवाले वीर इस प्रकार उछल रहे हैं मानो पर्वतों को पंख लगे हों वीर आपस में मूँछों पर ताव देते हुए भिड़ रहे

लुज्झारे । गण हूरं पूरं गैणायं । अंजनयं अंजे नैणायं ॥१२३॥ रण धक्के नादं नाफीरं । बब्बाणे बीरं हाबीरं । उग्घे जण नेजे जट्टाले । छुट्टे सिल सितियं मुचछाले ॥ १२४ ॥ भट डिग्गे घायं अग्घायं । तन मुज्झे अद्धो अद्धायं । दल गज्जे बज्जे नीशाणं । चंचलिए ताजी चीहाणं ॥ १२५ ॥ चव दिस्य चिकी चावंडै । खंडे खंडे कै आखंडै । रण डुंके गिद्धं उद्धाणं । जै जंपै सिधं सुद्धाणं ॥ १२६ ॥ फुल्ले जण किस्सक बासंतं । रण रत्ते सूरा सामंतं । डिग्गे रण सुंडी सुंडाणं । धर भूरं पूरं मुंडाणं ॥ १२७ ॥ ॥ मधुर धुन छंद ॥ तर भर रामं । परहर कामं । धर बर धीरं । परहरि तीरं ॥ १२८ ॥ हर बर ग्यानं । पर हरि ध्यानं । थरहर कंपै । हरि हरि जंपै ॥ १२९ ॥ क्रोधं गलितं । बोधं दलितं । कर सर सरता । धरमर हरता ॥ १३० ॥ सरबर पाणं । धर कर

हैं और कवच धारण किए हुए योद्धा मिट्टी में लोट रहे हैं ॥ १२२ ॥ दूर-दूर तक नगाड़े बजने लगे और घोड़े इधर-उधर दौड़ने लगे । आकाश-मंडल में अप्सराएँ घूमने लगीं और नयनों में अंजन लगाकर एवं सौन्दर्य-युक्त होकर युद्ध को देखने लगीं ॥ १२३ ॥ युद्ध में घनघोर ध्वनि करनेवाले बाजे बज उठे और शूरवीर दहाड़ उठे । वीर अपने हाथों में भाले लेकर चलाने लगे और शूरवीरों के अस्त्र-शस्त्र चलने लगे ॥ १२४ ॥ घायल होकर शूरवीर गिर पड़े और उनके शरीरों के टुकड़े-टुकड़े होने लगे । सेनाएँ गरजने लगीं और नगाड़े बजने लगे तथा युद्धस्थल में चंचल घोड़े हिनहिनाने लगे ॥ १२५ ॥ चारों दिशाओं में चीलहें बोलने लगीं और खण्ड-खण्ड हो चुके वीरों के और अधिक टुकड़े करने लगीं । उस युद्धस्थल रूपी उद्यान में गिद्ध मांस के टुकड़ों के साथ खेलने लगे और सिद्ध-योगीगण विजय की कामना करने लगे ॥ १२६ ॥ जिस प्रकार वसन्त ऋतु में फूल खिलते हैं, उस प्रकार युद्धस्थल में शूरवीर सामन्त लड़ते हुए दिखाई दे रहे हैं । युद्धस्थल में हाथियों की सूँड़ें गिरने लगीं और सारी धरती कटे हुए सिरों से भर गई ॥१२७॥ ॥ मधुर धुन छंद ॥ कामनाओं का त्याग करनेवाले परशुराम ने चारों ओर तहलका मचा दिया और शूरवीरों की तरह बाण चलाने लगे ॥ १२८ ॥ ज्ञानियों ने उसके क्रोध को देखकर परमात्मा पर ध्यान लगा लिया और थरथर काँपते हुए परमात्मा का जाप करने लगे ॥ १२९ ॥ क्रोध से पीड़ित होकर बुद्धि एवं विचार का हनन हो गया । उसके हाथों से तीरों की नदी बह निकली तथा उससे शत्रुओं के प्राण हरे जाने लगे १३० हाथों में तीर पकड़

माणं । अर उर साली । धर उर माली ।। १३१ ।। कर बर कोपं । थरहर धोपं । गर बर करणं । घर बर हरणं ।।१३२।। छर हर अंगं । दर खर संगं । जर बर जामं । झर हर रामं ।। १३३ ।। टर धर जायं । ठर हरि पायं । डर हर ढालं । थरहर कालं ।।१३४।। अर बर दरणं । नर बर हरणं । धर बर धीरं । फर हर भीरं ।। १३५ ।। बर नर दरणं । भर हर करणं । हर हर (मू०ग्रं०१६७) रड़ता । बर हर गड़ता ।। १३६ ।। सरबर हरता । चरमर धरता । बरमर पाणं । करबर जाणं ।। १३७ ।। हरबर हारं । करबर बारं । गडबड रामं । गड़बड़ धामं ।। १३८ ।। ।। चरपट छीगा के आद क्रित छंद ।। खग्ग खयाता । ग्यान ग्याता । चित्र बरमा । चार चरमा ।। १३९ ।। शास्त्रं ग्याता । शस्त्रं खयाता । चित्रं जोधी । जुद्धं क्रोधी ।। १४० ।। बीरं बरणं ।

हुए शूरवीर गर्व से भरे और शत्रुओं के हृदय में इस प्रकार बाणों को रोप रहे हैं जैसे धरती पर माली पौधों को रोपता है ।। १३१ ।। योद्धाओं के क्रोध से सभी थरथराने लगे और वीरों के युद्धकौशल के कार्यों से घरों के स्वामी नष्ट होने लगे ।। १३२ ।। वीरों का प्रत्येक अंग बाणों से बिंधने लगा और परशुराम भीषण रूप से अस्त्रों की वर्षा करने लगे ।।१३३।। जो उस ओर बढ़ता है वह भगवान के चरणों में पहुँच जाता है अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । ढालों की गड़गड़ाहट से काल देवता भी उतरकर आने लगे ।। १३४ ।। श्रेष्ठ शत्रुओं का दमन होने लगा और नरश्रेष्ठ राजागण मारे जाने लगे । धैर्यवान वीरों के शरीरों में तीर फहराने लगे ।। १३५ ।। नरश्रेष्ठों का दमन होने लगा और धरती वीरों से पड़ने लगी । हरि के नाम का स्मरण करते हुए बार-बार वीरगण प्रभु नाम का जाप दृढ़ करने लगे ।। १३६ ।। कुठार को धारण करनेवाले परशुराम युद्ध में सबको नष्ट करने में समर्थ थे । उनकी भुजाएँ लम्बी थीं अर्थात् वे आजानुबाहु थे ।। १३७ ।। वीरों के वार होने लगे और शिव के गले में मुंडमाला शोभायमान होने लगी । राम स्थिर होकर खड़े हो गए और सारे महल में कोलाहल मच गया ।। १३८ ।। ।। चरपट छीगा के आदिकृत छंद ।। युद्धस्थल में खड्ग-चालन में ख्यातिप्राप्त और महाज्ञानी पुरुष दिखाई दे रहे हैं । सुंदर शरीरवालों ने कवच धारण कर रखे हैं और वे चित्र के समान दिखाई दे रहे हैं ।। १३९ ।। शस्त्र और शास्त्रों के ज्ञाता और ख्यातिप्राप्त योद्धा क्रुद्ध होकर युद्ध में संलग्न हैं । १४० श्रेष्ठ वीर दूसरों को भय से भर रहे हैं वे अस्त्रों को

बीरं भरणं । सत्रं हरता । अत्रं धरता ॥ १४१ ॥ बरमं बेधी । चरमं छेदी । छत्रं हंता । अत्रं गंता ॥ १४२ ॥ जुधं धामी । बुधं गामी । शस्त्रं ख्याता । अस्त्रं ग्याता ॥ १४३ ॥ जुद्धा माली । कीरत सालो । धरमं धामं । रूप रामं ॥ १४४ ॥ धीरं धरता । बीरं हरता । जुद्धं जेता । शस्त्र नेता ॥ १४५ ॥ दुरदं गामी । धरमं धामी । जोगं ज्वाली । जोतं माली ॥ १४६ ॥ ॥ परसराम बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ तूणि कसे कट चाँप धरे कर कोप कही दिज राम अहो । ग्रह तोर सरासन शंकर को सिय जात हरे तुम कउन कहो । बिन साच कहे नही प्रान बचे जिन कंठ कुठार की धार सहो । घर जाहु चले तज राम रणं जिन जूझ मरो पल ठाढ रहो ॥ १४७ ॥ ॥ स्वैया ॥ जानत हो अबिलोक मुझै हठि एक बली नही ठाढ रहैंगे । तात गह्यो जिनके तिण दाँतन तेन कहा रण आज गहैंगे । बंब बजे रण खंभ गडे गहि

धारण कर शत्रुओं को नष्ट कर रहे हैं ॥ १४१ ॥ वीर कवचों को वेध कर शरीरों का छेदन कर रहे हैं । अस्त्रों के चलने से राजाओं के छत्र नष्ट होने लगे ॥ १४२ ॥ शस्त्रों और अस्त्रों के मर्मज्ञ उस युद्धस्थल की ओर चल पड़े ॥ १४३ ॥ वीर युद्ध में उद्यान के मालियों के समान विचरण करने लगे और पौधों को काटने-छाँटने की तरह वीरों की कीर्ति को नष्ट करने लगे । उस युद्धस्थल में रूपवान और धर्म के धाम राम शोभायमान प्रतीत हो रहे हैं ॥ १४४ ॥ वे धैर्यवान, वीरों को नष्ट करनेवाले, युद्ध को जीतनेवाले तथा शस्त्रों के चालन में अत्यन्त प्रवीण हैं ॥ १४५ ॥ वे हाथी की मस्त चालवाले हैं और धर्म के धाम हैं । वे योगाग्नि के स्वामी और परम ज्योति के रक्षक हैं ॥१४६॥ ॥ परशुराम उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ धनुष और तरकश को धारण किए हुए विप्र परशुराम ने क्रोधित होकर राम से कहा कि शंकर का धनुष तोड़कर सीता को ले जानेवाले तुम कौन हो । सच-सच बताओ, नहीं तो तुम्हारे प्राण बच नहीं पायेंगे और मेरे कुठार की धार को तुम्हें गर्दन पर सहना पड़ेगा । अच्छा होगा कि राम ! तुम युद्ध छोड़कर अपने घर भाग जाओ, नहीं एक पल भी और यहाँ ठहरने पर तुम्हें यहीं पर मर जाना होगा ॥ १४७ ॥ ॥ सवैया ॥ तुम जानते हो कि मुझे देखकर कोई भी महाबली स्थिर खड़ा नहीं रह सकता । जिनके बाप-दादाओं ने मुझे देखकर दाँतों में घास के तिनके थाम लिये अर्थात् अपनी हार मान ली वे अब मुझसे क्या युद्ध करेंगे अब चाहे कितना ही भीषण युद्ध हो, उनकी क्या हिम्मत है कि

हाथ हथिआर कहूँ उमहैंगे । भूम अकाश पताल दुरैबे कउ राम कहो कहाँ ठाम लहैंगे ॥ १४८ ॥ ॥ कबि बाच ॥ यौ जब बैन सुने अरि के तब स्री रघुबीर बली बलकाने । सात समुंद्रन लौ गरबे गिर भूम अकाश दोऊ थहराने । जच्छ भुजंग दिसा बिदिसान के दानव देव दुहूँ डर माने । स्री रघुनाथ कमान ले हाथ कहो रिसकै किह पै सर ताने ॥ १४९ ॥ ॥ परसराम बाच राम सो ॥ जेतक बैन कहे सु कहे जु पै फेरि कहे तुपै जीत न जैहो । हाथि हथिआर गहे सु गहे जुपै फेरि गहे तुपै फेरि न लैहो । राम रिसै रण मै रघुबीर कहो भजिकै कत प्रान बचैहो । तोर सरासन [illegible] जान न पैहो ॥ १५० ॥ ॥ राम बाच परसराम सो ॥ ॥ स्वैया ॥ (पृ०सं० ६८) बोल कहे सु सहे द्विज जू जु पै फेरि कहे तु पै प्रान खवैहो । बोलत ऐंठ कहा सठ जिउँ सभ दाँत तुराइ अबै घरि जैहो । धीर तबै लहिहै तुम कउ जद भीर परी

वे पुनः शस्त्र धारण कर लड़ाई के लिए आगे बढ़ सकोगे । हे राम ! अब तुम मुझसे बचकर, आकाश, पाताल, पृथ्वी अर्थात् कहाँ पर छिपोगे ? ॥१४८॥ ॥ कवि उवाच ॥ शत्रु (परशुराम) के यह वचन सुनकर श्री रामचन्द्र महाबलियों के समान दिखाई देने लगे । राम की सातों समुद्रों की गम्भीरता को लिये हुए गम्भीर मुद्रा को देखकर पर्वत, आकाश और सम्पूर्ण पृथ्वी थरथरा उठी । सभी दिशाओं के यक्ष, भुजंग, देव, दानव भयभीत हो उठे । श्री रामचन्द्र ने अपना धनुष हाथ में लेते हुए परशुराम से कहा कि आप ये किस पर क्रोधित होकर बाण ताने हुए हैं ॥१४९॥ ॥ परशुराम उवाच राम के प्रति ॥ (हे राम !) जितनी बातें तुमने कह दीं सो कह दीं, अब और आगे कुछ कहा तो जीवित नहीं बच पाओगे । तुमने हाथ में जो शस्त्र (धनुष) पकड़ना था पकड़ लिया, यदि कुछ और पकड़ने की कोशिश की तो तुम्हारी कोशिश बेकार जायगी । परशुराम ने क्रोधित होकर राम से कहा कि कहो, अब युद्ध से भागकर कहाँ जाओगे और कैसे प्राण बचाओगे । हे राम ! शिवधनुष को तोड़कर और अब सीता का वरण कर तुम अपने घर तक जा नहीं पाओगे ॥ १५० ॥ ॥ राम उवाच परशुराम के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे विप्र ! तुमने भी जितना कहना था कह लिया, अब और कहोगे तो तुमको प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा । हे मूर्ख ! इतना अकड़कर क्यों बोलते हो, अभी तुमको दाँत तुड़वाकर अर्थात् मार खाकर घर जाना पड़ेगा । तुमको मैं धैर्यपूर्वक देख रहा हूँ । अगर मुझे आवश्यकता हुई तो केवल एक तीर ही चलाना पड़ेगा (और तुम्हारा

इक तीर चलैहो । बात सँभार कहो मुखि ते इन बातन को अब ही फलि पैहो ॥१५१॥ ॥ परसराम बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ तउ तुम साच लखो मन मै प्रभ जउ तुम रामवतार कहाओ । रुद्र कुवंड बिहंडिय जिउँ कर तिउँ अपनो बल मोहि दिखाओ । तउही गदा कर सारंग चक्र लता भ्रिग की उर मद्ध सुहाओ । मेरो उतार कुवंड महाँबल मोहू कउ आज चड़ाइ दिखाओ ॥१५२॥ ॥ कबि बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ स्री रघुबीर सिरोमन सूर कुवंड लयो करमै हसिकै । लिय चाँप चटाक चड़ाइ बली खट टूक कर्‌यो छिन मै कसिकै । नभ की गति ताहि हती सर सो अध बीच ही बात रही बसिकै । न बसात कछू नट के बट ज्यों भव पास निशंगि रहे फसिकै ॥ १५३ ॥

॥ इति स्री राम जुद्ध जयत ॥

अथ अउध प्रवेश कथनं ॥

॥ स्वैया ॥ भेट भुजा भर अंक भले भरि नैन दोऊ

काम तमाम हो जायगा) । इसलिए मुँह को सँभालकर बात करो, अन्यथा इन बातों का फल तुम्हें अभी मिल जायगा ॥ १५१ ॥ ॥ परशुराम उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ तब तुम सच मानो कि यदि तुम रामावतार कहलाते हो तो जिस प्रकार तुमने शिवधनुष को तोड़ा है, उसी प्रकार मुझे भी अपना बल दिखाओ । मुझे गदा-चक्र-धनुष और हृदय में लगा भृगु ऋषि का पदाघात भी दिखाओ तथा साथ-ही-साथ मेरा प्रबल धनुष उतार कर उसकी प्रत्यञ्चा भी चढ़ाकर दिखाओ ॥ १५२ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ सबैया ॥ वीर शिरोमणि श्री रामचन्द्र ने मुस्कुराते हुए धनुष हाथ में लिया; खींचकर उसे शीघ्र ही चढ़ा दिया और तीर कसते ही उसे तोड़कर दो टुकड़े कर दिया । धनुष के खडित होते ही इतनी भयंकर ध्वनि हुई मानो आकाश की छाती में तीर जा लगा हो और आकाश फट गया हो । जिस प्रकार नट के रस्से पर नट उछलता है, इस प्रकार सारा ब्रह्मांड धनुष के टूटने पर हिल गया और धनुष के दोनों टुकड़ों के बीच फँसकर रह गया ॥ १५३ ॥

॥श्रीराम-युद्ध-विजय समाप्त ॥

अवध-प्रवेश-कथन प्रारम्भ

सबैया श्री ने दोनो आँखों मे खुशी के आँसू लेते

निरखे रघुराई। गुंजत भ्रिंग कपोलन ऊपर नाग लवंग रहे लिव लाई। कंज कुरंग कलानिध केहरि कोकल हेर हिए हहराई। बाल लखैं छब खाट परैं नहि बाट चलैं निरखे अधिकाई॥ १५४॥ सीय रही मुरझाइ मनै मन राम कहा मन बात धरैंगे। तोर सरासनि शंकर को जिम मोहि बर्यो तिम अउर बरैंगे। दूसर ब्याह बधू अब ही मन ते मुहि नाथ बिसार डरैंगे। देखत हौं निज भाग भले बिध आज कहा इह ठौर करैंगे॥ १५५॥ तउ ही लउ राम जिते दिज कउ अपने दल आइ बजाइ बधाई। भग्गुल लोक फिरै सभ ही रण मो लख राघव की अधकाई। सीय रही रन राम जिते अवधेशर बात जबै सुनि पाई। फूलि गयो अति ही मन मै धन के घन की बरखा बरखाई॥ १५६॥ बंदनवार बधी सभ ही दर चंदन सौ छिरके ग्रहि सारे। केसर डारि बरातन पै सभ ही जन हुइ

हुए और अपने स्वजनों को अंक में भरकर मिलते हुए अयोध्या में प्रवेश किया। गालों पर भौंरे गूंज रहे थे और सीता की केशराशि ऐसे लटक रही थी मानो नागिनें एकटक होकर उनके मुख को निहार रही हों। कमल, हिरण, चन्द्रमा, सिंहिनी और कोयल क्रमशः उनकी आंखों की बनावट, चंचलता, सुन्दरता, कटि की क्षीणता और मधुर कण्ठ को देख मन-ही-मन घबराने लगे। बच्चे भी उनकी सुन्दरता को देखकर अचेत होकर गिर पड़ रहे थे और पथिक भी अपना रास्ता चलना छोड़कर उन्हीं की ओर देख रहे थे॥ १५४॥ सीता मन में यह सोचकर उदास सी हो रही थी कि रामचन्द्र जी मेरी बात मानेंगे या नहीं और कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि जिस प्रकार शंकर का धनुष तोड़कर इन्होंने मेरा वरण किया हो उसी प्रकार किसी अन्य स्त्री का वरण कर लेंगे। दूसरे विवाह की बात यदि इनके मन में होगी तो मेरे स्वामी निश्चित रूप से मुझे विस्मरित करके मेरे जीवन को व्याकुलता से परिपूर्ण कर देंगे। देखो मेरे भाग्य में क्या लिखा है और अब आगे श्री रामचन्द्र और क्या करते हैं॥ १५५॥ उसी समय द्विजों के दल ने आगे बढ़ बधाई के गीत गाने शुरू कर दिए। सब लोग रामचन्द्र की युद्ध में विजय को सुनकर खुशी से इधर-उधर भागने लगे। जब राजा दशरथ ने यह सुना कि सीता को जीतकर राम ने युद्ध भी जीत लिया है तो वे खुशी से फूले न समाये और उन्होंने बादलों की वर्षा के समान धन की वर्षा की॥ १५६॥ सबके द्वारों पर बन्दनवार सजाये गए और सारे घरों पर चन्दन छिड़का गया सब साथियों पर केसर छिड़का गया और ऐसा लग रहा था,

पुरहूत पधारे । बाजत ताल मुचंग पखावज नाचत कोटनि कोटि अखारे । आनि मिले सभ ही अगुआ सुत कउ पितु लै पुर अउध सिधारे ॥ १५७ ॥ ॥ चौपई ॥ (मू०ग्रं०१६६) सभहू मिलि गिल कियो उछाहा । पूत तिहूँ कउ रच्यो बियाहा । राम सिया बर कै घरि आए । देस बिदेसन होत बधाए ॥ १५८ ॥ जह तह होत उछाह अपारू । तिहूँ सुतन को ब्याह बिचारू । बाजत ताल म्रिदंग अपारं । नाचत कोटन कोट अखारं ॥ १५९ ॥ बन बन बीर पखरिआ चले । जोबनवंत सिपाही भले । भए जाइ इसथत न्रिप दर पर । महारथी अरु महा धनुरधर ॥ १६० ॥ बाजत चंग मुचंग अपारं । ढोल म्रिदंग सुरंग सुधारं । गावत गीत चंचला नारी । नैन नचाइ बजावत तारी ॥ १६१ ॥ भिछकन हवस न धन की रही । दार स्वरन सरता हुइ बही । एक बात मागन कउ आवै । बीसक बात घरै लै जावै ॥ १६२ ॥ बन बन चलत भए रघुनंदन । फूले पुहप बसंत जानु बन ।

मानो इन्द्र अपनी नगरी में पधार रहे हों । मृदंग, पखावज आदि वाद्य बजने लगे और विभिन्न प्रकार के नृत्य होने लगे । सब लोग रामचन्द्र जी से आगे होकर आ मिले और पिता दशरथ अपने पुत्र को लेकर अवधपुरी (के महलों में) पहुँच गए ॥ १५७ ॥ ॥ चौपाई ॥ सबने अत्यन्त उत्साहित होकर बाक़ी तीनों पुत्रों का भी विवाह आयोजित कर दिया । सीता और राम के विवाह के पश्चात् उनके घर वापस आने पर देश-विदेश से बधाई-सन्देश आये ॥ १५८ ॥ सब ओर अपार उत्साह का वातावरण था और तीनों पुत्रों के विवाह का आयोजन चल रहा था । सब ओर ताल, मृदंग बजने लगे और अनेकों मंडलियाँ नृत्य करने लगीं ॥ १५९ ॥ कवचधारी वीर सज-धजकर और नवयुवक सैनिक चल पड़े तथा ये सभी महारथी तथा महाधनुर्धर वीर राजा दशरथ के द्वार पर आ पहुँचे ॥ १६० ॥ विभिन्न वाद्य (चंग, मुचंग आदि) बजने लगे और ढोल-मृदग की सुरीली ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगीं । चचल नारियाँ गीत गाने लगीं और आँखों को नचाते हुए तालियाँ बजाकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने लगीं ॥ १६१ ॥ भिक्षुकों को भी धन की और इच्छा बाक़ी न रही, क्योंकि दान का सोना नदी के समान बहने लगा । जो एक वस्तु माँगने के लिए आता वह बीस वस्तुएँ प्राप्त कर घर को वापस जाता १६२ राजा दशरथ के पुत्र वनों में विहार करते हुए ऐसे

सोभत केसर अंग डरायो । आनंद हिए उछर जन आयो ॥ १६३ ॥ साजत भए अमित चतुरंगा । उमँड चलत जिह बिध करि गंगा । भल भल कुअर चड़े सज सैना । कोटक चड़े सूर जनु गैना ॥ १६४ ॥ भरथ सहित सोभत सभ भ्राता । कहि न परत मुख ते कछु बाता । मातन मन सुंदर सुत मोहैं । जनु दित ग्रहि रबि सस दोऊ सोहैं ॥ १६५ ॥ इह बिध कै सज सुद्ध बराता । कछु न परत कहि तिनकी बाता । बाढत कहत ग्रंथ बातन कर । बिदा होन सिस चले तात घर ॥ १६६ ॥ आइ पिता कहु कीन प्रनामा । जोर पान ठाढे बल धामा । निरख पुत्र आनंद मन भरे । दान बहुत बिप्पन कहु करे ॥ १६७ ॥ तात मात लै कंठि लगाए । जन दुइ रतन निरधनी पाए । बिदा माँग जब गए राम घर । सीस रहे धर चरन कमल पर ॥ १६८ ॥ ॥ कबित्त ॥ राम

दिखाई देते हैं मानो वसंत ऋतु में फूल खिले हुए हों । अंगों पर डाला हुआ केसर बाहर से ऐसे सुन्दर दिखाई पड़ रहा है मानो केसर के छींटो के रूप में आनन्द हृदय से उमड़कर बाहर आ गया हो ॥ १६३ ॥ वे अपनी चतुरंगिणी सेना को इस प्रकार सुसज्जित कर रहे हैं, मानो सेना के स्थान पर गंगा उमड़कर बह रही हो । अपनी-अपनी सेनाओं के साथ राजकुमार ऐसे शोभायमान हो रहे हैं, मानो आकाश में करोड़ों सूर्य चढ़ आए हों ॥ १६४ ॥ भरत-सहित सभी भाई ऐसे शोभायमान हो रहे हैं कि उनकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता । सुन्दर राजकुमार अपनी माताओं के मन को मोह रहे हैं और इस प्रकार लग रहे हैं, मानो दिति के घर पर चन्द्र और सूर्य दोनों ने जन्म लेकर घर की शोभा को बढ़ाया हो ॥ १६५ ॥ इस प्रकार सुन्दर बारात सजी, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । यह सब कहने से ग्रंथ बढ़ जायगा । अत: ये सब बच्चे विदा होने की आज्ञा लेने के लिए पिता के महल की ओर चले ॥ १६६ ॥ उन सबने आकर पिता को प्रणाम किया और उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए । पुत्रों को देखकर राजा प्रसन्नता से भर उठा और उसने बहुत सा दान ब्राह्मणों को दिया ॥ १६७ ॥ माता-पिता ने बच्चों को गले लगाकर उसी प्रकार प्रसन्नता अनुभव की जैसे कोई निर्धन रत्नों की प्राप्ति पर प्रसन्नता व्यक्त करता है । वहाँ से विदा होकर वे रामचन्द्र जी के महल में पहुँचे और उनके चरणों पर अपने शीश झुका दिए ॥ १६८ ॥ ॥ कवित्त ॥ राम ने उन सबका सिर चूमा प्रेम से उनकी पीठ पर हाथ रखा उन्हें पान

बिदा करे सिर चूम्यो पान पीठ धरे आनद सो भरे लै तंबोर आगे धरे हैं। दुंदभी बजाइ तीनो भाई यौ चलत भए मानो सूर चंद कोटिआन अवतरे हैं। केसर सो भीजे पट सोभा देत ऐसी भांत मानो रूप राग के सुहाग भाग भरे हैं। राजा अवधेश के कुमार ऐसे सोभा देत कामजू ने कोटक कलियोग कैधौ करे हैं ॥ १६९ ॥ ॥ कबित्त ॥ अउध ते निसर चले लीने संगि सूर भले रन (मू०ग्रं०२००) ते न टले पले सोभाहूं के धाम के। सुंदर कुमार उरहार सोभत अपार तीनो लोग मद्ध को मुहय्या सभ बाम के। दुरजन दलय्या तीनो लोक के जितय्या तीनो राम जू के भय्या हैं चहय्या हरनाम के। बुद्ध के उदार हैं शिंगार अवतार दान सील के पहार कै कुमार बने राम के ॥ १७० ॥ ॥ अस्व बरननं ॥ ॥ कबित ॥ नागरा के नैन हैं कि चातरा के बैन हैं बघूला मानो गैन कैसे तैसे थहरत हैं। न्रितका के पाउ हैं कि जूप कैसे दाउ हैं कि छल को दिखाउ कोऊ तैसे बिहरत हैं। हाके बाज बीर हैं तुफंग कैसे तीर हैं कि अंजनी के

आदि प्रस्तुत किया और (प्रेमपूर्वक) उन सबको विदा किया। वाद्य एवं दुंदुभियाँ बजाते हुए सब लोग ऐसे चल पड़े मानो धरती पर करोड़ों चाँद-सूर्य अवतरित हो गए हैं। केसर से भीगे हुए वस्त्र ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो स्वयं सौंदर्य साकार हो उठा हो। अवधनरेश दशरथ के राजकुमार ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो कामदेव अपनी कलाओं के साथ सुशोभित हो रहे हों ॥ १६९ ॥ ॥ कवित्त ॥ सभी अवधपुरी से निकल कर चल पड़े हैं और उन सबने अपने साथ युद्ध से कभी पीछे न हटनेवाले सुंदर वीर अपने साथ ले लिये हैं। वे सुन्दर राजकुमार हैं, जिनके गले में हार शोभा दे रहे हैं। वे सब स्त्रियों का वरण कर उन्हें ले आने के लिए जा रहे हैं। वे सभी दुर्जनों का दलन करनेवाले, तीनों लोकों को जीत लेनेवाले प्रभु नाम के प्रेमी राम के भाई हैं। वे बुद्धि से उदार, श्रृंगार के मानो अवतार हैं, दानशीलता के पहाड़ हैं और रामचन्द्रजी के ही समान हैं ॥ १७० ॥ ॥ अश्व वर्णन ॥ ॥ कवित्त ॥ स्त्री के नयनों के समान चंचल, चतुर व्यक्ति की तेज बातों के समान गतिमान अथवा आकाश में उठे बगूले के समान चंचल घोड़े इधर-उधर थरहरा रहे है। घोड़े ऐसे गतिमान हैं मानो नर्तकी के पाँव हों, पाँसा फेंकनेवाले दाँव हो अथवा कोई छलावा हो। ये वीर घोड़े, तीर और तुफंग के समान तेज गतिवाले हैं अजनीपुत्र हनुमान के समान चपल एवं बलशाली हैं और

धीर हैं कि धुजा से फहरत हैं। लहरैं अनंग की तरंग जैसे गंग की अनंग कैसे अंग ज्यों न कहूँ ठहरत हैं ॥ १७१ ॥ निसा निसनाथि जानै दिन दिनपति मानै भिच्छकन दाता कै प्रमाने महाँ दान हैं। अउखधी कै रोगन अनंत रूप जोगन समीप कै बियोगन महेश महामान हैं। शस्त्र खग्ग ख्याता सिस रूपन के माता महाँ ग्यानी ग्यान ग्याता कै बिधाता कै समान हैं। गनन गनेश मानै सुरन सुरेश जाने जैसे पेखै तैसे ई लखे बिराजमान हैं ॥ १७२ ॥ सुधा सो सुधारे रूप सोभत उजियारे किधौ साचे बीच ढारे महा सोभा कै सुधार कै। किधौ महामोहनी के मोहबे नमित्त बीर बिधना बनाए महाँबिध सो बिचार कै। किधौ देव दैतन बिबाद छाड बडे चिर मथ कै समुंद्र छीर लीने है निकार है। किधौ बिस्वनाथ जू बनाए निज पेखबे कउ अउर न सकत ऐसी सूरतै सुधार कै ॥ १७३ ॥ सीम तज आपनी बिराने देस

ऐसे विचरण कर रहे हैं मानो ध्वजाएँ फहर रही हों। ये अश्व ऐसे हैं मानो कामदेव की तीव्र भावनाएँ हों, गंगा की तेज लहरें हों। ये कामदेव के अंगों के समान सुन्दर अंगवाले हैं और कहीं किसी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहनेवाले हैं ॥ १७१ ॥ सभी राजकुमारों को रात तो चन्द्रमा समझ रही है और दिन उन्हें सूर्य मान रहा है। भिक्षुओं के लिए ये सभी महादानी के रूप में जाने जाते हैं। रोग उन्हें ओषधि मानते हैं, वे अनत रूपवाले समीप होते हैं, तो उनके वियोग की आशंका बनी रहती है। वे सभी महेश के समान महामानी हैं। शस्त्रों एवं खड्गों को चलाने मे ख्यातिप्राप्त, माताओं के लिए बच्चों के समान, महाज्ञानियों के लिए परम-ज्ञाता वे सभी (साक्षात्) विधाता के समान लग रहे हैं। सभी गण उनको गणेश मान रहे हैं और सभी देवता उन्हें इन्द्र मान रहे हैं। तात्पर्य यह है कि जो उनको जैसे देख रहा है वे वैसे ही उसके समक्ष विराजमान दिखाई दे रहे हैं ॥ १७२ ॥ अमृत से नहाए हुए, रूप और शोभा के प्रकाशस्वरूप ये परम सुन्दर राजकुमार ऐसे लग रहे हैं मानो उन्हें किसी साँचे में ढालकर रचा गया हो। ऐसा लग रहा है मानो किसी महामोहनी को मोहित करने के लिए विधाता ने किसी विधि-विशेष से इन महान् वीरों की रचना की हो। अथवा ये वीर ऐसे लग रहे हैं, मानो देव-दानवों ने अपने विवादों को छोड़कर समुद्र को मथकर इन राजकुमार रूपी रत्नों को बाहर निकाला हो। या फिर यह लग रहा है कि विश्वनाथ परमात्मा ने स्वयं देखते रहने के लिए इन चेहरों को सुधारकर बनाया हो ॥ १७३ अपने राज्य की सीमा पार कर अन्य देशों को लाँघकर ये सब राजकुमार

लाँघ लाँघ राजा मिथलेस के पहूचे देस आन कै। तुरही अनंत बाजैं दुंदभी अपार गाजैं भाँति भाँति बाजन बजाए जोर जान कै। आगै आनि तीनै न्रिप कंठ लाइ लीने रीत कइ सभै कीने बैठे बेद कै बिधान कै। बरखियो धन की धार पाइयत न पारावार भिच्छक भए न्रिपार ऐसे पाइ दान कै॥ १७४॥ बाने फहराने घहराने दुंदभ अरराने जनकपुरी को निअराने बीर जाइकै। कहूँ चउर ढारैं कहूँ चारण उचारैं कहूँ भाटजु पुकारैं छंद सुंदर बनाइकै। कहूँ बीन बाजैं कोऊ बासुरी म्रिदंग साजैं देखे काम लाजैं रहे भिच्छक अघाइकै। रंक ते सु राजा भए (मू॰ग्रं॰२०१) आसिख असेख दए माँगत न भए फेर ऐसो दान पाइकै॥ १७५॥ आन कै जनक लीनो कंठ सो लगाइ लिहूँ आदर दुरंतकै अनंत भाँत लए हैं। बेद के बिधान कै कै ब्यास ते बधाई बेव एक एक बिप्र कउ बिसेख स्वरन दए हैं। राजकुअर सभै पहिराइ सिर पाइन ते मोती मान करके बरख मेघ गए हैं। दंती स्वेत दीने केते सिंधली तुरे नवीने राजा के कुमार

मिथिला के राजा (जनक) के यहाँ जा पहुँचे। पहुँचने पर इन लोगों ने अनेकों प्रकार के बाजे और दुंदुभियाँ पूरे ज़ोर के साथ बजाना शुरू कर दिया। राजा ने आगे बढ़कर तीनों को गले से लगा लिया। वेद-विधि से सभी रीतियों का पालन किया। धन की अनन्त धारा बरसने लगी और दान प्राप्त करके भिक्षुक भी राजा बन गए॥ १७४॥ ध्वजाएँ फहराने लगीं, दुंदुभियाँ बजने लगीं और जनकपुरी के पास जाकर शूरवीर गर्जन करने लगे। कहीं पर चँवर झुलाया जा रहा है, कहीं चारण स्तुतिगान कर रहे थे तथा कहीं पर भाट लोग सुन्दर छंद बनाकर सुना रहे थे। कहीं वीणा बज रही है, कहीं बाँसुरी, मृदंग आदि वाद्य बज रहे हैं। यह सब देखकर कामदेव भी लजा रहा है और इतना दान दे दिया गया कि भिक्षुक भी अघा गए हैं। रंक राजा हो गए और आशीषें देने लगे। दान पाने के बाद किसी को भी माँगने की प्रवृत्ति बाक़ी न बची॥ १७५॥ जनक ने आकर तीनों को गले से लगा लिया और विविध प्रकार से उनका आदर किया। वेदों के विधान का पालन किया गया और व्यासों ने वेदोक्त बधाई-वाक्य कहे। राजा ने एक-एक विप्र को विशेष प्रकार से स्वर्णदान दिया। राजकुमारों को भेंटें दी गयीं और मोतियों की मेघ-वर्षा की गई। सफ़ेद हाथी और सिंधुप्रदेश के चपल अश्व राजकुमारों को भेंट में दिए गए। इस प्रकार तीनों राजकुमार

तीओ ब्याहकै पठए हैं ॥ १७६ ॥ ॥ दोधक छंद ॥ ब्याह सुता न्रिप की न्रिपबालं । माँग बिदा मुखि लीन उतालं । साजन बाज चले गज संजुत । एशनएश नरेशन के जुत ॥१७७॥ दाज शुमार सकै कर कउनै । बीन सकै बिधना नही तउनै । बेसन बेसन बाज महा मत । भेसन भेस चले गज गज्जत ॥ १७८ ॥ बाजत नाद नफीरन के गन । गाजत सूर प्रमाथ महा मन । अउधपुरी निअरान रही जब । प्राप्त भए रघुनंद तही तब ॥ १७९ ॥ मातन वार पियो जल पानं । देख नरेश रहे छबि मानं । भूप बिलोकत लाइ लए उर । नाचत गावत गीत भए पुर ॥ १८० ॥ भूपज ब्याह जबै ग्रहि आए । बाजत भाँति अनेक बधाए । तात बशिष्ट सुमित्र बुलाए । अउर अनेक तहाँ रिख आए ॥ १८१ ॥ घोर उठी घहराइ घटा तब । चारो दिस दिग दाह लख्यो सभ । मंत्री मित्र सभै अकुलाने । भूपत सो इह भांत बखाने ॥१८२॥ होत उतपात बडे सुन राजन । मंत्र करो रिख जोर समाजन ।

विवाह करके चल पड़े हैं ॥ १७६ ॥ ॥ दोधक छंद ॥ राजा जनक की कन्याओं से विवाह करके राजकुमारों ने शीघ्र ही बिदाई माँग ली । हाथियों और घोड़ों से युक्त राजाओं के झुण्ड-समेत अनेक कामनाओं को मन में रखते हुए सभी लोग चल पड़े ॥ १७७ ॥ दहेज इतना दिया गया कि उसे ब्रह्मा भी इकट्ठा करके नहीं रख सकते थे । अनेक प्रकार के घोड़े और अनेक वेशों में सुसज्जित गरजते हुए हाथी चल पड़े ॥१७८॥ नफ़ीरों की ध्वनि बज उठी और महाबलशाली शूरवीर गरजने लगे । जब अवधपुरी पास आ गई तब सबको रामचन्द्रजी ने स्वागत किया ॥१७९ माताओं ने राजकुमारों पर न्योछावर करके जल-पान किया और राजा दशरथ इस छवि को देख मन में प्रसन्न हो उठे । राजा ने देखते ही सबको गले लगा लिया और सभी लोग नाचते-गाते नगर में प्रवेश कर गए ॥ १८० ॥ राजकुमार विवाह के बाद जब घर आये तो अनेक प्रकार की बधाइयों के गीत गूँजने लगे । दशरथ ने वशिष्ठ एवं सुमंत्र को बुलाया तथा उनके साथ अन्य कई ऋषि भी आ पहुँचे ॥ १८१ ॥ उसी समय चारों ओर घटाएँ घहराने लगीं और सबने चारों दिशाओं में अग्नि-ज्वालाओं को प्रत्यक्ष देखा । यह देखकर सभी मंत्री तथा मित्र व्याकुल हो उठे और राजा से इस प्रकार निवेदन करने लगे ॥१८२॥ हे राजन् ! चारों ओर बहुत उत्पात हो रहा है, इसलिए सब ऋषियों और

बोलहु बिप्र बिलंब न कीजै। है क्रित जग्ग अरंभन कीजै ॥ १८३ ॥ आइस राज दयो ततकालह। मंत्र सुमित्रह बुद्ध बिसालह। है क्रित जग्ग अरंभन कीजै। आइस बेग नरेश करीजै ॥ १८४ ॥ बोल बडे रिख लीन महाँ द्विज। है तिन बोल लयो जु तरित्तज। पावक कुंड खुद्यो तिह अउसर। गाडिय खंभ तहाँ धरमं धर ॥ १८५ ॥ छोरि लयो हयसारह ते हय। असित करन प्रभासत के कय। देसन देस नरेश दए संगि। सुंदर सूर सुरग सुभं अंग ॥१८६॥ ॥ समानका छंद ॥ नरेश संगि कै दए। प्रबीन बीन कै लए। सनद्धबद्ध हुइ चले। सु बीर बीर हा भले ॥१८७॥ बिदेस (मू०ग्रं०२०२) देस गाहकै। अदाह ठउर दाहकै। फिराइ बाज राज कउ। सुधार राज काज कउ ॥ १८८ ॥ नरेश पाइ लागियं। दुरंत दोख भागियं। सुपूर जग्ग को कर्यो। नरेश त्रास कउ हर्यो ॥ १८९ ॥ अनंत दान पाइकै। चले द्विजं अघाइ कै। दुरंत आसिखं रड़ैं। रिचा सु बेद की पड़ैं ॥ १९० ॥ नरेश

दाताओं को बुलाकर विचार-विमर्श कीजिए। ब्राह्मणों को अविलम्ब बुला लीजिए और कृत-यज्ञ प्रारम्भ कीजिए ॥ १८३ ॥ मित्रों एवं मंत्रियों की विशाल बुद्धि के अनुरूप, हे राजन् ! तत्काल आदेश कीजिए और कृत-यज्ञ को अविलम्ब प्रारम्भ कीजिए ॥ १८४ ॥ राजा ने बड़े ऋषियों और महान मित्रों को तुरन्त बुला लिया। वहीं पर अग्निकुंड खोदा गया तथा धर्मस्तम्भ की स्थापना की गई ॥ १८५ ॥ घुड़साल से घोड़े को छोड़ दिया गया, ताकि अन्य राजाओं की प्रभा को समाप्त कर उन्हें जीता जा सके। देश-देशान्तरों के राजा घोड़े के साथ भेजे गए और ये सब अत्यन्त सौन्दर्यमय अंगों वाले तथा शोभा को बढ़ानेवाले थे ॥१८६॥ ॥ समानका छंद ॥ राजा ने चुन-चुनकर प्रवीण नरेशों को साथ भेजा और वे पूर्ण रूप से सुसज्जित होकर चल पड़े। ये वीर बहुत ही भली प्रकार के वीर थे ॥ १८७ ॥ इन्होंने देश-विदेशों में विचरण किया और सब स्थानों में अपने तेज की ज्वाला जलाकर सबको भस्म किया। अश्व को चारों ओर घुमाया और इस प्रकार राजा दशरथ के राजकाज में वृद्धि की ॥ १८८ ॥ अनेकों नरेश चरणों पर आ लगे और इन्होंने उनके कष्टों का निवारण किया। राजा ने यज्ञ सम्पूर्ण किया और इस प्रकार प्रजा के कष्ट का हरण किया १८९ विभिन्न प्रकार का दान पाकर, विभिन्न प्रकार के आशीर्वाद देते हुए और वेदों की ऋचाओं का गायन

देस देस के। सुभंत बेस बेस के। बिसेख सूर सोभहीं। सुशील नारि लोभहीं ॥ १९१ ॥ बजंत कोट बाजहीं। सनाइ भरे साजहीं। बनाइ देवता धरें। समान जाइ पा परें ॥१९२॥ करैं डंडउत पा परें। बिसेख भावना धरें। सु मंत्र जंत्र जापिऐ। दुरंत थाप थापिऐ ॥ १९३ ॥ नचात चारु मंगना। सुजान बेव अंगना। कमी न कउन काज की। प्रभाव रामराज की ॥ १९४ ॥ ॥ सारसुती छंद ॥ देस देसन की क्रिआ सिखवंत हैं दिज एक। बान अउर कमान की बिध देत आन अनेक। भाँत भाँतन सों पढ़ावत बार नार शिंगार। कोक काब्य पड़ें कहूँ ब्याकरन बेद बिचार ॥ १९५ ॥ राम परम पवित्र है रघुबंस के अवतार। दुष्ट दैतन के संघारक संत प्रान अधार। देसि देसि नरेश जीत असेस कीन गुलाम। जत्र तत्र धुजा बधी जैपत्र की सभ धाम ॥ १९६ ॥ बाट तीन

करते हुए विप्रगण प्रसन्न मन से संतुष्ट होकर वापस चल पड़े ॥ १९० ॥ देश-देशान्तरों के राजा विभिन्न वेशों में शोभायमान होने लगे और शूरवीरों की विशेष शोभा को देखकर सुन्दर एवं सुशील स्त्रियाँ भी उन पर मोहित होने लगीं ॥ १९१ ॥ करोड़ों वाद्य बजने लगे और सभी प्रेम से भरे हुए शोभायमान हो रहे थे। देवताओं की स्थापना हो रही थी और सभी आभारस्वरूप देवताओं को प्रणाम कर रहे थे ॥ १९२ ॥ सभी लोग दण्डवत कर चरण-वन्दना करने लगे और विशेष भावनाओं को मन में धारण करने लगे। मंत्रों-यंत्रों का जाप होने लगा और गणों की स्थापना होने लगी ॥ १९३ ॥ सुन्दर स्त्रियाँ और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। इस प्रकार रामराज्य के प्रभाव के फलस्वरूप राज्य में किसी प्रकार की भी कमी न रही ॥ १९४ ॥ ॥ सरस्वती छंद ॥ एक ओर द्विजगण विभिन्न देशों की क्रियाओं की शिक्षा दे रहे हैं और एक ओर धनुष-बाण चलाने की विधियों का निरूपण किया जा रहा है। नारियों के शृंगार सम्बन्धी विभिन्न प्रकार का शिक्षण चल रहा है और कोक-शास्त्र, काव्य, व्याकरण और वेद-विचार भी साथ-साथ चल रहे हैं ॥ १९५ ॥ रघुवंश के अवतार श्रीरामचन्द्र परमपवित्र हैं तथा दुष्ट दैत्यों का संहार करके सन्तों के प्राणों के आधार भी हैं। देश-देशान्तरों के राजाओं को जीतकर इन्होंने उन्हें अपना दास बना लिया है और यत्र-तत्र-सर्वत्र इनके विजयपत्रकों वाली ध्वजाएँ फहर रही हैं १९६ राजा ने वशिष्ठ से काफ़ी समय तक विचार विमर्श करने

दिशा तिहूँ सुत राजधानी राम । बोल राज बिशिष्ट कीन बिचार केतक जाम । साज राघव राज के घट पूर राखशि एक । आंब्र मउलन दीसु उबकं अउर पुहप अनेक ॥ १९७ ॥ थार चार अपार कुंकम चंदनादि अनंत । राज साज धरे सभै तह आन आन तुरंत । मंथरा इक गांध्रबी ब्रहमा पठी तिह काल । बाज साज सणै चड़ी सम सुभ्र धउल उताल ॥ १९८ ॥ बेण बीण म्रदंग बाज सुणे रही चक बाल । रामराज उठी जयत धुनि भूम भूर बिसाल । जात ही संगि कैकई इह भांत बोली बात । हाथ बात छुटी चली बर मांग हैं किह रात ॥ १९९ ॥ कैकई इम जउ सुनी भई बुबथता सरबंग । झूम भूम गिरी छ्रिगी जिम लाग बाण सुरंग । जात ही अवधेश कउ इह भांत बोली बैन । दीजिऐ बर भूप मोकउ जो कहे दुइ दैन ॥२००॥ राम को बन दीजिऐ (मू०ग्रं०२०३) मम पूत कउ निज राज । राज साज सु संपदा दोऊ चउर छत्र समाज ।

के बाद तीनों पुत्रों को तीन दिशाओं का राज्य तथा रामचन्द्र को राजधानी अयोध्या का राज्य दे दिया। राघवराज दशरथ के घर में (वेश बदलकर) एक राक्षसी रहती थी, जिसने इस सब कार्य के लिए अबीर, धागा, जल एवं पुष्प आदि प्रस्तुत किए ॥ १९७ ॥ चार थार जिसमें कुंकुम, चन्दन आदि रखे थे वे सब सजाकर राजा के पास इस कार्य की पूर्ति के लिए रख दिए गए। उसी क्षण ब्रह्मा ने मंथरा नामक एक गन्धर्व-स्त्री को उस जगह भेजा जो सब प्रकार की कलाओं से सुसज्जित हो श्वेत वस्त्र धारण कर शीघ्रतापूर्वक चल पड़ी ॥ १९८ ॥ वेणु, वीणा, मृदग एवं अन्य वाद्यों की ध्वनि को वह चकित हो सुनने लगी और उसने यह भी देखा कि विशाल भूमि पर राम-राज्य के जय-जयकार की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। कैकेयी के पास जाते ही वह इस प्रकार कहने लगी कि जब बात हाथ से निकल जायेगी तब तुम किसके लिए वर माँगोगी ॥ १९९ ॥ कैकेयी ने जब सारा प्रसंग सुना तो वह सर्वांग रूप से दु:खित हो उठी और अचेत हो भूमि पर इस प्रकार गिर पड़ी मानो बाण लगने पर हिरणी गिर पड़ती है। वह अवधनरेश दशरथ के पास जाते ही यह कहने लगी कि हे राजन्! आपने जो दो वरदान मुझे देने का वादा किया था वे वरदान मुझे अभी दीजिए ॥ २०० ॥ राम को वनवास दीजिए और मेरे पुत्र को अपना राज्य दीजिए। उसको भरत को राज्यकाज, सम्पदा, चँवर और छत्र सब कुछ दे दीजिए देश और विदेश सबका राज्य जब आप मुझ दे देंगे तभी मैं आपको

देस अउरि बिदेस की ठकुराइ दै सभ मोहि। सत्त सील सती जतिब्रत तउ पछानो तोहि ॥ २०१ ॥ पापनी बन राम को पैहैं कहा जस काढ। भसम आनन ते गई कहि कै सकै अस्ति बाढ। कोध भूप कुअंड लै तुहि काटिऐ इह काल। नास तोरन कीजिऐ तक छातिऐ तुहि बाल ॥ २०२ ॥ ॥ नग सरूपी छंद ॥ नरदेव देव राम है। अभेव धरम धाम है। अबुद्ध नारि तै मनै। बिसुद्ध बात को भनै ॥ २०३ ॥ अगाधि देव अनंत है। अभूत सोभवंत है। क्रिपाल करम कारणं। बिहाल द्याल तारणं ॥ २०४ ॥ अनेक संत तारणं। अदेव देव कारणं। सुरेश भाइ रूपणं। समिद्ध सिद्ध कूपणं ॥ २०५ ॥ बरं नरेश दीजिऐ। कहे सु पूर कीजिऐ। न संक राज धारिऐ। न बोल बोल हारिऐ ॥ २०६ ॥ ॥ नग सरूपी अद्धा छंद ॥ न लाजिऐ। न भाजिऐ। रघुएश को। बनेस को ॥ २०७ ॥ बिदा करो। धरा हरो।

सत्यशील का पालन करनेवाला और यतिधर्म की पहचान करनेवाला मानूंगी ॥ २०१ ॥ राजा ने उत्तर दिया कि हे पापिनी ! राम को वन मे भेजकर तुमको कौन सा यश प्राप्त होगा ? तुम्हारे इस प्रकार बढ़कर कहने से मेरे माथे पर से छूटते हुए पसीने के साथ मेरे मस्तक की विभूति रूपी भस्म भी बह गई। राजा ने क्रोधित होकर हाथ में धनुष लेते हुए यह कहा कि मैं अभी तुमको काट फेंकता और तुम्हारा नाश कर देता हूँ, परन्तु स्त्री होने के नाते तुम्हें छोड़ देता हूँ ॥ २०२ ॥ ॥ नगस्वरूपी छद ॥ नरों में श्रेष्ठ देव राम हैं जो कि निश्चित रूप से धर्म के धाम है। हे बुद्धिहीन नारि ! तुम इस प्रकार की उलटी बात क्यों कह रही हो ॥ २०३ ॥ वे अगाध रूप से अनन्त देव-तुल्य हैं और सर्वभूतो से परे शोभायमान हैं। वे सब पर कृपा करनेवाले कृपालु हैं और बे-सहारों को दयापूर्वक सहारा देकर पार ले जानेवाले हैं ॥ २०४ ॥ वे अनेक सन्तों का उद्धार करनेवाले हैं तथा देव और अदेवों के मूल कारणस्वरूप (परब्रह्म) हैं। वे देवताओं के भी राजा हैं और समस्त सिद्धियों के भण्डार हैं ॥ २०५ ॥ रानी ने कहा कि हे राजन् ! मुझे वरदान दीजिए और अपनी कही हुई बात को पूरा कीजिए। मन में द्विविधा की स्थिति का त्याग कीजिए और अपने वचन को मत हारिए ॥२०६॥ ॥ नगस्वरूपी अर्ध छंद ॥ हे राजन् ! संकोच मत कीजिए और वचन से मत भागिए तथा राम को वनवास दीजिए २०७ राम को विदा करो

न भाजिऐ । बिराजिऐ ॥ २०८ ॥ बशिष्ट को । दिजिष्ट को । बुलाइऐ । पठाइऐ ॥ २०९ ॥ नरेश जी । उसेस ली । घुमे घिरे । धरा गिरे ॥ २१० ॥ सुचेत भे । अचेत ते । उसास लै । उदास ह्वै ॥ २११ ॥ ॥ उगाध छंद ॥ सबार नैणं । उदास बैणं । कह्यो कुनारी । कुब्रितकारी ॥ २१२ ॥ कलंक रूपा । कुबिरत कूपा । निलज्ज नैणी । कुबाक बैणी ॥ २१३ ॥ कलंक करणी । सम्रिद्ध हरणी । अक्रित्त करमा । निलज्ज धरमा ॥ २१४ ॥ अलज्ज धामं । निलज्ज बामं । असोभ करणी । ससोभ हरणी ॥ २१५ ॥ निलज्ज नारी । कुकरम कारी । अधरम रूपा । अकज्ज कूपा ॥ २१६ ॥ पह्पिट आरी । कुकरम कारी । मरैं न मरणी । अकाज करणी ॥ २१७ ॥ ॥ केकई बाच ॥ नरेश मानो । कह्यो पछानो । दयो सु देहू । बरं दु मोहू ॥ २१८ ॥ चितार लीजै । कह्यो सु दीजै । न

और उसको दिया हुआ (देने के लिए सोचा हुआ) राज्य ले लो । वचन को पालने से दूर मत भागिए और शांतिपूर्वक विराजिए ॥ २०८ ॥ हे राजन् ! वशिष्ठ और राजपुरोहित को बुलाइए और (राम को) वन भेजिए ॥ २०९ ॥ राजा ने लंबी साँस ली, इधर-उधर घूमा और धरती पर गिर पड़ा ॥ २१० ॥ अचेतावस्था से राजा फिर होश में आया और उसने उदास होकर लंबी साँस ली ॥ २११ ॥ ॥ उगाध छंद ॥ आँखों में आँसू भरकर उदास वाणी से राजा ने (कैकेयी से) कहा कि तुम नीच एवं कुवृत्ति वाली स्त्री हो ॥ २१२ ॥ तुम (स्त्री-जाति पर) कलंक-स्वरूप हो और कुवृत्तियों का भंडार हो । तुम्हारी आँखों में लज्जा नहीं और तुम्हारे बोल दुर्वचन हैं ॥ २१३ ॥ तुम कलंकिनी हो और समृद्धि का हरण करनेवाली हो । तुम अकृत्यों (निषिद्ध कर्मों) को करनेवाली हो और निर्लज्जता ही तुम्हारा धर्म है ॥ २१४ ॥ तुम निर्लज्जता का घर हो और संकोच को त्यागनेवाली स्त्री हो । तुम अशोभित कर्मों को करनेवाली हो और शोभा का हरण करनेवाली हो ॥ २१५ ॥ हे निर्लज्ज नारी ! तुम कुकर्मों को करनेवाली अधर्मस्वरूपा और बुरे कामों का भंडार हो ॥ २१६ ॥ पुष्पों को काट फेंकनेवाली आरी-स्वरूपा स्त्री ! तुम कुकर्मी हो । मारने पर भी तुम बुरे कार्यों से विलग होकर नहीं मरोगी और सदैव निषिद्ध कार्य ही करती रहोगी ॥ २१७ ॥ ॥ कैकेयी उवाच हे राजन ! मेरी बात मानो और अपने कथन का स्मरण कर जो आपने वचन दिया है उसके अनुरूप मुझ दो वर दो २१८ । भली

धरम (मू०ग्रं०२०४) हारो। न भरम टारो ॥ २१९ ॥ बुलै बशिष्टै। अपूर्ब इष्टै। कही सिएसं। निकार देसं ॥२२०॥ बिलम न कीजै। सु मान लीजै। रिखेश रामं। निकार धामं ॥ २२१ ॥ रहे न इआनी। भई दिवानी। चुपं न बउरी। बकंत डउरी ॥ २२२ ॥ ध्रिगं सरूपा। निखेध कूपा। द्रुबाक बैणी। नरेश छैणी ॥ २२३ ॥ निकार रामं। अधार धामं। हन्यो निजेशं। कुकरम भेसं ॥ २२४ ॥ ॥ उगाथा छंद ॥ अजित्त जित्ते अबाह बाहे। अखंड खंडे अदाह दाहे। अभंड भंडे अडंग डंगे। अमुंन मुंने अभंग भंगे ॥ २२५ ॥ अकरम करमं अलक्ख लक्खे। अडंड डंडे अभक्ख भक्खे। अथाह थाहे अदाह दाहे। अभंग

भाँति स्मरण कीजिए और जो कहा है उसे दीजिए। अपने धर्म का त्याग मत करिए और मेरे विश्वास को मत तोड़िए ॥ २१९ ॥ वशिष्ठ को बुलाइए और जो अपूर्व सुनियोजित है उसे क्रियान्वित कीजिए। सियापति राम को आदेश दीजिए और उसे देश से निकाल दीजिए ॥२२०॥ इस कार्य में विलम्ब मत कीजिए और मेरा कहना मान लीजिए। राम को ऋषि बनाकर (अर्थात् वल्कल धारण करवा कर) घर से निकाल दीजिए ॥ २२१ ॥ (कवि कहता है कि) वह बच्चों की तरह ज़िद कर रही थी और दीवानी हो उठी थी। वह चुप ही नहीं हो रही थी और पागलों के समान बकती चली जा रही थी ॥२२२॥ वह धिक्कारस्वरूपा और निषिद्ध कर्मों का भंडार थी। नरेश के बल को क्षीण करनेवाली वह दुर्वाक्य बोलनेवाली (रानी) थी ॥ २२३ ॥ उसने घर के मूलभूत आधार राम को निकलवा दिया और इस प्रकार अपने पति को भी (वियोग-दुःख से) मार डालने का कुकर्म किया ॥ २२४ ॥ ॥ उगाथा छंद ॥ (कवि कहता है कि स्त्री ने) अजेयों को जीत लिया, न नष्ट होने वालों को नष्ट कर दिया, अखंड को खंडित कर दिया और कभी भी न पिघलनेवालों को जलाकर भस्म कर दिया है। जिनकी कभी निन्दा नहीं हुई थी उनको (इसने) निन्दनीय बना दिया और जिन पर कभी चोट नहीं हो सकती थी उनको भी इसने काट खाया। कभी भी न छले (मूंड़े जा सकनेवालों को इसने मूंड़ डाला और अभंजनशीलों का इसने भंजन कर दिया ॥ २२५ ॥ इसने कर्म (-काण्डों) में अलिप्त बने रहनेवालों को कर्मों में उलझा दिया और इसकी दृष्टि इतनी तेज़ है कि यह भावी को भी देख सकती है अदण्डनीय को यह दण्डित और अभक्ष्य का भी यह भक्षण कर सकती है इसने अथाह की भी थाह पा ली है और

भंगे अबाह बाहे ।। २२६ ।। अभिज्ज भिज्जे अजाल जाले । अखाप खापे अचाल चाले । अभिन भिने अडंड डांडे । अकित्त कित्ते अमुंड मांडे ।। २२७ ।। अछिन्न छिद्रे अदग्ग दागे । अचोर चोरे अठग्ग ठागे । अभिद्द भिद्दे अफोड़ फोड़े । अकज्ज कज्जे अजोड़ जोड़े ।। २२८ ।। अदग्ग दग्गे अमोड़ मोड़े । अखिच्च खिच्चे अजोड़ जोड़े । अकड्ढ कड्ढे असाध साधे । अफट्ट फट्टे अफाध फाधे ।। २२९ ।। अधंध धंधे अकज्ज कज्जे । अभिन भिने अभज्ज भज्जे । अछेड़ छेड़े अलद्ध लद्धे । अजित्त जित्ते अबद्ध बद्धे ।। २३० ।। अचोर चोरे अतोड़ तोड़े । अठट्ट ठट्टे अपाड़ पाड़े । अथक्क थक्के अथंग

अदग्ध बने रहनेवालों को भी इसने दग्ध कर दिया है। अभंजनशीलों को इसने तोड़कर रख दिया है और न हिलनेवालों को इसने अपना वाहन बना लिया है ।। २२६ ।। भीग न सकनेवालों को इसने (अपने रंग में) रँग दिया है और अज्वलनशीलों को इसने अपनी ज्वाला से जला दिया है। अक्षय बने रहनेवालों का इसने क्षय कर दिया है और गतिहीनों को इसने गतिमान बना दिया है। समरूप बने रहनेवालों को इसने खंड-खंड कर दिया है और अदंडनीय लोगों को इसने दंडित करवा दिया है। अकृत्यों को यह करनेवाली है और खंडन योग्य का यह मंडन करनेवाली है ।।२२७।। इसने (दोष रूपी) छिद्रों से विहीन व्यक्तियों को छेदकर रख दिया और बेदाग लोगों को दागी कर दिया। चौर्यकर्म से विरत लोगों को चोर और ठगी न करनेवालों को इसने ठग बना दिया। अभेद्यों का इसने भेदन किया और कभी न टूट सकनेवालों को इसने फोड़ दिया। इसने नंगों को ढक दिया और कभी न जुड़ सकनेवालों को जोड़ दिया ।। २२८ ।। अदग्धशीलों को जला दिया और न मुड़नेवालों को इसने मोड़ दिया। न खिंच सकनेवालों को इसने खींच दिया और अजोड़ों को इसने जोड़ दिया। कभी (घर से) न निकलनेवालों को इसने निकाल दिया और असाध्यों को भी इसने साध लिया। घायल न हो सकनेवालों को इसने घायल कर दिया और न फँसनेवालों को इसने फाँस लिया ।। २२९ ।। त्याज्य-कार्य इसके काम हैं और दुराचार को यह ढकनेवाली है। एक रूप बने रहनेवालों में यह भिन्नता पैदा करनेवाली है और न भागनेवाले भी इसके सामने भाग खड़े होते हैं। यह शान्त व्यक्ति को भी छेड़नेवाली और अत्यन्त गुप्त को भी ढूंढ़ निकालनेवाली है। अजेयों को यह जीतने वाली और अवध्यों का यह वध करनेवाली है ।। २३० ।। कठोर को भी यह चीर देनेवाली और तोड़ देनेवाली है अनस्थापितों को यह स्थापित

थंगे । अजुद्ध जुद्धे अजंग जंगे ।। २३१ ।। अकुट्ट कुट्टे अघुट्ट आए । अचूर चूरे अदाव दाए । अभीर भीरे अभंग भंगे । अटुक्क टुक्के अकंग कगे ।। २३२ ।। अखिद्द खेदे अढाह ढाहे । अगंज गंजे अबाह बाहे । अमुंन मुंने अहेह हेहे । बिरचंत नारी त सुक्ख केहे ।। २३३ ।। ।। दोहरा ।। इह बिधि केकई हठ गह्यो बर माँगन न्रिप तीर । अति आतर क्या कहि सकै बिध्यो काम के तीर ।। २३४ ।। ।। दोहरा ।। बहु बिधि पर पाइन रहे मोरे बचन अनेक । गहिअउ हठि अबला रही मान्यो बचन न एक ।। २३५ ।। बर दयो मै छोरो नही तै करि कोटि उपाइ । (मू०ग्रं०२०५) घर मो सुत कउ दीजिऐ बनबासै रघुराइ ।। २३६ ।। भूप धरन बिन बुद्धि गिर्यो सुनत बचन

करनेवाली तथा न फट सकनेवालों को यह फाड़ देनेवाली है । अचल को भी यह धकेल देनेवाली और स्वस्थ को भी यह पंगु बना देनेवाली है । बलवानों से यह युद्ध करती है और जिन महाबलियों से युद्ध करती है उनकी युद्धकला को मुर्चा लगाकर उन्हें खत्म कर देती है ।। २३१ ।। महाबलशालियों को इसने पीटकर रख दिया और कभी भी न घुट सकनेवाले भी इसकी शरण में आते हैं (और इससे कलाएँ सीखते हैं) । कठोरतमों को इसने चूर्ण बना दिया और कभी भी दाँव न खानेवालों को भी इसने धोखा दे दिया । अभयों को इसने भयभीत कर दिया और अभंजनशीलों का इसने भंजन कर दिया । न टूटनेवालों के इसने टुकड़े कर दिए और स्वस्थ शरीरवालों को इसने अपाहिज बना दिया ।। २३२ ।। डटनेवालों को इसने खदेड़ दिया और कभी न गिरनेवालों को इसने गिरा दिया । अभंजनशीलों को इसने तोड़ दिया और बड़ों-बड़ों पर इसने सवारी की अर्थात् उन्हें अपना दास बनाया । कभी भी धोखा न खाने वालों को इसने छल लिया । जिस घर में नारी ही भाग्यविधाता अर्थात् हर मामले की निर्णायक हो तो वहाँ सुख-समृद्धि कैसे रह सकती है ।। २३३ ।। ।। दोहा ।। इस प्रकार कैकेयी ने राजा के पास वरदान माँगने के समय बहुत हठ किया । राजा भी बहुत व्याकुल हो उठा, लेकिन कामिनी स्त्री के मोह और कामदेव के प्रभाव के कारण कुछ भी कहने मे असमर्थ हो गया ।।२३४।। ।।दोहा।। राजा बहुत प्रकार से पैर पकड़कर रानी के वचनों को मोड़ा (अर्थात् टालने का प्रयास किया), परन्तु उस स्त्री ने अबला बनते हुए अपना हठ बनाए रखा और राजा की एक भी बात नहीं मानी ।। २३५ ।। वरदान लिये बिना मैं छोड़ूंगी नहीं चाहे आप करोड़ों उपाय कर लें मेरे पुत्र को राज्य दीजिए और रामचन्द्र को वनवास

त्रिय कान। जिम त्रिगेश बन कै बिखै बध्यो बध करि बान ॥२३७॥ तरफरात प्रिथवी पर्यो सुनि बन राम उचार। पलक प्रान त्यागे तजत मद्धि सफरि सर बार॥ २३८॥ राम नाम स्रवनन सुण्यो उठि थिर भयो सुचेत। जनु रण सुभट गिर्यो उठ्यो गहि अस निडर सुचेत॥ २३९॥ प्रान पतन न्रिप बर सहो धरम न छोरा जाइ। दैन कहे जो बर हुते तन जुत दए उठाइ॥ २४०॥ ॥ कैकई बाच न्रिपो बाच बशिष्ट सों॥ ॥ दोहरा॥ राम पयानो बन करै भरथ करै ठकुराइ। बरख चतरदस के बिते फिरि राजा रघुराइ॥ २४१॥ कही बशिष्ट सुधार करि स्री रघुबर सो जाइ। बरख चतुरदस भरथ न्रिप पुनि न्रिप स्री रघुराइ॥ २४२॥ सुनि बशिष्ट को बच स्रवण रघुपति फिरे ससोग। उत दसरथ तन को तज्यो स्री रघुबीर बियोग॥२४३॥ ॥ सोरठा॥ ग्रहि आवत रघुराइ सभु धन दियो लुटाइकै। कटि तरकशी सुहाइ बोलत भे सिय सो बचन॥ २४४॥ ॥ सोरठा॥ सुनि सिय सुजस सुजान रहौ

दीजिए॥ २३६॥ स्त्री के यह वचन सुनकर राजा अचेत होकर भूमि पर ऐसे गिर पड़ा, जैसे बाणों से बिधकर शेर बन में गिर पड़ता है॥२३७॥ राम के वनवास की बात सुनकर राजा तड़फकर धरती पर ऐसे गिर पड़ा जैसे मछली जल से निकाल देने पर तड़फती है और प्राणों का त्याग कर देती है॥ २३८॥ पुनः राम का नाम सुनने पर राजा चेतावस्था में आया और ऐसे उठ खड़ा हुआ जैसे युद्ध में वीर अचेत होकर गिरने के बाद होश में आने पर कृपाण पकड़कर उठ खड़े होते हैं॥ २३९॥ राजा ने प्राणों का निकलना अर्थात् मृत्यु को स्वीकार कर लिया, परन्तु धर्म छोड़ना उचित नहीं समझा और जो वरदान देने को कहा था उन्हें मान लिया तथा राम को वनवास दे दिया॥ २४०॥ ॥ कैकेयी उवाच, नृप उवाच वशिष्ठ के प्रति॥ ॥ दोहा॥ राम को वनवास दे दीजिए और भरत को राज दे दीजिए। चौदह वर्ष के बाद रामचन्द्र पुनः राजा होंगे॥ २४१॥ वशिष्ठ ने यही बात अपने ढंग से थोड़ा सुधार कर रामचन्द्र को कह दी कि चौदह वर्ष तक भरत राज्य करेंगे और पुनः आप राजा होंगे॥२४२॥ वशिष्ठ की बात सुनकर रघुवीर (राम) उदास मन से चल दिए और इधर राम के वियोग में राजा ने प्राण त्याग दिए॥२४३॥ सोरठा अपने महल तक पहुँचते ही जी ने सारा धन लुटाकर दान कर दिया और कमर में तरकश बाँधकर सीताजी से कहने

कौशल्या तीर तुम । राज करउ फिरि आन तोहि सहित बनबास बसि ।। २४५ ।। ।। सीता बाच राम सों ।। ।। सोरठा ।। मै न तजो पिय संगि कैसोई दुख जिय पै परो । तनक न मोरउ अंगि अंगि ते होइ अनंग किन ।। २४६ ।। ।। राम बाच सीता प्रति ।। ।। मनोहर छंद ।। जउ न रहउ ससुरार क्रिसोदर जाहि पिता ग्रिह तोहि पठै दिउ । नेक सु आनन ते हम कउ जोई ठाट कहो सोई गाठ गिठै दिउ । जे किछु चाह करो धन की टुक मोह कहो सभ तोहि उठै दिउ । केतक अउध को राज सलोचन रंक को लंक निशंक लुटै दिउ ।। २४७ ।। घोर सिया बन तूँ सुकुमार कहो हमसों कस तै निबहैहै । गुंजत सिंघ डकारत कोल भयानक भील लखै भ्रम ऐहै । सुंकत साप बकारत बाघ भकारत भूत महा दुख पैहै । तूँ सुकुमार रची करतार बिचार चले तुहि किउं बनि ऐहै ।। २४८ ।। ।। सीता बाच राम सों ।। ।। मनोहर छंद ।। (मू०ग्रं०२०६) सूल सहों

लगे ।। २४४ ।। ।। सोरठा ।। हे बुद्धिमती सीता ! तुम (माता) कौशल्या के पास रहो और वनवास के बाद तुम्हारे साथ मैं पुनः राज्य करूँगा ।। २४५ ।। ।। सीता उवाच राम के प्रति ।। ।। सोरठा ।। मुझे कितना ही दुःख क्यों न उठाना पड़े, मैं अपने प्रियतम का साथ नहीं छोड़ सकती । इसके लिए बेशक अंग-अंग काट दिया जाय, मैं ज़रा भी पीछे नही हटूँगी और दुःख नहीं मानूँगी ।। २४६ ।। ।। राम उवाच सीता के प्रति ।। ।। मनोहर छंद ।। हे क्षीण कटिवाली ! यदि तुम ससुराल में रहना पसंद नहीं करती तो मैं तुमको तुम्हारे पिता के घर भेज देता हूँ और तुम जैसा प्रबंध कहो मैं कर देता हूँ । इसमें मुझे ज़रा भी आपत्ति नहीं है । यदि तुम्हें कुछ धन की इच्छा हो तब भी मुझसे साफ़ कहो, मैं तुमको जितना चाहो धन दे देता हूँ । हे सुन्दर नयनोंवाली ! ये कितने समय की बात ही है; यदि तुम मान जाओ तो मैं लंका नगरी जैसी धन-धान्य से पूर्ण नगरी को निर्धनों में लुटा दूँ ।। २४७ ।। हे सीता ! वन कष्टकारक है और तुम सुकुमार हो; भला बताओ तुमसे यह कैसे निभेगा । वहाँ सिंह गर्जते हैं, भयानक कोल-भील हैं, जिन्हें देखकर डर लगता है । वहाँ साँप फुफकारते हैं, बाघ दहाड़ते हैं और भूत-प्रेतादि महादुःख देनेवाले है । परमात्मा ने तुम्हें सुकोमल बनाया है, तुम तनिक विचार करो कि तुम्हें वन में क्योंकर जाना चाहिए २४८ । सीता उवाच राम के प्रति मनोहर छंद कटि चर्म और तन सूख जाय शूलो के कष्टों

तन सूक रहों पर सी न कहों सिर सूल सहोंगी । बाघ बुकार फनीन फुकार सु सीस गिरो पर सी न करोंगी । बास कहा बनबास भलो नही पास तजो पिय पाइ गहोंगी । हास कहा इह उदास समै ग्रिहआस रहो पर मै न रहोंगी ॥ २४९ ॥ ॥ राम बाच सीता प्रति ॥ रास कहो तुहि बास करो ग्रिह सासु की सेव भली बिधि कीजै । काल ही बास बनै म्रिगलोचनि राज करों तुम सो सुन लीजै । जौ न लगै जिय अउध सुभाननि जाहि पिता ग्रिह साच मनीजै । तात की बात गडी जिय जात सिधात बनै मुहि आइस दीजै ॥ २५० ॥ ॥ लछमण बाच ॥ बात इतै इहु भांत भई सुन आइगे भ्रात सरासन लीने । कउन कुपूत भयो कुल मे जिन रामहि बास बनै कहु दीने । राम के बान बध्यो बस कामन कूर कुचाल महामति हीने । राँड कुभाँड के हाथ बिक्यो कपि नाचत नाच छरी जिम चीने ॥ २५१ ॥ काम को डंड लिए कर केकई बानर जिउं न्रिप नाच नचावै । ऐठन

को मैं अपने सिर पर सहन करूँगी । बाघ और सर्प मेरे सिर पर गिरे तब भी मैं 'हाय' तक न कहूँगी । मुझे राजमहल के आवास से वनवास भला है । हे प्रियतम ! मैं आपके पैर पड़ती हूँ, इस उदास समय में आप मुझसे परिहास मत कीजिए । मुझे (आपके साथ रहते) घर आने की तो आशा है, पर मैं यहाँ (आपके बिना) नहीं रहूँगी ॥ २४९ ॥ ॥ राम उवाच सीता के प्रति ॥ हे सीता ! मैं तुमसे सत्य कह रहा हूँ कि घर में रहकर तुम भली प्रकार सास की सेवा करो । हे मृगनयनी ! काल (समय) तो शीघ्र ही गुजर जायगा, मैं तुम्हारे समेत राज्य करूँगा । वास्तव में यदि तुम्हारा मन अवध में न लगे तो, हे सुन्दर मुखवाली ! तुम अपने पिता के घर चली जाओ । मेरे मन में तो पिता की आज्ञा बस गई है, अतः तुम मुझे आज्ञा दो ताकि मैं वन में जाऊँ ॥ २५० ॥ ॥ लक्ष्मण उवाच ॥ अभी ऐसी बात चल ही रही थी कि इसे सुनकर धनुष हाथ में पकड़े लक्ष्मण आ गए और कहने लगे कि हमारे कुल में कौन कुपूत पैदा हो गया जिसने राम को वनवास के लिए कहा है । यह मतिहीन (राजा) काम के बाण से बिंधा हुआ क्रूर कुचाल में फँसकर कुमतिवाली स्त्री के हाथ में पड़ा वैसे ही नाच रहा है जैसे बन्दर छड़ी के इशारे को समझता हुआ नाचता है ॥ २५१ ॥ काम रूपी दंड को हाथ में लेकर कैकेयी राजा को वानर की तरह नचा रही है उस अभिमानयुक्त स्त्री ने राजा को पकड लिया है और उसके पास बैठकर उसको तोते की

ऐंठ अमैठ लिए ढिग बैठ सुआ जिम पाठ पड़ावै । सउतन सीस ह्वै ईसक ईस प्रिथीस जिउँ चाम के दाम चलावै । कूर कुजात कुपंथ दुरानन लोग गए परलोक गवावै ।। २५२ ।। लोग कुटेव लगे उनको प्रभ पाव तजे मुहि क्यो बन ऐहै । अउ हट बैठ रहो घरि मो जस क्यो चलिहै रघुबंस लजैहै । काल ही काल उचारत काल गयो इह काल सभो छल जैहै । धाम रहो नही साच कहों इह घात गई फिर हाथ न ऐहै ।। २५३ ।। चाँप धरै कर चार कु तीर तुनीर कसे दोऊ बीर सुहाए । आवध राज त्रिया जिह सोभत होन बिदा तिह तीर सिधाए । पाइ परे भर नैंन रहे भर मात भली बिध कंठ लगाए । बोले ते पूत न आवत धाम बुलाइ लिउँ आपन ते किमु आए ।। २५४ ।। ।। राम बाच माता प्रति ।। तात दयो बनबास हमै तुम देह रजाइ अबै तह जाऊँ । कंटक कानन बेहड़ गाहि त्रियोदस बरख बिते फिर आऊँ । जीत रहे तु मिलो फिरि मात मरे गए

तरह पाठ पढ़ा रही है । यह स्त्री अपनी सौतों के भी सिर पर देवो के भी देव की तरह सवार है और (दो घड़ी के राजा की तरह) चमड़े के सिक्के चला रही है अर्थात् मनमाना व्यवहार कर रही है । इस क्रूर, कुजाति, कुमार्गी एवं दुर्मुखी स्त्री ने लोगों को तो यहाँ रुष्ट किया ही है, साथ-ही-साथ परलोक भी गँवा लिया है ।। २५२ ।। लोग उनकी (राजा-रानी की) निन्दा करने लगे । मैं प्रभु (राम) के चरण त्यागकर कैसे रह सकता हूँ अर्थात् मैं भी वन में जाऊँगा । प्रभु (राम) की सेवा करने के सुअवसर की बाट जोहते सारा समय बीत गया और ऐसे ही यह काल सबको छल जायगा । मैं सच कह रहा हूँ कि मैं घर पर नहीं रहूँगा और (सेवा का) यह अवसर यदि हाथ से निकल गया तो फिर यह अवसर मेरे हाथ नहीं लगेगा ।। २५३ ।। हाथ में धनुष पकड़कर तरकश कसकर और तीन चार तीर हाथ में पकड़े हुए दोनों भाई शोभायमान हो रहे हैं । अवधराज की स्त्रियाँ (रानियाँ) जिस ओर रह रही हैं ये दोनों भाई उसी तरफ़ चल दिए । इन्होंने माताओं को प्रणाम किया और (माताएँ) इनको भली प्रकार गले से लगाते हुए बोलीं कि हे पुत्र ! बुलाने पर तो तुम बड़े संकोच से इस ओर आते हो, परन्तु आज स्वयं ही कैसे आ गये ।। २५४ ।। ।। राम उवाच माता के प्रति ।। पिता ने हमें वनवास दे दिया है, अब आप हमें आज्ञा दें कि अब हम वन को जायँ । जंगल के बीहड़ों में घूमते हुए तेरह वर्षों के बाद (चौदहवें वर्ष) पुनः मैं आऊँगा । यदि जीवित रहे तो, हे माता ! फिर मिलेंगे और यदि मृत्यु को प्राप्त हो गए

भूलि परी बखसाऊँ । भूपहु कै अरिणी बर ते बस के बन मो फिरि राज कमाऊँ ॥ २५५ ॥ (मू०ग्रं०२०७) ॥ माता बाच राम सों ॥ ॥ मनोहर छंद ॥ मात सुनी इह बात जबै तब रोवत ही सुत के उर लागी । हा रघुबीर सिरोमण राम चले बन कउ मुहि कउ कत त्यागी । नीर बिना जिम मीन दशा तिम भूख पिआस गई सभ भागी । झूम झराक झरी झट बाल बिसाल दवा उनको उर लागी ॥ २५६ ॥ जीवत पूत तवानन पेख सिया तुमरी दुत देख अघाती । चीन सुमित्रज की छब को सभ शोक बिसार हिए हरखाती । केकई आदिक सउतन कउ लखि भउह चड़ाइ सदा गरबाती । ताकहु तात अनाथ जिउँ आज चले बन को तजि कै बिललाती ॥२५७॥ होर रहे जन कोर कई मिलि जोर रहे कर एक न मानी । लच्छन मात के धाम बिदा कहु जात भए जिय मो इह ठानी । सो सुनि बात पपात धरा पर घात भली इह बात बखानी । जानुक सेल सुमार लगे छित

तो उसी के लिए मैं भूलों की क्षमा माँगने आया हूँ। राजा के वरदानों के कारण वन में बसकर मैं पुनः राज्य करूँगा ॥ २५५ ॥ ॥ माता उवाच राम के प्रति ॥ ॥ मनोहर छंद ॥ माता ने जब यह बात सुनी तो वह रोते हुए पुत्र के गले जा लगी और कहने लगी, हाय रघुवंश-शिरोमणि राम ! तुम मुझे छोड़कर क्यों वन जा रहे हो। जो दशा जल त्यागने पर मछली की हो जाती है, वही दशा उसकी हो गई और उसकी सब भूख-प्यास समाप्त हो गई। वह झटका खाकर अचेत होकर गिर पड़ी और उसके हृदय में आग लग उठी ॥२५६॥ हे पुत्र ! मैं तो तुम्हारा मुँह देखकर जीवित रहती हूँ और सीता भी तुम्हारी द्युति को देखकर ही प्रसन्न होती है। वह सौमित्र (लक्ष्मण) की छवि को निहारकर सारे शोकों का विस्मरण करती हुई प्रसन्न रहती है। कैकेयी आदि सौतों को देखकर ये रानियाँ हमेशा भौं चढ़ाकर अपने स्वाभिमान के कारण गर्व करती थीं, लेकिन देखो आज इनके पुत्र इनको रोता हुआ छोड़कर अनाथों की तरह वन को जा रहे हैं ॥ २५७ ॥ और भी कई अन्य लोग थे जिन्होंने मिलकर रामचन्द्र जी के वन न जाने पर जोर दिया, परन्तु इन्होंने किसी की भी नहीं मानी। लक्ष्मण भी अपनी माता के महल में विदाई के लिए गये। लक्ष्मण ने अपनी माँ से कहा कि पृथ्वी पाप से भर गई है और यह रामचन्द्र जी के साथ रहने का सुअवसर है। उनकी माता भी बात सुनकर ऐसे गिर पड़ी जैसे कोई बहुत बड़ा शूरवीर भाला लगने

सोमत सूर वडो अभिमानी ।। २५८ ।। कउन कुजात कुकाज किया जिन राघव को इह भांत बखान्यो । लोक अलोक गवाइ दुरानन भूप सँघार महाँ सुख मान्यो । भरम गयो उड करम कर्यो धरम को त्यागि अधरम प्रमान्यो । नाक कटी निरलाज निसाचर नाहनि पातत नेहु न मान्यो ।। २५९ ।। ।। सुमित्रा बाच लछमन सों ।। दास को भाव धरे रहियो सुत मात सरूप सिया पहिचानो । तात की तुल्लि सियापति कउ करि कै इह बात सही करि मानो । जेतक कानन के दुख है सभ सो सुख कै तन पै अनमानो । राम के पाइ गहे रहियो बन कै घर को घर कै बनु जानो ।। २६० ।। राजिवलोचन राम कुमार चले बन कउ सँगि भ्राति सुहायो । देव अदेव निछत्र सचीपत चउक चके मन मोद बढायो । आनन बिंब पर्यो बसुधा पर फैलि रह्यो फिरि हाथि न आयो । बीच अकाश निवास कियो तिन ताही ते नाम मयंक कहायो ।।२६१।।

पर धरती पर गिरकर सो जाता हो ।। २५८ ।। किस नीच ने यह कार्य किया है और राम को इस प्रकार कहा । उसने लोक और परलोक को गँवाकर राजा को मारकर महासुख प्राप्त करने की सोची है । संहार से विश्वास और धर्म-कर्म उड़ गया है और अधर्म ही प्रमाणित रूप से बच रहा है । इस राक्षसी ने वंश की नाक काट ली है और पति के मरने का भी इसको जरा शोक नहीं है ।। २५९ ।। ।। सुमित्रा उवाच लक्ष्मण के प्रति ।। हे पुत्र ! तुम हमेशा दास्य-भाव से साथ रहना और सीता को माता के समान मानना । सियापति राम को पिता के समान मानना और इस बात को सत्य करके जानना । वन के दुःखों को सुख अनुभव कर सहन करना । रामचन्द्र के चरणों को हमेशा पकड़े रहना और वन को घर और घर को वन के समान समझना ।। २६० ।। कमल के समान आँखोंवाले राम कुमार भाई के साथ शोभायमान होते हुए वन को चले जिसे देख देवता चौंक उठे, दानव चकित रह गए और (राक्षसों के अन्त को समीप जानकर) देवराज इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए । चन्द्रमा भी प्रसन्न होकर अपने बिम्ब को धरती पर फैलाने लगा और बीच आकाश में निवास करने के कारण ही 'मयंक' नाम से प्रसिद्ध हुआ २६१

।दोहरा।। पित आज्ञा ले बन चले तजि ग्रिहि राम कुमार। संग सेया म्रिगलोचनी जा की प्रभा अपार ।। २६२ ।। (मू०ग्रं०२०८)

।। इति स्री राम बनबास दीबो ।।

अथ बनबास कथनं ।।

।। सीता अनमान बाच ।। ।। बिजै छंद ।। चंद की अंस चकोरन कै करि मोरन बिद्‌दुलता अनमानी। मत्त गइंदन इंद्र बधू भुनसार छटा रवि की जिय जानी। देवन दोखन की हरता अर देवन काल क्रिया कर मानी। देसन सिध बिसेसन ब्रिध जोगेशन गंग कै रंग पछानी ।। २६३ ।। ।। दोहरा ।। उत रघुवर बन को चले सीय सहित तजि ग्रेह। इतै दशा जिह बिधि भई सकल साध सुनि लेह ।। २६४ ।। ।। माता बाच ।। ।। कबित्त ।। सभै सुख लै के गए गाड़ो दुख देत भए राजा दसरथ जू कउ कै कै आज पात हो। अजहूँ न छीजै बात मान

।। दोहा ।। पिता की आज्ञा से घर छोड़कर रामचन्द्र वन को चले और उनके साथ मृगनयनी सीता शोभायमान हो रही थीं ।। २६२ ।।

।। श्रीराम को वनवास देना समाप्त ।।

वनवास-कथन प्रारम्भ

।। सीता अनुमान उवाच ।। ।। विजय छंद ।। वह चकोरी को चन्द्रमा की किरण के समान और मोरों को बादल में बिजली के समान लग रही थी। मस्त हाथियों को वह शक्ति के समान और प्रातःकाल को सूर्य की सुन्दरता के समान लग रही थी। देवताओं को वह दुःखों का हरण करनेवाली और सर्व प्रकार की धर्मक्रियाओं को करनेवाली लग रही थी। धरती को वह समुद्र के समान और सारी दिशाओं को सब ओर व्यापक लग रही थी तथा योगियों को वह गंगा के समान पवित्र लग रही थी ।। २६३ ।। ।। दोहा ।। उधर घर को छोड़कर सीता-समेत राम वन को चले और इधर (अयोध्यापुरी में) जो दशा हुई उसे सभी साधुगण भलीभाँति सुन लें ।। २६४ ।। ।। माता उवाच ।। ।। कवित्त ।। सभी सुखों को साथ ले गए और बहुत बड़े दुःख हमको देकर हमें राजा दशरथ के निधन का भी दुःख देखने के लिए छोड़ गये। राजा राम यह सब देख-सुनकर भी नहीं पिघल रहे हैं हे राम अब तो हमारी बात मान

लीजै राज कीजै कहो काज कउन कौ हमारे स्रोणनाथ हो। राजसी के धारौ साज साधन कै कीजै काज कहो रघुराज आज काहे कउ सिधात हो। तापसी के भेस कीने जानकी कौ संग लीने मेरे बनबासी मो उदासी दिए जात हो ॥२६५॥ कारे कारे करि बेस राजा जू को छोरि देस तापसी को कै कै भेस साथि ही सिधारिहौं। कुल हूँ को कान छोरों राजसी के राज तोरों संगि ते न मोरों मुख ऐसो कै बिचारिहौं। मुंद्रा कान धारौं सारे मुख पै बिभूति डारौं हठि को न हारौं पूत राज साज जारिहौं। जुगिआ को कीनो बेस कउशल के छोर देस राजा रामचंद्र जू के संगि ही सिधारिहौं ॥२६६॥ ॥ अपूरब छंद ॥ कानने गे राम। धरम करमं धाम। लच्छनै लै संगि। जानकी सुभंगि ॥ २६७ ॥ तात त्यागे प्रान। उत्तरे ब्योमान। बिच्चरे बिचार। मंत्रियं अपार ॥ २६८ ॥ बैठ्यो बशिष्टि। सरब बिप्प इष्ट। मुकल्लियो कागद। पट्ठए मागध ॥ २६९ ॥ संकड़ेसा वंत। मत्तए मत्तंत। मुक्कले के दूत। पउन के से पूत ॥ २७० ॥ अशटन व्यं लाख। दूत गे चरबाख।

लीजिए। भला बताइए, अब हमारा नाथ कौन बचा है ? हे राम ! तुम राजकाज सँभालो और सभी कार्यों को करो। बताओ भला तुम अब क्यों जा रहे हो। हे तपस्वी का वेश धारण किए हुए तथा जानकी को संग लिये हुए वनवासी (राम) ! मुझे क्यों मात्र उदासीनता दिए जा रहे हो ॥ २६५ ॥ मैं भी काला वेश धारण कर राजा का देश छोड़कर, तपस्वी बनकर साथ ही चलूँगी। कुल की मर्यादा छोड़ दूँगी और राजसी ठाट-बाट छोड़ दूँगी, परन्तु तुम्हारे संग रहने से मुँह नहीं मोड़ूँगी। मैं कानों में मुद्राएँ धारण कर सारे शरीर पर भभूत रमा लूँगी। मैं हठपूर्वक रहूँगी और हे पुत्र ! सारे राजसाज का त्याग कर दूँगी। योगी का वेश धारण कर कौशल देश का भी त्यागकर मैं राजा रामचन्द्र के ही संग चली जाऊँगी ॥ २६६ ॥ ॥ अपूर्व छंद ॥ धर्म-कर्म के घर राम लक्ष्मण और जानकी को साथ लेकर वन में गये ॥ २६७ ॥ उधर पिता ने प्राण त्याग दिए और वे देव-विमान में बैठकर (स्वर्ग) सिधार गये। इधर मंत्रियों ने आपस में विचार-विमर्श किया ॥ २६८ ॥ सभी विप्रों में श्रेष्ठ विप्र वशिष्ठ की इच्छा के समान बात मानी गई। पत्रिका लिखी गई और उसे मगध भेजा गया २६९ बहुत ही सकप में विचार विमर्श किया गया और पवनपुत्र की तेज गतिवाले कई दूत भेजे गए २७०

भरत आगे जहाँ। जात भे ते तहाँ ॥ २७१ ॥ उचरे संदेश। ऊरध गे अउधेश। पत्र बाचे भले। लाग संगं चले ॥ २७२ ॥ कोप जोयं जग्यो। धरम भरमं भग्यो। काशमीरं तज्यो। राम रामं भज्यो ॥ २७३ ॥ पुज्जए अवद्ध। सूरमा सनद्ध। हेर्‌यो अउधेश। म्रितकं के भेस ॥ २७४ ॥ ॥ भरथ बाच केकई सों ॥ लख्यो कसूत। बुल्ल्यो (पृ०सं० २०६) सपूत। ध्रिग मइया तोहि। लजि लइया मोहि ॥ २७५ ॥ का कर्‌यो कुकाज। क्यो जिऐ निलाज। मोहि जैबे तहाँ। राम हैगे जहाँ ॥२७६॥ ॥ कुसम बचित्र छंद ॥ तिन बनबासी रघुबर जानै। दुख सुख सम कर सुख दुख मानै। बलकर धर कर अब बन जैहैं। रघुपत संग हम बन फल खैहैं ॥२७७॥ इम कह बचना घर बर छोरे। बलकल धर तन भूखन तोरे। अवधिश जारे अवधहि छाड्यो। रघुपति पग तर कर घर मांड्यो ॥ २७८ ॥ लख जल थल कह तज कुल धाए। मुन

दस दूत, जो अपने कार्य में निपुण थे, ढूँढ़े गए और वे वहाँ भेजे गए जहाँ भरत रहते थे ॥ २७१ ॥ उन दूतों ने संदेश दिया और बताया कि राजा दशरथ स्वर्ग सिधार गये हैं। भरत ने पत्र पढ़ा और साथ ही चल पड़े ॥ २७२ ॥ उसके हृदय में क्रोध भड़क उठा और उसके मन से धर्म, आदर के भाव का लोप हो गया। उन्होंने कश्मीर देश का त्याग किया (और चल पड़े) तथा राम-राम का स्मरण करने लगे ॥ २७३ ॥ शूरवीर भरत अवध में आ पहुँचे उन्होंने आकर अवधनरेश दशरथ को मृतक अवस्था में देखा ॥ २७४ ॥ ॥ भरत उवाच कैकेयी के प्रति ॥ हे माँ! जब तुमने देखा कि महाकुकर्म हो गया, तब अपने पुत्र को (मुझे) बुला भेजा। तुम्हें धिक्कार है, तुमने तो मुझे भी कहीं का नहीं छोड़ा ॥२७५॥ कहाँ से तुम इतनी निर्लज्ज हो गई कि तुमने इतना बुरा काम भी कर दिया। मैं तो अब वहीं जाऊँगा जहाँ राम गये हैं ॥ २७६ ॥ ॥ कुसम बचित्र छंद ॥ वन में रहनेवाले लोग रघुवीर राम को जानते हैं और उनके दुःख तथा सुख को अपना दुःख तथा सुख मानते हैं। मैं भी अब वल्कल धारण कर वन में जाऊँगा और रामचन्द्र जी के साथ वन के फल खाया करूँगा ॥२७७॥ इस प्रकार कहकर भरत ने घर का त्याग कर दिया और तन के आभूषणों को तोड़कर फेंक दिया तथा वल्कल धारण कर लिये। राजा दशरथ का दाह-संस्कार किया, अवध को छोड़ दिया और रामचन्द्र के चरणों में ही अपना घर बनाने का ध्यान किया २७८ वन के निवासी भरत

पग तेरे ॥ २८४ ॥ ॥ राम बाच भरथ सों ॥ ॥ कंठ अभूखन छंद ॥ भरथ कुमार न अउहठ कीजै । जाहु घरै नह मै दुख दीजै । काज कह्यो जु हमै हम मानी । त्रियोदस बरख बसै बनधानी ॥ २८५ ॥ त्रियोदस बरख बितै फिरि ऐहैं । राज संघासन छत्र सुहैहैं । जाहु घरै सिख मान हमारी । रोवत तोर उतै महतारी ॥ २८६ ॥ ॥ भरथ बाच राम प्रति ॥ ॥ कंठ अभूखन छंद ॥ जाउ कहा पग भेट कहउ तुह । लाज न लागत राम कहो मुह । मै अत दीन मलीन बिना गत । राख लै राज बिखै चरनामत ॥२८७॥ चच्छ बिहीन सुपच्छ जिमं कर । तिउं प्रभ तीर गिर्यो पग भरथर । (मू०ग्रं०२१०) अंक रहे गह राम तिसै तब । रोइ मिले लछनादि भय्या सभ ॥ २८८ ॥ पान पिआइ जगाइ सु बीरह । फेरि कह्यो हस स्री रघुबीरह । त्रियोदस बरख गए फिरि ऐहै । जाहु हमै कछु काज किवैहै ॥२८९॥ चीन गए चतरा चित मो सभ । स्री रघुबीर

हैं ॥ २८४ ॥ ॥ राम उवाच भरत के प्रति ॥ ॥ कण्ठ आभूषण छंद ॥ हे भरत ! आप ज़िद न करें और घर को चले जाइए तथा मुझे अब यहाँ रहकर और कष्ट मत दीजिए । मुझे जो आज्ञा हुई है, उसी का मैंने पालन किया है और उसी के अनुसार तेरह वर्ष घोर वन में रहूँगा (और चौदहवें वर्ष वापस आ जाऊँगा) ॥ २८५ ॥ तेरह वर्ष बीतने के बाद मैं फिर वापस आऊँगा और राजसिंहासन तथा छत्र को धारण करूँगा । मेरी शिक्षा को सुनो और वापस घर चले जाओ । वहाँ आपकी माताएँ रो रही होंगी ॥ २८६ ॥ ॥ भरत उवाच राम के प्रति ॥ ॥ कण्ठ आभूषण छंद ॥ हे राम ! मैं अब आपके चरण स्पर्श कर कहाँ जाऊँ ? क्या मुझे लज्जा नहीं आयेगी ? मैं अत्यन्त दीन, मलीन और गतिविहीन हूँ । हे राम ! आप राज्य को सँभालें और अपने अमृततुल्य चरणों से उसे शोभायमान करें ॥ २८७ ॥ जिस प्रकार पक्षी चक्षुविहीन हो जाने पर गिर पड़ता है, उसी प्रकार भरत प्रभु के पास गिर पड़े । उसी समय राम ने उन्हें अंक में भर लिया और वहाँ लक्ष्मण आदि सभी भाई रोने लगे ॥ २८८ ॥ वीर भरत को पानी पिला चेतना अवस्था में लाते हुए श्री रघुवीर ने पुनः मुस्कुराते हुए कहा कि तेरह वर्ष बीतते ही हम वापस आ जायेंगे । अब तुम वापस चले जाओ, क्योंकि हमें (वन में) कुछ कार्य भी करना है २८९ जब श्रीराम ने यह कहा तो इस बात का तात्पर्य सभी चतुर लोग समझ गए कि इन्हें वन में राक्षसों को

कही अस के जब। मात समोध सु पावरि लीनी। अउर बसे पुर अउध न चीनी ॥ २९० ॥ सीस जटान को जूट धरे बर। राज समाज दियो पउवा पर। राज करे दिनु होत उजिआरै। रैनि भए रघुराज सँभारै ॥ २९१ ॥ जज्जर भ्यो झुर झंझर जिउँ तन। राखत स्री रघुराज बिखै मन। बैरन के रन बिद निकंदत। भाखत कंठि अभूखन छंदत ॥ २९२ ॥ ॥ झूला छंद ॥ इतै राम राजं। करै देव काजं। धरो बान पानं। भरै बीर मानं ॥ २९३ ॥ जहाँ साल भारे। द्रुमं तार न्यारे। छुए सुरगलोकं। हरै जात शोकं ॥ २९४ ॥ तहाँ राम पैठे। महाँबीर ऐठे। लिए संगि सीता। महाँ सुभ्र गीता ॥२९५॥ बिधं बाक बैणी। म्रिगी राज नैणी। कटं छीन बे सी। परी पदमनी सी ॥ २९६ ॥ ॥ झूलना छंद ॥ चड़े पान बानी धरे सान मानो चछा बान सोहै दोऊ राम रानी। फिरै ख्याल

मारना है)। श्रीराम की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए प्रसन्न मन से भरत ने उनकी खड़ाऊँ ले ली तथा अयोध्या की पहचान भुलाते हुए नगर के बाहर बसने लगे ॥ २९० ॥ सिर पर जटाजूट धारणकर सारा राज-काज उन खड़ाऊँ को अर्पित कर दिया। दिन में उन चरण-पादुकाओं के आश्रय से भरत राजकाज सँभालते और रात्रि में उन चरणपादुकाओं की रक्षा करते ॥ २९१ ॥ भरत का शरीर सूखकर जर्जर हो गया, परन्तु फिर भी उन्होंने मन में सदैव श्रीरामचन्द्र जी को बसाये रखा। साथ-ही-साथ वह शत्रुओं के समूहों का भी नाश करने लगे और आभूषणों के स्थान पर कण्ठी आदि मालाएँ धारण करने लगे ॥ २९२ ॥ ॥ झूला छंद ॥ इधर वन में राजा राम देवताओं का कार्य अर्थात् दानवों के मारने का कार्य कर रहे हैं। वे हाथ में बाण लेते हुए महाबलशाली वीर दिखाई पड़ रहे हैं ॥ २९३ ॥ वन में जहाँ शाल के वृक्ष थे और अन्य वृक्ष तथा सरोवर आदि भी थे वहाँ की शोभा स्वर्गलोक से मेल खाती थी और सर्व प्रकार के शोकों का नाश करनेवाली थी ॥ २९४ ॥ उस स्थान पर रामचन्द्र टिक गए और महावीरों की तरह शोभायमान होने लगे। सीता उनके साथ थी जो एक दिव्य गीत के समान थी ॥ २९५ ॥ वह मधुर वचन बोलनेवाली और मृगों की रानी के समान नेत्रोंवाली थी। उसकी कटि क्षीण थी और वह पद्मिनी के समान कोई परी-सी दिखाई देती थी। २९६ ॥ ॥ झूलना छंद ॥ राम के हाथ में तीक्ष्ण बाण शोभायमान होते हैं और राम की रानी सीता के दोनों नेत्रों के बाण सुंदर लगते हैं

सो एक हवाल सेती छुटे इंद्र सेती मनो इंद्र धानी । मनो नाग बाँके लजी आब फाँके रंगे रंग सुहाब सो राम बारे । म्रिगा देखि मोहे लखे मीन रोहे जिनै नैक चीने तिनो प्रान वारे ॥२९७॥ सुने कूक कै कोकला कोप कीने मुखं देख कै चंद दारे रखाई । लखे नैन बाँके मनै मीन मोहे लखे जात कै सूर की जोति छाई । मनो फूल फूले लगे नैन झूले लखे लोग भूले बने जोर ऐसे । लखे नैन थारे बिधे राम प्यारे रँगे रंग शाराब सुहाब जैसे ॥ २९८ ॥ रँगे रंग राते मयं मत्त माते मकबूलि गुल्लाब के फूल सोहैं । नरगस ने देखकै नाक ऐंठा म्रिगीराज के देखतै मान मोहैं । शबो रोज शराब ने शोर लाइआ प्रजा आम जाहान्न के पेख वारे । भवा तान कमान की भाँत प्यारी नि कमान ही नैन के बान मारे ॥ २९९ ॥ ॥ कबित्त ॥ ऊचे द्रुमसाल जहाँ लाँबे बट ताल तहाँ ऐसी ठउर तप कउ पधारै ऐसो (मू०ग्रं०२११)

वह (राम के साथ) इस प्रकार विचारों में मग्न घूमती है मानो राजधानी छूटने के बाद इन्द्र इधर-उधर डोल रहा हो । उसकी केशराशि की लटें मानो नागों की शोभा को लजाकर श्रीराम पर न्योछावर हो रही हों । मृग उसे देखकर मोहित हो रहे हैं, मछलियाँ उसकी सुंदरता को देखकर ईर्ष्या कर रही हैं अर्थात् जिसने भी उसे देखा उसने उस पर प्राण न्योछावर कर दिये ॥ २९७ ॥ कोयल उसकी वाणी को सुनकर ईर्ष्यावश क्रोधित हो रही है और चन्द्रमा भी उसके मुख को देखकर स्त्रियों के समान लजा रहा है । मछली उसकी आँखों को देख मोहित हो रही है और उसके सौन्दर्य से ऐसा लग रहा है मानो सूर्य का प्रकाश फैला हुआ हो । उसके नेत्रों को देखकर ऐसा लग रहा है मानो कमल के फूल खिले हुए हों और वन के सभी लोग उसके सौन्दर्य को देखकर अत्यन्त मोहित हो रहे हैं । हे सीता ! तुम्हारे मादक नयनों को देखकर रामचन्द्रजी (उन नेत्र-बाणों से) अपने-आपको बिंधा हुआ पाते हैं ॥ २९८ ॥ तुम्हारे प्रेम के रंग में रँगे हुए नेत्र मदमस्त हैं और ऐसा लग रहा है मानो वे गुलाब के प्रिय फूल हों । नर्गिस के फूल भी ईर्ष्यावश नाक चढ़ा रहे हैं और हिरणियाँ भी उसे देखकर अपने स्वाभिमान पर चोट का अनुभव कर रही हैं । मदिरा भी पूर्ण शक्ति लगाने के बावजूद सारे संसार में सीता की मस्ती की बराबरी नहीं कर पा रही है । उसकी भौंहें कमान की तरह प्यारी हैं और उन भौंहों से वह नयनों के बाण चला रही है ॥ २९९ ॥ ॥ कवित्त ॥ जहाँ ऊँचे साल एवं वटवृक्ष तथा बड़े बड़े सरोवर हैं ऐसे स्थान पर तपस्या

कउन है। जाकी छब देख दुत पांडव की फीकी लागै आभा तकी नंदन बिलोक भजे मौन है। तारन की कहा नैक नभ न निहार्यो जाइ सूरज की जोत तहाँ चंद्र की न जउन है। देव न निहार्यो कोऊ दैत न बिहार्यो तहाँ पंछी की न गंम जहाँ चीटी को न गउन है ॥ ३०० ॥ ॥ अपूरब छंद ॥ लखिए अलख्ख। तकिए सुभच्छ। धायो बिराध। बंकड़्यो बिबाद ॥ ३०१ ॥ लखिअं अबद्ध। सँबह्यो सनद्ध। सँमले हथिआर। उरड़े लुझार ॥ ३०२ ॥ चिकड़ी चावंड। सँमुहे सावंत। सज्जिए सुब्बाह। अच्छरो उछाह ॥ ३०३ ॥ पक्खरे पवंग। मोहले मतंग। चावडी चिकार। उझरे लुझार ॥ ३०४ ॥ सिधरे संधूर। बज्जए तंबूर। सज्जिए सुब्बाह। अच्छरो उछाह ॥ ३०५ ॥ बिज्झुड़े उझाड़। संमले सुमार। हाहले हंकार। अंकड़े अंगार ॥ ३०६ ॥ संमले लुज्झार। छुट्टके

करनेवाला यह कौन है जिसकी छवि देख पाण्डवों की सुन्दरता भी फीकी लगती है और स्वर्ग के उद्यान भी उसके सौन्दर्य को देख चुप होने में ही अपनी भलाई समझते हैं। वहाँ इतनी सघन छाया है कि तारों की तो बात ही क्या वहाँ आकाश भी दिखाई नहीं देता। सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रकाश भी वहाँ नहीं पहुँच पाता। वहाँ कोई देव या दैत्य विचरण नही करता और पक्षी तथा चींटी तक भी वहाँ नहीं पहुँच पाती ॥ ३०० ॥ ॥ अपूर्व छंद ॥ अनजान व्यक्तियों को अच्छे खाद्य के रूप में देखकर विराध नामक दैत्य (राम-लक्ष्मणादि की ओर) आगे बढ़ा और इस प्रकार से उनके शान्त जीवन में विवाद (एवं कष्टपूर्ण) स्थिति आ गई ॥३०१॥ राम ने उसे देखा और हथियारबंद होकर उसकी ओर चले। शस्त्रों को सँभालकर योद्धा लड़ाई में भिड़ पड़े ॥ ३०२ ॥ चीलें चहचहाने लगीं और योद्धा एक-दूसरे के समक्ष खड़े हो गए। वे भलीभाँति सुसज्जित थे और उनमें कभी भी समाप्त न होनेवाला उत्साह था ॥ ३०३ ॥ (युद्ध में) कवचादि से सज्जित घोड़े और मस्त हाथी थे। चीलों की चाँय-चाँय और वीरों का आपस में उलझना दिखाई पड़ रहा था ॥ ३०४ ॥ सिंधु के समान गम्भीर हाथी और नगाड़ों की ध्वनि हो उठी और अनुपम उत्साह को लिये हुए बड़ी भुजाओंवाले वीर शोभायमान थे ॥ ३०५ ॥ कभी न गिरनेवाले वीर गिरने और सँभलने लगे। (चारों तरफ़ से) अहंकारपूर्ण आक्रमण होने लगा और वीर अगारों की तरह जलने लगे २०६ वीर सँभलने लगे और शस्त्र

बिसियार । हाहलेहं बीर । संघरे सु बीर ॥ ३०७ ॥
॥ अनूप नराज छंद ॥ गजं गजे हयं हले हला हली हलो हलं । बबज्ज सिधरे सुरं छुटंत बाण केवलं । पपक्क पक्खरे तुरे भभक्ख घाइ निरमलं । पलुत्थ लुत्थ बित्थरी अमत्थ जुत्थ उत्थलं ॥ ३०८ ॥ अजुत्थ लुत्थ बित्थरी मिलंत हत्थ बक्खयं । अघुम्म घाइ घुम्म ए बबक्क बीर दुद्धरं । किलं करंत खप्परी पिपंत स्रोण पाणयं । हहक्क भैरवं स्रतं उठंत जुद्ध ज्वालयं ॥३०९ । फिक्कंत फिकती फिरं रडंत गिद्ध ब्रिद्धणं । डहक्क डामरी उठं बकार बीर बैतलं । खहत्त खग्ग खत्रियं खिमंत धार उज्जलं । घणंक जाण सावलं लसंत बेग बिज्जुलं ॥ ३१० ॥ पिपंत स्रोण खप्परी भखंत मास चावडं । हकार बीर संभिड़ं लुझार धार दुद्धरं । पुकार मार कै परे सहंत अंग भारथं । बिहार देव मंडलं कटंत खग्ग पारथं ॥ ३११ ॥ प्रचार वार पैज कै खुमार घाइ घूमही । तपी मनो अधोमुखं

उनके हाथों से सर्पों की तरह छूटने लगे। आक्रमणों में वीरों का संहार होने लगा ॥ ३०७ ॥ ॥ अनूप नराज छंद ॥ घोड़े चलने लगे, हाथी गर्जने लगे और चारों ओर हलचल मच गई। वाद्य बजने लगे और बाण छूटने की एक स्वर ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। घोड़े बिदककर चलने लगे और घावों से शुद्ध रक्त भभककर बहने लगा। युद्ध की उथल-पुथल में धूल-धूसरित लाशें इधर-उधर बिखरने लगीं ॥ ३०८ ॥ हाथ में ली हुई तलवार का वार कमर पर पड़ते ही लाशें बिखरने लगीं और वीर कठिनाई से घूमकर अपने दो धारों वाले खड्गों से वार करने लगे। योगिनियाँ किलकारियाँ मारती हुई हाथों में रक्त लेकर पीने लगीं। भैरव स्वयं युद्ध में घूमने लगे और युद्ध की ज्वालाएँ जलने लगीं ॥ ३०९ ॥ गीदड़ और बड़े गिद्ध युद्धस्थल में इधर-उधर घूमने लगे। डाकिनियाँ डकारने लगीं और बैताल चीखने लगे। क्षत्रिय (राम-लक्ष्मण) के हाथों में उज्ज्वल धार वाला खड्ग ऐसे शोभा दे रहा था, जैसे काले बादलों मे बिजली शोभा दे रही हो ॥ ३१० ॥ खप्परोंवाली योगिनियाँ रक्त पी रही हैं और चीलें मांस भक्षण कर रही हैं। वीर अपने दुधारे खड्ग सँभालकर साथियों को हाँककर भिड़ रहे हैं। मार-मार की पुकार लगाकर वे शस्त्रों का भार सहन कर रहे हैं। कुछ वीर देवपुरियों में विचरण कर रहे हैं अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं और कुछ खड्गों से अन्य वीरों को काट रहे हैं ३११ वीर वार कर-करके मदमस्त

सु धूम आग धूम ही । तुटंत अंग भंगयं बहंत अस्त्र धारयं । उठंत छिच्छ इच्छयं पिपंत मास हारयं ॥ ३१२ ॥ अघोर घाइ अघ्घऐ कटे परे सु प्रासनं । घुमंत जाण रावलं लगे सु सिद्ध आसणं । परंत अंग भंग हुइ बकंत मार मारयं । ववंत जाण बंदियं सुकित्त कित अपारयं (मू०ग्रं०२१२) ॥ ३१३ ॥ बजंत ताल तंबुरं बिसेख बीन बेणयं । म्रिदंग झालना फिरं सनाइ भेर भें करं । उठंत नादि निरमलं तुटंत ताल तत्थियं । बबंत कित्त बंदियं कबिंद्र काव्य कत्थिय ॥ ३१४ ॥ ढलंत धाल मालयं खहंत खग्ग खेतयं । चलंत बाण तीछणं अनंत अंतकं कयं । सिमट्टि साँग संकड़ं सटक्क सूल सेलयं । रुलंत रुंड मुंडयं झलंत झाल अज्झलं ॥ ३१५ ॥ बचित्र चित्रतं सरं बहंत दारुणं रणं । ढलंत ढाल अड्ढलं ढुलंत चार चामरं । दलंत निरदलो दलं तपात भूतल दितं । उठंत गद्दिद सद्दयं निनद्दि नद्दि दुज्जरं ॥ ३१६ ॥ भरंत पत्र चउसठी किलंक खेचरी करं ।

होकर ऐसे घूम रहे हैं मानो तपस्वी अधोमुख होकर धुएँ पर तपस्या करके झूम रहे हों । अस्त्रों की धारा बह रही है और अंग टूटकर गिर पड़ रहे हैं । विजय की इच्छाओं की लहरें उठ रही हैं और मांस कट-कटकर गिर रहा है ॥ ३१२ ॥ कटे हुए अंगों को खा-खाकर अघोरी प्रसन्न हो उठे हैं और (रक्त-मांसाहारी) सिद्ध तथा रावलपंथी आसन लगाकर बैठ गए हैं । अंग-भंग होकर मारो-मारो कहते हुए वीर गिर रहे हैं और उनकी वीरता के कारण उनकी वंदना हो रही है ॥ ३१३ ॥ युद्ध में ढालों पर वार रोकने की विशेष आवाज सुनाई पड़ रही है । बीन, बाँसुरी, मृदंग, झाल और भेरियों की मिली-जुली आवाज भयानक वातावरण बना रही है । युद्धस्थल में सुन्दर ध्वनियाँ भी विभिन्न प्रकार के शस्त्रों के प्रहारों के तालों को तोड़ती हुई उठ रही हैं । कहीं पर सेवक लोग वन्दना कर रहे हैं और कहीं कविगण काव्य-रचना सुना रहे हैं ॥ ३१४ ॥ ढालों की रोकने की ध्वनि और खड्गों के चलने की ध्वनि सुनाई पड़ रही है और अनन्त लोगों का अन्त करनेवाले तीक्ष्ण बाण भी चल रहे हैं । बछियाँ-भाले सरसरा रहे हैं और कटे हुए निस्तेज सिर धूल-धूसरित होकर इधर-उधर छिटक रहे हैं ॥ ३१५ ॥ युद्धस्थल में चित्रकारी करते हुए अनोखे बाण चल रहे हैं और ढालों पर खड्गों की आवाज सुनाई पड रही है । दलों का दलन किया जा रहा है और धरती रक्त की गर्मी के कारण गर्म हो उठी है चारों ओर से भीषण

फिरंत हूर पूरयं बरंत जुद्धरं नरं। सनद्ध बद्ध गोधयं सु सो
अंगुलं त्रिणं। डकंत डाकणी भ्रमं भखंत आमिखं रणं ॥ ३१७ ॥
किलंक देवियं करंड हक्क डामरू सुरं। कड़क्क कत्तियं उ
परंत धूर पक्खरं। बबज्जि सिप्परेसुरं त्रिघात सूल संहथीयं
भभज्जि कातरो रणं निलज्ज भज्ज भू भरं ॥ ३१८ ॥
शस्त्र अस्त्र संनिधं जुझंत जोधणो जुधं। अरुज्झ पंक लज्ज
करंत क्रोह केवलं। परंत अंग भंग ह्वइ उठंत मास करदमं
खिलंत जाणु कदवं सु मज्झ कान्ह गोपिकं ॥ ३१९ ॥ डहक्क
डउर डाकणं झलंत झाल रोसुरं। निनद्द नाद नाफिरं बजंत
भेर भीखणं। घुरंत घोर दुंदभी करंत कानरे सुरं। करंत
झाझरो झड़ं बजंत बाँसुरी बरं ॥ ३२० ॥ नचंत बाज तीछ
चलंत चाचरी क्रितं। लिखंत लोक उरबिअं सुभंत कुंडली करं

निनाद लगातार सुनाई पड़ रहा है ॥ ३१६ ॥ चौंसठ योगिनिय
किलकारियाँ भरती हुई अपने पात्रों को रंग से भर रही हैं और स्वर्ग क
अप्सराएँ महावीरों का वर्णन करने के लिए धरती पर विचर रही हैं। वी
सुसज्जित होकर हाथों पर भी कवच धारण किए हुए हैं और डाकिनि
मांस खाती तथा डकारती हुई युद्धभूमि में विचर रही हैं ॥ ३१७
रक्तपान करनेवाली काली की किलकारी और डमरू का स्वर सुनाई प
रहा है। युद्धस्थल में भीषण अट्टहास सुनाई पड़ रहा है और कवच
पर धूल जमी दिखाई पड़ रही है। तलवारों के वार से हाथी-घोड़े चीत्
चिल्ला रहे हैं और लज्जा का त्याग कर असहाय होकर रण से भाग निक
रहे हैं ॥ ३१८ ॥ अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित हो योद्धागण युद्ध में लगे
और लज्जा के कीचड़ में न फँसते हुए केवल क्रोध से भरकर युद्ध कर र
है। वीरों के अंग और मांस के टुकड़े इस प्रकार धरती पर टूटकर
रहे हैं, मानो कृष्ण गोपिकाओं के मध्य इधर से उधर गेंद उछालकर
रहे हों ॥ ३१९ ॥ डाकिनियों के डमरू और क्रोधपूर्ण मुद्राएँ दि
पड़ रही हैं तथा भेरियों और नफ़ीरियों आदि वाद्यों की भीषण ध
सुनाई पड़ रही है। दुन्दुभियों की घोर ध्वनि कानों में सुनाई पड़
है तथा झाँझरों की झनकार तथा बाँसुरियों की मधुर ध्वनि युद्धस्
सुनाई पड़ रही है। (ये सब ध्वनियाँ योगिनियों, डाकिनियों एवं
गणों के स्वच्छन्द रूप से युद्धस्थल में घूमने की परिचायक हैं) ॥ ३२
तेज़ घोड़े नृत्य करते हुए तेज़ी से चल रहे हैं और अपनी चाल से ध
पर कुण्डलाकार निशान डाल रहे हैं। उनकी टापों के कारण
उडकर आसमान को भर दे रही है और इस प्रकार दिखाई दे र

उडंत धूर भूरियं खुरीन निरदली नभं । परंत भूर भउरणं सु भउर ठउर जिउं जलं ॥ ३२१ ॥ भजंत धीर बीरणं रलंत मान प्रान लै । दलंत पंत दंतियं भजंत हार मान कै । मिलंत दांत घास लै ररच्छ शबद उचरं । बिराध दानवं जुझ्यो सु हत्थि राम निरमलं ॥ ३२२ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके रामवतार कथा बिराध दानव बधह ॥

अथ बन मो प्रवेश कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ इह बिधि मार बिराध कउ बन मे धसे निशंग । सु कबि स्याम इह बिधि कह्यो रघुबर जुद्ध प्रसंग ॥ ३२३ ॥ ॥ सुखदा छंद ॥ रिख अगसत धाम । गए राज राम । धुज (मू०ग्रं०२१३) धरम धाम । सिया सहित बाम ॥ ३२४ ॥ लख राम बीर । रिख दीन तीर । रिप सरब चीर । हरि सरब पीर ॥ ३२५ ॥ रिख बिदा कीन । आसिखा दीन । दुत राम चीन । मुन मन

मानो जल में भंवर दिखाई दे रहा हो ॥ ३२१ ॥ धैर्यवान वीर भी अपने मान और प्राणों को लेकर भाग खड़े हुए हैं और हाथियों की पंक्तियों का दलन किया जा चुका है । राम के विरुद्ध पक्ष वाले राक्षसों ने घास के तिनके दांतों में पकड़ते हुए "रक्षा करो" शब्दों का उच्चारण किया है और इस प्रकार श्रीराम के सुन्दर हाथों से विराध नामक दानव मारा गया है ॥ ३२२ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक की रामावतार कथा में विराध दानव-वध समाप्त ॥

वन-प्रवेश-कथन प्रारम्भ

॥ दोहा ॥ इस प्रकार विराध को मारकर अभय होकर राम-लक्ष्मण आदि वन में और अन्दर चले गए तथा युद्ध के इस प्रसंग का उपर्युक्त प्रकार से श्याम कवि ने वर्णन किया है ॥ ३२३ ॥ ॥ सुखदा छंद ॥ राजा राम अगस्त्य ऋषि के आश्रम में गए और इस धर्म के धाम राम के साथ उनकी पत्नी सीता भी थी ॥ ३२४ ॥ वीरवर राम को देखकर ऋषि ने उन्हें सलाह दी कि आप सभी शत्रुओं का नाश कर सबकी पीड़ा का हरण करो ॥ ३२५ ॥ इस प्रकार आशीष देकर ऋषि ने राम के सौन्दर्य एवं शक्ति को प्रवीणता से अपने मन में पहचानते हुए उन्हें

प्रबीन ॥ ३२६ ॥ प्रभ भ्रात संगि । सिय संग सुरंग । तजि चित अंग । धस बन निशंग ॥ ३२७ ॥ धर बान पान । कटि कसि क्रिपान । भुज बर अजान । चल तीर्थ नान ॥ ३२८ ॥ गोदावर तीर । गए सहित बीर । तज राम चीर । किअ सुच सरीर ॥ ३२९ ॥ लख राम रूप । अतिभुत अनूप । जह हुती सूप । तह गए भूप ॥ ३३० ॥ कही ताहि धाति । सुनि सूप बाति । दुइ अतिथ नात । लहि अनुप गात ॥ ३३१ ॥ ॥ सुंदरी छंद ॥ सूपनखा इह भाँत सुनी जब । धाइ चली अबिलंब त्रिया तब । राम सरूप कलेवर जानै । रूप अनूप तिहूँ पुर मानै ॥ ३३२ ॥ धाइ कह्यो रघुराइ भए तिह । जैंस त्रिलाज कहै न कोऊ किह । हउ अरको तुमरो छबि के बर । रंग रंगो रँगए द्रिग दूपर ॥ ३३३ ॥ ॥ राम बाच ॥ ॥ सुंदरी छंद ॥ जाह तहाँ जह भ्रात हमारे । वै रिझहै लख नैन तिहारे । संग

बिदा किया ॥ ३२६ ॥ प्रभु राम सुन्दरी सीता और अपने भाई के साथ चलते हुए सर्वचिन्ताओं का त्याग करते हुए बिना किसी भय के गहरे वन में घुसते चले गए ॥ ३२७ ॥ कमर में कृपाण बाँधे हुए और हाथ में बाण धारण किये हुए लम्बी भुजाओंवाले (ये वीर) तीर्थों में स्नान करने के लिए चले ॥ ३२८ ॥ अपने वीर भाई के साथ ये गोदावरी के तट पर पहुँचे और वहाँ राम ने (वल्कल) वस्त्र उतारकर स्नान करते हुए अपने शरीर को पवित्र किया ॥ ३२९ ॥ राम अद्भुत स्वरूपवाले थे । स्नान के बाद जब राम निकले तो उनके सौन्दर्य को देखकर वहाँ के सेवक राजा, शूर्पणखा (जो उस क्षेत्र की स्वामिनी थी) के पास गए ॥ ३३० ॥ दूतों ने उससे जाकर कहा कि हे स्वामिनी (शूर्पणखा) ! हमारी बात सुनें । हमारे राज्य में अनुपम शरीरवाले दो अतिथि आये हुए हैं ॥ ३३१ ॥ ॥ सुन्दरी छंद ॥ शूर्पणखा ने जब इस बात को सुना तो वह स्त्री अविलम्ब वहाँ से (राम-लक्ष्मण की ओर) चल पड़ी । उसने आते ही इन सबको कामदेव के रूप में देखा और मन-ही-मन माना की तीनों लोकों में इनके जैसा सौन्दर्यशाली कोई अन्य नहीं है ॥ ३३२ ॥ आगे बढ़कर वह रघुवीर राम के समक्ष पूर्ण रूप से निर्लज्ज हो कहने लगी कि मैं तुम्हारे सौन्दर्य में अटककर रह गई हूँ और मेरा मन तुम्हारे दोनों रंगीन एवं मदमस्त नेत्रों के रंग में रँग गया है ॥ ३३३ ॥ ॥ राम उवाच सुन्दरी छंद तुम वहाँ जाओ जहाँ मेरा भाई है वह

सिया अविलोक क्रिसोदर। कैसे के राख सको तुम कउ धरि ॥ ३३४ ॥ मात पिता कह मोह तज्यो मन। संग फिरी हमरे बन ही बन। ताहि तजौ कस कै सुनि सुंदर। जाहु तहाँ जहाँ भ्रात क्रिसोदर ॥ ३३५ ॥ जात भई सुन बैन त्रिया तह। बैठ हुते रणधीर जती जह। सो न बरै अति रोस भरी तब। नाक कटाइ गई ग्रिह को सभ ॥ ३३६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके राम अवतार कथा सूपनखा को नाक काटबो ध्याइ समापतम सतु सुभम सतु ॥

अथ खर-दूखन दईत जुद्ध कथनं ॥

॥ सुंदरी छंद ॥ रावन तीर रुरोत भई जब। रोस भरे दनु बंस बली सभ। लंकश धीर बजीर बुलाए। दूखन औ खर दइत पठाए ॥ ३३७ ॥ साज सनाह सुबाहु तुरंगत। बाजत बाज चले गज गज्जत। मार ही मार दसो दिस कूके।

तुम्हारी सुन्दर आँखों को देख अवश्य मोहित हो जायेगा। तुम देखो, मेरे साथ तो क्षीण कटिवाली सुन्दरी सीता है और इस स्थिति में मैं तुम्हें अपने घर कैसे रख सकता हूँ ॥ ३३४ ॥ माता-पिता के मोह को भी इसने मन से त्याग दिया और वनों में हमारे साथ घूम रही है इसे अब, हे सुन्दरी, मैं कैसे त्याग दूँ और तुम वहाँ जाओ जहाँ मेरा भाई बैठा हुआ है ॥३३५॥ यह बचन सुनकर वह स्त्री शूर्पणखा वहाँ पहुँची जहाँ यति लक्ष्मण बैठे हुए थे। जब उसने भी वरण करने से इकार कर दिया तो शूर्पणखा क्रोध से भर उठी और अपनी नाक कटवाकर अपने घर को गई ॥ ३३६ ॥

॥ इति श्री बचित्त नाटक की रामावतार कथा में शूर्पणखा के नाक काटने के अध्याय की शुभसत् समाप्ति ॥

खर-दूषण दैत्य-युद्ध-कथन प्रारम्भ

॥ सुंदरी छंद ॥ जब शूर्पणखा रोती हुई रावण के पास गई तो सारा दानव-वंश क्रोध से भर उठा। लंकेश रावण ने मंत्रियों को बुलाया, विचार-विमर्श किया तथा खर-दूषण दैत्यों को (रामादि को मारने के लिए) भेजा ॥ ३३७ ॥ कवचादि धारण कर लंबी भुजाओंवाले वीर बाजों और हाथियों की गर्जना के साथ चल पड़े चारों ओर मारो

सावन की घट ज्यों घुर ढूके ॥ ३३८ ॥ गज्जत है रणबीर महाँमन । तज्जत (मू०ग्रं०२१४) हैं नहीं भूमि अयोधन । छाजत है बख स्रोणत से सर । नादि करैं किलकार भयंकर ॥ ३३९ ॥ ॥ तारका छंद ॥ राज राजकुमार बिरच्चहिगे । सर सेल सरासन नच्चहिगे । सु बिरुद्ध अबद्धि सु गाजहिगे । रण रंगहि राम बिराजहिगे ॥ ३४० ॥ सर ओघ प्रओघ प्रहरैगे । रणि रंग अभीत बिहारैगे । सर सूल सनाहरि छुट्टहिगे । सित पुत्र धरा पर लुट्टहिगे ॥ ३४१ ॥ सर शंक अशंकत बाहहिगे । बिनु भीत लथा दल दाहहिगे । छित लुत्थ बिलुत्थ बिथारहिगे । तरु सर्णं समूल उपारहिगे ॥ ३४२ ॥ नव नाद नफीरन बाजत भे । गल गज्जि हठी रण रंग फिरे । लग बान सनाह दुसार कढे । सूअ तच्छक के जम रूप मढे ॥ ३४३ ॥ बिनु शंक सनाहरि झारत है । रणबीर नबीर प्रचारत है । सर सुद्ध सिला सित छोरत है । जिय रोस हलाहल घोरत है ॥ ३४४ ॥ रनधीर अयोधनु लुज्झत हैं । रद पीस भलो कर जुज्झत हैं ।

मारो' की पुकार सुनाई पड़ने लगी और सावन की घटा की तरह सेना उमड़ने-घुमड़ने लगी ॥ ३३८ ॥ महाबलशाली वीर गरजने लगे और भूमि पर स्थिर भाव से खड़े होने लगे । रक्त के सरोवर शोभायमान होने लगे और वीर भयंकर रूप से किलकारियाँ मारने लगे ॥ ३३९ ॥ ॥ तारका छंद ॥ अब राजकुमार युद्ध प्रारम्भ करेंगे और युद्ध में भाले और बाण नृत्य करेंगे । विरोधी पक्ष को देख वीर गरजेंगे और युद्ध के रंग में मस्त राम शोभायमान होंगे ॥ ३४० ॥ तीरों के झुंड चलेंगे और वीर अभय हो रण में विचरेंगे । सूल, बाण आदि चलेंगे और दैत्यों के पुत्र धराशायी होंगे ॥ ३४१ ॥ शंका-रहित होकर बाण चलायेंगे और शत्रुदल का दहन करेंगे । धरती पर लाशें बिखरायेंगे और वीरवर मूल-सहित पेड़ों को उखाड़ फेंकेंगे ॥ ३४२ ॥ नफ़ीरों के वाद्य बजने लगे और सिंहनाद करते हुए हठी शूरवीर युद्ध में विचरने लगे । तरकशों से बाण निकलने लगे और वे तक्षक रूपी बाण यम-रूप हो चलने लगे ॥ ३४३ ॥ अभय होकर वीर बाण-वर्षा कर रहे हैं और रणवीर एक-दूसरे को ललकार रहे हैं । बाणों और शिलाओं को चला रहे हैं और हृदय में रोष रूपी हलाहल का पान कर रहे हैं ॥ ३४४ ॥ युद्ध में रणधीर वीर एक-दूसरे से भिड़ गए हैं और दाँत पीसकर अर्थात क्रोधित हो जूझ रहे हैं

रण देव अदेव निहारत हैं। जय सद्द निनद्दि पुकारत हैं ॥ ३४५ ॥ गण गिद्धन ब्रिद्ध रड़ंत नभं। किलकंत सु डाकण उच्च सुरं। भ्रम छाड भकारत भूत भुअं। रण रंग बिहारत भ्रात दुअं ॥ ३४६ ॥ खर-दूखण मार बिहाइ दए। जय सद्द निनद्द बिहद्द भए। सुर फूलन की बरखा बरखे। रणधीर अधीर दोऊ परखे ॥ ३४७ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके राम अवतार कथा खर-दूखण दईत बधह धिआइ समापतम सतु ॥

अथ सीता हरन कथनं ॥

॥ मनोहर छंद ॥ रावण नीच मरीच हूँ के ग्रिह बीच गए बद्ध बीर सुनैहै। बीसहूँ बाँहि हथिआर गहे रिस मार मनै दससीस धुनैहै। नाक कट्यो जिन सूपनखा कह तउ तिहको दुख दोख लगैहै। रावल को बनु के पल मो छलकै तिह की घरनी धरि ल्यैहै ॥ ३४८ ॥ ॥ मरीच बाच ॥ ॥ मनोहर

देव और दानव दोनों युद्ध को देख रहे हैं और जय-जयकार की ध्वनि कर रहे हैं ॥ ३४५ ॥ आकाश में बड़े-बड़े गिद्ध और गण विचर रहे हैं और डाकिनियाँ ऊँचे स्वर में किलकारियाँ मार रही हैं। भूतगण भी अभय हो अट्टहास कर रहे हैं तथा दोनों भाई राम और लक्ष्मण इस सारे युद्धकर्म को देख रहे हैं ॥ ३४६ ॥ खर और दूषण दोनों को मारकर रामचन्द्र ने उन्हें मौत की नदी में बहा दिया। चारों ओर से बृहद् रूप से जय-जयकार होने लगी। देवताओं ने पुष्प-वर्षा की और दोनों रणधीरों (राम-लक्ष्मण) का दर्शन किया ॥ ३४७ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार की खर-दूषण-वध की कथा के अध्याय की सत् समाप्ति ॥

सीता-हरण कथन प्रारम्भ

॥ मनोहर छंद ॥ खर-दूषण वीरों का वध सुनकर रावण नीच मारीच के घर गया। उसने बीसों हाथों में शस्त्र धारण कर रखे थे और वह अपने दसों सिरों को क्रोध में धुन रहा था। उसने कहा कि जिन्होंने शूर्पणखा का नाक काटा है, उनके इस कृत्य ने ही मुझे दुःखी किया है। म वेश धारण कर वन में तुमको साथ लेकर मैं उनकी पत्नी को चुरा लाऊँगा ३ ८ मारीच उवाच मनोहर छंद है

छंद ।। नाथ अनाथ सनाथ कियो करि कै अति मोर क्रिपा कह आए । भउन भंडार अटी बिकटी प्रभ आज सभै घर बार सुहाए । द्वै करि जोर करउ बिनती सुनिकै न्रिपनाथ बुरो मत मानो । स्री रघुबीर सही अवतार तिनै तुम मानस कै न पछानो (कृ०छं०२१५) ।। ३४९ ।। रोस भर्यो सभ अंग जर्यो मुख रत्त कर्यो जुग नैन तचाए । तै न लगै हमरे सठ बोलत मानस दुइ अवतार गनाए । मात की एक ही बात कहे तत तात घ्रिणा बनबास निकारे । ते दोऊ दीन अधीन जुगिया कस कै भिरहैं संग आन हमारे ।। ३५० ।। जउ नही जात तहाँ कत तैं सठि तोर जटान को जूट पटैहों । कंचन कोट के ऊपर ते डर तोहि नदीसर बीच डुबैहों । चित्त चिरात बसात कछू न रिसात चल्यो सुन घात पछानो । रावन नीच की मीच अधोगत राघव पान पुरी सुरि मानो ।। ३५१ ।। कंचन को हरना बन के रघुबीर बली जह थो तह आयो । रावन ह्वै उत ते जुगिआ सिय लैन

नाथ ! आपने अत्यन्त कृपा की जो मेरे यहाँ आये । आपके आने से मेरे भण्डार भर गए हैं और हे प्रभु ! मेरा घर शोभायमान हो उठा है, परन्तु मैं दोनों हाथ जोड़ अपसे एक विनती कर रहा हूँ, जिसे हे नृपनाथ ! आप बुरा मत मानिएगा । मेरा यह निवेदन है कि श्री रघुवीर वास्तविक रूप में परमात्मा के अवतार हैं, उन्हें आप मात्र मनुष्य मत मानिए ।। ३४९ ।। यह सुनकर रावण क्रोध से भर उठा और उसके अंग जलने लगे, उसका मुख लाल हो उठा तथा उसकी आँखें क्रोध से फैल गयीं । वह कहने लगा कि हे मूर्ख ! मेरे सामने तुम यह क्या कह रहे हो और उन दोनों मनुष्यों की अवतारों में गणना कर रहे हो । उनकी माता के एक ही बार कहने पर उनके पिता ने उनको घृणापूर्वक वन में निकाल दिया । वे दोनों दीन और असहाय हैं । वे मेरे संग कैसे लड़ाई कर सकेंगे ।। ३५० ।। हे मूर्ख ! यदि तुम्हें वहाँ जाने के लिए न कहना होता तो मैं तेरी जटाओं को उखाड़ फेंकता और सोने के इस क़िले के ऊपर से तुझे समुद्र में फेंककर डुबो देता । यह सुनकर चित्त में कुढ़ता हुआ और क्रोधित हो अवसर को पहचानता हुआ मारीच वहाँ से चल पड़ा । उसने यह अनुभव किया कि नीच रावण की मृत्यु और इसकी अधोगति रामचन्द्र के हाथों निश्चित है ।। ३५१ ।। सोने का मृग बन वह वहाँ पहुँचा जहाँ रघुवीर निवास कर रहे थे उधर रावण योगी का वेश धारण कर सीता को लेने इस प्रकार चल पड़ा, मानो उसे मौत आगे ढकेल

चल्यो जनु मीच चलायो । सीय बिलोक कुरंक प्रभा कह मोहि रही प्रभ तीर उचारी । आन दिजै हन कै मिग बासुन की अवधेश मुकंद मुरारी ॥ ३५२ ॥ ॥ राम बाच ॥ सीय म्रिगा कहूँ कंचन को नहि कान सुन्यो बिधिनै न बनायो । जीस बिसवे छल दानव को बन है जिह आन तुमै उहकायो । प्यारी को आहुत मेट सकै न बिलोक सिया कहु आतुर भारी । बाँध निखंग चले कटि सो कहि भ्रात इहाँ करिजै रखवारी ॥ ३५३ ॥ ओट थक्यो करि कोटि निसाचर स्री रघुबीर निदान सँघार्‌यो । हे लहु बीर उबार लै मोकहु यौ कहिकै पुनि राम पुकार्‌यो । जानकी बोल कुबोल सुन्यो तब ही तिह ओर सुमित्र पठायो । रेख कमान की काढ महाबल जात भए इत रावन आयो ॥३५४॥ भेख अलेख उचारकै रावण जात भए सिय के ढिग यों । अबिलोक धनी धनवान बडो तिह जाइ मिलै जग मो ठग ज्यो । कछु देहु भिछा म्रिगनैन हमै इह रेख मिटाइ हमैं अब ही । बिनु

रही हो । सीता स्वर्णमृग की छवि को देख राम के समीप आकर बोली कि हे अवधेश एवं दैत्यों को मारनेवाले ! मुझे वह मृग लाकर दे दीजिए ॥ ३५२ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे सीता ! सोने का मृग कभी सुना भी नहीं गया है और न ही विधाता ने इसे बनाया है । यह निश्चित रूप से किसी दानव का छल है, जिसने तुम्हें धोखे में डाल दिया है । सीता की आतुरता को देख श्री रामचन्द्र उनके कहने को टाल नहीं सके और तरकश बाँधकर तथा भाई लक्ष्मण से रखवाली करने के लिए कहकर मृग लाने चल दिए ॥ ३५३ ॥ मारीच निशाचर ने बहुत भागदौड़ करके रामचन्द्र को संशय में डालने की कोशिश की, परन्तु अन्त में वह थक गया और श्रीराम ने उसका संहार कर दिया । परन्तु मरते समय राम की आवाज में वह पुकार उठा, 'हे भाई ! मुझे बचाओ'' जानकी ने जब इस भयभीत करनेवाली आवाज को सुना तो उसने लक्ष्मण को उस ओर भेजा । इधर अपने धनुष से रेखा खींचकर महाबली लक्ष्मण गए और उधर से रावण ने प्रवेश किया ॥ ३५४ ॥ योगी का वेश धारण कर और अलख जगाता रावण सीता के पास उसी प्रकार गया, जिस प्रकार कोई ठग किसी धनवान को देखकर उसके पास जाता है । रावण ने कहा कि हे मृगनयनी ! इस रेखा को पार कर हमें कुछ भिक्षा दो और जब रावण ने सीता को उस रेखा से पार होते देखा तभी वह उसे लेकर आकाश

रेख भई अबिलोक लई हरि सीय उड्यो नभि कउ तब ही ॥३५५॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक रामवतार कथा सीता हरन धिआइ समापतम ॥

अथ सीता खोजबो कथनं ॥

॥ तोटक छंद ॥ रघुनाथ हरी सिय हेर मनं । गहि बान सिला सित सज्जि धनं । चहुँ ओर सुधार निहार फिरे । छित ऊपर स्री रघुराज गिरे ॥ ३५६ ॥ लघु बीर उठाइ सु अंक भरे । मुख पोछ तबै बचना उच्चरे । कस अधीर धरे प्रभ धीर धरो । सिय (मू०ग्रं०२१६) जाइ कहा तिह सोध करो ॥ ३५७ ॥ उठ ठाढि भए फिरि भूम गिरे । पहरेकक लउ फिर प्रान फिरे । तन चेत सुचेत उठे हठि यों । रण मंडल मद्धि गिर्‌यो भट ज्यों ॥ ३५८ ॥ चहूँ ओर पुकार बकार थके । लघु भ्रात भए बहु भाँत झखे । उठकै पुन प्रात इशनान गए । जल जंत सबै जरि छारि भए ॥ ३५९ ॥ बिरही जिह

की ओर उड़ने लगा ॥ ३५५ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार की कथा के सीता-हरण अध्याय की समाप्ति ॥

सीता की खोज का कथन प्रारम्भ

॥ तोटक छंद ॥ जब रघुनाथ ने मन में यह देखा कि सीता का हरण हो गया तो उन्होंने बाण और धनुष हाथ में पकड़ा और एक श्वेत शिला पर बैठ गए । उन्होंने एक बार फिर चारों ओर देखा, परन्तु अन्त में निराश हो श्रीराम धरती पर गिर पड़े ॥ ३५६ ॥ छोटे भाई ने उन्हें पकड़कर उठाया । उनका मुँह पोंछते हुए कहा कि हे प्रभु ! अधीर न होइए और धैर्य रखिए । सीता कहाँ चली गई इस तथ्य की खोज करिए ॥ ३५७ ॥ रामचन्द्र उठे परन्तु फिर भूमि पर अचेत हो गिर पड़े और पुनः लगभग एक प्रहर के बाद उन्हें चेतना आई । श्रीराम धरती से इस प्रकार उठे जिस प्रकार युद्धभूमि में अचेत पड़ा वीर चेतना अवस्था में आकर धीरे-धीरे उठता है ॥ ३५८ ॥ चारों ओर पुकारते-पुकारते थक गए और अपने छोटे भाई के साथ इस प्रकार बहुत दुःखी हुए । प्रातःकाल उठ वे स्नान करने के लिए गए परन्तु उनके दुःख की अग्नि के प्रभाव से जल के सभी जन्तु जलकर राख हो गए ॥ ३५९ ॥ विरहाकुल

और सु दिष्ट धरै। फल फूल पलास अकाश जरै। कर सौ धर जउन छुअंत भई। कच बासन ज्यों पक फूट गई ॥३६०॥ जिह भूम थली पर राम फिरे। तब ज्यों जल घास पलास गिरे। दुख आसु आरण नैन झरी। मनो लाल तवा पर बूंद परी ॥ ३६१ ॥ तन राघव भेट समीर जरी। तज धीर सरोवर मांझ दुरी। नहि तत्र थली सत पत्र रहे। जल जंत परत्रण पत्र दहे ॥ ३६२ ॥ इत ढूंढ बने रघुनाथ फिरे। उत रावन आन जटायु घिरे। रण छोर हठी पग दुइ न भज्यो। उड पच्छ गए पै न पच्छ तज्यो ॥ ३६३ ॥ ॥ गीता मालती छंद ॥ पछराज रावन मारि कै रघुराज सीतहि लै गयो। नभि ओर खोर निहारकै सु जटाउ सीअ सँदेस दयो। तब जान राम गए बली सिय सत्त रावन ही हरी। हनवंत मारग मो मिले तब मित्रता ता सों करी ॥ ३६४ ॥ तिन आन स्री रघुराज के

राम जिस ओर देखते थे, उसी ओर उनकी दृष्टि की गर्मी से फल-फूल पलास के वृक्ष एवं आकाश जल उठते थे। हाथों से जब भी वे धरती को छूते थे तो उनके स्पर्श से कच्चे बर्तन के समान धरती फट जाती थी ॥ ३६० ॥ जिस भूमि पर राम विचरण करते थे उस धरती के पलास आदि के वृक्ष घास की तरह जलकर राख हो जाते थे। उनके आँसू की धारा धरती पर गिर ऐसे उड़ जाती थी, जैसे गर्म तवे पर पानी की बूँदें पड़कर उड़ जाती हैं ॥ ३६१ ॥ रामचन्द्र के शरीर के साथ लगते ही शीतल पवन भी जल उठता था और अपनी शीतलता को सम्हालते हुए धैर्य को छोड़ जल के सरोवर में समा जाता था। उस स्थान पर कमल के पत्ते भी बाक़ी नहीं बचे और जल के जन्तु, घास, पत्र आदि सब श्रीराम की विरहाग्नि में जलकर भस्म हो गए ॥ ३६२ ॥ इधर रघुनाथ सीता को ढूंढ़ते वन में घूम रहे थे, उधर रावण जटायु द्वारा घेर लिया गया। हठी जटायु भी युद्ध छोड़ एक क़दम भी नहीं भागा। उसके पंख कट गए, परन्तु फिर भी उसने सीता के पक्ष में लड़ना नही छोड़ा ॥ ३६३ ॥ ॥ गीता मालती छंद ॥ पक्षिराज जटायु को मार रावण सीता को ले गया है। यह सन्देश जटायु ने श्रीराम को दिया, जब उन्होंने आकाश की ओर देखा। जटायु से मिलने पर राम को निश्चित रूप से यह पता लग गया कि रावण ने ही सीता का हरण किया है। मार्गों पर घूमते हुए श्रीराम हनुमान से मिले और इनकी उनसे मित्रता हो गई ॥ ३६४ ॥ हनुमान ने कपिराज सुग्रीव को लाकर

कपिराज पाइन डारयो । तिन बैठ गैठ इकैठ ह्वै इह भाँति मंत्र बिचारयो । कप बीर धीर सधीर के भट मंत्र बीर बिचारकैं । अपनाइ सुग्रिव कउ चले कपिराज बाल सँघारकैं ।। ३६५ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे बाल बधह धिआइ समापतम ।।

अथ हनूमान सोध को पठैबो ।।

।। गीता मालती छंद ।। दल बाँट चार दिसा पठ्यो हनवंत लंक पठै दए । लै मुद्रका लख बारिधं जह सी हुती तह जात भे । पुरजारि अच्छकुमार छै बन टारिकै फिर आइयो । क्रित चार जो अमरारि को सभ राम तीर जताइयो ।। ३६६ ।। दल जोर कोर करोर लै बड घोर तोर सभै चले । रामचंद सुग्रीव लछमन अउर सूर भले भले । जामवंत सुखैन नील हणवंत अंगद केसरी । कपि पूत जूथपजूथ लै उमडे चहूँ दिस कै झरी ।। ३६७ ।। पाटि बारिध राज कउ करि (मू०ग्रं०२१७)

श्रीरामचन्द्र के पैरों में डाल दिया और इन सबने मिलकर विचार-विमर्श किया । सब मंत्रियों ने बैठकर अपनी-अपनी सलाह दी और श्रीराम ने कपिराज बालि का संहार कर सुग्रीव को अपना बना लिया ।। ३६५ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ में बालि-वध अध्याय की समाप्ति ।।

हनुमान को खोज के लिए भेजने का प्रसंग प्रारम्भ

।। गीता मालती छंद ।। दल को चार भागों में बाँटकर चारों दिशाओं में भेज दिया गया और हनुमान को लंका की ओर भेजा गया । हनुमान मुद्रिका को लेकर और देखते-देखते समुद्र को पार कर जहाँ सीता थी वहाँ जा पहुँचे । लंका का दहन और अक्षयकुमार का हनन तथा अशोक वाटिका को उजाड़ हनुमान वापस आये और देवताओं के शत्रु रावण के जो कृत्य थे उन्हें उन्होंने राम के समक्ष रखा ।। ३६६ ।। अब दल को जोड़कर करोड़ों की संख्या में ये सब लोग चले और इनकी सेना में रामचन्द्र, सुग्रीव लक्ष्मण सुषेन नील हनुमान अंगद आदि महाबली थे कपिपुत्रों के झुंडों के झुंड चारों दिशाओं से वर्षा के समान उमड़कर चल

बारिध लाँघ गए जबै । दूत दई तन के हुते तब दउर रावन पै गए । रन साज बाज सबै करो इक बेनती मम मानिऐ । गड़ लंक बंक सँभारिऐ रघुबीर आगम जानिऐ ॥ ३६८ ॥ धूम्रअच्छ सु जांबमाल बुलाइ बीर पठै दए । घोर कोर क्रोर कै जहाँ राम थे तहाँ जात भे । रोस कै हनवंत था पग रोप पाम प्रहारियं । जूझि भूमि गिर्‍यो बली सुरलोक माँहि बिहारियं ॥ ३६९ ॥ जांबमाल भिरे कछू पुन मारि ऐसेइ कै लए । भाज कीन प्रबेश लंक संदेश रावन सो दए । धूम्रराछ सु जांबमाल दुहूँ राघवजू हर्‍यो । है कछू प्रभु के हिए सुमंत्र आवत सो करो ॥ ३७० ॥ पेख तीर अकंपनै दल संगि दै सु पठै दयो । भाँति भाँति बजे बजंत्र निनद्द सद्द पुरी भयो । सुरराइ आदि प्रहस्त ते इह भाँति मंत्र बिचारियो । सिय दै मिलो रघुराज को कस रोस राव सँभारियो ॥ ३७१ ॥ ॥ छपय छंद ॥ झल हलंत तरवार बजत बाजत महा धुन ।

पड़े ॥ ३६७ ॥ जब समुद्र को पाटकर रास्ता बनाकर सब लोग उस ओर लाँघ गए, तब रावण के दूत दौड़कर रावण के पास यह समाचार देने के लिए गए कि हमारी यह प्रार्थना है कि युद्ध के लिए हमें तैयार होना चाहिए और सुन्दर लंका नगरी की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि रघुवीर राम का आगमन हो चुका है ॥ ३६८ ॥ रावण ने धूम्राक्ष और जाम्बुमाली को बुलाकर युद्ध के लिए भेज दिया और वे वीर भयंकर कोलाहल करते वहाँ पहुँचे जहाँ राम स्थित थे । हनुमान ने क्रोधित होकर एक पैर धरती पर जमाकर दूसरे पैर से भीषण प्रहार किया, जिससे बली धूम्राक्ष गिर पड़ा और मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥ ३६९ ॥ पुनः जाम्बुमाली युद्ध में भिड़ा परन्तु वह भी वैसे ही मारा गया तब दैत्यों ने भागकर लंका में प्रवेश किया और रावण को यह समाचार सुनाया कि धूम्राक्ष और जाम्बुमाली दोनों को ही श्रीरामचन्द्र ने मारा डाला है ; हे प्रभु ! अब जैसा आपको अच्छा लगे कोई और उपाय कीजिए ॥ ३७० ॥ अकम्पन को अपने पास देखकर उसको दल देकर रावण ने भेज दिया । उसके चलने पर भाँति-भाँति के वाद्य बजने लगे और सारी लंका पुरी में ध्वनि सुनाई पड़ने लगी । प्रहस्त आदि मंत्रियों ने यह विचार किया कि रावण को यह चाहिए कि वह सीता श्रीराम को वापस कर उनके क्रोध को और अधिक न उभारे ॥ ३७१ ॥ ॥ छप्पय छंद ॥ वाद्यों एवं तलवारों की खड़खड़ाहट होने लगी और युद्धस्थल की भीषण ध्वनि

खड़ हड़ंत खह खोल ध्यान तजि परत चवध मुन। इक्क इक्क लै चलै इक्क तन इक्क अरुज्झैं। अंध धुंध पर गई हत्थि अर मुक्ख न सुज्झैं। सुमुहे सूर सावंत सभ फउज राज अंगद समर। जै सद्द निनद्द बिहद्द हूअ धनु जंपत सुर पुर अमर॥ ३७२॥ इत अंगद युवराज दुतिअ दिस बीर अकंपन। करत ब्रिष्ट सर धार तजत नही नैक अयोधन। हत्थ बत्थ मिल गई लुत्थ बित्थरी अहाड़ं। घुम्मे घाइ अघाइ बीर बंकड़े बबाड़ं। पिक्खत बैठ बिबाण बर धंन धंन जंपत अमर। नव भूत भविक्ख्य भवान मो अब लग लख्यो न अस समर॥ ३७३॥ कहूँ मुंड पिखीअहि कहूँ भक रुंड परे धर। कितही जांघ तरफंत कहूँ उछरंत सु छब कर। भरत पत्र खेचरी कहूँ चावंड चिकारैं। किलकत कतहु मसान कहूँ भैरव भभकारैं। इह भाँति बिजै कपि की भई हण्यो असुर रावण तणा। भै दग्ग अदग्ग भग्गो हठी गहि गहि कर दाँतन त्रिणा॥ ३७४॥ उतै दूत रावणै जाइ हत बीर सुणायो।

से मुनियों के ध्यान टूटने लगे। वीर एक-एककर आगे बढ़ने और एक-एक से उलझने लगे। ऐसी भीषण मारकाट मच गई कि हाथ-मुँह की पहचान भी जाती रही। सामने शूरवीरों की सेना और महाबली अंगद दिखाई पड़ रहे हैं और उनको देखकर उनकी जय-जयकार की ध्वनि आकाश से ही गूंजने लगी॥ ३७२॥ इधर युवराज अंगद और उधर दूसरी दिशा में वीर अकम्पन बाणों की वर्षा करते हुए ज़रा सा भी थक नहीं रहे हैं। हाथों से हाथ मिल रहे हैं और लाशें बिखरी पड़ रही हैं। वीर घूम-घूमकर और ललकार कर एक-दूसरे को मार रहे हैं। विमानों मे बैठकर देवता लोग धन्य-धन्य पुकार रहे हैं और कह रहे हैं कि उन्होने कभी भी इस प्रकार का भीषण युद्ध नहीं देखा है॥ ३७३॥ कहीं मुंड दिखाई पड़ रहे हैं और कहीं मुंड-विहीन धड़ दृष्टिगोचर हो रहे हैं। कहीं जंघाएँ तड़फ-तड़फकर उछल रही हैं और कहीं गणिकाएँ रक्त से अपने पात्र भर रही हैं तथा कहीं चीलों का चीत्कार सुनाई पड़ रहा है। कहीं बैताल किलकारियाँ मार रहे हैं और कहीं भैरव अट्टहास कर रहे है। इस प्रकार अंगद की विजय हुई और उसने रावण के पुत्र अकम्पन को मार दिया। उसके मरते हुए भयभीत हो और दाँतों में तिनके पकड़े हुए राक्षस भाग खड़े हुए ३७४ उधर दूतों ने रावण को जाकर वीर के मरने का समाचार सुनाया और इधर कपिपति अंगद को

इत कपिपत अरु रामदूत अंगदहि पठायो । कही कथ्थ तिह सत्थ गथ्थ करि तथ्थ सुनायो । मिलहु देहु जानकी काल नातर तुहि आयो । पग भेट चलत भ्यो बाल सुत प्रिष्ट पान रघुबर धरे । (मू०ग्रं०२१८) भर अंक पुलक तन पय्यो भांत अनिक आसिख करे ॥ ३७५ ॥ ॥ प्रतिउत्तर संबाद ॥ ॥ छपै छंद ॥ देह सिया दसकंध छाहि नहि देखन पैहो । लंक छीन लीजिऐ लक लखि जीत न जैहो । क्रुद्ध बिखै जिन घोर बिरख कस जुद्धु मचैहै । राम सहित कपि कटक आज स्त्रिग स्यार खवैहे । जिन कर सु गरबु सुण मूड़ मत गरब गवाइ घनेर घर । बस करे सरब घर गरब हम ए किन महि हूं दीन नर ॥ ३७६ ॥ ॥ रावन बाच अंगद सो ॥ ॥ छपै ॥ अगन पाक कह करैं पवन मुर बार बुहारैं । चवर चंद्रमा धरैं सूर छत्रहि सिर धारैं । मद लछमी पिआवंत बेद मुख ब्रहम

राम के दूत के रूप में रावण के पास भेजा गया । अंगद को सारी बातें और तथ्य (कि राम महाबलशाली हैं) रावण को बताने और सलाह देने के लिए भेजा गया कि वह जानकी को वापस कर दे अन्यथा यह मान ले कि उसका (रावण का) काल आ पहुँचा है । बालिपुत्र अंगद भगवान राम का चरण छू चल पड़ा और श्री रघुवीर ने उसकी पीठ पर हाथ रख उसको अंक में भारते हुए अनेक प्रकार से आशीर्वाद दे उसे विदा किया ॥ ३७५ ॥ ॥ प्रति-उत्तर संवाद ॥ ॥ छप्पय छंद ॥ (यहाँ एक पंक्ति में अंगद का कथन है और दूसरी पंक्ति में रावण का उत्तर है ।) अंगद कहता है, हे दशानन रावण ! सीता को लौटा दो, तुम उसकी छाया भी नहीं देख पाओगे अर्थात् नहीं तो मारे जाओगे । रावण ने उत्तर दिया कि लंका के छिन जाने पर भी मुझे कोई जीत नहीं सकता । जब अंगद ने फिर कहा कि क्रोध से तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, तुम युद्ध कैसे कर पाओगे तो उसे उत्तर मिला कि मैं आज ही राम समेत पूरी वानर-सेना को जानवरों और गीदड़ों को खिला दूंगा । अंगद ने कहा कि हे रावण ! तुम अधिक गर्व मत करो, इस गर्व ने कई घरों को तबाह कर दिया है । रावण ने उत्तर दिया कि मुझे गर्व है कि मैंने अपनी शक्ति से सबको वश में कर लिया है; फिर ये दोनों मनुष्य (राम-लक्ष्मण) किस खेत की मूली हैं ॥ ३७६ ॥ ॥ रावण उवाच अंगद के प्रति ॥ छप्पय ॥ अग्निदेवता मेरे यहाँ भोजन पकाता है और वायु मेरे यहाँ झाड़ू लगाता है । चंद्रमा मेरे सिर चँवर डुलाता है और सूर्य मेरे सिर पर छत्र धारण करता है लक्ष्मी मुझे करवाती है और ब्रह्मा मेरे लिए वेदपाठ करता है

उचारत । बरन बार नित भरे और कुलदेव जुहारत । निज कहति सु बल दानव प्रबल देत धनुदि जछ मोहि कर । वे जुद्ध जीत ते जाँहिगे कहाँ दोइ ते दीन नर ॥ ३७७ ॥ कहि हार्यो कपि कोटि बइत पति एक न मानी । उठत पाव रुपियो सभा मधि सो अभिमानी । थके सकल असुरार पाव किन्हूँ न उचक्यो । गिरे धरन मुरछाइ बिमन दानव बल थक्क्यो । लै चल्यो बभीछन भ्रात इह बाल पुत्र धूसर बरन । भट हटक बिकट तिह नास के चलि आयो जित राम रन ॥ ३७८ ॥ कहि बुलयो लंकेश ताहि प्रभ राजिवलोचन । कुटल अलक मुख छके सकल संतन दुखमोचन । कुपे सरब कपिराज बिजै पहली रण चक्खी । फिरै लंक गड़ि घेरि दिसा दच्छणी परक्खी । प्रभ करै बभीछन लंकपति सुणी बाति रावण घरणि । सुधि सत्त तबिब बिसरत भई गिरी धरण पर हुइ बिमण ॥ ३७९ ॥

वरुण देवता मेरे यहाँ पानी भरता है और मेरे कुलदेव के समक्ष वंदना करता है। यह मैंने अपना बल बताया है। इसके अतिरिक्त प्रबल दानव बल मेरे साथ है, जिसके कारण प्रसन्न मन से यक्षादि मुझे सर्व प्रकार का धन-धान्य देते हैं। जिनकी तुम बात करते हो वे दोनों दीन-असहाय मानव हैं; फिर कैसे वे युद्ध जीत लेंगे ॥ ३७७ ॥ कपि अंगद ने अनेकों बार रावण को समझाया परन्तु उसने एक न मानी। अंगद ने भी उठते समय गर्व से सभा के मध्य अपना पाँव गड़ा दिया (और पाँव हिलाने भर के लिए सबको ललकारा)। सभी असुर हार गए, परन्तु कोई भी पाँव को न हिला सका। सभी दानव जोर लगाने के फलस्वरूप मूर्छित होकर गिर पड़े। मिट्टी के रंग वाला बालिपुत्र अंगद (रावण के दरबार से) विभीषण को अपने संग लेकर चल पड़ा। जब असुरों ने उसे रोका तो वह सबको खदेड़कर उनका नाश करता हुआ राम के पक्ष में युद्ध को जीतता हुआ वापस राम के पास आ पहुँचा ॥ ३७८ ॥ अंगद ने आकर कहा कि हे कमलनयन राम ! लंकेश ने तुम्हें युद्ध के लिए बुला भेजा है। उस समय केशों की कुटिल अलकें दु:खमोचन राम के मुख पर लहराकर उनके मुख की छवि को निहार रही थीं। रावण से पहले युद्ध में विजयी हो चुके सभी वानर अंगद के मुख से रावण की बात सुनकर कुपित हो उठे। वे लंका की ओर बढ़ने के लिए दक्षिण दिशा की ओर चले। इधर जब रावण की पत्नी (मंदोदरी) ने राम द्वारा विभीषण को लंकापति बनाने की बात सुनी तब वह अचेत होकर धरती पर गिर पड़ी ३७९

मंदोदरी उवाच उटंगण छंद सूरवीर सज

॥ मदोदरी बाच ॥ ॥ उटंकण छंद ॥ सूरबीरा सजे घोर बाजे बजे भाज कंता सुणे राम आए । बाल मार्यो बली सिंध पाट्यो जिनै ताहि सौ बैरि कैसे रचाए । ब्याध जीत्यो जिनै जंभ मार्यो उनै राम अउतार सोई सुहाए । दे मिलो जानकी बात है स्यान की चाम के दाम काहे चलाए ॥ ३८० ॥ ॥ रावण बाच ॥ ब्यूह सैना सजो घोर बाजे बजो कोटि जोधा गजो आन नेरे । साज संजोअ सबूह सैना सभै आज मारो तरै द्रिसटि तेरे । इंद्र जीतो करो जच्छ रीतो धनं नारि सीता बरं जीत जुद्धै । सुरग पाताल आकाश ज्वाला जरै बाचि है राम का मोर (मू०ग्रं०२१६) क्रुद्धै ॥ ३८१ ॥ ॥ मदोदरी बाच ॥ तारका जात ही घात कीनो जिनै अउर सुबाहु मारीच मारे । ब्याध बद्ध्यो खरदूखणं खेत थै एक ही बाण सों बाण मारे । धूम्रअच्छाद अउ जांबुमाली बली प्राण हीणं कर्यो जुद्ध जै कै । मारिहैं तोहि यौं स्यार के सिंघ ज्यो लेहिगे लंक को डंक दैकै ॥ ३८२ ॥ ॥ रावण बाच ॥ चउर चंद्रं करं

रहे हैं, घोर रणवाद्य बज रहे हैं; हे कंत (रावण) ! तुम अपनी सुरक्षा हेतु भागो, क्योंकि राम आ पहुँचे हैं । जिसने बालि को मार दिया, सिंधु को पाटकर रास्ता बना लिया, उनसे तुमने शत्रुता क्यों मोल ले ली । जिसने विराध और जंभासुर को मार दिया ये वही शक्ति राम के रूप में अवतरित हुई है । तुम जानकी को वापस करके उनसे मिलो, अक़्ल की बात यह है कि चमड़े के सिक्के चलाने की कोशिश मत करो ॥ ३८० ॥ ॥ रावण उवाच ॥ सेना का व्यूह मेरे चारों ओर बन जाय, वाद्यों की घोर ध्वनि होने लगे और करोड़ों योद्धा मेरे पास आकर गरजने लगें, परन्तु फिर भी मैं कवच पहनकर तुम्हारे सामने देखते-देखते सबको नष्ट कर दूंगा । इंद्र को जीतकर यक्ष को लूटकर उन्हें खाली कर दूंगा और युद्ध को जीतकर सीता का वरण करूंगा । मेरे क्रोध की ज्वाला से जब आकाश, पाताल और स्वर्ग जल उठता है, तो राम भला मुझसे कैसे बच जायगा ॥ ३८१ ॥ ॥ मंदोदरी उवाच ॥ जिसने ताड़का, सुबाहु और मारीच को मार दिया; विराध, खर-दूषण को मारा और एक ही बाण से बालि का वध कर दिया; जिसने धूम्राक्ष और जांबुमाली का युद्ध में नाश कर दिया वह डंके की चोट पर लंका को जीतकर तुम्हें भी इसी प्रकार मार देगा जैसे गीदड़ को शेर मार देता है ॥ ३८२ ॥ ॥ रावण उवाच ॥ चंद्रमा मेरे सिर पर चंवर करता है सूर्य मेरा छत्र पकड़ता है और ब्रह्मा मेरे द्वार पर वेद-

छत्र सूरं धरं बेद ब्रहमा ररं द्वार मेरे । पाक पावक करं नीर बरणं भरं जच्छ बिद्याधरं कीन चेरे । अरब खरबं पुरं चरब सरबं करे देखु कैसे करौ बीर खेतं । चिक है चावडा फिक है फिक्करी नाच है बीर बैताल प्रेतं ॥ ३८३ ॥ ॥ मदोदरी बाच ॥ तास नेजे दुलं घोर बाजे बजै राम लीने दलै आन ढूके । बानरी पूत चिकार अपारं करं मार मारं चहूँ ओर कूके । भीम भेरी बजै जंग जोधा गजै बान चापै चलै नाहि जउलौ । बात को मानिऐ घातु पहिचानिऐ राबरी देह की साँत तउ लौ ॥ ३८४ ॥ घाट घाटै रकौ बाट बाटै तुपो ऐंठ बैठे कहा राम आए । खोर हरामहरीफ की आँख तै चाम के जात कैसे चलाए । होइगो ख्वार बिसिआर खाना तुरा बानरी पूत जउ लौ न गजिहै । लंक को छाडि कै कोटि को फाँध कै आसुरी पूत लै घासि भजिहै ॥ ३८५ ॥ ॥ रावण बाच ॥ बावरी राँड

पाठ करता है । अग्निदेवता मेरी रसोई तैयार करता है, वरुण पानी भरता है और यक्ष विद्याओं को सिखाते हैं । अरबों-खरबों पुरियों के सुखों को मैंने भोगा है । तुम देखना, मैं कैसे वीरों को मारता हूँ । ऐसा भीषण युद्ध करूँगा कि चीलें चहचहा उठेंगी । भूतनियाँ घूमने लगेंगी और वीर बैताल-प्रेतादि नृत्य कर उठेंगे ॥ ३८३ ॥ ॥ मंदोदरी उवाच ॥ (उधर देखो) भाले झूलते हुए दिखाई दे रहे हैं, घोर बाजे बज रहे हैं और राम दल-बल-सहित आ पहुँचे हैं । चारों ओर वानरी सेना की 'मारो-मारो' की ध्वनि सुनाई पड़ रही है । हे रावण ! जब तक रणभेरियाँ बज नहीं उठती हैं और गर्जना करते हुए योद्धा बाण चलाना नहीं प्रारम्भ कर देते हैं, उससे पहले ही अवसर को पहचानते हुए, अपने शरीर की सुरक्षा के लिए मेरी बात को मान जाओ (और युद्ध को न होने दो) ॥ ३८४ ॥ सेनाओं को समुद्र के पत्तनों पर और अन्य रास्तों पर आगे बढ़ने से रोक दो, क्योंकि अब तो राम आ पहुँचे हैं । अपनी आँखों पर से पाखंड की पर्त हटाकर काम करो और चमड़े के सिक्के मत चलाओ अर्थात् मनमानी मत करो । तुम परेशानी में पड़ोगे, तुम्हारा खानदान नष्ट हो जायगा । तुम्हारी सुरक्षा तभी तक है, जब तक वानरी सेना गर्जन प्रारम्भ नहीं कर देती । उसके बाद तो सभी असुर-पुत्र किले की दीवारों को फाँदकर दाँतों में घास के तिनके दबाकर भाग खड़े होंगे ३८५ । रावण उवाच ॥ ओ मूर्ख कुलटा ! तुम क्या बकवास कर रही हो राम का गुणगान छोड़ो राम तो मेरे लिए धूपबत्ती

क्या भाँत बातें बकै रंक से राम का छोड रासा। काढहो बासि दै बान बाजीगरी देखिहो आज ताको तमासा। बीस बाहे धरं सीस दस्यं सिरं सैण संबूह है संगि मेरे। भाज जैहै कहाँ बाटि पैहैं उहाँ मारिहौं बाज जैसे बटेरे॥ ३८६॥ एक एकं हिरं भ्रूम झूमं मरैं आपु आपं गिरैं हाकु मारे। लाग जैहउ तहाँ भाज जैहै जहाँ फूल जैहै कहाँ तै उबारे। साज बाजे सभै आज लैहउँ तिनै राज कैसो करैं काज मोसो। बानरं छै करो राम लच्छं हरो जीत हौं होड तउ तान तोसो॥३८७॥ कोटि ब तै गुनी एक कैं ना सुनी कोपि मुंडी धुनी पुत्त पट्ठे। एक नारांत देवांत दूजो बली भ्रूम कंपी रणबीर उट्ठे। सार भारं परे धारधारं बजी क्रोध है लोह की छिट्ट छुट्टें। रुंड धुक धुक परैं घाइ भकभक करैं बित्थरी जुत्थ सो लुत्थ लुट्टें॥ ३८८॥ पत्र जुग्गण भरैं मद्द देवी करैं नद्द भैरो ररैं गीत गावै। भूत औ प्रेत बैताल बीरं बली मास अहार तारी बजावै। जच्छ

के समान छोटे-छोटे बाण निकालकर चलाएगा अर्थात् मैं इतना विशाल हूँ कि उसके बाण मेरे लिए छोटी सी लकड़ी के समान होंगे। आज मैं यही तमाशा देखूँगा। मेरी बीस भुजाएँ, दस सिर हैं तथा समस्त सेना मेरे साथ है। राम को तो भागने का भी रास्ता नहीं मिलेगा। मैं उसे जहाँ पाऊँगा वहीं पर ऐसे मार दूँगा जैसे बाज बटेर को मार देता है॥ ३८६॥ एक-एक को ढूँढ़-ढूँढ़कर मारूँगा और वे सब मेरी ललकार सुनकर ही गिर पड़ेंगे। वे जहाँ भी भागकर जायेंगे मैं उनका पीछा करता वहाँ जा पहुँचूँगा तथा वे कहीं भी नहीं छिप पायेंगे। आज सज-धजकर मैं उनको पकड़ लूँगा और मेरा सारा काम तो मेरे राज्य के अनुचर ही कर देंगे। वानरी सेना को नष्ट कर दूँगा। राम और लक्ष्मण का वध कर दूँगा और जीतकर तुम्हारा गर्व भी चूर कर दूँगा॥ ३८७॥ कई बातें कही गयीं परन्तु रावण ने एक न सुनी और क्रोध में सिर धुनता हुआ उसने अपने पुत्रों को युद्ध में भेज दिया। युद्ध में जानेवाला एक नरान्तक और दूसरा देवान्तक महाबली था जिनको देखकर धरती काँप उठती थी। लोहे पर लोहा बजने लगा और बाणों की वर्षा से रक्त के छींटें उड़ने लगे। बिना सिर के धड़ तड़फने लगे, घावों से भभककर रक्त बहने लगा तथा लाशें इधर-उधर बिखरने लगीं॥ ३८८॥ योगिनियाँ खप्पर रक्त से भरने लगीं और काली देवी को पुकारने लगी। भैरव भी भयकर ध्वनि से गीत गाने लगे भूत, प्रेत बेताल तथा अन्य

गंध्रब अउ (मू०ग्रं०२२०) सरब बिद्याधरं मद्धि आकाश भयो सब्ब देवं। लुत्थ बिथुत्थरी हूह कूहं भरी मच्चियं जुद्ध अनूप अतेवं ॥ ३८९ ॥ ॥ संगीत छपै छंद ॥ कागड़दी कुप्प्यो कपि कटक बागड़दी बाजन रण बज्जिय। तागड़दी तेग झलहली गागड़दी जोधा गल गज्जिय। सागड़दी सूर संमुहे नागड़दी नारद मुनि नच्च्यो। बागड़दी बीर बैताल आगड़दी आरण रंग रच्च्यो। संसागड़दी सुभट नच्चे समर फागड़दी फुंक फणीअर करैं। संसागड़दी समटे संकड़े फणपति फणि फिरि फिरि धरैं ॥ ३९० ॥ फागड़दी फुंक फिकरी रागड़दी रण गिद्ध रड़क्कै। लागड़दी लुत्थ बित्थुरी भागड़दी भट घाटि भभक्कै। बागड़दी बरखत बाण झागड़दी झलमलत क्रिपाणं। गागड़दी गज्ज संजरै कागड़दी कच्छे किकाणं। बंबागड़दी बहत बीरन सिरन तागड़दी तमकि तेगं कड़ीअ। झंझागड़दी झड़कै झड़ समै झलमल झुकि बिज्जुल झड़ीअ ॥ ३९१ ॥ नागड़दी

मांसाहारी तालियाँ बजाने लगे। आकाश में यक्ष, गन्धर्व एवं सर्वविद्याओं में प्रवीण देवता विचरण करने लगे। लाशें बिखरने लगीं और चारों ओर भीषण कोलाहल से वातावरण भर उठा और इस प्रकार भीषण युद्ध अनुपम रूप से बढ़ चला ॥ ३८९ ॥ ॥ संगीत छप्पय छंद ॥ वानरों की सेना कुपित हो उठी और भयंकर रणवाद्य बजने लगे। कृपाणों की झलक दिखने लगी और योद्धा सिंहनाद करते गरजने लगे। शूरवीरों को एक-दूसरे से भिड़ा देख नारद मुनि प्रसन्न हो नृत्य करने लगे। वीर बैतालों की भगदड़ तेज़ हो गई और साथ-ही-साथ युद्ध भी तेज हो उठा। शूरवीर समरभूमि में नाचने लगे और शेषनाग के सहस्रों फणों से निकलते विष की धार के समान वीरों के शरीर से रक्त बहने लगा और वे आपस में फाग खेलने लगे। वीर कभी सर्प के फण की तरह पीछे हटते हैं, फिर कभी आगे बढ़कर वार करते हैं ॥ ३९० ॥ चारों ओर रक्त की पिचकारियाँ छूट रही हैं और होली का-सा समाँ बँध गया। रणस्थल में गिद्ध भी दिखाई देने लगे। लाशें बिखरी पड़ी हैं और सुभटों के शरीरों से रक्त भभककर बह रहा है। बाण-वर्षा हो रही है और कृपाणों की चमचमाहट दिखाई दे रही है। हाथी गरज रहे हैं और घोड़े बिदककर भाग रहे हैं। वीरों के सिर रक्त की नदी में बह रहे हैं और तलवारों की तमतमाहट दिखाई दे रही है। तलवारें ऐसे लपककर गिर रही हैं मानो से बिजली गिर रही हो ३९१

नारांतक गिरत दागड़दी देवांतक धायो। जागड़दी जुद्ध कर जुमल सागड़दी सुरलोक सिधायो। दागड़दी देव रहसंत आगड़दी आसुरण रण सोगं। सागड़दी सिद्ध सर संत नागड़दी नाचत तजि जोगं। खंखागड़दी खयाह भए प्रापति खल पागड़दी पुहप डारत अमर। जंजागड़दी सकल जै जै जपै सागड़दी सुरपुरहि नार नर ॥ ३९२ ॥ रागड़दी रावणहि सुन्यो सागड़दी दोऊ सुत रण जुज्झे। बागड़दी बीर बहु गिरे आगड़दी आहवहि अरुज्झे। लागड़दी लुत्थ बिथरी चागड़दी चावंड चिकारं। नागड़दी नद्द भए गद्द कागड़दी काली किलकारं। भंभागड़दी भयंकर जुद्ध भयो जागड़दी जूह जुग्गण जुरीअ। कंकागड़दी किलक्कत कुहर कर पागड़दी पत्र स्रोणत भरीअ ॥ ३९३ ॥

॥ इति देवांतक नरांतक वधहि धिआइ समापतम सत ॥

अथ प्रहसत जुद्ध कथनं ॥

॥ संगीत छपै छंद ॥ पागड़दी प्रहसत पठियो दागड़दी दैकै दल अनगन। कागड़दी कंप भूअ उठी बागड़दी बाजन खुरी

के गिरते ही देवान्तक दौड़कर सामने आया और युद्ध करता हुआ सुरलोक सिधार गया। यह देख देवता प्रसन्न हुए और आसुरी सेना में शोक छा गया। सिद्ध और सन्त भी अपनी योगसमाधियाँ छोड़ नृत्य करने लगे। खलों के दल का क्षय हो गया और देवता पुष्प-वर्षा करने लगे तथा सुरपुर के नर-नारी जय-जयकार करने लगे ॥ ३९२ ॥ रावण ने भी यह सुना कि मेरे दोनों पुत्र तथा अन्य बहुत से वीर युद्ध करते हुए मृत्यु को प्राप्त हो गये। युद्धस्थल में लाशें बिखर गई हैं और चील्हें मास नोचकर चिल्ला रही हैं। युद्ध में रक्त की नदियाँ बह उठी हैं और काली देवी किलकारियाँ मार रही हैं। भयकर युद्ध हुआ है और योगिनियाँ रक्तपान के लिए इकट्ठी हो पात्रों में रक्त भर किलकारियाँ मार रही है ॥ ३९३ ॥

॥ इति देवान्तक-नरान्तक-वध अध्याय की सत् समाप्ति ॥

प्रहस्त-युद्ध-कथन प्रारम्भ

॥ संगीत छप्पय छंद ॥ तब रावण ने अगणित सैनिक के साथ प्रहस्त को युद्ध करने के लिए भेजा और घोड़ों की टापों से धरती काप

अनतन । नागड़दी नील तिह झिण्यो भागड़दी गहि भूमि पछाड़ीअ । सागड़दी समर हहकार बागड़दी दानव दल भारीअ । (मू०ग्रं०२२१) घंघागड़दी घाइ भकभक करत रागड़दी रुहिर रण रंग बहि । जंजागड़दी जुग्ग जुग्गण जपै कागड़दी काक कर करककह ॥ ३९४ ॥ पागड़दी प्रहसत जुझंत लागड़दी लै चल्यो अप्प दल । भागड़दी भूमि भड़हड़ी कागड़दी कंपी दोई जल थल । नागड़दी नाद निह नदृद भागड़दी रण भेर भयंकर । सागड़दी साँग झलहलत चागड़दी चमकंत चलत सर । खंखागड़दी खड़ग खिमकत खहत चागड़दी चटक चिनगें कढै । ठठागड़दी ठाट ठट्ट कर मनो नागड़दी ठणक ठठिअर गढै ॥ ३९५ ॥ ढागड़दी ढाल उछलहि बागड़दी रण बीर बबक्कहि । आगड़दी इक लै चलैं इक कहु इक उचक्कहि । तागड़दी ताल तंबुरं गागड़दी रणबीन सु बज्जं । सागड़दी संख के शबद गागड़दी गैवर गल गज्जं । धंधागड़दी धरणि धड़ धुकि परत चागड़दी चकत चित महि अमर । पंपागड़दी पुहप बरखा करत जागड़दी जच्छ गंध्रब बर ॥ ३९६ ॥ झागड़दी झुज्झ भट गिरैं मागड़दी मुख मार उचारैं । सागड़दी संज पंजरे

उठी । नील ने उससे उलझकर उसे भूमि पर पछाड़ फेंका और इससे दानवदल में हाहाकार मच उठा । युद्ध में घाव भभकने लगे और रक्त बहने लगा । योगिनियों के झुंड जाप करने लगे और कौवों की काँव-काँव भी सुनाई देने लगी ॥ ३९४ ॥ प्रहस्त जूझता हुआ अपना दल लेकर बढ़ चला और उसके चलने से धरती पर तथा जलस्थल पर तहलका मच गया । भयंकर नाद होने लगा और भेरियों की भयंकर आवाज़ सुनाई पड़ने लगी । भाले झलमलाने लगे और चमकते हुए तीर चलने लगे । खड्ग खड़खड़ाने लगे और ढालों पर लगने के फलस्वरूप चिनगारियाँ छूटने लगीं । इस प्रकार की ठट-ठट की ध्वनि होने लगी मानो ठठेरा बर्तन बना रहा हो ॥ ३९५ ॥ ढालें उछलने लगीं और वीर एक-दूसरे को ललकारने लगे । एक लय से शस्त्र चलने लगे और ऊँचे उठकर नीचे गिरने लगे । ऐसा लगने लगा मानो सुरताल में तानपूरे और बीन बज रही हों । शंख की ध्वनि की गड़गड़ाहट भी चारों ओर गरजने लगी । धरती का हृदय धड़कने लगा और युद्ध की भयंकरता को देख देवगण भी चकित हो उठे तथा यक्ष-गन्धर्व आदि पुष्पों की वर्षा करने लगे ॥ ३९६ ॥ जूझते हुए वीर गिरते गिरते भी मुख से मार-मार का ण करने लगे

घाघड़दी घणीअर जणु कारै । तागड़दी तीर बरखंत गागड़दी गहि गदा गरिष्टं । भागड़दी मंत्र मुख जपै आगड़दी अच्छर बर इष्टं । संसागड़दी सदा शिव सिमर कर जागड़दी जूझ जोधा मरत । संसागड़दी सुभट मनमुख गिरत आगड़दी अपच्छरन कह बरत ।। ३९७ ।। ।। भुजंग प्रयात छंद ।। इतै उच्चरे राम लंकेश बैणं । उतै देव देखें चड़े रथ गैणं । कहो एक एकं अनेकं प्रकारं । मिले जुद्ध जेते समंतं तुज्झारं ।। ३९८ ।। ।। बभीछण बाच राम सो ।। धनं मंडलाकार जाको बिराजै । सिरं जैत पत्रं सितं छत्र छाजै । रथं बिभ्रटतं ब्याघ्र चरमं अभीतं । तिसै नाथ जानो हठी इंद्रजीतं ।। ३९९ ।। नहे पिंग बाजी रथं जेन सोभैं । महाँ काइ पेखे सभै देव छोभैं । हरे सरब गरबं धनं पाल देवं । महाँ काइ नामा महाँबीर जेवं ।।४००।। लगे म्यूर बरणं रथं जेन बाजी । बकै मार मारं तजै बाण राजी । महाँ जुद्ध को कर महोदर बखानो । तिसैं जुद्ध करता बडो राम जानो ।। ४०१ ।। लगे मुखकं बरण बाजी

वे जालीदार कवच पहने इस प्रकार लग रहे थे मानो काले बादल लहरा रहे हों। गदाओं और तीरों की वर्षा होने लगी और युद्धस्थल में अप्सराएँ इष्ट योद्धाओं का वरण करने के लिए मंत्रों का जाप करने लगीं। योद्धा शिव का स्मरण कर जूझने और मरने लगे और इन सुभटों के गिरते ही अप्सराएँ इनका वरण आगे बढ़कर करने लगीं ।। ३९७ ।। ।। भुजंग प्रयात छंद ।। इधर राम और रावण का वार्तालाप चल रहा है और उधर देवगण अपने रथों पर सवार आकाश मे यह दृश्य देख रहे हैं। जितने भी योद्धा युद्ध में जूझ रहे है उन एक-एक का अनेक प्रकार से वर्णन किया जा सकता है ।। ३९८ ।। ।। विभीषण उवाच राम के प्रति ।। यह जिसका मण्डलाकार धनुष है और जिसके सिर पर श्वेतछत्र विजयपत्र की तरह घूम रहा है और जो रथ में व्याघ्रचर्म पर अभय हो बैठा है; हे नाथ ! वही हठी इन्द्रजित् (मेघनाद) है ।। ३९९ ।। जिसके रथ में भूरे घोड़े शोभायमान हैं और जिसकी विशाल काया को देखकर देवगण भयभीत हो उठते हैं और जिसने सभी देवताओं का गर्व चूर कर दिया है वह महाबली महाकाय (कुम्भकर्ण) के नाम से जाना जाता है ।। ४०० ।। जिस रथ में मोरों के रंग वाले घोड़े लगे हैं और जो मार-मार की ध्वनि के साथ बाण-वर्षा कर रहा है, हे राम ! उसका नाम महोदर है और उसे भी बहुत बड़ा योद्धा माना जाना चाहिए ।। ४०१ ।। जिस रथ में मुख के

रथेसं । हसै (पृ०सं०२२२) पउन के गउन को चार देसं । धरे बाण पाणं किधो काल रूपं । तिसै राम जानो सही दइत भूपं ॥ ४०२ ॥ फिरै मोर पुच्छं दुरं चउर चारं । रड़ै क्रित बंदी अनंतं अपारं । रथं स्वर्ण की किंकणी चार सोहै । लखे देवकन्या महाँ तेज मोहै ॥ ४०३ ॥ छकै मद्ध जाकी धुजा सारदूलं । इहै दइतराजं दुरं द्रोह मूलं । लसै क्रीट सीसं कसै चंद्र भा को । रमानाथ चीनो दसं ग्रीव ताको ॥ ४०४ ॥ दुहूँ ओर बज्जे बजंत्र अपारं । मचे सूरबीरं महाँ शस्त्र धारं । करैं अस्त्र पातं निपातंत सूरं । उठे मद्ध जुद्धं कमद्धं करूरं ॥ ४०५ ॥ गिरै रुंड मुंड भसुंडं अपारं । रुले अंग भंगं समंतं लुझारं । परी कूह जूहं उठे गद्द सद्दं । जके सूरबीरं छके आण मद्दं ॥ ४०६ ॥ गिरे झूम भूमं अघूमेति घायं । उठे सद्द सद्दं चड़े चउप चायं । जुझे बीर एकं अनेकं प्रकारं । कटे अंग जंगं रटैं मार मारं ॥ ४०७ ॥ छुटैं बाण पाणं उठै

समान श्वेत अश्व जुते हुए हैं और जो चाल में पवन की भी हँसी उड़ाते हैं और जो बाण हाथ में लिये हुए काल के समान स्वरूपवाला दिखाई पड़ रहा है, हे राम ! उसे दैत्यराज (रावण) जानो ॥ ४०२ ॥ जिस पर सुन्दर मोर के पंखों का चँवर डुलाया जा रहा है और जिसके सामने अनेकों लोग बन्दना करनेवाले खड़े हों और जिसके रथ में सोने की घंटिकाएँ शोभायमान हो रही हों और जिसे देख देवकन्याएँ मोहित हो रही हैं ॥ ४०३ ॥ जिसकी ध्वजा के बीच शेर का चिह्न है, यही मन में राम के प्रति द्रोह लिये हुए दैत्यराज रावण है । जिसके मुकुट पर चन्द्रमा और सूर्य शोभा दे रहे हैं, हे रमानाथ ! पहचान लीजिए यही दशानन रावण है ॥ ४०४ ॥ दोनों ओर से अनेकों रणवाद्य बजने लगे और शूर-वीर महाशस्त्रों की धारा बरसाने लगे । अस्त्र चलने लगे और शूरवीर गिरने लगे और इस युद्ध में क्रूर कबन्ध उठकर विचरण करने लगे ॥४०५॥ धड़ और मुंड तथा सूँड़ें गिरने लगीं और वीरगणों के अंग कटकर धूल-धूसरित होने लगे । रणस्थल में भीषण आर्तनाद और पुकारें प्रारम्भ हो गईं और ऐसा लगने लगा मानो मदमस्त हो वीर झूम रहे हों ॥ ४०६ ॥ वीरगण घायल होकर चकराते हुए झूमकर भूमि पर गिर रहे हैं और पुनः दुगुने उत्साह के साथ उठकर गदाओं के वार कर रहे हैं । अनेकों प्रकार से वीरों ने युद्ध शुरू कर दिया है और युद्ध में अंग कटकर गिर रहे हैं, परन्तु फिर भी वे मार-मार की पुकार लगाये हुए हैं ४०७ बाणों के

गब्द सद्दं । रुले झूम भूमं सु बीरं बिहब्दं । नचे जंग रंगं ततथइ ततत्थं । छुटं बाण राजी फिरै छूछ हत्थं ॥४०८॥ गिरे अंकुसं बारणं बीर खेतं । नचे कंध हीणं कबंधं अचेतं । भरैं खेचरी पत्र चउसठ तारी । चले सरब आनंदि हुइ मासहारी ॥ ४०९ ॥ गिरे बंकुड़े बीर बाजी सुदेसं । परे पीलवानं छुटे चार केसं । करैं पैज बारं प्रचारंत बीरं । उठै स्रोण धारं अपारं हमीरं ॥४१०॥ छुटं चारि चित्रं बचित्रंत बाणं । चले बैठ कै सूरबीरं बिमाणं । गिरे बारणं बित्थरी लुत्थ जुत्थं । खुले सुरग द्वारं गए बीर अछुत्थं ॥ ४११ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह बिधि हत सैना भई रावण राम बिरुद्ध । लंक बंक प्रापत भयो दससिर महा सक्रुद्ध ॥ ४१२ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ तबै मुक्कले दूत लंकेश अप्पं । मनं बच करमं शिवं जाप जप्पं । सभै मंत्र हीणं सभै अंत कालं । भजो एक चित्तं सु कालं क्रिपालं ॥ ४१३ ॥ रथी पाइकं दंत पंती अनंतं । चले पक्खरे

छूटते ही भयंकर आवाज़ होती है और भीमकाय वीर झूमते हुए धरती पर गिर पड़ते हैं । सभी जंग के रंग में संगीत की ताल पर नृत्य कर रहे हैं और कई बाणों के छूटते ही निहत्थे हो इधर-उधर घूम रहे हैं ॥ ४०८ ॥ वीरों को नष्ट करनेवाले भाले गिर रहे हैं और युद्धभूमि में अचेत कबन्ध नाच रहे हैं । चौंसठ योगिनियों ने अपने खप्पर रक्त से भर लिये हैं और सभी मांसाहारी परम आनन्द मनाते हुए विचरण कर रहे हैं ॥ ४०९ ॥ बाँके वीर और सुन्दर घोड़े गिर रहे हैं तथा दूसरी ओर हाथियों के पीलवान बिखरे हुए केशों के साथ पड़े हुए हैं । वीरगण अपने बल के अनुरूप शत्रु पर वार कर रहे है, जिसके फलस्वरूप रक्त की अपार धारा बह निकली है ॥ ४१० ॥ सुन्दर चित्रकारी करते हुए विचित्र प्रकार के बाण शरीरों को छेदते हुए चले जा रहे हैं और साथ ही साथ शूरवीर भी मृत्यु के विमान पर बैठकर उड़ते चले जा रहे हैं । बाणों के गिरते ही लाशों के झुंड बिखर पड़े हैं और वीरों के लिए स्वर्ग के द्वार खुल गए हैं ॥ ४११ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार राम के विरुद्ध लड़नेवाली सेना हताहत हो गई और लंका के सुन्दर क़िले में बैठा रावण यह समाचार सुन अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा ॥ ४१२ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ तभी मन-वचन और कर्म से शिव का जाप करते हुए लंकेश रावण ने अपने दूत (कुम्भकर्ण के पास) भेजे । वे सभी मंत्र की शक्ति से हीन थे और अपने अन्त समय को निकट जानते हुए वे एक कालकृपालु का स्मरण कर रहे थे ॥ ४१३ ॥ रथी प्यादे और हाथियों पर तथा अश्वों पर सवार

बाज राजं सु भंतं। घसे नासका स्रोण मज्झं सु बीरं। बजे कान्हरे डंक डउरू नफीरं॥ ४१४॥ बजै लाग स्रावं निनादंति बीरं। उठै गद्द सद्दं निनद्दं नफीरं। भए आकुलं ब्याकलं छोरि भगिअं। बली कुंभकानं तऊ नाहि (मू०ग्रं०२२३) जगिअं॥ ४१५॥ चले छाडिकै आस पासं निरासं। भए भ्रात के जागबे ते उदासं। तबै देवकन्या: कर्यो गीत गानं। उठ्यो देव बोखी गदा लीस पानं॥ ४१६॥ करो लंक देसं प्रवेसंति सूरं। बली बीस बाहं महाँ शस्त्र पूरं। करै लाग मंत्रं कुमंत्रं बिचारं। इतै उचरे बैन भ्रातं जुझारं॥ ४१७॥ जलं गागरं सप्त साहंस्र पूरं। मुखं पुच्छ लयो कुंभकानं करूरं। कियो मासहारं महा मद्यपानं। उठ्यो लै गदा को भर्यो बीर मानं॥ ४१८॥ भजी बानरी पेख सैना अपारं। त्रसे जूथ पै जूथ जोधा जुझारं। उठै गद्द सद्दं निनद्दंति बीरं। फिरै रुंड मुंडं तनं तच्छ तीरं॥ ४१९॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद॥ गिरें मुंड तुंडं भसुडं गजानं। फिरै रुंड मुंडं सु झुंडं

कवचधारी वीर चल पड़े। वे सब (कुम्भकर्ण की) नाक और कान में घुस गये और उसमें डमरू और अन्य वाद्य बजाने लगे॥ ४१४॥ वे सभी बच्चों की तरह व्याकुल हो भाग खड़े हुए परन्तु फिर भी बली कुम्भकर्ण नहीं जागा॥ ४१५॥ सभी उसको जगाने में असमर्थ समझकर निराश हो चल दिए और भाई के इस प्रकार न जागने से सभी उदास हो गए। तभी देवकन्याओं ने गीतों का गायन प्रारम्भ कर दिया, जिसे सुन देवताओं का शत्रु कुम्भकर्ण जग पड़ा और उसने अपने हाथ में गदा ले ली॥ ४१६॥ उस शूरवीर ने लंका में प्रवेश किया, जहाँ महान् शस्त्रों से सुसज्जित बीस भुजाओं वाला महाबली रावण था। इन्होंने मिलकर विचार-विमर्श किया और एक-दूसरे से युद्ध से सम्बन्धित बातचीत की॥ ४१७॥ सात सहस्र जल की गगरियाँ कुम्भकर्ण ने अपना मुँह साफ़ करने के लिए लुप्त की, मांसाहार किया तथा अत्यधिक मद्यपान किया। इस सबके बाद वह अभिमानी वीर गदा लेकर उठा और चल पड़ा॥ ४१८॥ इसको देखकर अपार वानर-सेना भाग खड़ी हुई और देवताओं के झुंड-के-झुंड भयभीत हो उठे। वीरों की भीषण आवाज उठने लगी और तीरों से छिले हुए तन रुंड-मुंड होकर विचरने लगे॥ ४१९॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद॥ हाथियों की सूँड़ कटकर गिर रही है और ध्वजाएँ भी कटी हुई इधर-उधर झूल रही हैं। सुन्दर घोड़े

निशानं । रड़ै कंक बंकं ससंकंत जोधं । उठी कूह जूहं मिले सैण क्रोधं ॥ ४२० ॥ झिमी तेग तेजं सरोसं प्रहारं । खिमी दामनी जाणु भादो मझारं । हसे कंक बंके कसे सूरबीरं । ढली ढाल मालं सुभे तच्छ तीरं ॥ ४२१ ॥ ॥ बिराज छंद ॥ हक्क देबी करम् । सद्द भैरो ररम् । काबडी चिचरम् । डाकणी डिकरम् ॥ ४२२ ॥ पत्र जुग्गण भरम् । लुत्थ बित्थुथरम् । संमुहे संघरम् । हूह कूहं भरम् ॥ ४२३ ॥ अच्छरी उछरम् । सिधुरे सिधुरम् । मार मारुच्चरम् । बज्ज गज्जे सरम् ॥ ४२४ ॥ ॥ बिराज छंद ॥ उज्झरे लुज्झरम् । झुम्मरे जुज्झरम् । बज्जियं डंमरम् । तालणो तुंबरम् ॥४२५॥ ॥ रसावल छंद ॥ परी मार मारम् । मंडे शस्त्र धारम् । रटै मार मारम् । तुटं खग्ग धारम् ॥४२६॥ उठै छिच्छ अपारम् । बहै स्रोण धारम् । हसै मासहारम् । पिऐ स्रोण स्यारम् ॥ ४२७ ॥ गिरे चउर चारम् । भजे एक हारम् ।

लुढक पड़े हैं और योद्धा रणक्षेत्र में सिसक रहे हैं। पूरे रणस्थल में भीषण हाहाकार मचा हुआ है ॥ ४२० ॥ कृपाणों की झमझमाहट दिखलाते हुए तेज प्रहार हो रहे हैं और ऐसा लग रहा है, मानो भादो के महीने में बिजली चमक रही हो। सुन्दर घोड़े शूरवीरों को लिये हुए हिनहिना रहे हैं और ढालों की मालाएँ तथा तेज़ बाणों को लिये हुए शोभायमान हो रहे हैं ॥ ४२१ ॥ ॥ विराज छंद ॥ कालीदेवी को प्रसन्न करने के लिए भीषण युद्ध होने लगा और भैरव भी पुकारने लगे। चीलहें चीत्कार करने लगी और डाकिनियाँ भी डकारने लगीं ॥ ४२२ ॥ योगिनियों के खप्पर भरने लगे और लाशें बिखरने लगीं। झुंडों का संहार होने लगा और कोलाहल की ध्वनि चारों ओर भर उठी ॥ ४२३ ॥ अप्सराएँ नाचने लगीं और बिगुल बजने लगे। मार-मार की ध्वनि और तीरों की सरसराहट सुनाई पड़ने लगी ॥ ४२४ ॥ ॥ विराज छंद ॥ वीर उलझ पड़े और योद्धा उमड़ पड़े। रणस्थल में डमरू तथा अन्य वाद्य बजने लगे ॥ ४२५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ अस्त्रों के प्रहार पड़ने लगे और शस्त्रों की धारें तेज़ होने लगीं। वीर 'मारो-मारो' की रट लगाने लगे तथा उनके खड्ग की धार टूटने लगी ॥ ४२६ ॥ रक्त की धारें बहने लगीं और रक्त की छींटें उड़ने लगीं। मांसाहारी जीव मुस्कुराने लगे और गीदड़ रक्त पीने लगे ॥ ४२७ ॥ सुन्दर चँवर गिरने लगे और एक तरफ़ वीर हारकर भागने लगे दूसरी ओर मारो मारो की रट

रटै एक मारम् । गिरे सूर स्वारम् ।। ४२८ ।। चले एक स्वारम् । परे एक बारम् । बडो जुद्ध धारम् । निकारे हथ्यारम् ।। ४२९ ।। करै एक वारम् । लसै खग्ग धारम् । उठै अंगिआरम् । लखै ब्योम चारम् ।। ४३० ।। सु पं जंप चारम् । मंडे अस्त्र धारम् । करें मार मारम् । इकै कंप चारम् ।। ४३१ ।। महाँ बीर जुट्टैं । सरम् संज फुट्टै । तड़ंकार छुट्टैं । झड़कार उट्ठैं ।। ४३२ ।। सरंधार बुट्ठैं । जगं जुद्ध जुट्ठैं । रण रोसु रुट्ठैं । इकं एक कुट्ठैं ।। ४३३ ।। ढली ढाल उट्ठैं । अरम् फउज फुट्टैं । (मू०ग्रं०२२७) कि नेजे पलट्टैं । चमतकार उट्ठैं ।। ४३४ ।। किते भूमि लुट्ठै । गिरे एक उट्ठैं । रणं फेरि जुट्टैं । बहे तेग तुट्टैं ।। ४३५ ।। मचे वीर वीरम् । धरे बीर चीरम् । करैं शस्त्र पातं । उठै अस्त्र घातं ।। ४३६ ।। इतै बान राजं । उतै कुंभ काजं ।

लग पड़ी तथा अश्वारोही वीर गिरने लगे ।।४२८।। एक ओर अश्वारोही चले और एक ही साथ टूट पड़े । उन्होंने शस्त्र निकाले और भीषण युद्ध करने लगे ।। ४२९ ।। वार करती हुई तलवारों की धार शोभायमान हो रही है । ढालों पर वार पड़ने से और तलवारों के आपस में टकराने से चिंगारियाँ फूट रही हैं, जिन्हें आकाश से देवगण देख रहे हैं ।। ४३० ।। वीर जिस पर टूट पड़ते हैं, उसी पर अपने अस्त्रों की धार का मंडन कर देते हैं । 'मार-मार' की पुकार चल रही है और वीर क्रोध से काँपते हुए सुन्दर दिखाई पड़ रहे हैं ।। ४३१ ।। महावीर भिड़ गए हैं और तीरों से कवच फूट रहे है । तड़तड़ाकर तीर छूट रहे हैं और झनझन की आवाज़ सुनाई पड़ रही है ।। ४३२ ।। बाणों की वर्षा हो रही है और ऐसा लग रहा है कि सारा संसार युद्ध में रत हो गया है । रण में योद्धा एक-दूसरे पर क्रोधित हो रहे हैं और एक-दूसरे को काट रहे है ।। ४३३ ।। गिरी हुई ढालें उठाई जा रही हैं और शत्रुओं की सेना (बादलों की तरह) फट रही है । भाले पलट-पलटकर चमत्कारिक रूप से चल रहे हैं ।। ४३४ ।। कितने ही लोग भूलुंठित हो गए हैं, कितने ही गिरकर उठ रहे हैं और पुनः युद्ध में संलग्न होकर कृपाणों को चला-चलाकर तोड़ डाल रहे हैं ।। ४३५ ।। योद्धा, योद्धा के साथ भिड़ रहे है और वीरों को शस्त्रों से चीर रहे हैं । शस्त्रों को गिरा रहे हैं और अस्त्रों से घाव कर रहे हैं ।। ४३६ ।। इधर बाण चल रहे हैं और उधर कुंभकर्ण अपना कार्य कर रहा है अर्थात् सेना का नाश कर रहा है ।

कर्‌यो साल पातं । गिर्‌यो बीर भ्रातं ॥ ४३७ ॥ दोऊ जांघ फूटी । रतं धार छूटी । गिरे राम देखे । बडे दुस्ट लेखे ॥ ४३८ ॥ करी बाण बरखं । भर्‌यो सैन हरखं । हणे बाण ताणं । छिण्यो कुंभकाणं ॥ ४३९ ॥ भए देव हरखं । करी पुहप बरखं । सुण्यो लंक नाथं । हणे भूम माथं ॥४४०॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके रामवतार कुंभकरन बधहि ध्याइ समापतम सतु ॥

अथ त्रिमुंड जुद्ध कथनं ॥

॥ रसावल छंद ॥ पठ्यो तीन मुंडं । चल्यो सैन झुंडं । छिती चित्र जोधी । मंडे परम क्रोधी ॥ ४४१ ॥ बकैं मार मारं । तजै बाण धारं । हनूमंत कोपे । रणं पाइ रोपे ॥ ४४२ ॥ असं छीन लीनो । तिसी कंठि दीनो । हन्यो खस्ट नैणं । हसे देव गैणं ॥ ४४३ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक रामवतार त्रिमुंड बधह ध्याइ समापतम सतु ॥

परन्तु अन्त में (रावण का बड़ा) वीर भाई शाल के वृक्ष की तरह गिर पड़ा ॥ ४३७ ॥ उसकी दोनों जंघाएँ फूट गयीं और उनमें से रक्तधार बह निकली । राम ने उस महादुष्ट को गिरा हुआ देखा ॥ ४३८ ॥ राम ने बाण-वर्षा की और वानर-सेना हर्ष से भर उठी । एक बाण उन्होंने तानकर मारा जिससे कुंभकर्ण मारा गया ॥ ४३९ ॥ देवता प्रसन्न होकर पुष्प-वर्षा करने लगे । जब लंकेश रावण ने यह समाचार सुना तो उसने अपना सिर शोक मे भूमि पर दे मारा ॥ ४४० ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार में कुंभकर्ण-वध नामक अध्याय की सत् समाप्ति ॥

त्रिमुंड-युद्ध-कथन प्रारम्भ

॥ रसावल छंद ॥ अब रावण ने त्रिमुंड असुर को भेजा जो कि सेना लेकर चला । वह योद्धा चित्र के समान अनुपम एवं परम क्रोधवान था ॥ ४४१ ॥ वह 'मारो-मारो' चिल्लाने लगा और बाणों की धार चलाने लगा । हनुमान ने कुपित होकर युद्धस्थल में अपना पाँव जमा दिया ॥ ४४२ ॥ उसकी तलवार को (हनुमान ने) छीन लिया और उसी से उसके गले पर वार चला दिया । वह छः नेत्रों वाला दैत्य मारा गया, जिसे देखकर आकाश में देवगण मुस्कुराने लगे ॥ ४४३ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार में त्रिमुंड-वध अध्याय की सत समाप्ति

अथ महोदर मंत्री जुद्ध कथनं ॥

॥ रसावल छंद ॥ सुण्यो लंक नाथं । धुणे सरब माथं । कर्यो मद्द पाणं । भरे बीर माणं ॥ ४४४ ॥ महिखुआस करखैं । सरधार बरखैं । महोद्रादि बीरं । हठे खग्ग धीरम् ॥४४५॥ ॥ मोहणी छंद ॥ ढल हल्ल सुढल्लो ढोलाणं । रण रंग अभंग कलोलाणं । भरणंकसु नद्दं नाफीरं । बरणंकसु बज्जे मज्जीरं ॥ ४४६ ॥ भरणंकसु भेरी घोराणं । जण सावण भादो मोहाणं । उच्छलिए पखरे पावंगं । मच्चे जुज्झारे जोधंगं ॥ ४४७ ॥ सिंधुरिए सुंडी दंताले । नच्चे पक्खरिए मुच्छाले । ओरझिए सरबं सैणायं । देखंत सु देवं गैणायं ॥ ४४८ ॥ झल्लै अवझड़ियं उज्झाड़ं । रण उठै बैहैं बब्बाड़ं । घै घुम्मे घायं अग्घायं । भुअ डिग्गे अद्धो अद्धायं ॥४४९॥ रिस मंडै छंडै अउ छंडै । हठि हस्सै कस्सै को

महोदर मंत्री-युद्ध-कथन प्रारम्भ

॥ रसावल छंद ॥ अपने वीरों के नाश का समाचार सुनकर रावण माथा पकड़कर बैठ गया । उस वीर ने गर्व में (तथा दुःख को दूर करने के लिए) मद्यपान किया ॥ ४४४ ॥ धनुषों के कर्षण की ध्वनि आने लगी और तीरों की वर्षा होने लगी । महोदर आदि हठी वीर खड्ग पकड़ कर धैर्यपूर्वक स्थिर हो गए ॥ ४४५ ॥ ॥ मोहिनी छंद ॥ ढालें ढोलों की तरह बजने लगीं और युद्ध के रसरंग का कोलाहल सुनाई पड़ने लगा । नफीरों की ध्वनि चारों ओर भर उठी और विभिन्न वर्णों के मजीरे बजने लगे ॥ ४४६ ॥ भेरियाँ ऐसे घहराने लगीं मानो सावन में बादलों को देखकर मोर घिरकर इकट्ठे हो रहे हों । कवचधारी अश्व उछलने लगे और योद्धा युद्ध में जूझने लगे ॥ ४४७ ॥ सूँड़ों और दाँतों वाले हाथी मस्त होने लगे तथा भयानक मूँछों वाले वीर नृत्य करने लगे । सभी सेनाएँ हलचल करने लगीं और आकाश से देवता उन्हें देखने लगे ॥ ४४८ ॥ बहुत ही कठोर वीरों के वारों को सहन किया जा रहा है । वीर रण में गिर रहे हैं और फिर (रक्त की नदी में) बह रहे हैं । घायल होकर वीर चक्राकार में घूम रहे हैं और अधोमुख होकर धरती पर गिर रहे हैं ॥ ४४९ ॥ क्रोधित होकर वे दूसरों को झटक रहे हैं और झटकते चले जा रहे हैं हठी वीर मुस्कुरा कर शस्त्रों को कस रहे हैं

अंडं । रिस बाहैं गाहैं जोधाणं । रण रोहैं जोहैं क्रोधाणं ॥ ४५० ॥ (मू०ग्रं०२२५) रण गज्जै सज्जै शस्त्राणं । धनु करखैं बरखैं अस्त्राणं । दल गाहै बाहै हथियारं । रण रुज्झै लुज्झै लुज्झारं ॥ ४५१ ॥ भट भेदे छेदे बरयामं । भुअ डिग्गे चउरं चरमायं । उग्घे जण नेजे मतवाले । चल्ले ज्यों रावल जट्टाले ॥ ४५२ ॥ हट्ठे तरवरिए हंकारं । मच्चे पक्खरिए सूरारं । अक्कुड़ियं वीरं ऐठाले । तन सोहे पत्री पत्राले ॥ ४५३ ॥ ॥ नव नामक छंद ॥ तरभर परसर । निरखत सुरनर । हरपुर पुरसुर । निरखत बरनर ॥ ४५४ ॥ बरखत सरबर । करखत धन कर । परहर पुर कर । निरखत बरनर ॥ ४५५ ॥ सरबर धरकर । परहर पुरसर । परखत उरनर । निसरत उर धर ॥ ४५६ ॥ उझरत जुझ कर । बिझुरत जुझ नर । हरखत मसहर । बरखत सित सर ॥ ४५७ ॥ झुर झर कर

और क्रोधित होकर योद्धाओं का मंथन कर रहे हैं और अन्य योद्धाओं को क्रोधित कर रहे हैं ॥ ४५० ॥ युद्ध में शस्त्रों से सुसज्जित वीर गरज रहे हैं और धनुषों को खींच-खींचकर उनमें से बाण-वर्षा की जा रही है । वीर शस्त्र चलाते हुए दलों का मंथन कर रहे हैं और युद्ध में भिड़े हुए है ॥ ४५१ ॥ शूरवीरों का भेदन एवं छेदन किया जा रहा है और वे कवच एवं चँवरों के साथ धरती पर गिर रहे हैं । लंबे-लंबे भाले लेकर वीर ऐसे चल रहे हैं मानो रावलपंथी जटाओं वाले योगी जा रहे हों ॥ ४५२ ॥ कृपाणधारी अहंकारी हठ दिखा रहे हैं और कवचधारी शूरवीर भिड रहे हैं । शानवाले वीर अकड़ रहे हैं और उनके शरीरों पर लोहपत्रों के कवच शोभायमान हो रहे हैं ॥ ४५३ ॥ ॥ नव नामक छंद ॥ वीर तड़पते हुए दिखाई दे रहे है, जिन्हें सभी देवता और मानव देख रहे है । ऐसा लग रहा है, मानो इन्द्रलोक भूत-प्रेतों और गणों से भरकर शिव का निवास स्थान बन गया । इस सारे दृश्य को सभी लोग देख रहे है ॥ ४५४ ॥ बाण-वर्षा हो रही है और धनुष खींचे जा रहे है । लोग नगर को छोड़कर जा रहे हैं और यह दृश्य सभी लोग देख रहे हैं ॥ ४५५ ॥ लोग शीघ्रता से नगर का त्याग कर रहे हैं, अपने-अपने धैर्य को परख रहे हैं और हृदय की इच्छाएँ हृदय में लेकर निकल रहे हैं ॥ ४५६ ॥ वीर आपस में उलझ रहे हैं और सभी लोग एक-दूसरे से जूझ रहे हैं । कुछ लोग प्रसन्न भी हो रहे हैं और बाणों की वर्षा कर

कर । डर डर धर हर । हर बर धर कर । बिहरत उठ नर ॥ ४५८ ॥ उच्चरत जम नर । बिचरत धसि नर । धरकत नरहर । बरखत भुअ पर ॥ ४५९ ॥ ॥ तिलकड़ीआ छंद ॥ चटाक चोटं । अटाक ओटं । झझार झाड़ं । तड़ाक ताड़ं ॥ ४६० ॥ फिरंत हूरं । बरंत सूरं । रणंत जोहं । उठंत क्रोहं ॥ ४६१ ॥ भरंत पत्र । तुटंत अत्रं । झड़ंत अगनं । जलंत जगनं ॥ ४६२ ॥ तुटंत खोलं । जुटंत टोलं । खिमंत खग्गं । उठंत अग्गं ॥ ४६३ ॥ चलंत बाणं । रुकं बिसाणं । पपात शस्त्रं । अघात अस्त्रं ॥ ४६४ ॥ खहंत खत्री । भिरंत अत्री । छुटंत बाणं । खिवै क्रिपाणं ॥४६५॥ ॥ दोहरा ॥ लुत्थ जुत्थ बित्थुर रही रावण राम बिरुद्ध । हत्यो महोदर देख कर हरि अरि फिर्यो सु क्रुद्ध ॥ ४६६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके रामवतार महोदर मंत्री बधहि धिआइ समापतम सतु ॥

रहे हैं ॥ ४५७ ॥ लोग मन-ही-मन डरते हुए शिव का ध्यान कर रहे हैं और अपनी रक्षा के लिए शिव का स्मरण करते हुए काँप उठते हैं ॥ ४५८ ॥ जैसी ही ऊँची ध्वनि होती है तो लोग और अन्दर घरों मे घुस जाते हैं तथा इधर वीर नरसिंह-अवतार की तरह विचरण करते हुए धरती पर गिर पड़ रहे हैं ॥ ४५९ ॥ ॥ तिलकड़िया छंद ॥ ढालों पर चटाक की ध्वनि करती हुई कृपाणों की चोट पड़ रही है और ढालों से अपने-आप को बचाया जा रहा है । शस्त्रों को झाड़ा जा रहा है और लक्ष्य बनाकर मारा जा रहा है ॥ ४६० ॥ युद्धस्थल में अप्सराएँ विचरण कर रही हैं और शूरवीरों का वरण कर रही हैं । युद्ध को वे देख रही हैं और उनको पाने की कामना करनेवाले वीरों में और अधिक क्रोध जग रहा है ॥ ४६१ ॥ खप्परों को रक्त से भरा जा रहा है, अस्त्र टूट रहे हैं, अग्नि की चिनगारियाँ इस प्रकार निकल रही हैं, मानो जुगनू जल रहे हों ॥ ४६२ ॥ वीर भिड़ रहे हैं, कवच टूट रहे हैं, खड्ग ढालों पर गिर रहे हैं और चिनगारियाँ उठ रही हैं ॥ ४६३ ॥ बाणों के चलने से दिशाएँ पट गई हैं । शस्त्रों और अस्त्रों के घात-प्रतिघात चल रहे हैं ॥ ४६४ ॥ क्षत्रियगण अस्त्रों को हाथ में लेकर भिड़ रहे हैं, बाण चला रहे हैं और कृपाणों से वार कर रहे हैं ॥ ४६५ ॥ ॥ दोहा ॥ राम और रावण के इस युद्ध में लाशों के झुंड इधर-उधर बिखर गये और महोदर को मारा जाता हुआ देखकर इन्द्रजित् मेघनाद युद्ध के लिए आगे बढ़ा ॥ ४६६ ॥

इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार में महोदर मंत्री-वध अध्याय की सत समाप्ति

फरकंत बाह । जुज्झंत सूर अछरं उछाह ।। ४७१ ।। चमकंत चक्र सरखंत सेल । जुम्मे जटाल जण गंग मेल । संघरे सूर आघाइ घाइ । बरखंत बाण चड़ चउप चाइ ।। ४७२ ।। सुंमले सूर आहुरे अंग । बरखंत बाण बिखधर सुरंग । नभि हवै अलोप सर बरख धार । सभ ऊच नीच किने शुमार ।। ४७३ ।। सभ शस्त्र अस्त्र बिद्या प्रबीन । सर धार बरख सरदार चीन । रघुराज आदि मोहे सु बीर । दल सहित भूम डिग्गे अधीर ।। ४७४ ।। तब कही दूत रावणहि जाइ । कपि कटक आजु जीत्यो बनाइ । सिय भजहु आजु हुइ कै निचीत । संघरे राम रण इंद्रजीत ।। ४७५ ।। तब कहे बैण त्रिजटी बुलाइ । रण म्रितक राम सीतहि दिखाइ । लै गई नाथ जहि गिरे खेत । म्रिग मार सिंघ ज्यो सुपत अचेत ।। ४७६ ।। सिय निरख नाथ मन महि रिसान । दस अउर चार बिद्यानिधान । पड़ नाग मंत्र संघरी पास ।

लगीं ।। ४७१ ।। चक्र चमकने लगे, भाले सनसनाने लगे और जटाओं वाले वीर इस तरह से दौड़-दौड़कर युद्ध करने लगे, मानो वे गंगास्नान के लिए लालायित हों । घाव खानेवाले वीरों का संहार होने लगा और दूसरी ओर योद्धा चौगुने उत्साह के साथ बाण-वर्षा करने लगे ।। ४७२ ।। भयानक वीर युद्ध में उलझे हुए विषधरों के समान बाणों की वर्षा कर रहे हैं । तीरों की वर्षा से आसमान भी छुप गया है और ऊँच-नीच का भेद भी नहीं रह गया है ।। ४७३ ।। सभी योद्धा अस्त्र-शस्त्र विद्या में प्रवीण हैं और सेनापतियों को पहचान-पहचानकर उन पर बाण-वर्षा कर रहे हैं । रघुराज रामचन्द्र भी मोहित होकर अपने दल-सहित भूमि पर आ गिरे ।। ४७४ ।। तब दूतों ने जाकर रावण को समाचार दिया कि आज वानर-सेना को परास्त कर दिया गया । आज आप निश्चिन्त होकर सीता का वरण कीजिए क्योंकि इन्द्रजित् ने युद्ध में राम का संहार कर दिया है ।। ४७५ ।। तब रावण ने त्रिजटा नामक राक्षसी को बुलाया और मृतक राम को सीता को दिखलाने के लिए कहा । वह सीता को अपनी तंत्र-विद्या के बल से वहाँ ले गई जहाँ रामचन्द्र इस प्रकार अचेत पड़े सो रहे थे, जैसे मृगों को मारकर सिंह निश्चिन्त होकर सोता है ।। ४७६ ।। राम को इस अवस्था में देखकर सीता को मन में अत्यन्त क्षोभ हुआ, क्योंकि राम चौदह कलाओं के भण्डार थे और उनके साथ इस प्रकार की घटना का तालमेल बैठाना सीता के लिए असंभव था । सीता पढ़ती हुई उनके पास गई और राम तथा लक्ष्मण को पुन

पति भ्रात ज्याइ चित भ्यो हुलास ।। ४७७ ।। सिय गई जगे अंगराइ राम । दल सहित भ्रात जुत धरम धाम । बज्जे सुनादि गज्जे सु बीर । सज्जे हथियार भज्जे अधीर ।। ४७८ ।। संभले सूर सर बरख जुद्ध । हन साल ताल बिकाल क्रुद्ध । तजि जुद्ध सुद्ध सुर मेघ धरण । थल ग्योन कुंभला होम करण ।। ४७९ ।। लख बीर तीर लंकेश आन । इम कहै श्रौण तज भ्रात कान । आइहै शत्रु इह घात हाथ । इंद्रार बीर अरबर प्रमाथ ।। ४८० ।। निज मास काटकर करत होम । थरहरत भूंमि अर चकत ब्योम । तह गयो राम (मू०ग्रं०२२७) भ्राता निशंगि । कर धरे धनख कट कसि निखंग ।। ४८१ ।। चितो सु चित देवी प्रचंड । अर हण्यो बाण कीनो दुखंड । रिप फिरे मार दुंदभ बजाइ । उत भजे दइत दलपति जुझाइ ।। ४८२ ।।

।। इति इंद्रजीत बधहि धिआइ समापतम सतु ।।

जीवित करते हुए मन में प्रसन्न हो उठीं ।। ४७७ ।। इधर सीता गईं और उधर राम अपने भाई और दल-सहित जग पड़े । धर्म के धाम राम के उठते ही वीरों ने सिंहनाद करते हुए शस्त्रों से सुसज्जित होना शुरू कर दिया और बड़े-बड़े धैर्यवान युद्धस्थल से भागने लगे ।। ४७८ ।। भयानक पंजों वाले वीर युद्ध में बाण-वर्षा करने लगे और विकराल रूप से क्रोधित होकर पेड़ों तक का नाश करने लगे । इसी समय इन्द्रजित् मेघनाद युद्ध को त्यागकर होमयज्ञ करने के लिए वापस चला गया ।। ४७९ ।। छोटे भाई के पास आकर विभीषण ने कहा कि इस समय आपका परम शत्रु और महाबलशाली इन्द्रजित् आपके हाथ में आया हुआ है ।। ४८० ।। वह अपना मांस काट-काटकर होम कर रहा है, जिससे सारी भूमि कांप रही है और आकाश आश्चर्यचकित हो उठा है । यह सुन लक्ष्मण अभय हो वहाँ हाथों में धनुष और पीठ पर तरकस बाँधे हुए गए ।। ४८१ ।। इन्द्रजित् ने देवी को प्रकट करने के लिए जाप प्रारम्भ कर दिया और इधर लक्ष्मण ने बाण मारकर इन्द्रजित् के दो टुकड़े कर दिए । लक्ष्मण दल-सहित दुन्दुभी बजाते वापस लौटे और उधर दैत्य सेनापति को मरा देख भाग खड़े हुए ।। ४८२ ।।

।। इति इन्द्रजित्-वध अध्याय की सम् समाप्ति ।।

अथ अतकाइ दईत जुद्ध कथनं ॥

॥ संगीत पधिसटका छंद ॥ कागड़दंग कोप कै दईत राज । जागड़दंग जुद्ध को सज्यो साज । बागड़दंग बीर बुल्ले अनंत । रागड़दंग रोस रोहे तुरंत ॥ ४८३ ॥ पागड़दंग धरम बाजी बुलंत । चागड़दंग चक्र नट ज्यों कुदंत । कागड़दंग क्रूर कढ्ढे हथिआर । आगड़दंग आन बज्जे जुझार ॥ ४८४ ॥ रागड़दंग राम सैना सुक्रुद्ध । जागड़दंग ज्वान जुझंत जुद्ध । नागड़दंग निशाण नव सैन साज । मागड़दंग मूढ़ मकराछ गाज ॥४८५॥ आगड़दंग एक अतकाइ बीर । रागड़दंग रोस बीने गहीर । आगड़दंग एकहु के अनेक । सागड़दग सिख बेला बिबेक ॥ ४८६ ॥ तागड़दंग तीर छुट्टे अपार । बागड़दंग बूंद बन दल अनुचार । आगड़दंग अरब टीडी प्रमान । चागड़दंग चार चीटी समान ॥ ४८७ ॥ बागड़दंग बीर बाहुड़े नेख । जागड़दंग जुद्ध अतकाह देख । दागड़दंग देव जै जै कहंत । भागड़दंग भूप धन धन भनंत ॥ ४८८ ॥ कागड़दंग कहक काली कराल । जागड़दंग जूह जुग्गण बिसाल ।

अतिकाय दैत्य-युद्ध-कथन प्रारम्भ

॥ संगीत पधिस्टका छंद ॥ दैत्यराज ने कुपित हो युद्ध का उपक्रम किया । क्रोधित हो अनन्त वीरों को बुलाया ॥ ४८३ ॥ अति तीव्रगामी अश्व लाये गये जो कि नट के समान इधर-उधर कूदनेवाले थे । भयानक हथियारों को निकालकर शूरवीर एक-दूसरे से जूझने लगे ॥ ४८४ ॥ इधर राम की सेना में भी क्रोधित हो शूरवीर जूझने लगे । अपनी सेना का नया ध्वज लेकर मूढ़ मकराक्ष भी गरजने लगा ॥ ४८५ ॥ असुर-सेना में एक अतिकाय नामक वीर राक्षस भी गम्भीर रूप से क्रोधित हो उस एक के साथ अनेकों जुट गए और विवेक-बुद्धि के अनुसार युद्ध करने लगे ॥ ४८६ ॥ अपार बाण-वर्षा होने लगी और बाण बूंदों के समान गिरने लगे । सैन्य-दल टिड्डियों के समान अथवा चींटियों की सेना के समान दिखाई दे रहा था ॥ ४८७ ॥ अतिकाय का युद्ध देखने के लिए शूरवीर उसके पास आ पहुँचे । देवगण जय-जयकार करने लगे और राजागण धन्य-धन्य कहने लगे ४८८ कराल कालीदेवी कुहुकने लगी और युद्धस्थल में योगिनियाँ बिचरने लगीं अनन्त भैरव और भूतगण रक्त

भागड़दंग भूत भैरो अनंत । सागड़दंग स्रोण पाणं करंत ॥ ४८९ ॥ डागड़दंग डउर डाकण डहक्क । कागड़दंग क्रूर काकं कहक्क । चागड़दंग चब्र चावंडी चिकार । भागड़दंग भूत डारत धमार ॥ ४९० ॥ ॥ दोहा छंद ॥ टूटे परे । नवे मुरे । असं धरे । रिसं भरे ॥ ४९१ ॥ छुटे सरं । चक्यो हरं । रुकी दिसं । चपे किसं ॥ ४९२ ॥ छुटं सरं । रिसं भरं । गिरं भटं । जिमं अटं ॥ ४९३ ॥ घुमे घयं । भरे भयं । चपे चले । भटं भले ॥ ४९४ ॥ रटैं हरं । रिसं जरं । रुपै रणं । घुमे व्रणं ॥ ४९५ ॥ गिरैं धरं । (मू०ग्रं०२२८) हुलैं नरं । सरं तछे । कछं कछे ॥ ४९६ ॥ घुमे व्रणं । भ्रमे रणं । लजं फसे । कटं कसे ॥ ४९७ ॥ धुके धकं । टुके टकं । छुटे सरं । रुके दिसं ॥ ४९८ ॥ ॥ छपै छंद ॥ इक्क इक्क आ रहे इक्क इक्कन कह तक्कैं । इक्क इक्क लै चलैं इक्क कह इक्क उचक्कैं । इक्क इक्क सर बरख इक्क धन करख रोस भर ।

पान करने लगे ॥ ४८९ ॥ डाकिनियों के डमरू डगमगाने लगे और क्रूर कौवे काँव-काँव करने लगे । चारों तरफ़ चीलहों का चीत्कार और भूत-प्रेतों की उछल-कूद दिखाई-सुनाई पड़ने लगी ॥ ४९० ॥ ॥ दोहा छंद ॥ वीर टूटकर मुड़ पड़ने लगे और क्रोधित हो तलवारें पकड़ने लगे ॥ ४९१ ॥ तीरों को छूटते देख मेघ भी हैरान थे । बाणों के कारण सारी दिशाएँ पट गईं ॥ ४९२ ॥ क्रोध से भरे हुए तीर छूट रहे हैं और पृथ्वी पर वीर ऐसे गिर रहे हैं मानो अट्टालिकाएँ मिट रही हों ॥ ४९३ ॥ भयभीत वीर घूम-घूमकर घाव खा रहे हैं और पड़े शूरवीर उड़ते चले जा रहे हैं ॥ ४९४ ॥ मन में ईर्ष्या धारण किये हुए शत्रु को मारने के लिए वे शिव का गायन कर रहे हैं और रण में घूम-घूमकर भय से आकुल हो युद्ध कर रहे हैं ॥ ४९५ ॥ राक्षसों के धरती पर गिरते ही लोग प्रसन्न हो रहे हैं । राक्षसों में बाण शोभायमान हो रहा है और वीरों का दलन हो रहा है ॥ ४९६ ॥ घायल वीर इधर-उधर रणस्थल में घूम और तड़प रहे हैं । कमरबंद होकर वे लज्जित हो फँसे हुए हैं ॥ ४९७ ॥ दिल में धड़काहट जारी है । रह-रहकर बाण छूट रहे हैं, जिससे दिशाएँ पट गयी हैं ॥ ४९८ ॥ ॥ छप्पय छंद ॥ एक-से-एक बढ़कर वीर आ रहे हैं और एक एक को तक रहे हैं एक एक को लेकर चल रहे हैं और एक वीर एक को लेकर उचक रह हैं एक

इक्क इक्क तरफंत इक्क भव सिंध गए तरि। रणि इक्क इक्क सावंत भिड़ें इक्क इक्क हुइ विज्झड़े। नर इक्क अनिक शस्त्रण भिड़े इक्क इक्क अवझड़ झड़े ॥ ४९९ ॥ इक्क जूझ भट गिरें इक्क बबकंत मद्ध रण। इक्क देवपुर बसै इक्क भज चलत खाइ व्रण। इक्क जुज्झ उज्झड़े इक्क विज्झड़े झाड़ अस। इक्क अनिक व्रण झलैं इक्क मुकतंत बान कसि। रण भूँम घूम सावंत मँडै दीर्घु काइ लछमण प्रबल। थिर रहे ब्रिछ उपबन किधो जण उत्तर दिस हुइ अचल ॥ ५०० ॥ ॥ अजबा छंद ॥ जुट्टे बीरं। छुट्टे तीरं। ढुक्की ढालं। क्रोहे कालं ॥ ५०१ ॥ ढंके ढोलं। बंके बोलं। कच्छे शस्त्रं। अच्छे अस्त्रं ॥ ५०२ ॥ क्रोधं गलितं। बोधं दलतं। गज्जै बीरं। तज्जै तीरं ॥ ५०३ ॥ रत्ते नैणं। मत्ते बैणं। लुज्झै सूरं। सुज्झै हूरं ॥ ५०४ ॥ लग्गें तीरं। भग्गें

ओर शर को बरसा रहे हैं और एक ओर क्रोध भर के धनु को खींच रहे है। एक ओर वीर तड़फ रहे हैं तथा एक ओर मृत्यु को प्राप्त करते हुए वीर भवसागर पार कर रहे हैं। एक-से-एक बढ़कर योद्धा एक दूसरे से भिड़े हैं और मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। सैनिक सभी एक-से ही हैं, परन्तु शस्त्र अनेक है और ये शस्त्र वर्षा की तरह सैनिकों पर झड़ रहे हैं ॥ ४९९ ॥ एक ओर वीर गिर पड़े हैं तथा एक ओर वीर दहाड़ रहे हैं। एक ओर देवपुरी में वीर जा विराजे हैं तथा दूसरी ओर घाव खाकर वीर भाग खड़े हुए हैं। एक युद्ध में स्थिर हो जूझ रहे हैं तथा एक ओर पेड़ की तरह कटकर वीर गिर रहे हैं। एक ओर अनेकों घाव सहे जा रहे हैं तथा एक ओर कस-कसकर वाण छोड़े जा रहे हैं। रणभूमि में दीर्घकाय तथा लक्ष्मण दोनों ने घूम-घूमकर व्यूह-रचना की है और ये दोनों वीर ऐसे लग रहे हैं कि मानो किसी उपवन में विशाल पेड़ हों अथवा उत्तर दिशा में सदैव अचल बने रहनेवाले ध्रुव तारे हों ॥ ५०० ॥ ॥ अजबा छंद ॥ वीर भिड़ गए, तीर चल पड़े, ढालों की ढकढकाहट प्रारम्भ हो गई और काल रूप वीर क्रोधित हो उठे ॥ ५०१ ॥ ढोल बज उठे, तलवारें सुनाई पड़ने लगी और शस्त्र तथा अस्त्र चलने लगे ॥ ५०२ ॥ क्रोध से गलित होकर बड़ी सूझ-बूझ के साथ सेनाओं का दलन किया जा रहा है। वीर गरज रहे हैं और बाण-वर्षा कर रहे हैं ॥ ५०३ ॥ लाल नेत्रों वाले वीर मद-मस्त हो चिल्ला रहे हैं शूरवीर भिड रहे हैं और ऐं इनको देख रही हैं ५०४ तीर खाकर वीर भाग रहे हैं और कंपित हो

बीरं। रोसं रुज्झै। अस्त्रं जुज्झै॥ ५०५॥ झुम्मे सूरं। घुम्मे हूरं। चक्कैं चारं। बक्कैं मारं॥ ५०६॥ भिद्दे बरमं। छिद्दे चरमं। तुट्टें खग्गं। उट्ठें अग्गं॥ ५०७॥ नच्चे ताजी। गज्जे गाजी। डिग्गे बीरं। तज्जे तीरं॥ ५०८॥ झुम्में सूरं। घुम्मी हूरं। कच्छे बाणं। मत्ते माणं॥ ५०९॥ ॥ पाधरी छंद॥ तह भयो घोर आहव अपार। रणभूंमि झूमि जुज्झे जुझार। इत राम भ्रात अतकाइ उत्त। रिस जुज्झ उज्झरे राज पुत्त॥ ५१०॥ तब राम भ्रात अति कीन रोस। जिम परत अगन घ्रित करत जोस। गहि बाण पाण तज्जे अनंत। जिम जेठ सूर किरणं तुरंत॥ ५११॥ ब्रण आप मद्ध बाहत अनेक। बरणै न जाहि कहि एक एक। उज्झरे बीर जुज्झण जुझार। जै शब ददेव भाखत पुकार॥ ५१२॥ रिप (मू०ग्रं०२२६) कर्यो शस्त्र अस्त्रं बिहीन। बहु शस्त्र शास्त्र बिद्या प्रबीन। हय मुकट सूत बिनु क्यो गवार। कछु चपे चोर जिम बल

अस्त्रों को लेकर जूझ रहे हैं॥ ५०५॥ वीर झूम रहे हैं और अप्सराएँ घूम-घूमकर इन्हें देख रही हैं और इनके "मार-मार" के प्रलाप से चकित हो रही हैं॥ ५०६॥ कवचों को भेदते शस्त्र शरीरों को छेद रहे हैं। खड्ग टूट रहे है और उनमें से अग्नि की चिनगारियाँ छूट रही हैं॥ ५०७॥ घोड़े नृत्य कर रहे हैं और शूरवीर गरज रहे हैं तथा तीरों को छोडते हुए गिर पड़ रहे हैं॥ ५०८॥ अप्सराओं को विचरते देख शूरवीर झूम रहे हैं और मदमस्त हो बाण चला रहे हैं॥ ५०९॥ ॥ पाधरी छंद॥ इस प्रकार वहाँ घोर संग्राम हुआ और रणभूमि में कई जुझारू वीर खेल रहे। एक ओर राम के भाई लक्ष्मण और दूसरी ओर अतिकाय नामक दैत्य है और ये दोनों ही राजपुत्र क्रोधित हो एक-दूसरे से भिड़ रहे हैं॥ ५१०॥ तब लक्ष्मण ने उसी भाँति अत्यन्त क्रोध किया और अपने उत्साह को बढाया। जैसे अग्नि पर घी पड़ते ही अग्नि और अधिक प्रज्वलित हो उठती है। उसने ज्येष्ठ मास के सूर्य की विकराल किरणों के समान दग्ध करनेवाले बाण चलाये॥ ५११॥ स्वयं घायल होते हुए उसने इतने बाण चलाये कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। ये जुझारू वीर आपस में भिड़े हुए हैं और दूसरी ओर देवगण जय-जयकार की ध्वनि कर रहे हैं॥ ५१२॥ बहुत से शस्त्रों और शास्त्रों की विद्या के प्रवीण शत्रु अतिकाय को अन्त में लक्ष्मण ने शस्त्र अस्त्र विहीन कर दिया। वह

सँभार ॥ ५१३ ॥ रिप हणे बाण बज्रब घात । सम चले काल की ज्वाल तात । तब कुप्यो बीर अतकाइ ऐस । जन प्रलै काल को मेघ जैस ॥ ५१४ ॥ इम करन लाग लपटैं लबार । जिम जुबणहीण लपटाइ नार । जिम दंत रहत गह स्वान ससक । जिम गए बैस बल बीर्ज रसक ॥ ५१५ ॥ जिम दरबहीण कछु करि बपार । जण शस्त्र हीण रज्झ्यो जुझार । जिम रूप हीण बेस्या प्रभाव । जण बाज हीण रथ को चलाव ॥ ५१६ ॥ तब तमक तेग लछमण उदार । तह हण्यो सीस किनो दुफार । तब गिर्यो बीर अतिकाइ एक । लख ताहि सूर भज्जे अनेक ॥ ५१७ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके रामवतार अतकाइ बधहि धिआइ समापतम ॥

घोड़े, मुकुट और वस्त्रों से बिहीन हो गया और जिस प्रकार कुछ साहस कर चोर छिपने की कोशिश करता है उस प्रकार छिपने लगा ॥ ५१३ ॥ वज्र का-सा आघात करनेवाले बाण शत्रु की ओर चलाये और वे बाण ऐसे लग रहे थे मानो काल रूपी ज्वाला आगे बढ़ रही हो । इस पर वीर अतिकाय भी प्रलयकाल के बादलों के समान अत्यन्त कुपित हो उठा ॥ ५१४ ॥ वह इस प्रकार से बकवाद करने लगा, जैसे यौवनहीन पुरुष स्त्री से लिपटकर उसको सन्तुष्ट न कर सकने की स्थिति में प्रलाप करता है अथवा जिस प्रकार दन्त-विहीन कुत्ता खरगोश को पकड़ लेता है, परन्तु उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं पाता अथवा जैसी वीर्य विहीन रसिक की दशा होती है ॥ ५१५ ॥ अतिकाय की वही दशा हो गई जो दशा द्रव्यहीन व्यापारी की अथवा शस्त्र-विहीन शूरवीर की हो जाती है । वह इसी प्रकार का दिखाई देने लगा मानो रूपहीन वेश्या हो अथवा अश्व-विहीन रथ हो ॥ ५१६ ॥ तभी उदार लक्ष्मण ने (अतिकाय को उसकी असहाय अवस्था से मुक्ति दिलाने के लिए) अपनी तेज़ धार वाली कृपाण चलाई और उस राक्षस को मारकर दो खण्डों में बाँट दिया । वह अतिकाय नामक वीर युद्धभूमि में गिर पड़ा और उसे देख अनेकों शूरवीर भाग खड़े हुए ॥ ५१७ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार में अतिकाय-वध अध्याय समाप्त ॥

अथ मकराछ जुद्ध कथनं ॥

॥ पाधरी छंद ॥ तब रुक्यो सैन मकराछ आन। कह जाहु राम नही पैहो जान। जिन हत्यो तात रण मो अखंड। सो लरो आन मोसों प्रचंड ॥ ५१८ ॥ इम सुणि कुबंण रामावतार। गहि शस्त्र अस्त्र कोप्यो जुझार। बहु ताण बाण तिह हणे अंग। मकराछ मारि डार्यो निशंग ॥ ५१९ ॥ जब हते बीर अर हणी सैन। तब भजी सूर हुइ कर निचैन। तब कुंभ और अनकुंभ आन। दल रुक्यो राम को त्याग कान ॥ ५२० ॥ ॥ अजबा छंद ॥ त्रप्पे ताजी। गज्जे गाजी। सज्जे शस्त्रं। कच्छे अस्त्रं ॥ ५२१ ॥ तुट्टे त्राणं। छुट्टे बाणं। रुप्पे बीरं। बुट्ठे तीरं ॥ ५२२ ॥ घुम्मे घायं। झुम्मे चायं। रज्जे रोसं। तज्जे होसं ॥ ५२३ ॥ कज्जे संजं। पूरे पंजं। जुज्झे खेतं। डिग्गे चेतं ॥ ५२४ ॥ घेरी लंकं। बीरं बंकं। सज्जी

मकराक्ष-युद्ध-कथन प्रारम्भ

॥ पाधरी छंद ॥ तत्पश्चात् सेना में मकराक्ष आ उपस्थित हुआ और कहने लगा कि राम ! अब तुम बचकर नहीं जा सकते। जिसने मेरे पिता का वध किया है वह प्रचण्ड वीर मुझसे आकर युद्ध करे ॥ ५१८ ॥ राम ने ये कुटिल वचन सुने और क्रोधित होकर उन्होंने हाथ में अस्त्र-शस्त्र पकड़ लिये। बहुत से बाण खींचकर उन्होंने चलाये और मकराक्ष को अभय होकर मार डाला ॥ ५१९ ॥ जब यह वीर और उसकी सेना मारी गई, तब निहत्थे होकर सभी शूरवीर भाग खड़े हुए। इसके बाद कुम्भ और अनकुम्भ आ उपस्थित हुए और राम की सेना को उन्होंने रोक लिया ॥ ५२० ॥ ॥ अजबा छंद ॥ घोड़े बिदकने लगे, वीर गरजने लगे और शस्त्र-अस्त्रों से सुसज्जित होकर मार करने लगे ॥ ५२१ ॥ धनुष टूटने लगे, बाण छूटने लगे, वीर स्थिर होने लगे और तीर बरसने लगे ॥ ५२२ ॥ घाव खाकर वीर घूमने लगे और उनका उत्साह बढ़ने लगा। क्रोधित होकर वीर अपने होश खोने लगे ॥ ५२३ ॥ कवच से ढके हुए वीर रणस्थल में जूझने लगे और अचेत होकर गिरने लगे ॥ ५२४ ॥ वीर बाँकुरों ने लंका को घेर लिया आसुरी सेना लज्जित होकर भाग

सैणं । लज्जी नैणं ॥ ५२५ ॥ डिग्गे सूरं । भिग्गे नूरं । ब्याहैं हूरं । कामं पूरं ॥ ५२६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके रामवतार मकराछ कुंभ अनकुंभ बधहि
ध्याइ समापतम सतु ॥

अथ रावन जुद्ध कथनं ॥

॥ होहा छंद ॥ सुण्यो इसं । जिण्यो किसं । चप्यो चित्तं । बुल्यो बित्तं ॥ ५२७ ॥ (मू०ग्रं०२३०) घिर्‌यो गड़ं । रिसं बड़ं । भजी त्रियं । भ्रमी भयं ॥ ५२८ ॥ भ्रमी तबं । भजी सबं । त्रियं इसं । गह्यो किसं ॥ ५२९ ॥ करैं हहं । अहो बयं । करो गई । छमो भई ॥ ५३० ॥ सुणी स्त्रुतं । धुणं उसं । उठ्यो हठी । जिमं भठी ॥ ५३१ ॥ कछ्यो नरं । तजे सरं । हणे किसं । रुको दिसं ॥ ५३२ ॥ ॥ त्रिणणिण छंद ॥ त्रिणणण तीरं । भ्रिणणिण बीरं । ढणणण ढालं । ज्त्रणणण ज्वालं ॥ ५३३ ॥ ख्रणणण खोलं । भ्रणणण बोलं ।

खड़ी हुईं ॥ ५२५ ॥ शूरवीर गिर पड़े और उनके चेहरे चमक उठे । उन्होंने अप्सराओं का वरण किया और अपनी कामनाएँ पूरी कीं ॥ ५२६ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार के मकराक्ष-कुम्भ-अनकुम्भ-वध
अध्याय की सत् समाप्ति ॥

रावण-युद्ध-कथन प्रारम्भ

॥ होहा छंद ॥ रावण ने सुना कि किसकी जीत हुई है तो वह मन में क्रोधित हो उठा और पूरे ज़ोर के साथ चिल्लाने लगा ॥ ५२७ ॥ क़िले को घिरा हुआ देखकर उसका क्रोध बढ़ उठा और उसने देखा कि स्त्रियाँ भयातुर होकर भाग रही हैं ॥ ५२८ ॥ सभी स्त्रियाँ भ्रमवश भाग रही हैं और रावण ने उनके केश पकड़कर रोक लिया ॥ ५२९ ॥ वे सभी हाहाकार मचाती हुई, ईश्वर को पुकार रही थीं और अपने पापों के लिए क्षमा माँग रही थीं ॥ ५३० ॥ इस प्रकार की ध्वनियों को सुनते हुए वह हठी रावण उठा और ऐसा लगने लगा मानो धधकती हुई अग्नि का कुण्ड ॥ ५३१ ॥ तीर चलाकर वह मानवी सेना को मारने लगा और उसके चलाये हुए बाणों से सभी दिशाएँ पट गईं ॥ ५३२ ॥ ॥ त्रिणणिण छंद ॥ तीर चलने लगे, वीर घायल होने लगे । ढालें ढलकने लगीं, ज्वालाएँ जलने लगीं ५३३ शिरस्त्राण खड़कने लगे और घाव बनने

क्रणणण रोसं । ज्रणणण जोसं ।। ५३४ ।। अणणण आजी । त्रिणणण ताजी । ज्रणणण जूझे । ल्रणणण लूझे ।। ५३५ ।। ह्रणण हाथी । सरणण साथी । भरणण भाजे । लरणण लाजे ।। ५३६ ।। चरणण चरमं । बरणण बरमं । करणण काटे । बरणण बाटे ।। ५३७ ।। मरणण मारे । तरणण तारे । जरणण जीता । सरणण सीता ।। ५३८ ।। गरणण गैणं । अरणण ऐणं । ह्रणण हूरं । परणण पूरं ।। ५३९ ।। बरणण बाजे । गरणण गाजे । सरणण सुज्झे । जरणण जुज्झे ।। ५४० ।। ।। त्रिगता छंद ।। तत्त तीरं । बब्ब बीरं । ढल्ल ढालं । जज्ज ज्वालं ।। ५४१ ।। तत्त ताजी । गग्ग गाजी । मम्म मारे । तत्त तारे ।। ५४२ ।। जज्ज जीते । लल्ल लीते । तत्त तोरे । छच्छ छोरे ।। ५४३ ।। ररं राजं । गग्ग गाजं । धद्ध धायं । चच्च चायं ।। ५४४ ।। डड्ड डिग्गे । भब्भ भिग्गे । सस्स स्रोणं । तत्त तोणं ।। ५४५ ।। सस्स साधैं । बब्ब बाधैं । अअ्अ अंगं । जज्ज जंगं ।।५४६।।

लगे। वीर कुपित होने लगे और उनका उत्साह बढ़ने लगा ।। ५३४ ।। तीव्र गति वाले अश्व दौड़ने लगे और वीर जूझकर वीरगति को प्राप्त होने लगे ।। ५३५ ।। हाथी हिरणों के समान भागने लगे और वीर साथियों की शरण पड़ने लगे। शत्रु भागने लगे और लड़ने से लजाने लगे ।। ५३६ ।। शरीर और कवच कटने लगे। कान और आँखें क्षत-विक्षत होने लगीं ।। ५३७ ।। वीर मरने लगे और भवसागर तरने लगे। कुछ क्रोध की अग्नि में जल उठे और शरणागत हो गए ।। ५३८ ।। देवता विमान से विचरण करके दृश्य देखने लगे। अप्सराएँ घूमने लगीं और वीरों का वरण करने लगीं ।। ५३९ ।। विभिन्न प्रकार के वाद्य बजने लगे और हाथी गरजने लगे। वीर शरणागत होने लगे और अन्य युद्ध में जूझने लगे ।। ५४० ।। ।। त्रिगता छंद ।। तीर वीरों को मारने लगे और ढालों से ज्वालाएँ निकलने लगीं ।। ५४१ ।। अश्व दौड़ने लगे, योद्धा गरजने लगे। वे एक-दूसरे को मारने लगे और भवसागर पार उतरने लगे ।। ५४२ ।। युद्ध में जीतकर शत्रु अपनी ओर मिलाए जाने लगे। वीरों को तोड़ा जाने लगा और छोड़ा जाने लगा ।। ५४३ ।। राजा (रावण) गरजकर उत्साहपूर्वक आगे बढ़ा ।। ५४४ ।। वीर रक्त से भीगकर गिरने लगे और रक्त मानो पानी की तरह बह रहा था ।। ५४५ ।। साधकर लक्ष्य बाँधे जा रहे हैं और युद्ध में अंगों का भेदन किया जा रहा है ५४६

कक्क क्रोधं । जज्ज ओधं । घग्घ घाए । धद्ध धाए ॥५४७॥
हह्ह हूरं । पप्प पूरं । गग्ग गैणं । अअ्अ ऐणं ॥ ५४८ ॥
बब्ब बाणं । तत्त ताणं । छच्छ छोरैं । जज्ज जोरैं ॥५४९॥
बब्ब बाजे । गग्ग गाजे । भब्भ भूमं । झज्झ झूमं ॥५५०॥
॥ अनाद छंद ॥ चल्ले बाण रुक्के गैण । मत्ते सूर रत्ते नैण ।
ढक्के ढोल ढुक्की ढाल । छुट्टे बान उट्ठैं ज्वाल ॥ ५५१ ॥
भिग्गे स्रोण डिग्गे सूर । झुम्मे भूम घुम्मी हूर । बज्जे संख सद्दं गद्द । तालं संख भेरी नद्द ॥ ५५२ ॥ तुट्टे त्राण फुट्टे अंग । जुज्झे बीर रुज्झे जंग । मच्चे (मू०ग्रं०२३१) सूर नच्ची हूर । मत्ती धूम भूमी पूर ॥ ५५३ ॥ उट्ठे अद्ध बद्ध कमद्ध । पक्खर राग खोल सनद्ध । छक्के छोभ छुट्टे केस । संघर सूर सिंघन भेस ॥ ५५४ ॥ टुट्टर टीक टुट्टे टोप । भग्गे भूप भंगी धोप । घुम्मे घाइ झूमी भूम । अउझड़ झाड़ धूमं धूम ॥ ५५५ ॥ बज्जे नाद बाद अपार । सज्जे सूर बीर जुझार । जुज्झे टूक टूक ह्वै खेत । मत्ते मद्द जाण अचेत ॥ ५५६ ॥ छुट्टे शस्त्र अस्त्र अनंत । रंगे रंग भूम

युद्ध में योद्धा क्रुद्ध होकर घायल कर रहे हैं और दौड़ रहे हैं ॥ ५४७ ॥ व्योम में अप्सराएँ आकर भर गयी हैं ॥ ५४८ ॥ वीर बाणों को तानकर ज़ोर लगाकर छोड़ रहे हैं ॥ ५४९ ॥ वाद्य बज रहे हैं, वीर गरज रहे है और झूमकर भूमि पर गिर रहे हैं ॥ ५५० ॥ ॥ अनाद छंद ॥ बाणों से आकाश पट गया और वीरों के नयन लाल हो उठे हैं। ढालों की ढकमकाहट सुनाई दे रही है और उठती ज्वालाएँ दिखाई दे रही हैं ॥ ५५१ ॥ रक्त से भीगे शूरवीर झूमकर धरती पर गिर रहे हैं और अप्सराएँ विचरण कर रही हैं। शंख, ताल और भेरियों की आवाज़ों से आकाश भर उठा है ॥ ५५२ ॥ वीरों के कवच फूट चुके हैं और वीर युद्ध में जूझ रहे हैं। योद्धा भिड़ रहे हैं और अप्सराएँ नाच रही हैं तथा धरती पर युद्ध की धूम मच गयी है ॥ ५५३ ॥ युद्ध में कबंध्र उठने लगे और अपने जालीदार कवचों को खोलने लगे। सिंहों के समान वेश वाले वीर क्षोभ से भर उठे हैं और उनके केश भी खुल गये हैं ॥ ५५४ ॥ शिरस्त्राण टूट चुके हैं और राजागण भाग खड़े हुए हैं। वीर घाव खाकर झूमकर गिर रहे हैं और धमाधम करते हुए वीर गिर रहे हैं ॥ ५५५ ॥ वृहद् नगाड़े बज उठे हैं और सुसज्जित वीर दिखाई पड़ रहे हैं। वे खंड-खंड होकर युद्ध में मर रहे हैं और युद्ध के रंग में होकर अचेत हो रहे हैं ५५६

दुरंत । खुल्ले अंध धुंध हथियार । बक्के सूर बीर बिकार ।।५५७।। बिथुरी लुत्थ जुत्थ अनेक । मच्चे कोटि भग्गे एक । हस्से भूत प्रेत मसाण । जुज्झे जुज्झ शुज्झ क्रिपाण ।। ५५८ ।। ।। बहड़ा छंद ।। अधिक रोस कर राज पखरिआ धावही । राम राम बिनु शंक पुकारत आवही । रुज्झ जुज्झ झड़ पड़त भयानक भूम पर । रामचंद्र के हाथ गए भवसिंध तर ।। ५५९ ।। सिमट साँग संग्रहै समुह हुइ जूझही । टूक टूक हुइ गिरत न घर कह बूझही । खंड खंड हुइ गिरत खंड धन खंड रन । तनक तनक लग जाँहि असन की धार तन ।।५६०।। ।। संगीत बहुड़ा छंद ।। सागड़दी साँग संग्रहै तागड़दी रण तुरी नचावहि । झागड़दी झूम गिर भूमि सागड़दी सुरपुरहि सिधावहि । आगड़दी अंग हुइ भंग आगड़दी आहव महि डिगही । हो बागड़दी बीर बिकार सागड़दी स्रोणत तन भिगही ।। ५६१ ।। रागड़दी रोस रिप राज लागड़दी लछमण पै धायो । कागड़दी क्रोध तन कुड़्यो पागड़दी हुइ पवन सिधायो । आगड़दी अनुज उर तात घागड़दी गहि घाइ प्रहार्यो । झागड़दी झूमि भूअ गिर्यो सागड़दी सुत बैर

अनंत अस्त्र-शस्त्र छूट रहे हैं और दूर-दूर तक भूमि रक्त से रँग गयी है। अंधाधुंध शस्त्र चल रहे हैं और विकराल वीर प्रलाप कर रहे हैं ।। ५५७ ।। लाशों के झुंड बिखर रहे हैं; एक ओर भीषण युद्ध में सैनिक संलग्न है और दूसरी ओर सैनिक भाग रहे हैं । भूत-प्रेत श्मशानों में हँस रहे हैं और इधर कृपाणों के वार खाकर योद्धा जूझ रहे हैं ।। ५५८ ।। ।। बहडा छंद ।। कवचधारी असुर वीर क्रोधित होकर आगे बढ़ते हैं, परन्तु राम की सेना में पहुँचते ही राममय हो जाते हैं और राम-राम पुकारने लग जाते हैं। वे युद्ध करते हुए भयानक रूप से भूमि पर गिर पड़ते हैं और रामचन्द्र के हाथों भवसागर पार कर जाते हैं ।। ५५९ ।। पलटकर भाला पकड़कर फिर सामने आकर वीर जूझ रहे हैं और टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ते हैं। तलवारों की तनिक-सी धार लग जाने पर भी वीर खंड-खंड होकर गिर पड़ते हैं ।। ५६० ।। ।। संगीत बहुड़ा छंद ।। भालों को पकड़कर वीर उन्हें युद्ध में नचा रहे हैं और झूमकर भूमि पर गिरते हुए देवलोक सिधार रहे हैं । अंग-भंग होकर युद्धस्थल में वीर गिर रहे हैं और उनके विकराल शरीर रक्त से भीग रहे हैं ।। ५६१ ।। रिपुराज रावण क्रोधित होकर लक्ष्मण पर टूट पड़ा और पवन-वेग से अत्यन्त क्रोधित होकर उसकी ओर चला लक्ष्मण के हृदय पर उसने घाव कर दिया और इस प्रकार अपने

उतार्यो ।। ५६२ ।। चागड़दी चिक चाँवडी डागड़दी डाकण डकारी । भागड़दी भूत भर हरे रागड़दी रण रोस प्रजारी । मागड़दी मूरछा भयो लागड़दी लछमण रण जुझ्यो । जागड़दी जाण जुझि गयो रागड़दी रघुपत इम बुझ्यो ।।५६३।। (मू०ग्रं०२३२)

।। इति स्री बचित्र नाटकै रामवतार लछमन मूरछना भवेत धिआइ समापतम ।।

।। संगीत बहड़ा छंद ।। कागड़दी कटक कपि भज्यो लागड़दी लछमण जुज्झ्यो जब । रागड़दी राम रिस भर्यो सागड़दी गहि अस्त्र शस्त्र सभ । धागड़दी धउल धड़ हड़्यो कागड़दी कोड़ंम कड़क्क्यो । भागड़दी भूँमि भड़हदी पागड़दी जन पलै पलट्ट्यो ।। ५६४ ।। ।। अरध नराज छंद ।। कढी सु तेग दुव्धरं । अनूप रूप सुब्भरं । भकार भेर भें करं । बकार बंदणो बरं ।। ५६५ ।। बचित्र चित्रतं सरं । तजंत तीखणो नरं । परंत जूझत भटं । जणंकि सावणं घटं ।।५६६।। घुमंत अघ ओघयं । बदंत बक्त्र तेजयं । चलंत त्यागते तनं । भणंत देवता धनं ।। ५६७ ।। छुटंत तीर तीखणं । बजंत भेर

पुत्र के वध का बदला लेते हुए उसने लक्ष्मण को गिरा दिया ।। ५६२ ।। चीलें चीत्कार करने लगीं और डाकिनियाँ डकारने लगीं । इस क्रोधाग्नि में जलते हुए रणस्थल में भूत आदि प्रसन्न हो उठे । लक्ष्मण रण में जूझते हुए मूर्च्छित हो गया और रघुपति राम उसे मृतक समझकर निस्तेज हो गये ।। ५६३ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार में लक्ष्मण-मूर्च्छना अध्याय समाप्त ।।

।। संगीत बहड़ा छंद ।। लक्ष्मण के गिरते ही कपि-सेना भाग खड़ी हुई और अस्त्र-शस्त्रों को हाथ में पकड़कर राम अत्यन्त क्रोधित हो उठे । राम के शस्त्रों की कड़कड़ाहट से धरती का आश्रय वृषभ काँप उठा और भूमि इस प्रकार थरथरा उठी मानो प्रलय आ गया ।। ५६४ ।। ।। अर्द्ध नराज छंद ।। दो धार वाली कृपाणें निकल पड़ीं और श्रीराम शोभायमान होने लगे । भेरियों की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी और बन्दीगण चिल्लाने लगे ।। ५६५ ।। विचित्र दृश्य बन गया और मानव तथा वानर-सेना तीखे नाखूनों से इस प्रकार असुर वीरों पर टूट पड़े जैसे सावन की घटा उमड़ रही हो ।। ५६६ ।। चारों ओर पाप को नाश करने के लिए वीर घूम रहे हैं और एक दूसरे को ललकार रहे हैं । शूरवीर शरीर का त्याग कर रहे हैं और देवतागण धन्य धन्य का उच्चारण कर रहे हैं ५६७

भीखणं। उठंत गद्द मद्दणं। समत्त जाण मद्दणं ॥५६८॥ करंत चाचरो चरं। नचंत निरतणो हरं। धुअंत पारबती सिरं। हसंत प्रेतणी फिरं ॥ ५६९ ॥ ॥ अनूप निराज छंद ॥ डकंत डाकणी डुलं। भ्रमंत बाज कुंडलं। रड़ंत बंदिणो कितं। बदंत मागधो जयं ॥ ५७० ॥ ढलंत ढाल उड्ढलं। खिमंत तेग निरमलं। चलंत राजवं सरं। पपात उरविअं नरं ॥ ५७१ ॥ भजंत आसुरी सुतं। किलंक बानरी पुतं। बजंत तीर तुप्पकं। उठंत दारुणो सुरं ॥ ५७२ ॥ भभक्क भूत भै करं। चचक्क चउदणो चकं। ततक्ख पक्खरं तुरे। बजे निनद्द सिंधुरे ॥ ५७३ ॥ उठंत भै करी सुरं। मचंत जो धणो जुधं। खिमंत उज्जलीअसं। बबरख तीखणो सरं ॥ ५७४ ॥ ॥ संगीत भुजंग प्रयात छंद ॥ जागड़दंग जुज्झयो भागड़दंग भ्रातं। रागड़दंग रामं तागड़दंग तातं। बागड़दंग बाणं छागड़दंग छोरे। आगड़दंग आकाश ते जान ओरे ॥ ५७५ ॥ बागड़दंग बाजी रथी बाण काटे। गागड़दंग गाजी गजो बीर डाटे। मागड़दंग मारे सागड़दंग सूरं।

तीखे बाण चल रहे हैं और भीषण भेरियाँ बज रही हैं तथा चारों ओर से मदमस्त करनेवाली आवाज़ सुनाई पड़ रही है ॥ ५६८ ॥ शिव व उनके गण नृत्य करते हुए दिखाई दे रहे हैं और ऐसा लग रहा है मानो प्रेतनियाँ हँसती हुई पार्वती के समक्ष शीश झुका रही हैं ॥ ५६९ ॥ ॥ अनूप निराज छंद ॥ डाकिनियाँ घूम रही हैं और अश्व चक्राकार दृश्य बनाते हुए भ्रमण कर रहे हैं। वीर बन्दी बनाये जा रहे हैं और जय-जयकार कर रहे हैं ॥ ५७० ॥ ढालों पर तलवारों के वार पड़ रहे हैं और राजाओं के चलते हुए तीरों से नर एवं वानर धरती पर गिर रहे हैं ॥ ५७१ ॥ (दूसरी ओर) वानर किलकारियाँ मार रहे हैं, जिससे असुर भाग रहे हैं। तीरों एवं अन्य शस्त्रों के ध्वनि से कोलाहलपूर्ण दारुण स्वर उठ रहा है ॥ ५७२ ॥ भूतगण भयभीत और आश्चर्यचकित हो रहे हैं तथा युद्धस्थल में कवचधारी घोड़े और चिंघाड़ते हुए हाथी चल रहे हैं ॥ ५७३ ॥ सुरगण भी योद्धाओं के भीषण युद्ध को देखकर भयभीत हो रहे हैं। श्वेत कृपाणों और तीक्ष्ण बाणों की वर्षा हो रही है ॥ ५७४ ॥ ॥ संगीत भुजंग प्रयात छंद ॥ भ्राता लक्ष्मण को जूझते हुए भाई राम ने देखा और उन्होंने आकाश को छूनेवाले बाण छोड़े ५७५ रथी और अश्वारोहियों को इन बाणों ने काट डाला,

बागड़दंग ब्याहैं हागड़दंग हूरं ।। ५७६ ।। जागड़दंग जीता खागड़दंग खेतं । भागड़दंग भागे कागड़दंग केतं । सागड़दंग सूरानु जुआन पेखा । पागड़दंग प्रानान ले प्रान लेखा ।।५७७।। जागड़दंग खित्तं परागड़दंग प्राजी । सागड़दंग सैना लागड़दंग (पृ०ग्रं०२३३) लाजी । सागड़दंग सुग्रीव ते आदि लैके । कागड़दंग कोपे तागड़दंग तैके ।। ५७८ ।। हागड़दंग हनू कागड़दंग कोपा । बागड़दंग बीरा नमो पाव रोपा । सागड़दंग सूरं हागड़दंग हारे । तागड़दंग तंके हनू तउ पुकारे ।। ५७९ ।। सागड़दंग सुनहो रागड़दंग रामं । दागड़दंग दीजे पागड़दंग पानं । पागड़दंग पीठं ठागड़दंग ठोको । हरो आज पानं सुरं मोह लोको ।। ५८० ।। आगड़दंग ऐसे कह्यो अउ उडानो । गागड़दंग गैनं मिल्यो मद्ध मानो । रागड़दंग रामं आगड़दंग आसं । बागड़दंग बैठे नागड़दंग निरासं ।।५८१।। आगड़दंग आगे कागड़दंग कोऊ । मागड़दंग मारे सागड़दंग सोऊ । नागड़दंग नाकी तागड़दंग तालं । मागड़दंग मारे बागड़दंग बिसालं ।। ५८२ ।। आगड़दंग एकं बागड़दंग बानो । चागड़दंग चीरा दागड़दंग दुरानो । बागड़दंग बेखी बागड़दंग

परन्तु फिर भी शूरवीर युद्ध में डटे रहे। राम ने शूरवीर को मार डाला और अप्सराओं ने इन शूरवीरों का वरण कर लिया ।। ५७६ ।। इस प्रकार युद्ध जीत लिया और इस युद्ध में कितने ही वीर भाग खड़े हुए। जहाँ भी शूरवीरों ने एक-दूसरे को देखा तो प्राण देकर ही उन्होंने हिसाब चुकता किया ।। ५७७ ।। पराजय का स्मरण कर सेना लज्जित हो उठी। सुग्रीव आदि भी अत्यन्त क्रोधित हो उठे ।। ५७८ ।। हनुमान भी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने युद्धस्थल में अपना पाँव जमा दिया। उनसे लड़ते हुए सभी हार गये और इसीलिए हनुमान को सबका हनन करने वाला कहा जाता है ।। ५७९ ।। हनुमान ने राम से कहा कि आप अपना हाथ मेरी ओर करके मेरी पीठ पर आशीर्वाद दीजिए और मैं आज सारे सुरलोकों का हरण कर ले आऊँगा ।। ५८० ।। इतना कहकर हनुमान उड़ चले और ऐसा लगा जैसे वे आकाश के साथ मिलकर एक हो गए। रामचन्द्र आशा को मन में बसाते हुए निराश से होकर बैठ गये ।। ५८१ ।। हनुमान के सामने जो भी आया, उन्होंने उसे मार डाला और वे इस प्रकार मारते हुए एक सरोवर के किनारे पहुँचे ।। ५८२ ।। वहाँ एक भयानक वेष वाला राक्षस छिपा हुआ था और वहीं पर हनुमान ने एक के

बूटी । आगड़दंग है एक ते एक जूटी ॥ ५८३ ॥ चागड़दंग चउका हागड़दंग हनवंता । जागड़दंग जोधा महाँ तेज मंता । आगड़दंग उखारा पागड़दंग पहारं । आगड़दंग लै अउखधी को सिधारं ॥ ५८४ ॥ आगड़दंग आए जहा राम खेतं । बागड़दंग बीरं जहाँ ते अचेतं । बागड़दंग बिसल्ल्या मागड़दंग मुक्खं । डागड़दंग डारी सागड़दंग सुक्खं ॥ ५८५ ॥ जागड़दंग जागे सागड़दंग सूरं । घागड़दंग घुम्मी हागड़दंग हूरं । छागड़दंग छूटे नागड़दंग नादं । बागड़दंग बाजे नागड़दंग नादं ॥ ५८६ ॥ तागड़दंग तीरं छागड़दंग छूटे । गागड़दंग गाजी जागड़दंग जूटे । खागड़दंग खेतं सागड़दंग सोए । पागड़दंग ते पाक शाहीद होए ॥ ५८७ ॥ ॥ कलस ॥ मच्चे सूरबीर बिकारं । नच्चे भूत प्रेत बैतारं । झमझम लसट कोटि करवारं । झलहलंत उज्जल अस धारं ॥ ५८८ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ उज्जल अस धारं लसत अपारं करण लुझारं छबि धारं । सोभित जिमु आरं अत छबि धारं सु बिध सुधारं अर गारं । जैपत्रं दाती मदिणं माती स्रोणं राती जै करणं । दुज्जन दल हंती अछल जयंती किलबिख (मू०ग्रं०२३४) हंती भै हरणं ॥ ५८९ ॥ ॥ कलस ॥ अरहुरंत

साथ एक जुड़ी हुई अनेक बूटियाँ देखीं ॥ ५८३ ॥ महातेजवान योद्धा हनुमान यह देखकर चौंक उठा (और असमंजस में पड़ गया कि कौन सी जड़ी ले जाऊं) । उन्होंने सारा पहाड़ ही उखाड़ लिया और ओषधि को लेकर चल पड़े ॥ ५८४ ॥ पहाड़ लेकर वे उस युद्धस्थल पर पहुँचे जहाँ वीर (लक्ष्मण) अचेत पड़े थे । सुषेन वैद्य ने उनके मुँह में वह जड़ी डाल दी ॥ ५८५ ॥ शूरवीर अचेतावस्था से जग पड़े और अप्सराएँ विचरण करती हुई वापस लौट गईं । युद्धस्थल में चारों ओर वृहद् नगाड़े बज उठे ॥ ५८६ ॥ तीर छूटने लगे और योद्धा फिर आपस में भिड़ने लगे । योद्धा रणस्थल में मृत्यु को प्राप्त कर सच्चे अर्थों में शहीद होने लगे ॥ ५८७ ॥ ॥ कलस ॥ विकराल शूरवीर भिड़ उठे और भूत, प्रेत, बैताल नृत्य करने लगे । अनेकों हाथों से झम-झम की आवाज करते हुए वार होने लगे और कृपाणों की श्वेत धारें झलमलाने लगीं ॥ ५८८ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ कृपाणों की श्वेत धारें सौंदर्य बढ़ाती हुई शोभायमान हो रही हैं । ये कृपाणें शत्रुओं का नाश करनेवाली हैं और आरे के समान दिखाई पड रही हैं ये विजयपत्र देनेवाली रक्त में स्नान करनेवाली

भज्जत रण सूरं। थरहर करत लोह तन पूरं। तड़भड़ बजें तबल अरु तूरं। घुम्मी पेख सुभट रन हूरं ॥ ५९० ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ घुंमी रण हूरं नभ झड़ पूरं लख लख सूरं मन मोही। आरुण तन बाणं छब अप्रमाणं अणिदुत खाणं तन सोही। काछनी सुरंगं छबि अंग अंगं लजत अनंगं लख रूपं। साइक भ्रिग हरणी कुमत प्रजरणी बरबर बरणी बुध कूपं ॥ ५९१ ॥ ॥ कलस ॥ कमल बदन साइक म्रिग नणी। रूप रास सुंदर पिक बैणी। म्रिगपत कट छाजत गज गैणी। नैन कटाछ मनहि हर लैणी ॥ ५९२ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ सुंदर म्रिगनैणी सुर पिकबैणी चित हर लैणी गज गैणं। माधुर बिधि बदनी सुबुद्धिन सदनी कुमतिन कदनी छबि मैणं। अंगका सुरंगी नटवर रंगी झांझ उतंगी पग धारं। बेसर गजरारं पहूच अपारं कचि घुंघरारं आहारं ॥ ५९३ ॥

दुर्जनों के दल का हनन करनेवाली तथा सभी विषय-विकारों का नाश कर शत्रु को भयभीत करनेवाली हैं ॥ ५८९ ॥ ॥ कलस ॥ खलबली मच गई, योद्धा भागने लगे और कवच धारण किए हुए उनके शरीर थरथराने लगे। युद्ध में तड़ातड़ नगाड़े बजने लगे और बलशाली वीरों को देखकर अप्सराएँ पुन: उनकी ओर बढ़ चलीं ॥ ५९० ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ आकाश से अप्सराएँ मुड़कर वीरों की ओर चली और उनके मन को मोहित करने लगीं। उनके शरीर रक्त लगे बाणों के समान लाल थे और उनकी छवि अद्वितीय थी। सुरम्य करधनियाँ धारण की हुई इन अप्सराओं के सौंदर्य को देखकर कामदेव भी लजा रहा था और ये धनुषाकार नेत्रों वाली, कुमति का नाश करनेवाली और बरबस वरण करनेवाली, बुद्धिमती अप्सराएँ थीं ॥ ५९१ ॥ ॥ कलस ॥ इनके मुख कमल के समान, नयन मृग के समान और वाणी कोयल के समान थी। ये रूप-रस की राशि अप्सराएँ गज के समान गमन करनेवाली, सिंह के समान पतली कमर वाली और अपने नयनों के कटाक्ष से मन को हरनेवाली थीं ॥ ५९२ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ वे सुन्दर नयनों वाली, कोयल के समान मधुर स्वर वाली और गजगामिनी के समान चित्त को हर लेनेवाली हैं। माधुर्यंयुक्त उनका मुख और कामदेव की छवि के समान सुन्दर वे सुबुद्धि का भण्डार और कुमति का खण्डन करनेवाली सुरम्य अंगों वाली और एक ओर झुककर ख- ेनेवाली पैरो मे पायल पहने हुए नाक में हाथीदाँत का गहना और घुंघराले केश धारण किए हुए वे सर्वत्र रमण करनेवाली हैं ५९३

॥ कलस ॥ चिबक चार सुंदर छबि धारं। ठउर ठउर मुकतन के हारं। कर कंगन पहुची उजिआरं। निरख मदन दुत होत सु मारं ॥ ५९४ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ सोभित छबि धारं कच घुंघरारं रसन रसारं उजिआरं। पहुंची गजरारं सुबिध सुधारं मुकत निहारं उर धारं। सोहत चख चारं रंग रँगारं बिबिधि प्रकारं अति आँजे। बिखधर म्रिग जैसे जल जन वैसे ससिअर जैसे सर माँजे ॥ ५९५ ॥ ॥ कलस ॥ भयो मूड़ रावण रण क्रुद्धं। मच्यो आन तुम्मल जब जुद्धं। जूझे सकल सूरमाँ सुद्धं। अर दल मद्धि शबद कर उद्धं ॥ ५९६ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ धायो कर क्रुद्धं सुभट बिरुद्धं गलित सुबुद्धं गहि बाणं। कीनो रण सुद्धं नच्चत कबुद्धं अत धुन उद्धं धनु ताणं। धाए रजवारे दुद्धर हकारे सु ब्रण प्रहारे कर कोपं। घाइन तन रज्जे दु पग न भज्जे जनु हर गज्जे पग रोपं ॥ ५९७ ॥ ॥ कलस ॥ अधिक रोस सावत रन जूटे। बखतर टोप जिरें

॥ कलस ॥ सुन्दर गाल और अनुपम छवि वाली अप्सराओं के अंग-अंग पर मोतियों की मालाएँ पड़ी हुई हैं। उनके हाथों के कंगन उजाला कर रहे हैं और इस प्रभा को देखकर कामदेव की छवि भी धूमिल हो रही है ॥ ५९४ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ काली केशराशि और मीठी वाणी के साथ ये शोभायमान हो रही हैं और मुक्त रूप से विचरण करती हुई ये हाथियों की धकापेल में घूम रही हैं। नेत्रों में काजल डालकर वे विविध प्रकार के रंगों से रँगी हुई सुन्दर नयनों वाली शोभायमान हो रही हैं तथा इस प्रकार उनकी आँखें विषधरों के समान वार करनेवाली परन्तु मृग के समान भोली-भाली और कमल तथा चन्द्रमा के समान सौंदर्यशालिनी हैं ॥ ५९५ ॥ ॥ कलस ॥ मूढ़ रावण युद्ध में अत्यन्त क्रोधित हो उठा। जब भयंकर तुमुलनाद के मध्य युद्ध चलने लगा तो सभी शूरवीर जूझने लगे और शत्रुओं के दल में ललकारकर घुसने लगे ॥ ५९६ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ वह दुर्बुद्धि वाला असुर हाथ में बाण लेकर अत्यन्त क्रोधित होकर युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा। उसने भयंकर युद्ध किया और युद्धस्थल में ताने जा रहे धनुषों के बीच कबंध नृत्य करने लगे। राजागण ललकारकर आगे बढ़े और वीरों को घायल करते हुए क्रोधित हो उठे। घाव वीरों के तन पर शोभा दे रहे हैं, परन्तु फिर भी वीर नहीं भाग रहे हैं और मेघ के समान गर्जन करते हुए रणस्थल में पाँव जमाकर रण कर रहे हैं ॥ ५९७ ॥

कलस और अधिक रोष बढ़ने से वीर आपस मे जूझ गये और कवच

सभ फूटे। निसर चले साइक जन छूटे। जनिक सिचान मास लख टूटे॥ ५९८॥ ॥ त्रिभंगी छंद॥ साइक जणु छूटे तिम अरि जूटे बखतर फूटे जेब जिरे। समहर मुखि आए तिम्रु अरि धाए (मू०ग्रं०२३५) शस्त्र नचाइन फेरि फिरें। सनमुखि रण गाजैं किमहूँ न भाजैं लख सुर लाजैं रण रंगं। जैजै धुन करही पुहपन डरही सु बिधि उचरही जै जंगं॥५९९॥ ॥ कलस॥ मुख तंबोर अरु रंग सुरंगं। निडर भ्रमंत भूँमि उह जंगं। लिपत मलै घनसार सुरंगं। रूप भान गतिबान उतंगं॥ ६००॥ ॥ त्रिभंगी छंद॥ तन सुभत सुरंगं छबि अंग अंगं लजत अनंगं लख नैणं। सोभित कचकारे अत घुंघरारे रसन रसारे म्रिद बैणं। मुखि छकत सुबासं दिनस प्रकासं जनु सस भासं तस सोभं। रीझत चख चारं सुरपुर प्यारं देव बिवारं लखि लोभं॥ ६०१॥ ॥ कलसि॥ चंद्रहास

तथा शिरस्त्राण टूटने लगे। धनुष से बाण छूटने लगे और शत्रुओं के शरीर से मांस के टुकड़े कट-कटकर गिरने लगे॥ ५९८॥ ॥ त्रिभंगी छंद॥ जैसे ही तीर छूटते हैं, शत्रु और अधिक संख्या में एकत्रित होकर टूटे-फूटे कवचों के साथ भी लड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। वे इस प्रकार आगे बढ़ते हैं, जैसे भूखा व्यक्ति इधर-उधर दौड़ता है। वे शस्त्रों को नचाकर इधर-उधर घूम रहे हैं। वे सम्मुख होकर लड़ते हैं, भागते नहीं और उनको युद्ध में मदमस्त देखकर देवता भी लजाते हैं। देवगण भी भीषण युद्ध को देखकर जय-जयकार की ध्वनि करते हुए पुष्प-वर्षा करते हैं और युद्ध की जय-जयकार करते हैं॥ ५९९॥ ॥ कलस॥ रावण के मुख में पान है और उसके शरीर का रंग लाल है। वह निडर होकर युद्धभूमि में विचरण कर रहा है और उसने अपने अंगों पर चंदन का लेप किया हुआ है। वह सूर्य के समान तेजवान है और उत्तम गति से चल रहा है॥ ६००॥ ॥ त्रिभंगी छंद॥ उसके सुरम्य शरीर को और छविमान अंगों को देखकर कामदेव भी लजा रहा है। उसके घुँघराले काले बाल हैं और उसकी बोली भी मधुर है। उसका मुख सुबासित है और ऐसा लग रहा है कि वे मानो सूर्य के समान प्रकाश करनेवाला और शशि के समान शोभा देनेवाला हो। उसको देखकर सभी प्रसन्न हो उठते हैं और देवपुरी के लोग भी उसको देखने का लोभ संवरण नहीं कर पाते॥ ६०१॥ ॥ कलस॥ उसके एक हाथ में चन्द्रहास तलवार थी और दूसरे हाथ में धोप नामक एक अन्य अस्त्र तथा तीसरे हाथ में

एकं करधारी। दुतिय धोपु गहि त्रिती कटारी। चतुर्थ हाथ सैहथी उजिआरी। गोफन गुरज करत चमकारी ॥६०२॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ सतए अस भारी गदहि उभारी त्रिसूल सुधारी छुरकारी। जंबूवा अरबानं सु कसि कमानं चरम अप्रमानं धर भारी। पंद्रए गलोलं पास अमोलं परस अडोलं हथि नालं। बिछुआ पहराथं पटा भ्रमाथं जिम जम धाथं बिकरालं ॥ ६०३ ॥ ॥ कलसि ॥ शिव शिव शिव मुख एक उचारं। दुतिय प्रभा जानकी निहारं। त्रितिय झुंड सभ सुभट पचारं। चतुर्थ करत मार ही मारं ॥ ६०४ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ पचए हनवंतं लख द्रुत मंतं सु बल दुरंतं तजि कलिणं। छठए लखि भ्रातं तकत पपातं लगत न घातं जिय जलिणं। सतए लखि रघुपति कप दल अधमत सुभट बिकट मत जुलभ्रातं। अठिओ सिरि ढोरैं नवमि निहोरैं दसयन बोरैं रिस रातं ॥ ६०५ ॥ ॥ चबोला छंद ॥ धाए महाँ बीर साधे सितं तीर काछे रणं चीर बाना सुहाए। रथाँ करद मरकब

कटार थी। उसके चौथे हाथ में भी तेज चमक वाला सैहथी नामक शस्त्र था। पाँचवें और छठवें हाथ में चमकता हुआ गदा एवं गोफन नामक शस्त्र था ॥ ६०२ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ सातवें हाथ में एक अन्य भारी उभरी हुई गदा तथा अन्य हाथों में त्रिशूल, जम्बूर, बाण, कमान आदि शस्त्र-अस्त्र थे। पन्द्रहवें हाथ में गुलेलनुमा अस्त्र और फरसा नामक शस्त्र थे। हाथों में उसने बघनखे धारण कर रहे थे और वह इस प्रकार विचरण कर रहा था मानो विकराल यमराज जा रहा हो ॥ ६०३ ॥ ॥ कलस ॥ वह एक मुख से शिव-शिव का जाप कर रहा था, दूसरे से सीता के सौंदर्य को निहार रहा था, तीसरे से अपने सुभटों को देख रहा था तथा चौथे से मारो-मारो पुकार रहा था ॥ ६०४ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ पाँचवें से हनुमान को देखकर द्रुत वेग से मंत्र का जाप कर रहा है और उसके बल को खींचने का प्रयत्न कर रहा है। छठवें शिर से गिरे हुए भाई कुम्भकर्ण को देख रहा है और उसका हृदय जल रहा है। सातवें सिर से वह राम और कपिदल तथा अन्य विकट बलशालियों को देख रहा है। आठवें सिर को वह हिला रहा है, नवें सिर से सर्वेक्षण कर रहा है तथा दसवें सिर से वह अत्यन्त क्रोधित हो रहा है ॥ ६०५ ॥ ॥ चबोला छंद ॥ श्वेत बाणों को साधते हुए बलशाली वीर चले और उनके शरीर पर सुन्दर वस्त्र शो हो रहे हैं उनके घोड़े भी बहुत ही तीव्रगामी और युद्ध में

थलो तेज इम सम चूं तुंद अजद होउ मिआ जंगाहे । भिड़े आइ ईहाँ बुले बैण कीहाँ करें घाइ जीहाँ भिड़े भेड़ भज्जे । दियो पोसताने भछो रावड़ीने कहाँ छैअणो रोधणोने निहारें ॥६०६॥ गाजे महा सूर घुमी रणं हूर भरमी नभं पूर बेखं अनूपं । वले वल्ल साई जीवो जुगाँ ताई तैंडे घोली जाई अलावीत ऐसे । लगो लार थानें वरो राज माने कहो अउर काने मुठी छाड थेसो । वरो आन मोकां भजो (मू०ग्रं०२३६) आन तोको चलो देव लोको तजो बेग लंका ॥ ६०७ ॥ ॥ स्वैया ॥ अनंत तुका ॥ रोस भर्यो तज होश निसाचर स्री रघुराज को घाइ प्रहारे। जोश बडो कर कउशलिहं अध बीच ही ते सर काट उतारे। फेर बडो कर रोस दिवारदन धाइ परैं कपि पुंज सँघारैं। पट्टस लोह हथी पर संगड़ीए जंबुवे जमदाड़ चलावै ॥ ६०८ ॥ ॥ चबोला स्वैया ॥ स्री रघुराज सरासन लै रिस ठान घनी रन बान प्रहारे । बीरन मार दुसार गए सर अंबर ते बरसे जन ओरे । बाज गजी रथ साज गिरे धर पत्र अनेक सु कउन गनावैं । फागन पउन प्रचंड बहे बन पत्रन ते जन पत्र

पूर्ण शीघ्रता दिखा रहे हैं । वे कभी इस ओर भिड़ते हैं, कभी उस ओर जा ललकारते हैं और जहाँ भी वे वार करते हैं, शत्रु भाग खड़े होते है। वे ऐसे लगते हैं, मानो कोई भाँग खाकर मदमस्त होकर इधर-उधर घूम रहा हो ॥ ६०६ ॥ शूरवीर गरजने लगे और आकाश में इस अनुपम युद्ध को देखने के लिए अप्सराएँ विचरण करने लगीं । वे दुआएँ देने लगीं कि ये भीषण युद्ध करनेवाले योद्धा युगों-युगों तक जिएँ और राज्य का भोग दृढ़पूर्वक करें । ओ योद्धाओ ! इस लंका को छोड़ो और आकर हम लोगों का वरण करने के लिए स्वर्गलोक को चलो ॥ ६०७ ॥ ॥ सवैया ॥ अनन्त तुक वाला ॥ रावण होश को त्यागते हुए अत्यन्त क्रोधित हो उठा और उसने श्री रघुराज रामचन्द्र पर प्रहार किया । इधर श्री रामचन्द्र भी उसके बाणों को आधे रास्ते में ही काट डाला । पुनः उसने क्रोधित होकर वानर-सेना के समूह का नाश प्रारम्भ कर दिया और विभिन्न प्रकार के विकराल अस्त्रों को चलाना शुरू कर दिया ॥ ६०८ ॥ ॥ चबोला सवैया ॥ रामचन्द्र ने धनुष हाथ में लेकर क्रुद्ध हो[illegible] बहुत से बाण छोड़े जो वीरों को मारते हुए दूसरी ओर निकलकर पु[illegible]आकाश से बरसने लगे । युद्धस्थल में हाथी, घोड़े, रथ अगणित सं[illegible] गिर पड़े और ये सब ऐसे लगने लगे जैसे फागुन मास में प्रचण्ड पव[illegible]से पत्ते

उडाने ।। ६०६ ।। ।। स्वैया छंद ।। रोस भर्यो रन मो रघुनाथ सु रावन को बहु बान प्रहारे । स्रोणत नेक लग्यो तिन के तन फोर गिरे तन पार पधारे । बाज गजी रथ राज रथी रणभूमि गिरे इह भाँति सँघारे । जानो बसंत के अंत समं कदली दल पउन प्रचंड उखारे ।। ६१० ।। धाइ परे कर कोप बनेचर है तिनके जिय रोस जग्यो । किलकार पुकार परे चहुँ धारण छाडि हठी नहि एक भग्यो । गहि बान कमान गदा बरछी उत ले दल रावन को उमग्यो । भट जूझि अरूझि गिरे धरणी द्विजराज भ्रम्यो शिव ध्यान डिग्यो ।। ६११ ।। जूझि अरूझि गिरे भटवा तन धाइन धाइ घने भिभराने । जंबुक गिद्ध पिसाच निसाचर फूल फिरे रन मो रहमाने । काँप उठी सु दिशा बिदिशा दिगपालन फेर प्रलै अनुमाने । भूमि अकाश उदास भए गन देव अदेव भ्रमे भहराने ।। ६१२ ।। रावन रोस भर्यो रन मो रिस सो सर ओघ प्रओघ प्रहारे । भूमि अकाश दिशा बिदिशा सभ ओर रुके नहि जात निहारे । स्री रघुराज

उडते हुए दिखाई पड़ते हैं ।। ६०९ ।। ।। सवैया छंद ।। श्रीरामचन्द्र ने क्रोधित होकर रावण पर बहुत से बाण चलाये और वे बाण थोड़ा-सा रक्त से रँगे हुए शरीर को फाड़कर दूसरी ओर निकल गये । युद्धस्थल में हाथी, घोड़े, रथ और रथी कटकर गिर पड़े जैसे बसन्त के अन्त में प्रचण्ड पवन केले के पेड़ों को उखाड़ फेंकती है ।। ६१० ।। वानर-सेना भी हृदय में क्रुद्ध होकर टूट पड़ी और किलकारियाँ मारती हुई अपने स्थान से बिलकुल न हटते हुए चारों ओर से उमड़ पड़ी । दूसरी ओर से बाण, कमान, गदा, बरछी आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर रावण का दल भी उमड़ पड़ा और योद्धा इस प्रकार एक-दूसरे से भिड़कर गिरने लगे कि चन्द्रमा भी चलते-चलते भ्रम में पड़ गया और शिव की समाधि भी टूट गयी ।। ६११ ।। तन पर घाव खाकर शूरवीर घूम-घूमकर गिरने लगे और गीदड़, गिद्ध, पिशाच, निशाचर आदि मन में प्रसन्न हो उठे । भीषण युद्ध को देखकर सारी दिशाएँ काँप उठीं और दिग्पालों ने प्रलय होने का अनुमान लगाना शुरू कर दिया । भूमि और आकाश उदास हो गये तथा युद्ध की भीषणता को देखकर देवता तथा राक्षस सभी घबरा उठे ।। ६१२ ।। रावण ने मन में क्रोधित होकर झुण्ड रूप में बाण चलाने प्रारम्भ किए और उसके बाणों से भूमि, आकाश और सभी दिशाएँ पट गयीं । इधर श्री रामचन्द्र ने भी क्षण भर में क्रुद्ध होकर उन सारे तीर समूहों का नाश कर दिया और जो तीरों के

सरासन लै छिन मो छुभ कै सर पुंज निवारे। जानक भान उदै निस कउ लखि कै सभ ही तप तेज पधारे॥ ६१३॥ रोस भरे रन मो रघुनाथ कमान लै बान अनेक चलाए। बाज बजी गजराज घने रथ राज बने रसि रोस उडाए। जे दुख देह कटे सिय के हित ते रन आज प्रतक्ख दिखाए। राजिव-लोचन राम कुमार घनो रन घाल घनो घर घाए॥६१४॥ रावन रोस भर्‌यो गरज्यो रन मो लहिकै सभ सैन (मू०ग्रं०२३७) भजान्यो। आप ही हाक हथ्यार हठी गहि स्री रघुनंदन सो रण ठान्यो। चाबक मोर कुदाइ तुरगन आइ पर्‌यो कछु त्रास न मान्यो। बानन ले बिधु बाहन ते मन मारत को रथ छोरि सिधान्यो॥ ६१५॥ स्री रघुनदन की भुज ते जब छोर सरासन बान उडाने। भूँमि अकाश पतार चहूँ चक पूर रहे नही जात पछाने। तीर सनाह सुबाहन के तन आह करी नही पार पराने। छेद करोटन ओटन कोट अटानमो जानकी बान पछाने॥ ६१६॥ स्री असुरारदन के कर को जिन एक ही बान बिखै तन चाख्यो। भाज सक्यो न भिर्‌यो हठ कै भट एक ही घाइ धरा पर राख्यो। छेद सनाह सुबाहन को सर

कारण अँधेरा छा गया था, पुनः सूर्य के निकलने से चारों ओर प्रकाश-ही-प्रकाश हो गया॥ ६१३॥ रोष से भरे हुए श्रीराम ने अनेकों बाण चलाये और हाथी, घोड़ों और रथियों को उड़ा दिया। जिस प्रकार भी सीता का कष्ट दूर होकर उसे स्वतन्त्र कराया जा सकता था, वे सब कार्य आज श्रीराम ने प्रत्यक्ष करके दिखाये और कमल के समान नयनों वाले श्रीराम ने भीषण युद्ध करके अनेकों घरों को खाली कर दिया॥ ६१४॥ रावण क्रोधित होकर गरजा और सेना को दौड़ाकर, ललकार कर तथा हाथों में शस्त्र धारण कर सीधा श्रीराम से आ भिड़ा। वह चाबुक मारकर तथा अभय होकर अश्वों को कुदाने लगा। बाणों से रामचन्द्र जी को मारने के लिए वह रथ छोड़कर आगे बढ़ा॥ ६१५॥ श्रीराम के हाथों से जब बाण उड़ने लगे तो भूमि, आकाश, पाताल और चारों दिशाओं को पहचानना कठिन हो गया। वे बाण वीरों के कवचों को भेदकर और बिना आह किये उनको मारकर उनके शरीर से पार निकल गये। लोहे के कवचों को छेदते हुए बाण जब गिरे तो जानकी ने यह पहचान लिया कि ये बाण श्रीरामचन्द्र के हैं ६१६ जिसने भी श्रीराम के हाथ का एक बाण खाया, वह शूरवीर न तो वहाँ से भाग सका और न ही युद्ध में पुन भिड़

ओटन कोट करोटन नाख्यो । स्वार जुझार अपार हठी रन हार गिरे धर हाइ न भाख्यो ॥ ६१७ ॥ आन करे सुमरे सभही भट जीत बचे रन छाडि पराने । देव अदेवन के जितिया रन कोट हते कर एक न जाने । स्रो रघुराज प्राक्रम को लख तेज संबूह सभै भहराने । ओटन कूद करोटन फाँध सु लंकहि छाडि बिलंक सिधाने ॥ ६१८ ॥ रावन रोस भर्यो रन मो गहि बीसहूँ बाहि हथ्यार प्रहारे । भूँमि अकाश दिशा बिदिशा चकि चार रुके नही जात निहारे । फोकन तै फल तैं मद्ध तै अध तै बध कै रणमंडल डारे । छत्र धुजा बर बाज रथी रथ काटि सभै रघुराज उतारे ॥ ६१९ ॥ रावन चउप चल्यो चपकै निज बाज बिहीन जबै रथ जान्यो । ढाल त्रिसूल गदा बरछी गहि स्री रघुनंदन सो रन ठान्यो । धाइ पर्यो ललकार हठी कप पुंजन को कछु त्रास न मान्यो । अंगद आदि हनवंत ते लै भट कोट हुते कर एक न जान्यो ॥ ६२० ॥ रावन को रघुराज जबै रणमंडल आवत मद्धि निहार्यो । बीस सिला सित साइक लै करि कोपु बडो उर मद्ध प्रहार्यो । भेद चले

सका, अपितु धराशायी हो गया। श्रीराम के बाण वीरों के कवचों को छेदकर निकलने लगे और महाबली जुझारू वीर बिना हाय तक किये धरती पर गिर पड़े ॥ ६१७ ॥ रावण ने अपने सभी शूरवीरों को बुलाया, परन्तु वे बचे हुए वीर भाग खड़े हुए। देवों और अदेवों को जीतनेवाले रावण ने करोड़ों को मारा, परन्तु युद्धस्थल में इससे कोई अन्तर नहीं पड़ा। श्रीराम के पराक्रम को देखकर सभी तेजस्वी घबरा उठे और क़िलों की दीवारें फाँदकर समुद्र पार भाग गए ॥ ६१८ ॥ क्रोधित होकर रावण ने बीसों भुजाओं से शस्त्र पकड़कर प्रहार किया और उसके वारों से भूमि, आकाश, चारों दिशाएँ अदृश्य हो गयीं। श्रीराम ने रणमंडल में शत्रुओं को ऐसे काटकर फेंक दिया जैसे फल को आसानी से काटकर फेंक दिया जाता है। रावण के छत्र, ध्वज, अश्व और सारथी सभी को श्रीराम ने काटकर फेंक दिया ॥ ६१९ ॥ जब रावण ने अपना रथ अश्वविहीन देखा तो वह शीघ्रता से स्वयं आगे बढ़ा और ढाल, त्रिशूल, गदा, बरछी हाथों में पकड़कर श्रीराम से आ भिड़ा। हठी रावण वानर-सेना का ज़रा-सा भी भय न मानता हुआ तथा ललकारता हुआ आगे बढ़ा। अंगद, हनुमान आदि अनेकों वीर वहाँ थे, परन्तु उसने किसी का भी भय नहीं माना ६२० जब रघुराज ने रावण को युद्ध मे आगे बढ़ते देखा तो शिलाओं जैसे बीस बाण

मरमसथल को सर छोण नदी सर बीच पखार्यो । आगे हूँ रेंग चल्यो हठिकै भट धाम को भूल न नाम उचार्यो ॥ ६२१ ॥ रोस भर्यो रन मो रघुनाथ सु पान के बीच सरासन लै कै । पाँचक पाइ हटाइ दयो तिह बीसहूँ बाँहि बिना ओह कै कै । दै दस बान बिमान दसो सिर काट दए शिवलोक पठै कै । स्री रघुराज बर्यो सिय को बहुरो (मू०ग्रं०२३८) जनु जुद्ध सुयंबर जै कै ॥ ६२२ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके रामवतार दस सिर बधह धिआइ समापतम ॥

अथ मदोदरी समोध बभीछन को लंक राज दीबो ॥
सीता मिलबो कथनं ॥

॥ स्वैया छंद ॥ इंद्र डराकुल थो जिहके डर सूरज चंद्र हुतो भयभीतो । लूट लयो धन जउन धनेश को ब्रहम हुतो चित मोननि चीतो । इंद्र से भूत अनेक लरै इन सो फिरिकै ग्रह जात न जीतो । सो रन आज भलैं रघुराज सु जुद्ध सुयंबर कै सिय जीतो ॥ ६२३ ॥ ॥ अलका छंद ॥ चटपट सैणं खटपट भाजे ।

लेकर राम ने उसकी छाती में प्रहार किया । ये बाण उसके मर्मस्थल का भेदन कर गये और वह रक्त की नदी में नहा गया । रावण गिर गया और रेंग-रेंगकर आगे बढ़ने लगा तथा घर का पता भी भूल गया ॥ ६२१ ॥ रघुनाथ ने क्रोधित होकर हाथ में धनुष लेकर पाँच क़दम पीछे होकर रावण की बीसों भुजाएँ काट डाली । दस बाणों से उसके दस सिर शिवलोक भेजने के लिए काट डाले । (युद्ध के पश्चात्) श्रीराम ने पुनः सीता का ऐसे वरण किया, मानो उसे स्वयंवर से उन्होंने जीता हो ॥ ६२२ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार में दशानन-वध अध्याय समाप्त ॥

मंदोदरी को सम्यक् ज्ञान और विभीषण को लंका का राज्य-
प्रदान-कथन प्रारम्भ ॥ सीता-मिलाप-कथन

॥ सवैया छंद ॥ जिससे इन्द्र, चन्द्र, सूर्य भी घबराते थे, जिसने कुबेर का भंडार भी लूट लिया था और ब्रह्मा जिसके सामने चुप्पी साधे रहता था । इन्द्र जैसे अनेकों भूत इससे लड़ते थे पर इसे जीता नहीं जा सकता था, उसी को आज रण में जीतकर राम ने सीता को स्वयंवर की भाँति जीत लिया ॥ ६२३ ॥ अलका छंद ॥ सेनाएँ शीघ्रता से दौड़ीं

झटपट जुज्झयो लख रण राजे । सरपट भाजे अटपट सूरं । झटपट बिसरी पट घट हूरं ॥ ६२४ ॥ चटपट पैठे खटपट लंकं । रण तज सूरं सरभर बंकं । झलहल बारं नरबर नैणं । धकि धकि उचरे भकि भकि बैणं ॥ ६२५ ॥ नर बर रामं बरनर मारो । झटपट बाहुं कटि कटि डारो । तब सभ भाजे रख रख प्राणं । खटतट मारे झटपट बाणं ॥ ६२६ ॥ खरपट रानी सरपट धाई । रटपट रोवत अटपट आई । चटपट लागी अटपट पाथं । नरहर निरखे रघुबर रायं ॥ ६२७ ॥ चटपट लोटैं अटपट धरणी । कसि कसि रोवैं बरनर बरणी । पटपट डारैं अटपट केसं । बट हरि कूकैं नट बर भेसं ॥ ६२८ ॥ चटपट चीरं अटपट पारैं । धर कर धूमं सरबर डारैं । सरपट लोटैं खटपट भूमं । झटपट झूरैं घरहर घूमं ॥ ६२९ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जबै राम देखै । महा रूप लेखै । रही न्याइ सीसं । सभै नार ईसं ॥ ६३० ॥ लखैं रूप मोही । फिरी राम वोही । दई ताहि लंका । जिमं राज टंका ॥ ६३१ ॥ क्रिपा द्रिष्ट भीने । तरे नेत्र कीने । झरै बार ऐसे । महामेघ

और जूझ गई । शूरवीर सरपट भागने लगे और उन्हें अप्सराओं का विचार विस्मरण हो गया ॥ ६२४ ॥ शूरवीर रण और बाणों को छोड़कर लंका में घुस गये । रामचन्द्र को अपने नेत्रों से देखकर तीव्र प्रलाप करने लगे ॥ ६२५ ॥ नरश्रेष्ठ राम ने सबको मार दिया और सबकी भुजाएँ काट डालीं । तब सभी प्राणों को बचाकर भाग खड़े हुए और भागते हुए वीरों पर राम ने बाण-वर्षा की ॥ ६२६ ॥ सभी रानियाँ रोती हुई शीघ्रता से भागीं और आकर राम के पैरों पर गिर पड़ीं । राम यह सब दृश्य देखने लगे ॥ ६२७ ॥ रानियाँ धरती पर लोटने लगीं और विभिन्न प्रकार विलाप करने लगीं । वे अपने केश एवं वस्त्रों को खींच-खींचकर तरह-तरह से चीखकर रोने लगीं ॥ ६२८ ॥ वे वस्त्र फाड़ने लगीं और धूल सिर पर डालने लगीं । वे दुःख में धरती पर पछाड़ खाकर बिलखने लगीं और लोटने लगीं ॥ ६२९ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जब महा सौन्दर्यशाली राम को सबने देखा तो सिर झुकाकर खड़ी हो गयीं ॥ ६३० ॥ वे राम का स्वरूप देखकर मोहित हो उठीं । चारों ओर राम की चर्चा छिड़ गई और उन सबने राम को लंका वैसे ही दे दी जैसे करदाता राज्य को कर का भुगतान करता है ॥ ६३१ ॥ राम ने कृपादृष्टि से पूरित नेत्रों को झुकाया राम को देखकर लोगों के नेत्रों से खुशी का जल ऐसे बहने

जैसे ।। ६३२ ।। छको पेख नारी । सरं राम मारी । बिधी रूप रामं । महाँ धरम धामं ।। ६३३ ।। तजी नाथ प्रीतं । चुभे राम चीतं । रही चोर नैणं । कहैं मद्ध बैणं ।। ६३४ ।। सिया नाथ नीके । हरें हार जीके । लए जात चित्तं । मनो चोर बित्तं ।। ६३५ ।। सभै पाइ लागो । पतं द्रोह त्यागो । लगी धाइ पायं । सभै नारि आयं ।। ६३६ ।। महा रूप जाने । चितं (मू॰ग्रं॰२२६) चोर माने । चुभे चित्र ऐसे । सितं साइ कैसे ।। ६३७ ।। लगो हेम रूपं । सभै भूप भूपं । रँगे रंग नैणं । छके देव गैणं ।। ६३८ ।। जिनै एक बारं । लखे रावणारं । रही मोहत ह्वैकै । लुभी देख कै कै ।।६३९।। छकी रूप रामं । गए भूल धामं । कर्यो राम बोधं । महाँ जुद्ध जोधं ।।६४०।। ।। राम बाच मदोदरी प्रति ।। ।। रसावल छंद ।। सुनो राज नारी । कहा भूल हमारी । चितं चित्त कीजै । पुनर दोश दीजै ।। ६४१ ।। मिलै मोहि सीता ।

लगा मानो बादलों की धारा बरस रही हो ।। ६३२ ।। काम से मोहित नारियाँ राम को देखकर प्रसन्न हो उठीं और वे सब उस धर्म-धाम राम के स्वरूप में बिंधकर रह गयीं ।। ६३३ ।। वे अपने स्वामियों से प्रीति तोड़कर राम में चित्त लगाने लगीं और एकटक निहारते हुए आपस में बातें करने लगीं ।। ६३४ ।। सीता के स्वामी राम सुन्दर हैं और मन को हरनेवाले है । वे चोर की तरह चित्त को चुराये लिये जा रहे हैं ।। ६३५ ।। रावण की स्त्रियों को कहा गया कि पति के द्रोहभाव को त्यागकर सभी राम के चरण स्पर्श करो । सभी नारियाँ आगे बढ़कर राम के पाँव पड़ गयीं ।। ६३६ ।। महारूप राम ने उनके मन के भाव को पहचान लिया । वे सबके हृदय में चित्र के समान अंकित हो गये और सभी उनका छाया के समान पीछा करने लगे ।। ६३७ ।। राम स्वर्ण-रूप वाले लग रहे थे और सभी राजाओं के राजा लग रहे थे । सबके नयन उनके प्रेम में रँगे थे और देवता भी व्योम से उन्हें देखकर प्रसन्न हो रहे थे ।। ६३८ ।। जिसने एक बार भी राम को देखा वह उन पर मोहित होकर रह गई ।। ६३९ ।। वह राम के सौंदर्य में अपने घर-बाहर की भी सुधि भूल गयी और महाबली राम से वार्त्तालाप करने लगी ।। ६४० ।। ।। राम उवाच मंदोदरी के प्रति ।। ।। रसावल छंद ।। हे राजरानी ! (आपके पति का वध करने में) मेरी कोई भूल नहीं है । आप भली प्रकार चित्त में विचार कीजिए और तब मुझे दोष दीजिएगा ६४१ मुझे मेरी सीता वापस मिल जानी

चलै धरम गीता। पठ्यो पउन पूतं। हुतो अग्र दूतं ॥६४२॥ चल्यो धाइ कै कै। सिया सोध लै कै। हुती बाग माही। तरे ब्रिछ छाही॥ ६४३॥ पर्यो जाइ पायं। सुनो सीय मायं। रिपं राम मारे। खरे तोहि द्वारे॥ ६४४॥ चलो बेग सीता। जहा राम सीता। सभै शत्र मारे। भुअंभार उतारे॥ ६४५॥ चली मोद कै कै। हनू संग लै कै। सिया राम देखे। उही रूप लेखे॥ ६४६॥ लगी आन पाय। लखी राम रायं। कह्यो कउल नैनी। बिधु बाक बैनी॥ ६४७॥ धसो अग्ग मद्धं। तबै होइ सुद्धं। लई मान सीसं। रच्यो पावकीसं॥ ६४८॥ गई पैठ ऐसे। घनं बिज्ज जैसे। स्रुतं जेम गीता। मिली तेम सीता॥ ६४९॥ धसी जाइ कै कै। कढी कुंदन ह्वै कै। गरे राम लाई। कबं क्रित गाई॥ ६५०॥ सभी साध मानी। तिहू लोग

चाहिए, ताकि धर्म का कार्य आगे बढ़े। (इस प्रकार कहते हुए) राम ने पवनपुत्र को अग्रदूत की तरह भेजा॥ ६४२॥ वह सीता को खोजते हुए वहाँ जा पहुँचा जहाँ सीता बाग में वृक्ष के नीचे बैठी थी॥ ६४३॥ हनुमान सीता के चरणों पर गिरते हुए बोले कि हे सीता माता! राम ने शत्रु (रावण) को मार दिया है और अब वे तुम्हारे द्वार पर खड़े हैं॥ ६४४॥ हे सीता माता! आप शीघ्रता से वहाँ चलें जहाँ रामजी हैं। उन्होंने सभी शत्रुओं को मारकर पृथ्वी का भार हलका कर दिया है॥ ६४५॥ सीता प्रसन्न होकर हनुमान को साथ लेकर चल पड़ी। सीता ने राम को देखा और पाया कि राम वैसे ही स्वरूपवान हैं॥ ६४६॥ सीता राम के चरणों में आ गिरी। राम ने उसकी ओर देखा तथा उस कमलनयनी तथा मधुरभाषिणी को इस प्रकार कहा॥ ६४७॥ हे सीता! तुम अग्नि-प्रवेश करो ताकि तुम शुद्ध हो सको। उसने इस बात को मान लिया और अग्नि-चिता तैयार की॥ ६४८॥ वह इस प्रकार अग्नि में प्रविष्ट हो गई जैसे बादल में बिजली दिखाई देती है। सीता इस प्रकार अग्नि के साथ एक हो गई जैसे श्रुतियाँ गीता के साथ एकात्म हैं॥ ६४९॥ वह अग्नि में प्रवेश कर गई और कुंदन की तरह शुद्ध होकर बाहर निकली। राम ने उसे गले से लगा लिया और कवियों ने इस तथ्य का गुणानुवाद किया॥ ६५०॥ सभी साधुओं-संतों ने भी इस प्रकार की अग्नि-परीक्षा को स्वीकार किया और त्रिलोकी के जीव इस तथ्य को मान गये विजय के बाजे बजने लगे और राम भी गर्जन

जानी । बजे जीत बाजे । तबै राम गाजे ॥ ६५१ ॥ लई जीत सीता । महाँ सुभ्र गीता । सभै देव हरखे । नभं पुहप बरखे ॥ ६५२ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके रामवतार बभीछन को लंका को राज दीबो मदोदरी समोध कीबो सीता मिलबो धिआइ समापतम ॥

॥ रसावल छंद ॥ तबै पुहपु पै कै । चड़े सुद्ध जै कै । सभै सूर गाजे । जयं गीत बाजे ॥ ६५३ ॥ चले मोद ह्वैकै । कपी बाहन लैकै । पुरी अउध पेखी । स्रुतं सुरग लेखी ॥ ६५४ ॥ ॥ मकरा छंद ॥ सिय लै सिएश आए । मंगल सु चार गाए । आनंद हिए बढाए । सहरो अवध जहाँ रे ॥ ६५५ ॥ धाई लुगाई आवै । भीरो न बार पावै । आकल खरे उघावै । भाखें ढोलन कहाँ रे ॥६५६॥ (मू०ग्रं०२४०) जुलफैं अनूप जाँकी । नागन कि स्याह बाँकी । अदभुत अदाइ ताँकी ऐसो ढोलन कहाँ है ॥ ६५७ ॥ सरबोस हो चमनरा । पर चुस्त जाँ वतनरा । जिन दिल हरा हमारा वह मनहरन कहाँ है ॥ ६५८ ॥ चित को चुराइ लीना । जालम फिराक

करने लगे ॥ ६५१ ॥ महाशुभ्र गीत के समान पवित्र सीता को जीत लिया गया । सभी देवता प्रसन्न होकर नभ से पुष्पवर्षा करने लगे ॥ ६५२ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार में विभीषण को लंका का राज्य देने, मंदोदरी को सम्यक् ज्ञान देने तथा सीता-मिलन अध्याय की समाप्ति ॥

॥ रसावल छंद ॥ युद्ध में विजयी होकर, तब (राम) पुष्पक (विमान) पर चढ़े । सभी शूरवीर प्रसन्नता से गर्जन करने लगे तथा विजय के बाजे बजने लगे ॥ ६५३ ॥ कपिगण वाहन को लेकर प्रसन्नतापूर्वक चले और उन्होंने स्वर्ग के समान सुन्दर अवधपुरी का दर्शन किया ॥ ६५४ ॥ ॥ मकरा छंद ॥ सीता को लेकर राम आए हैं और नगर में मंगलाचार हो रहा है । अवध शहर के हृदय में आनन्द का वर्धन हो रहा है ॥ ६५५ ॥ औरतें दौड़ी चली आ रही हैं, भीड़ का अन्त नहीं है, सभी व्याकुल खड़े हैं और पूछ रहे हैं कि प्रियतम (राम) कहाँ हैं ॥ ६५६ ॥ जिसकी केशराशि अनुपम है और नागिन की तरह काली है । जिसकी चितवन अद्भुत है, वह प्यारा कहाँ है ॥ ६५७ ॥ बाग़ के समान खिला रहनेवाला और अपने देश का सदैव स्मरण बनाए जिसने हमारा मन चुरा लिया है वह राम कहाँ है ६५८

सीना। जिन दिल हरा हमारा वह गुल चिहर कहाँ है ।।६५९।। कोऊ बताइ दै रे। चाहो सु आन लै रे। जिन दिल हरा हमारा वह मन हरन कहाँ है ।। ६६० ।। माते मनो अमल के। हरिआ कि जा वतन ते। आलम कुशाइ खूबी वह गुल चिहर कहाँ है ।। ६६१ ।। ज़ालम अदाइ लीए। खंजन खिसान कीए। जिन दिल हरा हमारा वह महबदन कहाँ है ।। ६६२ ।। ज़ालम अदाइ लीने। जानुक शराब पीने। रुखसर जहान ताबाँ वह गुलबदन कहाँ है ।। ६६३ ।। ज़ालम जमाल खूबी। रोशन दिमाग अख़तर। पूर चशत जाँ जिगर रा वह गुल चिहर कहाँ है ।। ६६४ ।। बालम बिदेश आए। जीते जुआन ज़ालम। कामल कमाल सूरत वह गुल चिहर कहाँ है ।। ६६५ ।। रोशन जहान खूबी। ज़ाहर कलीम हफ़तज। आलम खुसाइ जिलवा वह गुल चिहर कहाँ है ।। ६६६ ।। जीते बजंग ज़ालम। कीने खतंग परा। पुहपक बिबान बैठे सीता

दिल को चुराकर जिसने हमें विरह दिया, वह फूल से चेहरे वाला मन-हरण कहाँ है ।। ६५९ ।। कोई बता दे और जो चाहे हमसे ले ले, पर यह ज़रूर पता दे दे कि वह मन-हरण राम कहाँ है ।। ६६० ।। अपने पिता की आज्ञा को ऐसे माना जैसे कोई नशा करनेवाला नशा करवानेवाले की हर बात को स्वीकार करता चला जाता है और वह वतन को छोड़कर चला गया। वह सारे संसार का सौंदर्य, गुलाब के चेहरेवाला (राम) कहाँ है ।। ६६१ ।। उसकी ज़ालिम अदाओं से खंजन पक्षी भी ईर्ष्या करते थे। जिसने हमारे चित्त को हर लिया, वह खिले चेहरे वाला (राम) कहाँ है ।। ६६२ ।। उसकी अदाएँ मदमस्त व्यक्ति की अदाएँ थीं। उसके चेहरे की ताबेदारी करनेवाला सारा संसार है। कोई बताए कि वह फूल-से चेहरे वाला कहाँ है ।। ६६३ ।। उसके चेहरे की सौम्यता विशिष्ट थी और वह बुद्धि-चातुर्य से भी पूर्ण था। वह हृदय के प्रेम की शराब से भरे पात्र के समान तथा फूल से चेहरे वाला (राम) कहाँ है ।। ६६४ ।। अत्याचारियों को जीतकर प्रियतम विदेश से आए हैं। वह सर्वकलाओं में पूर्ण फूल के समान चेहरा कहाँ है ।। ६६५ ।। उसकी ख़ूबियाँ सारे जहान में जानी जाती हैं और वह धरती के सातों खंडों में प्रसिद्ध है। जिसका जलवा सारे संसार में फैला हुआ है, वह फूल के चेहरे वाला कहाँ है ।। ६६६ ।। जिसने अपने बाणों के वार से अत्याचारियों को जीता, पुष्पक विमान पर वह सीता के साथ रमण कहाँ है ६६७

रवन कहाँ है ॥ ६६७ ॥ मादर खुसाल खातर । कीने हजार छावर । मातुर सिता वधाई वह गुल चिहर कहाँ है ॥ ६६८ ॥

॥ इति स्री राम अवतार सीता अयुधिआ आगम नाम धिआइ समापतम ॥

अथ माता मिलणं ॥

॥ रसावल छंद ॥ सुने राम आए । सभै लोग धाए । लगे आन पायं । मिले राम रायं ॥ ६६९ ॥ कोऊ चउर ढारैं । कोऊ पान खुआरैं । परे मात पायं । लए कंठ लायं ॥ ६७० ॥ मिलै कंठ रोवैं । मनो शोक धोवैं । करैं बीर बातैं । सुनै सरब मातैं ॥ ६७१ ॥ मिले लच्छ मातं । परे पाइ भ्रातं । कर्यो दान एतो । गनै कउन केतो ॥६७२॥ मिले भरथ मातं । कही सरब बातं । धनं मात तो को । अरिणो कीन मोको ॥ ६७३ ॥ कहा दोश तेरै । लिखी (मू०ग्रं०२४१) लेख मेरै । हुनी हो सु होई । कहै कउन

जिसने माँ को खुश करने के लिए हजारों खुशियाँ न्योछावर कर दीं, वह कहाँ है । माँ सीता को भी आज वधाई है, परन्तु कोई यह तो बताए कि वह फूल से चेहरे वाला कहाँ है ॥ ६६८ ॥

॥ इति श्री रामावतार-सीता का अयोध्या-आगमन अध्याय समाप्त ॥

माता-मिलाप (-कथन) प्रारम्भ

॥ रसावल छंद ॥ जब लोगों ने सुना कि राम वापस आ गए हैं, तो सभी लोग दौड़े और राम के पाँव आ पड़े । राम उन सबसे मिले ॥ ६६९ ॥ कोई चँवर डुलाने लगा, कोई पान खिलाने लगा । रामजी माता के चरणों पर गिर पड़े और माताओं ने उन्हें हृदय से लगा लिया ॥ ६७० ॥ गले मिलकर के ऐसे रो रहे थे मानो सारे शोक को धो रहे हों । वीर राम बातें करने लगे जिसे सब माताएं सुनने लगीं ॥ ६७१ ॥ फिर वे लक्ष्मण की माँ से मिले और भरत-शत्रुघ्न आदि भाइयों ने उनके पाँव छुए । मिलाप की खुशी में इतना दान हुआ जिसे गिना नहीं जा सकता ॥ ६७२ ॥ फिर राम भरत की माता (कैकेयी) से मिले और उनको सब बातें बतायीं । राम ने कहा कि हे माता (कैकेयी) ! आपको धन्यवाद है, क्योंकि आपने मुझे ऋण से उऋण कर दिया है ६७३ इसमें आपका कोई दोष नहीं है क्योंकि मेरे

कोई ॥ ६७४ ॥ करो बोध मातं । मिल्यो फेरि भ्रातं । सुन्यो भरथ धाए । पगं सीस लाए ॥ ६७५ ॥ भरे राम अंकं । मिटी सरब शंकं । मिल्यो शत्र हंता । सरं शास्त्र गंता ॥ ६७६ ॥ जटं धूर झारी । पगं राम रारी । करी राज अरचा । दिजं बेद चरचा ॥ ६७७ ॥ करैं गीत गानं । भरे बीर मानं । दियो राम राजं । सरे सरब काजं ॥ ६७८ ॥ बुलै बिप्र लीने । श्रुतोचार कीने । भए राम राजा । बजे जीत बाजा ॥ ६७९ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ चहूँ चक्क के छत्रधारी बुलाए । धरे अत्र नीके पुरी अउध आए । गहे राम पायं परम प्रीत कै कै । मिले चत्र देसी बड़ी भेट दै कै ॥ ६८० ॥ दए चीन माचीन चीनंत देसं । महाँ सुंदरी चेरका चार केसं । मनं मानकं हीर चीरं अनेकं । किए खोज पईयै कहूँ एक एकं ॥ ६८१ ॥ मनं मुत्तियं मानकं बाज राजं । दए दंतपंती सजे सरब साजं । रथं बेसटं हीर चीरं अनंतं । मनं मानकं बद्ध रद्धं तुरंतं ॥ ६८२ ॥ किते स्वेत ऐरावतं तुल्लि

भाग्य में ऐसा ही लिखा था । जो होना होता है होकर रहता है, इसका वर्णन कोई नहीं कर सकता ॥ ६७४ ॥ माताओं को इस प्रकार सान्त्वना दी और भाई भरत से मिले । भरत ने सुना तो वह दौड़ा और राम के पैरों को उसने शीश से स्पर्श किया ॥ ६७५ ॥ राम ने उसे गले से लगाया और सभी शंकाओं का निवारण किया । तब वे शस्त्र और शास्त्रों के ज्ञाता शत्रुघ्न से मिले ॥ ६७६ ॥ भाइयों ने राम के पैरों, जटाओं आदि की धूल साफ़ की । राजकीय तरीके से पूजा-अर्चन किया तथा ब्राह्मणों ने वेद-पाठ किया ॥ ६७७ ॥ सभी वीरवर स्नेह से भरकर गीतगान करने लगे । राम को राज्य दिया गया और सभी कार्य इस प्रकार संपूर्ण हुए ॥ ६७८ ॥ विप्रों को बुलाया गया और वेद-मंत्रोच्चार के साथ राम को राजा बनाया गया । (चारों ओर) विजय की ध्वनि देनेवाले बाजे बजने लगे ॥ ६७९ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ चारों दिशाओं के छत्रधारी राजा बुलाए गए और वे सब अवधपुरी पहुँचे । परम प्रेम का प्रदर्शन करते हुए वे राम के पैरों में पड़े और बड़ी-बड़ी भेंटें देकर आकर मिले ॥ ६८० ॥ राजाओं ने देशों और विदेशों की निशानियाँ तथा चारु केशों वाली सुन्दरी दासियाँ प्रस्तुत कीं । खोजने पर भी न मिलनेवाले मोती, मणियाँ एवं वस्त्र प्रस्तुत किये ॥ ६८१ ॥ सुन्दर घोड़, मणि माणिक और मोती तथा हाथी भेंट मे दिए रथ,

दंती। दए मुत्तयं साज सज्जे सुपंती। किते बाजराजं जरी जीन संगं। नचै नट्ट मानो मचे जंग रंगं॥ ६८३॥ किते पक्खरे पील राजा प्रमाणं। दए बाज राजी सिराजी निपाणं। वई रकत नीलं मणी रंग रंगं। लख्यो राम को अस्त्रधारी अभंगं॥ ६८४॥ किते पशम पाटंबरं स्वरण वरणं। मिले भेट लै भाँति भाँतं अभरणं। किते परम पाटंबरं भान तेजं। दए सीअ धामं सभो भेज भेजं॥ ६८५॥ किते भूखणं भान तेजं अनंतं। पठे जानकी भेट दैदै दुरंतं। घने राम मातान की भेज भेजे। हरे क्लित के जाहि हेरे कलेजे॥ ६८६॥ धमं चक्र चक्रं फिरी राम दोही। मनो ज्योत बागो तिमं सीअ सोही। पठे छत्र दैदै छितं छोण धारी। हरे सरब गरबं करे पुरख भारी॥ ६८७॥ कट्यो काल एवं भए राम राजं। फिरी आन रामं सिरं सरब राजं। फिर्यो जैत पत्नं सिरं सेत छत्रं। करे राज आगिआ धरं बीर अत्रं॥ ६८८॥ दयो

हीरे, वस्त्र और अमूल्य मणि-माणिक प्रस्तुत किये गए॥ ६८२॥ कहीं श्वेत ऐरावत मोतियों से सजाकर दिए जा रहे हैं, कहीं घोड़े जरी वस्त्र की ज़ीन कसे हुए इस प्रकार नृत्य कर रहे हैं मानो युद्ध का दृश्य प्रस्तुत कर रहे हों॥ ६८३॥ कहीं कवचधारी पीलवान दिखाई दे रहे हैं और कहीं नृप घोड़े दिए जा रहे हैं। विभिन्न रंगों की लाल और नीली मणियाँ देनेवाले राजाओं ने अस्त्र-शस्त्रधारी राम के दर्शन किए॥ ६८४॥ कहीं राजा स्वर्ण के रंग के रेशमी वस्त्र और भाँति-भाँति के आभूषण लेकर मिल रहे हैं। कहीं सूर्य के समान चमकनेवाले वस्त्र सीता के निवास की ओर भेजे जा रहे हैं॥ ६८५॥ कहीं सूर्य के समान चमकनेवाले आभूषण जानकी की ओर भेजे जा रहे हैं। कितने ही आभूषण, वस्त्रादि राम की माताओं की ओर भेजे गए, जिन्हें देखकर कितनों का ही हृदय ललचा उठा है॥ ६८६॥ चारों ओर छत्र घुमा-घुमाकर राम की उद्घोषणाएँ सुनाई गयीं और सीता भी एक सजे-सँवरे बाग़ की तरह शोभायमान होने लगी। राजाओं को राम का छत्र देकर दूर-दूर भेजा गया। उन्होंने सभी का गर्व खंडित कर भारी-भारी उत्सव किये॥ ६८७॥ इस प्रकार राम-राज्य में काफी समय बीत गया और राम अपने शौर्य से राज्य करने लगे। सभी ओर विजयपत्र भेज दिए गए और राजाज्ञा करते हुए श्वेत छत्र धारण कर राम शोभायमान होने लगे॥ ६८८॥ एक-एक व्यक्ति को अनेकों प्रकार से धन-धान्य दिया गया और लोगों ने

एक एकं अनेकं प्रकारं। लखे सरब लोकं सही रावणारं। सही बिशन देवारदन द्रोह हरता। चहूँ चक्क जान्यो सिया नाथ भरता (मू०ग्रं०२४२)॥ ६८९॥ सही बिशन अउतार कै ताहि जान्यो। सभो लोक ख्याता बिधाता पछान्यो। फिरी चार चक्कं चतुर चक्क धारं। भयो चक्रवरती भुअं रावणारं॥ ६९०॥ लख्यो परम जोगिन्नणो जोग रूपं। महादेव देवं लख्यो भूप भूपं। महाँ शत्र शत्रं महाँ साध साधं। महाँ रूप रूपं लख्यो ब्याध बाधं॥ ६९१॥ त्रियं देव तुल्लं नरं नार नाहं। महाँ जोध जोधं महाँ बाह बाहं। स्रुतं बेद करता गणं रुद्र रूपं। महाँ जोग जोगं महाँ भूप भूपं॥ ६९२॥ परं पारगंता शिवं सिद्ध रूपं। बुधं बुद्धिदाता रिधं रिद्ध कूपं। जहाँ भाव कै जेण जैसो बिचारे। तिसी रूप सो तउन तैसे निहारे॥ ६९३॥ सभो शस्त्रधारी लहे शस्त्र गंता। दुरे देव द्रोही लखे प्राण हंता। जिसी भाव सो जउन जैसे बिचारे। तिसी रंग कै काछ काछे निहारे॥ ६९४॥ ॥ अनंत तुका भुजंग प्रयात छंद॥ किते काल बीत्यो भयो राम राजं। सभं

राम के वास्तविक स्वरूप को देखा। राम को विष्णु एवं अन्य देवों के द्रोहियों का नाश करनेवाले और सीता के नाथ के रूप में चारों दिशाओं मे जाना जाने लगा॥ ६८९॥ सबने उन्हें विष्णु के अवतार के रूप मे तथा सभी लोको में प्रसिद्ध विधाता के रूप में जाना। चारों दिशाओ मे राम के यश की धारा बह निकली और रावण के शत्रु राम को चक्रवर्ती सम्राट् की तरह जाना जाने लगा॥ ६९०॥ वह योगियों में परमयोगी, देवों में महादेव और राजाओं में सम्राट् दिखाई पड़ने लगे। शत्रुओं के महाशत्रु और संतों में परम संत के रूप में जाने जाने लगे। वह सर्व व्याधियों का नाश करनेवाले महान रूपवान थे॥ ६९१॥ स्त्रियों के लिए वह देवतुल्य और पुरुषों के लिए वह सम्राट् थे। योद्धाओं के लिए परम योद्धा और शस्त्रधारियों के लिए महान् शस्त्रधारी थे॥ ६९२॥ वे मुक्तिदाता, कल्याणकारी, सिद्धस्वरूप, बुद्धिप्रदाता और ऋद्धियों-सिद्धियो के भंडार थे। जिसने उसे जिस भावना से देखा, उसने उसे उसी स्वरूप में दर्शन दिए॥ ६९३॥ सभी शस्त्रधारी उसे शस्त्रों में गति रखनेवाले के रूप में देखने लगे और सभी देवद्रोही राक्षस उस प्राणहंता को देखकर छिप गए। जिसने उसका जिस भाव से विचार किया, राम उसे उसी रंग में दिखाई दिए॥ ६९४॥ ॥ अनंत तुका भुजंग प्रयात छंद॥ उस प्रकार राम राज्य

शत्र जीते महा जुद्ध मालो। फिर्यो चक्र चारो दिसा मद्ध रामं। भयो नाम ताते महाँ चक्रवरती ॥ ६९५ ॥ सभै बिप्प आगस्त ते आदि लै कै। भ्रिगं अंगुरा ब्यास ते लै बिशिष्टं। बिस्वामित्र अउ बालमीकं सु अत्रं। दुरबाशा सभै कशप ते आद लै कै ॥ ६९६ ॥ जबै राम देखै सभै बिप्प आए। पर्यो धाइ पायं सिया नाथ जगतं। दयो आसनं अरघु पाद रघुतेणं। दई आसिखं मौननेसं प्रसिन्यं ॥ ६९७ ॥ भई रिख रामं बडी ग्यान चरचा। कहो सरब जौपै बढै एक ग्रंथा। बिदा बिप्प कीने घनी दच्छना दै। चले देस देसं महाँ चित्त हरखं ॥ ६९८ ॥ इहो बीच आयो म्रितं सून बिप्पं। जिऐ बाल आजै नही तोहिं स्रापं। सभै राम जानी चितं ताहि बाता। दिसं बारणी ते बिबाणं हकार्यो ॥ ६९९ ॥ हुतो एक शूद्रं दिशा उत्र मद्धं। झुलै कूप मद्धं पर्यो औध मुक्खं। महाँ उग्र ते जाप पसयात उग्रं। हन्यो ताहि रामं असं आप हत्थं ॥ ७०० ॥ जियो ब्रहमपुत्रं हर्यो ब्रहम सोगं। बडी

को पर्याप्त समय बीत गया और महायुद्ध कर-करके सभी शत्रुओं को जीत लिया गया। चारों दिशाओं में राम ने भ्रमण किया और इस प्रकार उनका नाम चक्रवर्ती सम्राट् हो गया ॥ ६९५ ॥ अगस्त्य, भृंग, अंगिरा, व्यास, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वालमीकि, अत्रि ऋषि एवं दुर्वासा तथा कश्यप आदि ऋषि राम के यहाँ पहुँचे ॥ ६९६ ॥ जब राम ने सभी विप्रों को अपने यहाँ आये देखा तो सीता एवं जगत के नाथ राम ने दौड़कर उनमें पाँव छुए। उनको आसन दिया और उनके चरण धोये तथा महामुनियों ने प्रसन्न हो उन्हें आशीर्वाद दिया ॥ ६९७ ॥ ऋषियों और श्रीराम में वृहद् ज्ञान-चर्चा चली और यदि उन सबका वर्णन किया जाय तो यह ग्रन्थ और बढ जायेगा। सब विप्रों को पर्याप्त दक्षिणा देकर विदा किया गया और वे प्रसन्न मन से देश-देशान्तरों को चल दिए ॥ ६९८ ॥ इसी दौरान एक विप्र मृतक पुत्र को लेकर आया और राम से कहने लगा कि यदि मेरा बालक जीवित नहीं हुआ तो मैं तुम्हें श्राप दे दूँगा। श्रीराम ने अपने मन में सारी बात को समझ लिया और पश्चिम दिशा की ओर अपना विमान लेकर चल पड़े ॥ ६९९ ॥ एक शूद्र उत्तर (पश्चिम) दिशा में कुएँ के बीच औंधा लटका हुआ था और महान उग्र तप कर रहा था। राम ने अपने हाथों से उसका वध किया ॥ ७०० ॥ ब्राह्मण का पुत्र जीवित हो उठा और ब्राह्मण का शोक समाप्त हो गया श्रीराम की कीर्ति चारों

कीर्तं रामं चतुर कुंट मद्धं । कर्‍यो दस सहंस्र लउ राज अउधं । फिरी चक्र चारो बिखै राम दोही ॥ ७०१ ॥ जिणे देस देसं नरेशं त रामं । महाँ जुद्ध जेता तिहूँ लोक जान्यो । दयो मंत्री अत्रं महाभ्रात भरथं । कियो (मू॰ग्रं॰२४३) सैन नाथं सुमित्राकुमारं ॥ ७०२ ॥ ॥ म्रितगत छंद ॥ सुमति महा रिख रघुबर । दुंदभ बाजति दरदर । जग की अस धुन घर बर । पूर रही धुन सुरपुर ॥ ७०३ ॥ सुद्धर महा रघुनंदन । जगपत मुन गन बंदन । धरधर लौ नर चीने । सुख दै दुख बिन कीने ॥ ७०४ ॥ अर हर नर कर जाने । दुख हर सुख कर माने । पुर घर नर बरसे है । रूप अनूप अभै है ॥ ७०५ ॥ ॥ अनका छंद ॥ प्रभू है । अजू है । अजै है । अभै है ॥ ७०६ ॥ अजा है । अता है । अलै है । अजै है ॥ ७०७ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ बुल्यो चत्र भ्रातं सुमित्राकुमारं । कर्‍यो माथुरेसं तिसे रावणारं । तहाँ एक दइतं लवं उग्र तेजं । दयो ताहि अप्पं शिवं सूल भेजं ॥ ७०८ ॥

दिशाओं में फैल गई । इस प्रकार चारों दिशाओं में राम की कीर्ति फैल गई तथा उन्होंने दस हजार वर्ष तक राज्य किया ॥ ७०१ ॥ देश-देशान्तरों के राजाओं को राम ने जीता और त्रिलोक में उन्हें महाविजेता के रूप में जाना गया । भरत को उन्होंने मंत्री बनाया और सुमित्रा-कुमारों— लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न को सेनापति बनाया ॥ ७०२ ॥ ॥ मृतगत छंद ॥ महा ऋषि रघुवीर के द्वार पर दुन्दुभि बज रही है और सारे जगत तथा घर-द्वार और देवलोक में उनकी जय-जयकार होने लगी ॥ ७०३ ॥ रघुनन्दन के नाम जाने जानेवाले श्रीराम जगत्पति और मुनिगणों के वन्दनीय हैं । उन्होंने सारी धरती पर से पहचान-पहचानकर लोगों को सुखी किया और उनके दुःख दूर किए ॥ ७०४ ॥ सभी लोगों ने उन्हें शत्रुनाशक और दुःख को हरकर सुख देनेवाले के रूप में माना । सभी अयोध्यापुरी उनके अनुपम स्वरूप एवं अभय वरदान के कारण सुखपूर्वक रह रही है ॥ ७०५ ॥ ॥ अनका छंद ॥ वे राम प्रभु हैं, अनन्त हैं, अजेय हैं और अभय हैं ॥ ७०६ ॥ वे प्रकृति के स्वामी हैं, पुरुष हैं, समस्त जगत हैं और परब्रह्म हैं ॥ ७०७ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ एक दिन सुमित्रा के पुत्र को श्रीरामचन्द्र जी ने बुलाया और उससे कहा कि दूर देश में एक लवण नामक उग्र दैत्य रहता है जिसे शिव का त्रिशूल प्राप्त है । ७०८ राम ने मंत्र पढ़कर एक तीर दिया जो कि उस

पठ्यो तीर मंत्रं दियो एक रामं। महाँ जुद्ध माली महाँ धरम धामं। शिवं सूल होणं जबै शत्र जान्यो। तबै संगि ता कै महाँ जुद्ध ठान्यो ॥ ७०६ ॥ लयो मंत्र तीरं चल्यो न्याइ सीसं। त्रिपुर जुद्ध जेता चल्यो जाण ईसं। लख्यो सूल हीणं रिपं जउण कालं। तबै कोप मंड्यो रणं बिकरालं ॥ ७१० ॥ भजै घाइ खायं अघायंत सूरं। हसे कंक बंकं घुमी गैण हूरं। उठे टोप टूक्कं कमाणं प्रहारे। रणं रोस रज्जे महाँ छत्र धारे ॥ ७११ ॥ फिर्यो अप दइतं महा रोस कै कै। हणे राम भ्रातं वहे बाण लै कै। रिपं नास हेतं दियो राम अप्पं। हण्यो ताहि सीसं द्रुगा जाप जप्पं ॥ ७१२ ॥ गिर्यो झूम भूमं अघूम्यो अरि घायं। हण्यो शत्र हंता तिसै चउप चायं। गणं देव हरखे प्रबरखंत फूलं। हत्यो दैत द्रोही मिट्यो सरब सूलं ॥ ७१३ ॥ लवं नासु रैथं लवं कौन नासं। सभै संत हरखे रिपं भे उदासं। भजे प्रान लै लै तज्यो नगर बासं। कर्यो माथुरेसं पुरीबा नवासं ॥ ७१४ ॥ भयो माथुरेसं

की ओर से महायुद्ध करने के लिए सक्षम था। राम ने कहा कि जब शत्रु को शिव के त्रिशूल से विहीन देखना तभी उससे युद्ध करना ॥ ७०९ ॥ शत्रुघ्न अभिमंत्रित तीर लेकर और सिर झुकाकर चल पड़े और ऐसा लग रहा था मानो वह तीनों लोकों के विजेता के रूप में जा रहे हों। जब उन्होंने शत्रु को त्रिशूल-बिहीन देखा, तब अवसर पा क्रोधित होकर उससे युद्ध प्रारम्भ कर दिये ॥ ७१० ॥ शूरवीर घाव खाकर भागने लगे, कौवे लाशों को देख काँव-काँव करने लगे और आकाश में अप्सराएँ घूमने लगी। बाणों के प्रहार से सिरस्त्राण फटने लगे और महा छत्रधारी राजा युद्ध में क्रोधित होने लगे ॥ ७११ ॥ महाक्रोधित होकर वह दैत्य घूमा और उसने राम के भाई पर बाण-वर्षा की। शत्रु के नाश के लिए जो बाण राम ने दिया था, उसी को दुर्गा का जाप जपकर शत्रुघ्न ने दैत्य के ऊपर चलाया ॥ ७१२ ॥ घायल होकर शत्रु घूमकर भूमि पर गिर पड़ा तथा उसे शत्रुघ्न ने मार डाला। देवता आकाश में प्रसन्न हो उठे और फूलों की वर्षा करने लगे। इस द्रोही दैत्य के मारे जाने से उनका सर्व कष्ट मिट गया ॥ ७१३ ॥ लवण नामक असुर का नाश होने से सभी सन्त प्रसन्न हो उठे तथा शत्रु उदास हो गए और नगर को त्याग भाग खड़े हुए। शत्रुघ्न ने मथुरा नामक पुरी में निवास किया ॥ ७१४ ॥ लवण का नाश कर शत्रुघ्न ने मथुरा का राज्य किया और सभी शस्त्रधारी उनको

कर्यो राम सैनं तहाँ धरम धामं। करी केल खेलं सु बेलं सु भोगं। हुतो जउन कालं समै जैस जोगं॥ ७२०॥ रह्यो सीअ गरभं सुन्यो सरब बामं। कहे एम सीता पुनर बैन रामं। फिर्यो बाग बागं बिदा नाथ दीजै। सुनो प्रान प्यारे इहै काज कीजै॥ ७२१॥ दियो राम संगं सुमित्राकुमारं। दई जानकी संग ता के सुधारं। जहाँ घोर सालं तमालं बिकालं। तहाँ सीअ को छोर आयो उतालं॥ ७२२॥ बनं निरजनं देख कै कै अपारं। बनंबास जान्यो दयो रावजारं। रुरोदं सुर उच्चं पपातंत प्रानं। रणं जेम बीरं लगे मरम बानं॥ ७२३॥ मुनी बालमीकं स्त्रुतं दीन बानी। चल्यो चउक चित्तं तजी मोन धानी। सिया संगि लीने गयो धाम आपं। मनो बच्च करमं दुरगा जाप आपं॥ ७२४॥ भयो एक पुत्रं तहाँ जानकी तैं। मनो राम कीनो दुती राम ते लैं। वहै चार चिह्नं वहै उग्र तेजं। मनो अप्प अंसं दुती काढि भेजं॥ ७२५॥ दियो एक पालं सु बालं रिखीसं। लसै चंद्र रूपं किधो द्योस ईसं। गयो एक दिवसं रिखी संधियानं। लयो बाल संगं गई सीअ

वहीं पर वे अनेक प्रकार के भोग-विलास समयानुसार किया करते थे॥ ७२०॥ कुछ समय पश्चात् सभी स्त्रियों ने सुना कि सीता गर्भवती है। तब सीता ने राम से कहा कि मैंने इस उद्यान का बहुत भ्रमण कर लिया है। हे प्राणनाथ! मुझे अब बिदा दीजिए॥ ७२१॥ राम ने लक्ष्मण को सीता के साथ कर दिया और भेज दिया। लक्ष्मण उसे, जहाँ बीहड़ वन प्रदेश में साल और तमाल के विकराल वृक्ष थे, छोड़ आये॥ ७२२॥ निर्जन वन में अपने-आप को पाकर सीता ने समझ लिया कि राम ने उन्हें बनवास दिया है। वहाँ ऊँचे स्वर में प्राणघातक ध्वनि से इस प्रकार रुदन करने लगी, मानो युद्धस्थल में किसी वीर के मर्मस्थल पर बाण लग गया हो॥ ७२३॥ मुनि वालमीकि ने आवाज सुनी और मौन को त्यागते हुए चकित हो पुकारते हुए सीता की ओर चले। वह मन, वचन और कर्म से दुर्गा का जाप करते सीता को साथ ले अपने घर गये॥ ७२४॥ वहाँ जानकी को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो बिल्कुल दूसरा राम ही दिखाई पड़ता था। उसका वही वर्ण और चिह्न तथा तेज था और वह ऐसा लग रहा था, मानो राम ने ही अपना अंश अपने में से निकालकर दे दिया हो॥ ७२५॥ ऋषिवर ने उस बालक का पालन किया जो चन्द्र के समान था और दिन में सूर्य के समान दिखाई पड़ता था एक दिन

नानं ।। ७२६ ।। रही जात सीता महाँ मोन जागे । बिनाँ बाल पालं लख्यो शोकु पागे । कुशा हाथ लै कै रच्यो एक बालं । तिसी रूप रंगं अनूपं उतालं ।। ७२७ ।। फिरी नाइ सीता कहा आन देख्यो । उही रूप बालं सुपालं बसेख्यो । क्रिपा मोन राजं घनी आन कीनो । दुती पुत्र ता ते क्रिपा जान दीनो ।। ७२८ ।। (मू०ग्रं०२४५)

।। इति स्री बचित्र नाटके रामवतार दुइ पुत्र उतपंने धयाइ समापतम ।।

।। भुजंग प्रयात छंद ।। उतै बाल पालै इतै अउध राजं । बुले बिप्प जग्यं तज्यो एक बाजं । रिपं नास हंता दयो संग ताकै । बडी फउज लीने चलयो संग वाके ।। ७२९ ।। फिर्यो देस देसं नरेशाण बाजं । किनी नाहि बाध्यो मिले आन राजं । महाँ उग्र धन्नियाँ बडी फउज लै कैं । परे आन पायं बडी भेट दै कै ।। ७३० ।। दिशा चार जीतो फिर्यो फेरि बाजो । गयो बालमीकं रिखिसथान ताजो । जबै भाल पत्रं लवं छोर बाच्यो ।

ऋषि संध्या-पूजा के लिए और सीता भी बालक को लेकर स्नान के लिए गई ।। ७२६ ।। जब ऋषि सीता के जाने के बाद समाधि से जगे तो बालक को वहाँ न पा शोकमग्न हुए । उन्होंने हाथ में कुशा पकड़ते हुए पहले बालक के ही रूप-रंग वाले बालक के समान शीघ्रता से एक बालक की रचना कर दी ।। ७२७ ।। सीता जब वापस आई तो उसने देखा कि उसी स्वरूपवाला एक बालक वहाँ विराजमान है । सीता ने कहा कि हे मुनिवर ! आपने मुझ पर बहुत कृपा की है और कृपापूर्वक दो पुत्रों का दान मुझे दिया है ।। ७२८ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार में दो पुत्रों की उत्पत्ति का अध्याय समाप्त ।।

।। भुजंग प्रयात छंद ।। उधर बालकों का पालन-पोषण होने लगा और इधर अवधनरेश राम ने विप्रों को बुलाकर यज्ञ किया और यज्ञ के लिए एक अश्व छोड़ा । शत्रुघ्न एक बहुत बड़ी सेना ले उस अश्व के साथ चले ।। ७२९ ।। देश-देशान्तरों के राजाओं के पास वह अश्व पहुँचा, परन्तु किसी ने भी उसे नहीं बाँधा । बड़े-बड़े राजा बड़ी-बड़ी सेनाओं-समेत शत्रुघ्न के पाँव-तले आ गिरे ।। ७३० ।। चारों दिशाओं में घूमता हुआ अश्व वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में भी पहुँचा । जब अश्व के मस्तक पर लिखा पत्रक लव और उसके साथियों ने पढा तो वे रौद्ररूप धारण करते

बडो उग्र धंग्या रसं रुद्र राच्यो ।। ७३१ ।। ब्रिछं बाज बांध्यो लख्यो शस्त्रधारी । बडो नाद कै सरब सैना पुकारी । कहा जात रे बाल लीने तुरंगं । तजो नाहि याको सजो आन जंगं ।। ७३२ ।। सुण्यो नाम जुद्धं जबै स्रउण सूरं । महा शस्त्र सउडी महाँ लोह पूरं । हठे बीर हाठै सबै शस्त्र लै कै । पर्‍यो मद्धि सैणं बडो नादि कै कै ।। ७३३ ।। भलीभांत मारे पचारे सु सूरं । गिरे जुद्ध जोधा रही धूर पूरं । उठी शस्त्र झारं अपारंत बीरं । भ्रमे रुंड मुंडं तनं तच्छ तीरं ।।७३४।। गिरे लुत्थ पत्थं सु जुत्थंत बाजी । भ्रमै छूछ हाथी बिना स्वार ताजी । गिरे शस्त्र हीणं बिअस्त्रंत सूरं । हसे भूत प्रेतं भ्रमी गण हूरं ।। ७३५ ।। घणं घोर नीशाण बज्जे अपारं । खहे बीर धीरं उठी शस्त्र झारं । चले चार चित्रं बचित्रंत बाणं । रणं रोस रज्जे महाँ तेजवाणं ।। ७३६ ।। ।। चाचरी छंद ।। उठाई । दिखाई । नचाई । चलाई ।। ७३७ ।। भ्रमाई । दिखाई । कँपाई । चखाई ।। ७३८ ।। कतारी । अपारी । प्रहारी । सुनारी ।। ७३९ ।। पचारी । प्रहारी ।

हुए क्रोधित हो उठे ।। ७३१ ।। उन्होंने अश्व को वृक्ष के साथ बाँध दिया और शत्रुघ्न की सारी सेना ने उसे देखा । सेना के वीरों ने पुकारकर कहा कि हे बालक ! इस अश्व को कहाँ ले जा रहे हो । इसे छोड़ो नहीं तो हमसे युद्ध करो ।। ७३२ ।। युद्ध का नाम जब उन शस्त्रधारियों ने सुना तो उन्होंने वृहद्-रूप से बाण-वर्षा की । सभी वीर हठपूर्वक शस्त्र धारण कर लड़ने लगे और इधर लव भयंकर गर्जन करता हुआ उस सेना में कूद पड़ा ।। ७३३ ।। अनेक योद्धाओं को मार डाला गया, योद्धा धराशायी हो गए और चारों ओर धूल उड़ने लगी । शस्त्रों की वर्षा वीर करने लगे और योद्धाओं के धड़ और सिर इधर-उधर उड़ने लगे ।। ७३४ ।। मार्ग में अश्वों की लाशें पट गयीं और बिना सवारों के हाथी और घोड़े दौड़ने लगे । शस्त्र-हीन हो योद्धा गिरने लगे तथा भूत-प्रेत और अप्सराएँ मुस्कुराते हुए भ्रमण करने लगीं ।। ७३५ ।। घनघोर नगाड़े बजने लगे, वीर भिड़ने लगे और शस्त्रों की वर्षा होने लगी । विचित्र प्रकार की चित्रकारी करते हुए बाण चलने लगे और महातेजस्वी वीर रण में क्रुद्ध होने लगे ।। ७३६ ।। ।। चाचरी छंद ।। कृपाण उठी, दिखाई, नचाई और चलाई गई ७३७ भ्रम में डाला गया, पुन कृपाण दिखाई गई तथा क करते हुए वार कर दिया गया ७३८

हकारी । कटारी ॥ ७४० ॥ उठाए । गिराए । भगाए । दिखाए ॥७४१॥ चलाए । पचाए । त्रसाए । चुटआए ॥७४२॥ ॥ अणका छंद ॥ जब सर लागे । तब सभ भागे । दलपत मारे । भट भटकारे ॥ ७४३ ॥ हय तज भागे । रघुबर आगे । बहुबिध रोवैं । सभुहि न जोवैं ॥ ७४४ ॥ लव अर मारे । तव दल हारे । द्वै सिस जीते । नह भय भीते ॥ ७४५ ॥ लछमन भेजा । बहु दल लेजा । जिन सिस मारू । मोहि दिखारू ॥ ७४६ ॥ सुण लहु भ्रातं । रघुबर बातं । सज दल चल्ल्यो । (मू०ग्रं०२४६) जल थल हल्ल्यो ॥ ७४७ ॥ उठ दल धूरं । नभ झड़ पूरं । चहु दिस ढूके । हरि हरि कूके ॥ ७४८ ॥ बरखत बाणं । थिरकत ज्वाणं । लह लह धुजणं । खह खह भुजणं ॥ ७४९ ॥ हसि हसि ढूके । कसि कसि कूके । सुण सुण बालं । हठि तज उतालं ॥ ७५० ॥ ॥ दोहरा ॥ हम नहो त्यागत बाज बर

अनेकों कटारियों के प्रहार होने लगे ॥ ७३९ ॥ कृपाणें निकाली गयी, ललकारा गया और कटारियों से प्रहार किए गए ॥ ७४० ॥ वीरों को उठाया, गिराया, दौड़ाया और रास्ता दिखाया गया ॥ ७४१ ॥ बाण चलाए गए, खाये गए और वीरों को भयभीत किया गया ॥ ७४२ ॥ ॥ अणका छंद ॥ जब बाण लगे तब सभी भाग खड़े हुए, सेनापति मारे गए और वीर इधर-उधर भाग खड़े हुए ॥ ७४३ ॥ वे घोड़ों को छोड़कर राम की तरफ़ भागे और विभिन्न प्रकार से रोते हुए सामने आने की हिम्मत नहीं कर रहे थे ॥ ७४४ ॥ (सैनिकों ने राम से कहा) लव ने शत्रुओं को मारकर आपके दल को हरा दिया। वे दो बालक बिना भयभीत हुए युद्ध कर रहे हैं और जीत गए ॥ ७४५ ॥ राम ने बहुत सा दल ले जाने के लिए कहकर लक्ष्मण को भेजा और कहा, उन बालकों को मारना नहीं अपितु उन्हें पकड़कर मुझे दिखाना ॥ ७४६ ॥ रघुवीर की बात सुनकर दल को सुसज्जित कर जल और स्थल को हिलाते हुए लक्ष्मण चले ॥ ७४७ ॥ सेना के कारण उड़ी धूल से आकाश भर गया। सभी सैनिक चारों दिशाओं से उमड़ पड़े और ईश्वर का नाम लेने लगे ॥ ७४८ ॥ थिरकते हुए जवान बाण-वर्षा करने लगे। ध्वजाएँ लहलहाने लगीं और भुजाएं आपस में भिड़ने लगीं ॥ ७४९ ॥ हँसते हुए पास आकर वे जोर-जोर से कहने लगे कि हे बालको ! अपना हठ शीघ्रता से त्याग दो ॥ ७५० ॥ दोहा बालकों ने कहा कि लक्ष्मणकुमार हम घोड़े को नहीं छोड़ेंगे

सुणि लछमना कुमार । अपनो भर बल जुद्ध कर अब ही शंक बिसार ।। ७५१ ।। ।। अणका छंद ।। लछमन गज्ज्यो । बड धन सज्ज्यो । बहु सर छोरे । जण घण ओरे ।। ७५२।। उत हिब देखैं । धनु धनु लेखैं । इत सर छूटैं । मस कण तूटैं ।। ७५३ ।। भट बर गाजैं । दुंदभ बाजैं । सरबर छोरैं मुख नह मोरैं ।। ७५४ ।। ।। लछमन बाच सिस सो ।। स्रिण स्रिण लरका । जिन कर करखा । दे मिलि घोरा । तुहि बल थोरा ।। ७५५ ।। हठ तजि अइऐ । जिन समुहइऐ । मिलि मिलि मोको । डर नहीं तोको ।। ७५६ ।। सिस नही मानी । अति अभिमानी । गहि धनु गज्ज्यो । दु पग न भज्ज्यो ।।७५७।। ।। अजबा छंद ।। रुद्धे रण भाई । सर झड़ लाई । बरखे बाणं । परखे जुआणं ।। ७५८ ।। डिग्गे रण मद्धं । अद्धो अद्धं । कट्टे अंगं । रुज्झे जंगं ।। ७५९ ।। बाणन झड़ लायो । सरबर सायो । बहु अर मारे । डोल डरारे ।। ७६० ।। डिग्गे रण भूमं । नर बर घूमं । रज्जे रण घायं । चक्के

तुम सब शंकाओं को छोड़कर अपने पूर्ण बल से युद्ध करो ।। ७५१ ।। ।। अणका छंद ।। लक्ष्मण ने बहुत बड़ा धनुष पकड़कर गर्जना करते हुए बादलों के समान बहुत से बाण छोड़े ।। ७५२ ।। उधर से देवतागण युद्ध देख रहे हैं और धन्य-धन्य की आवाज़ सुनाई पड़ रही है । इधर बाण छूट रहे हैं और मांस के टुकड़े कट रहे हैं ।। ७५३ ।। वीर गरज रहे हैं, दुन्दुभियाँ बज रही हैं, बाण छोड़े जा रहे हैं परन्तु फिर भी वे युद्ध से मुँह नहीं मोड़ रहे हैं ।। ७५४ ।। ।। लक्ष्मण उवाच बालकों के प्रति ।। हे लड़को ! सुनो और युद्ध मत करो । घोड़े को लेकर मुझसे मिलो, क्योंकि तुम लोगों में बल थोड़ा है ।। ७५५ ।। हठ को छोड़कर आ जाओ और मुकाबला मत करो । डरो नहीं, मुझसे आकर मिलो ।। ७५६ ।। बालकों ने बात नहीं मानी, क्योंकि उन्हें भी अपनी शक्ति पर अभिमान था । वे धनुष लेकर गरजने लगे और दो क़दम भी पीछे न हटे ।। ७५७ ।। ।। अजबा छंद ।। दोनों भाई युद्ध में लिप्त हो गए और उन्होंने बाणों की वर्षा करते हुए जवानों की बहादुरी की परख की ।। ७५८ ।। वीर खण्ड-खण्ड होकर युद्धस्थल में गिरने लगे और युद्ध में भिड़े हुए वीरों के अंग कटने लगे ।। ७५९ ।। बाणों की वर्षा से रक्त के सरोवर लहलहाने लगे । बहुत से शत्रुओं को मारा गया और बहुत से भयभीत हो उठे ।। ७६० नरश्रेष्ठ वीर घूम घूमकर रणस्थल में गिरने लगे उनके शरीरों पर

बाधं ॥ ७६१ ॥ ॥ अपूरब छंद ॥ गणे केते । हणे जेते । कई मारे । किते हारे ॥ ७६२ ॥ सभै भाजे । चितं लाजे । भजे भै कै । जियं लै कै ॥ ७६३ ॥ फिरे जेते । हणे केते । किते घाए । किते धाए ॥ ७६४ ॥ सिसं जीते । भटं भीते । महाँ क्रुद्धं । कियो जुद्धं ॥ ७६५ ॥ दोऊ भ्राता । धगं ख्याता । महाँ जोधं । मँडे क्रोधं ॥ ७६६ ॥ तजे बाणं । धनं ताणं । मचे बीरं । भजे भीरं ॥ ७६७ ॥ कटे अंगं । भजे जंगं । रणं रुज्झे । नरं जुज्झे ॥ ७६८ ॥ भजी सैनं । बिना चैनं । लछन बीरं । फिर्यो धीरं ॥ ७६९ ॥ इकै बाणं । रिपं ताणं । हर्यो भालं । गिर्यो तालं ॥ ७७० ॥ (मू०ग्रं०२४७)

॥ इति लछमन बधहि ध्याइ समापतम ॥

॥ अड़्हा छंद ॥ भाज गयो दल त्रास कै कै । लछमणं रण भूम वै कै । चले रामचंद हुते जहाँ । भट भाज भग्ग

घाव शोभायमान हो रहे थे, परन्तु फिर भी उनमें उत्साह की कमी नहीं थी ॥ ७६१ ॥ ॥ अपूरब छंद ॥ कितने मारे गए इसकी कोई गिनती नहीं । कितने ही मारे गए और कितने ही हार गए ॥ ७६२ ॥ सभी चित्त में लजायमान हो भाग खड़े हुए और भयभीत होकर तथा अपने प्राण लेकर चले गए ॥ ७६३ ॥ जितने वापस आये उनको मार डाला गया । कितने ही घायल हो गए और कितने ही दौड़ गए ॥ ७६४ ॥ बालक जीत गए और शूरवीर भयभीत हो उठे । इन्होंने महाक्रोधित होकर युद्ध किया ॥ ७६५ ॥ दोनों भाई, जो कि खड्ग के धनी थे, महा-क्रोधित होकर महायुद्ध करने लगे ॥ ७६६ ॥ वे धनुष को तानकर बाण चलाने लगे और भीषण युद्ध करते हुए इन वीरों को देखकर सेना की भीड़ भाग खड़ी हुई ॥ ७६७ ॥ योद्धा अंगों को कटवाते हुए युद्ध से भाग खड़े हुए और बचे हुए वीर युद्ध में भिड़ गए ॥ ७६८ ॥ व्याकुल होकर सेना भाग खड़ी हुई । तब लक्ष्मण धैर्य से वापस मुड़े ॥ ७६९ ॥ शत्रु की ओर तानकर एक बाण (लव ने) मारा जो उनके मस्तक का हरण करके ले गया और लक्ष्मण वृक्ष के समान गिर पड़े । ७७० ।

इति लक्ष्मण-वध अध्याय समाप्त

लगे तहाँ ।। ७७१ ।। जब जाइ बात कही उनै । बहु भांत शोक बयो तिनै । सुन बैन मोन रहै बली । जन चित्र पाहन की खली ।। ७७२ ।। पुन बैन मंत्र बिचारयो । तुम जाहु भरथ उचारयो । मुन बाल द्वै जिन मारियो । धनि आन मोहि दिखारियो ।। ७७३ ।। सज सैन भरथ चले तहाँ । रण बाल बीर मँडे जहाँ । बहु भात बीर सँघारही । सर ओघ प्रओघ प्रहारही ।। ७७४ ।। सुग्रीव और भभीछनं । हनवंत अंगद रीछनं । बहु भाँति सैन बनाइकै । तिन पै चल्यो समुहाइकै ।। ७७५ । रणभूम भरथ गए जबै । मुन बाल दोइ लखे तबै । दुइ काक पचछा सोभही । लख देव दानो लोभही ।।७७६।। ।। भरथ बाच लव सो ।। ।। अकड़ा छंद ।। मुन बाल छाडहु गरब । मिलि आन मोहू सरब । लै जाँहि राघव तीर । तुहि नैक दै कै चीर ।। ७७७ ।। सुन ते भरे सिस मान । कर कोप तान कमान । बहु भाँति साइक छोरि । जन अभ्र सावण ओर ।। ७७८ ।। लागे सु साइक अंग । गिरगे सु बाह उतंग । कहूँ अंग भंग सबाह । कहूँ चउर चीर

पहुँचे ।। ७७१ ।। जब यह सारा वृत्तांत उन्हें बताया गया तो उनको बहुत शोक हुआ । वचन सुनकर महाबली पत्थर की शिला की तरह चित्र बनकर मौन हो रहे ।। ७७२ ।। पुन: बैठकर विचार-विमर्श किया और भरत को जाने के लिए कहते हुए उससे कहा कि मुनि-बालकों को मत मारना, अपितु उन्हें लाकर मुझे दिखाना ।। ७७३ ।। भरत सेना को सुसज्जित कर उस ओर चले जहाँ वीर बालक युद्ध के लिए तैयार थे । वे बहुत प्रकार से बाणों का प्रहार करते हुए वीरों को मारने के लिए तत्पर थे ।। ७७४ ।। सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अंगद एवं जाम्बवंत आदि की विभिन्न प्रकार की सेना ले भरत उन वीर बालकों की ओर चल पड़े ।। ७७५ ।। रण-भूमि में जब भरत पहुँचे तो उन्होंने दोनों मुनि-बालकों को देखा । दोनों बच्चे शोभायमान थे और उन्हें देख देव-दानव दोनों मोहित होते थे ।। ७७६ ।। ।। भरत उवाच लव के प्रति ।। ।। अकड़ा छंद ।। हे मुनि-बालको ! गर्व को छोड़ तुम सब मुझसे आकर मिलो । मैं तुमको कपड़े पहनाकर राघव रामचन्द्र के पास ले जाऊँगा ।। ७७७ ।। यह सुनकर बालक मान से भर उठे और क्रोधित हो उन्होंने कमान तान लिया । उन्होंने सावन की घटाओं की तरह बहुत प्रकार से बाण छोड ७७८ वे बाण जिसको लगे वे गिर पड कही उन बाणों ने अग-भग कर दिया और कहीं

सनाह ।। ७७९ ।। कहूँ चित्र चारु कमान । कहूँ अंग ओघन बान । कहूँ अंग घाइ भभक्क । कहूँ स्रोण सरत छलक्क ।। ७८० ।। कहूँ भूत प्रेत भकंत । सु कहूँ कमन्ध उठंत । कहूँ नाच बीर बैताल । सो बमत डाकण ज्वाल ।। ७८१ ।। रण घाइ घाए वीर । सभ स्रोण भीगे चीर । इक ओर भाज चलंत । इक आन जुद्ध जुटंत ।। ७८२ ।। इक ऐंच ऐंच कमान । तक बीर मारत बान । इक भाज भाज मरंत । नही सुरग तउन बसंत ।। ७८३ ।। गजराज बाज अनेक । जुज्झे न बाचा एक । तब आन लंका नाथ । जुज्झ्यो सिसन के साथ ।। ७८४ ।। ।। बहोड़ा छंद ।। लंकेश के उर मो तक बान । मार्‌यो राम सिसत जि कान । तब गिर्‌यो दानव सु भूमि मद्ध । तिह बिसुध जाण नही कियो बद्ध ।। ७८५ ।। तब रुक्यो तास सुग्रीव आन । कहा जात बाल नही पैस जान । तब हण्यो बाण तिह भाल तक्क । तिह लग्यो भाल मो रह्यो चक्क ।। ७८६ ।। चप चली (मू०ग्रं०२४८) सैण कपणी सु

उन्होंने चँवर और कवच को चीर दिया ।। ७७९ ।। कहीं सुन्दर कमानों से निकलकर वे चित्र बनाने लगे और कहीं योद्धाओं के अंगों में घुस गये। कहीं अगों के घाव भभकने लगे और कहीं रक्त की नदियाँ छलकने लगीं ।। ७८० ।। कहीं भूत, प्रेत धकारने लगे और कहीं युद्धस्थल में कबन्ध उठने लगे। कहीं वीर बैताल नृत्य करने लगे और कहीं डाकिनियाँ ज्वालाएँ उठाने लगीं ।। ७८१ ।। युद्धस्थल में घायल होकर वीरों के वस्त्र रक्त से भीग गए। एक ओर वीर भागे चले जा रहे हैं तथा दूसरी ओर वीर आकर युद्ध में भिड़ रहे हैं ।। ७८२ ।। एक ओर कमान खींच-खींचकर वीर बाण मार रहे हैं। दूसरी ओर वीर भाग-भागकर ही प्राण त्याग रहे हैं और वे स्वर्ग में स्थान नहीं पा रहे हैं ।। ७८३ ।। अनेकों हाथी-घोड़े जूझ गये और एक भी न बचे। तब लंकानाथ (विभीषण) उन बालकों के साथ भिड़ गया ।। ७८४ ।। ।। बहोड़ा छंद ।। राम के शिशुओं ने लंकेश के हृदय में बाण खींचकर मारा। वह दानव भूमि पर गिर पड़ा और उसे अचेत जानकर बालकों ने उसका वध नहीं किया ।। ७८५ ।। तब वहाँ आकर सुग्रीव रुका और उसने कहा कि बालको ! कहाँ जाते हो ? तुम लोग बचकर जा नहीं सकते। तब उसके मस्तक का निशाना लगाकर मुनि-बालक ने बाण चलाया जो उसके मस्तक में लगा और बाण की तीक्ष्णता का अनुभव कर किंकर्तव्यविमूढ़ हो

क्रुद्ध । नल नील हनू अंगद सु जुद्ध । तब तीन तीन लै बाल बान । तिह हणे भाल मो रोस ठान ॥७८७॥ जो गए सूर सो रहे खेत । जो बचे भाज ते हुइ अचेत । तब तकि तकि सिस कसि बाण । दल हत्यो राघवी तज्जि काणि ॥ ७८८ ॥ ॥ अनूप निराज छंद ॥ सु कोपि देखि कै बलं सु क्रुद्ध राघवी सिसं । बचित्र चित्रतं सरं बबर्ख बरखणो रणं । भभज्जि आसुरी सुतं उठंत भैकरी धुनं । भ्रमंत कुंडली क्रितं पपीड़ दारणं सरं ॥७८९॥ घुमंत घाइलो घणं ततच्छ बाणणो बरं । गगज्ज कालरो किलं गजंत जोधणो जुद्धं । चलंत तीछणो असं खिमंत धार उज्जलं । पपात अंगदादि के हनुवंत सुग्रिवं बलं ॥ ७९० ॥ गिरंत आसुरं रणं भभरम आसुरी सिसं । तजंत स्यामणो धरं भजंत प्रान लै भटं । उठंत अंध धुंधणो कबंध बंधतं कटं । लगंत बाणणो बरं गिरंत भूम अहवयं ॥ ७९१ ॥ पपात त्रिछणं धरं बबेग मार तुज्जणं । भरंत धूर भूरणं बमंत स्रोणतं मुखं । चिकार चावंडी नभं ठिकंत किंकरी फिरं ।

उठा ॥ ७८६ ॥ यह देखकर सारी सेना दब चली और नल, नील, हनुमान, अंगद आदि समेत क्रोधित होकर युद्ध करने लगी । तब बालकों ने तीन-तीन बाण लेकर क्रोधित हो इन सबके मस्तक पर दे मारे ॥ ७८७ ॥ जो शूरवीर मैदान में रहे वे मृत्यु को प्राप्त हुए और जो बच रहे वे होश भुलाकर भाग खड़े हुए । तब उन बालकों ने निशाना लगा कस-कसकर बाण मारे और अभय होकर राघवी सेना का हनन कर दिया ॥ ७८८ ॥ ॥ अनूप निराज छंद ॥ राघव के बालकों का बल और क्रोध देखकर और उनके बिचित्र प्रकार से युद्ध में बाण-वर्षा को देखकर आसुरी सेना भयंकर ध्वनि करती भाग खड़ी हुई और कुण्डलाकार में भ्रमण करने लगी ॥ ७८९ ॥ युद्ध-स्थल में अनेकों घायल तीखे बाणों की मार खाते घूमने लगे और कितने ही योद्धा गरजने लगे तथा कितने ही असहाय हो प्रयाण करने लगे । श्वेत धार वाली तीक्ष्ण कृपाणें युद्धस्थल में चलने लगीं । अंगद, हनुमान, सुग्रीव आदि के बल का क्षय होने लगा ॥ ७९० ॥ असुर रण में गिरने लगे और उन्हें यह भ्रम हो गया कि ये बालक मायावी असुर-बालक हैं । वे धरती को छोड़ और प्राणों को लेकर भागने लगे । कबन्ध बन्धन काट कर अंधाधुंध उठने लगे और बाण लगने से पुनः युद्धस्थल में गिरने लगे ७९१ वीर बाणों की मार से शीघ्रता से धरती पर गिरने लगे । उनके शरीर पर धूल लिपटने लगी और मुंह से रक्त का वमन होने लगा

भकार भूत प्रेतणं डिकार डाकणी डुलं ॥ ७९२ ॥ गिरै धरं धुरं धरं धरा धरं धरं जिवं । भभज्जि तउणतं तणे उठंत भै करी धुनं । उठंत गद्द सद्दणं ननद्द निफिरं रणं । बबर्ख साइकं सितं घुमंत जोधणो ब्रणं ॥ ७९३ ॥ भजंत भै धरं भटं बिलोक भरथणो रणं । चल्यो चिराइकं चपी बबर्ख साइको सितं । सु क्रुद्ध साइकं सिसं बबद्ध भालणो भटं । पपात प्रिथविगं हठी भमोह आस्त्र मंगतं ॥ ७९४ ॥ भभज्जि भीतणो भटं ततज्जि भरथणो भुअं । गिरंत सुत्थतं उठं करीब राघवं तटं । जुझे सु भ्रात भरथणो सुणंत जानकी पतं । पपात भूमिणो तलं अपीड़ पीड़त दुखं ॥ ७९५ ॥ ससज्ज जोधणं जुधो सु क्रुद्ध बद्धणो बरं । ततज्जि जग्ग मंडलं अदंड दंडणो नरं । सु गज्ज बज्ज बाजणो उठंत भै धरी सुरं । सनद्ध बद्ध खै दलं सबद्ध जोधणो बरं ॥ ७९६ ॥ चचक्क चाँवडी नभं फिकंत किंकरी धरं । भखत मास हारणं बमंत ज्वाल दुरगयं । पुअंत पारबती सिरं नचंत ईसणो रणं । भकंत भूत प्रेतणो

चील्हें आसमान में चीखती गोलाकार घूमने लगीं और युद्धस्थल में भूत-प्रेत ढकारते हुए तथा डाकिनियाँ डकारती हुई विचरने लगीं ॥ ७९२ ॥ वीर धरती पर जिस ओर भी थे, गिरने लगे । भागते हुए वीरों के शरीर से रक्त बहने लगा और भयानक ध्वनियाँ उठने लगीं । युद्ध में नफ़ीरों का निनाद भर उठा और वीरगण तीर बरसाते हुए तथा घायल होते हुए घूमने लगे ॥ ७९३ ॥ भरत के युद्ध को देख कई शूरवीर भयभीत हो भागने लगे । इधर भरत क्रोधित होकर और बाण-वर्षा करने लगे । मुनिपुत्रों ने क्रोधित होकर बाण-वर्षा की और हठी भरत को धराशायी कर दिया ॥ ७९४ ॥ भरत को धरती पर गिरा छोड़ शूरवीर भाग खड़े हुए और लाशों पर उठते-गिरते रुदन करते हुए रामचन्द्र के पास पहुँचे । जानकीपति राम ने जब भरत के जूझ जाने की बात सुनी, तो अत्यन्त दुःख से पीड़ित हो वे भूमि पर गिर पड़े ॥ ७९५ ॥ योद्धाओं की सेना को सुसज्जित कर क्रोधित हो वीरों का वध करने के लिए और अदण्डनीयों को दण्डित करने के लिए राम स्वयं चल पड़े । हाथी और घोड़ों की आवाज़ को सुन देवगण भी भयभीत हो उठे और इस सैन्यदल में सुसज्जित सेनाओं का क्षय करनेवाले वीर योद्धा भी थे ॥ ७९६ ॥ चील्हें आसमान में घूमती हुई धरती पर विचरण करने लगीं । दुर्गादेवी अगणित ज्वालाएँ बरसाती हुई मास का भक्षण करनेवाली और ऐसा लग रहा था कि पार्वती

अकंत बीर बैतलं ॥ ७९७ ॥ (मू०ग्रं०२४९) ॥ तिलका छंद ॥ जुट्टे बीरं। छुट्टे तीरं। फुट्टे अंगं। तुट्टे तंगं ॥ ७९८ ॥ भग्गे बीरं। लग्गे तीरं। पिक्खे रामं। धरमं धामं ॥ ७९९ ॥ जुज्झे जोधं। मच्चे क्रोधं। बंधो बालं। बीर उतालं ॥ ८०० ॥ ढुक्के फेर। लिन्ने घेर। बीरं बाल। जिउ द्वैकाल ॥ ८०१ ॥ तज्जी काण। मारे बाण। डिग्गे बीर। भग्गे धीर ॥ ८०२ ॥ कट्टे अंग। डिग्गे जंग। सुद्धं सूर। भिन्ने नूर ॥ ८०३ ॥ लक्खें नाहि। भग्गे जाहि। तज्जे राम। धरमं धाम ॥ ८०४ ॥ अउरैं भेस। खुल्ले केस। शस्त्रं छोर। दै दै कोर ॥ ८०५ ॥ ॥ दोहरा ॥ दुहूँ दिसन जोधा हरे पर्यो जुद्ध दुइ जाम। जूझ सकल सैना गई रहिगे एकल राम ॥ ८०६ ॥ तिहू भ्रात बिनु भै हन्यो अर सभ दलहि सँघार। लव अर कुश जूझन निमित लीने राम हकार ॥ ८०७ ॥ सैना सकल जुझाइ कै कति बैठे छप जाइ। अब हम सो तुमहूँ लरो मुनि सुनि कउशल

का स्वामी शिव युद्धस्थल में ताण्डव नृत्य कर रहा हो। युद्धस्थल में भूत-प्रेत और वीर बैतालों का प्रलाप सुनाई पड़ने लगा ॥ ७९७ ॥ ॥ तिलका छंद ॥ वीर जुट गए, तीर छूटने लगे, अंग फूटने लगे और घोड़ों की ज़ीनें टूटने लगीं ॥ ७९८ ॥ तीर लगने से वीर भागने लगे। धर्म के धाम ने यह सब देखा ॥ ७९९ ॥ क्रोधित होकर योद्धा जूझने लगे और कहने लगे कि शीघ्र ही इन बालकों को बांध लो ॥ ८०० ॥ सैनिक उमड़ पड़े और काल के समान तेजस्वी दोनों वीर बालकों को घेर लिया ॥ ८०१ ॥ बालकों ने अभय होकर बाण चलाये जिससे वीर गिर पड़े और बड़े-बड़े धैर्यवान वीर भाग खड़े हुए ॥ ८०२ ॥ कटे हुए योद्धा अंगों के योद्धा युद्ध में गिर पड़े। शूरवीर अत्यन्त तेजवान दिखाई पड़ रहे थे ॥ ८०३ ॥ वे बिना कुछ देखते हुए भागे जा रहे हैं। वे धर्म के धाम राम को भी छोड़ चले हैं ॥ ८०४ ॥ वीर वेश बदलकर, केशों को खुला छोड़कर और शस्त्रों को त्यागकर युद्धस्थल के किनारों से भागे चले जा रहे हैं ॥ ८०५ ॥ ॥ दोहा ॥ दोनों ओर से योद्धा मारे गये और दो प्रहर (तीन घंटे का एक प्रहर) युद्ध चलता रहा। राम की सारी सेना जूझ गयी और अब केवल राम अकेले रह गए ॥ ८०६ ॥ तीनों भाइयों का बिना किसी डर के सेना-समेत लव और कुश ने संहार कर दिया तथा अब लव कुश ने युद्ध के लिए राम को भी दिया ८०७ मुनि बालकों ने राम से यह कहा

राइ ॥ ८०८ ॥ निरख बाल निज रूप प्रभ कहे बैन मुसकाइ । कवन तात बालक तुमै कवन तिहारी माइ ॥ ८०९ ॥ ॥ अकरा छंद ॥ मिथलापुर राजा । जनक सुभाजा । तिह सिस सीता । अत सुभ गीता ॥ ८१० ॥ सो बनि आए । तिह हम जाए । हैं दुइ भाई । सुनि रघुराई ॥ ८११ ॥ सुनि सिय रानी । रघुबर जानी । चित पहिचानी । मुख न बखानी ॥ ८१२ ॥ तिह सिस मान्यो । अत बल जान्यो । हठि रण कीनो । कह नही दीनो ॥ ८१३ ॥ कसि सर मारे । सिस नही हारे । बहु बिध बाणं । अत धनु ताणं ॥ ८१४ ॥ अंग अंग बेधे । सभ तन्न छेदे । सभ दल सूझे । रघुबर जूझे ॥ ८१५ ॥ जब प्रभ मारे । सभ दल हारे । बहु बिधि भागे । दुइ सिस आगे ॥ ८१६ ॥ फिर न निहारें । प्रभ न चितारें । ग्रह दिस लीना । असरण कीना ॥ ८१७ ॥ ॥ चौपई ॥ तब दुहूं बाल अयोधन देखा । मनो रुद्र कीड़ा बन पेखा । काट धुजन के बिचछ सवारे ।

कि हे कोशलराज ! आप पूरी सेना को नष्ट करवाकर कहाँ छुप गए हैं । अब आप हमसे युद्ध कीजिए ॥ ८०८ ॥ बच्चों को अपने स्वरूपवाला ही देखकर प्रभु राम ने मुस्कुराकर पूछा कि हे बालको ! तुम लोगों के माता-पिता कौन हैं ? ॥ ८०९ ॥ ॥ अकरा छंद ॥ मिथिलापुर के राजा जनक की पुत्री सीता शुभ्रगीत के समान सुन्दर है ॥८१०॥ हे रघुराज ! वह वन मे आयी हैं और उसने हमें जन्म दिया है तथा हम दो भाई हैं ॥ ८११ ॥ सीता ने जब सुना और उसे राम के बारे में जानकारी मिली, तब वह पहचानते हुए भी मुख से न बोली ॥ ८१२ ॥ उसने पुत्रों को मना किया और बताया कि राम अत्यन्त बलशाली हैं । तुम हठपूर्वक उनसे युद्ध कर रहे हो । यह सब कहते हुए भी सीता ने पूरी बात नहीं कही ॥ ८१३ ॥ वे बालक हारकर पीछे नहीं हटे और कसकर बहुत प्रकार से धनुष तान-तानकर बाण चलाते रहे ॥ ८१४ ॥ श्रीराम का अंग-अंग बिंध गया और सारा शरीर छिद गया । सारे दल को यह पता लग गया कि श्रीराम जूझ गये हैं ॥ ८१५ ॥ जब प्रभु राम मृत्यु को प्राप्त हुए, तब सम्पूर्ण दल उन दोनों बालकों के सामने जैसे-तैसे भागने लगा ॥ ८१६ ॥ वे मुड़कर प्रभु राम को भी नहीं देख रहे थे और अशरणागत हो जिस दिशा में बन पड़ा भाग निकले ॥ ८१७ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब दोनों बालकों ने निश्चिन्त होकर रणभूमि को इस प्रकार देखा मानो रुद्र वन मे सर्वेक्षण कर रहे हो

भूखन अंग अनूप उतारे ।।८१८।। मूरछ भए सभ लए उठाई । बाज सहित तह गे जह माई । देख सिया पत (मू०ग्रं०२५०) मुख रो दीना । कह्यो पूत बिधवा मुहि कीना ।। ८१९ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटके रामवतार लव बाज बाँधवे राम बधह ।।

सीता ने सभ जीवाए कथनं ।।

।। चौपई ।। अब मोकउ काशट दे आना । जरउ लागि पति होवँ मसाना । सुनि मुनिराज बहुत बिध रोए । इन बालन हमरे सुख खोए ।। ८२० ।। जब सीता तन रहा कि काहूं । जोगअगनि उपराज सु छाडूं । तब इम भई गगन ते बानी । कहा भई सीता तै इयानी ।। ८२१ ।। ।। अरूपा छंद ।। सुनी बानी । सिया रानी । लयो आनी । करै पानी ।।८२२।। ।। सीता बाच मन मै ।। ।। दोहरा ।। जउ मन बच करमन सहित राम बिना नही अउर । तउ ए राम

ध्वजाओं को काटकर वृक्षों पर लगा दिया गया और सैनिकों के अनुपम आभूषणों को अंगों से उतारकर फेंक दिया गया ।। ८१८ ।। जितने मूच्छित थे, बालकों ने उन्हें उठा लिया और अश्वों-समेत वहाँ पहुँचे जहाँ सीता माता बैठी थीं । सीता मृतक पति को देख कहने लगी, हे पुत्रो ! तुमने मुझे विधवा कर दिया है ।। ८१९ ।।

।। श्री बचित्र नाटक के रामावतार में लव के अश्व बाँधने और राम-वध के अध्याय की समाप्ति ।।

सीता द्वारा सबको जीवित करने का कथन

।। चौपाई ।। अब मुझे लकड़ी लाकर दो ताकि मैं पति के साथ जलकर भस्म हो जाऊँ । यह सुन मुनिराज (वाल्मीकि) बहुत विलाप करने लगे और कहने लगे कि इन बालकों ने तो हमारे सभी सुखों का हरण कर लिया है ।। ८२० ।। जब सीता ने यह कहा कि मैं योग-अग्नि अपने शरीर से ही निकालकर अपने शरीर का त्याग कर दूँगी तो उस समय आकाशवाणी हुई, जिसमें यह कहा गया कि ऐ सीता ! तू क्यों बच्चों जैसा कार्य कर रही है ।। ८२१ ।। ।। अरूपा छंद ।। सीता ने बात सुनी और अपने हाथ मे जल ले लिया ।। ८२२ ।। ।। सीता उवाच मन में ।। ।। दोहा ।। यदि मेरे मन, वचन और कर्म मे राम के बिना किसी अन्य का कभी भी निवास

सहित जिऐ कह्यो सिया तिह ठउर ॥ ८२३ ॥ ॥ अरूपा छंद ॥ सभै जागे । भ्रमं भागे । हठं त्यागे । पगं लागे ॥ ८२४ ॥ सिया आनी । जगं रानी । धरम धानी । सती मानी ॥ ८२५ ॥ मनं भाई । उरं लाई । सती जानी । मनैं मानी ॥ ८२६ ॥ ॥ दोहरा ॥ बहुबिधि सियहि समोध कर चले अजुधिआ देस । लव कुश दोउ पुत्रनि सहित स्री रघुबीर नरेश ॥ ८२७ ॥ ॥ चौपई ॥ बहुतु भाँति कर सिसन समोधा । सिय रघुबीर चले पुर अउधा । अनिक भेख से शस्त्र सुहाए । जानत तीन राम बन आए ॥ ८२८ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके रामवतारे तिहू भ्रिरातन सैना सहित जीबो ॥

सीता दुहू पुत्रन सहित पुरी अवध प्रवेश कथनं ॥

॥ चौपई ॥ तिहूँ मात कंठन सो लाए । दोउ पुत्र पाइन लपटाए । बहुर आन सीता पग परी । मिट गई तहीं दुखन की

न हुआ हो तो इसी स्थान पर ये सभी राम-सहित जीवित हो जायें ॥ ८२३ ॥ ॥ अरूपा छंद ॥ सभी जीवित हो उठे, सबका भ्रम दूर हो गया और सभी हठ त्यागकर सीता के चरणों में आ गये ॥ ८२४ ॥ सीता जगत की रानी धर्म की स्रोत सती के रूप में मानी गयी ॥ ८२५ ॥ राम के मन को वह भाने लगी और उसे सती जानते हुए उन्होंने हृदय से लगा लिया ॥ ८२६ ॥ ॥ दोहा ॥ बहुत प्रकार से सीता को समझाते हुए लव-कुश को साथ ले श्री रघुवीर अयोध्या की ओर चल पड़े ॥ ८२७ ॥ ॥ चौपाई ॥ बच्चों को बहुत प्रकार समझाया और सीता-राम अवध की ओर चल पड़े । तीनों ने विभिन्न वेशों में शस्त्र धारण कर रखे थे और ऐसा लग रहा था मानो तीन राम चल रहे हों ॥ ८२८ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक के रामावतार में सैना-सहित तीनों भ्राताओं को जीवित करना समाप्त

घरी ॥ ८२९ ॥ बाजमेध पूरन किय जग्गा । कउशलेश रघुबीर अभग्गा । ग्रिह सपूत दो पूत सुहाए । देस बिदेश जीत ग्रह आए ॥ ८३० ॥ जेतिक कहे सु जग्ग बिधाना । बिध पूरब कीने ते नाना । एक घाट सत कीने जग्गा । षट पट चक्र इंद्र उठ भग्गा ॥ ८३१ ॥ राजसूइ कीने दस बारा । बाजमेधि इक्कीस प्रकारा । गवालंभ अजमेध अनेका । भूपमेध कर सके अनेका ॥ ८३२ ॥ नागमेध खट जग्ग कराए । जउन करे जनमे (मू०ग्रं०२५१) जय पाए । अउरै गनत कहाँ लग जाऊँ । ग्रंथ बढन ते हिऐ डराऊँ ॥ ८३३ ॥ दस सहंस्र दस बरख प्रमाना । राज करा पुर अउध निधाना । तब लउ काल दशा नियराई । रघुबर सिरि म्रित डंक बजाई ॥ ८३४ ॥ नमशकार तिह बिबिधि प्रकारा । जिन जग जीत कर्‌यो बस सारा । सभहन सीस डंक तिह बाजा । जीत न सका रंक अरु राजा ॥ ८३५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जे तिन की शरनी परे कर दै लए बचाइ । जो नही कोऊ बाचिआ किशन बिशन रघुराइ ॥ ८३६ ॥ ॥ चौपई छंद ॥ बहु बिधि

रघुवीर ने अश्वमेध यज्ञ सम्पूर्ण किया और उनके घर में दो पुत्र शोभायमान होने लगे जो देश-विदेश को जीतकर अपने घर वापस आये ॥ ८३० ॥ यज्ञ के जितने भी कर्मकाण्ड थे, उन सबको विधिपूर्वक पूरा किया गया । एक ही स्थान पर सात यज्ञ किए जिन्हें देखकर चकित इन्द्र भी भाग खड़ा हुआ ॥ ८३१ ॥ दस राजसूय यज्ञ किये गये और इक्कीस प्रकार के अश्वमेध किये गये । गोमेध और अजमेध, भूपमेध आदि अनेकों यज्ञ किये गये ॥ ८३२ ॥ छः नागमेध यज्ञ किये गये जिनको करने से जीवन में विजय प्राप्त होती है । अन्यों की गिनती मैं कहाँ तक करूँ कि ग्रंथ के बढ जाने का भय बना हुआ है ॥ ८३३ ॥ दस हज़ार दस वर्ष तक श्रीराम ने अवधपुरी में राज्य किया, तब काल-दशा के अनुसार श्रीरघुवीर के सिर पर मृत्यु ने डंका बजा दिया ॥ ८३४ ॥ काल को मैं विविध प्रकार से नमस्कार करता हूँ, जिसने सारे संसार को जीतकर अपने वश में कर रखा है । काल का नगाड़ा हर एक के सिर पर बजा है और कोई भी रंक अथवा राजा इसे जीत नहीं सका है ॥ ८३५ ॥ ॥ दोहा ॥ जो इसकी शरणागत हुआ उसको इसने बचा लिया, और जो इसकी शरणागत नहीं हुआ, चाहे वह कृष्ण हो चाहे वह विष्णु हो चाहे वह राम हो वह नहीं बच सका ८३६ चौपाई छंद बहुत प्रकार से राजकाज करते हुए

करो राज को साजा । देस देस के जीते राजा । शाम दाम अरु दंड सभेदा । जिह बिध हुती शाशना बेदा ॥ ८३७ ॥ बरन बरन अपनी क्रित लाए । चार चार ही बरन चलाए । छत्री करें बिप्र की सेवा । बैस लखें छत्री कह देवा ॥ ८३८ ॥ शूद्र सभन की सेव कमावैं । जह कोई कहै तही वह धावैं । जैसक हुती बेद शासना । निकसा तैस राम की रसना ॥८३९॥ रावणादि रण हांक संघारे । भांत भांत सेवक गण तारे । लंका दई टंक जनु दीनो । इह बिध राज जगत मै कीनो ॥ ८४० ॥ ॥ दोहरा छंद ॥ बहु बरखन लउ राम जी राज करा अर टाल । ब्रहमरंध्र कह फोर कै भ्यो कउशलिआ काल ॥ ८४१ ॥ ॥ चौपई ॥ जैस म्रितक के हुते प्रकारा । तैसेइ करे बेद अनुसारा । राम सपूत जाहि घर माही । ताकहु तोट कोऊ कह नाही ॥ ८४२ ॥ बहु बिधि गति कीनी प्रम माता । तब लउ भई कैकई शांता । ता के मरत सुमित्रा मरी । देखहु काल क्रिआ कस करी ॥ ८४३ ॥ एक दिवस जानकि तिय सिखा । भीत भए रावण कह लिखा । जब

साम, दाम, दण्ड, भेद और शासन के अन्य तरीकों को अपनाते हुए राजा राम ने देश-विदेश के अन्य राजाओं को जीत लिया ॥ ८३७ ॥ प्रत्येक वर्ण को उसके कार्य में लगाया और वर्णाश्रम धर्म को चलाया । क्षत्री विप्र की सेवा करने लगे और वैश्य क्षत्रियों को देवतुल्य मानने लगे ॥ ८३८ ॥ शूद्र सबों की सेवा करने लगे और जो जहाँ कहता था वहीं जाने लगे । राम के मुख से सदैव वेद के अनुसार शासन करने की बात ही निकलती थी ॥ ८३९ ॥ रावणादि का संहार करते हुए भिन्न-भिन्न सेवक और गणों को तारते हुए लंका से कर वसूलते हुए श्रीराम ने राज्य किया ॥ ८४० ॥ ॥ दोहा छंद ॥ इस प्रकार बहुत वर्षों तक श्रीराम ने राज्य किया और एक दिन कौशल्या के ब्रह्मरन्ध्र को फोड़ते हुए उसका प्राणान्त हो गया ॥ ८४१ ॥ ॥ चौपाई ॥ जिस प्रकार मृतक का क्रिया-कर्म होता है, वेद-अनुसार वैसा ही किया गया । सुपुत्र राम घर में गये (और स्वयं अवतार होने के नाते) उन्हें किसी प्रकार की कमी नहीं थी ॥ ८४२ ॥ बहुत प्रकार से माता की गति के लिए कर्मकाण्ड किये गये तब तक कैकेयी भी मृत्यु को प्राप्त हो गयी । उसकी मृत्यु के बाद काल की क्रिया देखो, सुमित्रा भी मृत्यु को प्राप्त हो गयी ८४३ एक दिन जानकी ने स्त्रियों को बताते हुए दीवार पर रावण का चित्र बना दिया जब रघुवर ने यह देखा तो

रघुबर तिह आन निहारा। कछुक कोप इम बचन उचारा ॥ ८४४ ॥ ॥ राम बाच मन मै ॥ याको कछु रावन सो हेता। ता ते चित्र चित्र कै देखा। बचन सुनत सीता भई रोखा। प्रभ मुहि अजहुँ लगावत दोखा ॥ ८४५ ॥
॥ दोहरा ॥ जउ मेरे बच करम करि ह्रिदै बसत रघुराइ। प्रिथी पैंड मुहि दीजिऐ लीजै मोहि मिलाइ ॥ ८४६ ॥
॥ चौपई ॥ सुनत बचन धरनी फट गई। लोप सिया तिह भीतर भई। चकृत रहे निरख (मू०ग्रं०२५२) रघुराई। राज करन की आस चुकाई ॥ ८४७ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह जग धुअरो धउलहरि किह कै आयो काम। रघुबर बिनु सिय ना जिऐ सिय बिन जिये न राम ॥ ८४८ ॥ ॥ चौपई ॥ द्वारे कह्यो बैठ लछमना। पैठ न कोऊ पावै जना। अंतहि पुरहि आप पगु धारा। देहि छोरि त्रितलोक सिधारा ॥ ८४९ ॥
॥ दोहरा ॥ इंद्रमती हित अज न्रिपत जिम ग्रिह तज

कुछ कुपित होकर ऐसा कहा ॥ ८४४ ॥ ॥ राम उवाच मन में ॥ इसको (सीता को) यदि रावण से कुछ स्नेह रहा होगा तभी तो वह उसका चित्र बनाकर देख रही है। यह वचन सुन सीता रुष्ट हो उठी और कहने लगी कि प्रभु राम अभी भी मुझ पर दोषारोपण कर रहे हैं ॥ ८४५ ॥
॥ दोहा ॥ यदि मेरे वचन और कर्म तथा हृदय में सदैव रघुराज राम ही बसते हों तो हे पृथ्वी माता ! तुम मुझे स्थान देकर अपने में मिला लो ॥ ८४६ ॥ ॥ चौपाई ॥ यह वचन सुनते ही धरती फट गयी और सीता उसमें समा गयी। राम यह देख चकित हो उठे और दुःख में अब राज्य करने की आशा उन्होंने समाप्त कर दी ॥ ८४७ ॥ ॥ दोहा ॥ यह संसार धुएँ का महल है जो किसी के काम नहीं आया। राम के बिना सीता जीवित नहीं रह सकी और सीता के बिना राम का जीवित रहना असंभव है ॥ ८४८ ॥ ॥ चौपाई ॥ राम ने लक्ष्मण से कहा कि तुम द्वार पर बैठो और अन्दर कोई न आने पाये। राम स्वयं महल में प्रविष्ट हुए और शरीर त्यागकर इस मृत्युलोक को छोड़ चले गए ॥ ८४९ ॥
दोहा जिस प्रकार राजा अज ने इन्दुमती के लिए योग धारण कर

लिय जोग। तिम रघुबर तन को तजा स्री जानकी बियोग ॥ ८५० ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक रामवतारे सीता के हेत म्रितलोक से गए धिआइ समापतम ॥

अथ तीनो भ्राता त्रीअन सहित मरबो कथनं ॥

॥ चौपई ॥ रउर परी सगरे पुर माही। काहूं रही कछू सुध नाही। नर नारी डोलत दुखिआरे। जानुक गिरे जूझि जुझिआरे ॥ ८५१ ॥ सगर नगर महि पर गई रउरा। ब्याकुल गिरे हसत अरु घोरा। नर नारी मन रहत उदासा। कहा राम कर गए तमाशा ॥ ८५२ ॥ भरथउ जोग साधना साजी। जोग अगन तन ते उपराजी। ब्रहमरंध्र झट दैकर फोरा। प्रभ सो चलत अंग मही मोरा ॥ ८५३ ॥ सकल जोग के किए बिधाना। लछमन तजे तैस ही प्राना। ब्रहमरंध्र लछमन फुन फूटा। प्रभ चरनन तर प्रान निखूटा ॥ ८५४ ॥ लव कुश दोऊ तहाँ चल गए।

लिया था और घर का त्याग कर दिया था, उसी प्रकार जानकी के वियोग मे भी राम ने शरीर का त्याग कर दिया ॥ ८५० ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार में सीता के हित (राम) मृत्युलोक से गये अध्याय समाप्त ॥

तीनों भ्राताओं का स्त्रियों-सहित-मरण-कथन प्रारम्भ

॥ चौपाई ॥ सारे नगर में कोलाहल मच गया और किसी को कोई सुध न रही। नर-नारी दुःखी होकर इस भाँति डोलने लगे मानो रण-स्थल में योद्धा जूझकर गिरकर तड़फ रहे हों ॥ ८५१ ॥ सारे नगर मे कुहराम मच गया और हाथी तथा घोड़े भी व्याकुल होकर गिरने लगे। राम यह क्या खेल खेल गये, इस बात को सोचकर नर-नारी उदास रहने लगे ॥ ८५२ ॥ भरत ने भी योगसाधना करकर अपने तन से योगाग्नि उत्पन्न की और झटककर अपने ब्रह्मरन्ध्र को फोड़कर प्रभु राम की ओर निश्चित रूप से चल पड़े ॥ ८५३ ॥ सकल प्रकार की योगसाधना करते हुए लक्ष्मण ने भी यही किया लक्ष्मण का भी ब्रह्मरंध्र फट गया और प्रभु चरणों में उसके भी प्राण निकल गये ८५४ । लव-कुश दोनों ने

रघुबर सियहि जरावत भए। अर पित भ्रात तिहूँ कह दहा। राज छत्र लव के सिर रहा॥ ८५५॥ तिहुँअन की इसत्री तिह आई। संगि सती ह्वै सुरग सिधाई। लव सिर धरा राज का साजा। तिहूँअन तिहूँ कुंट किय राजा॥ ८५६॥ उत्तर देश आपु कुश लीआ। भरथ पुत्र कह पूरब दीआ। दच्छन दिय लच्छन के बाला। पच्छम शत्रुघन सुत बैठाला॥ ८५७॥ ॥ दोहरा॥ राम कथा जुग जुग अटल सभ कोई भाखत नेत। सुर बास रघुबर करा सगरी पुरी समेत॥ ८५८॥ (मू०ग्रं०२५३)

॥ इति राम भिरात त्रीअन सहित सुरग गए॥ सगरी पुरी सहित सुरग गए॥

॥ चौपई॥ जो इह कथा सुनै अरु गावै। दूख पाप तिह निकटि न आवै। बिशन भगति की ए फल होई। आधि ब्याधि छ्वै सकै न कोई॥८५९॥ संमत सत्रह सहस पचावन। हाड़ वदी प्रिथमै सुख दावन। त्व प्रसादि करि ग्रंथ सुधारा। भूल परी लहु लेहु सुधारा॥ ८६०॥ ॥ दोहरा॥ नेत्र तुंग

आगे होकर सीता और राम का दाह-संस्कार किया। उन्होंने पिता के भाइयों का भी क्रिया-कर्म किया और इस प्रकार राजछत्र लव ने धारण किया॥ ८५५॥ तीनों भाइयों की स्त्रियाँ भी वहाँ आयीं और वे भी सती होकर स्वर्ग सिधार गयीं। लव ने राज्य धारण किया और तीनों को तीनों दिशाओं का राजा बना दिया॥ ८५६॥ उत्तर का देश कुश ने स्वयं लिया तथा भरत-पुत्र को पूर्व, लक्ष्मण-सुत को दक्षिण तथा शत्रुघ्न के पुत्र को पश्चिम दिशा का राज्य प्रदान कर दिया॥ ८५७॥ ॥ दोहा॥ नित्य कही जानेवाली राम की कथा युगों-युगों तक अमर रहेगी और इस प्रकार सारे नगर समेत रघुवीर राम ने स्वर्गवास किया॥ ८५८॥

॥ इति राम-भ्राता स्त्रियों-सहित स्वर्ग गये। सारे नगर-सहित स्वर्ग गये॥

॥ चौपाई॥ जो इस कथा को सुनेगा अथवा इसका गायन करेगा, दुःख एवं पाप उसके पास नहीं आएँगे। विष्णु (रामावतार की) भक्ति का यह फल होगा कि कोई आधि-व्याधि उसे छू नहीं सकेगी॥ ८५९॥ संवत सत्रह सौ पचपन की अषाढ़ वदी प्रथमा को तुम्हारी (प्रभु की) कृपा से सुधारकर इस ग्रन्थ को संपूर्ण किया; यदि फिर भी इसमें कोई भूल रह गई हो तो (कृपया) सुधार लें॥ ८६०॥ ॥ दोहा॥ पर्वत की घाटी मे सतलज नदी के किनारे पर श्री भगवत् प्रभु की कृपा से रघुव

के चरन तर सतद्रव तीर तरंग। स्री भगवत पूरन कियो रघुबर कथा प्रसंग ॥ ८६१ ॥ साध असाध जानो नही बाद सुबाद बिबादि। ग्रंथ सकल पूरण कियो भगवत क्रिपा प्रसादि ॥ ८६२ ॥ ॥ स्वैया ॥ पाँइ गहे जब ते तुमरे तब ते कोऊ आँख तरे नही आन्यो। राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहैं मत एक न मान्यो। सिम्रिति शासत्र बेद सभै बहु भेद कहै हम एक न जान्यो। स्री असिपान क्रिपा तुमरी करि मै न कह्यो सभ तोहि बखान्यो ॥ ८६३ ॥ ॥ दोहरा ॥ सगल द्वार कउ छाडि कै गह्यो तुहारो द्वार। बाँहि गहे की लाज असि गोबिंद दास तुहार ॥ ८६४ ॥

॥ इति स्री रामाइण समापतम सतु सुभम सतु ॥

१ ओं वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

अथ क्रिशना अवतार इक्कीसमो अवतार कथनं ॥

॥ चौपई ॥ अब बरणो क्रिशना अवतारू। जैस भाँत

कथा के प्रसंग को पूरा किया गया ॥ ८६१ ॥ साधु को सभी असाधु के रूप में तथा सुसंवाद को सभी विवाद के रूप में नहीं जानना चाहिए। यह सारा ग्रन्थ भगवत्-कृपा से संपूर्ण हुआ है ॥ ८६२ ॥ ॥ सवैया ॥ हे परमात्मन्! जब से मैंने तुम्हारे चरण पकड़े हैं, तब से अब मेरी नजर में कोई ठहरता नहीं अर्थात् मुझे अन्य कोई भी अच्छा नहीं लगता। पुराण और कुरान तुम्हें राम और रहीम आदि अनेकों नामों और कथाओं के माध्यम से तुम्हें जानने की बात करते हैं, परन्तु मैं इनमें से किसी के भी मत को नहीं मानता। स्मृतियाँ, शास्त्र, वेद तुम्हारे अनेकों भेदों का वर्णन करते हैं, परन्तु मैं एक भी भेद से सहमत नहीं हूँ। हे खड्गधारी परमात्मन्! यह सब तुम्हारी कृपा से ही वर्णन हुआ है। मुझमें भला इतना (लिख जाने का) सामर्थ्य कहाँ (कि मैं इतना विशाल वर्णन कर सकूँ) ॥ ८६३ ॥ ॥ दोहा ॥ सारे द्वारों को छोड़कर मैंने, हे प्रभु! केवल तुम्हारा द्वार पकड़ा है। हे परमात्मन्! तुमने मेरी बाँह पकड़ी है। यह गोविंद तुम्हारा दास है; बाँह पकड़ने की लाज निभाना ॥ ८६४ ॥

॥ इति श्री रामायण की शुभ समाप्ति ॥

कृष्णावतार इक्कीसवाँ अवतार कथन प्रारम्भ

चौपाई अब मैं र का वणन करता हूँ कि कैसे मुरारि

बद धर्यो मुरारू । परम पाप ते भूम डरानी । डगमगात बिध तीर सिधानी ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ ब्रहमा गयो छीरनिध जहाँ । कालपुरख इसथित ते तहाँ । कहयो बिशन कह निकट बुलाई । क्रिशन अवतार धरो तुम जाई ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ कालपुरख के बचन ते संतन हेत सहाइ । मथरा मंडल के बिखै जनम धर्यो हरिराइ ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ जे जे क्रिशन चरित्र दिखाए । दसम बीच सभ भाख सुनाए । ग्यारा सहस बानवे छंदा । कहे दसम पुर बैठ अनंदा ॥ ४ ॥ (मू०ग्रं०२५४)

अथ देवी जू की उसतत कथनं ॥

॥ स्वैया ॥ होइ क्रिपा तुमरी हम पै तु सभै सगनंगुन ही धरिहों । जिय धार बिचार तबै बर बुद्धि महाँ अगनंगुन को हरिहों । बिनु चंड क्रिपा तुमरी कबहूँ मुख ते नहो अचछर हउ करिहों । तुमरो कर नामु किधो तुलहा जिम बाक समुंद्र बिखै तरिहों ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ रे मन भज तूँ सारदा

ने शरीर धारण किया। पृथ्वी पाप से डगमगाती हुई विधाता के पास पहुँची ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ क्षीरसागर में जहाँ काल-पुरुष अवस्थित थे, ब्रह्मा वहाँ पहुँचे। कालपुरुष ने विष्णु को पास बुलाकर कहा कि (तुम धरती पर जाकर) कृष्णावतार धारण करो ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ काल-पुरुष की आज्ञा से संतों के हित के लिए विष्णु ने मथुरा मंडल में आकर जन्म लिया ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ कृष्ण ने जो-जो खेल रूपी चरित्र दिखाये हैं, उनका दशम स्कंध में वर्णन है। दशम स्कंध में कृष्णावतार से सम्बन्धित ग्यारह हजार बानवे छंद हैं ॥ ४ ॥

देवी जी की स्तुति-कथन प्रारम्भ

॥ सवैया ॥ तुम्हारी कृपा होने पर ही मैं सर्वगुणों को धारण करूँगा। चित्त में तुम्हारे गुणों का विचार करता हुआ मैं सर्व अवगुणों का नाश करूँगा। हे चंडिके ! तुम्हारी कृपा के बिना मेरे मुँह से एक अक्षर भी नहीं निकल सकता है; तुम्हारे नाम की नाव पर ही मैं वाक्य रूपी समुद्र को पार कर सकता हूँ ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ हे मन ! तू अगणित गुणों को धारण शारदा का स्मरण कर और यदि उसकी कृपा

अनगन गुन है जाहि । रचौं ग्रंथ इह भागवत जउ वै क्रिपा कराहि ॥ ६ ॥ ॥ कवितु ॥ संकट हरन सभ सिद्ध की करन चंड तारन तरन शरन लोचन बिसाल है । आदि जाकै आहम है अंत को न पारावार शरन उबारन करन प्रतिपाल है । असुर सँघारन अनिक भुख जारन सो पतित उधारन छडाए जमजाल है । देवी बर लाइक सबुद्धिहू की दाइक सु देह बर पाइक बनावै ग्रंथ हाल है ॥ ७ ॥ ॥ स्वैया ॥ अद्र सुता हूँ की जो तनया महिखासुर की मरता फुनि जोऊ । इंद्र को राजहि की बिधया करता बध सुंभ निसुंभहि दोऊ । जो जप कै इह सेव करै बर को सु लहै मन इच्छता सोऊ । लोक बिखै इह की सम तुल्ल गरीबनिवाज न दूसर कोऊ ॥ ८ ॥

॥ इति स्री देवी जू की उसतति समापतम ॥

अथ प्रिथमी ब्रहमा पहि पुकारत भई ॥

॥ स्वैया ॥ दइतन के भर ते उर ते जु भई प्रिथमी बहु भारहि भारी । गाइ को रूपु तबै धर कै ब्रहमा रिख पै चल

हो तो मैं इस भागवत (पर आधारित) ग्रन्थ की रचना करूँ ॥ ६ ॥ ॥ कवित्त ॥ सब संकटों को हरनेवाली, सिद्धियों को प्रदान करनेवाली, असहायों को भवसागर से पार करवानेवाली तथा विशाल नेत्रों वाली चंडिका है । जिसका आदि-अंत जानना कठिन है, जो शरणागत का उद्धार कर उसका पालन करनेवाली है, असुरों का संहार कर अनेक प्रकार की तृष्णाओं को समाप्त करनेवाली और मृत्यु-फांस से छुड़ानेवाली है, वही देवी वरदान देने और सुबुद्धि देने लायक़ है । उसकी कृपा हो तो इस ग्रन्थ की रचना हो सकती है ॥ ७ ॥ ॥ सवैया ॥ जो पर्वत की पुत्री है, महिषासुर का नाश करनेवाली, शुंभ-निशुंभ का वध करके इन्द्र को राज दिलानेवाली है । उसका जो जाप करके सेवा करता है, वह मनोवांछित फल प्राप्त करता है और सारे संसार में उसके समान गरीबनवाज़ दूसरा कोई नहीं होता है ॥ ८ ॥

॥ इति श्री देवी जी की स्तुति समाप्त ॥

पृथ्वी की ब्रह्मा के पास पुकार

सवैया दैत्यों के भार से और डर से जब पृथ्वी बहुत भारी

जाइ पुकारी । ब्रह्म कह्यो तुमहूँ हमहूँ मिल जाहि तहाँ जिह है ब्रतधारी । जाइ करैं बिनती तिह की रघुनाथ सुनो इह बात हमारी ।। ९ ।। ।। स्वैया ।। ब्रह्म के अग्र सभै धरकै सु तहाँ को चलै तन के तनिआ । तब जाइ पुकार करी तिह सामुहि रोवत ता मुनि ज्यो हनिआ । ता छबि की अति ही उपमा कब ने मन भीतर यौ गनिआ । जिम लूटे ते अग्रज चउधरी कै कुटवार पै कूकत है बनिआ ।। १० ।। लै ब्रह्मासुर सैन सभै तह दउर गए जह सागर भारी । जाइ प्रनाम करो तिनको अपनै लखि बारनि बार पखारी । पाइ परे चतुरानन ताहि के देखि बिवान तहा प्रतिधारी । ब्रह्म कह्यो ब्रहमा कह (मू०ग्रं०२५५) जाहु अउतार लै मै जर दैतन मारी ।। ११ ।। ।। स्वैया ।। स्रउनन मै सुनि ब्रह्म की बात सभै मन देवन के हरखाने । कै कै प्रनाम चले ग्रहि आपन लोक सभै अपने कर माने । ता छबि को जस उच्च महाँ कब ने अपने मन मै पहिचाने । गोधन भाँत गयो सम लोक मनो सुर जाइ बहोर कै आने ।। १२ ।। ।। ब्रह्म बाच ।। ।। दोहरा ।। फिरि हरि इह

हो गयी तो गाय का रूप धारण कर वह ऋषि ब्रह्मा के पास गई। ब्रह्मा ने कहा कि हम तुम दोनों उस महाविष्णु के पास चलते हैं और कहते हैं कि हे रघुनाथ! हम लोगों की प्रार्थना सुनो ।। ९ ।। ।। सवैया ।। ब्रह्मा को आगे करते हुए सभी बलशाली लोग उस ओर चले और मुनि आदि महाविष्णु के पास इस प्रकार रोने लगे कि मानो उन्हें किसी ने मारा हो। उस दृश्य की छवि कवि को वर्णित करते हुए कहा है कि वे ऐसे लग रहे थे कि जैसे चौधरी के द्वारा लूटे जाने पर कोतवाल के सम्मुख कोई बनिया चीखता-चिल्लाता हो ।। १० ।। ब्रह्मा सभी देवताओं और सेनाओं को साथ लेकर क्षीरसागर में पहुँचे और जाकर जल से (महाविष्णु के) चरण धोये। उस महाव्रतधारी कालपुरुष को देख चतुरानन ब्रह्मा उनके पाँव पड़े तथा इस पर परब्रह्म ने ब्रह्मा से कहा कि तुम जाओ, मैं अवतार लेकर दैत्यों का नाश करूँगा ।। ११ ।। ।। सवैया ।। ब्रह्मा की बात को सुन सभी देवता हर्षित हो उठे और अपनी बात को मनवाते हुए सभी प्रणाम करके अपने-अपने निवास पर चले गये। उस छवि को कवि ने पहचानते हुए कहा है कि वे इस प्रकार जा रहे थे मानो गायों का झुंड जा रहा हो ।। १२ ।। ।। ब्रह्म उवाच ।। ।। दोहा ।। फिर प्रभु ने सभी देवों को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम लोग भी जाकर अवतार

आज्ञा दई देवन सकल बुलाइ। जाइ रूप तुमहूँ धरो हउ हूँ धरिहों आइ ॥ १३ ॥ बात सुनी जब देवतन कोट प्रनाम जु कीन। आप समेत सुधामिऐ लीने रूप नवीन ॥ १४ ॥
॥ दोहरा ॥ रूप धरे सभ सुरन यौ भूम माहि इह भाइ। अब लीला देवकी की मुख ते कहौ सुनाइ ॥ १५ ॥

॥ इति स्री बिशन अवतार ह्वैबो बरननं ॥

अथ देवकी को जनम कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ उग्रसैन की कंनका नाम देवकी तास। सोमवार दिन जठर ते कीनो ताहि प्रकाश ॥ १६ ॥

॥ इति देवकी को जनम बरननं प्रिथम धिआइ समापतम सतु ॥

अथ देवकी को बर ढूंढबो कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ जबै भई वहि कंनिका सुंदर बर के जोगु। राज कही बर के नमित ढूंढहु अपना लोगु ॥ १७ ॥
॥ दोहरा ॥ दूत पठ्यो तिन जाइकै निरख्यो है बसुदेव। मदन

धारण करो और फिर मैं भी आता हूँ ॥ १३ ॥ जब देवताओं ने यह सुना तो प्रणाम करते हुए अपनी पत्नियों-समेत उन्होंने नवीन रूप (ग्वाल-ग्वालिनों का) धारण कर लिया ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ देवता सब इस प्रकार रूप धारण करके पृथ्वी पर आ गये और अब मैं देवकी की कथा कहता हूँ ॥ १५ ॥

॥ श्री विष्णु के अवतार होने के बर्णन की समाप्ति ॥

देवकी का जन्म-कथन

॥ दोहा ॥ उग्रसेन की देवकी नामक कन्या का जन्म सोमवार के दिन हुआ ॥ १६ ॥

इति देवकी का जन्म वर्णन प्रथम अध्याय समाप्त

बदन सुख को सदन लखै तत्त को भेव ॥ १८ ॥ ॥ कबितु ॥ दीनो है तिलकु जाइ भाल बसुदेव जू के डार्यो नारीएर गोद माहि दै असीस को । दीनो है बडाई पै मिठाई हूं ते मीठी सभ जन मन भाई अउर ईसन के ईस को । मन जो पै आई सो तो कहिकै सुनाई ताकी सोभा सभ भाई मन मद्ध धरनीस को । सारे जग गाई जिन सोभा जाकी गाई सो तो एक लोक कहा लोक भेदे बीस तीस को ॥१९॥ ॥ दोहरा ॥ कंस बासदेवै तबै जोर्यो ब्याह समाज । प्रसंन्य भए सभ धरन मै बाजन लागे बाज ॥ २० ॥

अथ देवकी को ब्याह कथनं ॥

॥ स्वैया ॥ आसनि दिज्जन को धरकै तर ताको नवाइ लै जाइ बैठायो । कुंकम को घस कै कर प्रोहति बेदन की धुनि सो तिह लायो । डारत फूल पंचांम्रित अच्छत मंगलाचार भयो मन भायो । भाट कलावत अउर गुनी सभ लै (मू०ग्रं०२५६) बखशीश महाँ जसु गायो ॥ २१ ॥ ॥ दोहरा ॥ रीत बरातन

को भेजा गया जिसने मदन के समान मुखवाले और सभी सुखों के सदन तथा तत्त्ववेत्ता वसुदेव को पसन्द कर लिया ॥ १८ ॥ ॥ कवित्त ॥ उसने जाकर वसुदेव की गोद में नारियल डालते हुए और उसे आशीर्वाद देते हुए उसको तिलक लगा दिया । मिठाई से भी मीठी उसकी गुणस्तुति की जो ईश्वर को भी अच्छी लगी । घर आकर उसने घर की स्त्रियों के समक्ष भी मन भर के प्रशंसा की । सारे जग में उसकी शोभा का गायन किया गया और उसकी गूंज इस लोक को क्या बीस-तीस लोकों को भेदकर गूंजने लगी ॥ १९ ॥ ॥ दोहा ॥ इधर कंस ने उधर वसुदेव ने विवाह का उपक्रम किया तथा सारी धरती पर प्रसन्नता छा गई तथा खुशी के वाद्य बजने लगे ॥ २० ॥

देवकी का विवाह-कथन

॥ सवैया ॥ द्विजों को आसन देते हुए उन्हें सम्मानपूर्वक बैठाया गया और उन्होंने कुंकुम आदि को घिसकर वेदध्वनि करते हुए वसुदेव के माथे पर लगाया गया तथा फूल, अक्षत एवं पंचामृत आदि डालते हुए मंगलाचार के गीत गाये गये । इस अवसर पर भाट, कलाकार तथा अन्य गुणी जनों ने उनके यश का गुणानुवाद किया और पुरस्कार प्राप्त

दुलह को बासदेव सभ कीन । तबै काज चलबे नमित मथरा मै मनु दीन ।। २२ ।। बासदेव को आगमन उग्रसेन सुन लीन । चमूँ सभै चतुरंगनी भेज अगमनै दीन ।।२३।। ।। स्वैया ।। आपस मै मिलबे हित को दल साज चले धुजनी पति ऐसे । लाल करे पट पेंडर के सर रंग भरे प्रतनापति कैसे । रंचक ता छब ढूंड लई कब ने मन के पुन भीतर मै से । देखन कउतक ब्याहहि को निकसे इह कुंकम आनंद जैसे ।। २४ ।। ।। दोहरा ।। कंस अवर बसदेव जू आपसि मै मिल अंग । तबै बहुरि देवन लगे गारी रंगारंग ।। २५ ।। ।। सोरठा ।। दुंदभ तबै बजाइ आए जो मथुरा निकटि । ता छबि को निरखाइ हरख भयो हरिखाइ कै ।। २६ ।। ।। स्वैया ।। आवत को सुनिकै बसदेवहि रूप सजे अपने तन नारी । गावत गीत बजावत ताल दिवावति आवत नागर गारी । कोठन पै निरखैं चड़ तासन ता छब की उपमा जिय धारी । बैठ बिवान कुटंब समेत सु देखत देवन की महतारी ।। २७ ।। ।। कबित्तु ।। बासदेव आयो राजै मंडल बनायो मन महाँ सुख पायो ताको आनन निरख कै । सुगंध

किये ।। २१ ।। ।। दोहा ।। वसुदेव ने बारात की सारी तैयारी करके मथुरा की ओर चलने का उपक्रम किया ।। २२ ।। उग्रसेन ने जब वसुदेव का आगमन सुना तो स्वागत के लिए उसने अपनी चतुरंगिनी सेना को पहले ही भेज दिया ।। २३ ।। ।। सवैया ।। आपस में मिलाप के लिए दोनों ओर के दल चल पड़े । इन सबने लाल रंग की पगड़ियाँ बाँध रखी थीं और वे रस-रंग भरे शोभायमान हो रहे थे । कवि उस छवि की उपमा देते हुए थोड़े में वर्णन करते हुए कहता है कि वे सब ऐसे लग रहे थे जैसे केसर की क्यारियाँ इस विवाह के आनन्ददायक कौतुक को देखने के लिए अपने घर से निकल पड़ी हों ।। २४ ।। ।। दोहा ।। कंस और वसुदेव आपस में गले मिले और पुनः एक-दूसरे को रंगारंग गालियों के उपहार देने लगे ।। २५ ।। ।। सोरठा ।। दुन्दुभियाँ बजाते हुए वे मथुरा के समीप आये और इनकी इस छवि को देख सभी हर्षित हो उठे ।। २६ ।। ।। सवैया ।। वसुदेव का आना सुन सभी स्त्रियाँ सज-धजकर ताल पर गाने लगीं और आती हुई बारात को गालियाँ निकालने लगीं । छतों पर चढ़कर देखती हुई स्त्रियों की छवि की उपमा देते हुए कवि ने कहा है कि वे ऐसी लग रही हैं कि मानो देवताओं की माताएँ इस विवाह को विमानों मे बैठकर देख रही हो २७ कवित्त वसुदेव के आने पर

परख कै। छाती हाथु लायो सीस न्यायो उग्रसैन तबै आदर पठायो पूज मन मै हरख कै। भयो जन मगनन भूम पर बादर सो राजा उग्रसैन गयो कचन बरख कै॥ २८॥ ॥ दोहरा॥ उग्रसैन तब कंस को लयो हजूर बुलाइ। कह्यो साथ तुम जाइकै देहु भंडार खुलाइ॥ २९॥ अउर समगरी अंन्य की लै जा ता के पासि। करि प्रनामु ता को तबै इउ करियो अरदास॥ ३०॥ काल रात्र को ब्याह कै कंसहि कही सुनाइ। बासदेव प्रोहत कही भली जु तुमै सुहाइ॥ ३१॥ कंस कह्यो करि जोरि तब सभै बात को भेव। साध साध पंडत कह्यो अस मानी बसदेव॥३२॥ ॥स्वैया॥ रात बितीत भई अर प्रात भई फिर रात तबै चड़ आए। छाड दए हथि फूल हजार दोऊ भुज प्योधर ऐस फिराए। अउर हवाइ चली नभ को उपमा तिहको कबि स्याम सुनाए। (मू०ग्रं०२५७) देखहि कउतक

राजा ने मण्डप बनवाया और उसके सुन्दर मुख को देखकर प्रसन्नता प्राप्त की। सब पर सुगन्धियाँ छिड़की गयीं। गायन प्रस्तुत किये गये तथा जो दूत वर को पसन्द करके आया था उसे बहुत सा पुरस्कार दिया गया। छाती पर हाथ रखते हुए प्रसन्नतापूर्वक सिर झुकाते हुए उग्रसेन ने मन में प्रसन्न होते हुए वर की पूजा-अर्चना की और इस समय राजा उग्रसेन स्वर्ण के बादल के समान सोना बरसानेवाला राजा लग रहे थे अर्थात् उसने अनन्त स्वर्णमुद्राएँ दान में माँगनेवाले को दीं॥ २८॥ ॥ दोहा॥ तब उग्रसेन ने कंस को अपने पास बुलाकर कहा कि जाओ, तुम साथ जाकर दान-पुण्य के लिए समूचा भण्डार खुलवा दो॥ २९॥ कंस ने अन्न आदि सामग्री ले आते हुए प्रणाम करके वसुदेव के सम्मुख यह प्रार्थना की॥ ३०॥ कंस ने कहा कि विवाह अमावस्या की रात को होना निश्चित हुआ है। इस पर वसुदेव के पुरोहित ने यह कहकर कि जैसी आपकी इच्छा, अपनी स्वीकारोक्ति दी॥ ३१॥ तब इधर आकर हाथ जोड़ कंस ने सारी बात कह सुनाई और जब पंडितों को पता लगा कि वसुदेव पक्ष के लोग विवाह की तिथि एवं मुहूर्त मान गये हैं तो सबों ने उन्हें मन से साधुवाद दिया॥ ३२॥ ॥ सवैया॥ रात्रि व्यतीत हुई, प्रात:काल हुआ और फिर रात हुई तो उस रात्रि में सहस्रों फूलों का रंग बिखेरती हुई आतिशबाजियाँ चलाई गयीं। आसमान में हवाइयों को उड़ते देखकर कवि श्याम यह उपमा देते हुए कहता है कि ऐसा लगता है

देव सभै तिह ते मनो कागद कोट पठाए ॥३३॥ ॥ स्वैया ॥ लै बसदेव को अग्र प्रोहत कंसहि के चल धाम गए है । आगे ते नार भई इक लेहस गागर पंडत डार दए है । डार दए लडुआ गह झाटनि ताको सोऊ वहि भच्छ गए है । जादव बंस दुहूँ दिस ते सुनिकै सु अनेकिक हास भए है ॥३४॥ ॥ कबित्तु ॥ गावत वजावत सु गारन दिवावत सु आवत सुहावत है मंद मंद गावती । केहरी सी कटि अउ कुरंगन से द्रिग जा के गज कैसी चाल मन भावत सु आवती । मोतिन के चउकि करे लालन के खारे धरे बैठे तबै दोऊ दूलहि दुल्ही सुहावती । वेदन की धुन कीनी दच्छनादि जन दीनी लीनी सात भावरै जो भावते सो भावती ॥ ३५ ॥ ॥ दोहरा ॥ रात भए बसुदेव जू कीनो तहां बिलासि । प्रात भए उठकै तबै गयो ससुर के पासि ॥ ३६ ॥ ॥ स्वैया ॥ साज समेत दए हय उतगज अउर दए त्रिगुणी रथनारे । लच्छ भटं दस लच्छ तुरंगम ऊँट अनेक भरे जर भारे । छत्तीस कोट दए दल पैदल संगि किधो तिनके रखवारे ।

मानो देवतागण इस कौतुक को देखते हुए कागज के किले नभमण्डल मे उडा रहे हों ॥ ३३ ॥ ॥ सवैया ॥ वसुदेव को लेकर पुरोहित कंस के घर की तरफ चले है और आगे से एक सुन्दर स्त्री को देखकर पंडितों ने गगरी गिरा दी है और उसमें से झटके से लड्डू गिर गये हैं। इन लड्डुओं को वे पुन: उठाकर खा गये हैं, इस बात को जानकर यादव वंश के दोनों लोगों की अनेकों प्रकार की हँसी हुई है ॥ ३४ ॥ ॥ कवित्त ॥ गाती-बजाती और गाली देती हुई तथा मन्द-मन्द गाती हुई स्त्रियां शोभायमान हो रही हैं। सिंहों के समान उनकी पतली कटि हैं, हिरण के समान उनकी आँखें हैं और हाथी जैसी चाल में वे आती हुई शोभायमान हो रही हैं। मोतियों के चौक में और हीरे-लालों के आसनों पर बैठे दोनों वर-वधू शोभायमान हो रहे हैं। वेदध्वनि एवं दक्षिणादि के लेन-देन के बीच उस परमात्मा की इच्छानुसार वर-वधू के सात फेरे होकर विवाह सम्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ ॥ दोहा ॥ रात्रि में वसुदेव जी ने वहीं निवास किया और प्रात: उठकर वे ससुर (उग्रसेन) के पास गये ॥ ३६ ॥ ॥ सवैया ॥ सुसज्जित हाथी-घोड़े और उनसे तीन गुने रथ दिये गये। एक लाख शूरवीर, दस लाख घोड़े और स्वर्ण से लदे अनेकों ऊँट दिये गये। छत्तीस करोड़ पैदल सैनिक दिये गये जो मानो इन सबकी रखवाली के लिए दिये गये हों तथा कंस स्वयं इन सबकी रक्षा करने के लिए 'देवकी

कंस तबै तिह राखन कउ मनो आप भए रथ के हकवारे ॥ ३७ ॥
॥ दोहरा ॥ कंस लवाए जात तिन सकल प्रबल दल साज ।
आगे ते स्रवनन सुनो बिध को असुभ अवाज ॥ ३८ ॥ ॥ नभि
बानी बाच कंस सों ॥ ॥ कबित्तु ॥ दुक्ख के हरन ब्रिद्ध सिद्ध
के करन रूप मंगल धरन ऐसो कह्यो है उचार कै । लिए कहा
जात तेरो काल है रे मूड़ मति आठवो गरभ याको तोको डारै
मार कै । अचरज मान लीनो मन मै बिचार इह काढ कै
क्रिपान डारो इनही सँघार कै । जाहिगे छपाइ कैसु जानी कंस
मन माहि इहै बात भलो डारों जर ही उखार कै ॥ ३९ ॥
॥ दोहरा ॥ कंस दुहू के बध नमित लीनो खड़ग निकार ।
बासदेव अरु देवकी डरे दोऊ नरि नार ॥ ४० ॥ ॥ बासदेव
बाच कंस सो ॥ ॥ दोहरा ॥ बासदेव डर मान कै तासो कही
सुनाइ । जो याही ते जनम है मारहु ताकहु राइ ॥ ४१ ॥
॥ कंस बाच मन मै ॥ ॥ दोहरा ॥ पुत्र हेत के भाव सौ मति
इह जाइ छपाइ । बंदीखाने देउ इन इहै बिचारी राइ ॥ ४२ ॥

और वसुदेव के) रथ का सारथी बन गया ॥ ३७ ॥ ॥ दोहा ॥ कंस जब सारे दल को लेकर चला जा रहा था तो आगे जाने पर उसने एक अदृश्य अशुभ आवाज़ सुनी ॥ ३८ ॥ ॥ आकाशवाणी उवाच कंस के प्रति ॥ ॥ कवित्त ॥ दु:ख को हरनेवाले और बृहद् सिद्धियों की साधना करनेवाले तथा मंगलकारी प्रभु ने आकाशवाणी के माध्यम से कहा कि "हे मूर्ख ! तुम अपने काल को कहाँ ले जा रहे हो । इस (देवकी) का आठवाँ पुत्र तुम्हारा काल होगा ।" कंस ने आश्चर्यचकित हो मन में यह विचार किया कि कृपाण निकाल इनका ही संहार कर दिया जाय । कब तक इस तथ्य को छिपाकर रखा जायेगा और इनसे बचा जायेगा । अत: इसी में भला है कि मैं इस डर की जड़ ही नष्ट कर दूँ ॥ ३९ ॥ ॥ दोहा ॥ कंस ने दोनों का वध करने के लिए खड्ग निकाल लिया और यह देखकर वसुदेव और देवकी दोनों पति-पत्नी भयभीत हो उठे ॥ ४० ॥ ॥ वसुदेव उवाच कस के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ वसुदेव ने डरते हुए कस से कहा कि तुम देवकी को मत मारो, अपितु, हे राजन् ! जो इससे जन्म लेगा तुम उसका वध कर देना ॥ ४१ ॥ ॥ कंस उवाच मन में ॥ ॥ दोहा ॥ कहीं ऐसा न हो कि पुत्र के मोह में यह अपनी सतान मुझसे छिपा दे. इसलिए मेरा विचार है कि इनको बन्दीगृह मे डाल दिया जाय ४२

अथ देवकी बसदेव कैद कीबो ॥

॥ स्वैया ॥ डार (मू०पं०२५८) जंजीर लए तिन पाइन पें फिरकै मथरा महि आयो । सो सुनिकै सभ लोग कथा अति नाम बुरो जग मै बिकरायो । आन रखै ग्रह आपन मै रखवारी को सेवक लोग बिठायो । आन बडेन की छाड दई कुल भीतर आपनो राह चलायो ॥४३॥ ॥कबियो बाच॥ ॥दोहरा॥ कितक दिवस बीते जबै कंसराज उतपात । तबै कथा अउरै दली करम रेख की बात ॥ ४४ ॥

प्रथम पुत्र देवकी के जनम कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ पुत्र भयो देवकी कै कीरतमत तिह नामु । बासदेव लै ताहि को गयो कंस कै धाम ॥४५॥ ॥ स्वैया ॥ लै करि तात को तात चल्यो जब ही न्रिप कै दर ऊपर आयो । जाइ कह्यो दरबानन सों तिन बोलकै भीतर जाइ जनायो । कंस करी करना सिस देख कह्यो हमहूँ तुम को बखशायो ।

देवकी-वसुदेव को क़ैद करने का कथन

॥ सवैया ॥ उनके पैरों में जंजीर डाल कंस वापस उन्हें मथुरा ले आया और सब लोगों ने जब यह बात जानी तो कंस के नाम पर बहुत बुरा-भला कहा । कंस ने उन्हें अपने ही घर में क़ैद करके रखा और चौकीदारी के लिए सेवकों को बैठाकर इस प्रकार अपने पुरखों की परम्पराओं को छोड़ते हुए अपने वश में अपनी ही आज्ञा मानने के लिए सबको बाध्य कर दिया ॥ ४३ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ कंसराज के राज्य में उत्पात होते हुए कितने ही दिन बीत गये और इस प्रकार भाग्य की रेखा के अनुसार और की और ही बात बन गई ॥ ४४ ॥

देवकी के प्रथम पुत्र का जन्म-कथन

॥ दोहा ॥ देवकी के कीरतमति नाम का पहला पुत्र हुआ और वसुदेव उसे ले कंस के घर पहुँचे ॥ ४५ ॥ ॥ सवैया ॥ पुत्र को ले पिता जब राजद्वार पर पहुँचा तो उसने जाकर दरबान को कंस से कहने के लिए कहा शिशु को देखकर दया करते हुए कंस ने कहा कि हमने

फेरि चल्यो ग्रह को बसदेव तऊ मन मै कछु ना सुख पायो ॥४६॥ ॥ बसदेव बाच मन मै ॥ ॥ दोहरा ॥ बासदेव मन आपने कीने इहै बिचार । कंस मूड़ दुरमति बडो याको डरिहै मारि ॥ ४७ ॥ ॥ नारद रिख बाच कंस प्रति ॥ ॥ दोहरा ॥ तब मुनि आयो कंस ग्रहि कही बात सुनि राइ । अष्ट लीक करकै गनी दीनो भेद बताइ ॥४८॥ ॥ अथ भ्रितन सो कंस बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ बात सुनी जब नारद की इह तो न्रिप के मन माहि भई है । मारहु जाइ इसै अब ही करि भ्रितन नैन की सैन दई है । दउर गए तिह आइस मान कै बात इहै चल लोग गई है । पाथर पै हनि कै घनि जिउँ पुन जीवहि ते करि भिन लई है ॥ ४९ ॥ ॥ प्रिथम पुत्र बधहि ॥ ॥ स्वैया ॥ अउर भयो सुत जो तिहके ग्रहि तउ न्रिप कंस महा मति हीनो । सेवक भेज दए तिन ल्याइकै पाथर पै हनि कै पुनि दीनो । शोर पर्‍यो सभ ही पुर मै कबि नै तिह को जस इउ लख लीनो । इंद्र मुओ सुनिकै रन मै मिल कै सुरमंडल रोदन कीनो ॥ ५० ॥ अउर भयो सुत जो तिह के ग्रह नाम धर्‍यो

तुमको क्षमा कर दिया । वसुदेव वापस घर को चल पड़े, परन्तु उनको मन मे फिर भी खुशी नहीं थी ॥ ४६ ॥ ॥ वसुदेव उवाच मन में ॥ ॥ दोहा ॥ वसुदेव ने मन में विचार किया कि कंस बड़ा दुर्मति है, डरता हुआ इस शिशु को अवश्य मार डालेगा ॥ ४७ ॥ ॥ नारद ऋषि उवाच कंस के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ तब ऋषि नारद कंस के पास आये और उससे आठ लकीरें खींचते हुए कुछ भेद की बातें बताईं ॥ ४८ ॥ ॥ कंस उवाच सेवकों के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ जब नारद की बात राजा ने सुनी तो बात उसको लग गई । नौकरों को संकेत से समझाते हुए कंस ने कहा कि उस शिशु को अभी शीघ्र ही मार दो । उसकी आज्ञा मान वे सब दौड़कर चले गये और हथौड़े की तरह उसे पत्थर पर पटकते हुए उसकी जीवात्मा को उसके शरीर से अलग कर दिया अर्थात् उसे मार दिया ॥ ४९ ॥ ॥ प्रथम पुत्र का वध ॥ ॥ सवैया ॥ एक पुत्र और जो बसुदेव और देवकी के यहाँ हुआ उसे भी मतिहीन कंस ने सेवकों को भेजकर पत्थर पर पटककर मारकर उन्हें वापस दे दिया । सारी नगरी में इस कृत्य के बारे में सुनकर कोलाहल मच गया और कवि को यह कोलाहल ऐसा लगा मानो इंद्र के मरने पर सुरमंडल में रुदन की आवाजें उठ रही हों ॥ ५० ॥ एक और पुत्र उनके यहाँ हुआ जिसका नाम उन्होंने 'जय रखा, परन्तु उसे भी राजा

तिह को तिन हूँजै । मार दयो सुनिकै न्रिप कंस सु पाथर पै हनि डारिओ खूँजै । सीस के बार उखारत देवकी रोदन बोरत तें धरि गूँजै । जिउँ रुत अंत बसंत समैं नभि को जिम जात पुकारत कूँजै ।। ५१ ।। ।। कबित्तु ।। चउथो पुत्र भयो सो भी कंस मार दयो (मू०ग्रं०२५६) तिह शोक बड़वा की लाटैं मन मैं जगत है । परी हैगी वासी महा मोहहू की फासी बीच गई मिट सोभा पै उदासी ही पगत है । कैधौ तुम नाथ हवै सनाथ हमहूँ पै हूँजै पत की न गति और तन की न गत है । भई उपहासो देह पूतन बिनासी अबिनासी तेरी हासी हमै गासी सी लगत है ।। ५२ ।। ।। स्वैया ।। पाचवो पुत्र भयो सुनि कंस सु पाथर सो हनि मारि दयो है । स्वास गयो नभि के मग मै तन ताको किधौ जमना मै गयो है । सो सुनि कै पुन स्रोनन देवकी शोक सौं सास उसास लयो है । मोह भयो अति ता दिन मै मनो याही ते मोह प्रकाश भयो है ।। ५३ ।। ।। देवकी बेनती बाच ।। ।। कबित्तु ।। पुत्र भयो छठो बंस सो भी मारि डार्‌यो कंस देवकी पुकारी नाथ बात सुनि लीजिऐ । कीजिऐ अनाथ

कंस ने पत्थर पर दे मारा । देवकी शोक में सिर के बाल नोचने लगी और इस प्रकार रुदन करने लगी जैसे वसंत ऋतु में क्रौंच पक्षी आकाश में क्रन्दन करते हुए जाते हैं ।। ५१ ।। ।। कवित्त ।। चौथा पुत्र हुआ उसे भी कंस ने मार दिया और दुःख की ज्वालाएँ वसुदेव-देवकी के हृदय मे जलने लगी । महामोह की फाँसी गले में पड़ जाने से सारा सौंदर्य (देवकी का) समाप्त हो गया और वह उदासी में डूब गई । वह कहती है कि हे ईश्वर! तुम कैसे नाथ हो और हम कैसे सनाथ हैं कि हमें न तो सम्मान ही मिल रहा है और न हमारे शरीर की ही कोई सुगति है । पुत्र के मरण के कारण भी हमारा उपहास ही हो रहा है, अतः, हे अविनाशी प्रभु! तुम्हारा यह क्रूर मज़ाक़ हमें तीर की तरह तीक्ष्णता से चुभ रहा है ।। ५२ ।। ।। सवैया ।। कंस ने पाँचवे पुत्र के जन्म के बारे में सुनकर उसे भी पत्थर पर पटककर मार दिया । उसका प्राण तो गगनमंडल में गया तथा उसकी देह यमुना में प्रवाहित कर दी गई । यह सुनकर देवकी ठंडी साँसें भरने लगी और मोह में उसे उस दिन इतना अधिक कष्ट हुआ और ऐसा लगने लगा मानो देवकी से ही मोह की उत्पत्ति हुई हो ।। ५३ ।। ।। देवकी प्रार्थना उवाच कवित्त जब छठवाँ पुत्र भी कंस ने मार डाला तो देवकी ने परमात्मा से प्रार्थना की कि दीनानाथ या तो हम लोगों को मार डालो या

न सनाथ मेरे दीनानाथ हमै मार दीजिऐ कि याको मार दीजिऐ । कंस बडो पापी जाको लोक भयो जापी सोई कीजिऐ हमारी दसा जाते सुखी जीजिऐ । स्रोनन मै सुनि असवारी गजवारी करो लाइऐ न ढील अब दो मै एक कीजिऐ ।। ५४ ।।

।। इति छठवों पुत्र बधह ।।

अथ बलभद्र जनम ।।

।। स्वैया ।। जौ बलभद्र भयो गरभांतर तौ दुहूँ बैठ कै मंत्र कर्‍यो है । ताही ते मंत्र के जोर सो काढ कै रोहनी के उर बीच धर्‍यो है । कंस कदाच हनै सिस को तिह ते मन मै बसदेव डर्‍यो है । सेख मनो जग देखन को जग भीतर रूप नवीन कर्‍यो है ।। ५५ ।। ।। दोहरा ।। क्रिशन क्रिशन करि साध दो बिशन क्रिशन पति जास । क्रिशन बिशव तरबे नमित तन मै कर्‍यो प्रकाश ।। ५६ ।।

कंस को मार दो । कंस बड़ा पापी है, जिसे लोग अपना राजाक मानकर उसके नाम का स्मरण करते हैं; हे प्रभु! इसकी भी वही दशा कर दीजिए जो हमारी दशा है । मैंने सुना है कि आपने गज के प्राण बचाये थे, अतः हमारे लिए भी अविलम्ब दो में से एक कार्य करने की कृपा करें ।। ५४ ।।

।। छठवां पुत्र-वध समाप्त ।।

बलभद्र-जन्म (-कथन)

।। सवैया ।। जब बलभद्र गर्भ में आये तो दोनों (देवकी-वसुदेव) ने बैठकर विचार-विमर्श किया और मंत्र-बल से उसे देवकी के गर्भ से निकालकर रोहिणी के गर्भ में स्थानांतरित कर दिया । कदाचित् कंस इसका भी वध कर देगा, यह सोचकर वसुदेव भयभीत हो गये । ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो शेषनाग ने संसार देखने के लिए नवीन रूप धारण किया हो ।। ५५ ।। ।। दोहा ।। दोनों (देवकी और उसका पति) अत्यन्त साधुभाव से मायापति विष्णु का स्मरण करने लगे और इधर विष्णु ने कालिमायुक्त विश्व का उद्धार करने के लिए देवकी के शरीर में निवास कर उसे प्रकाशित कर दिया ५६

अथ क्रिशन जनम ॥

॥ स्वैया ॥ संख गदा कर अउर त्रिसूल धरे तन कउच बडे बडभागी । नंद गहै कर सारंग सारंग पीत धरे पट पै अनुरागी । सोई हुती जनम्यो इह के ग्रहि कै डरपै मन मै उठ जागी । देवकी पुत्र न जान्यो लख्यो हरि कै कै प्रनाम सु पाइन लागी ॥ ५७ ॥ ॥ दोहरा ॥ लख्यो देवकी हरि मनै लख्यो न कर कर तात । लख्यो जानकर मोहि की तानी तान कनात ॥ ५८ ॥ क्रिशन जनम जब ही भयो देवन भयो हुलास । शत्र सभै अब नास होहि हमको होइ बिलास ॥ ५९ ॥ ॥ दोहरा ॥ आनंद सों सभ देवतन सुमन दीन बरखाइ (मू०ग्र०२६०) शोक हरन दुष्टन दलन प्रगटे जग मो आइ ॥ ६० ॥ जै जै कार भयो जबै सुनी देवकी कान । त्रासत हुइ मन मै कह्यो शोर करै को आन ॥ ६१ ॥ ॥ दोहरा ॥ बासदेव अरु देवकी मंत्र करै मन माहि । कंस कसाई जानकै हिऐ अधिक डरपाहि ॥ ६२ ॥

॥ इति क्रिशन जनम बरननं ॥

कृष्ण-जन्म (-कथन)

॥ सवैया ॥ तन पर कवच, हाथों में शंख-गदा तथा त्रिशूल, कृपाण एवं धनुष धारण किये हुए, पीताम्बर पहने हुए विष्णु जी (कृष्ण के रूप में) सोती हुई देवकी के उदर से प्रकट हुए और देवकी डर के मारे जगकर बैठ गयी । देवकी को यह पता न लगा कि उसके पुत्र पैदा हुआ है । वह साक्षात् विष्णु को देखकर उन्हें चरणों पर प्रणाम करने लगी ॥ ५७ ॥ ॥ दोहा ॥ देवकी ने उन्हें पुत्र न माना, अपितु परमात्मा के रूप में देखा, परन्तु फिर भी माँ होने के नाते उसका मोह बढ़ने लगा ॥ ५८ ॥ जैसे ही कृष्ण का जन्म हुआ, देवगण हर्षित हो उठे और सोचने लगे कि अब शत्रुओं का नाश होगा और हमको अधिक प्रसन्नता प्राप्त होगी ॥ ५९ ॥ ॥ दोहा ॥ प्रसन्न होकर देवताओं ने पुष्प-वर्षा की और यह माना कि शोकों को तथा दुष्टों का दलन करनेवाले (विष्णु) संसार में प्रकट हो गये हैं ॥ ६० ॥ जब जय-जयकार को देवकी ने अपने कानों से सुना तो वह डरते हुए मन में सोचने लगी कि यह कौन शोर कर रहा है ॥ ६१ ॥ ॥ दोहा ॥ वसुदेव और देवकी आपस में विचार करने लगे और क़साई कंस के बारे में सोचकर हृदय में अधिक डरने लगे ॥ ६२ ॥

कृष्ण-जन्म वर्णन समाप्त

॥ स्वैया ॥ मंत्र विचार कर्यो दुहहूँ मिल मार डरै इह को मत राजा । नंदहि के घरि आइ हो डार कै ठाट इही मन मै तिन साजा । कान कह्यो मन मै न डरो तुम जाहु निशंक बजावत बाजा । माया की खैंच कनात लई धरि बालक सउरभ आप बिराजा ॥ ६३ ॥ ॥ दोहरा ॥ क्रिशन जबै तिन ग्रिह भयो बासदेव इह कीन । दस हज़ार गाईं भली मनै मनस करि दीन ॥ ६४ ॥ ॥ स्वैया ॥ छूटि किवार गए घरि के वरि के न्रिप के बरके चलते । हरखे सरखे बसदेवहि के पग जाइ छुयो जमुना जल ते । हरि देखन को हरि अउ बडके हरि बउर गए मन के बल ते । काज इही कहि दोऊ गए जु खिझे बहु पापन की मलते ॥ ६५ ॥ ॥ दोहरा ॥ क्रिशन जबै चड़ती करी फेर्यो माया जाल । असुर जिते चउकी हुते सोइ गए ततकाल ॥६६॥ ॥ स्वैया ॥ कंसहि के डरते बसदेव सु पाइ जबै जमना मधि डारो । मान कै प्रीत पुरातन को जल पाइन भेटन काज उठानो । ता छबि को जस ऊच महा कबि ने अपने मन मै

॥ सवैया ॥ दोनों ने मिलकर यह विचार किया कि कहीं राजा इस पुत्र को मार न दे इसलिए इसे नंद के घर जाकर छोड़ा जाय । कृष्ण ने कहा, आप बिलकुल भयभीत न हों और शंका-रहित होकर जाइए । इतना कहकर कृष्ण ने अपनी योगमाया का प्रसार चारों ओर कर दिया और स्वयं एक सुन्दर बालक के रूप में विराजमान होने लगे ॥ ६३ ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण के पैदा होते ही वसुदेव ने मन-ही-मन (कृष्ण की रक्षा-हित) दस हज़ार गायों का दान कर दिया ॥ ६४ ॥ ॥ सवैया ॥ वसुदेव के चलते ही घर के किवाड़ खुल गये । वसुदेव के पैर प्रसन्न होकर आगे बढ़ने लगे और उन्होंने जाकर यमुना में प्रवेश किया । कृष्ण को देखने के लिए यमुना का जल बढ़ा और शेषनाग भी बलपूर्वक दौड़कर आया तथा उसने फन फैलाकर चँवर किया तथा साथ-ही-साथ यमुना के जल और शेषनाग दोनों ने संसार में बढ़ती हुई पाप की मैल के बारे में भी कृष्ण को बता दिया ॥ ६५ ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण को लेकर वसुदेव ने जब चलना शुरू किया तो कृष्ण ने अपना माया-जाल फैला दिया जिससे जितने असुर पहरे पर थे वे सो गये ॥ ६६ ॥ ॥ सवैया ॥ कंस के डर से जब वसुदेव ने अपने पैर यमुना में रखे तो यमुना किसी पुरानी प्रगति को मन में पहचानती हुई कृष्ण के चरणों का स्पर्श करने के लिए उछली । उस छवि की ऊँची महिमा को कवि ने इस प्रकार अनुभव किया है कि

पहचानो । कान्ह को जान किधो पति है इह कै जमना तिह भेटत मानो ।। ६७ ।। ।। दोहरा ।। जबै जसोधा सुइ गई माया कियो प्रकाश । डार किशन तिह पै सुता लीनी है कर तास ।। ६८ ।। ।। स्वैया ।। माया को लै कर मै बसदेव सु शीघ्र चल्यो अपने ग्रिहि माही । सोइ गए पर द्वार सभै घर बाहरि भीतरि की सुधि नाही । देवकी तीर गयो जबही सभ ते मिलगे पट आपसि माही । बाल उठी जब रोदन कै जग कै सुधि जाइ करी नर नाही ।। ६९ ।। रोइ उठी वह बाल जबै तब स्रोनन मै सुनि ली धुनि होरै । धाइ गए न्रिप कंसहि के घरि आइ कह्यो जनम्यो रिप तोरै । लै कै क्रिपान गयो तिह कै चलि जाइ गही करतै कर जोरै । देखहु बात महा जड़ की अब आविक के बिख चाबत भोरै ।।७०।। (मू०ग्रं०२६१) लाइ रही उर सो तिह को मुख ते कह्यो बात सुनो मतवारे । पुत्र हने मम पावक से छठ हो तुम पाथर पै हन डारे । छीन कै कंस कह्यो मुख ते इह भी पटको इह कै अब मारे । बामन ह्वै लहकी

यमुना मानो कृष्ण को पति मान उसके चरण को स्पर्श करने के लिए ऊपर उठी ।। ६७ ।। ।। दोहा ।। इधर जब यशोदा सो गयी तो उसके उदर से योगमाया उत्पन्न हुई । वसुदेव ने कृष्ण को वहाँ डालते हुए यशोदा की पुत्री को उठा लिया और चल पड़े ।। ६८ ।। ।। सवैया ।। माया को अपने हाथ में लेकर वसुदेव शीघ्र ही अपने घर में चले गये और उस समय सभी लोग सोये हुए थे और किसी को भी बाहर-भीतर का होश नहीं था । जब वसुदेव देवकी के पास पहुँच गये तो किवाड़ स्वयं ही बन्द हो गये तथा जब बच्ची के रुदन की सेवकों ने आवाज़ सुनी तो उन्होंने राजा को खबर कर दी ।। ६९ ।। वह बालिका जब रोई तब सबने उसकी आवाज़ सुनी । सेवक दौड़कर कंस के पास गये और उससे कहा कि तुम्हारा शत्रु पैदा हो गया है । कंस कृपाण लेकर दोनों हाथों से उसे मज़बूती से पकड़ते हुए वहाँ जा पहुँचा और इस महामूर्ख का कृत्य देखो कि अब वह स्वयं विष का सेवन करने जा रहा है अर्थात् मरने की तैयारी कर रहा है ।। ७० ।। देवकी ने पुत्री को गले से लगा रखा था । वह कहने लगी कि अरे पागल ! तुम मेरी बात सुनो कि तुमने मेरे अग्नि के समान तेजवान पुत्रों को पत्थर पर पटककर मार डाला है । इतना सुनते ही कंस ने यह कन्या भी छीन ली और कहा कि अब मैं इसको भी पटककर मार दूंगा । जब कंस ने वही सब किया तो यह बच्ची, जिसे ने सुरक्षा प्रदान की, आकाश

नभ मै जब राख लई वह राखनहारे ॥ ७१ ॥ ॥ कबित्तु ॥ कै कै क्रोध मन करि उग्रोत वाके मारबे की चाकरन कह्यो मार डारो न्रिप बात है । कर मो उठाइकै बनाइ भारो पाथर पै राज काज राखबे को कछु नही पात है । अपनो सो बल कर राखै इह भलीभाँति स्वंद छंद बंद कै कै छूट इह जात है । माया को बढाइ कै सु सभन सुनाइ कै सु ऐसे उडो बारा जैसे पारा उड जात है ॥ ७२ ॥ ॥ स्वैया ॥ आठ भुजा करिकै अपनी सभनो कर मै बर आयुध लीने । ज्वाल निकास कही मुख ते रिप अउर भयो तुमरो मति हीने । दामन सी लहकै नभि मै डरकै फटगे तिह शत्रुन सीने । मार डरै इहहूँ हमहूँ सम त्रास मने अति दैतन कीने ॥ ७३ ॥

अथ देवकी बसदेव छोरबो ॥

॥ स्वैया ॥ बात सुनी इह की जब स्रोनन निंदत देवन के घरि आयो । झूठ हने हम पै भगनी सुत जाइकै पाइन सीस

में बिजली बन चमक उठी ॥ ७१ ॥ ॥ कवित्त ॥ मन में क्रोधित हो और कई प्रकार के विचार करते हुए कंस ने नौकरों को कहा कि यह मेरी आज्ञा है कि इसको मार डालो । हाथ में पकड़कर और बिना राजधर्म की परवाह किये भारी पत्थर पर उसको दे मारा, परन्तु वह इतने बलवान हाथों मे पड़ने पर भी स्वयं ही छूट छूटकर छिटक रही थी तथा माया के प्रभाव के कारण वह सबको अपनी ध्वनि सुनाते हुए ऐसे उड़कर छिटकी जैसे पारा छिटक जाता है ॥ ७२ ॥ ॥ सवैया ॥ वह माया आठ भुजाओं को धारण करती अपने हाथ में शस्त्र लेती प्रकट हुई । उसके मुख से अग्नि-ज्वाला निकल रही थी और उसने कहा कि हे मतिहीन कंस ! तुम्हारा शत्रु अन्यत्र पैदा हो चुका है । इतना कहकर वह शत्रुओं की छाती को भयभीत करती हुई नभ में बिजली के समान लहराने लगी और सभी दैत्य यह सोच भयभीत होने लगे कि यह कहीं हम सबको मार न डाले ॥ ७३ ॥

देवकी-वसुदेव का छोड़ा जाना

॥ सवैया ॥ जब कंस ने अपने कानों से यह सब सुना तो देवताओं की निन्दा करनेवाला कंस अपने घर आ गया । वह सोचने लगा कि मैंने व्यर्थ ही अपनी बहिन के पुत्रों का नाश किया यह सोचते हुए कंस ने

लाल चली चुनिआ है । जिउँ मिलकै घन के दिन मै उडकै सु चली जु मनो मुनिआ है ॥ ७७ ॥ ॥ नंद बाच कंस प्रति ॥ ॥ दोहरा ॥ (मू०ग्रं०२६२) नंद महर लै भट्ट को गयो कंस के पासि । पुत्र भयो हमरे ग्रहे जाइ कही अरदासि ॥ ७८ ॥ ॥ बसदेव बाच नंद सो ॥ ॥ दोहरा ॥ नंद चल्यो ग्रह को जबै सुनी बात बसदेव । भै ह्वैहै तुमको बडो सुनो गोपपति भेव ॥ ७९ ॥ ॥ कंस बाच बकी सो ॥ ॥ स्वैया ॥ कंस कहै बकी बात सुनो इह आज करो तुम काज हमारो । बारक जे जनमै इह देस मै ताहि को जाइ कै शीघ्र संघारो । काल वहै हमरो कहिऐ तिह त्रास डर्यो हिअरा मम भारो । हाल बिहाल भयो तिह काल मनो तन मै जु डस्यो अहि कारो ॥८०॥ ॥ पूतना बाच कंस प्रति ॥ ॥ दोहरा ॥ इह सुनिकै तब पूतना कही कंस सो बात । बरमा जाए सभ हनो मिटै तिहारो तात ॥ ८१ ॥ ॥ स्वैया ॥ सीस निवाइ उठी तब बोल सु घोल मिठा लपटो थन मै । बाल जु पान करे तजै प्रानन ताहि मसान करौ छिन मै । बुधतान सुजान कह्यो सतिमान सु

ओढ़कर चल पड़ीं और ऐसी लग रही थीं मानो बादलों में विद्युत् रूपी मणियाँ इधर-उधर बिखरकर चल रही हैं ॥ ७७ ॥ ॥ नन्द उवाच कंस के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ नन्द चौधरी कुछ लोगों को साथ ले कंस के पास पहुँचा और उसने यह प्रार्थना की कि हमारे यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ है ॥ ७८ ॥ ॥ वसुदेव उवाच नन्द के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ जब नन्द के वापस जाने की बात वसुदेव ने सुनी तो वसुदेव ने गोपपति नन्द से यह कहा कि तुमको अत्यन्त भय होना चाहिए (क्योंकि भेद की बात यह है कि कंस ने सभी बालकों को वध करने की आज्ञा दी है) ॥ ७९ ॥ ॥ कंस उवाच बकासुर के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ कंस ने बकासुर से कहा कि तुम मेरी बात सुनो और मेरा यह काम करो कि इस देश में जितने भी बालक पैदा हुए हैं, शीघ्र ही उनका संहार कर दो । इन बालकों में से ही एक मेरा काल है, इसलिए मेरा हृदय बुरी तरह भयभीत है । कंस यही सोचते हुए व्याकुल था और ऐसा लग रहा था मानो उसे काले नाग ने काट लिया हो ॥ ८० ॥ ॥ पूतना उवाच कंस के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ यह सुनकर पूतना ने कंस से कहा कि मैं जाकर सब बच्चों को नष्ट कर दूँगी जिससे तुम्हारा कष्ट दूर हो जायेगा ॥ ८१ ॥ ॥ सवैया ॥ यह बोलकर सिर झुकाकर वह उठी और उसने मीठा विष अपने स्तनों मे लगा लिया, ताकि जो भी बच्चा उसके

आइहै टोरके ताहन मै । निरभउ न्रिपराज करो नगरी सगरी जिन सोच करो मन मै ॥ ८२ ॥ ॥ कबियो बाच ॥
॥ दोहरा ॥ अति पापन जगंनाथ पर बीड़ा लियो उठाइ । कपट रूप सोरह सजे गोकल पहुची जाइ ॥ ८३ ॥
॥ स्वैया ॥ काजर नैन दिए मन मोहन इंगर की बिंदरी जु बिराजै । टांड भुजान बनी कटि केहरि पाइन नूपर की धुनि बाजै । हार गरे मुकताहल के गई नंद दुआरहि कंस के काजै । बास सुबास बसी सभ ही तन आनन मै ससि कोटिक लाजै ॥८४॥ ॥ जसुधा बाच पूतना प्रति ॥ ॥ दोहरा ॥ बहु आदर करि पूछिओ जसमति बचन रसाल । आसन पै बैठाइकै कह्यो बात कहु बाल ॥ ८५ ॥ ॥ पूतना बाच जसोधा सो ॥ ॥ दोहरा ॥ महर तिहारे सुत सुन्यो जनम्यो रूप अनूप । मो गोदी दै दूध को होवै सभ को भूप ॥ ८६ ॥
॥ स्वैया ॥ गोद दयो जसुधा तब ताके सु अंत समै तब ही उन लीनो । भाग बडे दुरबुधन के भगवानहि कौ जिन असथन

स्तन का पान करे वह क्षण भर में मर जाए । हे बुद्धिशाली, सुजान और सत्यवादी राजा ! हम सब तुम्हारी सेवा में आये हैं । तुम अभय हो राज करो और समस्त चिन्ताओं को त्याग दो ॥ ८२ ॥ ॥ कवि उवाच ॥
॥ दोहा ॥ उस पापिनी ने जगन्नाथ कृष्ण को मारने का बीड़ा उठा लिया और सोलह श्रृंगार करती हुई कपट वेश धारण कर गोकुल जा पहुँची ॥ ८३ ॥
॥ सवैया ॥ उसने नयनों में काजल लगा रखा था, माथे पर बिंदिया लगाई थी, उसकी भुजाएँ सुन्दर थीं, कमर सिंह के समान पतली थी तथा उसके पैरों में पायल की ध्वनि निकल रही थी । गले में मोतियों के हार पहने वह कंस का कार्य करने के लिए नन्द के दरवाजे पर जा पहुँची और उसके शरीर से निकल रही सुगन्ध चारों ओर फैल गयी तथा उसके मुख को देखकर चन्द्रमा भी लजाने लगा ॥ ८४ ॥ ॥ यशोदा उवाच पूतना के प्रति ॥
॥ दोहा ॥ यशोदा ने उसे आदर देते हुए उसका हाल-चाल पूछा और आसन पर बैठाते हुए उससे बातचीत प्रारम्भ कर दी ॥ ८५ ॥ ॥ पूतना उवाच यशोदा के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ हे माता ! सुना है, तुम्हारे यहाँ एक अनुपम बालक जन्मा है । लाओ इसे मेरी गोदी में दो मैं इसे दूध पिलाऊँ, क्योंकि यह होनहार बालक सबका सम्राट् बनेगा ॥ ८६ ॥ ॥ सवैया ॥ तब यशोदा ने कृष्ण को उसकी गोद में दे दिया और इस प्रकार पूतना ने अपना अन्तिम समय बुला लिया उस दुर्बुद्धि स्त्री के भी बड़े भाग्य हैं

दीनो । छीररकत्त सु ताही के प्रान सु ऐच लए मुख मो इह कीनो । जिउँ गगड़ी तुमरो तन लाइकै तेल लए तुच छाडकै पीनो ॥ ८७ ॥ ॥ दोहरा ॥ पाप कर्‌यो बहु पूतना जासो नरक डराइ । अंत कह्‌यो हरि छाडि दें (मू०ग्रं०२६३) बसी बिकुंठह जाइ ॥ ८८ ॥ ॥ स्वैया ॥ देहि छि कोस प्रमान भई पुखरा जिम पेट मुखो नलुआरे । डंड दुकूल भए तिहके जनु बार सिबाल ते सेख पुआरे । सीस सुमेर को लिग भयो तिह आखन मै परगे खडुआरे । साह के कोट मे तोप लगी बिब गोलन के ह्वै गए गलुआरे ॥ ८९ ॥ ॥ दोहरा ॥ असथन मुख लै किशन तिह ऊपरि सोइ गए । धाइ तबै ब्रिजलोक सभ गोद उठाइ लए ॥ ९० ॥ ॥ दोहरा ॥ काट काट तन एकठे कीयब ता को ढेर । दे इंधन चहूँ ओर ते बारत लगी न बेर ॥ ९१ ॥ ॥ स्वैया ॥ जब ही नंद आइ है गोकल मै लई बास सु बास महा बिसमान्यो । लोक सभै ब्रिज को बिरतांत कह्‌यो सुनिकै मन मै डरपान्यो । साच कही बसदेवहि मो पहि सो परतच्छि

जिसने भगवान को स्तनपान करवाया । दूध रूपी रक्त के साथ कृष्ण ने अपने मुँह से उसके प्राण भी ऐसे खींच लिये जैसे तुमड़ी से तेल छानकर निकाल लिया जाता है ॥ ८७ ॥ ॥ दोहा ॥ पूतना ने इतना बड़ा पाप किया कि जिससे नरक भी डर जाए। मरते हुए वह बोली, हे कृष्ण ! मुझे छोड़ दो और इतना कहकर वह स्वर्गलोक में चली गयी ॥ ८८ ॥ ॥ सवैया ॥ पूतना की देह छः कोस जितनी लम्बी हो गयी, उसका पेट तालाब और मुख नाले के समान हो गया । उसकी भुजाएँ मानो तालाब के दो किनारों के समान तथा बाल तालाब पर फैली सेवार के समान दिखाई देने लगे । सिर उसका सुमेरु पर्वत की चोटी के समान हो गया और आँखों की जगह बड़े-बड़े खड्डे दिखाई देने लगे । उसके आँखो के खड्डों में गोलक बिन्दु ऐसे दिखाई दे रहे थे मानो किसी राजा के क़िले में तोपें स्थित की हुई हों ॥ ८९ ॥ ॥ दोहा ॥ पूतना का स्तन मुँह में लिये कृष्ण उसी पर सो गये और व्रजवासियों ने दौड़कर उन्हें उठा लिया ॥ ९० ॥ ॥ दोहा ॥ लोगों ने पूतना के शरीर को टुकड़ों में एकत्र कर लिया और चारों ओर से ईंधन लगाकर उसे तत्काल जला दिया ॥ ९१ ॥ ॥ सवैया ॥ जब नन्द गोकुल में आये तो सब बात जान कर अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए लोगों ने व्रज में पूतना वाली बात जब उन्हें बताई तो वे और भी मन में डर गये वे सोचने लगे

भई हम जान्यो । ता दिन दान अनेक दियो सभ बिप्पन बेद असीस बखान्यो ॥ ९२ ॥ ॥ दोहरा ॥ बाल रूप ह्वै उतरियो दया सिंध करतार । प्रिथम उधारी पूतना भूम उतार्‌यो भार ॥ ९३ ॥

॥ इति स्री दसम सकंध पुराणे बचित्र नाटक पूतना बध धिआइ समापते ॥

अथ नामकरण कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ बासदेव तब गरग कौ निकटि सु कही बठाइ । गोकल नंदहि के भवन क्रिपा करो तुम जाइ ॥ ९४ ॥ उतै तात हमरै तहा नामकरन कर देहु । हम तुम बिनु नही जानही अउर स्रवन सुन लेहु ॥ ९५ ॥ ॥ सवैया ॥ बेग चल्यो दिज गोकल कौ बसुदेव महान कही सोई मानी । नंद के धाम गयो तब ही बहु आदर ताहि कर्‌यो नंद रानी । नाम सु क्रिशन कर्‌यो इह को कर मान लई इह बात बखानी । लाइ लगंन निछत्रन सोध कही समझाइ अकथ कहानी ॥ ९६ ॥

बसुदेव ने मुझे जो चेतावनी दी थी, वह सत्य ही थी और उस सबको मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ । उस दिन नन्द ने विप्रों को अनेक प्रकार से दान दिया और विप्रों ने उन्हें अनेक आशीर्वाद दिये ॥ ९२ ॥ ॥ दोहा ॥ कृपा के सिन्धु परमात्मा बाल-रूप होकर अवतरित हुए हैं और उन्होंने सर्वप्रथम पूतना के भार से धरती को मुक्त कर दिया है ॥ ९३ ॥

॥ इति श्री दशम स्कंध पुराण के बचित्र नाटक का पूतना-वध अध्याय समाप्त ॥

नामकरण-कथन

॥ दोहा ॥ तब वसुदेव ने कुलगुरु गर्ग को निवेदन किया, आप कृपा कर गोकुल में नन्द के घर जायें ॥ ९४ ॥ वहाँ मेरा पुत्र है, आप कृपा कर उसका नामकरण कर दें और इस बात का ध्यान रखें कि आपके और मेरे सिवा इस रहस्य को कोई नहीं जानता है ॥ ९५ ॥ ॥ सवैया ॥ वसुदेव का कहना मानकर विप्र गर्ग शीघ्रता से गोकुल की ओर चल दिया और नन्द के घर पहुँचा जहाँ नन्दरानी यशोदा ने उनका बहुत आदर किया । विप्र ने बालक का नाम कृष्ण रखा जो सबने स्वीकार कर लिया । तब विप्र ने लग्न, मुहूर्त आदि का अध्ययन कर बालक के जीवन में होनेवाले अभूतपूर्व प्रसंगों का संकेत कर दिया । ९६

॥ दोहरा ॥ किशन नाम ता को धर्‍यो गरगहि मनैं बिचारि । श्याम पलोटैं पाइ जिह इह सम मनो मुरार ॥ ९७ ॥ सुकल बरन सतिजुग भए पीत बरन त्रेताइ । पीत बरन पट स्याम तन नर नाहनि के नाहि ॥ ९८ ॥ ॥ स्वैया ॥ अंन्य दयो गरगैं जब नंदहि तउ उठि कै जमना तट आयो । नाइ कटै करिकै धुतिआ हरि को अरु देवन भोग लगायो । आइ गए नंदलाल तबै कर सो गहि कै अपने मुख पायो । चक्रत ह्वै गयो पेख तबै तिह अंन्य सभै (मू०ग्रं०२६४) इन भीट गवायो ॥ ९९ ॥ फेरि बिचार कर्‍यो मन मै इह तो नह बालक पै हरिजी है । मानस पंच भू आतम को मिलि कै तिन सो करता सरजी है । याद करी ममता इह कारन मध को दूर करै करजी है । मूंद लई तिह की मति यौ पट सौ तन ढांपत जिउँ दरजी है ॥१००॥ ॥ स्वैया ॥ नंदकुमार त्रिबार भयो जब तो मन बामनै क्रोध कर्‍यो है । मात खिझी जसुधा हरि को गहिकै उर आपने लाइ

॥ दोहा ॥ गर्ग ने मन में विचारकर बालक का नाम कृष्ण रख दिया और जैसे ही बालक ने पैर ऊपर उठाये तो पंडित को लगा कि यह स्वयं विष्णु का स्वरूप है ॥ ९७ ॥ शुक्लवर्ण सतयुग का प्रतीक और पीला वर्ण त्रेता का प्रतीक है; परन्तु पीले वर्ण के कपड़े धारण करना और श्याम रंग वाला शरीर होना ये दोनों सामान्य मनुष्यों के लक्षण नहीं हैं ॥ ९८ ॥ ॥ सवैया ॥ जब नन्द ने गर्ग को अन्नदान किया तो वह सब लेकर भोजन पकाने के लिए यमुना के तट पर आ गया । स्नान करके उसने देवताओं को तथा परमात्मा को भोग लगाया । परमात्मा का स्मरण करते ही वहाँ नन्द के पुत्र (कृष्ण) पहुँच गये और उन्होंने गर्ग के हाथ से अन्न लेकर भोग लगाया । विप्र चकित होकर यह देखने लगा और सोचने लगा कि इस बालक ने छूकर मेरा अन्न अपवित्र कर दिया है ॥ ९९ ॥ फिर पंडित ने मन में विचार किया कि यह बालक कैसे हो सकता है, यह कोई भ्रम है । कर्ता ने मन, पंचतत्त्व और आत्मा के संयोग से इस रचना का सृजन किया है । मुझे मात्र नन्दलाल का स्मरण बना रहा अतः यह मेरा भ्रम होगा । वह विप्र पहचान नहीं पाया और उसकी बुद्धि वैसे ही बन्द हो गयी जैसे दरजी कपड़े से शरीर को ढक देता है ॥ १०० ॥ ॥ सवैया ॥ जब तीन बार वैसा ही हुआ तो ब्राह्मण के मन में क्रोध आ गया । माता यशोदा भी इस प्रकार कहने से खीझ उठी और उसने कृष्ण को अपने सीने से लगा लिया तब कृष्ण बोल उठ कि इसमे मेरा दोष नही है, इसी विप्र का

धर्यो है। बोल उठे भगवान तबै इह बोशन है मुहि याकि कर्यो है। पंडत आन लई मन मै उठ क तिह के सब पाइ पर्यो है॥ १०१ ॥ ॥ दोहरा ॥ नंद दान ता को दयो कह लउ कहो सुनाइ। गरग आपने घरि चल्यो महाँ प्रमुद मन पाइ ॥ १०२ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे नामकरन बरननं ॥

॥ स्वैया ॥ बालक रूप धरे हरि जी पलना पर झूलत है तब कैसे। मात लडावत है तिह को औ झुलावत है करि मो हित कैसे। ता छबि की उपमा अति ही कबि स्याम कही मुख ते फुनि ऐसे। भूमि दुखी मन मै अति ही जनु पालत है सिप दे तन जैसे ॥ १०३ ॥ भूख लगी जब ही हरि को तब पै जननी धन को तिन चाह्यो। मात उठी न भयो मन क्रुद्ध तबै पग सो महि गोडकै बाह्यो। तेल धर्यो अरु घीउ भर्यो घुट भूमि पर्यो जसु स्याम सराह्यो। होत कुलाहल मधि पुरी धरनी को

दोष है। इसने मुझे (भोग लगाने के लिए) याद किया है और मैं उपस्थित हुआ हूँ। यह सुनकर विप्र मन-ही-मन सपन्न गया और उठकर उसने कृष्ण के चरण स्पर्श किये ॥ १०१ ॥ ॥ दोहा ॥ नन्द द्वारा विप्र को दिये गये दान का वर्णन नहीं किया जा सकता। गर्ग प्रसन्न मन से अपने घर को चल दिया ॥ १०२ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक ग्रंथ में नामकरण-वर्णन समाप्त ॥

॥ सवैया ॥ बालक का रूप धारण किये हुए श्रीकृष्ण जी पालने पर झूल रहे हैं और माता उन्हें प्यार से झुला रही हैं। इस छवि की उपमा को कवि ने इस प्रकार कहा है कि जिस प्रकार धरती समान भाव से दुष्टों एवं सज्जनों का पालन करती है, उसी प्रकार यशोदा माता भी श्रीकृष्ण के पालन-पोषण करने में आनेवाली कठिनाइयों की सम्भावनाओं को जानते हुए भी प्रसन्न भाव से कृष्ण का पालन कर रही है ॥ १०३ ॥ जब कृष्ण को भूख लगी तो यशोदा माता का दूध पीना चाहा। माता बिना क्रुद्ध हुए उठी तभी श्रीकृष्ण ने जोर से पाँव चलाया और भरा हुआ तेल तथा घी के पात्र हाथ से छूटकर धरती पर गिर पड़े। इस दृश्य को श्याम कवि ने अपनी कल्पना में देखा। उधर पूतना का वध सुनकर सारे व्रज प्रदेश मे कोलाहल मच गया और धरती का शोक समाप्त हो

मनो सभ शोक सु लाह्यो ॥ १०४ ॥ धाइ गए ब्रिजलोक सभै हरि जी तिन आपने कंठ लगाए । अउर सभै ब्रिजलोक बधू मिल भांतन भांतन मंगल गाए । भूमि हली नभि यो इह कउतक बारन भेद यो भाख सुनाए । चक्रत बाल भए सुनि कै अपने मन मै तिन साच न लाए ॥ १०५ ॥ ॥ स्वैया ॥ कानहि के सिर साथ छुहाइकै अउर सभै तिन अंगन को । अरु लोक बुलाइ सभै ब्रिज के बहु दान दयो तिस मंगन को । अर दान दयो सभ ही प्रहि को करकै पटरंगन रंगन को । इह साज बनाइ दयो तिन कौ अरु अउर दयो दुख भंगन को ॥ १०६ ॥ ॥ कंस बाच त्रिणावरत सों ॥ ॥ अड़िल ॥ जबै पूतना हनी सुनी गोकल बिखै । त्रिणावरत सो कह्यो (मू०ग्रं०२६५) जाहु ताको तिखै । नंद बाल को मारो ऐसे पटक कै । हो पाथर जाण चलाइऐ कर सो झटककै ॥ १०७ ॥ ॥ स्वैया ॥ कंसहि कै तसलीम चल्यो है त्रिणाव्रत शीघ्र दै गोकल आयो । बवंडर को तब रूप धर्यो धरनी परकै बल पउन बहायो । आगम जानकै भारी भयो हरि मार तबै वह भूमि परायो । धूर भए

गया ॥ १०४ ॥ व्रज के सभी लोग दौड़े हुए आये और सबने कृष्ण को गले से लगाया । व्रज प्रदेश की वधुएँ भांति-भांति के मंगलगीत गाने लगीं । धरती हिल गई और बच्चों ने विभिन्न प्रकार से पूतना-वध के प्रसंग कहने शुरू कर दिये जिन्हें सुनकर सभी मन में चकित हो जाते थे और इस तथ्य को सत्य मानने में हिचकिचाते थे ॥ १०५ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण के सिर के तथा अन्य अंगों को छुआते हुए और व्रज के सभी लोगों को बुलाते हुए (नन्द-यशोदा ने) बहुत सा दान दिया । बहुत से भिखारियों को वस्त्र आदि दान किये गये । सबका दुःख दूर करने के लिए इस प्रकार बहुत सा दान-पुण्य का कार्य किया गया ॥ १०६ ॥ ॥ कंस उवाच तृणावर्त के प्रति ॥ ॥ अड़िल ॥ जब कंस ने सुना कि गोकुल में पूतना मारी गई है तो उसने तृणावर्त से कहा कि तुम वहाँ जाओ और नन्द के पुत्र को इस प्रकार पटककर मारो जैसे पत्थर को झटककर मारा जाता है ॥ १०७ ॥ ॥ सवैया ॥ कंस को प्रणाम कर तृणावर्त शीघ्र ही गोकुल आ गया और उसने आकर बवंडर का रूप धारण करते हुए तेज गति से बहना शुरू कर दिया । तूफान को देखकर श्रीकृष्ण अत्यन्त भारी हो गये और कृष्ण से टकराकर खाकर तृणावर्त भूमि पर गिर पड़ा परन्तु फिर भी जब लोगों की आँखें धूल से भरकर मुंद गया तो वह कृष्ण को लेकर आकाश

ब्रिग संबके लोकन लै हरि को नभि के मग धायो ॥ १०८ ॥ जउ हरि सी नभि बीच गयो कर तउ अपने बल को तन छुट्टा । रूप भयानक को धरिकै मिलि जुद्ध कर्यो तब राछस फुट्टा । फेरि संभार हनो नख आपने कै कै तुरा सिर शत्र को कुट्टा । रुंड गिर्यो जन पेडि गिर्यो इम मुंड पर्यो जन डार ते छुट्टा ॥१०९॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके ग्रंथे क्रिसनावतारे त्रिणावरत बधह ॥

॥ स्वैया ॥ कान्ह बिना जन गोकल के बसु आजज होइ इकत्र ढुंढायो । द्वादस कोस पै जाइ पर्यो हुतो खोजत खोजत पै मिल पायो । लाइ लियो हिय सो सभ ही तब ही मिलिकै उन मंगल गायो । ता छबि को जस उच्च महाँ कब ने मुख ते इह भाख सुनायो ॥ ११० ॥ दत को रूप भयानक देखकै गोप सभो मन मै डरु कीआ । मानस की कहहै गनती सुरराजहि को पिख फाटत हीआ । ऐसो महाँ बिकराल सरूप तिसै हरि ने छिन मै हनि लीआ । आइ सुन्यो अपने ग्रह मै तिह को बिरतांत सभै कहि दीआ ॥ १११ ॥ ॥ स्वैया ॥ दै बहु बिप्पन को तब दान

मार्ग से उड़ चला ॥ १०८ ॥ जब वह कृष्ण को लेकर बीच आकाश में गया तो कृष्ण की मार के फलस्वरूप उसके शरीर की शक्ति क्षीण होने लगी । कृष्ण ने भयानक रूप धारण कर उस राक्षस से युद्ध किया और राक्षस को घायल कर दिया । पुनः अपने हाथ के दसों नाखूनों से कृष्ण ने शत्रु के सिर को काट डाला । तृणावर्त्त का धड़ पेड़ की तरह धरती पर गिर पड़ा और उसका सिर इस प्रकार गिरा मानो डाली से नींबू टूटकर नीचे गिरा हो ॥ १०९ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार में तृणावर्त-बध समाप्त ॥

॥ सवैया ॥ कृष्ण के बिना गोकुल के लोग अनाथ हो गये और इकट्ठे हो उन्हें ढूंढ़ने लगे । बारह कोस दूर तक खोजने पर कृष्ण मिले और सबने उन्हें गले से लगाते हुए मंगलगीत गाये तथा उस छवि को महाकवि ने अपने मुख से इस प्रकार कहकर सुनाया ॥ ११० ॥ दैत्य का भयानक रूप देखकर सभी गोप डर गये और मनुष्य की तो बात ही क्या, देवराज इन्द्र का हृदय भी दैत्य के शरीर को देखकर भयभीत हो उठा । ऐसे विकराल स्वरूप वाले राक्षस का कृष्ण ने क्षण भर में नाश कर दिया । तब कृष्ण अपने घर पर आये और इस सारी घटना का वर्णन सबने एक-दूसरे से किया ॥ १११ ॥ ॥ सवैया ॥ विप्रों को बहुत सा दान देकर माता

सु खेलत है सुत सो फुन माई । अंगुल कै मुख सामुहि हेत ही लेत भले हरि जी मुसकाई । आनंद होत महाँ जसुधा मन अउर कहा कहौ तोहि बडाई । ता छबि की उपमा अति पै कबि के मन मै तन ते अति भाई ॥ ११२ ॥

अथ सारी बिस्व मुख सो क्रिशन जी जसोधा को दिखाई ॥

॥ स्वैया ॥ मोहि बढाइ महा मन मै हरि को लगी फेरि खिलावन माई । तउ हरि जी मन मद्धि बिचार शिताब लई मुखि माहि जँभाई । चकत होइ रही जसुधा मन मद्धि भई तिह के बुधिताई । माइ सु ढाप लई तब ही सभ बिशन मया तिन जो लख पाई ॥ ११३ ॥ कान्ह चले घुंटुआ घरि कौलरि मात करै उपमा तिह चंगी । लालन को मन ग्वाल किधौ नंद (मू०ग्रं०२६६) धेन सभै तिहके सभ संगी । लाल भई जसुधा पिख पुत्रहि जिउँ घनि मै चमकै दुत रंगी । किउ नहि होवै प्रसंन्य सु मात भयो जिनके ग्रह तात त्रिभंगी ॥ ११४ ॥ ॥ स्वैया ॥ राह सिखावन काज गडो हरि गोप मनो मिलकै सु

यशोदा फिर बालक कृष्ण के साथ खेलना प्रारम्भ कर देती है और श्रीकृष्ण जी ओठों पर उँगली रखकर धीरे-धीरे मन्द-मन्द मुस्कुराते हैं । माता यशोदा महाआनन्दित होती है और उसकी खुशी का वर्णन नहीं किया जा सकता । यह दृश्य कवि के मन को भी अत्यन्त रुचिकर लगा ॥ ११२ ॥

सारा विश्व मुख में से कृष्ण जी द्वारा यशोदा को दिखाया जाना

॥ सवैया ॥ मन में मोह को बढ़ाकर माता यशोदा फिर पुत्र को खेलाने लगी, तब भी कृष्ण ने मन में कुछ विचार कर शीघ्र ही एक जम्हाई ली । यशोदा चकित हो गई और उसके मन में विचित्र प्रकार के संशय उठने लगे तथा माँ ने आगे बढ़कर हाथ से पुत्र के मुँह को ढाँप लिया और इस प्रकार विष्णु की माया को देखा ॥ ११३ ॥ घुटनों के बल कृष्ण घर में चलने लगे और माता उन्हें विभिन्न उपमाएँ देते हुए प्रसन्न होने लगी । कृष्ण के साथियों के पैरों के निशानों के पीछे-पीछे नन्द की गायें भी चल रही है । माता यशोदा यह देखकर बादल में चमकनेवाली बिजली के समान खुशी से चमक उठी और वह माता प्रसन्न भी क्यों न हो जिसके घर में कृष्ण जैसा पुत्र पैदा हुआ हो ॥ ११४ ।

बनायो । कानहि को तिहऊ पै बिठाइकै आपने आङन बीच धुमायो । फेरि उठाइ लयो जसुधा उर मे गहिकै पय पान करायो । सोइ रहे हरि जो तबही कबि ने अपने मन मै सुख पायो ॥ ११५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब ही निद्रा छुट गई हरी उठे ततकाल । खेल खिलावन सो कर्यो लोचन जाहि बिसाल ॥ ११६ ॥ इसी भांत सो क्रिशन जी खेल करे ब्रिज माहि । अब पग चलर्यो की कथा कहो सुनो नर नाहि ॥११७॥ ॥ स्वैया ॥ साल बितीत भयो जब ही तब कान्ह भयो बल कै पग मै । जस मात प्रसंन्य भई मन मै पिख धावत पुत्रहि को मग मै । बात कही इह गोपन सो प्रभा फैल रही सु सभै जग मै । जन सुंदर ली अति माखन को सभ धाइ धसी हरि के नग मै ॥ ११८ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोपन सो मिलकै हरि जो जमना तट खेल मचावत है । जिम बोलत है खग बोलत है जिम धावत है तिम धावत है । फिर बैठ बरेतन मद्धि मनो हरि सो बह ताल बजावत है । कबि स्याम कहै तिनको उपमा सुभ गीत भले मुख गावत है ॥ ११९ ॥ ॥ स्वैया ॥ कूंजन मै जमना तट से

॥ सवैया ॥ चलना सिखाने के लिए सभी गोपों ने मिलकर कृष्ण के लिए एक बच्चो की गाड़ी बनाई और कृष्ण को उस पर बिठाकर आँगन के बीच में घुमाया । फिर यशोदा ने उसे गोदी में उठाकर अपना दूध पिलाया और जब श्रीकृष्ण जी सो गये तो कवि ने अपने हृदय में परम सुख माना ॥ ११५ ॥ ॥ दोहा ॥ निद्रा छूटते ही श्रीकृष्ण तत्काल उठे और खेलने के लिए नेत्रों से संकेत कर मचलने लगे ॥ ११६ ॥ इस प्रकार ब्रज में कृष्ण ने अनेक प्रकार से खेल खेले और अब मैं उनके पैरों पर चलने की कथा का वर्णन करता हूँ ॥ ११७ ॥ ॥ सवैया ॥ एक वर्ष जब व्यतीत हुआ तो श्रीकृष्ण पैरों पर बल देकर चलने लगे । यशोदा माता प्रसन्न हो उठी और पुत्र को देखने के लिए रास्ते में उसके पीछे-पीछे जाने लगीं । यशोदा ने कृष्ण के चलने की बात सभी गोपिकाओं को बताई और कृष्ण का तेज सारे संसार में फैलने लगा । सुन्दर स्त्रियाँ भी श्रीकृष्ण को देखने के लिए माखन इत्यादि लेकर चल पड़ीं ॥ ११८ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपों के साथ मिलकर कृष्ण जी यमुना तट पर खेल की धूम मचाते हैं और जैसे पक्षी बोलते हैं, वैसी बोलियाँ बोलते हैं और जिस प्रकार चलते हैं, उस प्रकार चलने का नाटक करते हैं । फिर रेत पर बैठकर वे सब वादिय बजाते हैं और कवि श्याम कहता है कि सभी अपने

मिल गोपन सो हरि खेलत है। तरि कै तब ही सिगरी जमना हृट मद्धि बरेतन पेलत है। फिरि कूवत है जु मनो नट जिउँ जल को हिरदे संगि रेलत है। फिर ह्वै हुँडुआ लरके दुहूँ ओर ते आपसि मै सिर मेलत है॥ १२०॥ आइ जबै हरि जी ग्रहि आपने खाइकै भोजन खेलन लागे। मात कहै न रहै घरि भीतरि बाहरि को तब ही उठ भागे। स्याम कहै तिनकी उपमा ब्रिज के पति बीथन मै अनुरागे। खेल मचाइ दयो लुकमीचन गोप सभै तिह के रस पागे॥ १२१॥ खेलत है जमना तट पै मन आनंद कै हरि ग्वारन सों। चड़ रूख चलावत सोट किधो सोऊ धाइकै ल्यावै गुआरन सों। कबि स्याम लखी तिनकी उपमा मनो मद्धि अनंत अपारन सों। बलि जात सभै (मू०ग्रं०२६७) मुन देखन को करिकै बहु जोग हजारन सों॥ १२२॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके ग्रंथे क्रिशनावतारे गोपन सो खेलबो बरननं अशटम धिआइ समापतम॥

सुन्दर मुख से गीत गाते है॥ ११९॥ ॥ सवैया॥ गोपों के साथ मिलकर यमुना के तट पर कुजों में कृष्ण खेलते हैं और समूची यमुना को तैरकर दूसरी ओर रेत पर जाकर लोटते हैं। फिर सभी बच्चों के साथ कृष्ण नट के समान कूदते है तथा अपनी छाती से जल को चीरते हैं। फिर भेड़ों के समान आपस में लड़ते हुए एक-दूसरे के सिर पर सिर मारते है॥ १२०॥ जब कृष्ण जी घर पर आते हैं तो वे भोजन करने के बाद फिर खेलने लग जाते हैं। माता घर पर रहने के लिए कहती है, परन्तु कहने पर भी घर के भीतर न रहकर वे उठकर बाहर भाग खड़े होते हैं। कवि श्याम का कथन है कि ब्रज के स्वामी कृष्ण को ब्रज की गलियों से परम अनुराग हो गया है और गोपों के साथ लुका-छिपी के खेल का रस सब पर चढ़ गया है॥ १२१॥ यमुना के तट पर खेलते हुए कृष्ण बच्चों के साथ परम आनन्दित हो रहे हैं। पेड़ पर चढ़कर वे डंडा चलाते हैं और फिर उसे ग्वालिनों के बीच में ढूंढ़कर लाते हैं। कवि श्याम ने इस उपमा का वर्णन करते हुए कहा है कि इस शोभा को देखने के लिए हजारों प्रकार से योगसाधना करनेवाले मुनि भी बलिहारी हो रहे हैं॥ १२२॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार में गोपों के साथ खेल-वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त॥

अथ माखन चोर खैबो कथनं ॥

॥ स्वैया ॥ खेलन के मिस पै हरिजी घरि भीतर पैठ कै माखन खावै । नैनन सैन तबै करिकै सभ गोपन को तब ही सु खुलावै । बाकी बच्यो अपने करि लैकर बानर के मुख भीतरि पावै । स्याम कहै तिह को उपमा इह कै बिध गोपन कान खिझावै ॥ १२३ ॥ खाइ गयो हरि जी जब माखन तउ गुपिआ सभ जाइ पुकारी । बात सुनो पत की पतनी तुम डार दई दध की सभ खारी । कानहि कै डर ते हम चोर कै राखत है चड़ ऊच अटारी । ऊखल को धरि कै मनहा पर खात है लंगर दे करि गारी ॥ १२४ ॥ होत नही जिहके घरि मै दध दै करि गारन शोर करै है । जो लरका जनिकै खिझ है जन तो मिल सोटन साथ मरै है । आइ परै जु त्रिया तिह पै सिर के तिह बार उखार डरै है । बात सुनो जसुधा सुत की सु बिना उतपात न कान्ह टरै है ॥ १२५ ॥ बात सुनी जब गोपन की जसुधा

मक्खन चुराकर खाने का कथन

॥ सवैया ॥ खेलने के बहाने कृष्ण घर के अन्दर घुसकर मक्खन खा रहे हैं और आंखों के संकेतों से कृष्ण गोपों को बुला-बुलाकर उनको भी खिला रहे हैं। बाकी बचा हुआ मक्खन हाथों में लेकर वे बानरों को खिला रहे हैं। श्याम कवि कहता है कि इस प्रकार कृष्ण गोपियों को खिझा रहे हैं ॥ १२३ ॥ जब कृष्ण सारा मक्खन खा गए तो गोपियाँ चिल्लाने लगीं और नन्द की पत्नी यशोदा से कहने लगी कि कृष्ण ने दही-मक्खन के सब बर्तन गिरा दिये हैं। कृष्ण के डर से हम स्वयं मक्खन को ऊँचे स्थान पर रखती हैं, परन्तु फिर भी यह ऊखलों के सहारे ऊपर चढ़कर साथियों-समेत हमको बुरा-भला कहते हुए मक्खन खा जाते हैं ॥ १२४ ॥ हे यशोदा ! जिसके घर में इन लोगों को मक्खन आदि नहीं मिलता उनको ये शोर मचाते हुए गालियाँ देते हैं। यदि कोई इनको बालक समझकर इनके साथ खीझता है तो ये सब डंडे से उनकी पिटाई करते हैं। इस पर यदि कोई स्त्री आकर इनको डाँटने की कोशिश करती है तो ये सब उसके सिर के बाल तक नहीं छोड़ते। अतः, हे यशोदा ! तुम अपने बच्चे की बातें सुन लो, ये बिना उत्पात किये नहीं मानता है। १२५ गोपियों की बातों को सुनकर यशोदा मन में रुष्ट हो गई, परन्तु जैसे ही कृष्ण घर आये

तब ही मन माहि खिझी है। आइ गयो हरि जी तब ही पिख पुत्रहि को मन माहि रिझी है। बोल उठे नंदलाल तबै इह ग्वार खिझावन मोहि भिझी है। मात कहा दध दोश लगावत मार बिना इह नाहि सिझी है॥ १२६॥ मात कह्यो अपने सुत को कहु किउ करि तोहि खिझावत गोपी। मात सों बात कही सुत यो करि सो गहि भागत है मुहि टोपी। डारकै नास खिचै अंगुरी सिर मारत हैं मुझ को बह थोपी। नाक घसाइ हसाइ उनै फिर लेत तबै बह देत है टोपी॥ १२७॥ ॥ जसुधा बाच गोपन सों॥ ॥ स्वैया॥ मात खिझी उन गोपन को तुम किउ सुत मोहि खिझावत हउ री। बोलत हो अपने मुख ते हमरे धन है दध दाम सु गउरी। मूढ़ अहीर न जानत है बड बोलत हो सु रही तुम ठउरी। कानहि साथ बिना अपराधहि बोलहि गो जु भई कछु बउरी॥ १२८॥ ॥ दोहरा॥ बिनती कै जसुधा (मू०पं०२६८) तबै दोऊ दए मिलाइ। कान्ह बिगारै सेर दध लेहु मनक तुम आइ॥ १२९॥ ॥ गोपी बाच

उनको देखकर पुनः प्रसन्न हो उठी। कृष्ण ने आते ही कहा कि ये ग्वालिनें मुझे बहुत तंग करती हैं। मेरी माँ के सामने ये क्या केवल दही का दोष लगा रही हैं, ये ग्वालिनें तो मार खाए बिना ठीक नहीं होंगी॥ १२६॥ माँ ने पुत्र से पूछा, अच्छा बेटा! बताओ, तुमको ये गोपियाँ कैसे तंग करती हैं? तो पुत्र ने माँ से कहा कि ये सब मेरी टोपी (मुकुट) लेकर भाग जाती हैं। मेरा नाक बन्द कर देती हैं और मेरे सिर पर मारती हैं और फिर मुझसे नाक रगड़वाकर, मेरी हँसी उड़ाकर मुझे टोपी वापस करती हैं॥ १२७॥ ॥ यशोदा उवाच गोपियों के प्रति॥ ॥ सवैया॥ माता यशोदा उन गोपियों को खीझकर कहने लगी कि तुम मेरे बच्चे को क्यों तंग करती हो। तुम अपने मुँह से अपनी शेखी मार रही हो कि जैसे तुम्हारे ही घर में दही, गाय और धन आदि है और किसी के पास नहीं। मूर्ख ग्वालिनो! तुम बिना सोचे-समझे ही बोले जा रही हो। रुको, मैं अभी तुम सबको ठीक करती हूँ। कृष्ण सीधा-साधा है, इसको बिना अपराध के ही यदि कुछ कहोगी तो तुम्हारा पागलपन समझा जायगा॥ १२८॥ ॥ दोहा॥ फिर यशोदा ने दोनों (कृष्ण और गोपियों) को समझाते हुए दोनों पक्षों की सुलह करवा दी और गोपियों से कहा कि ठीक है अब अगर कृष्ण तुम लोगों का एक सेर दूध खराब करे तो तुम आकर मुझसे मन भर ले जाओ १२९ । गोपी उवाच

जसुधा से ॥ ॥ दोहरा ॥ सभ गोपी मिलि यौ कही मोहनि जीवै तोहि । याहि देहि हम खान बध सभ मन करें न क्रोहि ॥ १३० ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिशनावतारे माखन चुरैबो बरननं ॥

अथ जसुधा को विस्व सारी मुख पसार दिखैबो ॥

॥ स्वैया ॥ गोपी गई अपने ग्रिह मै तब ते हरि जी इक खेल मचाई । संगि लयो अपने मुसलीधर देखत ता मिटिआ हुन खाई । भोजन खानहि को तजि खेलै सु ग्वार चले घर को सभ धाई । जाइ हली सु कह्यो जसुधा पहि बात वहै तिन खोलह सुनाई ॥ १३१ ॥ मात गह्यो रिस कै सुत को तब से छिटीआ तन ताहि प्रहार्‍यो । तउ मन मद्धि डर्‍यो हरि जी जसुधा जसुधा करिकै जु पुकार्‍यो । देखहु आइ सभै मुहिको मुख मात कह्यो तब तात पसार्‍यो । स्याम कहै तिन आनन मै सभही घर मूरत बिस्व बिचार्‍यो ॥ १३२ ॥ सिंध धराधर अउ धरनी

यशोदा के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ तब गोपियों ने कहा कि हे माता यशोदा ! तुम्हारा मोहन युग-युग तक जिए, हम स्वयं इसे दूध की खान दे देंगी और कभी मन में बुरा नहीं मानेंगी ॥ १३० ॥

॥ श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार में मक्खन-चोरी-वर्णन समाप्त ॥

मुख पसारकर यशोदा को सारा विश्व दिखाना

॥ सवैया ॥ जब गोपियाँ अपने घर को चली गयीं तो कृष्ण ने नया खेल शुरू कर दिया । इन्होंने बलराम को साथ लिया और खेलने लगे । खेल में बलराम ने देखा कि कृष्ण मिट्टी खा रहा है । जब खेल छोड़कर सभी ग्वाल भोजन करने के लिए घरों को आये तो बलराम ने चुपके से कृष्ण की मिट्टी खानेवाली बात माता यशोदा को कह दी ॥ १३१ ॥ माता ने रुष्ट होकर पुत्र कृष्ण को पकड़ लिया और छड़ी लेकर उसे मारने लगी । तब कृष्ण मन में डर गये और 'यशोदा माँ', 'यशोदा माँ' पुकारने लगे । माँ ने कहा, सभी आकर इसके मुँह को देखो । माँ ने जब मुँह दिखाने के लिए कहा तो कृष्ण ने मुँह खोल दिया । कवि का कथन है कि कृष्ण ने उसी समय अपने मुख में सारा विश्व इन लोगों को दिखा दिया १३२ सिंधु, धरती, पाताल और नागलोक सभी

सभ थांबल को पुर अउ पुर नागनि । अउर सभै निरखे तिह मै पुर बेद पड़ै ब्रहमागनि तागनि । रिद्ध अउ सिद्ध अउ आपने बेख कै जान अभेव लगी पग लागनि । स्याम कहै तिन चच्छन सौ सभ देख लयो जु बडी बडभागनि ॥ १३३ ॥ ॥ दोहरा ॥ जेरज स्वेतज उतभुजा देखे तिन तिह जाइ । पुत्र भाव को दूर करि पाइन लागी धाइ ॥ १३४ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिशनावतारे मात जसुधा को मुख पसार बिस्व रूप दिखैबो ॥

अथ तर तोर जुमलारजन तारबो ॥

॥ स्वैया ॥ फेरि उठी जसुधा परि पाइन ताकी करी बहु भात बडाई । हे जग के पति हे करुनानिध होइ अजान कह्यो मम माई । सारे छिमो हमरे तुम अउगन ह्वै मतिमंदि करी जु ढिठाई । मीट लयो मुख तउ हरि जी तिह पै ममता बर बात छपाई ॥ १३५ ॥ ॥ कबितु ॥ करुना कै जसुधा कह्यो

दिखा दिये । मुँह में ब्रह्माग्नि तापते हुए वेद-पाठी दिखाई दिए । ऋद्धियों, सिद्धियों और स्वयं को देखकर, माता यशोदा कृष्ण को सब रहस्यों से परे जानकर उनके पाँव छूने लगी । कवि का कथन है कि जिन्होंने अपने नेत्रों से यह दृश्य देख लिया वे बड़े भाग्यशाली हैं ॥ १३३ ॥ ॥ दोहा ॥ माता ने जेरज, स्वेदज एवं उद्भिद् सभी प्रकार के जीव कृष्ण के मुख में देखे । वह पुत्र-भाव को त्यागकर कृष्ण के चरण स्पर्श करने लगी ॥ १३४ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार में माता यशोदा को मुँह पसारकर विश्वरूप दिखाना समाप्त ॥

वृक्षों को तोड़कर यमलार्जुन का उद्धार

॥ सवैया ॥ फिर यशोदा कृष्ण के पाँवों पर से उठी और उसने अनेकों प्रकार से कृष्ण की स्तुति की । हे प्रभु ! तुम जगत के स्वामी हो और करुणा के सागर हो, मैंने अनजाने में अपने को तुम्हारी माँ समझ लिया था । मैं मतिमन्द हूँ, मेरे सारे अवगुणों को तुम क्षमा कर दो । तब हरि ने अपने मुख को बन्द कर लिया और ममतावश इस बात को छिपा लिया ॥ १३५ ॥ ॥ कवित्त ॥ यशोदा ने कृपापूर्वक कृष्ण को गोपों

है इम गोपन सों खेलबे के काज रलि आए गोप बन सो। बारको के कहे कर क्रोध मन आपने मै स्याम को प्रहार तन लागी छूछकन सो। (मू०ग्रं०२५८) देख देख लासन को रोवै सुत मात कहै कबि स्याम महा मोह करि मन सो। राम राम कहि सभो मारबे की कहा चली सामुहि न बोलिऐ ही ऐसे साध जन सो॥ १३६॥ ॥ दोहरा॥ खीर बिलोवन को उठी जसुधा हरि की माइ। मुख ते गावै पूत गुन महिमा कही न जाइ॥ १३७॥ ॥ स्वैया॥ एक समै जसुधा संगि गोपन खीर मथै कर लै कै मथानी। ऊपरि को कट सो कसिकै पटरो मन मै हरि जोति समानी। घंटकाछुद्र कसी तिह ऊपरि स्याम कही तिह की जु कहानी। दान औ प्राक्रम को सुध कै मुख तै हरि की सुभ गावत बानी॥ १३८॥ खीर भर्यो जबही तिह को कुच तउ हरि जी तब ही फुनि जागे। पय सु पिआवत हुते जसुधा प्रभ जी इह ही रसि मै अनुरागे। दूध फट्यो हुइ बासन तें तब धाइ चली इह रोवन लागे। क्रोध कर्यो मन मै ब्रिज के पति पै घरि ते उठ बाहरि भागे॥ १३९॥ ॥ दोहरा॥ क्रोध

के साथ वन में खेल आने की आज्ञा दे दी, परन्तु बालकों के कहने में आकर माता यशोदा कृष्ण को (फिर) डंडियों से मारने लगी। पुन: डंडियों के निशान शरीर पर पड़े देखकर माता मोहवश रोने लगी। कवि श्याम का कथन है कि ऐसे साधु व्यक्ति को मारना तो दूर रहा उसके सामने तो क्रोध में आना ही नहीं चाहिए॥ १३६॥ ॥ दोहा॥ माँ यशोदा दही बिलोने के लिए उठी है। वह मुख से पुत्र-महिमा का गायन कर रही है और उसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता १३७॥ ॥ सवैया॥ एक बार यशोदा गोपिनों को संग लेकर दही मथ रही थी। उसने कमर बाँध रखी थी और मन में वह कृष्ण का ध्यान लगाये हुए थी। कमरबन्द के ऊपर छोटी-छोटी घंटियाँ कसी हुई थीं। कवि श्याम का कहना है कि दान और तप-तेज का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। माता प्रसन्न होकर मुख से कृष्ण के गीत गा रही है॥ १३८॥ जब माता यशोदा के स्तनों में दूध भर आया तो कृष्ण जी जगे। माता उन्हें दूध पिलाने लगी और कृष्ण इसी रंग में मस्त हो गये। इधर बर्तन में पड़ा-पड़ा दूध फट गया। तब माता यशोदा बर्तन का ध्यान आते ही बर्तन देखने के लिए चली तो कृष्ण रोने लगे। ब्रजराज कृष्ण को इतना गुस्सा आ गया कि वे उठकर घर से बाहर भाग गये १३९ ।दोहा क्रोधित होकर कृष्ण घर से

करे हरि जी मनै घरि ते बाहरि जाइ । संगि सखा लै कप सभै आए सैन बनाइ ॥ १४० ॥ पाथर को गहिकै करै बीनो मटु सु भगाइ । खीर दसो दिस बहि चल्यो अउ पीनो हरि धाइ ॥ १४१ ॥ ॥ स्वैया ॥ सैन बनाइ भलो हरि जी जसुधा दध की मिल लूटन लाए । हाथन मै गहि कै सभ बासन कै बल को चहूँ ओर बगाए । फूट गए वह फैल पर्यो दध याथ इहै कबि के मन आए । कंस को मीझ निकारन को अगुआ जन आगम कान जनाए ॥ १४२ ॥ ॥ स्वैया ॥ फोर दए तिन जो सभ बासन क्रोध भरी जसुधा तब धाई । भाज चड़े कपि रूखन रूखन ग्वारन ग्वारन सैन भगाई । दउरत दउर सबै हरि जी बसुधा परि आपनी मात हराई । स्याम कहै फिरकै बिज के पति ऊखल सो फुनि देहि बंधाई ॥ १४३ ॥ ॥ स्वैया ॥ बउर गहे हरि जी बसुधा जब बाँधि रही रसिआ नही मावैं । कै इकठी ब्रिज की रसिआ सभ जोर रही कछु थाहि न पावैं । फेरि बंधाइ भए ब्रिज के पति ऊखल सो धरि ऊपरि धावैं । साध उधारन को जुमलारजनु ताहि नमित किधौ

बाहर जाकर गोपों को तथा वानरों को साथ लेकर सेना बनाकर वापस आये ॥ १४० ॥ पत्थर से मार-मारकर इन सबने दूध के मटके फोड़ दिये, जिससे दूध चारों ओर बह निकला । कृष्ण (और उनके साथियों ने) जी भरकर दूध का पान किया ॥ १४१ ॥ ॥ सवैया ॥ इस प्रकार सेना बनाकर कृष्ण जी यशोदा के दूध को लूटने लगे । हाथों मे बर्तन पकड़-पकड़कर इधर-उधर फेंकने लगे । दूध और दही को इधर-उधर फैला देखकर कवि के हृदय में यह भाव आया है कि दही का फैलना मानो कंस का मेढा, खोपड़ी फूटकर गिरने का पूर्व संकेत हो ॥ १४२ ॥ ॥ सवैया ॥ जब सब बर्तन कृष्ण ने फोड़ दिये तो यशोदा क्रोधित होकर दौड़ी । बन्दर वृक्षों पर चढ़ गये और ग्वालों की सेना को कृष्ण ने इशारा करके भगा दिया । तब दौड़ते-दौड़ते कृष्ण ने अपनी माता को हरा दिया अर्थात् उस समय वे उसके हाथ नहीं आये । परन्तु जब पकड़े गये तो व्रजराज कृष्ण को ऊखल के वृक्ष के साथ बाँध दिया गया ॥ १४३ ॥ ॥ सवैया ॥ यशोदा ने दौड़कर कृष्ण को पकड़कर जब कृष्ण को बाँध दिया तो कृष्ण चिल्लाने लगे । माता ने सारे व्रज की रस्सी इकट्ठी कर ली, परन्तु कृष्ण फिर भी बाँधने में नहीं आ रहे थे । अन्त में व्रजपति कृष्ण ऊखल के साथ बंध गये और लाटने लगे । ऐसा वे यमनार्जुन के उद्धार के

वह जावै ॥१४४॥ ॥ दोहरा ॥ घीसति घीसति ऊखलहि कान्ह उधारत साध। निकटि तबै तिनके गए जाननहार (मू०ग्रं०२७०) अगाध ॥ १४५ ॥ ॥ स्वैया ॥ ऊखल कान्ह अराइ किधौ बल कै तन को तर तोर दए है। तउ निकसे तिन तै जुमलारजन कै बिनती सुरलोक गए है। ता छबि के गअ उच्च महा कब के मन मै इह भांति भए है। नागन के पुर ते मधु के मटुकै मत कोल जु ऐच लए है ॥ १४६ ॥ ॥ स्वैया ॥ कउतक देख सभै ब्रिज के जन जाइ तबै जसुधा पहि आखी। तोर दए तन को बल कै तर भांत भली हरि की सुभ साखी। ता छबि की उपमा अति ही कबि ने अपुने मुख ते इम भाखी। फेर कही महराइ तिते उडे जिउँ घर ते उड जात है माखी ॥१४७॥ ॥ स्वैया ॥ दैतन के बध कौ शिब मूरत है निज सो करता सुख दय्या। लोगन को बरता हरता दुख है करता मुसलीधर भय्या। डार दई ममता हरि जी तब बोल उठी इह है मम अय्या।

लिए करने लगे॥ १४४॥ ॥ दोहा ॥ ऊखल को घसीटते-घसीटते कृष्ण साधुजनों का उद्धार करने लगे और अगाध प्रभु उनके निकट चले गये ॥ १४५ ॥ ॥ सवैया ॥ ऊखल को कृष्ण ने (एक अन्य पेड़ के साथ) अड़ाकर शरीर के बल से तोड़ दिया और उसमें से यमलार्जुन प्रकट हुए और कृष्ण की वन्दना करते हुए सुरलोक चले गये। (कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव एक बार गंगा के तट पर निर्लज्ज होकर क्रीड़ा कर रहे थे तो नारद ने उन्हें मृत्युलोक में वृक्ष बनकर रहने का श्राप दिया था। ये दोनों भाई व्रज-भूमि में वृक्ष बनकर पैदा हुए जिनको ऊखल के साथ अड़ाकर कृष्ण ने तोड़ा और इनका उद्धार किया।) यह छवि महाकवि को इतना प्रसन्न कर गई है कि मानो इसे नागलोक से खिंचकर चली आयी अमृत रूपी शहद की मटकी मिल गई हो ॥ १४६ ॥ ॥ सवैया ॥ इस लीला को देख सभी व्रज के लोग यशोदा के पास दौड़ हुए आये और उसे बताने लगे कि कृष्ण ने अपने तन के बल से वृक्षों को तोड़ दिया। इस छवि का भी कवि ने वर्णन करते हुए कहा है कि माता का गला भर आया और वह मक्खी की तरह उड़कर कृष्ण को देखने के लिए चली ॥ १४७ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण दैत्यों के वध के लिए शिव-रूप हैं, कर्ता हैं, सुख को देनेवाले हैं, लोकों के कष्टों को दूर करनेवाले बलराम के भाई हैं। माँ आकर उन्हें ममतावश बेटा-बेटा कह पुकारने लगी और कहने लगी कि यह

खेल बनाइ दयो हमको बिध जो जनम्यो ग्रह पूत कन्हय्या ।। १४८ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिशनावतारे तर तोर जुमलारजन उधारबो बरनन ।।

।। स्वैया ।। तोर दए तर जो तिहही तब गोपन बूढन मंत्र बिचारो । गोकल को तजिऐ चलिए ब्रिज ह्वै इहा बाध ते पाअन भारो । बात सुनी जसुधा अरु नंदहि ब्योत भलो मन मद्धि बिचारो । अउर भली इह ते न कछू जिह ते सु बचे सुत स्याम हमारो ।। १४९ ।। घासि भलो द्रुम छाह भली जमना ढिग है नग है तट जाके । कोटि झरै झरना तिह ते जग मै सम तुल्लि नही कछु ताके । बोलत है पिक कोकल मोर किधौ घन मे चहूँ ओरन बाके । बेग चलो तुम गोकल को तज पुंन हजार अबै तुम गाके ।। १५० ।। ।। दोहरा ।। नंद सभै गोपन सनै बात कही इह ठउर । तजि गोकल ब्रिज को चले इह ते भलो न अउर ।। १५१ ।। लटपट बांधे उठि चले आए जब ब्रिज हीर । देख्यो अपनै नैन भर बहितो जमना

परमात्मा की लीला ही है कि मेरे घर में कृष्ण जैसा पुत्र पैदा हुआ है ।। १४८ ।।

।। श्री बचित्र नाटक ग्रंथ के कृष्णावतार में वृक्षों को तोड़कर यमलार्जुन-उद्धार-वर्णन समाप्त ।।

।। सवैया ।। जब वृक्षों को तोड़ दिया तो सभी गोपों ने यह विचार-विमर्श किया कि गोकुल को छोड़कर अब हमें व्रज में जाकर रहना चाहिए, क्योंकि यहाँ रहना अब कठिन हो गया है । यशोदा और नन्द ने भी इस विचार को सुनकर सलाह की कि हमारे पुत्र को सुरक्षित रूप से रखने के लिए व्रज से और अच्छी जगह कोई नहीं है ।। १४९ ।। वहाँ घास, पेड़ों की छाया, यमुना का किनारा और पर्वत भी हैं । वहाँ कई झरने बहते हैं और संसार में उसके तुल्य अन्य कोई और स्थान नहीं है । वहाँ मोर, कोयल चारों ओर बोलते सुनाई पड़ते हैं, इसलिए शीघ्र ही गोकुल को त्यागकर हजारों पुण्यों को कमाने के लिए हमें यहाँ से चल देना चाहिए ।। १५० ।। ।। दोहा ।। नन्द ने सभी गोपों को यह बात कही कि अब गोकुल को छोड़कर व्रज के लिए हमें चल देना चाहिए, क्योंकि उससे भली जगह अन्य कोई नहीं है ।। १५१ ।। सभी अपना सामान आदि बाँध शीघ्रता से व्रज में चले आये और वहाँ उन्होंने यमुना के बहते

नीर ॥ १५२ ॥ ॥ स्वैया ॥ आइस पाइकै नंदहि को सभ गोपन जाइ भले रथ साजे । बैठ सबै तिन पै तिरिआ संगि गावत जात बजावत बाजे । हेम को दानु करै जु दोऊ हरि गोद लए जसुधा इम राजे । कंचन सैल सुता गिर भीतर ऊच मनो मन नील बिराजे (मू०ग्रं०२७१) ॥ १५३ ॥ गोप गए तज गोकल कौ ब्रिज आपने आपने डेरन आए । डार दई ललिआ अरु अच्छत बाहरि भीतरि धूप जगाए । ता छबि को जस उच्च महाँ कबि नै मुख ते इम भाख सुनाए । राम बिभीछन है किधौ लंक को राम जी धाम पवित्र कराए ॥ १५४ ॥ ॥ कबियो बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ गोप सभै ब्रिज पुर बिखै बैठे हरख बढाइ । अब मै लीला क्रिशन की मुख ते कहों सुनाइ ॥ १५५ ॥ ॥ स्वैया ॥ सालि बतीत भए जब सात लगे तब कान्ह चरावन गऊआ । पात बजावत औ मुरली मिल गावत गीत सभै लरकऊआ । गोपन लै ग्रिह आवत धावत लाइत है सभ को मन भऊआ । दूध पिआवत है जसुधा रिझ कै हरि खेल करै जु नचऊआ ॥ १५६ ॥ ॥ स्वैया ॥ कछु गए बिरकै

पानी का अवलोकन किया ॥ १५२ ॥ ॥ सवैया ॥ नन्द की आज्ञा पाकर सभी गोपों ने रथों को सजा लिया, उन पर सब स्त्रियाँ बैठ गयीं और वे वाद्य बजाते हुए चल दिये । यशोदा कृष्ण को गोद में लिये हुए शोभायमान है और ऐसा लग रहा है कि मानो उसने स्वर्णदान करके यह पुण्यफल प्राप्त किया हो । यशोदा पर्वत की शुभ्र चट्टान की तरह और उनकी गोद में कृष्ण नीलमणि की तरह विराजमान हो रहे थे ॥ १५३ ॥ गोप गोकुल को तजकर ब्रज में अपने-अपने डेरों पर आ गये और आकर उन्होंने वन्दना-स्वरूप इधर-उधर छाछ तथा अक्षत आदि गिराकर अन्दर-बाहर धूप-अगरबत्तियाँ जला लीं । उस छवि को महाकवि ने बताते हुए कहा है कि यह ऐसा लग रहा था जैसे राम ने विभीषण को लंका का राज्य देकर लंका को पुन: पवित्र करवाया हो ॥ १५४ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ सभी गोप हर्षित हो ब्रजपुरी में बैठे और अब मैं कृष्ण की लीला का वर्णन करता हूँ ॥ १५५ ॥ ॥ सवैया ॥ जब सात वर्ष व्यतीत हुए तो कृष्ण गाय चराने लगे । पीपल के पत्तों को जोड़कर बजाने लगे तथा मुरली के धुन पर सभी लड़के गाने लगे । गोपों को घर में लेकर आने-जाने लगे और अपनी इच्छानुसार सबको डराने-धमकाने लगे । यशोदा माता प्रसन्न होकर इनके नृत्य को देखकर इन सबको दूध पिलाती १५६ सवैया । ब्रज

धसिकै संगि दैत चलाइ दयो हरि जी जो। फूल गिरे नभि मंडल ते उपमा तिह की कबि नै सु करी जो। धंनि ही धंनि भयो तिहूँ लोकन भूमि को भारु अबै घट कीजो। स्याम कथा सु कहो इसको चित दै कबि दै इह को तु सुनी जो॥ १५७॥ कउतकि देख सभै ब्रिज बालक डेरन डेरन जाइ कही है। दानो की बात सुनी जसुधा घर आनंद के अति बात लही है। ता छबि की अति ही उपमा कबि ने मुख ते सरता जिउँ कही है। फैलि परयो सु दसो दिस को गनतो मन की तिह मद्धि बही है॥ १५८॥

अथ बकी दैत को बध कथनं॥

॥ स्वैया॥ दैत हन्यो सुनिकै न्रिप स्रउनन बात कही बक को सुनि लइयै। होइ तयार अबै तुम ते तजिकै मथुरा ब्रिज मंडल जइयै। कै तसलीम चल्यो तिहको जब डारत हो मुसली-धर भइयै। कंस कही हसिकै उहि को सुनि रे उहिको छल सो हनि दइयै॥ १५९॥ ॥ स्वैया॥ प्रात भए बछरे संग लै

मण्डल के वृक्ष झूमने और गिरने लगे और साथ-ही-साथ दैत्यों का भी उद्धार होने लगा। यह देख नभमण्डल से पुष्प-वर्षा होने लगी और कवियों ने इस दृश्य को विभिन्न प्रकार से उपमाएँ दीं। तीनों लोकों में धन्य-धन्य की आवाज़ आने लगी और पुकार होने लगी कि हे प्रभु! धरती का भार हलका करो। इस कथा को, जो श्याम कवि ने कहा है, उसे ध्यानपूर्वक सुनिए॥ १५७॥ इस लीला को देखकर व्रज के बालकों ने घर-घर जाकर यह बातें बताई हैं। दानवों के वध की बात सुनकर यशोदा भी मन-ही-मन आनन्दित हो उठी और कवि ने इसका वर्णन सरिता रूपी वाणी के माध्यम से जो किया है वह चारों दिशाओं में प्रसिद्ध हो गया और यशोदा माता के मन में प्रसन्नता की नदी बह निकली॥ १५८॥

बकासुर दैत्य का वध-कथन

॥ सवैया॥ दैत्यों का मारा जाना सुनकर राजा कंस ने बकासुर से कहा कि अब तुम मथुरा को त्याग व्रजमण्डल में जाओ। वह प्रणाम करता हुआ यह कहकर चल पड़ा कि अब आप मुझे भेज रहे हैं तो मैं जा रहा हूँ। कंस ने हँसकर कहा कि उसको कृष्ण को त तुम छल से ही मार दोगे १८९

कर बोच गए बन कौं गिरधारी। फेरि गए जमना तटि पै बछरे जल सुद्ध अचै नहि खारी। आइ गयो उत दैत बकासुर देखन माहि भयानक भारी। लील लए सभ ह्वै बगुला फिरि छोरि गए हरि जोर गजारी ॥ १६० ॥ ॥ दोहरा ॥ अगन रूप तब क्रिशन धर कंठि जयो तिह जाल। गहि सु मुकति ठानत भयो उगल डर्यो ततकाल ॥ १६१ ॥ ॥ स्वैया ॥ चोट करी उन जो इह पै इन तौ बलिकै (मू०ग्रं०२७२) उहि चोंच गही है। चीर दई बल कै तन को सरता इक स्रउनत साथ बही है। अउर कहा उपमा तिह की सु कही जु कछू मन मद्धि लही है। जोत रली तिह मै इम जिउँ दिन मै दुत दीप समाइ रही है ॥ १६२ ॥ ॥ कबितु ॥ जबै दैत आयो महा मुखि चबरायो जब जान हरि पायो मन कीनो वाकै नास को। सिद्ध सुर जाप तिनै उखार डारी चोंच वाकी बलो मार डार्यो महाबली नाम जास को। भूमि गिर पर्यो ह्वै टूटक महा मुखि वाको ताकी छबि कहिबो को भयो मन दास को। खेलबे के काज बन बीच

॥ सवैया ॥ प्रातः होते ही गाय-बछड़ों को लेकर गिरधारी कृष्ण वन को गये। फिर वे यमुना के तट पर गये और बछड़े जल इत्यादि पीने लगे, उसी समय उधर से भयानक दिखनेवाला बकासुर नामक दैत्य आ गया और उसने बगुले का रूप धारण करते हुए सभी जानवरों को लील लिया ॥ १६० ॥ ॥ दोहा ॥ तब विष्णु ने अग्नि-रूप धारण करके उसके गले को जला दिया और बकासुर ने अपना अन्त पास जानकर डर से उन सबको उगल दिया ॥ १६१ ॥ ॥ सवैया ॥ जब बकासुर ने इन पर चोट की तो इन्होंने बलपूर्वक उसकी चोंच को पकड़ लिया। बलपूर्वक कृष्ण ने उसको चीर दिया और रक्त-नदी बहने लगी। इस दृश्य का और क्या वर्णन करूँ ! उस दैत्य की ज्योति परमज्योति में इस प्रकार मिल गयी जिस प्रकार तारों की ज्योति दिन के प्रकाश में विलीन हो जाती है ॥ १६२ ॥ ॥ कवित्त ॥ जब दैत्य आया और उसने मुख खोला तो कृष्ण ने उसका नाश करने का विचार कर लिया। सिद्ध और देवताओं के वन्दनीय कृष्ण ने उसकी चोंच उखाड़ डाली और उस महाबली राक्षस को मार डाला। वह दो टुकड़े हो भूमि पर गिर पड़ा और कवि यह सब वर्णन करने के लिए लालायित हो उठा वह दृश्य ऐसा लग रहा था जैसे बालक जगत में

गए बालक जिउँ लै कै कर मद्धि चीर डारैं लांबे घास को ॥ १६३ ॥

॥ इति बकासुर दैत बधहि ॥

॥ सवैया ॥ संग लए बछुरे अरु गोप सु साँझि परी हरि डेरन आए। होइ प्रसंनि महाँ मन मै मन भावत गीत सभो मिल गाए। ता छबि को जसु उच्च महा कबि नै मुख ते इह भाति बनाए। देवन देव हन्यो धर पै छलि कै तर अउरन को जु सुनाए॥ १६४ ॥ ॥ कानजू बाच गोपन प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ फेरि कही इह गोपन कउ फुन प्रात भए सभ ही मिलि जावैं। अंनु भखै अपनै ग्रिह भो जिन मद्धि महा बन के मिल खावैं। बीच तरै हम पै जमना मन भावत गीत सभै मिल गावैं। नाचहिगे अरु कूदहिगे गहिकै कर मै मुरली सु बजावैं॥ १६५ ॥ ॥ सवैया ॥ मान लयो सभनो वह गोपन प्रात भई जब रैन बिहानी। कान बजाइ उठ्यो मुरली सभ जाग उठे तब गाइ छिरानी। एक बजावत है द्रुम पात किधो उपमा कबि स्याम पिरानी। कउतक देखि महा इह को पुरहूत बधू सुरलोक खिसानी॥ १६६ ॥ गेरी के चित्र लगाइ

खेल खेलने गये हों और वहाँ लम्बी घास को बीचो बीच से चीर रहे हो ॥ १६३ ॥

॥ बकासुर दैत्य-वध समाप्त ॥

॥ सवैया ॥ साँझ होने पर बछड़ों और गोपों को संग लेकर श्रीकृष्ण घर आये और सबने प्रसन्न होकर खुशी के गीत गाये। इस छवि की उपमा कवि ने इस प्रकार कही है कि देवों के भी देव श्रीकृष्ण ने छल से मारने के लिए आये बकासुर को छल से समाप्त कर दिया ॥ १६४ ॥ ॥ कृष्ण उवाच गोपों के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने फिर गोपों से कहा कि कल प्रातः सब मिलकर फिर चलेंगे। तुम लोग अपने-अपने घर से खाने के लिए कुछ ले चलना हम सब वन में मिलकर खायेंगे। यमुना को तैरकर पार करेंगे, नाचेंगे, कूदेंगे और बाँसुरी बजायेंगे ॥ १६५ ॥ ॥ सवैया ॥ सब गोपों ने यह बात मान ली तथा जब रात बीत गयी और सुबह हुई तो कृष्ण, ने मुरली बजाई और सबने जगकर गायों को छोड़ दिया। कुछ ग्वाल पत्तों को मोड़कर उनका बाजा बनाकर बजाने लगे और कवि श्याम का कथन है कि इस लीला को देखकर सुरलोक मे इन्द्र की पत्नियाँ भी खिसियाने लगी १६६

तनै सिर पंख धर्यो भगवान कलापी । लाइ लनै हरिता मुरली मुखि लोक भयो जिह को सभ जापी । फूल गुछे सिर खोस लए तर रूख खरो धरनी जिन थापी । खेलि दिखावत है जग को अर कोऊ नही हुइ आप ही आपी ॥ १६७ ॥ ॥ कंस बाच मंत्रीअन सों ॥ ॥ दोहरा ॥ जउ बकलै हरिजी हन्यो कंस सुन्यो तब स्रउन । करि इकत्र मंत्रहि कह्यो तहा भेजिए कउन ॥ १६८ ॥ ॥ मत्री बाच कंस प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ (मू०ग्रं०२७१) बैठ बिचार कर्यो न्रिप मंत्रनि बेग अघासुर को ब्रजु जावै । मारग रोक रहै तिनको धर पंनग रूप महाँ मुख बाय । आइ परै हरि जी जब ही तब ही सभ ग्वार समै बब जावै । आइ है खाइ तिनै सुनि कांस कि नातर आपको जीउ गवावै ॥ १६९ ॥

अथ अघासुर दैत आगमन ॥

॥ सवैया ॥ जाहि कह्यो अघ कंसि गयो तह पंनग रूप महा धर आयो । भ्रात हन्यो भगनी सुनि कै बध कै मन क्रुद्ध

कृष्ण ने गेरू रंग शरीर पर लगा लिया और सिर पर मोरपंख लगा लिया । हरी मुरली अधर पर रख ली और सारे विश्व के लिए वन्दनीय मुख शोभायमान हो उठा । फूलों के गुच्छे उसने सिर पर खोंस लिये और वह सृष्टि का रचयिता वृक्ष के नीचे खड़ा हो स्वयं ही समझ सकनेवाला खेल सारे विश्व को दिखा रहा है ॥ १६७ ॥ ॥ कंस उवाच मंत्रियों के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ जब कंस ने बकासुर के वध के बारे में सुना तो वह मंत्रियों को इकट्ठा कर विचार करने लगा कि अब किसको भेजा जाय ॥ १६८ ॥ ॥ मन्त्री उवाच कंस के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ राजा कंस ने मन्त्रियों से विचार कर अघासुर को ब्रज जाने के लिए कहा, ताकि वह महा विकराल सर्प का रूप धारण कर मार्ग में पड़ा रहे और जब कृष्ण उधर आयें तो ग्वालों-समेत सबको चबा जाय । या तो अघासुर उनको खाकर वापस आये और यदि वह ऐसा न करे तो कंस के द्वारा मार दिया जाय ॥ १६९ ॥

अघासुर दैत्य कथन

तहाँ कहु धायो । बैठि रह्यो तिनकै मग मै हरि के बध काज महाँ मुख बायो । देखत ताहि सभै ब्रिज बालक खेल कहा मन मै लखि पायो ॥ १७० ॥ ॥ सभ गोपन बाच आपिस मै ॥ ॥ स्वैया ॥ कोऊ कहै गिर मद्धि गुफा इह कोऊ इकन्त कहै अँधिआरो । बालक कोऊ कहै इह राछस कोऊ कहै इह पंनग भारो । जाहि कहै इक नाहि कहैं इक ब्योत इहो मन मै तिन धारो । एक कहै चलो भउन कछू सु बचाव करै घनि स्याम हमारो ॥ १७१ ॥ हेरि हरै तिह मद्धि धसे मुख नाउ नराछस मीच लयो है । स्याम जू आवै जबै मम मीट हो ब्योत इहो मन मद्धि कयो है । कान्ह गए तब मीट लयो मुख देवन सो हहकार भयो है । जीवन मूर हुतो हमरो अब सोऊ अघासुर चाब गयो है ॥ १७२ ॥ ॥ स्वैया ॥ देहि बढाइ बडो हरि जो मुख रोक लयो उह राछस ही को । रोक लए सभ ही करिकै बल सासि बढ्यो तब ही उह जी को । कान्ह बिदार दयो तिह को सिर प्रान गयो बिन भ्रात बकी को । गूब पर्‌यो

कर वह और क्रोधित होकर चल पड़ा । वह रास्ते में कृष्ण के वध के उद्देश्य को ध्यान में रखकर विकराल मुख फैलाकर बैठ गया । उसे देखकर सभी ब्रज के बालकों ने एक खेल समझा और उसके वास्तविक उद्देश्य को न जान पाये ॥ १७० ॥ ॥ सब गोप उवाच परस्पर ॥ ॥ सवैया ॥ कोई कहने लगा, यह पर्वत के बीच में गुफा है; कोई कहने लगा, यहाँ अंधकार का निवास है; कोई कहने लगा, यह राक्षस है; और कोई कहने लगा, यह भारी सर्प है । कुछ उसमें जाने के लिए कहने लगे और कुछ जाने से इन्कार करने लगे और इसी प्रकार विचार-विमर्श चलता रहा । तब एक ने कहा कि अभय हो इसमें घुस जाओ, कृष्ण हमारी रक्षा करेगा ॥ १७१ ॥ कृष्ण को बुलाकर सभी उसके मुख में घुस गये और उस राक्षस ने अपना मुख बन्द कर लिया । उसका तो यह विचार ही था कि जब कृष्ण आयेंगे तो मैं मुख बन्द कर लूँगा । जब कृष्ण अन्दर गये तो उसने मुख बन्द कर लिया और देवताओं में हाहाकार मच गई । वे सभी कहने लगे कि वही तो मेरे जीवन के आधार थे और उसे भी अघासुर चबा गया ॥ १७२ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने अपने शरीर को बढ़ाकर उस राक्षस के मुख को बन्द होने से रोक लिया । अपने बल और हाथों से [illegible] कृष्ण ने रोक लिया तो अघासुर की साँस फूलने लगी । [illegible]

[illegible] फाड़ दिया और [illegible]

ो इम जिउँ सखदागर को टूट ग्यो मट घी को ॥ १७३ ॥
भयो तब ही निकसे हरि ग्वार सभै निकसे तिह नारे।
तबै हरखे मन मै दिख काम बच्यो हरि पंनग भारे। गावत
सबै गन गंध्रब ब्रहम सभो मुख बेद उचारे। आनंद स्याम
मन मै नग रच्छक जीत चले घर भारे ॥ १७४ ॥
वैया ॥ कान्ह कढ्यो सिरि के मग ह्वै न का्ढ्यो मुख के
ोर अड़ी के। स्रउन भर्यो इम ठाढि भयो पहरे पट जिउँ
लिग मड़ी के। एक कही इह की उपमा फुन अउ कबि
न बढ़ि बड़ी के। ढोअति ईट गुआर सनै हरि दउर चढ़े
ीस गढ़ी के ॥ १७५ ॥ (मू०ग्रं०२७४)

॥ इति अघासुर दैत बधहि ॥

अथ बछरे ग्वार ब्रहमा चुरैबो कथनं ॥

॥ स्वैया ॥ राछस मार गए जमना तट जाइ सभो मिलि
गायो। कान्ह प्रबार पर्यो मुरलीकट खोस लई मन

घर की मेधा इस प्रकार बाहर निकल पड़ी मानो किसी व्यापारी के
मटका फूट गया हो ॥ १७३ ॥ इस प्रकार जब रास्ता बन गया
ग्वालों के साथ उसके सिर में से निकले। कृष्ण को उस भारी
आक्रमण से बच गया देखकर सभी देवगण हर्षित हो उठे। गण-
ीत गाने तथा ब्रह्मा वेदपाठ करने लगे। सबके मन में आनन्द
और नाग को जीतनेवाले श्रीकृष्ण और उनके साथी घर की
र दिये ॥ १७४ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण दैत्य के सिर के मार्ग से
और मुँह में से वापस नहीं निकले। रक्त से सने हुए वे सब इस
ड़े थे मानो किसी मुनि ने गेरुए वस्त्र धारण कर रखे हों। कवि ने
दृश्य के लिए एक उपमा दी है कि वे सब ऐसे लग रहे थे कि मानो
ों को ढोते हुए लाल हो गये हों और कृष्ण मानो दौड़कर किले
पर जा खड़े हुए हों ॥ १७५ ॥

॥ अघासुर दैत्य-बध समाप्त ॥

बछड़े और ग्वालों का ब्रह्मा द्वारा चुराया जाना

वैया ॥ राक्षस को मारकर सभी यमुना के तट पर गए और
कट्ठा किया गया कृष्ण के चारों ओर सब इकट्ठा हो गए

मै सुख पायो । कँ छमका बरखै छटका कर बाम हूँ सो सभ हूँ वह छायो । मीठ लगै तिह की उपमा करकै गति कै हरि के मुख पायो ॥ १७६ ॥ कोऊ डरै हरि के मुखि ग्रास ठगाइ कोऊ अपणे मुख डारे । होइ गए तन मै कछु नाभक खेल करो संगि कान्हर कारे । ता छिन लै बछरे ब्रहमा इकठे करि कै सु कुटी मधि डारे । ढूंढि फिरै न लहै सु करै बछरे अरु ग्वारन एक रतारे ॥१७७॥ ॥ दोहरा ॥ जबै हरो ब्रहमा इहै तब हरि जी ततकाल । किछो बनाए छिनक मै बछरे संगि गुवाल ॥१७८॥ ॥ स्वैया ॥ रूप उही पट के रंग है वह रंग वहै सभ ही बछरा को । सांझि परी सु गए हरि जी ग्रहि कोइ लखै इतनो बल काको । मात पिता सु लखे न लखे इक आद को नाम मनी मन जाको । बात इही समझी मन मै इह है अब खेल समापति वांको ॥ १७९ ॥ चूम लयो जसुधा सुत को सिर कान्ह बजाइ उठे मुरली सो । बाल लखे अपनो न किनी जन गोद धरी तिह सो हित कीजो । होत कुलाहल पै ब्रिज मै नहि होत इतै सु कहूँ किम बीतो । गावत गीत सनै हरि ग्वारन लेह बलाइ बधू

तथा कृष्ण ने मुरली को कमर में खोंसकर प्रसन्नता का अनुभव किया । वे अन्न को झटपट छींककर बायें हाथ से शीघ्रतापूर्वक खाने लगे और सुस्वाद अन्न कृष्ण के मुंह में भी डालने लगे ॥ १७६ ॥ कोई डरा हुआ कृष्ण के मुंह मे ग्रास डालने लगा तथा कोई कृष्ण को छकाते हुए ग्रास अपने मुंह में डालने लगा । इस प्रकार सभी कृष्ण के साथ खेल करने लगे और उसी क्षण ब्रह्मा ने उनके बछड़े इकट्ठे कर एक कुटिया में बन्द कर दिए । सभी बछड़े ढूंढ़ने लगे, परन्तु एक भी ग्वाले और बछड़े का पता न लगा ॥ १७७ ॥ ॥ दोहा ॥ जब ब्रह्मा ने यह हरण किया तो उसी क्षण कृष्ण ने ग्वालों-सहित बछड़ों की रचना कर दी ॥ १७८ ॥ ॥ सवैया ॥ वही स्वरूप, वही वस्त्र और बछड़ों का रंग भी ठीक वही । संध्या हुई और श्रीकृष्ण वापस घर गए । भला कौन उनके बल को जान सकता है । ब्रह्मा ने सोचा कि माता-पिता इस सबको देखकर समझ जायेंगे और कृष्ण का खेल अब समाप्त हो जायेगा ॥ १७९ ॥ जब कृष्ण ने मुरली बजाई तो यशोदा ने पुत्र का सिर चूम लिया और किसी ने भी अपने बालक की तरफ ध्यान न दिया और सभी कृष्ण से प्यार करने लगे । ब्रज में जितना कोलाहल हो रहा है, उतना कोलाहल कहीं नहीं हो रहा है और पता ही नहीं लग रहा है कि समय कैसे बीत रहा है ग्वालिनों के साथ कृष्ण जी

ब्रिज कीसो ॥ १८० ॥ ॥ स्वैया ॥ प्रात भए हरि जी उठ कै बन बीच गए संग लैकर बछरे । गावत गीत फिरावत है छटका गहि ग्वार सभै कर हछे । खेलत खेलत नंद को नंद सु आप ही तो गिर को उठ गच्छे । कोऊ कहै इह खेल गहे हम कोऊ कहै इह नाहनि अच्छे ॥ १८१ ॥ ॥ स्वैया ॥ होइ इकत्र सभै हरि ग्वारन लै अपने संगि गैं सभ धाई । देखि तिनै गिर के सिर ते मन मोहि बढाइ सभै उठि धाई । गोप गए तिन कै पलकै जब आन पिखी तिन नैनन माई । रोह भरे सु खरे न टरे सुत नंदहि के बहु बात सुनाई ॥ १८२ ॥ ॥ नंद बाच कान्ह प्रति ॥ ॥ स्वैया ॥ किउ सुत गउअन ल्याइ इहाँ इह ते हमरो सभ ही दध खोयो । चूघ गए बछरा इन को इह ते हमरे मन मै भ्रम होयो । कान्ह फरेब कर्यो तिन सो मन मोह महाँ तिन के जु करोयो । धार भयो तत क्रोध (मू०ग्रं०२१५) मनो तिह पै जल सीतल मोह समोयो ॥ १८३ ॥ ॥ स्वैया ॥ मोहि बढ्यो तिह के मन मै नहि छोडि सकै अपनो सुत कोऊ । गउअनि छोडि सकै बछरे इतनो मन मोह करैं तब सोऊ । लै गइए फिरगी संगि

ब्रज की वधुओं को साथ लेते हुए गीत गाने लगे ॥ १८० ॥ ॥ सवैया ॥ जब सुबह हुई तो कृष्ण बछड़ों को ले फिर वन में गए और वहाँ उन्होंने देखा कि लाठी घुमाते हुए सभी ग्वाल-बाल गीत गा रहे हैं । खेलते-खेलते कृष्ण स्वयं ही गिरि की ओर गए । कोई कहने लगा कि कृष्ण हममें नायक हैं और कोई कहने लगा कि ये अल्पवय हैं ॥ १८१ ॥ ॥ सवैया ॥ सभी ग्वालों-सहित कृष्ण गायों को लेकर चल पड़े । उनको पर्वत के शिखर पर देखकर सब मोहवश उनकी ओर दौड़े । गोप भी उनकी तरफ चले और यह दृश्य माता यशोदा ने भी देखा । कृष्ण वहाँ रुष्ट होकर खड़े थे और हिल नहीं रहे थे और इन सब लोगों ने कृष्ण को बहुत सी बातें कहीं ॥ १८२ ॥ ॥ नन्द उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ हे पुत्र ! तुम गायों को यहाँ क्यों ले आये हो । इस प्रकार तो हमें दूध की हानि हुई है । सब बछड़े ही इनका दूध पी गए हैं और हम लोगों के मन में यह भ्रम बना हुआ है । कृष्ण ने उन सबको कुछ नहीं बताया और इस प्रकार उनके मन के मोह को और बढ़ा दिया । कृष्ण के स्वरूप को देखकर सबका क्रोध जल के समान शीतल हो गया ॥ १८३ ॥ ॥ सवैया ॥ सबके मन में मोह बढ़ गया क्योंकि कोई भी अपने पुत्र को छोड़ नहीं सकता था । गायों और बछड़ों का मोह तो छुटा

लै तिन बछुक हली हरि आत लखोऊ। देख डरी ममता हुन पै कि चरित्र कियो हरि को इह होऊ ॥ १८४ ॥ साल बितीत भए जबही हरि जी बन बीच गए बिन कउनै। देखन कउतक को चतुरानन सोध भयो तिह को उठि गउनै। ग्वार वहै बछरे संगि है वह कउतक जाइ भयो हुइ तउनै। देखि तिनै हर कै पर पाइन आइकै आनंद दुंदभ छउनै ॥ १८५ ॥ ॥ ब्रहमा बाच कान्ह जू प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे करुनानिध हे जग के पति अचयुत हे बिनती सुन लीजै। चूक भई हम ते तुमरे तिह ते अपराध छिमापन कीजै। कान्ह कह्यो इह बात छिमी हम ना बिख अंम्रित डारिकै पीजै। ल्याव कहयो न बिलाइ कही जाइ सिताब अछयो नही ढील करीजै ॥ १८६ ॥ लै बछरे ब्रहमा तबही छिन मै चलकै हरि जी पहि आयो। कान्ह मिले जबही सभ ग्वार तबै मन मै तिनहूं सुख पायो। लोप भयो संगि के बछरे नव भेव किनी लख जान न पायो। बात खुसी न किनी उठि बोलि सु ल्याउ वहै हम जो मिलि खायो ॥ १८७ ॥ होइ इकत्र लियो ब्रिज बालक अंनि अछ्यो

जा सकता था। इस प्रकार धीरे-धीरे इन सब बात का स्मरण करते हुए सब अपने घर को चले गए। यह सब देखकर माता यशोदा भी डर गयीं और सोचने लगीं कि हो सकता है कि यह भी कृष्ण का कोई चरित्र हो ॥ १८४ ॥ वर्षों बीतने पर एक बार कृष्ण वन में गए तो ब्रह्मा भी उनकी लीला देखने के लिए वहाँ पहुँच गए। वह यह देखकर चकित हो गया कि वही ग्वाल और वही बछड़े कृष्ण के संग हैं जो उसने (ब्रह्मा ने) चुराये थे। यह सब देखकर डरकर ब्रह्मा कृष्ण के पैरों पर आ गिर पड़े और आनन्दित होकर मंगल-वाद्य बजाने लगे ॥ १८५ ॥ ॥ ब्रह्मा उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे जगत्पति, करुणानिधि, अच्युत प्रभु ! मेरी प्रार्थना सुनिए। मुझसे भूल हुई है, मेरे अपराध को कृपा कर क्षमा कर दीजिए। कृष्ण ने कहा कि हमने क्षमा किया, परन्तु अमृत छोड़कर विष का सेवन नहीं करना चाहिए। जाओ, अविलम्ब सब लोगों को लेकर आओ ॥ १८६ ॥ [illegible] ब्रह्मा सब बछड़ों और ग्वालों को लेकर आ [illegible]

[illegible] ग्वाल-बाल मिले तो उनको परमसुख [illegible]

[illegible] की माया के [illegible]

[illegible] भेद को कोई भी [illegible] न सका। [illegible]

I

सननो जु पुरानो । कान कही हम नाग हन्यो हरि को इह खेल किनो नहि जानो । होइ प्रसंनि महाँ मन मै गरुड़ाधुज को कर रच्छक मानो । दान दयो हमको जिह को इह मात पिता पहि जाइ बखानो ॥ १८८ ॥

॥ इति ब्रहमा बछरे आन पाइ परा ॥

अथ धेनक दैंत बध कथनं ॥

॥ स्वैया ॥ बारह साल बितीत भए सु लगे तब कान्ह चरावन गाई । सुंदर रूप बन्यो इह को कहिकै इह ताहि सराहत बाई । ग्वार सनै बन बीच फिरै कबि नै उपमा तिह की लखि पाई । कंसहि के बध के हित को जनु बाल चमूँ भगवान बनाई ॥ १८९ ॥ ॥ कबितु ॥ कमल सो आनन कुरंग ताके बाके नैन कट सम केहरि म्रिनाल बाहै ऐन है । कोकल सो कंठ कीर नासका धनुख भउहै बानी सुरसर जाहि लागै नहि चैन

हो, उसे मिलकर खाया जाय ॥ १८७ ॥ व्रज के बालकों ने उसी पुराने अन्न को इकट्ठा होकर खाना शुरू किया । कृष्ण ने कहा कि मैंने नाग को मार डाला है, परन्तु इस खेल का किसी को भी पता नहीं चला । वे सब गरुड़ को अपना रक्षक मानकर प्रसन्न होने लगे और कृष्ण ने कहा कि तुम सब लोग घर पर यह बता देना कि उस ईश्वर ने हमारे प्राणों की रक्षा की है ॥ १८८ ॥

॥ ब्रह्मा का बछड़े-सहित आकर पाँव पर पड़ना समाप्त ॥

धेनुक दैत्य-वध-कथन

॥ सवैया ॥ बारह वर्ष की आयु तक कृष्ण गाय चराने गए । उनका स्वरूप अत्यन्त सुन्दर बना हुआ था और सभी उनकी सराहना करते थे । ग्वालों के साथ वन के बीच विचरण करते हुए कृष्ण को देखकर कवि ने ऐसा माना है कि मानो कंस का वध करने के लिए भगवान ने सेना तैयार की है ॥ १८९ ॥ ॥ कवित्त ॥ कमल के समान मुख, बाँके नयन, सिंह के समान कटि और कमलनाल के समान लम्बी भुजाएँ हैं । कृष्ण का कंठ कोकिला के समान मीठा, तोते के समान नासिका, धनुष के समान भौंहें, गंगा के समान पवित्र वाणी है । वे जिससे भी बात कर लेते हैं, उसको चैन नहीं पड़ता । वे स्त्रियों को मोहित करते हुए इसी प्रकार आसपास के गाँवों में विचरण करते हैं जैसे चन्द्रमा

है। त्रीअनि को मोहति फिरति ग्राम आस (मू०ग्रं०२७६) पास बिरहन के दाहबे को जैसे पति रैन है। मंदमति लोक कछु जानत न भेद याको एते पर कहै चरवारो स्याम छेन है ॥१९०॥ ॥ गोपी बाच कान्ह जू सो ॥ ॥ सवैया ॥ होइ इकत्र बधू ब्रिज की सभ बात कहै मुख ते इह स्यामै। आनन चंद बने म्रिग से म्रिग राति दिना बसतो सु हिया मै। बात नही अरि पै इह की बिरतांत लख्यो हम जान जिया मै। कै डरपै हरि के हरि को छप मैन रहयो अब लउ तन या मै ॥ १९१ ॥ ॥ कान्ह बाच ॥ ॥ सवैया ॥ संग हुती हरि जो सभ ग्वार कही सभ तौर सुनो इह भइया। रूप धरो अवतारन को तुम बात इहै गति की सुरगइया। ना हमरो अब को इह रूप सभै जग मै किनहूँ लख पइया। कान्ह कहयो हम खेल करै ओऊ होइ भलो मन को परचइया ॥ १९२ ॥ ॥ सवैया ॥ ताल भले तिह ठउर बिखै सभ ही जन के मन के सुखदाई। सेत सरोवर है अति ही तिन मै सरभास सिसी दमकाई। मद्ध बरेतन की उपमा कबि ने मुख ते इम भाख सुनाई। लोचन सउ करिकै बसुधा हरि

बिरहिणियों को जलाते हुए आकाश में भ्रमण करता है। मंदमति लोग इस भेद को न जानते हुए इतने महान गुणों वाले श्रीकृष्ण को मात्र गायों का चरानेवाला कृष्ण ही कहते हैं ॥ १९० ॥ ॥ गोपी उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ व्रज की सभी वधुएँ इकट्ठी होकर बातें करती हैं कि इसका मुख तो श्याम है, चेहरा चन्द्रमा के समान है, आँखें मृग के समान हैं और यह कृष्ण दिन-रात हमारे हृदय में विराजमान रहता है। इसकी बात का वृत्तान्त, हे सखी! जानने पर हृदय में भय बन जाता है और ऐसा लगने लगता है कि कृष्ण के शरीर में कामदेव का निवास है ॥ १९१ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ सभी ग्वालिनें कृष्ण के साथ हो गयीं और उनसे यह कहने लगीं कि तुम तो अवतारों का रूप धारण करनेवाले हो। तुम्हारी गति को कोई नहीं जान सकता। कृष्ण ने कहा कि हमारा यह स्वरूप कोई नहीं देख पाएगा। हम तो केवल मन को बहलाने के लिए यह सब खेल करते रहते हैं ॥ ॥ १९२ ॥ ॥ सवैया ॥ उस स्थान पर मन को सुख देनेवाले सुन्दर तालाब थे। और उसमें एक सरोवर सुन्दर सफेद पुष्पों से भरा हुआ दमक रहा था। उस तालाब के बीचोबीच एक टीला सा उभरा हुआ दिखाई पड़ रहा था और श्वेत पुष्पों को देखकर कवि को ऐसा लग रहा है कि मानो पृथ्वी सकड़ो नेत्र बनाकर कृष्ण को

के इह कउतक देखन आई ॥ १९३ ॥ रूप बिराजत है अति ही जिन को पिख कै मन आनंद बाढे । खेलत कान्हु फिरै तिह ठाइ बने जिह ठउर बडे सर गाढे । ग्वाल हली हरि के संग राजत देख दुखी मन को दुख काढे । कउतक देख धरा हरखी तिह ते तर रोम भए तन ठाढे ॥ १९४ ॥ कान्ह तरै तर के मुरली सु बजाइ उठ्यो तन को कर ऐंडा । मोहि रही जमना खग अउ हरि जच्छ सभै अरना अर गैंडा । पंडित मोहि रहे सुनकै अरु मोहि गए सुनकै जन जैंडा । बात कही कबि नै मुख ते मुरली इहनाहिन रागन पैंडा ॥ १९५ ॥ आनन देख धरा हरि को अपने मन मै अति ही ललचानी । सुंदर रूप बन्यो इह को तिह ते प्रतमा अत ते अति मानी । स्याम कही उपमा तिह की अपने मन मै फुनि जो पहिचानी । रंगन के पट लै तन पै जु मनो इह को हुइबे पटरानी ॥ १९६ ॥ ॥ गोप बाच ॥ ॥ सवैया ॥ ग्वार कही बिनती हरि कै इक ताल बडो तिह पै फल हच्छे । लाइक है तुमरे मुख को कछुआ

लीला देखने के लिए आई हो ॥ १९३ ॥ श्रीकृष्ण का अत्यन्त सुन्दर स्वरूप है, जिसको देखकर मन में आनन्द की वृद्धि होती है। कृष्ण वन में उन स्थानों पर जाकर खेलते हैं जहाँ बड़े सरोवर हैं। ग्वाल-बाल कृष्ण के संग शोभायमान होते हैं और उनको देखकर दुःखी हृदयों का कष्ट दूर हो जाता है। कृष्ण की लीला को देखकर धरती भी प्रसन्न हो उठी और धरती के रोमों के प्रतीक वृक्ष भी उनकी लीला को देखकर पुलकता का अनुभव करते हैं ॥ १९४ ॥ कृष्ण वृक्ष के नीचे शरीर को टेढ़ा करके मुरली बजाते हैं और यमुना, पक्षी, गायें, यक्ष एवं जंगली जानवर सभी मोहित हो उठते हैं। पंडित और सामान्य व्यक्ति जिसने भी मुरली को सुना, वह मोहित हो गया और कवि का कथन है कि यह मुरली नहीं है किन्तु ऐसा लगता है मानो यह राग-रागिनियों का एक भण्डार मार्ग हो ॥ १९५ ॥ धरती श्रीकृष्ण का सुन्दर मुख देखकर मन-ही-मन ललचाती है और मन में विचार करती है कि इसके सुन्दर स्वरूप के कारण ही इसकी प्रतिमा अति तेजवान है। श्याम कवि ने अपने मन की बात को कहते हुए यह उपमा दी है कि धरती विभिन्न रंगों के वस्त्रों को धारण कर कृष्ण की पटरानी बनने की कल्पना में डूबी हुई है ॥ १९६ ॥ ॥ गोप उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ ग्वालों ने एक दिन कृष्ण से प्रार्थना की कि एक सरोवर है वहाँ पर बहुत ही अच्छे फल लगे हुए हैं वहाँ से अंगूर व

जह दाख दसो किस गुच्छे । धेनक दैत बडो तिह जाइ किधो हनि लोगन के उन रच्छे । पुत्र मनो मधरेंद प्रभात तिनै उठ प्रात (मू०ग्रं०२७७) सभै वह भच्छे ॥ १९७ ॥ ॥ कान्ह बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ जाइ कही तिन को हरि जी जह ताल वहै अब है फल नीके । बोलि उठ्यो मुख ते मुसली सु तो अंम्रित भो नहि है फुनि फीके । मार है बैल तहा चलकै जिहते दुख जाहि नभै सुख जी के । होइ प्रसंनि चलै तह को मिल संख बजाइ सभै मुरली के ॥ १९८ ॥ होइ प्रसंनि तहा हरि जी जु गए मिलकै तट पै सर भारे । कैबल तो मुसली तन को तरु ते फर बूंदन ज्यों धर डारे । धेनक क्रोध महा करकै दोऊ पाइ हिदै तिह साथ प्रहारे । गोडन ते गहि फेंक दयो हरि जिउं सिर ते गहि कूकर मारे ॥ १९९ ॥ ॥ स्वैया ॥ क्रुद्ध भई धुजनी तिह की पति जान हत्यो इन ऊपरि आई । गाइ को रूपु धर्यो सभ ही तब ही खुर सो धर धूर उडाई । कान्ह हली बलि कै

गुच्छे, हे कृष्ण ! तुम्हारे लायक हैं, परन्तु वहाँ पर धेनुक नामक दैत्य है जो लोगों को मार डालता है, वही दैत्य उस तालाब की रक्षा करता है । वह लोगों के पुत्रों को रात से पकड़ लेता है और प्रातः उठकर उनका भक्षण करता है ॥ १९७ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने अपने सब साथियों से कहा कि उसी तालाब के फल वास्तव में अच्छे हैं । बलराम भी उसी समय बोल उठा कि अमृत भी उनके सामने फीका है । चलो चलकर वहाँ दैत्य को मारा जाय ताकि नभवासी देवताओं का दुःख दूर हो सके । इस प्रकार सभी प्रसन्न होकर मुरली और शंख बजाते हुए उस ओर चल दिए ॥ १९८ ॥ प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण जी सबके साथ मिलकर उस सरोवर के तट की ओर गए । बलराम ने उस वृक्ष से फल इस प्रकार झाड़ लिये जैसे बूंदें धरती पर गिरती हैं । धेनुक दैत्य ने क्रोधित होकर दोनों पैरों से एक साथ प्रहार किया, परन्तु कृष्ण ने उसे टाँगों से पकड़कर इस प्रकार फेंककर दे मारा जैसे कुत्ते को उठाकर फेंक दिया जाता है ॥ १९९ ॥ ॥ सवैया ॥ तब उस दैत्य की सेना अपने सेनापति को मारा गया समझकर गायों का रूप धारण कर क्रोधित होकर धूल उड़ाती हुई इन सब पर टूट पड़ी । कृष्ण और बलवान हलधर ने उस चतुरंगिणी सेना को उसी प्रकार दसों दिशाओं में उड़ा दिया जिस प्रकार खलिहान में

तब ही चतुरंग दलो तिस बीच बगाई । लै किरसान मनो तंगुली खल दानन ज्यों नभि बीचि उडाई ॥ २०० ॥

॥ इति स्री दसम सकंध पुराणे बचित्र नाटक क्रिशनावतारे धेनक दैत बधहि ॥

॥ स्वैया ॥ दैत हन्यो चतरंग चमूं सुन देव करै मिलि कान्ह बडाई । भछ सभै फल ग्वार चलै गह धूर परी मुख पै छब छाई । ता छबि की उपमा अति ही कबि ने मुख ते इम भाख सुनाई । धावत घोरन की पग की रज छाइ लए रव सी छब पाई ॥ २०१ ॥ सैन समै हनि दैत गयो ग्रह गोप गए गुपिका सभ आई । मात प्रसंनि भई मन मै तिह को जु करें बहु भात बडाई । चावर दूध कर्यो खइबे कहु खाइ बहू तिह देह बधाई । होइ बडी तुमरी चुटिआ इह ते फुन बात सभै मिल चाई ॥ २०२ ॥ भोजन कै टिकगे हरि जी पलका पर अउर करैं जु कहानी । राज गयो तरनो मगरैं न लह्यो सु लग्यो बह पीअन पानी । रात परी तब ही भर भै तिन स्रउन सुनी अपने इह बानी । आहु कर्यो तिन तउ हरि ग्यो ग्रिह आइ मिल्यो

किसान अनाज को अलग करने के लिए भूसे को आकाश में उड़ा देता है ॥ २०० ॥

॥ श्री दशम स्कन्ध पुराण के बचित्र नाटक के कृष्णावतार में धेनुक दैत्य-बध समाप्त ॥

॥ सवैया ॥ दैत्यों की चतुरंगिणी सेना को नष्ट होते सुनकर देवताओं ने कृष्ण की स्तुति की । सभी ग्वाल-बाल फल खाते हुए और धूल उड़ाते हुए चल पड़े । उस दृश्य का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है कि मानो घोड़ों की टापों की धूल सूर्य तक पहुँच गयी ॥ २०१ ॥ सेना-समेत दैत्यों का हनन कर गोप-गोपिकाएँ तथा कृष्ण घर आ गये । माताएँ प्रसन्न हुईं और भाँति-भाँति से सबकी बड़ाई करने लगीं । चावल और दूध खा-खाकर वे सब हृष्ट-पुष्ट हो रहे थे और माताओं ने गोपिकाओं को कहा कि इसी तरह सब लोगों की चोटियाँ भी लम्बी और मोटी हो जायेंगी ॥ २०२ ॥ भोजन करके कृष्ण जी सो गये और सपने देखने लगे कि पानी पी-पीकर उनका पेट बहुत अधिक भर गया । जब रात्रि और अधिक हुई तब उन्होंने भयभीत करनेवाली एक आवाज सुनी जिसमें उनसे कहा गया कि यहाँ से चले जाओ । कृष्ण जी वहाँ से चले आये

अपनी पटरानी ।। २०३ ।। ।। स्वैया ।। सोइ गए हरि प्रात भए फिर लै बछरे बन गे गिरधारी । मद्धि भए रवि के जमना तट धाइ गए जिह थो सर भारी । गो बछरे अरु गोप सभै गिरगे सभ प्रान डसै जबकारी । धाइ कह्यो मुसली प्रभ पै (मू०ग्रं०२७८) सभ सैन सखा तुमरी हरि मारी ।। २०४ ।। ।। दोहरा ।। क्रिपा द्रिश्टि चितवो तिनै जीव उठे ततकाल । गऊ सभै अरु सुत तिनै अउ फुनि सभै गुपाल ।। २०५ ।। ।। दोहरा ।। उठ पाइन लागै तबै करहि बडाई सोइ । जीअ दान हमको दयो इह ते बडो न कोइ ।। २०६ ।।

अथ काली नाग नाथबो ।।

।। दोहरा ।। गोप जानकै आपने कीनो मनै बिचार । दुश्ट नाग सर मो बसे ताको लेउ निकार ।। २०७ ।। ।। स्वैया ।। ऊच कदंमहि को तरु थो तिह पै चड़िकै हरि कूद पर्यो । तिन शंक करी मन मै न कछू फुन धीरज गाढ धर्यो न टर्यो। मनुखो सत लौ जल उच्च भयो निकस्यो तब नाग बडो

और अपने घर अपनी माता के पास पहुँच गये ।। २०३ ।। ।। सवैया ।। कृष्ण सो गये और पुनः प्रातःकाल बछड़ों को लेकर वन में गये । दोपहर में यमुना तट पर वे वहाँ पहुँचे जहाँ एक बहुत भारी तालाब था । वहाँ पर कालिय नाग ने सभी गायों, बछड़ों और गोपों को डस लिया और वे सब निष्प्राण होकर गिर पड़े । यह देखकर बलराम ने कृष्ण से कहा कि दौड़ो, तुम्हारी सारी बाल-सेना सर्प ने मार दी है ।। २०४ ।। ।। दोहा ।। कृष्ण ने कृपादृष्टि करते हुए उन सबकी ओर देखा और गायें, ग्वाल-गोपाल सभी तत्काल जीवित हो उठे ।। २०५ ।। ।। दोहा ।। सभी उठकर चरण-स्पर्श करने लगे कि हे हमको जीवन-दान देनेवाले ! तुमसे बड़ा और कोई नहीं है ।। २०६ ।।

कालिय नाग को नाथना

।। दोहा ।। गोपों के साथ कृष्ण ने विचार किया कि दुष्ट नाग इसी तालाब में निवास करता है, उसे निकाला जाय ।। २०७ ।। ।। सवैया ।। ।। कदम्ब के पेड़ पर ऊँचाई पर चढ़कर कृष्ण तालाब में कूद पड़े । कृष्ण ज़रा-सा भी नहीं डरे और धैर्यपूर्वक चल पड़े । मनुष्य से सात गुना ऊँचा जल उठा और उसमें से नाग निकला, परन्तु श्रीकृष्ण फिर

न डर्‌यो । अउ तौर धरे नग पै नर देखि महाबलि कै तिन जुद्ध कर्‌यो ॥ २०८ ॥ बाँध लयो हरि को तन सो हरि क्रुद्ध कियो तिह को तन काटे । ढीलो रह्यो छुट पै हरि जी पिखवारन को हियरे दुख फाटे । रोवत आवत पै पतनी ब्रिज ढोकत मूंड उखारत झाटे । आए है मार उसै नही रोवहु नंद कहै कहि कै इम डाटे ॥ २०९ ॥ ॥ सवैया ॥ काल नथैह बडो यह पंनग फूकत है कर क्रुद्धहि कैसे । जिउँ धनपाल गए धन ते अति फूकत लेत उसासन तैसे । बोलत जिउँ धमिआ हरि मै सुर कै सिध स्वास भरे वह ऐसे । भूमर बीच परै जल जिउँ तिह ते धुनि होत महा धुन जैसे ॥ २१० ॥ चकृत होइ रहे ब्रिज बालक मार लए हरि जी इह नागै । बचहन तीअ भुजा गहिकै इह मति लगै दुख अउ सुख भागै । खोजत खोज सभै ब्रिज के जन कउतक देख लयो इह आगै । स्यामहि स्याम बडो अहि काटत जिउँ रुच कै नर खावत सागै ॥ २११ ॥ रोवन लाग जबै जसुधा चुप ताहि करावत पै जु अली है । दैत त्रिनावत

भी नहीं डरे । नाग ने जब अपने ऊपर सवार किसी मनुष्य को देखा तो वह युद्ध करने लगा ॥ २०८ ॥ उसने कृष्ण को अपनी लपेट में बाँध लिया और कृष्ण ने क्रोधित होकर उसके तन को काट दिया । कृष्ण पर सर्प की पकड़ ढीली हुई परन्तु देखनेवालों का हृदय भय से फटने लगा । ब्रज गाँव की स्त्रियाँ बाल नोचती हुई और सिर धुनती हुई उस तरफ चलीं, परन्तु नन्द ने सबको यह कहकर डाँटा कि तुम सब लोग रोओ मत । कृष्ण उसे मारकर ही लौटेगा ॥ २०९ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण को अपनी लपेट में लेकर वह विशाल सर्प क्रोध से फुफकारने लगा । सर्प ऐसे फुफकार रहा था, जैसे कोई साहूकार धन की तिजोरी चली जाने से लम्बी-लम्बी साँसें भरता है । उस सर्प की साँस ऐसे चल रही थी, मानो कहीं धमधमाकर ढोल बज रहा हो अथवा वह ध्वनि ऐसी भी लग रही थी कि मानो जल में पड़े बड़े भँवर की ध्वनि हो ॥ २१० ॥ ब्रज के बालक चकित होकर यह देख रहे थे और एक-दूसरे की भुजाओं को पकड़कर यही विचार कर रहे थे कि कृष्ण किसी प्रकार सर्प को मार डालें । सभी ब्रज के नर-नारी इस लीला को देख रहे थे और इधर काला सर्प कृष्ण को इस प्रकार काट रहा था जैसे कोई व्यक्ति रुचिकर भोजन को खा रहा हो ॥ २११ ॥ जब यशोदा भी रोने लगी तो उसकी सखियाँ उसे यह कहकर चुप कराने लगीं कि तुम चिन्ता मत करो, कृष्ण ने तृणावर्त, बकासुर आदि

अउर बकी बकबकास हने इह कान्ह बली है। आइहै अब अबै इह साँपहि बोलि उठ्यो इह भाँत हली है। तोर डरै जस ही इहके फनि पै करनानिध जोर छली है ॥ २१२ ॥ ॥ कबियो बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ जान दुखी अपन्यो मन को अपने तन ता को छडाइ लयो है। बस्त्र बिलोक बडो वह पंनग पै मन भीतर क्रुद्ध भयो है। सउ फन को सु फलाइ उचाइकै (मू०ग्रं०२७६) सामुहि ताहि के धाइ गयो है। कूदकै कान्ह बचाइकै दावहि ऊपरि माथ जु ठाढो भयो है ॥ २१३ ॥ ॥ स्वैया ॥ कूदत है चड़िकै सिर ऊपरि स्रउन संबूह चले सिर ताते। प्रान लगे छुटने जब ही छिन मैन गई उडकै मुख राते। तउ हरि जी बलि कै तन को सर तीर निकास लयो बहु भाँते। जात बडो सह तीर बह्यो रस रे बंध खैंचत है चहूँ घाते ॥ २१४ ॥ ॥ काली नाग की त्रियो बाच ॥ ॥ स्वैय ॥ तउ तिह की तिरिया सभ ही सुत अंजल जोर कै यौ घिघयावै। रच्छ करो इह को हरि जी तुम पै बरदान इहै हम पावैं। अंम्रित देत वहै हम ल्यावत बिखु दई वह ही हम ल्यावै। दोश नही हमरे पति को कछु बात कहै अरु सीस झुकावै ॥ २१५ ॥ त्रास बडो अहि के रिप को कर

दैत्यों को मार डाला है। यह कृष्ण महाबली है, अभी सर्प को मारकर वह चला आएगा। इधर कृष्ण ने उस सर्प के सभी फन अपनी शक्ति से नष्ट कर डाले ॥ २१२ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ अपने लोगों को किनारे पर दु:खी खड़ा देखकर कृष्ण ने अपना तन सर्प की लपेट से छुड़ा लिया। यह देखकर वह विकराल सर्प अत्यन्त क्रोधित हो उठा। वह अपने फनों को पुन: फैलाता हुआ दौड़कर कृष्ण के सामने जा पहुँचा। कृष्ण कूदकर दाँव बचाते हुए उसके माथे पर पैर रखकर खड़े हो गये ॥ २१३ ॥ ॥ सवैया ॥ उस सर्प के सिर पर चढ़कर कृष्ण कूदने लगे और गर्म रक्त की धाराएँ उसके सिर से बहने लगीं। जब उस सर्प के प्राण निकलने लगे तो उसकी सब कांति समाप्त हो गयी। तब श्रीकृष्ण ने बलपूर्वक उस सर्प को खींचकर किनारे पर ले आए। सर्प किनारे की तरफ़ खिंचने लगा और चारों ओर से रस्सियाँ बाँधकर उसे खींचा जाने लगा ॥ २१४ ॥ ॥ कालिय नाग की स्त्री उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ तब सर्प की स्त्रियाँ हाथ जोड़कर घिघियाते हुए कहने लगीं कि हे प्रभु! इस सर्प की रक्षा का वरदान हमें दीजिए। प्रभु! यदि तुम अमृत देते हो तो वह भी हम धारण करते हैं और यदि विष दो तो वह भी हम ही धारण करते हैं अत हम रे पति का इसमे कोई दोष नही

श्री धरमोर सु नैक बिखै तुम कान कहो तिह को उठि आयो। देख लता तुम कउन बधै मम बाहनि मोर समो अनुराग्यो ।। २१९ ।। (मू०ग्रं०२८०)

।। इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिशनावतारे काली नाग निकारबो बरननं ।।

अथ दान दीबो ।।

।। सवैया ।। नाग बिदा करिकै गरुड़ाध्वज आइ मिल्यो अपने परवारै। धाइ मिल्यो गरे ताहि हली अरु मात मिली तिह दूख निवारै। स्रिंग धरे हरि धेन हजार तबै तिह के सिर ऊपरि वारै। स्याम कहै मन मोह बढाइ बहु पुंन कै बामन को वै डारै ।। २२० ।। लाल मनो अरु नाग बडे नग देत जवाहर तीछन घोरे। पुहकर अउ बिरजे चुनके जर बाफ दिवावत है द्विज ओरे। मोतनहार हीरे अरु मानक देवत है भर पानन बोरे। कंचन रोकन के गहने गड़ि देत कहै सु बचे सुत मोरे ।। २२१ ।।

अगले ही आपके चरण-स्पर्श करने चला आया। श्रीकृष्ण ने कहा कि जैसा मैंने कहा है, तुम वैसा ही करके धर्म का पालन करो और हे स्त्रियो ! बेशक मेरा वाहन गरुड़ इसका वध करने को लालायित था, परन्तु फिर भी मैंने इसका वध नहीं किया ।। २१९ ।।

।। श्री बचित्र नाटक ग्रंथ के कृष्णावतार में कालिय नाग निकालने का वर्णन समाप्त ।

दान-प्रदान-कथन

।। सवैया ।। नाग को बिदा कर श्रीकृष्ण जी अपने परिवार में आ गये, जहाँ उन्हें दौड़कर बलराम मिले, माता मिली और उन सबका दुःख दूर हुआ। उसी समय सोने की सींगों वाली एक हजार गायें कृष्ण पर न्योछावर करके दान दी गयीं। कवि श्याम का कथन है कि इस प्रकार मन में अत्यन्त मोह बढ़ाते हुए यह दान ब्राह्मणों को दे दिया गया ।। २२० ।। लाल मणियाँ, नग, जवाहरात और घोड़े दान में दिये गये। अनेक प्रकार के जरी वाले वस्त्र द्विजों को दिये गये। बोरा भर-भर के हीरे-माणिक और मोतियों के हार दिये गये और सोने के गहने देती हुई माता यशोदा प्रार्थना करती है कि मेरे पुत्र की सुरक्षा हो ।। २२१ ।।

अथ दवानल कथन ॥

॥ सवैया ॥ होइ प्रसंनि सभै ब्रिज के जन रैन परे घर भीतरि सोए । आग लगी सु दिशा बिदिशा मधि जाग तबै तिह ते डर होए । रच्छ करै हमरी हरि जी इह चित्त बिचार तहाँ कहु होए । द्रिग बात कही करुनानिध मीच लयो इसनै सु तऊ दुख खोए ॥ २२२ ॥ मीच लए द्रिग जउ सबही तब पान कर्यो हरि जी हरि दी तउ । दोख मिटाइ दयो पुर को सब ही जन के मन को हन भ्यो भउ । चित कछू नहि है तिह को जिन को करुनानिध दूर करै खउ । दूर करी तपता तिह की जनु डार दयो जल को छल कै रउ ॥ २२३ ॥ ॥ कबितु ॥ आख मिटवाइ महा बपु को बढाइ अति सुख मन पाइ आग खाइ गयो सावरा । लोकन की रच्छन के काज करुना के निधि महाँ छल करिकै बचाइ लयो गावरा । कहै कबि स्याम तिन काम कर्यो दुहु करि ताको फुन फैल रह्यो दसो दिस नावरा । दिसटि बचाइ साथ दातन चबाइ सो तो गयो है पचाइ जैसे खेलै साँग बावरा ॥ २२४ ॥

॥ इति क्रिशनावतार दवानल ते बचैबो बरननं ॥

दावानल-कथन

॥ सवैया ॥ ब्रज के सभी लोग प्रसन्न होकर रात में अपने घरों में सो गये । रात्रि में सभी दिशाओं में आग लग गयी और सभी डर गये । सभी के मन में यह विचार था कि श्रीकृष्ण जी हमारी रक्षा करेंगे । श्रीकृष्ण ने सबसे कहा कि सब आँखें बन्द कर लें और सबका दुःख दूर हो जायेगा ॥ २२२ ॥ जैसे ही सब लोगों ने आँखें बन्द की तो श्रीकृष्ण ने सारी अग्नि को पी लिया । सबके दुःख को दूर कर दिया और सबके भय का नाश कर दिया । जिनका दुःख श्रीकृष्ण दूर करें, उनको भला किस बात की चिन्ता हो सकती है । सबकी गर्मी को इस प्रकार शीतल कर दिया, मानो सभी जल से शीतल हो गये ॥ २२३ ॥ ॥ कबित्त ॥ लोगों की आँखें बन्द करवाकर और अपने शरीर को बढ़ाते हुए तथा अनन्त सुख पाते हुए श्रीकृष्ण अग्नि को खा गये । श्याम कवि कहता है कि श्रीकृष्ण ने बड़ा दुष्कर कार्य किया और इससे उनका नाम दसों दिशाओं में फैल गया और यह सारा कार्य उन्होंने उस खेल दिखानेवाले के समान किया जो सबकी नजर बचाकर बहुत कुछ चबा-पचा जाता है ॥ २२४ ॥

। कृष्णावतार में दावानल से बचाव वर्णन समाप्त

अथ गोपन सों होली खेलबो ॥

॥ सवैया ॥ माघ बितीति भए रुत फागुन आइ गई सभ खेलत होरी । गावत गीत बजावत ताल कहैं मुख ते भरुआ मिलि जोरी । डारत है अलता बनिता छटका संग मारत बैसन थोरी । खेलत स्याम धमार अनूप महा मिलि सुंदरि साँवल गोरी ॥ २२५ ॥ अंत बसंत भए रुत ग्रीखम (मू०ग्रं०२८१) आइ गई हरि खेल मचायो । आवहु मिक कुहूँ दिस ते तुम कान्ह भए धनठी सुख पायो । दैत प्रलंब बडो कपटी तब बालक रूप धर्यो न जनायो । कंध चड़ाइ हली को उड्यो तिन मूकन सो धर मार गिरायो ॥ २२६ ॥ केशव राम भए धनठी मिक बालक ए तबही सभ प्यारे । दैत मिक्यो सुत नंदहि के संगि खेलि जित्यो मुसली हरि हारे । आव चड़ो न चड्यो सु कह्यो इनपै तिहके बपु को पग धारे । मार गिराइ दयो धरनी पर और बडो बन मूकन मारे ॥ २२७ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटके क्रिशनावतारे प्रलंब दैत बधहि ॥

गोपों से होली खेलना

॥ सवैया ॥ माघ महीने के व्यतीत होते फाल्गुन की ऋतु आई और सभी होली खेलने लगे । सभी लोग जोड़ियों में मिल-मिलकर गाने-बजाने लगे । स्त्रियों पर रंग पड़ने लगा और स्त्रियाँ भी लाठी लेकर पुरुषों को (प्रेमपूर्वक) पीटने लगीं । श्याम कवि का कथन है कि कृष्ण और गोरियाँ मिलकर यह धमाकेदार होली खेल रहे हैं ॥ २२५ ॥ बसन्त ऋतु का अन्त हुआ और ग्रीष्म ऋतु का प्रारम्भ होते ही कृष्ण ने खेल की धूम मचा दी । दोनों दिशाओं से लोग आने लगे और कृष्ण को अपना मुखिया बना देखकर अत्यन्त प्रसन्न होने लगे । इसी समय में प्रलम्ब नामक दैत्य बालक का रूप धारण कर उन बालकों में आ मिला और कृष्ण को कंधे पर बिठाकर उड़ चला । कृष्ण ने उस दैत्य को अपने मुक्कों से मार गिराया ॥ २२६ ॥ श्रीकृष्ण जी मुखिया बने और सब प्यारे बच्चों के साथ खेलने लगे । दैत्य भी कृष्ण का साथी बना और उस खेल में बलराम जीत गए, और कृष्ण हार गये । तब श्री कृष्ण ने हलधर को उसके शरीर पर चढ़ाया । बलराम ने दैत्य के शरीर पर पाँव रखा और उसे गिराकर पटक दिया तथा मुक्कों से मारकर समाप्त कर दिया ॥ २२७ ॥

श्री बचित्र नाटक के कृष्णावतार में प्रलम्ब दैत्य वध समाप्त

अथ लुकमीचन खेल कथन

॥ स्वैया ॥ मार प्रलंब लयो मुसली जब याद करी हरि जी तब गाई । चूमन लाग तबै बछरा मुख धेन बहै उनकी अरु माई । होइ प्रसंन्य तबै करुनानिधि तउ लुकमीचन खेल मचाई । ता छबि की अति ही उपमा कबि के मन मै बहु भाँतन भाई ॥ २२८ ॥ ॥ कबितु ॥ बैठि करि ग्वार आँखै मीचै एक ग्वार हूँ की छोर देत ताकी सो तो अउरो गहै धाइकै । आँखै मूँदत है तब ओही गोप हूँ की फेरि जाके तनकौ जु छुऐ कर साथ जाइकै । तह तो छल बलकै पलावै हाथ आवै नही तउ मिटावै आखै आपही ते सो तो आइकै । कहै कबि स्याम ताकी महिमा न लखी जाइ ऐसी भाँति खेलै कान्ह महाँ सुखु पाइकै ॥ २२९ ॥ ॥ स्वैया ॥ अंत भए रुत ग्रीखम की रुत पावस आइ गई सुखदाई । कान्ह फिरै बन बीथन मै संगि लै बछरे तिनकी अरु माई । बैठ तबै फिर भद्र गुफा गिर गावत गीत सभै मनु भाई । ता छबि की अति ही उपमा कबि ने मुख ते इम भाख सुनाई ॥ २३० ॥ सोरठ सारंग

आँखमिचौनी खेल-कथन

॥ सवैया ॥ हलधर ने प्रलम्ब दैत्य को मार दिया और कृष्ण को बुलाया । तब कृष्ण गाय-बछड़ों के मुख को चूमने लगे और प्रसन्न होकर करुणानिधि ने आँखमिचौनी का खेल प्रारम्भ किया । इस छवि को कवि ने अनेकों प्रकार से कहा है ॥ २२८ ॥ ॥ कवित्त ॥ बैठकर एक ग्वाल दूसरे की आँखें बंद करता है और छोड़कर फिर दूसरे की आँख बन्द करता है । फिर वह ग्वाल आँखें बंद करनेवाले उस ग्वाल की आँखें बन्द करता है जिसके शरीर को हाथ लगा दिया जाता है । फिर वह छल-बल के साथ हाथ नहीं आने की कोशिश करता है । इस प्रकार कवि कहता है कि इस महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता और कृष्ण इस प्रकार के खेल में अनन्त सुख को प्राप्त कर रहे हैं ॥ २२९ ॥ ॥ सवैया ॥ ग्रीष्म ऋतु का अंत हो गया और सुख देनेवाली वर्षा-ऋतु का आगमन हुआ । कृष्ण वनों और कंदराओं में गाय और बछड़ों को लेकर घूम रहे हैं और वहीं गुफाओं में बैठकर मन को भानेवाले गीत गा रहे हैं । उस छवि का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है ॥ २३० ॥ सोरठ सारंग

अरु गुजरी ललता अरु भैरव दीपक गावै। टोडी अरु मेघ मल्हार अलापत गौंड अरु सुद्ध मल्हार सुनावै। जैतसिरी अरु मालसिरी अरु परज सु राग सिरी ठट पावै। स्याम कहै हरि जी रिझ कै मुरली संग कोटक राग बजावै॥ २३१॥ ॥ कबितु॥ ललत धनासरी बजावै संगि बासुरी किदारा और मालवा बिहागड़ा अरु गूजरी। मारू अरु परज और कानड़ा (मू०पं०२८२) कलिआनि सुभ कुंभक बिलावलु सुने ते आवै सूजरी। भैरव पलासी भीम दीपक सु गउरी नह टोडी द्रुम छाइ मै सु गावै कान्ह पूजरी। ताते ग्रिह त्यागि ताकी सुनि धुनि स्रोनन मै म्रिगनैनी फिरत सु बन बन ऊजरी॥ २३२॥ ॥ स्वैया॥ सीत भई रुत कातक की सुन देव चड़्यो जल ह्वै स्यो थोरो। कान्ह कनीरे के फूल धरे अरु गावत बेन बजावत भोरो। स्याम किधो उपमा तिहकी मन मद्धि बिचार कबित्त सु जोरो। मैन उठ्यो जगिकै तिनकै तन लेत है पेच मनो अहि तोरो॥ २३३॥ ॥ गोपी बाच॥ ॥ स्वैया॥ बोलत है मुख ते सभ ग्वारन पुंनि कर्यो इनहूं अति भाई। अध्य करै कि कर्यो तप तीरथ गंध्रब ते इनकै सिख पाई। कै कि

सारंग, गूजरी, ललित, भैरव, दीपक, टोडी, मेघमल्हार, गौंड और शुद्ध मल्हार एक-दूसरे को सुना रहे हैं। जैतश्री, मालश्री और श्रीराग वहाँ सभी गा रहे हैं। कवि श्याम का कथन है कि कृष्ण प्रसन्न होकर मुरली पर कई राग सुना रहे हैं॥ २३१॥ ॥ कवित्त॥ कृष्ण बाँसुरी पर ललित, धनासरी, केदारा, मालवा, बिहागड़ा, गूजरी, मारू, कानड़ा, कल्याण, मेघ, बिलावल राग सुना रहे हैं। राग भैरव, भीमपलासी, दीपक और गउड़ी को कृष्ण पेड़ के नीचे खड़े होकर सुना रहे हैं। इन रागों की ध्वनि सुनकर घर को त्यागकर, मृग के समान नयनों वाली स्त्रियाँ इधर-उधर दौड़ी फिर रही है॥ २३२॥ ॥ सवैया॥ शीत ऋतु आ गई और कार्तिक माह के चढ़ते ही जल थोड़ा हो गया। कृष्ण कनेर के फूलों को धारण कर भोर में ही मुरली बजा रहे हैं। श्याम कवि का कथन है कि उस उपमा को याद करता हुआ मैं मन-ही-मन कवित्त जोड़ रहा हूँ और वर्णन करता हूँ कि सभी स्त्रियों के तन में कामदेव जग चुका है और साँप के समान लोट रहा है॥ २३३॥ ॥ गोपी उवाच सवैया हे म इस मुरली न बहुत तप त्याग तीर्थस्नान किया है और गंध्रव स शिक्षा प्राप्त की है इसे कामदेव ने शिक्षा दी है

पञ्ची सित बानहू ते कि किधो चतुरानन आप बनाई। स्याम कहैं उपमा तिहको इह ते हरि ओठन साथ लगाई ॥ २३४ ॥ सुत नन्द बजावत है मुरली उपमा तिह को कवि स्याम गनो। तिह की धुनि को सुनि मोहि रहे मुन रीझत है सु जनावर कनो। तन काम भरी गुपिआ सभ ही मुख ते इम भांतन ज्याव भनो। मुख कान्ह गुलाब को फूल भयो इह नाल गुलाब चुआन्त भनो ॥ २३५ ॥ मोहि रहे सुनिकै धुनि को म्रिग मोहि पसार गे खाग पै पखआ। नीर बह्यो जमना उलटो पिख कै तिह को नर खोल के अखआ। स्याम कहै तिनको सुनिकै बछरा मुख सो कछु ना चुगै कखआ। छोडि चली पतनी अपने पत तारक ह्वै जिम डारत लखआ ॥ २३६ ॥ कोकिल कीर कुरंगन के हरि सैन रह्यो ह्वैकै मतवारो। रीझ रहे सभ ही पुर के जन आनन पै इह ते ससि हारो। अउ इह की मुरली सु बजै तिह ऊपरि राग सभै फुनि वारो। नारद जात थकै इहते बंसरी जु बजावत कानर कारो ॥ २३७ ॥ लोचन है म्रिग के कट के हरि नाक किधो सुक को तिहको है। ग्रीव कपोत सो है तिह

अथवा ब्रह्मा ने इसे स्वयं बनाया है। यही कारण है कि कृष्ण ने इसे ओठों से लगाया है ॥ २३४ ॥ नंदपुत्र कृष्ण मुरली बजा रहे हैं और कवि श्याम कहता है कि मुरली की धुन को सुनकर मुनि तथा वन के जीव भी रीझ रहे हैं। गोपियों के तन में काम भर गया है और वे इस भांति कह रही हैं कि कृष्ण का मुँह तो गुलाब के समान है और बंसी की आवाज ऐसी है मानो गुलाब का रस चू रहा हो ॥ २३५ ॥ मुरली की धुन को सुनकर खग, मृग, पक्षी सभी मोहित हो रहे हैं। हे लोगो! आँखें खोलकर देखो कि यमुना का जल भी उलटी दिशा में बहने लगा है। कवि कहता है कि मुरली को सुनकर बछड़ों ने घास खाना भी बंद कर दिया है। पत्नी अपने पति को छोड़कर इस प्रकार चल दी है जैसे कोई संन्यासी होकर अपने घर और सम्पत्ति को छोड़कर चल देता है ॥ २३६ ॥ कोकिला, तोते और मृगादि सभी कामपीड़ित होकर मतवाले हो उठे हैं। नगर के सभी लोग रीझ रहे हैं और कह रहे हैं कि कृष्ण के मुख के आगे चन्द्रमा भी फीका है। इसकी मुरली की तान पर तो सभी राग न्योछावर हैं। नारद भी अपनी वीणा को थामकर काले कृष्ण की बाँसुरी सुनते-सुनते थक गए हैं २३७ उसकी कृष्ण की) आँख मृग के समान कमर सिंह के समान नाक तोते के समान, गर्दन कपोत के समान और अधर

की अधरा पिय से हरि मूरत जो है। कोकिल अउ पिक से बचनान्त्रित स्याम कहै कबि सुंदर सोहै। ये दुह ते लजकै अब बोलत मूरत लै न करे छिन रोहै॥ २३८॥ फूल गुलाब न लेत हुं ताब सहाब को लाल ह्वै देख खिसानो। (मू०ग्रं०३८३) पै कामला अल नरगस को गुल लज्जत है फुनि देखत तानो। स्याम किधो अपने मन भै बर लागत कै कबिता इह ठानो। देखन को इनके सम पूरब पच्छम डोलै लहे नहिं आनो॥ २३९॥

॥ सवैया॥ मंघर मै सभ ही गुपिआ मिलि पूजत चंड पतै हरि कारनै। प्रात सभै जमना मध न्हावत देख तिनै जल अंबुज लाजै। गावत गीत बिलावल मै जुर बाहनि स्याम कथा मह साजै। अंग अनंग जह्यो तिन कै पिख कै जिह लाज को लाजन भाजै॥ २४०॥ गावत गीत बिलावल मै सभ ही मिलि गोपन उज्जल कारी। कानर को भरता करकै कहु बांछत है पतली अरु भारी। स्याम कहै तिनके मुख को पिखि जोति कला ससि की फुनि हारी। न्हावत है जमुना जल मै

अमृत के समान है। कोयल और मोर के समान मधुर वाणी है। ये मधुर-भाषी जीव भी अब मुरली की ध्वनि सुनकर लजाकर बोल रहे हैं और मन-ही-मन ईर्ष्या कर रहे हैं॥ २३८॥ उसके सौंदर्य के सामने गुलाब भी फीका है और सुर्ख सुन्दर रंग भी उसकी सुन्दरता पर खिसिया रहा है। कमल और नरगिस के फूल और उसके सौंदर्य को देखकर लज्जित हो रहे हैं। कवि अपने मन में उसके सौंदर्य की उधेड़बुन में लगा हुआ है और कहता है कि कृष्ण के समान सौंदर्यशाली व्यक्ति देखने के लिए मैं पूर्व से पश्चिम दिशा तक में घूम आया परन्तु मुझे ऐसा कोई नहीं मिला॥ २३९॥

॥ सवैया॥ अगहन के महीने में सभी गोपियाँ कृष्ण को पति के रूप में कामना करती हुई दुर्गादेवी की पूजा करती हैं। प्रातः वे यमुना में स्नान करती हैं जिन्हें देखकर कमल के फूल भी लजाते हैं। बिलावल राग में वे एक-दूसरे की बाँह पकड़कर गीत गाती हैं और श्यामकथा का वर्णन करती हैं। उनके अंगों में कामदेव अत्यन्त वेग से बढ़ रहा है और उन सबको देखकर लज्जा भी लजा रही है॥ २४०॥ सभी काली और [illegible] गोपियाँ गीत गा रही हैं और सभी पतली और भारी गोपिकाएँ [illegible] को पति के रूप में कामना कर रही हैं। उनके मुख को देखकर चन्द्रमा की कलाएँ भी निस्तेज दिखाई पड़ रही हैं और वे यमुना में नहाती ऐसी लग रही हैं मानो घर में फुलवाड़ी शोभायमान हो रही

जनु फूल रही ग्रिह मै फुलवारी ।। २४१ ।। ।। सवैया ।। न्हावत है गुपिआ जल मै तिनके मन मै फुन हउल न को । गुन गावत ताल बजावत है तिह जाइ किधौ इक ठउलन को । मुखि ते उचरै इह भाति सभै इतनो सुख ना हरि धउलन को । कबि स्याम बिराजत है अति ही कि बन्यो सर सुंदर कउलन को ।। २४२ ।। ।। गोपी बाच देवी जू सों ।। ।। सवैया ।। लै अपने कर जो मिटिआ तिह थाप कहै मुख ते जु भवानी । पाइ परै तिहके हित सो करि कोटि प्रनामु कहै इह बानी । पूजत है इह ते हम तो तुम देहु वहै जिय मै हम ठानी । हूवै हमरो भरता हरि जी मुखि सुंदर है जिह को ससि सानी ।। २४३ ।। भाल लगावत केसर अच्छत चंदन लावत है सितकै । फुन डारत फूल उडावत है मखिआ तिहकी अत ही हितकै । पट धूप पचांम्रित दच्छना पान प्रदच्छना दैन महाँ चितकै । बरबै कहु कान उपाव करै मित हो सोऊ लाल किधौ कितकै ।। २४४ ।। ।। गोपी बाच देवी जू ।। ।। कबित ।। दैतन संघारनी पतित-लोक तारनी सु संकट निवारनी कि ऐसी तू शकत है । बेदन उधारनी सुरेंद्र राज कारनी पै गउरजा की जागी जोति अजर

है ।। २४१ ।। ।। सवैया ।। सभी गोपियाँ अभय होकर जल में नहा रही हैं । वे कृष्ण के गीत गा रही हैं, ताल बजा रही हैं और सभी एक झुंड में इकट्ठी हैं । वे सब कह रही हैं कि इतना सुख तो इंद्र के महलों में नहीं है और कवि का कथन है कि वे सब कमल के फूलों से भरे हुए तालाब की तरह शोभायमान हो रही हैं ।। २४२ ।। ।। गोपी उवाच देवी जी के प्रति ।। ।। सवैया ।। अपने हाथों से मिट्टी लेकर और देवी की स्थापना करके उसके चरणों में प्रणाम करते हुए सभी यह कहती हैं कि हे देवी ! हम तुम्हारी पूजा इसलिए करती है कि तुम हमें मनवांछित वरदान दो तथा हमारा पति चन्द्र के समान मुखवाला कृष्ण हो ।। २४३ ।। वे ग्रामदेव के माथे पर केसर, अक्षत और चन्दन लगाती है । पुनः फूल डालकर प्रेम-पूर्वक पंखा झलती हैं । वस्त्र, धूप, पंचामृत, दक्षिणा, प्रदक्षिणा आदि दे रही है और कृष्ण को वरण करने का उपाय करते हुए कहती है कि कोई हमारा मित्र हो जो हमारे मन की इच्छा पूरी करवा दे ।। २४४ ।। ।। गोपी उवाच देवी जी के प्रति ।। ।। कवित्त ।। हे देवी ! तू दैत्यों का संहार करनेवाली, पतितों को इस लोक से तारनेवाली, संकट का हरण करनेवाली शक्ति हो । तुम वेदों का उद्धार करनेवाली इन्द्र को राज्य दिलानेवाली, गौरी की

जात कस है। धूअ मै न धरा मै न ध्यान धारी मै पै कछू जैसे तेरे जोति बीच आन ना छकत है। दिनस दिनेश मै दिवान मै सुरेश मै सुपत मै महेश जोति तेरीऐ जगति है॥ २४५॥ ॥ कबितु॥ बिनती करत सभ गोपी (मू०ग्रं०२८४) करि जोरि जोरि सुनि लेहु बिनती हमारी इह चंडका। सुर तै उबारे कोटि पतित उधारे चंड मुंड मुंड डारे सुंभ निसुंभ को खंडका। दीजै माग्यो दान हमैं प्रतच्छ कहै मेरी माई पूजै हम तुमै नाही पूजै सुतगंडका। हमैं करि प्रसंन्य ताको कह्यो शीघ्र मानदीनो वहै बरदान फुनि राछन की मंडका॥ २४६॥ ॥ देवी जी बाच गोपन सों॥ ॥ स्वैया॥ हवैं भरता अब सो तुमरो हरि दान इहै दुरगा तिन दीना। सो धुनि स्त्रउनन मै सुन कै तिन कोटि प्रनाम तबै उठ कीना। ता छबि को जस उच्च महा कबि ने अपने मन मै फुनि चीना। है इनको मनु कान्हर मै अउ जि पै रस कान्हर के संगि भीना॥ २४७॥ ॥ स्वैया॥ पाइ परी तिह के तब ही सभ भांत करी बहु ताहि बडाई। है जग की करता हरता दुख है सभ तूं गण गंध्रब माई। ता छबि को अति ही उपमा कबि ने मुख ते इम भाख सुनाई। लाल भई

जगमगाती ज्योति, धरती-आकाश और कहीं पर भी तुम्हारी जैसी ज्योति नहीं है। तुम सूर्य में, चन्द्र में, ताराओं में, इन्द्र में और महेश आदि सब में ज्योतिस्वरूप में प्रज्वलित हो रही हो॥ २४५॥ ॥ कबित्त॥ सभी गोपिकाएँ हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रही हैं कि हे चंडिका! हमारी प्रार्थना सुन लो, क्योंकि तुमने देवताओं का भी उद्धार किया है, करोड़ों पतितों को तारा है, चण्ड, मुण्ड, शुंभ और निसुंभ का खण्डन किया है। हे माँ! हमें माँगा हुआ दान दो। हम तुम्हारी और गंडक नदी के पुत्र शालिग्राम की पूजा कर रही हैं, क्योंकि तुमने प्रसन्न होकर उसका कहना माना था, इसलिए हमें भी वरदान दो॥ २४६॥ ॥ देवी जी उवाच गोपियों के प्रति॥ ॥ सवैया॥ तुम्हारा पति कृष्ण होगा, यह कहते हुए दुर्गा ने उन्हें दान दिया। यह ध्वनि कान में पड़ते ही सबने उठकर देवी को कोटि-कोटि प्रणाम किया। इस छवि को कवि ने अपने मन में इस प्रकार जाना है कि इन सबका मन कृष्ण में लगा हुआ उसके मन में रँगा हुआ है॥ २४७॥ ॥ सवैया॥ सभी गोपिकाएँ देवी के पाँव पकड़कर विभिन्न प्रकार से उसकी स्तुति करने लगीं कि हे जगतमाता! तुम सारे संसार के दुःख हरनेवाली तथा गणों और गंधर्वों की माँ हो। कवि का कथन है कि कृष्ण को पति

तबही गुपिआ कुनि बात अबै मन बांछत पाई ॥ २४८ ॥ लै बर बान सबै गुपिआ अति आनंद कै मन डेरन आई। गावत गीत सबै मिलकै इक हुवैको प्रसंन्य सु देत बधाई। पांतन साथ खरी तिन की उपमा कबि कै मुख ते इम भाई। मानहु चांद निसापति को सर मद्धि खिरी कविआ धुर ताई ॥ २४९ ॥ ॥ स्वैया ॥ प्रात भए जमना जल मै मिलि धाइ गई सभही गुपिआ। मिलि गावत गीत चली तिह जाकरि आनंद भा मन मै कुपिआ। तब ही कुनि कान्हु चले तिह जा जमुना जल को फुन जा जुपिआ। सोऊ देख तबै भगवान कहियो नहि बोलहु री करिहो चुपिआ ॥ २५० ॥

अथ चीर हरन कथनं ॥

॥ सवैया ॥ न्हावन लागि जबै गुपिआ तब लै पट कान चर्यो तर ऊपै। तउ मुसकयान लगी सब आपन कोइ पुकार करे हरि जू पै। चीर हरे हमरे छल सो तुमसो ठग नाहि किसो कोऊ भूपै। हाथन साथ सु सारी हरी द्रिग साथ हरो हमरो तुम रूपै ॥ २५१ ॥ ॥ गोपी बाच कान्ह सों ॥

के रूप में प्राप्त कर सभी गोपिकाओं के चेहरे खुशी और लज्जा से लाल हो उठे ॥ २४८ ॥ वरदान प्राप्त करके गोपियाँ प्रसन्न मन से घर आईं और गीत गा-गाकर आनन्दित होते हुए एक-दूसरे को बधाई देने लगीं। वे कतार बनाकर इस प्रकार खड़ी हुई हैं मानो तालाब के बीच चन्द्रमा को देखते हुए कमलिनियाँ खिली हुई खड़ी हों ॥ २४९ ॥ ॥ सवैया ॥ प्रातः होते ही सभी गोपियाँ यमुना की तरफ चलीं। वे गीत गा रही थीं और उनके आनन्द को देखकर आनन्द भी कुपित हो रहा था। तब कृष्ण भी यमुना की तरफ गए और देखकर गोपियों को कहने लगे कि तुम अब बोलती क्यों नहीं हो और चुप क्यों हो ॥ २५० ॥

चीर-हरण-कथन

॥ सवैया ॥ जब गोपियाँ नहाने लगीं तो श्रीकृष्ण वस्त्र लेकर पेड़ पर जा चढ़े। गोपियाँ मुस्कुराने लगीं और उनमें से कुछ कृष्ण को पुकारने लगीं तथा कहने लगीं कि तुमने छल से हमारे वस्त्र चुरा लिये हैं, तुम्हारे जैसा ठग और अन्य कोई नहीं है। तुमने हाथों से तो हमारे वस्त्रों का हरण किया और अब आँखों से हमारे रूप का हरण कर रहे हो २५१

॥ सवैया ॥ स्याम कह्यो मुख ते गुपिआ इह कान्ह सिखे तुम बात भली है। नंद की ओर पिखो तुमहूँ हिखो भ्रात की ओर कि नाम हली है। चीर हरे हमरे छल सों सुनि मार डरै तुहि कंस बली है। को मर है हमको तुमको न्रिप तोर (मू॰ग्रं॰२८५) डरें जिम कउल कली है॥ २५२॥ ॥ कान्ह बाच गोपी सों॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह कही तिनको इह बात न द्यों पट हउ निकर्‍यो बिन तोको। किउ जल बीच रही छप कै तन काहि कटावत हो पहि जोको। नाम बतावत हो न्रिप को तिह की फुनि नाहि कछू डर मोको। केसन ते गहिकै तप को अगनी अधि ईधन जिउँ उरि झोको॥ २५३॥ ॥ स्वैया ॥ रूख चरे हरि जा रिसकै मुख ते जब बात कही इह तासो। तउ रिस बात कही उन हूं इह जाइ कहैं तुहि मात पिता सो। जाइ कहो इह कान्ह कही मन है तुमरो कहबो कहु जासो। जो सुनि कोऊ कहै हमको इहतो हमहूँ समझैं फुन थासो॥ २५४॥ ॥ स्वैया॥ ॥ कान्ह बाच॥ देउ बिना निकरै नहि चीर कह्यो हसि कान्ह सुनो तुम प्यारी। सीत

॥ गोपी उवाच कृष्ण के प्रति॥ ॥ सवैया॥ गोपियों ने कहा कि हे कृष्ण ! तुमने यह भला काम सीखा है। तुम नन्द की ओर देखो, अपने भाई बलराम की ओर देखो (वे कितने सज्जन हैं), कंस यदि यह सुनेगा कि तुमने हमारे वस्त्र चुरा लिया है तो वह बलवान तुम्हें मार डालेगा। हमको कोई कुछ नहीं कहेगा। राजा तुम्हें कमल के फूल के समान तोड़ डालेगा॥ २५२॥ ॥ कृष्ण उवाच गोपियों के प्रति॥ ॥ सवैया॥ कृष्ण ने कहा कि जब तक तुम बाहर नहीं निकलोगी, मैं तुम लोगों को वस्त्र नहीं दूँगा। क्यों तुम सब पानी में छुपी हुई हो और अपने तन को जोंकों से कटवा रही है। जिस राजा का तुम नाम बता रही हो, मुझे उसका तनिक भी भय नहीं है। उसे मैं ऐसे केशों से पकड़कर पटक दूँगा जैसे अग्नि में लकड़ी को पकड़कर डाला जाता है॥ २५३॥ ॥ सवैया॥ कृष्ण यह कहकर क्रुद्ध होकर पेड़ पर और ऊँचे चढ़ गये तो गोपियों ने गुस्से में आकर कहा कि हम तुम्हारे माता-पिता से कह देंगी। कृष्ण ने कहा, जाओ जिससे कहना हो कह दो, मैं जानता हूँ कि तुम लोगों का मन किसी से भी कहने का नहीं है। जो कोई मुझसे कुछ कहेगा तो मैं उससे समझ लूँगा॥ २५४॥ ॥ सवैया॥ ॥ कृष्ण उवाच॥ हे प्यारियो ! मैं पानी से बाहर निकले बिना वस्त्र नहीं दूँगा तुम व्यर्थ ही पानी में शीत

सहो जल मै तुम नाहिक बाहरि आवहु गोरी अउ कारी । कै अपने अगुआ पिछुआ करि बार तजो पतली अरु भारी । यौ नहि देउ कह्यो हरि जी तसलीम करो करि जोरि हमारी ॥ २५५ ॥ ॥ स्वैया ॥ फेरि कही हरि जी तिन सो रिसकै इह बात सुनो तुम मेरी । जोरि प्रनाम करो हमरो कर लाज की काट सभै तुम बेरी । बार ही बार कह्यो तुम सो मुहि मानहु सीघ्र किधो इह हेरी । नातर जाइ कहो सभ ही पहि सउह लगै फुन ठाकुर केरी ॥ २५६ ॥ ॥ गोपी बात कान्ह सों ॥ ॥ स्वैया ॥ जो तुम जाइ कहो तिनही पहि तो हम बात बनावहि ऐसो । चीर हरे हमरे हरि जी देई बार ते न्यारी कढै हम कैसे । भेद कहैं सभ ही जसुधा पहि लोहि करै सरमिंदह वैसे । जिउ नर को गहिकै तिरिया हूँ सु मारत लातन मूकन जैसे ॥ २५७ ॥ ॥ कान्ह बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ बात कही तब इह हरी काहि बधावत मोहि । नमशकार जो ना करो मोहि दुहाई तोहि ॥ २५८ ॥ ॥ गोपी बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ काहि खिझावत हो हमको अरु देत कहा जदुराइ दुहाई । जा बिधि कारन बात

सहन कर रही हो । हे गोरी, काली, पतली और भारी गोपियो ! तुम अपने आगे-पीछे हाथ रखकर बाहर क्यों आ रही हो । तुम हाथ जोड़कर माँगो अन्यथा इस प्रकार मैं वस्त्र नहीं दूँगा ॥ २५५ ॥ ॥ सवैया ॥ फिर कृष्ण ने (थोड़े) क्रोध में उनसे कहा कि मेरी बात सुनो और लज्जा का त्याग करते हुए मुझे (बाहर निकलकर) दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करो। तुमसे मैं बार-बार कह रहा हूँ कि तुम शीघ्रता से मेरी बात मान लो, नहीं तो मैं सबसे जाकर बनाऊँगा । मैं तुम्हें ठाकुर जी की कसम दे रहा हूँ, मेरी बात मान लो ॥ २५६ ॥ ॥ गोपी उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ जो तुम जाकर कहोगे तो हम भी बात को ऐसे बनाते हुए कहेंगी कि कृष्ण ने हमारे वस्त्र चुरा लिये थे, हम जल से बाहर कैसे निकलती । यशोदा माता को सब बात बताकर तुम्हें वैसे ही शर्मिन्दा करेंगी जैसे स्त्रियों से लात घूँसे के द्वारा पिटाई करवाकर कोई व्यक्ति शर्मिन्दा होता है ॥ २५७ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण ने कहा कि मुझे बेकार में फँसवा रही हो, परन्तु इतना याद तुम यदि मुझे प्रणाम नहीं करोगी तो तुम्हें कसम लगेगी ॥ २५८ ॥ ॥ गोपी उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ गोपियाँ कहने लगीं, हे कृष्ण ! हमें क्यों खिझा रहे हो और सौगन्ध दिला रहे हो । तुम जिस कारण से यह सब कर रहे हो हम सब भी समझ गयी हैं तुम्हारे मन

बनावत सो बिध है हमहूँ लख पाई। भेद करो हम सो तुम नाहक बात इहै मन मै तुहि आई। सउह लगै हम ठाकुर की जु रहै तुमरी बिनु मात सुनाई॥ २५९॥ ॥ कान्ह बाच गुपीआ सों॥ ॥ स्वैया॥ मा सुनि है तब का करिहै हमरो सुनि लेहु सभै ब्रिज नारी। (मू०ग्रं०२८६) बात कही तुम मूड़न की हम जानत है तुम हो सभ भारी। सीखत हो रस रीत अबै इह कान्ह कही तुमको मुहि प्यारी। खेलन कारन को हम हूँ जु हरी छलकै तुम सुंदर सारी॥ २६०॥ ॥ गोपी बाच॥ ॥ स्वैया॥ फेरि कही मुख ते इम गोपिन बात इसी मनिए पट देहैं। सौह करो मुसलीधर की जसुधा नंद की हम जो इहकैहो। कान बिचार पिखो मन मै इन बातन ते तुम ना किछु पैहो। देहु कह्यो जल मै हम को इह देह असीस सभै तुम जैहो॥ २६१॥ ॥ गोपी बाच॥ ॥ स्वैया॥ फेरि कही मुख ते मिल गोपन नेह लगै हरि जी नहि जोरी। नैनन साथ लगै सोऊ नेहु कहै मुख ते इह सावल गोरी। कान्ह कही हसिकै इह बात सुनो रस रीत कहो सम होरी। आखम साथ लगै टकवा फुन हाथन साथ लगै सुम

म जब वही बात है (अर्थात् तुम हम सबको पाना चाहते हो), तो क्यों व्यर्थ हमसे झगड़ रहे हो। हम लोगों को ठाकुर जी की क़सम है जो तुम्हारी माता से न कहें॥ २५९॥ ॥ कृष्ण उवाच गोपियों से॥ ॥ सवैया॥ माँ मेरी बात सुनकर क्या कहेंगी, पर साथ-ही-साथ व्रज की सारी स्त्रियों को पता चल जाएगा। मैं जानता हूँ कि तुम भारी मूर्ख हो इसलिए मूर्खता की बात कर रही हो। कृष्ण ने कहा कि तुम अभी रस-लीला की रीति नहीं जानती हो, परन्तु तुम सब मुझे बहुत प्यारी लगती हो। मैंने भी खेलने के लिए ही तुम सबकी साड़ियों का हरण किया है॥ २६०॥ ॥ गोपी उवाच॥ ॥ सवैया॥ फिर गोपियों ने आपस में बात करते हुए कृष्ण से कहा कि तुम्हें बलराम और यशोदा की सौगन्ध है, जो हमको तंग करो। हे कृष्ण! मन में विचार कर देखो, इन बातों से तुम्हें कुछ हाथ नहीं लगेगा। तुम जल में ही हमको वस्त्र दे दो, ये सब तुम्हें साधुवाद देंगी॥ २६१॥ ॥ गोपी उवाच॥ ॥ सवैया॥ फिर गोपियों ने कृष्ण से कहा कि प्रेम बलपूर्वक नहीं किया जाता है, जो प्रेम आँखों से देखने पर हो जाता है वही प्रेम है। कृष्ण ने हँसकर कहा कि देखो तुम मुझे रस की रीति मत समझाओ। आँखों से टेक लगाकर पुन हाथों से ही प्रेम किया जाता

सोरी ॥ २६२ ॥ फेर कही मुख ते गुपिआ हमरे पट देहु कह्यो नंदलाला । फेरि शनान करें न इहां कहिकै हम लोगन आछन बाला । जोर प्रनाम करो हमको कर बाहर ह्वै जल ते ततकाला । कान्ह कही हसि कै मुखि ते करहो नही ढील देऊ पट हाला ॥ २६३ ॥ ॥ दोहरा ॥ मंत्र मचन मिल इह कर्यो जल को तज सभ नार । कान्हर की बिनती करो कीनो इहै बिचार ॥ २६४ ॥ ॥ स्वैया ॥ दै अगुआ पिछुआ अपने कर पै सभही जल त्याग खरी है । कान्ह कै पाइ परी बहुबारन अउ बिनती बहु भांत कही है । देहु कह्यो हमरी सरिआ तुम जो करि कै छल साथ हरी है । जो कहिहो मनि है हम सो अतिही सभ सीतहि साथ ठरी है ॥ २६५ ॥ ॥ कान्ह बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह कही हस बात तिनै कहि है हम जो तुम सो मन हो । सभ ही मुखि चूमन देहु कह्यो चुम है हमहूं तुमहूं गनिहो । अरु तोरन देहु कह्यो सभ ही कुच ना तर हउ तुम को हनिहो । तबही पट देउ सभै तुमरे इह झूठ नही सत कै अनिहो ॥ २६६ ॥ ॥ स्वैया ॥ फेरि कही मुख ते हरि जो सुनि री इक बात कहो संग तेरे । जोर प्रनाम

है ॥ २६२ ॥ गोपियों ने फिर कहा कि हे नंदलाल ! हमको वस्त्र दे दो, हम अच्छी स्त्रियां है । यहां फिर कभी स्नान नहीं करेंगी । कृष्ण ने उत्तर दिया कि ठीक है, तत्काल जल से बाहर निकलकर तुम मुझे प्रणाम करो । कृष्ण ने हँसकर कहा कि जल्दी करो मैं अभी वस्त्र दे देता हूं ॥ २६३ ॥ ॥ दोहा ॥ सबने सलाह की कि ठीक है, सभी जल से बाहर आओ और फिर कृष्ण से प्रार्थना करो ॥ २६४ ॥ ॥ सवैया ॥ अंगों को अपने हाथों से छुपाती हुई सभी जल के बाहर आ गयी है । वे कृष्ण के पैरों पड़ रही हैं और अनेक प्रकार से प्रार्थना कर रही हैं कि हमारे वस्त्र दे दो जो तुमने चुराये हैं । अब जो मन में था, हम लोगों ने कह दिया है । जल्दी वस्त्र दो, हम शीत से ठिठुर रही हैं ॥ २६५ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने कहा कि देखो, अब मैं जो कहूंगा वह तुम सबको मानना होगा । मुझे सबका मुँह चूमने दो । मैं चूमता हूं और तुम सब गिनो । मुझे अपने कुच भी स्पर्श करने दो अन्यथा मैं सबके साथ और भी बुरा व्यवहार करूँगा । मैं सत्य कह रहा हूं कि मैं यह सब कर लेने के बाद ही तुमको वस्त्र दूंगा ॥ २६६ ॥ ॥ सवैया ॥ पुन: कृष्ण ने कहा कि मेरी एक बात सुनो और हाथ जोड़कर मुझे प्रणाम करो अर्थात् मेरी बात मान लो क्योंकि

करी करि सो तुम कामकरा उपजी जिय मेरे । तौ हम बात कही तुमसों जब बात बनी सुभ ठउर अकेरे । दान लहै जिय को हमहूँ हस कान्ह कही तुमरो तन हेरे ॥ २६७ ॥
॥ कबियो बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ कान्ह (मू॰ग्रं॰२८७) जबै गोपी सभै देख्यो नैन नचात । ह्वै प्रसंनि कहने लगी सभै सुधा सी बात ॥ २६८ ॥ ॥ गोपी बाच कान्ह सों ॥
॥ सवैया ॥ कान्ह अबहिक्रम थोरी तुमै तुम खेलहु ना अपने घर काहो । नंद सुनै जसुधा तपतै तिह ते तुम कान्ह भए हरकाहो । नेहु लगै नहु जोरि भए तुम नेह लगावत हो बर काहो । नेह कहा इन बातन ते रस जानत का अजहूँ लरका हो ॥ २६९ ॥
॥ कबितु ॥ कमल से आनन कुरंगन से नैनन सो तन की प्रभा मै सारे भावन सो भरिआ । राजत है गुपिआ प्रसंन भई ऐसी भांति चंद्रमा चरे ते जिउँ बिराजै सेत हरिआ । रस ही की बातै रस रीत ही के प्रेम हूँ मै कहै कबि स्याम साथ कान्ह जू के खरिआ । मदन के हारन बनाइबे को काज मानो हित कै परोवत है मोतन की लरिआ ॥ २७० ॥ ॥ सवैया ॥ काहे को कान्ह जू काम के बान लगावत हो तन के धन भउहै ।

तुम सब कामदेव की कलाओं की तरह मेरे हृदय में इस समय निवास कर रही हो । मैंने भी तुम सबको यह सब करने के लिए अवसर और एकांत देखकर ही कहा है । मेरा हृदय तो तुम सबको देखकर तुम सबके रूप का दान लेकर तृप्त हो रहा है ॥ २६७ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण ने जब आँखें नचाते हुए गोपियों की ओर देखा तो सब प्रसन्न होकर अमृत के समान मीठे बोल बोलने लगीं ॥ २६८ ॥ ॥ गोपी उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे कृष्ण ! अभी तुम्हें कम समझ है, तुम अभी अपने घर में ही खेलो । नंद और यशोदा सुनेंगे तो तुम शर्म से और भी हलके हो जाओगे । प्रेम बलात् नहीं किया जाता, तुम ऐसा क्यों कर रहे हो । तुम अभी इन बातों में रस नहीं ले सकते क्योंकि तुम अभी लड़के हो ॥ २६९ ॥
॥ कवित्त ॥ कमल के समान मुखों वाली, हिरणी की-सी आँखों वाली और तन की प्रभा को भावों से भरी हुई गोपियाँ ऐसी शोभायुक्त लग रही हैं जैसे चन्द्र के चढ़ने पर हरा और श्वेत वर्ण और भी शोभा देते हैं । वे रस और रस-रीति की बातें करती हुई कृष्ण के साथ खड़ी हैं । वे ऐसे खड़ी हैं मानो कामदेव को हार पहनाने के लिए मोतियों की माला गूँथने के लिए खड़ी हैं २७० सवैया हे कृष्ण भौंहों के धनुष

काहे कउ नेह लगावत हो मुसकावत हो चलि आवत सउहे। काहे कउ पाग धरो तिरछी अरु काहे भरो तिरछी तुम गउहे। काहे रिझावत हो मन भावत आहि दिखावत है हम सउहे ॥ २७१ ॥ बात सुनी हरि की अब सउनन रीझ हसी सभ ही त्रिअ बामै। ठाढी भई तरु तीर सभै हुलए हुलए कल कै गजगामै। बेर बने तिन नैनन के जनु मैन बनाइ धरे इह दामै। स्याम रसातुर देखत यौं जिम टूटत बाज छुधातुर तामै ॥ २७२ ॥ ॥ सवैया ॥ काम से रूप कलानिध से मुख कीर से नाक कुरंग से नैनन। कंचन से तन दारम दांत कपोत से कंठ सु कोकल बैनन। कान्ह लख्यो कहने तिन सों हसि कै कबि स्याम सहाइक धैनन। मोहि लयो सभ ही मनु मेरो सु भउह नचाइ तुमै संग सैनन ॥ २७३ ॥ कान्ह बडो रस के हिरिआ सबही गल बीच अचानक हेरी। सउह तुमै जसुधा कहु बात की सारथ की इह आ हम घेरी। बेह कह्यो सबही हमरे पट होहि सभै तुमरी हम चेरी। कैसे प्रनाम करै तुम की

पर चढ़ाकर क्यों कामदेव के बाण मार रहे हो। तुम क्यों प्रेम बढ़ाकर मुस्कराते हुए हमारी ओर बढ़ते चले आ रहे हो ? क्यों तुम तिरछी पगड़ी धारण करते हो और क्यों तुम टेढ़ा-मेढ़ा चलते भी हो ? तुम क्यों हम सबको रिझा रहे हो ? हे मनभावन ! तुम हमें बहुत अच्छे लगते हो, ताहि तुम इस बात की कसम ले लो ॥ २७१ ॥ जब व्रज की स्त्रियों ने कृष्ण की बातें सुनीं तो वे सब मन-ही-मन प्रसन्न होने लगीं और धीरे-धीरे वे गजगामिनियाँ उस वृक्ष के नीचे आ गयीं (जिस पर कृष्ण बैठे हुए थे)। उनके नेत्र एकटक कृष्ण को निहारने लगे। वे ऐसी लग रही थीं जैसे काम रूपी बिजलियाँ हों। कृष्ण व्याकुल होकर स्त्रियों को देखकर भूखे बाज की तरह टूट पड़े ॥ २७२ ॥ ॥ सवैया ॥ कामदेव के समान रूप, चन्द्रमा के समान मुख, तोते के समान नाक, हिरण के समान नेत्र, स्वर्ण के समान शरीर, अनार के समान दाँत, कबूतर की तरह गर्दन और कोकिला के समान उन गोपियों की मधुर वाणी थी। कृष्ण उनसे मुस्कुराकर कहने लगे कि तुम लोगों ने संकेतों से और भौंहों को नचा-नचाकर मेरा मन मोह लिया है ॥ २७३ ॥ कृष्ण बहुत बड़े रसिक उन गोपियों को लगे और सब गोपियाँ आकर उनके गले लग गयीं। वे कहने लगीं, तुम्हें यशोदा की क़सम है जो तुम बताओ कि तुमने इस प्रकार हमें घेर लिया है। सभी कहने लगीं कि हम तुम्हारी दासियाँ हैं तुम हमारे वस्त्र वापस कर दो

अति लाज करैं हरि जी हम तेरी ।। २७४ ।। ।। सवैया ।। पा पकर्यो हरिकै तुमरे पट अउ तर पं चड़ि सीत सहा है । जो हम प्रेम छके अति ही तुमको हम ढूढत ढूंढ लहा है । जोर प्रनाम करो हमको कर सउह लगं तुम मोरी हहा है । कान्ह कही हस बात सुनो (मू०ग्रं०२८८) समचार भई तु बिचार कहा है ।।२७५।। शंक करो हम ते न कछू अरु लाज कछू जिय मै नही कीजै । जोर प्रनाम करो हमको कर दासन की बिनती सुनि लीजै । कान्ह कही हसिकै तिनसो तुमरे म्रिग से द्रिग देखत जीजै । डेरन नाहि करै तुम रे इह ते तुमरो कछु नाहिन छीजै ।। २७६ ।। ।। दोहरा ।। कान्ह जबै पट ना दए तब गोपी सभ हार । कान्ह कहै सो कीजिऐ कीनो इहै बिचार ।। २७७ ।। ।। सवैया ।। जोर प्रनाम करो हरि को करि आपसि मै कहिकै मुसकानी । स्याम लगी कहने मुख ते सभ ही गुपिआ मिलि अंम्रित बानी । होहु प्रसंन्य कह्यो हम पं कर बात कही तुम सो हमसानी । अंतर नाहि रह्यो इह जा अब सोऊ भलो तुम जो मन भानो ।। २७८ ।। ।। सवैया ।। काम के बान बनी बरछी

हे कृष्ण ! हम तुमको कैसे प्रणाम करें । हमें बहुत लज्जा का अनुभव हो रहा है ।। २७४ ।। ।। सवैया ।। मैंने तुम्हारे वस्त्र चुरा लिये हैं और अब तुम व्यर्थ ही और शीत सहन कर रही हो । हम तुम्हारे प्रेम में मस्त हैं और मैंने ढूंढते-ढूंढते आज तुमको पाया है । तुम सब हमको हाथ जोड़कर प्रणाम करो और तुम्हें क़सम है कि आज से तुम मेरी हो । कृष्ण ने हंस कर कहा कि सुनो (तुम्हारे बाहर निकलने से ही) सब कुछ तो हो गया, अब क्यों व्यर्थ और विचार कर रही हो ।। २७५ ।। मेरे से लज्जा मत करो और मुझ पर ज़रा भी शंका मत करो । मैं भी तुम्हारा दास हूं । मेरी प्रार्थना मानते हुए मुझे हाथ जोड़कर प्रणाम करो । कृष्ण ने कहा, मैं तुम्हारे मृगनयनों को ही देखकर जीवित हूं । तुम देर मत करो, इससे तुम्हारा कुछ भी घिस नहीं जायगा ।। २७६ ।। ।। दोहा ।। जब कृष्ण ने वस्त्र नहीं दिये तो हारकर गोपियों ने यह विचार किया कि जो कृष्ण कहते हैं वही किया जाय ।। २७७ ।। ।। सवैया ।। सब आपस में मुस्कराकर और अमृतवाणी बोलती हुई कृष्ण को प्रणाम करने का उपक्रम करने लगी । हे कृष्ण ! अब तुम हमसे प्रसन्न हो जाओ, हम तुम्हें प्रणाम करती हैं । अब तुम्हारे और हमारे में कोई अन्तर नहीं रह गया है और जो तुमको अच्छा लगता है, वही हमारे लिए अच्छा है २७८ । सवैया तुम्हारे

बरछे धन से द्रिग सुंदर तेरे। आनन है ससि सो अलकै हरि मोहि रहे बन रंचक हेरे। तउ तुम साथ करी बिनती अब काम करा उपजी जिय मेरे। चुंबन देहु कह्यो सभ हो मुख सउह हमै कह है नहि डेरे॥ २७६॥ ॥ सवैया॥ होहि प्रसंन्य सभै गुपिआ मिलि मान लई जोऊ कान्ह कही है। और हुलास बढ्यो जिय मै गिनती सरता मग नेह बही है। शंक छुटी दुहूँ के मन ते हसिकै हरि सो इह बात कही है। बात सुनो हमरी तुमहू हमको निधि आनंद आज लही है॥ २८०॥ ॥ सवैया॥ तउ फिर बात कही उनहूं सुनि री हरि जू किह बात कही। सुनि और हुलास बढ्यो जिय मै गिनती सरता मग नेह बही। अब शंक छुटी इन के मन की तब ही हसिकै इह बात कही। अब ससि भयो हम को दुरगा बर मात सभा इह भक्ति सही॥ २८१॥ ॥ सवैया॥ कान्ह तबै कर केल तिनो सगि पै पट दे करि छोर दई है। होइ इकत्र तबै गुपिआ सभ चंड सराहत धाम गई है। आनंद अति सु बढ्यो तिनके जिय सो उपमा कबि चीन लई है। जिउँ अल मेघ परै धर पै

भौंहें धनुष-सी हैं और उसमें से काम के बाण निकलकर बरछी के समान लग रहे हैं। इनके नेत्र भी अत्यन्त ही सुन्दर हैं, मुख चन्द्रमा के समान है और केश नागिन के समान हैं। जरा-सा देखने पर ही मन लोभी हो जाता है। कृष्ण ने कहा कि अब मेरे मन में काम उदित हुआ है, तभी मैंने तुम सबसे प्रार्थना की। मुझे मुख का चुम्बन दो और मुझे क़सम है कि मैं घर जाकर नहीं बताऊँगा॥ २७९॥ ॥ सवैया॥ गोपियों ने प्रसन्न होकर वह सब कुछ मान लिया, जो-जो कृष्ण ने कहा। उनके मन में प्रसन्नता की लहर बढ़ चली और प्रेम की सरिता बह निकली। दोनों ओर से लज्जा छूट गयी और कृष्ण ने तो हँसकर यह भी कहा कि मुझे तो आज आनन्द का भण्डार मिल गया है॥ २८०॥ ॥ सवैया॥ गोपियाँ आपस में कहने लगीं कि देखो, कृष्ण ने क्या कहा है। कृष्ण की बात को सुनकर प्रेम की नदी और उमड़ चली। अब इन सबके मन से शंका का निवारण हो गया और वे सब हँसते हुए कहने लगीं कि माँ दुर्गा का वरदान प्रत्यक्ष रूप से हमारे सामने आ उपस्थित होकर सत्य सिद्ध हुआ॥ २८१॥ ॥ सवैया॥ कृष्ण ने उन सबके साथ प्रेम-लीला करके और उन सबको वस्त्र देकर छोड़ दिया। सभी गोपियाँ दुर्गा माता की प्रशंसा करती हुई अपने-अपने घर गयीं उनके हृदय में अत्यन्त आनन्द की वृद्धि ठीक

घर ज्यों सबको सुभ रंग भई है ॥ २८२ ॥ ॥ गोपी बाच ॥ ॥ अड़िल ॥ धंनि चंडका मात हमै बर इह दयो । धंनि द्यौस है आज कान्ह हम मित भयो । दुरगा अब इह किरपा हम पर कीजिऐ । हो कान्हन को बहु दिवस सु देखन दीजिऐ (मू०ग्रं०२८६) ॥ २८३ ॥ ॥ गोपी बाच देवी जू सो ॥ ॥ स्वैया ॥ चंड क्रिपा हम पै करिऐ हमरो अति प्रीतम होइ कन्हइया । पाइ परैं हमहूं तुमरे हम कान्ह मिलै मुसलीधर भइया । याही ते दैत संघारन नाम किधो तुमरो सभ ही जुग गइया । तउ हम पाइ परी तुमरे जब ही तुम ते इह पै बर पइया ॥ २८४ ॥ ॥ कबितु ॥ देतन की म्रित साध सेवक को बरता तूं कहै कबि स्याम आदि अंतहूं की करता । दीजै बरदान मोहि करत बिनंती तोहि कान्ह बर दीजै सोक बारध की हरता । तूंही पारबती अस्टभुजी तुही देवी तुही तुही रूप छुधा तुही पेटहू की भरता । तुही रूप लाल तुही सेत रूप पीत तुही तुही रूप धरा को है तुही आप करता । २८५ ॥ ॥ स्वैया ॥ बाहनि सिंघ भुजा अस्टा जिह चक्र त्रिशूल गदा कर मै ।

उसी प्रकार हुई जैसे वर्षा होने पर धरती पर घास की हरियाली में वृद्धि हुई ॥ २८२ ॥ ॥ गोपी उवाच ॥ ॥ अड़िल ॥ दुर्गा माँ धन्य है, जिसने हमें यह वरदान दिया और आज का यह दिन धन्य है जिसमें कृष्ण हम लोगों का मित्र बन गया । हे दुर्गा माँ ! अब हम पर यह कृपा कीजिए कि अन्य दिनों में भी कृष्ण को देखने का अवसर हमें मिलता रहे ॥ २८३ ॥ ॥ गोपी उवाच देवी के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे चंडिके ! हम पर कृपा कीजिए ताकि हम लोगों का प्रियतम कृष्ण बना रहे । हम तुम्हारे पाँव पड़ती हैं कि हमें कृष्ण मिले (प्रियतम के रूप में) और बलराम भाई के रूप में प्राप्त हों । इसीलिए, हे माँ ! तुम्हारा नाम सारे संसार में दैत्य-संहारिणी के रूप में गाया जाता है । हम तुम्हारे फिर चरण-स्पर्श करेंगे, जब हमें यह वरदान प्राप्त हो जायगा ॥ २८४ ॥ ॥ कवित्त ॥ कवि श्याम का कथन है कि हे देवि ! तू दैत्यों की मृत्यु और साधु सेवकों को प्रेम करनेवाली तथा आदि और अन्त को करनेवाली हो । तुम ही पार्वती, अष्टभुजा देवी, अत्यन्त रूपवती तथा भूखे का पेट भरनेवाली हो । तुम ही लाल, सफ़ेद, पीला वर्ण हो और तुम ही धरती का रूप और धरती की रचना करनेवाली हो २८५ सवैया तुम्हारा वाहन सिंह है तुम्हारी अष्टभुजाओं में चक्र गदा त्रिशूल बरछी तीर, ढाल कमान और

बरछी सर ढाल कमान निखंग धरे कट जो बर है बर मै। गुपिआ सभ सेव करै तिह की चित दैत हुमै तिह कै हरि मै। पुन अछत धूप पंचांम्रित दीप जगाइत हार डरै गर मै ॥२८६॥ ॥ कबितु ॥ तोही को सुनैहै जाप तेरो ही जपैहै ध्यान तेरो ही धरैहै न जपैहै काहूँ आन को। तेरो गुन गैहै हम तेरे ही कहैहै फूल तोही पै डरैहै सभ राखै तेरे मान को। जैसे बर दीनो हमै होइकै प्रसंनि पाछै तैसे बर दीजै हमं कान्ह सुर ग्यान को। दीजिए बिभूत कै बनासपती दीजै कैधो माला दीजै मोतिन कै मुंद्रा दीजै कान को ॥ २८७ ॥ ॥ देवी बाच ॥ ॥ सवैया ॥ तौ हस बात कही दुरगा हम तो तुमको हरि को बर दैहै। होहु प्रसंनि सभै मन मै तुम सत्त कह्यो नही झूठ कहैहै। कान्हि को सुख हो तुमको हम सो सुख सो अखिआ भरि लैहै। जाहु कह्यो सभ ही तुम डेरन कान्ह चहै बर को तुम पैहै ॥ २८८ ॥ ॥ कबियो बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ ह्वै प्रसंन्य सभ ब्रिजबधू तिह को सीस निवाइ। पर पाइन कर बेनती चली ग्रिहन को धाइ ॥ २८९ ॥ ॥ सवैया ॥ आपस मै

कमर में तरकस है। सभी गोपियाँ मन में कृष्ण की कामना करते हुए उस देवी की पूजा कर रही हैं और अक्षत, धूप, पंचामृत अर्पण करते हुए तथा दीप जलाते हुए उसके गले में फूलों का हार डाल रही है ॥ २८६ ॥ ॥ कबित्त ॥ हे माँ! तुम्हें ही सुना रही हैं, तुम्हारा ही जाप कर रही हैं तथा अन्य किसी का भी स्मरण नहीं कर रही हैं। हम तेरे ही गुणगान कर रही हैं और तेरे मान के अनुरूप तेरे पर पुष्प चढ़ा रही हैं। जिस प्रकार का वर तुमने प्रसन्न होकर हमें पहले दिया है, वैसा ही कृष्ण से सम्बन्धित वर पुनः दीजिए। यदि हमें कृष्ण प्राप्त नहीं होता है तो हमें भभूत, गले में डालने के लिए कंठी और कान में डालने के लिए मुद्राएँ दीजिए ताकि हम संसार को त्यागकर योगिनियाँ बन जायें ॥ २८७ ॥ ॥ देवी उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ तब दुर्गा ने हँसकर कहा कि मैं तो तुम सबको कृष्ण का वर दे चुकी हूँ। तुम सब प्रसन्न होओ, क्योंकि मैंने यह सत्य कहा है, झूठ नहीं कहा है। कृष्ण का सुख तुम्हारे ही लिए है और तुम्हें सुखी देखकर मेरी आँखें भी सुख से भर जायेंगी। तुम सब अपने घर जाओ और कृष्ण तुम सबका ही वरण करेगा ॥ २८८ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ सभी ब्रज की बहुएँ प्रसन्न होकर सिर को झुकाती हुई, देवी के चरणों को स्पर्श करती हुई अपने-अपने घर को चली गयीं २८९।

कर जोर सभै गुपिआ चलि धाम गई हरखानी। रीझ दयो हम को दुरगा बर स्याम भली कहती इह बानी। आनंद मन भरी मद सों सभ सुंदर धामन को निज कानी। दान दयो दिजहूं बहुत्यो मन इच्छत है हरि हो हम जानी॥ २९०॥ ॥ दोहरा॥ सभै मलि इक धाल सिउ ह्वै इकत्र सभ बाल। (मू०ग्रं०२९०) अंग सभै गनने लगी करिकै बात रसाल॥ २९१॥ ॥ स्वैया॥ कोऊ कहै हरि को मुख सुंदर कोऊ कहै सुभ नाक बन्यो है। कोऊ कहै कट केहरि सो तन कंचन सो रिझ काहू गन्यो है। नैन कुरंग से कोऊ गनी जस ता छबि को कबि स्याम भन्यो है। लोगन मै जिमु जीव बन्यो तिनके तन मै तिम कान्ह बन्यो है॥ २९२॥ कान्ह को पेख कलानिध सो मुख रीझ रही सभ ही ब्रिज बारा। मोहि रहे भगवान उतै इनहूं दुरगा बर चेटक डारा। कानि टिकै ग्रिह अउर बिखै तिह को अलि ही जसु स्याम उचारा। बीच इकत्र रहै तिनको इम टूट गए जिउं क्रिनाल को तारा॥ २९३॥

॥ सवैया॥ सब गोपियाँ एक-दूसरे का हाथ पकड़ती हुई प्रसन्न मन से घर चली गई। वे सब यह कह रही थीं कि दुर्गा ने प्रसन्न होकर हम सबको वर के रूप में कृष्ण को दे दिया है और इसी आनन्द से भरी हुई वे सब सुन्दरियाँ अपने घरों में पहुँच गयीं। उन्होंने बहुत सा दान ब्राह्मणों को दिया, क्योंकि उन्हें मनवांछित कृष्ण प्राप्त हो गया था॥ २९०॥ ॥ दोहा॥ एक अवसर पर सभी बालिकाएँ इकट्ठी होकर मीठी-मीठी बातें करती हुई कृष्ण के अंगों का वर्णन करने लगीं॥ २९१॥ ॥ सवैया॥ कोई कहती है कि कृष्ण का मुख सुन्दर है; कोई कहती है, कृष्ण की नासिका सुन्दर है। कोई रीझकर कह रही है कि कृष्ण की कमर शेर के समान है और कोई कहती है, कृष्ण का तन कांचन का बना हुआ है। कोई नयनों की उपमा मृग से देती है और कवि श्याम का कथन है कि जिस प्रकार मनुष्यों में जीव ओतप्रोत रहता है, उसी तरह सभी गोपियों के मन कृष्ण रमा हुआ है॥ २९२॥ कृष्ण का चन्द्र के समान मुख देखकर सभी ब्रज-बालिकाएँ प्रसन्न हो रही हैं। इधर कृष्ण भी सब पर मोहित हैं और उधर दुर्गा के वरदान ने गोपियों को भी व्याकुल कर दिया है। कृष्ण गोपियों की व्याकुलता बढ़ाने के लिए किसी अन्य घर में कुछ समय में टिक गये तो सभी गोपियों के दिल विरह-वेदना से ऐसे टूट गये जैसे कमल की नाल के तार आसानी से टूट जाते हैं। २९३ इन गोपियों का कृष्ण से और

नेहु लग्यो इन को हरि सौ अब नेहु लग्यो हरि को इन नारे । चैन परै दुहू कौ नहि हूँ पल नावन जावत होत सवारे । स्याम भए भगवान हुनै बल दैतन के जिह ते बल हारे । खेल दिखावत है जग कौ दिन थोरन मै अब कंस पछारे ॥ २९४ ॥ ॥ स्वैया ॥ उत जागत स्याम इतै गुपिआ कबि स्याम कहै हित कै संगि ताके । रीझ रही तिह पै सभ ही दिखि नैनन सो फुनि कान्हर बाके । प्रेम छकी न परै इनकी कलि काम बढ्यो अति ही तन वाके । खेलहि प्रातहि काल भए हम नाहि लखै हम कै जन गाके ॥ २९५ ॥ प्रात भयो चुहचात चिरी जल जात खिरे बन गाइ छिरानी । गोप जगे पति गोप जग्यो कबि स्याम जगी अरु गोपन रानी । जाग उठे तबही करुनानिध जाग उठ्यो मुसलीधर मानी । गोप गए उत न्हान करै इह कान्ह चले गुपिआ जिह कानी ॥ २९६ ॥ ॥ स्वैया ॥ बाल कहै रस की हसकै नहि अउर कथा रस की कोऊ भाखै । चंचल लोचन के अपने द्रिग मोहि तिनै बतिआ इह आखै । बात न जानत होरस की रस जानत सो नर जो रस चाखै ।

कृष्ण का गोपियों से स्नेह बढ़ता ही जा रहा है । दोनों को चैन नहीं पड़ रहा है और दोनों कई-कई बार नहाने जाते हैं । कृष्ण, जिनसे दैत्यों के दल हार मान गये थे, वे अब गोपियों के वश में हो गये हैं । अब वे संसार को लीला दिखा रहे हैं और थोड़े ही दिनों में कंस को पछाड़ेंगे ॥ २९४ ॥ ॥ सवैया ॥ कवि श्याम का कथन है कि प्रेम में उधर गोपियाँ जग रही हैं और इधर रात्रि में कृष्ण को नींद नहीं आ रही है । कृष्ण को अपने नेत्रों से देखकर वे रीझ रही हैं । प्रेम से उनकी तृप्ति नहीं हो रही है और कामदेव उनके तन में बढ़ता जा रहा है । कृष्ण के साथ खेलते-खेलते सुबह हो जाती है और उन सबको पता ही नहीं लगता है ॥ २९५ ॥ प्रातःकाल हुआ, चिड़िया चहचहाने लगी और वन में गायों को छोड़ दिया गया । गोप जग गये, नन्द जग गये और माता यशोदा भी जग गयी । तभी कृष्ण भी जग गये और बलराम भी जग गये । उधर गोप स्नान करने गये और इधर कृष्ण भी गोपियों के पास पहुँच गये ॥ २९६ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपियाँ हँस-हँसकर रसीली बातें कर रही हैं । चंचल श्रीकृष्ण को अपने नयनों से मोहकर, गोपियाँ इस प्रकार कहती हैं कि हमें दूसरे किसी का तो कुछ पता नहीं है लेकिन इतना अवश्य पता है जो रस को पीनेवाला है वही रस की कद्र जानता है प्रीति

प्रीत पढ़ै कर प्रीत कहूँ रस रीतन चीत सुनो सोई चाहै ॥ २९७ ॥ ॥ गोपी बाच कान्ह सो ॥ ॥ स्वैया ॥ मीत कहो रस रीत सभै हम प्रीत भई सुनबे बतिआ की । आउर भई तुहि देखनि की तुम प्रीत भई हमरी छतिआ की । रीझ लगी कहने मुख ते हस सुंदर बात इसी गतिआ की । (मू०ग्रं०२६१) नेह लग्यो हरि सो भई मोछन होति इसी गत है सु त्रिआ की ॥ २९८ ॥

॥ इति स्री दसम सकंध बचित्र नाटक क्रिशनावतारे चीर हरन धिआइ ॥

अथ बिपन ग्रिह गोप पठैबो ॥

॥ दोहरा ॥ कै क्रीड़ा इन सो किशन कै जमना इशनानु । बहुर स्याम बन को गए गऊ सु त्रिनन चरान ॥ २९९ ॥ ॥ दोहरा ॥ क्रिशन सराहत तरन को बन मै आगे गए । संग ग्वाल जेते हुते ते सभ भूख भए ॥ ३०० ॥ ॥ सवैया ॥ पत्र भले तिन के सुभ फूल भले फल है सुभ सोभ सुहाई । भूख लगे घर को उमगे पै बिराजम को सुखदा पर छाई । कान्ह तरै तिहके मुरली गहि कै कर मो मुख साथ

होने पर ही प्रेम में गहराई आती है और रस की बातों को अनुभव करने में आनन्द आता है ॥ २९७ ॥ ॥ गोपी उवाच कृष्ण से ॥ ॥ सवैया ॥ हे मित्र ! हम रस की बातें सुनना चाहती हैं । हमें रस की रीति समझाओ । हम तुम्हें देखना चाहती हैं और तुम्हें हमारे कुचों से प्रेम है । गोपियाँ इसी प्रकार की बातें कृष्ण से करती हैं और उन स्त्रियों की यह अवस्था है कि वे हरि के प्रेम में मूच्छित-सी हो रही हैं ॥ २९८ ॥

॥ श्री दसम स्कंध बचित्र नाटक के कृष्णावतार में चीर-हरण अध्याय समाप्त ॥

विप्रों के घर गोपों को भेजना

॥ दोहा ॥ गोपियों से क्रीड़ा करके और स्नान करके कृष्ण वन में गाय चराने गए ॥ २९९ ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण सुन्दरियों की प्रशंसा करते हुए वन में आगे निकल गए और जितने ग्वाल-बाल उनके संग थे उन सबको भूख सताने लगी ॥ ३०० ॥ ॥ सवैया ॥ उन पेड़ों के पत्ते भले हैं फल-फूल और सुखदाई छाया भली है जिनके नीचे घर लौटते समय कृष्ण ने मुरली की तान बजाई कृष्ण की मुरली को सुनकर तो पवन

बजाई । ठाढि रह्यो सुन पउन घरी इक थकत रही जमुना उरझाई ॥ ३०१ ॥ मालसिरी अरु जैतसिरी सुभ सारंग बाजत है अरु गउरी । सोरठि सुद्ध मलार बिलावल मीठी है अम्रित ते मधु कउरी । कान्ह बजावत है मुरली सुन होत सुरी असुरी सभ बउरी । आइ गई ब्रिखभान सुता सुन दै सरनी हरनी जिमु धउरी ॥ ३०२ ॥ जोरि प्रनाम कर्यो हरि को करि नाथ सुनो हम भूख लगी है । दूर रहे सभ गोपन के घर खेलन की सभ सुद्ध भगी है । डोलत संग सभै तुमरे हम कान्ह तबै सुन बात पगी है । आइ कह्यो मथुरा द्विज स्रिपन सति कह्यो नहि बात ठगी है ॥ ३०३ ॥ ॥ कान्ह बाच ॥ ॥ सवैया ॥ फेर कही हरि जी सभ गोपन कंस पुरी इह है इह जइऐ । जग को मंडल स्रिपन को द्विज पूजत पूजन हूँछ सु लइऐ । अंजुल जोरि सभै पर पाइन तउ फिर कै बिनती इह कइऐ । खान के कारन भोजन मागत कान्ह छुधातुर है सु सुनइऐ ॥ ३०४ ॥ मान लई जोऊ कान्ह कही पर पाइन सीस निवाइ चले । चलिकै पुर कंस बिखै जो

भी एक घड़ी भर के लिए रुक गया और यमुना भी उलझन में पड़ गई अर्थात् कृष्ण की मुरली सबको प्रभावित करती है ॥ ३०१ ॥ कृष्ण मुरली पर मालश्री, जैतश्री, सारंग, गौड़ी, सोरठ, शुद्ध मल्हार और अमृत के समान मीठा बिलावल राग बजाते हैं और इनको सुनकर अप्सराएँ और राक्षसियाँ सभी मोहित हो रही हैं । बाँसुरी को सुनकर ही वृषभानु की पुत्री (राधा) भी हिरणी के समान दौड़ी हुई चली आ रही है ॥ ३०२ ॥ राधा ने हाथ जोड़कर कहा कि हे नाथ ! मुझे भूख लगी है । सब गोपों के घर दूर रह गए और खेल-खेल में हमें कुछ स्मरण ही नहीं रहा (कि हम इतनी दूर निकल आए हैं) । हम तुम्हारे साथ ही घूम रहे हैं । कृष्ण ने जब यह सुना तो सबसे कहा कि तुम सब मथुरा में ब्राह्मणों के घरों में जाओ (और कुछ खाने के लिए ले आओ) । यह मैं तुम लोगों से सत्य कह रहा हूँ, इसमें तनिक भी झूठ नहीं है ॥ ३०३ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने सब गोपों से कहा कि कंसपुरी मथुरा में जाओ और यज्ञ करनेवाले विप्रों के बारे में पूछ लेना । उनके हाथ जोड़कर तथा पाँव पड़कर प्रार्थना करना कि कृष्ण को भूख लगी है और खाने के लिए भोजन माँग रहे हैं ॥ ३०४ ॥ गोपों ने कृष्ण की बात मान ली और शीश झुकाकर वे सब चल दिए और मथुरा में विप्रों के घर पर

गए मिहु बिप्पन के सब गोप भले। करि कोटि प्रनाम करी बिनती पुनि भोजन माँगत कान्हु खले। अब देखहु चातुरता इन को घर बालक भूखत बिप्र छले॥ ३०५॥ ॥ बिप्र बाच॥ ॥ सवैया॥ क्रोध भरे द्विज बोल उठे हम ते तुम भोजन माँगन आए। कान्हु बडो सठ अउ मुसली हमहूँ तुमहूँ सठ से लख पाए। पेट भरैं अपनो तब ही जब आनत तंदुल माग पराए। (मू०पं०२८२) एते दै खान को माँगत है इह यौ कहिकै अति बिप्र रिसाए॥ ३०६॥ बिप्पन भोजन जो न दयो सब ही मिहु गोप चले खिसाने। कंस पुरी तज कै मिहु बिप्पन साथ चले जमुना निज काने। बोलि उठ्यो मुसली किशनं संगि अंन्य बिना जब आवत जाने। देखहु लैन को आवत ये द्विज देन को बेर को दूर पराने॥ ३०७॥ ॥ कबितु॥ बडे है कुमती अउ कुजती कूर काइर है बडे है कपूत अउ कुजात बडे ग्राम मै। बडे चोर चूहरे चपाई लिए तजै प्रान करैं अति जारी भटपारी अउर मग मै। बैठे है अजान मानो कहीअत है स्याने कछू जाने न गिआन सउ कुरंग बाँधे पग मै।

पहुँचे। गोपों ने प्रणाम किया और कृष्ण के रूप में भोजन माँगने लगे। अब इन सबकी चतुराई देखो कि कृष्ण के रूप में सभी विप्रों को ठग रहे हैं॥ ३०५॥ ॥ विप्र उवाच॥ ॥ सवैया॥ क्रुद्ध होकर विप्र बोल उठे कि तुम हम लोगों से भोजन माँगने आए हो! कृष्ण और बलराम तो दक्ष मूर्ख हैं। क्या तुमने हम सबको भी मूर्ख समझ लिया है। हम तो अपना पेट भी चावल माँगकर भरते हैं। तुम हमसे माँगने आ गए हो। यह कहते हुए विप्र क्रुद्ध हो उठे॥ ३०६॥ विप्रों ने जब खाने को कुछ न दिया तो खिसियाकर सभी गोप मथुरा को छोड़कर यमुना के तट पर अपने कृष्ण के पास आ पहुँचे। उन्हें बिना अन्न के आते हुए देखकर कृष्ण और बलराम बोल उठे कि विप्र लेने के लिए तो हम लोगों के पास आ जाते हैं, परन्तु देने के समय दूर भागते हैं॥ ३०७॥ ॥ कवित्त॥ ये विप्र व्यभिचारी, क्रूर, कायर, महानीच और कुजाति हैं। ये चोर-चमारों के कर्म करनेवाले विप्र रोटी के लिए प्राण तक छोड़ने को तैयार हो जाते हैं। ये रास्तों पर धूर्तता और लूट भी करते हैं। ये अनजान बनकर बैठे रहते हैं। अन्दर से चतुर होते हैं और ज्ञान तो इनमें होता नहीं परन्तु हिरण की-सी तीव्र गति से इधर-उधर दौड़ा करते हैं। ये बड़े भद्दे हैं, परन्तु अपने-आपको सुन्दर कहलाते हैं और नगर में तेम स्वच्छन्द होकर घूमते हैं जैसे

ठढे है कुठौर पै कहाबल है छैल ऐसे फिरत नगर जैसो फिरै ढोर बन मै ॥ ३०८ ॥ ॥ मुसली बाच कान सो ॥ ॥ सवैया ॥ आइस होइ तउ छैर हला संग मूसल सौ मथुरा सब काटो । बिप्पन जाइ कहो पकरो कहो मार डरो कहो रंचक डाटो । अउर कहो तो उखार पुरी बलु कै अपनो जमुना महि साटो । संकत हो तुमतै जदुराइ न हउ इकलो अर को सिर काटो ॥ ३०९ ॥ ॥ कान्ह बाच ॥ ॥ सवैया ॥ क्रोध छिमापन कै मुसली हरि फेरि कही संगि बालक बानी । बिप्र गुरू सभ हो जग के समझाइ कही इह कान्ह कहानी । आइस मान गए फिर कै सु जुतो न्रिप कंसहि की रजधानी । भैं को भोजन मांगत कान्ह कह्यो नहि बिप्र मनी अभिमानी ॥ ३१० ॥ ॥ कबितु ॥ कान्ह जू के ग्वारन को बिप्पन दुबार रिस उत्तर दयो न कछू खैबे को कछू दयो । तब ही रिसाए गोप आए हरिजू कै पास करिकै प्रनाम ऐसे उत्तर तिनै दयो । मोन साध बैठ रहे खैबे को न देत कछू तबै फिरि आइ जबै क्रोध मन मै भयो । अत ही छुधातर भए है हम दीनानाथ कीजिऐ उपाइ भा तौ बल

जानवर अपने साथियों-समेत बेरोक-टोक घूमते हैं ॥ ३०८ ॥ ॥ बलराम उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे कृष्ण ! यदि तुम कहो तो मैं अपने शस्त्र मुगदर (मूसल) के प्रहार से सारी मथुरा को फाड़कर दो टुकड़े कर दूं । यदि कहो तो विप्रों को पकड़ लूं, कहो तो मार डालूं और कहो तो थोड़ा डाँटकर छोड़ दूं । यदि कहो तो सारी मथुरा नगरी को अपने बल से उखाड़कर यमुना में फेंक दूं । मुझे तुम्हारा ही थोड़ा भय है, अन्यथा हे यादवराज ! मैं अकेला ही सारे शत्रुओं को नष्ट कर दूं ॥ ३०९ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ हे बलराम ! क्रोध और क्रोधी को क्षमा कर देना चाहिए । यह कहते हुए सभी बालकों से कृष्ण कहने और समझाने लगे कि विप्र तो सारे जगत् का गुरु होता है, (परन्तु यह आश्चर्य है कि) गोप तो आज्ञा मानकर दुबारा भोजन माँगने चले गए और नृप की राजधानी में जा पहुँचे, पर कृष्ण का नाम लेने पर भी अभिमानी विप्रों ने इन्हें कुछ नहीं दिया ॥ ३१० ॥ ॥ कवित्त ॥ कृष्ण के ग्वाल-बालों को दुबारा क्रोधित होकर विप्रों ने उत्तर दिया, परन्तु खाने को कुछ नहीं दिया । तब रुष्ट हो गोप कृष्ण के पास आए और प्रणाम कर कहने लगे कि ब्राह्मण हम लोगों को देखकर मौन साध गए हैं और उन्होंने कुछ भी खाने को नहीं दिया है इसलिए हम क्रोधित हैं हे दीनानाथ हम अत्यन्त भूख

तन को गयो ॥ ३११ ॥ ॥ सवैया ॥ गरुड़ाध्वज देख तिनै छुधवान कह्यो मिलिकै इह काम करउरे । जाहु कह्यो उनकी पतनी पहि बिप्प बडे मत के अति बउरे । जगि करैं जिह कारन को अरु होम करैं जपु अउ सतु सउरे । ताही को भेदु न जानत मूड़ कहै मिशटान के खान को कउरे ॥ ३१२ ॥ ॥ सवैया ॥ सभ गोप निवाइकै सीस चले चलके फिर बिप्पन के घरि आए । (मू०ग्रं०२६३) जाइ तबै तिन की पतनी पहि कान्ह तबै छुधवान जताए । तौ सुन बात सभै पतनी दिज ठाढि भई उठ आनंद पाए । धाइ चली हरि के मिलबे कहु आनंद कै दुख दूर भगाए ॥ ३१३ ॥ बिप्पन की बरजी न रही तिय कानर के मिलबे कहु धाई । एक परी उठ मारग मै इक देह रही जिय देह पुजाई । ता छबि को अति ही उपमा कबि नै मुख ते इम भाख सुनाई । जोर सिउं ज्यों बहती सरता न रहै हटकी भुस भीत बनाई ॥३१४॥ ॥ स्वैया ॥ धाइ सभै हरि के मिलबे कहु बिप्पन की पतनी बडभागन । चंद्रमुखी म्रिग से द्रिगनी कबि स्याम चली हरि के पग लागन । है सुभ अंग सभै जिनके न सकै

लगी है, हमारा कुछ उपाय कीजिए। हमारे तन का बल अत्यन्त क्षीण हो गया है ॥ ३११ ॥ ॥ सवैया ॥ श्रीकृष्ण ने उन्हें अत्यन्त क्षुधातुर देखकर कहा कि तुम लोग एक काम करो कि तुम विप्रों की पत्नियों के पास जाओ, ये विप्र अत्यन्त मतिमंद हैं। ये जिस कारण से यज्ञ और होम करते रहते हैं, उसके रहस्य को ये मूर्ख नहीं जानते हैं और मिष्टान्न को भी कड़वा कर रहे हैं (अर्थात् ये मुझे नहीं पहचान रहे हैं) ॥ ३१२ ॥ ॥ सवैया ॥ गोप पुनः शीश झुकाकर चले और विप्रों के घर पहुँचे। उनकी पत्नियों से गोपों ने कहा कि कृष्ण को अत्यन्त भूख लगी है। पत्नियाँ कृष्ण की बात सुनकर आनन्द से उठ खड़ी हुईं और दौड़कर कृष्ण को मिलने और अपने दुःखों को दूर करने के लिए चल पड़ीं ॥ ३१३ ॥ विप्रों के मना करने पर भी स्त्रियाँ नहीं मानीं और कृष्ण को मिलने के लिए दौड़ पड़ीं। कोई रास्ते में गिर पड़ी है और कोई फिर उठकर दौड़ी है और प्राणों के रहते-रहते वहाँ आ पहुँची है। उस छवि को कवि ने इस प्रकार कहा है कि स्त्रियाँ इतने वेग से चलीं जैसे भूसे का बाँध तोड़कर नदी पूर्ण वेग से बह निकलती है ॥ ३१४ ॥ ॥ सवैया ॥ बड़े भाग्य वाली विप्रों की पत्नियाँ कृष्ण को मिलने के लिए चल पड़ीं। वे चन्द्रमुखियाँ और मृगनयनियाँ कृष्ण के चरण स्पर्श करने के लिए बढ़ चलीं उनके

जिनकी ब्रहमा गनता गन । भउनन ते सभ इउ निकरी जिमु मंत्र पड़ै निकरैं बहु नागन ॥ ३१५ ॥ ॥ दोहरा ॥ हरि को आनन देख कै भई सभन को चैन । लिकटि त्रिया को पाइकै परत चैन पर मैन ॥ ३१६ ॥ ॥ स्वैया ॥ कोमल कंज से फूल रहे ब्रिग मोर को पंख सिर ऊपर सोहै । है बरनी सरसी भवटे घन आनन पै ससि कोटक को है । मित्र की बात कहा कहियै जिह को पिख कै रिप को मन मोहै । मानहु लै सिव के रिप आप बयो बिधना रस याहि निचोहै ॥ ३१७ ॥ ग्वार के हाथ पै हाथ धरै हरि स्याम कहै तरु के तर ठाढे । पाट को पाट धरे पियरो उर देख जिसै अति आनंद बाढे । ता छबि की अति ही उपमा कबि जिउं चुनली तिसको चुन काढे । मानहु पावस की रुत मै चपला चमकी घन सावन गाढे ॥ ३१८ ॥ ॥ स्वैया ॥ लोचन कान्ह निहार त्रिया ब्रिज रूप कै मान महा मत हुई । छोड गई तन मै ग्रिह की सुध यो उडगी जिमु पउन सौ रूई । स्याम कहै तिनको बिरहागनि यौ भरकी जिमु तेल

सुन्दर अंग हैं और वे गिनती में इतनी हैं कि ब्रह्मा भी गणना नहीं कर सकता । वे अपने घरों से ऐसे निकली हैं जैसे नागिनें मंत्र के वशीभूत होकर अपने घरों से निकल पड़ती हैं ॥ ३१५ ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण के मुख को देखकर सबको सुख मिला और स्त्रियों को सन्निकट देखकर उस सुख में कामदेव भी मिश्रित हो गए ॥ ३१६ ॥ ॥ सवैया ॥ आँखें कोमल कमल के फूल के समान हैं और सिर पर मोरपंख शोभायमान है। बरौनियाँ और भौंहें मुख की शोभा करोड़ों चन्द्रों के समान बढ़ा रही हैं। इस मित्र कृष्ण की क्या बात कहें, इसको देखकर तो शत्रु भी मोहित हो जाता है । यह तो ऐसा लग रहा है मानो कामदेव ने स्वयं सारा रस निचोड़कर कृष्ण के सामने प्रस्तुत किया हो ॥ ३१७ ॥ ग्वालों के हाथों पर हाथ रखे कृष्ण पेड़ के नीचे खड़े हैं । पीला वस्त्र उन्होंने धारण कर रखा है जिसे देखकर मन में आनन्द की वृद्धि हो रही है । इस छवि की उपमा कवि ने इस प्रकार चुनी है कि यह दृश्य ऐसा लग रहा है मानो काले बादलों में बिजली चमक रही हो ॥ ३१८ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण के नेत्रों को देखकर ब्रजस्त्रियाँ उसके रूप में मस्त हो गईं । उनके हृदयों से घरों की याद ऐसे उड़ गई जैसे पवन से रूई उड़ती है । उनमें बिरहाग्नि ऐसे भड़क उठी जैसे तेल डालने से ज्वाला भड़कती है । उनकी वही दशा हो गयी जो चुम्बक को देखकर लोहे का हो जाती है अर्थात् लोहे की सूई

सो धूई । जिउँ टुकरा पिख चुंमक डोलत बीच मनो जल लोह की सूई ॥ ३१९ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह को रूप निहार त्रिया दिज प्रेम बढ्यो दुख दूर भए है । भीखम मात को ज्यों परसे छिन मै सभ पाप बिलाइ गए है । आनन देखिके स्याम घनो चित बीच बस्यो द्रिग मूंद लए है । जिउँ धनवान मनो धन को तर अंदर धाम किवार दए है ॥ ३२० ॥ ॥ स्वैया ॥ सुद्ध भई जब ही तन (मू०ग्रं०२९४) मै तब कान्ह कही हसिकै ग्रिह जावहु । बिप्पन बीच कहे रहियो दिन रैन सभै हमरे गुन गावहु । होइ न त्रास तुमै जम को हित कै हम सो जब ध्यान लगावहु । जो तुम बात करो इह ही तब ही सभ ही मुकताफलु पावहु ॥ ३२१ ॥ ॥ द्विजन त्रियो बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ पतनी बिज की इह बात कही हम संग न छाडत कान्ह तुमारो । संग फिरैं तुमरे दिन रैन चलै ब्रिज को ब्रिज जोऊ सिधारो । लाग रह्यो तुम सो हमरो मन जात नही मन धाम हमारो । पूरन जोग को पाइ जुगीसुर आनन ना धन बीच सँभारो ॥ ३२२ ॥ ॥ कान्ह बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ स्री भगवान तिनै पिख प्रेम

चुम्बक से मिलन के लिए अत्यन्त लालायित हो उठती है ॥ ३१९ ॥ ॥ सवैया ॥ विप्र-स्त्रियों का कृष्ण को देखकर वैसे ही दुःख दूर हो गया और उनका प्रेम और अधिक बढ़ चला जैसे माता के चरण स्पर्श कर भीष्म का दुःख दूर हो गया था । स्त्रियों ने कृष्ण का मुख देखकर उसे चित्त में बसा लिया है और अपनी आँखें उसी प्रकार बन्द कर ली हैं जैसे धनवान धन को सँभालकर तिजोरी में बन्द कर लेता है ॥ ३२० ॥ ॥ सवैया ॥,जब उन स्त्रियों की चेतना कुछ लौटी तो कृष्ण ने हँसकर उनसे कहा कि अब तुम अपने घर जाओ, विप्रों के पास रहो और दिन-रात मुझे स्मरण करो । जब तुम मेरा ध्यान करोगी तो तुम्हें यम का भय भी नहीं रहेगा और इस प्रकार करने पर ही तुम सब मुक्ति को प्राप्त करोगी ॥ ३२१ ॥ ॥ द्विजस्त्री उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ हम ब्राह्मणों की पत्नियाँ हैं, परन्तु, हे कृष्ण ! हम तुम्हारा साथ नहीं छोड़ेंगी, दिन-रात तुम्हारे साथ रहेंगी और यदि तुम व्रज को जाओगे तो तुम्हारे साथ हम सब व्रज चलेंगी । हमारा मन तुम्हारे में लीन हो गया है और घर जाने की इच्छा अब नहीं होती । जो पूर्ण रूप से योगी बन जाता है और घर-बार छोड़ देता है, वह पुनः घर, द्वार, धन-दौलत की सँभाल नहीं करता है ३२२ कृष्ण उवाच सवैया श्री भगवान ने प्रेम

कह्यो मुख ते तुम धाम सिधारो। आइ सभै पति आपन आपन कान्ह कथा कहि ताहि उधारो। पुत्र पउत्रन पतिन सो दुह कौ चरचा सभ ही दुखु टारो। गंध मलियागर स्याम को नाम लै रूखन को करि चंदन डारो॥ ३२३॥ मान लई पतनी दिज की सभ अंम्रित कान्ह कही बतिआ। जितनो हरि या उपदेस कर्यो तितनो नहि होत कछू मतिआ। चरचा जब आ उनसो इन की तबही उनकी भई या गतिआ। इन स्याह भए मुख यो उनकी मुख लाल भए वह जिउं रतिआ॥ ३२४॥ चरचा सुनि बित्त जु ब्रीअन सो मिलकै सभ ही पछतावन लागे। बेदन को हमको सभ कौ ध्रिग गोप गए मंग कै हम आगे। मान समुंद्र मै बूडे हुते हम चूक ग्यो अउसर तउ हम जागे। पै जिनकी इह है पतनी तिह ते फुनि है हमहूं बडभागे॥ ३२५॥ मान सभै द्विज आपन को ध्रिग फेरि करी मिलि कान्ह बडाई। लोकन के सभ के पति कान्ह हमै कहि बेदन बात सुनाई। सो न गए उनके हम पासि डरे जु मरे हम कउ न्रिप राई। सभि लख्यो तुम कउ भगवान कही हम सत्त कही न बनाई॥ ३२६॥

पूर्वक उनको देखकर घर जाने के लिए कहा और साथ ही यह भी कहा कि कृष्ण की कथा कहकर अपने-अपने पतियों का भी उद्धार करो। पुत्र, पौत्र और पतियों के दुःख इस चर्चा से दूर करो और चन्दन की गन्ध देनेवाला कृष्ण नाम ले लेकर अन्य वृक्षों को भी सुगन्धित कर डालो॥ ३२३॥ कृष्ण की अमृत-तुल्य बातों को सुनकर द्विजपत्नियाँ मान गयीं और जितना उपदेश कृष्ण ने उनको दिया उतना कोई यति भी उपदेश नहीं दे सकता। जब इन्होंने अपने पतियों से कृष्ण की चर्चा की तो स्थिति यह हो गयी कि द्विज पतियों के मुख काले पड़ गये और इन युवतियों के मुख प्रेम-रस में लाल हो उठे॥ ३२४॥ स्त्रियों से चर्चा सुन सभी ब्राह्मण पछताने लगे और कहने लगे कि हमको और हमारे वेद-ज्ञान को धिक्कार है, जो गोपगण हमसे माँगने के लिए आये और चले गये। हम अभिमान के समुद्र में डूबे रहे और अवसर चूक जाने पर जाग्रत हुए। अब तो हम मात्र इसलिए भाग्यशाली हैं कि कृष्ण के प्रेम में रँगी ये स्त्रियाँ हमारी पत्नियाँ हैं॥ ३२५॥ अपने-आपको धिक्कारते हुए ब्राह्मणों ने कृष्ण का गुणानुवाद किया और वे कहने लगे कि वेद भी हमें यह बताते हैं कि कृष्ण सारे लोकों के स्वामी हैं। हम तो इस डर के मारे उनके पास नहीं गए कि हमें राजा कंस मार डालेगा। परन्तु हे स्त्रियो ! तुम सबने उस परमात्मा

॥ कबित्तु ॥ पूतना सँघारी त्रिणाव्रत की बिदारी देह बैंत अघासुर हूँ की सिरो जाइ फारी है। सिला जाहि तारी बक हूँ की चोंच चीर डारी ऐसे भूप पारी जैसे आरी चीर डारी है। राम ह्वै कै दैतन की सैना जिन मारी अरु आपनो बभीछन को दीनी लंका सारी है। ऐसी भाँत बिजन की पतनी उधारी अवतार लै कै साध जैसे प्रिथमी उधारी है ॥३२७॥ (मू०ग्रं०२६५)
॥ स्वैया ॥ बिप्पन की त्रिय की सुनकै कबिराज कह्यो दिज अउर कहीजै। कान्ह कथा अति रोचन जीय बिचार कहो जिह ते फुन जीजै। तौ हस बात कही मुसकाइ पहलै न्रिप ताहि प्रनाम जु कीजै। तौ भगवान कथा अति रोचन दै चित दै हम से सुन लीजै ॥ ३२८ ॥ ॥ स्वैया ॥ सालन अउ अचानी बिरिआ जुज ताहरी अउर पुलाव घने। नुगदी अरु सेवकिआ बिरवे लडूआ अरु सूत भले जु बने। फुन खीर दही अरु दूध के साथ बरे बहु अउर न जात गने। इह खाइ चल्यो भगवान ग्रिहं कहु स्याम कबीसुर भाव भने ॥ ३२९ ॥
॥ स्वैया ॥ गावत गीत चले ग्रिह को गरुड़ाध्वज जीय मै आनद पैकै। सोभत स्याम के संगि हली घन स्याम अउ सेत चल्यो

को सत्यस्वरूप में पहचाना ॥ ३२६ ॥ ॥ कवित्त ॥ जिस कृष्ण ने पूतना का संहार किया, तृणावर्त के शरीर का नाश किया, अघासुर का सिर फोड़ा, राम के रूप में अहल्या का उद्धार किया और बकासुर की चोंच ऐसे चीर डाली जैसे आरी से चीरा जाता है। जिसने राम होकर दैत्यों की सेना का संहार करके स्वयं विभीषण को सम्पूर्ण लंका दान कर दी, उसी कृष्ण ने अवतार लेकर पृथ्वी का उद्धार करते हुए द्विजपत्नियों का उद्धार किया ॥ ३२७ ॥ ॥ सवैया ॥ विप्रों की स्त्रियों की बातें सुनकर ब्राह्मणों ने उन्हें और सुनाने को कहा। कृष्ण की कथा अतिरोचक है, इसे विचारकर फिर कहो, ताकि हम लोगों में प्राणों का संचार हो सके। वे स्त्रियाँ हँसकर कहने लगीं कि पहले उस सम्राट् (कृष्ण) को प्रणाम कीजिए और फिर भगवान श्रीकृष्ण की रोचक कथा हमसे सुनिए ॥ ३२८ ॥ ॥ सवैया ॥ विभिन्न प्रकार से भुना और पका हुआ मांस, पुलाव, बूँदी, सेवईं, बिउड़ा, लड्डू, खीर, दही, दूध इत्यादि भोज्य पदार्थ श्रीकृष्ण भगवान खाकर अपने घर की तरफ़ चल दिये ॥ ३२९ ॥ ॥ सवैया ॥ गीत गाते हुए और आनन्दित होते हुए श्रीकृष्ण घर को चले। उनके साथ हलधर बलराम) चले और श्वेत व श्याम की जोड़ी शोभायमान होने लगी

उन संकै काम्ह तब हसिक मुरली सु बजाइ उठ्यो अपने कर लैकै। ठाढ भई जमना सुनिकै धुनि पउन रह्यो सुनिकै उरझैकै ॥ ३३० ॥ ॥ सवैया ॥ रामकली अरु सोरठि सारंग मालसिरी अरु बाजत गउरी। जैतसिरी अरु गौड मलार बिलावल राग बसै सुभ ठउरी। मानस की कह है गनती सुन होत सुरी असुरी धुन बउरी। सो सुनिकै धुनि स्रउनन मै तरनी हरनी जिम आवत दउरी ॥ ३३१ ॥ ॥ कबित ॥ बाजत बसंत अरु भैरव हिंडोल राग बाजत है ललता कै साथ ह्वै धनासरी। मालवा कल्यान अरु मालकउस मारू राग बन मै बजावै कान मंगल निभासरी। सुरी अरु आसुरी अउ पंनगी जे हुती तहाँ धुन के सुनत पै न रही सुध जासरी। कहै इउ बासरी सु ऐसी बाजी बासुरी सु मेरे जाने यामै सभ राग को निवासरी ॥ ३३२ ॥ ॥ कबित ॥ करुनानिधान बेद कहत बखान याकी बीच तीन लोक फैल रही है सु बासुरी। देवन की कन्या ताकी सुनि धुनि स्रउनन मै धाई धाई आवैं तजिकै सुरग बासुरी। ह्वै कर प्रसिंन्य रूप राग को निहार कह्यो रच्यो है बिधाता इह रागन को बासुरी। रीझे सभ गन

तभी मुस्कुराकर कृष्ण ने अपने हाथ में लेकर मुरली को बजाना शुरू कर दिया और उसकी ध्वनि सुन यमुना का पानी भी रुक गया तथा चलता हुआ पवन भी उलझन में पड़ गया ॥ ३३० ॥ ॥ सवैया ॥ रामकली, सोरठ, सारंग, मालश्री, गौड़ी, जैतश्री, गौड़, मल्हार, बिलावल आदि राग मुरली पर बजने लगे। मनुष्य की तो बात छोड़ो, अप्सराएँ एवं राक्षसियाँ भी उस ध्वनि को सुनकर बावरी हो गयीं। मुरली की ध्वनि को सुनकर युवतियाँ इस प्रकार भागी चली आ रही हैं, जैसे हिरणियाँ भागी चली आ रही हों ॥ ३३१ ॥ ॥ कबित्त ॥ मुरली पर बसन्त, भैरव, हिंडोल, ललित, धनासरी, मालवा, कल्याण, मलकौस, मारू आदि राग कृष्ण वातावरण को मंगलमय बनाते हुए वन में बजा रहे हैं। मान को सुनकर सुर-असुर और नागकन्याएँ अपने शरीर की सुधि भूल रही हैं। वे सब ऐसे कह रही हैं कि बाँसुरी ऐसे बज रही है मानो सारे और राग-रागिनियों का ही निवास हो ॥ ३३२ ॥ ॥ कबित्त ॥ जिसकी वेद भी व्याख्या करते हैं, उस करुणानिधान की बाँसुरी की ध्वनि तीनों लोकों में फैल रही है। देव-कन्याएँ भी उसकी आवाज को सुनकर स्वर्ग के आवास को छोड़ भागी चली आ रही हैं तथा कह रही हैं कि विधाता ने इन रागों को स्वयं बाँसुरी

उडगन भे मगन जब बन उपबन मै बजाई कान बासुरी ॥३३३॥
॥ सवैया ॥ कान बजावत है मुरली अति आनंद कै मन डेरन आए। ताल बजावत कूदत आवत गोप सभो मिल मंगल गाए। आपन ह्वै (मू०ग्रं०२६६) धनठी भगवान तिनो पहि ते बहु नाच नचाए। रैन परी तब आपन आपन सोइ रहै ग्रिह आनंद पाए॥ ३३४ ॥

॥ इति स्री दसम सिकंध बचित्र नाटके ग्रंथे क्रिशनावतारे बिपन की त्रीयन को चित हरि भोजन लेइ उधार करबो बरननं ॥

अथ गोवरधन गिरि कर पर धारबो ॥

॥ दोहरा ॥ इसी भांत सो क्रिशन जी कीने दिवस बितीत। हरि पूजा को दिनु अयो गोप बिचारी चीत ॥३३५॥
॥ सवैया ॥ आयो है इंद्र को पूजा को द्योस सभो मिलि गोपन बात उचारी। भोजन भांत अनेकन कीजि पंचाम्रित को करो जाइ तयारी। नंद कह्यो जब गोपन सो बिधि अउर चिती मन बीच मुरारी। को बपुरा मघवा हमरी सम पूजन जात जहां

के लिए रचा है। सभी गण और तारागण प्रसन्न हो उठे हैं, जब कृष्ण ने वनों-उपवनों में बाँसुरी की तान सुनाई॥ ३३३॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण अति आनन्दित होकर अपने घर पर आकर बाँसुरी बजाते हैं और सभी गोप ताल बजाते हुए, कूदते हुए तथा मंगलगान गाते आ जाते हैं। स्वयं भगवान उनको प्रेरणा देते हैं और विभिन्न प्रकार से उनसे नृत्य करवाते हैं। रात्रि होने पर तब सभी आनन्दित हो अपने-अपने घर में सो जाते हैं॥ ३३४॥

॥ श्री दसम स्कन्ध बचित्र नाटक ग्रंथ के कृष्णावतार में विप्रों की स्त्रियों का चित्त-हरण कर भोजन लेने और उद्धार करने का वर्णन समाप्त ॥

गोवर्धन पर्वत को हाथ पर उठाना

॥ दोहा ॥ इस प्रकार कृष्ण ने बहुत समय बिताया। इन्द्र की पूजा का दिन आया तो गोपों ने मिलकर विचार-विमर्श किया॥ ३३५॥
॥ सवैया ॥ सभी गोपों ने कहा कि इन्द्र की पूजा का दिन आ गया है। हमें अनेक प्रकार के भोजन तथा पंचामृत आदि की तैयारी करनी चाहिए। जब नन्द ने गोपों से यह सब कहा तो कृष्ण ने मन में और ही विचार किया कि यह विचारा इन्द्र कौन है जिसकी हमारे समान पूजा करने व्रज

बिज नारी ।। ३३६ ।। ।। कबितु ।। इह बिधि बोल्यो कान किरपा निधान तात काहे के नमित्त तै समिग्री बनाई है। कह्यो ऐसे नंद जो त्रिलोकीपति माखिअत ताही को बनाई हरि हरि कै सुनाई है। काहे के नमित्त कह्यो बारख त्रिनन काज गऊअन को रच्छ को करी अउ होत आई है। कह्यो भगवान ए तो लोग है अजान बिज ईशर ते होत नही मघवा ते गाई है ।। ३३७ ।। ।। कान्ह बाच ।। ।। सवैया ।। है नही मेघु सुरप्पति हाथ सु तात सुनो अरु लोक सबै रे। भंजन अउ अन भै भगवान सु दैत सभै जन को अब लै रे। किउ मघवा तुम पूजन जात करो तुम सेव हितं चित कै रे। ध्यान धरो सब ही मिलकै सभ बातन को तुम को फल दै रे ।। ३३८ ।। बासव जग्यन कै बसि मेघ किधो ब्रहमा इह बात उचारै। लोगन के प्रतिपारन को हरि सूरज मै हुइकै जल डारै। कउतक देखत जीवन को पिख कउतक ह्वै शिव ताहि संघारै। है वह एक किधो सरता सम बाहन के सम बाह बिथारै ।। ३३९ ।। पाथर पै जल पै नग पै तर पै धर पै अर अउर नरी है। सेवन

की नारियाँ जा रही हैं ।। ३३६ ।। ।। कवित्त ।। कृपा के समुद्र कृष्ण ने कहा कि हे पिताजी ! ये सारी सामग्री किसके लिए बनाई गई है ? नन्द ने कृष्ण को कहा कि जो त्रिलोकों का पति है, उसी इन्द्र के निमित्त यह सारी सामग्री बनायी गयी है और ऐसा हम वर्षा और घास के लिए करते हैं, जिससे हमेशा से ही गौवों की रक्षा होती चली आई है। श्रीकृष्ण ने कहा कि ये लोग अनजान हैं, जो यह नहीं जानते कि यदि ब्रज के स्वामी के द्वारा सुरक्षा नहीं होगी तो इन्द्र से कैसे हो पायेगी ।। ३३७ ।। ।। कृष्ण उवाच ।। ।। सवैया ।। हे पिता तथा अन्य सभी लोगो ! सुन लो कि बादल इन्द्र के हाथ में नहीं है। केवल एक भगवान ही, जो कि सदैव अभय है, सबको देता-लेता है। तुम लोग क्यों इतने प्रेम से इन्द्र की पूजा करने जा रहे हो। तुम सब मिलकर ईश्वर का स्मरण करो, वह तुम्हें इसका फल देगा ।। ३३८ ।। इन्द्र यज्ञों के वश में है, ब्रह्मा ने भी ऐसा कहा है। लोगों का पोषण करने के लिए भगवान सूर्य के माध्यम से जल बरसाता है। वह स्वयं जीवों की लीला देखता है और इसी लीला के अन्तर्गत शिव जीवों का संहार करते हैं। वह परमतत्त्व एक नदी के समान है और सब विभिन्न प्रकार की छोटी-छोटी नदियाँ उसी में से निकलती हैं । ३३९ पत्थर मे जल प पर्वत मे वृक्ष मे धरती मे

पै अरु दैतन पै कबि स्याम कहै अउ मुरार हरी है। पछ्छन पैं म्रिगराजन पैं म्रिग के गन पैं फुन होत खरी है। भेद कह्यो इह बात सभै इनहू किह को कहा पूज करी है॥ ३४०॥ तब ही हसिकै हरि बात कही नंद पै हमरी बिनती सुनि लइयै। पूजहु बिप्पन को मुख (मू०ग्रं०२८७) गउअन पूजन जा गिर है तह जइयै। गउअन को पय पीजत है गिर के चढिए मन आनंद पइयै। दान दए तिनके जस ह्याँ परलोक गए जु दयो सोऊ खइयै॥ ३४१॥ ॥ स्वैया॥ तब ही भगवान कही पित सो इक बात सुनो तु कही मम तोसो। पूजहु जाइ सभै गिर को तुम इंद्र करै कुप क्या फुन तोसो। मोसो सुपूत भयो तुमरे ग्रिह मार डरो मघवा संग भोसो। रहसि कही पित पाथर की तजहै इह जा हमरी मन मोसो॥ ३४२॥ तात को बात जु नंद सुनी सुभ बात भली सिर ऊपर बाधी। बाको की कै मुरवी तन कै धन तीछन मत्त महा सर साधी। स्रउनन मै सुनत्यो इह बात कबुद्ध गो छूट चिरी जिम फाधी। मोहि को बारद ह्वै करि ग्यान निवार दई उमडी जन आंधी॥ ३४३॥ नंद बुलाइकै गोप लए हरि आइस मान सिर ऊपर लीआ।

मनुष्यों में, देवताओं में, दैत्यों में वह केवल एक मुरारि हरि ही निवास करता है। पक्षियों में, मृगों में, सिंहों में वही सत्यस्वरूप में विराजमान है। मैं रहस्य की बात आप सबसे कहता हूँ कि इन सबकी अलग-अलग पूजा करने की बजाय उस एक परमात्मा की पूजा करो॥ ३४०॥ कृष्ण ने हँसकर नंद से कहा कि आप मेरा एक निवेदन सुन लीजिए। आप ब्राह्मणों, गायों और पर्वत की पूजा करो, क्योंकि गायों का दूध हम पीते हैं और पर्वत पर जाकर हमें आनन्द मिलता है। इनको दान देने से यहाँ यश मिलता है और परलोक में भी सुख मिलता है॥ ३४१॥ ॥ सवैया॥ तब श्रीकृष्ण ने पिता से यह भी कहा कि आप जाकर पर्वत की पूजा करो, इन्द्र नाराज नहीं होगा। मेरे जैसा सुपुत्र आपके घर में है, मैं इन्द्र को मार डालूँगा। हे पिता! मैं रहस्य की बात कहता हूँ कि पर्वत की पूजा करो और इन्द्र की पूजा का त्याग करो॥ ३४२॥ पुत्र की बात जब नन्द ने सुनी तो इस बात को पल्ले बाँध लिया। तीक्ष्ण बुद्धि के तीर ने उनके मन को बेध दिया। कानों से कृष्ण की बातें सुनते ही कुबुद्धि ऐसे छूट गयी जैसे पकड़ी हुई चिड़िया छूट जाती है मोह के बादलों को ज्ञान की आँधी ने उड़ा दिया।३४३। कृष्ण की बात को मान

पूजहु गउअन अउ मुख बिप्पन मबुअन सो इह आइस कीआ। फेर कह्यो हम तउ कह्यो तोसो ग्यान भलो मन मै समझीआ। चित्त दयो सभनो हम सो तिहु लोगन को पति चित्त न कीआ ॥ ३४४ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोप चले उठकै ग्रिह को ब्रिज के पति को फुनि आइस पाई। अच्छत धूप पंचांम्रित दीपक पूजन को सभ भांत बनाई। लै कुरबे अपनै सभ संग चले गिर को सभ ढोल बजाई। नंद चल्यो जसुधाऊ चली भगवान चले मुसली संग भाई ॥ ३४५ ॥ नंद चल्यो कुरबे संग लै करि तीर जबै गिरके चलि आयो। गउअन घास चरा हित सो बहु बिप्पन खीर अहार खवायो। आप परोसन लाग जदुप्पति गोप सभै मन मै सुख पायो। बार बड़ाइ लए रथ पै चलकै इह कउतक अउर बनायो ॥ ३४६ ॥ ॥ स्वैया ॥ कउतक एक बिचार जदुप्पति सूरत एक धरी गिरबा की। स्रिंग बनाइ धरी नग कै कबि स्याम कहै जह गम्य न का की। भोजन खात प्रतच्छ कियो वह बात लखी न परी कछु या की। कउतक एक लखै भगवान अउ जो पिखवै अटकै मत ता की ॥ ३४७ ॥

कर नन्द ने सभी गोपों को बुलाकर कहा कि ब्राह्मणों और गायों की पूजा करो। फिर उन्होंने कहा कि मैं आप लोगों से इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि मैंने भलीभाँति इस बात को समझ लिया है। मैंने आज तक सब लोगों का तो ध्यान किया परन्तु त्रिलोकी के स्वामी परमात्मा का ध्यान नहीं किया ॥ ३४४ ॥ ॥ सवैया ॥ ब्रज के स्वामी नन्द की आज्ञा पाकर गोप चल पड़े और अक्षत, धूप, पंचामृत, दीपक आदि लेकर पूजन का उपक्रम करने लगे। अपने परिवार के लोगों को संग लेकर सब ढोल बजाते हुए पर्वत की ओर चले। नन्द भी, यशोदा, कृष्ण और बलराम भी चल पड़े ॥ ३४५ ॥ नन्द परिवार को लेकर चल पड़े और जब पर्वत के समीप आए तो उन्होंने गायों को आहार दिया और विप्रों को खीर आदि खिलायी। यदुपति स्वयं परोसने लगे और सभी गोप प्रसन्न हो गए। कृष्ण ने सभी बालकों को रथ पर चढ़ा लिया और एक नयी लीला प्रारम्भ कर दी ॥ ३४६ ॥ ॥ सवैया ॥ लीला को मन में रखते हुए श्रीकृष्ण ने एक बालक की शक्ल पर्वत की बना दी। बालक के सींग बना दिए और उसे ऊँचे पर्वत का प्रतीक बना दिया, जहाँ किसी की पहुँच नहीं हो सकती। अब वह गिरि रूपी बालक प्रत्यक्ष रूप से भोजन खाने लगा। भगवान स्वयं यह लीला देखने लगे और जो भी इस दृश्य

॥ स्वैया ॥ तौ भगवान तबै हसिकै सभ अंम्रित बात तिनै संग भाखी । भोजन खात दयो हमरो गिर लोक सभै पिखवो तुम आखी । होइ रहे बिसमै सभ गोप सुनी हरिके मुख ते जब साखी । (मू॰ग्रं॰२९८) ग्वारन जनावर की लई बात ह्वै ग्वारन कान्ह गई जब चाखी ॥ ३४८ ॥ अंजल जोर सभै ब्रिज के जन कोटि प्रनाम करै हरि आगे । भूल गई सभ को मघवा सुध कान्ह ही के रस भीतर पागे । सोवत थे जु परे बिखमै सभ ध्यान लगे हरि के जन जागे । अउर गई सुध भूल सभो इक कान्ह ही के रस मै अनुरागे ॥ ३४९ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह कही सभ को हसिकै मिलि धाम चले जोऊ है हरिता अघ । नंद चल्यो बलभद्र चल्यो जसुधाउ चली नंदलाल बिना नघ । पूज जबै इनहू न करी तब ही कुपिओ इन पै धरता ब्रघ । बेदन मद्ध कही इन भीम ते मारि डर्यो छल सो पतवा मघ ॥ ३५० ॥ ॥ स्वैया ॥ भू सुत सो लरकै जिनहू नव सात छुडाइ लई बरभंङा । आदि सतं जुग के मुर के गढ़ तोर दए सभ जिउँ कच बंङा । है करता सभ ही जग को अरु देवनहार इही जुग

को देख रहा था, उसकी मति इसमें ही अटक जा रही है ॥ ३४७ ॥ ॥ सवैया ॥ तब भगवान ने हँसकर यह कहा कि सभी देखो, पर्वत हमारा दिया हुआ भोजन खा रहा है। सभी गोप कृष्ण के मुँह से यह सुनकर आश्चर्य में पड़ गये। ग्वालिनों को भी जब कृष्ण की इस लीला का पता लगा तो उन्हें भी ज्ञान हो गया ॥ ३४८ ॥ हाथ जोड़कर सभी बार-बार कृष्ण को प्रणाम करने लगे। सबको इन्द्र भूल गया और सभी कृष्ण के प्रेम में रँग गये। जो विषयों-विकारों में सोये हुए थे, वे सभी हरि के रस में ध्यान लगाकर जग उठे। उनको बाक़ी सब सुधि भूल गई और वे कृष्ण में मस्त हो उठे ॥ ३४९ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण, जो कि सबके पापों का हरण करनेवाले हैं, ने मुस्कुराकर सबसे कहा कि सभी घर चलो। यशोदा, नन्द, कृष्ण, बलभद्र सभी पाप-विहीन होकर घर चल पड़े। जब इन्होंने पूजा नहीं की तो वज्र को धारण करनेवाला इन्द्र क्रोधित हो उठा। वेदों में इस इन्द्र की शक्ति और छल का विस्तृत वर्णन किया गया है ॥ ३५० ॥ ॥ सवैया ॥ जिस (कृष्ण) ने भूमासुर से लड़कर सोलह हज़ार स्त्रियों को मुक्ति कराई। सत्ययुग में भी जिसने (नरसिंह के रूप में हिरण्यकशिपु के) किले को उसी भाँति तोड़ डाला था जिस प्रकार काँच की चूड़ियाँ तोड़ दी जाती हैं। यही सारे विश्व का कर्ता और पोषक

सभ पाइन आपन जीव सहाइक काजै ॥ ३५५ ॥ मेघन को डरके हरि सामुहि गोप पुकारत है दुख मांझा । रच्छ करो हमरी (मू०ग्रं०२६६) करुनानिधि ब्रिस्ट भई दिन अउ सत सांझा । एक बची न गऊ पुरकी मरगी दुधरी बछरे अरु बांझा । अग्रज स्याम के रोवत इउ जिम हीर बिना पिखए पति रांझा ॥३५६॥ ॥ कबितु ॥ काली नाथ केसी रिप कउलनैन कउलनाभ कमला के पति हम बिनती सुनि लीजियै । कामरूप कंस के प्रहारी काजकारी प्रभ कामनी के काम के निवारी काम कीजियै । कउलासन पत कुंभ कान्ह के मरइया कालनेम के बधइया ऐसी कीजै जाते जीजियै । कारमा हरन काज साधन करन तुम क्रिपानिध वासन अरज सुनि लीजियै ॥३५७॥ ॥ स्वैया ॥ बूंदन तीरन सी सम ही कुप कै ब्रिज के पुर पै जब पइया । सोऊ सही न गई किह पै सभ धामन बेध धरा लग गइया । सो बिध गोपन नैनन सो बिनती हरिके अगुआ पहुचइया । कोप करयो

लिए श्रीकृष्ण के पैरों पर आ पड़े ॥ ३५५ ॥ मेघों से डरकर सभी गोप कृष्ण के सम्मुख दुःख से पुकार लगाते हुए कह रहे हैं कि हे करुणानिधान ! सात दिन और रात से वर्षा हो रही है, हमारी रक्षा कीजिए । नगर की दुधारू गाय, बछड़े और बांझ गाय भी नहीं बचीं । सभी मर गयी हैं । वे सभी श्याम के सम्मुख इस प्रकार रोने लगे जैसे अपनी प्रेमिका हीर के बिना उसका प्रेमी रांझा रोता है (हीर और रांझा पंजाब के दो प्रसिद्ध प्रेमी युगल हो गुजरे हैं, जिन्हें वियोग का बहुत कष्ट सहना पड़ा था) ॥ ३५६ ॥ ॥ कवित्त ॥ हे कालिय नाग और केशी दैत्य के शत्रु ! कमलनयन, कमलनाभि, कमलापति ! हमारी प्रार्थना सुनिए । तुम कामदेव के समान रूपवान, कंस का नाश करनेवाले, कार्य करनेवाले प्रभु और कामिनियों के काम की तृप्ति करनेवाले हो । आप हमारा भी कार्य कीजिए । आप लक्ष्मीपति, कुम्भासुर को मारनेवाले तथा कालनेमि दैत्य का वध करनेवाले हो । आप हमारे लिए ऐसा कार्य कीजिए, जिनसे हम जीवित रह सकें । हे प्रभु ! आप कामनाओं को समाप्त करनेवाले, सर्व कार्यों के साधक हो । कृपा कर हमारी प्रार्थना सुनिए ॥ ३५७ ॥ ॥ सवैया ॥ तीरों के समान कुपित होकर जब बूंदें व्रज की धरती पर पड़ने लगीं तो वे किसी से सहन न हो सकीं, क्योंकि वे घरों को छेदकर धरती तक पहुँच रही थीं । गोपों ने यह अपनी आँखों से देखा और कृष्ण के पास यह पहुँचाया कि हे कृष्ण ! इन्द्र हम पर क्रुद्ध हो गया

हम पै मघवा हमरी तुम रच्छ करो उठि सइया ॥ ३५८ ॥
॥ सवैया ॥ ईमत है न कहूँ अरणोदिति घेरि बसो दिस ते घन आवैं। कोप भरे जनु केहरि गाजत दामन दाँत निकास डरावैं। गोपन जाइ करी बिनती हरिपै सुनियै हरि जो तुम भावैं। सिंघ के देखत सिंघन स्यार कहै कुप कै जमलोक पठावैं ॥३५९॥
॥ सवैया ॥ कोप भरे हमरे पुर मै बहु मेघन के इह ठाट ठटे। जिह को गज बाहन लोक कहै जिन पब्बन के पर कोप कटे। तुम हो करता सभ ही जग के तुम ही सिर रावन काट सटे। तुम क्यों फुनि देखित गोपन को घनघोर डरावत कोप लटे ॥ ३६० ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह बडो मुन लोक तुमै फुन जाप सु जाप करै तुह आठो। और हुतासन भूम धराधर थापि कर्यो तुमही प्रभ काठो। बेद दए करकै तुमही जग मै छिन ग्यान भयो जब घाठो। सिंध मथ्यो तुमही बिप ह्वैकर दीन सुरासुर अंम्रित बाँटो ॥ ३६१ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपन फेर कही मुख ते बिन तैं हमरो कोऊ अउर न आडा। मेघन मार बिथार डरो कुपि बालक मूरत जिउँ तुम गाडा। मेघन को

है, आप हमारी रक्षा कीजिए ॥ ३५८ ॥ ॥ सवैया ॥ दसों दिशाओं से बादल घिरकर आ रहे हैं और सूर्य कहीं दिखाई नहीं दे रहा है। बादल शेर के समान गरज रहे हैं और बिजली दाँत दिखाकर डरा रही है। गोपों ने जाकर कृष्ण से प्रार्थना की कि हे कृष्ण, जो तुम्हें अच्छा लगे वह करो, क्योंकि शेर को शेर का मुकाबला करना चाहिए और कुपित होकर गीदड़ों को यमलोक नहीं पहुँचाना चाहिए ॥ ३५९ ॥ ॥ सवैया ॥ हमारे नगर में क्रोधित होकर मेघों के झुंड टूट पड़े हैं। ये मेघ उस इन्द्र के भेजे हुए हैं जो ऐरावत हाथी पर सवारी करता है और जिसने पर्वतों के पंख काट डाले हैं, परन्तु तुम तो सारे जगत के कर्ता हो और तुम्हीं ने रावण के सिरों को काटा था। क्रोध की ज्वालाएँ सबको भयभीत कर रही हैं, परन्तु गोपों के लिए तुमसे बढ़कर अन्य कौन है ॥ ३६० ॥ ॥ सवैया ॥ हे कृष्ण ! तुम बड़े हो और लोग आठों प्रहर तुम्हारा जाप करते हैं। तुम्हीं ने सम्राटों, अग्नि, भूमि, पर्वत एवं वृक्षों आदि की स्थापना की है। जब-जब संसार में ज्ञान का विनाश हुआ है, तो तुम्हीं ने वेद-ज्ञान लोगों को दिया है। तुम्हीं ने समुद्र का मंथन किया और तुम्हीं ने मोहिनी रूप धारण कर सुरों और असुरों में अमृत बाँटा ॥ ३६१ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपों ने पुन कहा कि हे कृष्ण तुम्हारे सिवा हमारा कोई साधन नहीं है

पिख रूप भयानक बहुतु डरै फुन जीउ असाडा। कान्ह अबै पुसतीन ह्वै आप उतार डरो सभ गोपन जाडा ॥३६२॥ ॥ स्वैया ॥ आइस पाइ पुरंदर को घनघोर घटा चहूं ओर ते आवै। (मू०ग्रं०३००) कै कर क्रुद्ध किधो मन मद्धि ब्रिज ऊपर आनकै बहु बल पावै। अउ अति ही चपला चमकै बहु बूंदन तीरन सी बरखावै। गोप कहे हम ते भई चूक सु याते हमै गरजै औ डरावै ॥ ३६३ ॥ ॥ सवैया ॥ आज भयो उतपात बडो डर मान सभै हरि पास पुकारे। कोप कर्‌यो हम पै मघवा तिह ते ब्रिज पै बरखे घन भारे। भच्छि भख्यो इह को तुमहू तिह ते ब्रिज के जन कोप सँघारे। रच्छक हो सभ ही जग के तुम रच्छ करो हमरी रखवारे ॥ ३६४ ॥ होइ क्रिपाल अबै भगवान क्रिपा करि कै इन मो तुम काढो। कोप कर्‌यो हम पै मघवा दिन सात इहा बरख्यो घन गाढो। भ्रात बलो इनि रच्छन को तब ही करि कोप भयो उठ ठाढो। जीव गयो घट मेघन को सभ गोपन के मन आनंद बाढो ॥ ३६५ ॥

मेघों की मार से हम लोग वैसे ही डर रहे हैं, जैसे बालक भयानक मूर्ति देखकर डर उठता है। हमारा हृदय मेघों के भयानक रूप को देखकर बहुत भयभीत हो रहा है। हे कृष्ण! आप तैयार होकर गोपों के कष्ट को दूर कर दीजिए ॥ ३६२ ॥ ॥ सवैया ॥ इन्द्र की आज्ञा पाकर चारों दिशाओं से घनघोर दिशाएँ घिरकर आ रही हैं और मन में क्रोधित होकर ब्रज के ऊपर पहुँचकर और ज़ोर से शक्ति-प्रदर्शन कर रही हैं। विद्युत् चमक रही है और पानी की बूँदें तीरों की तरह बरस रही हैं। गोप कहने लगे कि हम लोगों से (पूजा न करने की) भूल हो गयी है, इसीलिए बादल गरज रहे हैं ॥ ३६३ ॥ ॥ सवैया ॥ आज बहुत बड़ा उपद्रव हो गया है, इसलिए सभी भयभीत होकर कृष्ण को पुकारकर कहने लगे कि इन्द्र हम पर कुपित हो गया है, इसलिए ब्रज पर घनघोर वर्षा हो रही है। इन्द्र की पूजा की सामग्री आपने खायी है, इसलिए ब्रज के लोगों का कुपित होकर संहार कर रहा है। हे प्रभु! तुम सबके रखवाले हो, हमारी भी रक्षा करो ॥ ३६४ ॥ हे भगवान! कृपा करके इन बादलों से हमारा उद्धार कीजिए। इन्द्र हम पर क्रोधित हो गया है और सात दिन से यहाँ घनघोर वर्षा हो रही है। तब क्रुद्ध होकर बलराम इनकी रक्षा करने के लिए उठ खड़े हुए और इन्हें उठते हुए देखकर एक ओर मेघों के प्राण सूखने लगे तथा दूसरी ओर गोपों के मन में आनन्द बढ़ने लगा ३६५

॥ सवैया ॥ गोपन की सुनिकै बिनती हरि गोप सभै अपने कर
वाणे । मेघन के बधबे कहु कान्ह चल्यो उठिकै करता जोऊ ताणे ।
ता छबि के जस उच्च महाँ कबि ने अपने मन मैं पहचाणे ।
मृग काल स्यो जिम सिंघ क्रिगी विच्च आइ है जान किधौ मुहि
डाणे ॥ ३६६ ॥ ॥ सवैया ॥ मेघन के बध काज चल्यो भगवान
कियो रस भीतर रत्ता । राम भयो जुग तीसर मधि मर्यो
तैं रावन कै रन अत्ता । अउध के बीच बधू बरधे कहु कोप कै
सीतन से जिह सत्त । गोधन गोपन रछन काज तर्यो तिह
सो गज जिउँ मद मत्ता ॥ ३६७ ॥ ॥ सवैया ॥ करबे कहु रच्छ
गोपन की बर घूट लयो नग कोप हुथा । तनको न कर्यो
ल रंचक ताह कर्यो जु हुतो कर बीच जथा । न चली
बल की किछु गोपन पै कबि स्याम कहै गज जाहि रथा ।
खि न्याइ खिसाइ चल्यो ग्रिह पै इह बीच चली जग के सु
था ॥ ३६८ ॥ ॥ सवैया ॥ नंद को नंद अनंदी सुखकंद
पआर सुरिंद सबुद्धि बिसारद । आनन चंद प्रभा कहु मंद
है कबि स्याम जपै जिह नारद । ता गिर कोप उठाइ लयो

सवैया ॥ गोपों की प्रार्थना सुनकर कृष्ण ने सब गोपों को अपने हाथ के
रे से बुलाया । मेघों का वध करने के लिए शक्तिशाली श्रीकृष्ण
। इस छवि को अपने मन में पहचानते हुए कवि कहता है कि
कृष्ण ऐसे चले जैसे मृगों को देखकर मुँह फैलाकर दहाड़ता हुआ सिंह
ता है ॥ ३६६ ॥ ॥ सवैया ॥ क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण मेघों को नष्ट
ने के लिए चले । इन्होंने ही त्रेतायुग में राम बनकर रावण का नाश
या था । अवध में इन्होंने ही सीता-समेत सत्तापूर्वक राज्य किया था ।
श्रीकृष्ण मस्त हाथी की तरह आज गोपों और गायों की रक्षा करने
लिए चल पड़े ॥ ३६७ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपों की रक्षा करने के लिए
कृष्ण ने क्रोधित होकर पर्वत को उखाड़कर हाथ पर रख लिया । ऐसा
में उनका रंच मात्र भी बल नहीं लगा । इन्द्र की कोई भी शक्ति
पर न चल सकी और वह मुख नीचा किए हुए खिसियाकर अपने घर
ओर चल दिया । श्रीकृष्ण के प्रताप की कथा सारे जगत में फैल
॥ ३६८ ॥ ॥ सवैया ॥ नन्द का पुत्र श्रीकृष्ण सबको सुख देनेवाला,
का शत्रु, सद्बुद्धि तथा सर्वकलाओं में विशारद प्रभु का मुख चन्द्रमा
माम मन्द-मन्द प्रकाश देता रहता है और कवि श्याम का कथन है कि
भी उसी श्रीकृष्ण का स्मरण करते हैं, जो साधुओं के दुःख दारिद्र्य का

ओऊ साधन को हरता दुख दारद। मेघ परेउ पर्यो न कछू पछुताइ गए ग्रिह को उठ बारद ॥ ३६९ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह उपार लयो कर मो गिर एक परी नहि बूँद सु पानी। फेर कही हसिकै मुख ते हरि को मघवा जु भयो मुह सानी। (मू०ग्रं०३०१) मार डर्यो मुर मै मधिकैटभ मार्यो हमै मघवा पत मानी। गोपन मै भगवान कही सोऊ फैल परी जग बीच कहानी ॥ ३७० ॥ गोपन की करबे कहु रच्छ सतक्रित पै हरि जी जब कोपे। इउ गिरके तर भ्यो उठि ठाढि मनै पग कै पग के हरि रोपे। जिउँ जुग अंत मै अंतक ह्वै करि जीवन कै सभ के उर धोपे। जिउँ जन को मन होत है लोप तिसो बिध मेघ भए सभ लोपे ॥ ३७१ ॥ होइ सतक्रित ऊपर पसु को राख लई सभ गोप दफा। तिन मेघ बिडार दए छिन मै जिन दैत करै सभ एक गफा। करि कउतक पै रिपु टार दए बिनही धरए सर स्याम जफा। सभ गोपन की करबे कहु रच्छ सु सक्रन लीन लपेट

नाश करनेवाला है, उसी श्रीकृष्ण ने क्रोधित होकर पर्वत को उठा लिया और मेघों का प्रभाव नीचे लोगों पर कुछ भी न पड़ा और इस प्रकार पछताकर बादल वापस अपने घरों को लौट गये ॥ ३६९ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने पर्वत को उखाड़कर हाथ में ले लिया और पानी की एक भी बूंद धरती पर नहीं पड़ी। फिर कृष्ण ने हँसकर कहा कि ये इन्द्र कौन है जो मेरा मुकाबला करेगा। मैंने मधु-कैटभ का भी वध कर डाला था और यह इन्द्र मुझे ही मारने के लिए चला था। इस प्रकार गोपों के बीच जो भगवान ने वचन कहे वे कहानी बनकर सारे संसार में फैल गये ॥ ३७० ॥ गोपों की रक्षा करने के लिए जब कृष्ण इन्द्र पर कुपित हुए तब वह इस प्रकार गिरकर उठा जैसे किसी का पैर फिसल जाने से कोई गिरकर उठता है; अथवा युग के अन्त में सभी जीव-सृष्टि समाप्त होकर पुनः धीरे-धीरे नयी सृष्टि पैदा होती है; अथवा जैसे सामान्य आदमी का मन कभी नीचे गिरता है और कभी बहुत ऊँची उड़ानें लेता है, इसी प्रकार सभी मेघ लुप्त हो गए ॥ ३७१ ॥ इन्द्र को नीचा दिखाते हुए सभी गोपों और पशुओं को नष्ट होने से श्रीकृष्ण ने [illegible] लिया। जैसे कोई दैत्य एक ही बार में किसी को खा जाता है, उसी [illegible] क्षण भर में सभी मेघ नष्ट कर दिये गए। श्रीकृष्ण ने अपनी लीला [illegible] सभी शत्रुओं को खदेड़ दिया और सभी श्याम का आलिंगन करने लगे तथा

सफा ॥ ३७२ ॥ ॥ स्वैया ॥ जु लई सभ मेघ लपेट सभा अरु लीनो है पब्ब उपार जबै । इह रंचक सो इह है गरूओ गिर चित करी मन बीच सबै । इह दैतन को मरता करता सुख है दिबिया जिय दान अबै । इह को तुम ध्यान धरो सभ ही नहि ध्यान धरो तुम अउर कबै ॥ ३७३ ॥ ॥ स्वैया ॥ सभ मेघ गए घट के जब ही तब ही हरखे फुन गोप सभै । इह भांत लगे कहने मुख ते भगवान दयो हम दान अभै । मघवा जु करी कुर बउर हमू पर सो तिह को नही देर लभै । अब कान्ह प्रताप ते है घट बादर एक न दीसत बीच नभै ॥ ३७४ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोप कहै सभही मुख ते इह कान्ह बली बर है बल मै । जिन कूद किलै सत मोर मर्यो जिन जुद्ध संखासुर सो जल मै । इह है करता सब ही जग को अरु फैल रह्यो जल अउ थल मे । सोऊ आइ प्रतछ्छ भयो बिज मै ओऊ लोग जुतो रहै ओझल मै ॥ ३७५ ॥ मोर मर्यो जिन कूद किले सत सिध जरा जिह सैन मरी । नरकासुर जाहि कर्यो रकसो बिरथी गज को जिह रछ्छ करी । जिह

इस प्रकार गोपों की रक्षा करने के लिए इन्द्र ने अपनी माया को समेट लिया ॥ ३७२ ॥ ॥ सवैया ॥ जब मेघ चले गये और इन्होंने पर्वत को उखाड़ लिया, तो मन की चिन्ता का निवारण करते हुए वह पर्वत इन्हें अत्यन्त हलका-सा महसूस हुआ । श्रीकृष्ण दैत्यों को मारनेवाले, सुख को देने वाले और जीवनदान करनेवाले हैं । सबको अन्य सबका ध्यान छोड़ इनका ही ध्यान करना चाहिए ॥ ३७३ ॥ ॥ सवैया ॥ जब मेघ कम होकर चले गए, तब सभी गोप प्रसन्न हो उठे और कहने लगे कि भगवान ने हम सबको अभयदान दिया । इन्द्र ने क्रोधित होकर हम लोगों पर चढ़ाई की थी परन्तु वह अब दिखाई नहीं देता है और कृष्ण के प्रताप से नभ में एक भी बादल नहीं है ॥ ३७४ ॥ ॥ सवैया ॥ सभी गोप कहने लगे कि कृष्ण अत्यन्त बलशाली हैं । जिसने किले में कूद मुर और जल में शंखासुर का वध किया था, वह ही सारे जग का कर्ता है और सारे जल-स्थल में व्याप्त है । जो पहले अप्रत्यक्ष रूप से अनुभव होता था, वही अब प्रत्यक्ष होकर ब्रज में आ गया है ॥ ३७५ ॥ जिसने मुर नामक दैत्य को क़िले में कूदकर मारा और जिसने जरासंध की सेना का नाश किया, जिसने नरकासुर को नष्ट किया और गज की ग्राह से रक्षा की, जिसने द्रौपदी की लज्जा रखी और जिसके चरण-स्पर्श से शिला बनी

राख लई पति पै द्रुपती सिल जा लग जिउ पग पाग परी । अति कोपत मेघन अउ मघवा इह राख लई नंदलाल धरी ॥ ३७६ ॥ ॥ स्वैया ॥ मघवा जिह फेरि दई प्रतना जिह दैत मरै इह कान्ह बली । जिहको जन नाम जपै मन मै जिह को फुन भ्रात है बीर हली । जिह ते सभ गोपन की बिपता हरि के कुप ते छिन माहि टली । तिह को लख कै उपमा भगवान करै (मू०ग्रं० ३०२) जिहकी सुत कउल कली ॥ ३७७ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह उपार लयो गरुओ गिर धाम खिसाइ गयो मघवा । सो उपज्यो ब्रिज भूम बिखै ओऊ तीसर जुग भयो रघुवा । अब कउतकि लोक दिखावन को जग मै फुन रूप धर्यो लघवा । धन ऐंच हनी छिन मै पुतना हरिनाम के लेत हरे अघवा ॥ ३७८ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह बली प्रगट्यो ब्रिज मै जिन गोपन के दुख काट सटे । सुख साधन के प्रगटे तब ही दुख दैतन के सुन नाम घटे । इह है करता सभ ही जग को बलि को अरु इंद्रहि लोक बटे । तिह नाम के लेत किधो मुख ते लट जात सभै तन दोख लटे ॥ ३७९ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह बली प्रगट्यो पुतना जिन

अहल्या का उद्धार हुआ, उस श्रीकृष्ण ने अत्यन्त कुपित हो रहे मेघों और इन्द्र से हमारी रक्षा कर ली ॥ ३७६ ॥ ॥ सवैया ॥ जिसने इन्द्र को लौटा दिया । पूतना तथा अन्य दैत्यों को मार दिया, वह श्रीकृष्ण है । वह श्रीकृष्ण ही है, जिसके नाम को मन में सभी स्मरण करते हैं और जिसका भाई वीर हलधर है । उसी कृष्ण के कारण गोपों की विपदा क्षण भर में समाप्त हो गयी और यह उसी भगवान की उपमा है जो मामूली-सी कलियों को बड़े-बड़े कमल के फूलों में बदल देता है अर्थात् जन सामान्य को बहुत ऊँचा उठा देता है ॥ ३७७ ॥ ॥ सवैया ॥ इधर कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठा लिया, उधर इन्द्र मन-ही-मन शर्मिन्दा हो कहने लगा कि जो तीसरे युग में राम था, वही अब व्रजभूमि में अवतरित हुआ और उसने जग को लीला दिखाने के लिए छोटा-सा मानव-रूप धारण किया है । उसी ने क्षण भर में पूतना को स्तन खींचकर मार डाला और क्षण भर में अघासुर नामक दैत्य का नाश कर दिया ॥ ३७८ ॥ ॥ सवैया ॥ महाबली कृष्ण व्रज में पैदा हुआ जिसने गोपों के सब दुःख दूर कर दिए । उसके प्रकट होते ही साधुजनों के सुख बढ़ गए और दैत्यों द्वारा दिये जा रहे दुःख कम हो गये । यही सारे जग का कर्ता है और राजा बलि तथा इन्द्र का गर्व दूर करनेवाला है इसका नाम लेने

मार डरी त्रिन कंस पठी । इन ही रिपु मार डर्यो सु त्रिनावत पै जन सो इह चित हठी । सभ जापु जपै इह को मन मै सभ गोप कहै इह अति हठी । अति ही प्रबला पुन मेघन की इनहू करि ही छिन माहि मठी ॥ ३८० ॥ ॥ सवैया ॥ गोप कहै इह साधन के दुख दूर करै मन माहि गडै । इह है बलवान बडो प्रगट्यो कोऊ को इह सो छिन आइ अडै । सभ लोक कहै पुन जापत या कबि स्याम कहै भगवान बडै । तिन को छलही छिन मै इह तो जिनके मन मै अरथा कु जडै ॥ ३८१ ॥ ॥ सवैया ॥ मेघ गए पछताइ घिरं कहु गोपन के मन आनंद बाढे । ह्वै इकठे सु चले ग्रिह को सभ आइ भए ग्रिह भीतर ठाढे । आइ लगे कहने त्रिय सो इनही छिन मै मघवा कुप काढे । सति लह्यो भगवान हमै इनही हमरे सभ ही दुख काढे ॥३८२॥ ॥ सवैया ॥ कोप भरे पत लोकहि के दल आ बरखे ठट साज घणे । भगवान जू ठाढ भयो करि लै गिर पै करि कै कुछहूँ न गणे । अस ता छबि के जस उच्च महा कबि स्याम किधो इह

से दुःख के समूह नष्ट हो जाते हैं ॥ ३७९ ॥ ॥ सवैया ॥ महाबली कृष्ण ने कंस द्वारा भेजी हुई पूतना को मार डाला । इसी ने तृणावर्त नामक शत्रु को मार डाला । सभी इसका स्मरण करो और गोप भी यह कहते हैं कि यह बहुत ही हठी है अर्थात् जिस काम को करने का निश्चय कर लेता है उसे पूरा करके छोड़ता है । पुनः इसी श्रीकृष्ण ने मेघों की शक्ति को ठंडा कर दिया ॥ ३८० ॥ ॥ सवैया ॥ गोप कहते हैं कि साधु जनों के दुःख दूर करने से यह सबके मन में स्थित हो गया है । यह महा बलशाली है और कोई ऐसा नहीं है, जो इससे टक्कर ले सकता हो । सब लोग उसी का जाप करते हैं तथा कवि श्याम का कथन है कि श्री भगवान सबसे बड़े हैं । जिसने ज़रा-सा भी मन से इनको देखा, वह अवश्य ही क्षण भर में इनकी शक्ति और रूप द्वारा छला गया ॥ ३८१ ॥ ॥ सवैया ॥ मेघ पश्चात्ताप करते हुए और गोप आनन्दित होते हुए अपने-अपने घरों को चले गए । सभी गोप इकट्ठे हो घर के भीतर आ खड़े हुए और स्त्रियों से कहने लगे कि इन्हीं श्रीकृष्ण ने क्षीण ही क्षण भर में इन्द्र को शोभा दिया । हम सत्य कह रहे हैं— इन श्री भगवान की कृपा से ही हम सबके दुःख नष्ट हुए ॥ ३८२ ॥ ॥ सवैया ॥ गोप पुनः कहने लगे कि क्रोधित इन्द्र के मेघदलों ने आकर घनघोर वर्षा की और श्री भगवान पर्वतों को हाथ पर उठाकर बिना किसी भय के खड़े हो गये इस छवि को कवि श्याम ने

भात भणे। जिमु बीर बडो कर सिप्पर लै कछु कै न गनै पुनि तीर घणे ॥ ३८३ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोप कहैं इह साधन को दुख दूर करै मन माहि गडै। इह है बलवान बडो प्रगट्यो सोऊ को इह सो छिन आइ अडै। सभ लोग कहैं फुन धापत या रुचि स्याम कहै भगवान बडै। तिह मो छलही छिनमै इह ते जिनके मन मै जरहा कु जडै ॥ ३८४ ॥ ॥ स्वैया ॥ कर कोप निवार दए मघवा दल कान्ह बडे बरबीर बती। जिम कोप जलं (मू०ग्रं०३०३) धर ईस मर्‌यो जिम चंड चमुंडहि सैन हती। पछुताइ गयो मघवा ग्रिह को न रही तिहकी पति एक रती। इम मेघ बिदार दए हरि जी जिम मोहि निवारत कोप जती ॥ ३८५ ॥ ॥ स्वैया ॥ कुप कै तिन मेघ बिदार दए जिन राख लयो जलभीतर हाथी। जाहि सिला लगि पाइ तरी जिह राख लई द्रुपती सुअनाथी। बैर करै जोऊ पै इह सो सभ गोप कहै इह ताहि असाथी। जो हित सो चित कै इह की फुन सेव करै तिह को इह साथी ॥ ३८६ ॥ ॥ सवैया ॥ मेघन को तबही किशनं बल थातर ऊपरि ना कछु आँवा। कोप

इस प्रकार कहा है कि कृष्ण ऐसे खड़े थे मानो कोई बड़ा वीर ढाल लेकर खड़ा हो और बाण-वर्षा की परवाह न कर रहा हो ॥ ३८३ ॥ ॥ सवैया ॥ गोप कहने लगे कि इन्होंने साधुओं के दुःख को दूर कर दिया है अतः ये सबके मन में बस गए हैं। ये महा बलवान रूप में प्रकट हुए हैं और कोई ऐसा नहीं है जो इनके सामने अड़ सकता हो। जिसका मन ज़रा-सा भी इनमें लगा वह अवश्य ही इनकी रूप-शक्ति और सौन्दर्य द्वारा छला गया ॥ ३८४ ॥ ॥ सवैया ॥ महाबली कृष्ण ने इन्द्र के दल को उसी प्रकार दौड़ा दिया, जिस प्रकार शिव ने जलंधर का और देवी ने चंड-मुंड की सेना का नाश कर दिया था। इन्द्र पश्चात्ताप करता अपने घर को चला गया और उसका ज़रा-सा भी सम्मान नहीं बचा। कृष्ण ने मेघों का नाश इस प्रकार कर दिया जैसे कोई बड़ा यति शीघ्र ही मोह का नाश कर देता है ॥ ३८५ ॥ ॥ सवैया ॥ जिस भगवान ने जल के भीतर गज की रक्षा की उसी ने क्रोधित होकर मेघों का नाश कर दिया। जिसने अपने पाँव से शिला रूपी अहल्या को तार दिया, जिसने द्रौपदी की रक्षा की, उस श्रीकृष्ण से जो कोई शत्रुता करेगा, गोप कहने लगे कि यह उन सबका साथ नहीं देगा और जो प्रेमपूर्वक चित्त लगा उसकी सेवा करेगा यह श्रीकृष्ण उसका साथी होगा ३८६ सवैया। मेघ कृष्ण के दल के

करयो अति ही मघवा न सल्यो तिहसो कछु ताहि बसावा ।
जोर चलै किह को तिह सो कहि है सभही जिसको अनुबावा । मूंड निवाइ मनै दुख पाइ गयो मघवा उठि धाम सिसावा ॥ ३८७ ॥ ॥ सवैया ॥ सक्र गयो पछुताइ जिहं कहु फोर बई जब कान्ह मनी । बरखा करि कोप करी ब्रिज पै सु कछू हरि कै नहि एक गनी । कुन ता छबि की अति ही उपमा कबि स्याम किधो इह भांत भनी । पछुताइ गयो पत लोकन को जिम लूट लए अहि सीस मनी ॥ ३८८ ॥
॥ सवैया ॥ जाहि न जानत भेव मुनी मनि जापहु आपन को इह जापी । राज दयो इनही बल को इनही कबि स्याम धरा सभ थापी । मारत है दिन थोरन मै रिप लोग कहै इह कान्ह प्रतापी । कारन याहि धरी इह मूरति मारन को जग के सभ पापी ॥ ३८९ ॥ ॥ सवैया ॥ करि कै जिह सो छल पै चतुरानन चोर लई सभ गोप दफा । तिन कउतकि देखन कारन को फुनि राखि रहयो वह बीच गुफा । कान्ह बिना कुपए उह सो सु करे बिनही सर हीन जफा । छिम मद्धि

ऊपर कुछ न कर सके । इन्द्र ने क्रोध तो बहुत किया, परन्तु उसके वश मे जो कुछ था उसका कुछ प्रभाव न हो सका । उस पर भला किसका ज़ोर चल सकता है जिसका सारा जग सेवक हो । अतः सिर नीचा किए दुःखी मन से खिसियाता हुआ इन्द्र अपने घर चला गया ॥ ३८७ ॥
॥ सवैया ॥ जब कृष्ण ने इन्द्र के गर्व को चूर कर दिया तो वह पछताता हुआ अपने घर चला गया । उसने कुपित हो ब्रज पर वर्षा की, परन्तु श्रीकृष्ण ने उसे कुछ भी नहीं समझा । उसके जाने की उपमा को कवि श्याम ने बताते हुए कहा है कि वह इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ गया जैसे मणि लूट लिये जाने पर सर्प निस्तेज होकर जाता है ॥ ३८८ ॥
॥ सवैया ॥ जिसका रहस्य मुनिगण भी नहीं जानते हैं और जिसका भेद सब प्रकार के जाप-मन्त्र इत्यादि भी नहीं पा सकते है, उसी श्रीकृष्ण ने राजा बलि को राज दिया था और धरती की स्थापना की थी । लोग कहने लगे कि थोड़े ही दिनों में यह प्रतापी कृष्ण सभी शत्रुओं का नाश कर देगा क्योंकि जगत के पापियों को मारने के लिए ही इन्होंने अवतार धारण किया है ॥ ३८९ ॥ ॥ सवैया ॥ जिससे छल करके ब्रह्मा ने गोपों को चुरा लिया था और इनकी लीला देखने के लिए इन्हें गुफा में छिपा लिया था । कृष्ण ने उससे भी रुष्ट हुए बिना ही उसको आश्चर्यचकित कर दिया

बनाइ लए बछुरे सभ गोपन की उनही सी सफा ॥ ३९० ॥ कान्ह उपार धर्यो करपै गिरता तरि गोप निकार सभै । बकई बक अउर गजासु त्रिनावत बीर बधे छिन बीच तबै । जिन काली को नाथ लयो छिन भीतर ध्यान न छाडहु याहि कबै । सभ संत सुनो सुभ कान्ह कथा इक अउर कथा सुन लेहु अबै ॥३९१॥ ॥ गोप बाच नंद जू सो ॥ ॥ स्वैया ॥ नंद कै अग्रज कान्ह पराक्रम गोपन जाइ कह्यो सु सभै । दैत अघासुर अउर त्रिनावत याहि बध्यो उड बीच नभै । फुन मार बरी बकई सभ गोपन दान दयो इह कान्ह अभै । सुनिऐ पति कोट उपाव करो (मू०ग्रं०३०४) कोऊ पै इह सो सुत नाहि लभै ॥ ३९२ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोपन की बिनती सुनिऐ पति ध्यान धरै इह को रण गामी । ध्यान धरै इह को मुन ईशर ध्यान धरै इह काहर कामी । ध्यान धरै इहको सु त्रिया सभ ध्यान धरै इह देवन बामी । सत्ति लख्यो हमकै करता जग सत्ति कह्यो मत कौ नहि खामी ॥ ३९३ ॥ ॥ सवैया ॥ है भगवान बली प्रगट्यो सभ गोप कहै पुतना इन मारी । राज

और क्षण भर में उसी प्रकार के गोप और बछड़ों का सृजन कर लिया ॥ ३९० ॥ कृष्ण ने जब पर्वत को उखाड़कर पकड़ लिया तो सब गोपों को पर्वत के नीचे बुला लिया । इसी कृष्ण ने बकासुर, गजासुर, तृणावर्त आदि वीरों का वध किया, जिसने कालिय नाग को नाथा उस श्रीकृष्ण का ध्यान कभी भी मन से विस्मृत नहीं करना चाहिए । सब सन्तों ने श्रीकृष्ण की शुभ कथा सुनी । अब एक और कथा को सुनिए ॥ ३९१॥ ॥ गोप उवाच नन्द जी के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण के अग्रज और कृष्ण का पराक्रम गोपों ने जाकर नन्द से कहा और उसे बताया कि कृष्ण ने अघासुर और तृणावर्त दैत्य को नभ में उड़कर मार डाला । पुन: इसने बकासुर को मारकर गोपों को अभयदान दिया । हे गोपपति ! चाहे कितना ही उपाय किया जाय, परन्तु ऐसा पुत्र प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ३९२ ॥ ॥ सवैया ॥ हे नन्द ! हम यह कह रहे हैं कि इसी श्रीकृष्ण का ध्यान योद्धा किया करते हैं । मुनि, शिव, सामान्य व्यक्ति, कामी व्यक्ति आदि सभी इसी का ध्यान करते हैं । सभी स्त्रियाँ भी इसी का ध्यान करती हैं । जग ने इसे कर्ता माना है तो सत्य ही माना है, इसमें कोई भी गलती नहीं है ३९३ । सवैया इस बली भगवान ने पूतना का नाश किया है इन्हीं ने रावण का संहार किया है और

भभीछन थाहि दयो इनही कुप रावन बैत संघारी । रछ्छ करी प्रहलादहि की इन ही हरनाखश को उर फारी । नंद सुनो पत लोकन कै इनही हमरी अब देह उबारी ॥ ३६४ ॥ ॥ सवैया ॥ है सभ लोगन को करता ब्रिज भीत रहै करता इह लीला । सिखयन को बरता हरि है इह साधन को हरिता तन हीला । राख लई इनही सिय की पति राखि लई त्रिय पारथ सीला । गोप कहै पत सो सुनिऐ इह है क्रिशनं बरबीर हठीला ॥ ३६५ ॥ ॥ सवैया ॥ दिन बीत गए चक ए गिर के हरि जी बछरे संग लै बन आवैं । तिउ घर मूरति घासु चुगैं भगवान महाँ मन मै सुख पावैं । लै मुरली अपने कर मै कर भाव घने हित साथ बजावैं । मोहि रहै जु सुनै पतनी सुर मोहि रहै धुनि जो सुन पावैं ॥ ३६६ ॥ कुप के जिन बालि मर्यो छिन मै अरु रावन की जिन सैन मरी है । जाहि भभीछन राज दयो छिन मै जिह को तिह लंक करी है । मुर मारि दयो घटका न करी रिप जा सिय की जिय पीर हरी है । सो ब्रिज भूमि बिखै भगवान सु गउअन के मिस खेल करी है ॥ ३६७ ॥ ॥ सवैया ॥ जाहि सहंस्र फनो तन ऊपरि सोइ

विभीषण को राज्य दिया है । हिरण्यकशिपु का उदर फाड़कर इन्होंने प्रहलाद की रक्षा की है । हे लोकपति नन्द ! सुनो, इसी ने अब हम लोगों का उद्धार किया है ॥ ३९४ ॥ ॥ सवैया ॥ ये सभी लोकों के कर्ता हैं। इधर सारा ब्रज भयभीत था और ये लीला कर रहे थे । सिक्खों का व्रत भी कृष्ण है और साधुजनों के शरीर का उद्यम भी कृष्ण ही है । इसी ने सीता के तथा द्रौपदी के शील की रक्षा की । हे नन्द ! इन सारे कार्यों को करने वाला हठीला यह श्रीकृष्ण ही है ॥ ३९५ ॥ ॥ सवैया ॥ पर्वत को उठाने की घटना को कई दिन बीत गए । अब कृष्ण जी बछड़ों को साथ लेकर वन में आने लगे । वहाँ गायों को घास चरते देखकर श्रीभगवान मन में महासुख पाने लगे । अपने हाथ में मुरली लेकर श्रीकृष्ण भाव-पूर्ण होकर बजाने लगे । अप्सराएँ तथा जो भी मुरली की ध्वनि सुनता था मोहित हो उठता था ॥ ३९६ ॥ जिसने क्रोधित होकर बालि को मार दिया और रावण की सेना को नष्ट कर दिया, जिसने विभीषण को राज्य दे दिया और क्षण भर में उसको लंकापति बना दिया, जिसने मुर नामक राक्षस का वध किया और शत्रु को मारकर सीता के दुख का हरण किया वही भगवान व्रज भूमि मे जन्म लेकर गउओं के साथ खेल खेल रहे हैं ३९७

करी जल भीतर क्रीड़ा। जाहि भभीछन राज दयो अरु जाहि दई कुप रावन पीड़ा। जाहि दयो करकै जग भीतर जीव चराचर अउ गज कीड़ा। खेलत सो ब्रिजभूम बिखै जिन कीन सुरासुर बीच झगोड़ा॥ ३९८॥ ॥ सवैया॥ बीर बडे दुरजोधन आदिक जा हिमराइ डरे रन छत्री। जाहि मर्‍यो सिसपाल रिसै करि राजन मै क्रिशनंबर अत्री। खेलत है सोऊ गउअन मै जोऊ है जग को करता बध सत्री। आग सो धूम्र लपेटत जिउं फुन गोप कहावत है इह छत्री॥ ३९९॥ ॥ सवैया॥ कर जुद्ध मरे इकसे मध कीटभ राज सतक्रित को जिह दीआ। कुंभकरन (मू०ग्रं०२०५) मर्‍यो जिम है अरु रावन को छिन मै बध कीआ। राज भभीछन पै करि आनंद अउध चल्यो संगि लै करि सीआ। पापन के बध कारन सो अवतार बिखै ब्रिज के अब लीआ॥ ४००॥ ॥ सवैया॥ जो उपमा हरि की करी गोपन तउ पत गोपन बात कही है। जो इह को बसु आइ कर्‍यो गरगै हम सो सोऊ बात सही है। पुतु

॥ सवैया॥ हजारों फनों वाले शेषनाग पर विराजमान होकर जो जल में क्रीड़ा करते हैं, जिसने क्रोधित होकर रावण को पीड़ा दी और विभीषण को राज्य दिया, जिसने दया करके सारे विश्व में चल-अचल और हाथी तथा कीड़े को भी प्राण प्रदान किए हैं, वही ये भगवान व्रजभूमि में खेल रहे हैं जिन्होंने सुरों और असुरों के बीच होते युद्ध को सदैव (तटस्थ होकर) देखा है॥ २९८॥ ॥ सवैया॥ जिससे दुर्योधन आदि बड़े वीर तथा क्षत्रिय रण में डरते हैं, जिसने शिशुपाल को क्रोधित होकर मार डाला, वही वीरवर कृष्ण यही है। वही कृष्ण गायों के साथ क्रीड़ा कर रहा है और यही कृष्ण शत्रुओं को मारनेवाला तथा सारे विश्व का कर्ता है। यही कृष्ण धुएं में आग की चिनगारी के समान देदीप्यमान है और क्षत्रिय होते हुए भी अपने-आप को गोप कहला रहा है॥ ३९९॥ ॥ सवैया॥ इसी से युद्ध करते हुए मधु तथा कैटभ नामक राक्षस मर गये और इसी ने इन्द्र को राज्य दिया। कुम्भकर्ण भी इसी से युद्ध करता हुआ मरा और इसी ने क्षण भर में रावण का वध कर दिया। यही विभीषण को राज्य देकर तथा सीता को संग लेकर आनन्दपूर्वक अवध की ओर चला था और अब पापियों का वध करने के लिए इसने व्रज-भूमि में अवतार लिया है॥ ४००॥ ॥ सवैया॥ जिस प्रकार गोपों ने कृष्ण की प्रशंसा की, उसी प्रकार गोपपति नन्द ने कहा कि आप लोगों ने

कह्यो बसुदेवहि को दिज ताहि मिल्यो फुन मान इही है। जो इह को फुन मारन आयो सु ताही की देह गही न रही है ॥ ४०१ ॥

अथ इंद्र आदि दरशन कीआ अरु बेनती करन भया ॥

॥ स्वैया ॥ दिन एक गए बन को हरि जो मघवा तजि मान हरी पहि आयो। पापन के बखशावन को हरि के तर पाइन सीस निआयो। अउर करी बिनती हरि की अति ही हित तो भगवान रिझायो। चूक भई हम ते कह्यो सक्र सु कौ हरि जो तुम को नहि पायो ॥ ४०२ ॥ तूं जग को करता करुनानिधि तूं सभ लोगन को करता है। तूं मुर को मरिया रिप रावन भूर सला तिय को भरता है। तू सभ देवन को पति है अरु साधन के दुख को हरता है। जो तुमरी कछु भूल करै तिह के फुन तूँ तन को मरता है ॥ ४०३ ॥ ॥ स्वैया ॥ जब कान्ह सतक्रित की उपमा तब कामसु धेन गऊ चलि आई। आइ करी उपमा हरि की बहु भांतन सो कबि स्याम बडाई।

जो कृष्ण के बल का वर्णन किया है वह विलक्षण रूप है। पुरोहित ने इसे वसुदेव का पुत्र कहा है और यह इसका सौभाग्य है। जो भी इसको मारने आया, वह स्वयं शारीरिक रूप से नष्ट हो गया ॥ ४०१ ॥

इन्द्र ने आकर दर्शन किया और प्रार्थना की

॥ सवैया ॥ एक दिन श्रीकृष्ण जी जब वन में गये तो गर्व को त्यागकर इन्द्र उनके पास आया और उसने अपने पापों की क्षमा माँगने के लिए कृष्ण के पाँव पर सिर झुकाया। उसने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की और भगवान को प्रसन्न किया तथा कहा कि हे प्रभु! मुझसे भूल हुई है और मैं आपका अन्त नहीं पा सका ॥ ४०२ ॥ हे करुणानिधि! तुम जगत के कर्ता हो; मुर नामक दैत्य और रावण को मारनेवाले एवं अहल्या नामक स्त्री का उद्धार करनेवाले हो। तुम सभी देवताओं के स्वामी और साधुओं के दुःख को दूर करनेवाले हो। हे प्रभु! जो तुम्हारी अवज्ञा करता है तुम उसका नाश करनेवाले हो ॥ ४०३ ॥ ॥ सवैया ॥ जब कृष्ण और इन्द्र की यह बातचीत चल रही थी तभी वहाँ कामधेनु गाय भी चली आयी। कवि श्याम का कथन है कि उसने कृष्ण की बहुत प्रकार से प्रशंसा की

गावत ही गुन कान्हर के इक इंकर आइ गई हरि पाई। स्याम कहै उपमा कहियो पति सो उपमा बहु भाँतन भाई ॥ ४०४ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्हर के पग पूजन को सभ देव पुरी तजि कै पुर आए। पाइ परे इक पूजत भे इक नाच उठे इक मंगल गाए। सेव करें हरि की हित कै कर आवत केसर धूप जगाए। देतन को बध कै भगवान मनो जग मै सुर फेर बसाए ॥ ४०५ ॥ ॥ दोहरा ॥ देव सक्र आदिक सभै सभ तजिकै मन मान। ह्वै इकत्र करनै लगे किशन उसतती बान ॥ ४०६ ॥ ॥ कबितु ॥ प्रेम भरे लाज के जहाज दोऊ देखिअत बार भरे अञ्जन की आभा को धरत है। सील के है सिंध गुन सागर उजागर के नागर नवल नैन दोखन हरत है। (मू०ग्रं०३०६) शत्रुन संघारी इह कान्ह अवतारी जू के साधन को देह दुख दूर को करत है। मित्र प्रितपारक ए जग के उधारक है देखकै दुशट जिह जीअ ते जरत है ॥ ४०७ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह को सीस निवाइ सभै सुर आइस लै चल धाम गए हैं। गोबिद नाम धर्यो हरि को इह तै मन आनंद धार भए हैं। रात परे चलिकै भगवान सु डेरन आपन बीच

उसने कृष्ण का गुणगान कर प्रभु को प्राप्त किया। कवि का कथन है कि उसकी की हुई प्रशंसा भिन्न प्रकार से मन को मोहनेवाली थी ॥ ४०४ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण की चरण-वन्दना के लिए सभी देवता देवलोक छोड़कर आ गए। कोई उनके चरण स्पर्श कर रहा है, कोई मंगलगीत गाते हुए नृत्य कर रहा है। कोई सेवा करने के लिए केसर, धूप, बत्ती आदि जलाता हुआ चला आ रहा है कि मानो भगवान ने संसार से दैत्यों का नाश करके इस धरती पर पुनः देवताओं को बसा दिया हो ॥ ४०५ ॥ ॥ दोहा ॥ देवता एवं इन्द्र आदि सभी अपने गर्व को भूलकर इकट्ठा होकर कृष्ण की स्तुति करने लगे ॥ ४०६ ॥ ॥ कवित्त ॥ श्रीकृष्ण के नेत्र मानो प्रेम के जहाज हैं और सारे आभूषणों की सुषमा को धारण करनेवाले हैं। ये शील के समुद्र हैं, गुणों के सागर हैं और लोगों के दुःखों का हरण करनेवाले हैं। श्रीकृष्ण के नेत्र शत्रुओं का संहार करनेवाले और साधुओं के दुःखों को दूर करनेवाले हैं। श्रीकृष्ण मित्रों का पालन-पोषण करनेवाले, जगत के उद्धारकर्ता हैं, जिन्हें देखकर दुष्ट लोग हृदय में जलते हैं ॥ ४०७ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण को शीश झुकाकर और आज्ञा लेकर अपने निवास स्थानों को चले गए। उन्होंने आनन्दित होकर श्रीकृष्ण का नाम 'गोविन्द' रख

अए हैं । प्रात भए जग के बिवहारे कहु कौन सु सुंदर खेल नए हैं ॥ ४०८ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिसनावतारे इंद्र कृत प्रसंसा प्रथम ध्याइ समापतं ॥

अथ नंद को बरन बांध करि लै गए ॥

॥ स्वैया ॥ निस एक द्वादस के हरि तात चल्यो जमना महि न्हावन काजैं । आइ पर्यो जल मै बरनंगन कोप गह्यो सभ और समाजैं । बांध चलै संग लै बरनं पहि कान्हर के पित ही कुपि गाजैं । जाइकै ठाढि कर्यो रब ही पहचान लयो दरिआवन राजैं ॥ ४०९ ॥ ॥ स्वैया ॥ नंद बिना पुर सुंन भयो सभ ही मिलकै हरि जी पहि आए । आइ प्रनाम करे पर पाइन नंद बियाबिक ते घिघिआए । कै बहु भांतन सो बिनती करिकै क्रिसना भगवान रिझाए । मो पति आज गए उठकै हम ढूंढ रहे कहूंऐ नही पाए ॥ ४१० ॥ ॥ कान्ह बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ तात कह्यो हसि कै जसुधा पहि लात

दिया है । इधर रात्रि होने पर श्रीकृष्ण भगवान भी अपने घर को आ गये हैं और पुनः प्रातः होने पर जगत्-लीला के लिए सुन्दर नये खेलों का उपक्रम किया है ॥ ४०८ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक के कृष्णावतार में इन्द्र की क्षमायाचना और गाय-वर्णन समाप्त ॥

नन्द को वरुण का बाँधकर ले जाना

॥ सवैया ॥ द्वादशी की रात्रि को कृष्ण के पिता यमुना में स्नान करने के लिए गए । वे जल में नग्न होकर घुसे जिससे वरुण के दूत क्रोधित हो उठे । वे नन्द को बाँधकर क्रोध से गरजते हुए वरुण के पास ले चले और जब उन्होंने नन्द को वरुण के समक्ष उपस्थित किया, तो नदियों के राजा वरुण ने उन्हें पहचान लिया ॥ ४०९ ॥ ॥ सवैया ॥ नन्द के बिना सारा नगर सूना हो गया और सभी मिलकर श्रीकृष्ण जी के पास आये । सबने आकर चरण छूकर प्रणाम किया और स्त्रियाँ तथा अन्य सब गिड़गिड़ाने लगे । उन्होंने बहुत प्रकार से प्रार्थना कर श्रीकृष्ण भगवान को प्रसन्न किया और कहा कि हम अपने स्वामी नन्द को काफ़ी ढूँढ चुके हैं, परन्तु उनका कहीं भी पता नहीं लग रहा है ॥ ४१० ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ श्रीकृष्ण ने हँसकर यशोदा से कहा कि मैं पिता को लेने के लिए जाऊँगा

छिमापन को हम जैहों । सात अकाश पताल सु सातहि जाइ जहाँ तह जाहो ते ल्यैहों । जो मर ग्यो तउ जा जम के पुर आयुध सै कुप भारथ कैहों । नंद को आन मिलाइहउ हउ किह जाइ रमै तऊ जान न दैहों ॥ ४११ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोप प्रनाम गए करकै ग्रिह तो हसिकै इम कान्ह कह्यो है । गोपन के पति को मिल हों इह झूठ नही फुन सत्ति लह्यो है । गोपन के मन को अति ही दुख बात सुने हरि दूर बह्यो है । छाड अधीरज दीन सभो फुन धीरज को मन गाढ गह्यो है ॥ ४१२ ॥ ॥ स्वैया ॥ प्रात भए हरि जी उठ कै जल बीच धस्यो बरनं पहि आयो । आइके ठाढि भयो अब ही नबिआपति पाइन सो लपटायो । भ्रित्तन मो अपने तुम तात अन्यो बँध कै कहिकै घिघिआयो । कान्ह छिमापनह दोख करो इह भेद हमै लख कै नही (मू०ग्रं०३०७) पायो ॥ ४१३ ॥ जिन राज भभीछनि दीअ दयो रिस कै जिन रावन खेत मर्‌यो है । जाहि मर्‌यो मुर नाम अघासुर पै बलि को छल सों जु छल्यो है । जाहि जलंधर की त्रिय को तिह सू रत कै सत जाहि टर्‌यो है ।

और सातों आकाश-पाताल ढूँढ़कर, वे जहाँ भी होंगे, उन्हें ले आऊँगा । यदि वे मर भी गये होंगे तो मैं यमराज से युद्ध करके उन्हें ले आऊँगा और नन्द को लाकर सबसे मिला दूँगा तथा उन्हें इस प्रकार नहीं जाने दूँगा ॥ ४११ ॥ ॥ सवैया ॥ सभी गोप प्रणाम करके अपने घर को चले गये और कृष्ण ने इस प्रकार हँसकर कहा कि मैं सत्य कह रहा हूँ, आप सबको गोपों के पति नन्द से मिलवा दूँगा । इसमें तनिक भी झूठ नहीं है, बल्कि मैं सत्य कह रहा हूँ । गोपों के मन का दुःख कृष्ण की बात सुनकर दूर हो गया और वे अधैर्य को छोड़ पुनः धैर्य धारण करते हुए चले गये ॥ ४१२ ॥ ॥ सवैया ॥ प्रातः होने पर हरि (श्रीकृष्ण) ने जल में प्रवेश किया और वरुण के सामने जा पहुँचे । वरुण उसी समय श्रीकृष्ण के पाँवों से लिपट गया और घिघियाकर कहने लगा कि मेरे सेवक आपके पिता को बाँध लाये हैं । हे कृष्ण ! मेरे इस दोष को, क्षमा करो, मुझे पता नहीं था ॥ ४१३ ॥ जिसने विभीषण को राज्य दिया और कुपित होकर रावण को युद्धस्थल में मार दिया; जिसने 'मुर' तथा 'अघासुर' को मारा तथा राजा बलि को छला; जिसने जलंधर की स्त्री का सतीत्व भंग किया, उस कृष्ण (विष्णु के अवतार) को आज मैं देख रहा हूँ । मैं बहुत भाग्यशाली हूँ ॥ ४१४ ॥ ॥ दोहा ॥ पैरों पर गिरकर वरुण ने नन्द को श्रीकृष्ण

धनि है भाग किधो हमरे तिह को हम पेखबो आज कर्यो है ॥ ४१४ ॥ ॥ दोहरा ॥ पाइन पर कै बरनि जु दयो नंद को साथ। कह्यो भाग मुहि धंनि है चलै पुस्तकन गाथ ॥ ४१५ ॥ ॥ सवैया ॥ तात को साथ लयो भगवान चल्यो पुर को मन आनंद कीनो। बाहर लोक मिले ब्रिज के कर कान्ह प्रनाम प्राक्रम कीनो। पाइ परे हरि के बहु बारन दान घनो ब्रिज लोकन दीनो। आइ मिलाइ दयो ब्रिज को पति सत्ति हमै करुना कर दीनो ॥ ४१६ ॥ ॥ नंद बाच ॥ ॥ सवैया ॥ बाहर आन कह्यो ब्रिज के पत कान्ह नही जग को करतारे। राज दयो इन दीन भभीछन रावन से रिप कोटक मारे। त्रिसन लै बरुणं बंधयो तिह ते मुहि आन्यो है याही छडा रे। कै जग को करता समझो इह को करि कै समझो नहो बारे ॥ ४१७ ॥ ॥ सवैया ॥ गोप सभो अपने मन भीतर जान हरी इह भेद बिचार्यो। देखहि जाहि बैकुंठ सभै हम पै इह कै इह भांति उचार्यो। ता छबि को जस उच्च महा कबि ने अपनै मुख ते इम सार्यो। ध्यान हवै पारस गोपन लोह को कान सभै करि कंचन डार्यो ॥ ४१८ ॥

के पास भेज दिया। वह कहने लगा कि हे श्रीकृष्ण! मैं धन्य हूँ। यह कथा पुस्तकों में चलती रहेगी ॥ ४१५ ॥ ॥ सवैया ॥ पिता को साथ लेकर श्री भगवान मन में आनन्दित होकर अपने नगर की ओर चले। नगर के बाहर ब्रज के लोग उनसे मिले जिन्होंने कृष्ण और उनके पराक्रम को प्रणाम किया। वे सब कृष्ण के चरणों में आ पड़े और उन सबने बहुत प्रकार से द्विजों को दान दिया। वे सब आभारी होकर कहने लगे कि कृष्ण ने वास्तव में अपना वचन सत्य कर दिखाया और हमें व्रजपति नन्द से मिलवा दिया ॥ ४१६ ॥ ॥ नन्द उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ बाहर आकर नन्द ने कहा कि यह कृष्ण ही नहीं है, वरन सारे जगत का कर्ता है। इसी ने प्रसन्न होकर विभीषण को राज्य दिया और रावण जैसे करोड़ों शत्रुओं को मारा है। मुझे वरुण के सेवकों ने बाँध दिया था और उन सबसे इसी ने मुझे छुड़ाया है। इसको बालक मत समझो, यह सारे विश्व का कर्ता है ॥ ४१७ ॥ ॥ सवैया ॥ सभी गोपों ने अपने मन में इस रहस्य को समझ लिया है। श्रीकृष्ण ने यह जानकर उनसे बैकुंठ के दर्शन कर लेने को कहा और उन्हें दर्शन कराए। इस छवि को कवि ने अनुभव करते हुए कहा है कि यह दृश्य ऐसा लग रहा था मानो श्रीकृष्ण द्वारा दिये हुए ज्ञान

॥ सवैया ॥ जानके अंतरि की लखिआ जब रैन परी तब ही पर सोए। दुक्ख जिते जु हुते मन मै तितने हरि नाम के लेवत खोए। आइ गयो सुपना सभ को तिह जा पिख्ए क्रीया नर होए। जाइ अनूप बिराजत थी तिह जा सभ जा फुन अउर न कोए ॥ ४१९ ॥ ॥ सवैया ॥ सभ गोप बिचार कह्यो मन मैं इह बैकुंठ ते ब्रिज मोहि भला है। कान समै लखिऐ नहि या ओहु जा पिखिऐ भगवान खला है। गोरस खात उहा हम ते मंग जो करता सभ जीव चला है। सो हमरे ग्रिह छाछहि पीवत जाहि रमी सभ भूम कला है ॥ ४२० ॥ (मू०ग्रं०३०८)

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिशनावतारे नंद जू को बरुण पास ते छडाइ लिआइ बिकुंठ दिखावे सभ गोपन को धिआइ समापतम ॥

अथ देवी जू की उसतत कथनं ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ तुही अस्त्रणी शस्त्रणी आप रूपा। तुही अंबका जंभहंती अनूपा। तुही अंबका सीतला

रूपी पारस के कारण लौह रूपी सभी गोप कंचन के बन गये हों ॥ ४१८ ॥
॥ सवैया ॥ सबके हृदय की बूझनेवाले हरि अब रात पड़ने पर सो गये। जितने भी दुःख हैं वे हरि-नाम लेने पर नष्ट हो जाते हैं। सभी नर-नारियों ने स्वप्नों में बैकुंठधाम को देखा और वहाँ देखा कि सब ओर अनुपम रूप से श्रीकृष्ण विराजमान हो रहे हैं ॥ ४१९ ॥ ॥ सवैया ॥ सभी गोपों ने विचार कर कहा कि हे कृष्ण ! हमें बैकुंठ से अच्छा (तुम्हारे साथ) ब्रज लग रहा है। कृष्ण के समान हम किसी को नहीं देख रहे हैं और जिधर देखो उधर भगवान ही दिखाई दे रहे हैं। ब्रज में श्रीकृष्ण हम लोगों से दूध-दही माँगकर खाते हैं। वही कृष्ण, जो सारे जीवों को नष्ट करने की शक्ति रखते हैं। जिस भगवान की कला सारे आकाश-पाताल में व्याप्त है, वही भगवान हमारे ब्रज में छाछ माँगकर हम लोगों से पीते हैं ॥ ४२० ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार में नन्द जी को वरुण के पास से छुड़ाकर लाना, सब गोपों को बैकुंठ दिखाना अध्याय समाप्त ॥

देवी जी की स्तुति-कथन

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ हे देवी ! अस्त्र-शस्त्रों को धारण करनेवाली अंबिका और जंभासुर का नाश करनेवाली तुम ही हो। तुम अंबिका

तोतला है। प्रिथवी भूम आकाश तै ही किआ है ॥ ४२१ ॥ तुही मुंड मरदी कपरदी भवानी। तुही कालका जालपा राजधानी। महा जोगमाया तुही ईस्वरी है। तुही तेज आकाश थंभो मही है ॥ ४२२ ॥ तुही सिस्टणी पुस्टणी जोग-माया। तुही मोह सो चउदहूँ लोक छाया। तुही सुंभ नैसुंभ हंती भवानी। तुही चउदहूँ लोग की जोति जानी ॥ ४२३ ॥ तुही सिस्टणी पुस्टणी शस्त्रणी है। तुही कस्टणी हरतणी अस्त्रणी है। तुही जोगमाया तुही बाक बानी। तुही अंबका जंभहा राजधानी ॥ ४२४ ॥ महा जोगमाया महाराज धानी। भवी भावनी भूत भव्यं भवानी। चरी चाचरणी खेचरणी भूपणी है। महा बाहणी आप निरूपणी है ॥ ४२५ ॥ महाभैरवी भूतनेसुरी भवानी। भवी भावनी भव्य काली क्रिपाणी। जया आजया हिंगुला पिंगुला है। शिवा सीतला मंगला तोतला है ॥ ४२६ ॥ तुही अच्छरा

शीतला आदि हो तथा तुम ही पृथ्वी, भूमि, आकाश की स्थापना करने वाली हो ॥ ४२१ ॥ रणस्थल में मुंडों का मर्दन करनेवाली भवानी तुम ही हो और तुम ही कालका तथा जालपा देवी तथा देवों को राज्य दिलवाने वाली हो। तुम ही महायोगमाया तथा पार्वती हो तथा तुम ही आकाश का तेज तथा धरती का आधार हो ॥ ४२२ ॥ तुम ही सबका पालन-पोषण करनेवाली योगमाया हो और तुम्हारे प्रकाश में ही चौदह लोक प्रकाशित होते हैं। शुंभ-निशुंभ का नाश करनेवाली भवानी तुम ही हो और तुम ही चौदह लोकों की ज्योति हो ॥ ४२३ ॥ तुम ही सबका पालन-पोषण करनेवाली तथा शस्त्र धारण करनेवाली हो। तुम ही सबके कष्टों का हरण करनेवाली तथा अस्त्रों को धारण करनेवाली हो। तुम ही योग-माया और वाणी की शक्ति हो तथा हे देवी! तुम ही अंबिकास्वरूप में जंभासुर का नाश कर देवताओं को राज्य दिलानेवाली हो ॥ ४२४ ॥ हे महायोगमाया! तुम ही भूत, वर्तमान और भविष्य में भवानी-रूप में स्थित रहनेवाली हो। तुम ही चैतन्यस्वरूपा आकाश में विचरण करनेवाली साम्राज्ञी हो। तुम्हारा वाहन महान है और तुम ही (सब विद्याओं का) निरूपण करनेवाली हो ॥ ४२५ ॥ तुम ही महाभैरवी और भूतेश्वरी भवानी हो। तुम ही वर्तमान तथा भविष्य में भव्य रूप से कृपाण धारण कर काली-रूप में स्थित रहनेवाली हो। सबको जय करनेवाली हिंगलाज पर्वत पर निवास करनेवाली, शिवा शीतला मदमस्त तथा मंगला रूप में तुम

पच्छरा बुद्ध सिद्ध्या। तुही भैरवी भूपणी सुद्ध सिद्ध्या। महा बाहणी अस्त्रणी शस्त्रधारी। तुही तीर तरवार काती कटारी ॥ ४२७ ॥ तुही राजसी सातकी तामसी है। तुही बालका ब्रिद्धणी अउ जुआ है। तुही दानवी देवणी जच्छणी है। तुही किन्नणी मच्छणी कच्छणी है ॥ ४२८ ॥ तुही देवतेशेशणी दानवेसा। सरह ब्रिष्टणी है तुही अस्त्र भेसा। तुही राज राजेश्वरी जोगमाया। महा मोह सो चउदहूं लोकछाया ॥ ४२९ ॥ तुही ब्राहमी बैशनवी स्री भवानी। तुही बासवी ईश्वरी कार्तक्यानी। तुही अंबका दुष्टहा मुंड माली। तुही कष्टहंती क्रिपा कै क्रिपाली ॥ ४३० ॥ तुमी ब्राह्मणी ह्वै हिरंनाछ मार्यो। हरंनाकशं सिघणी ह्वै पछार्यो। तुमी बावनी ह्वै तिनो लोग मापे। तुमी देव दानो किए जच्छ थापे ॥ ४३१ ॥ तुमी राम ह्वैकै दसाग्रीव खंड्यो। तुमी क्रिशन ह्वै कंस केसी बिहंड्यो। तुमी जालपा ह्वै बिड़ालाछ (मू०ग्रं०२०६) घायो। तुमी सुंभ नैसुंभ दानो

हो हो ॥ ४२६ ॥ तुम ही अक्षर रूप में, अप्सरा-रूप में, बुद्धि के रूप में, भैरवी के रूप में, साम्राज्ञी के रूप में, शुद्ध साध्य रूप में विराजमान हो। महान वाहन (शेर) वाली और अस्त्र-शस्त्र को धारण करनेवाली तुम ही हो और हे देवि ! तुम ही तीर, तलवार, कटार का स्वरूप हो ॥ ४२७ ॥ तुम ही रजस्, तमस् और सत्वरूपा हो और तुम ही बालिका, वृद्धा और नवयुवती हो। तुम ही दानवी, देवी और दक्षिणी हो और तुम ही किन्नर-स्त्री, मत्स्य-कन्या और कच्छप-स्त्री हो ॥ ४२८ ॥ तुम देवताओं की शक्ति और दानवों की नेत्री हो तथा लोहा बरसानेवाली तुम ही अस्त्रों को धारण करनेवाली हो। तुम ही राजराजेश्वरी तथा योगमाया हो और तुम्हारी माया का ही प्रसार चौदह लोकों में छाया हुआ है ॥ ४२९ ॥ तुम ही ब्रह्माणी, वैष्णवी, भवानी, वासवी, पार्वती और कार्तिकेय की शक्ति हो। तुम ही अम्बिका हो और दुष्टों के मुंडों की माला धारण करनेवाली हो। हे देवी ! तुम ही सबके कष्टों का नाश करनेवाली और सब पर कृपा करनेवाली हो ॥ ४३० ॥ ब्रह्म की शक्ति के रूप में तुमने ही और सिंह-रूप होकर तुमने ही हिरण्यकशिपु को पछाड़ा। तुमने ही वामन की शक्ति के रूप में तीनों लोकों को नाप लिया और तुम ही ने देव-दानव और यक्षों की स्थापना की ॥ ४३१ ॥ तुम ही ने राम-रूप में रावण को मारा, कृष्ण-रूप में केशी दैत्य का वध किया, जालपा-रूप में

खपायो ॥ ४३२ ॥ ॥ दोहरा ॥ दास जान करि दास परि कीजै क्रिपा अपार । आप हाथ दै राख मुहि मन क्रम बचन बिचार ॥ ४३३ ॥ ॥ चौपई ॥ मै न गनेशहि प्रिथम मनाऊं । किशन बिशन कबहूं नह ध्याऊं । कान सुने पहिचान न तिन सों । लिव लागी मोरी पग इन सों ॥ ४३४ ॥ महाकाल रखवार हमारो । महालोह मैं किंकर थारो । अपना जान करो रखवार । बाहि गहे की लाज बिचार ॥ ४३५ ॥ अपना जान मुझै प्रतिपरिऐ । चुन चुन शत्रु हमारे मरिऐ । देग तेग जग मै दोऊ चलै । राख आप मुहि अउर न दलै ॥ ४३६ ॥ तुम मम करहु सदा प्रतिपारा । तुम साहिब मै दास तिहारा । जान आपना मुझै निवाज । आप करो हमरे सभ काज ॥ ४३७ ॥ तुम हो सभ राजन के राजा । आपे आपु गरीबनिवाजा । दास जान करि क्रिपा करहु मुहि । हार परा मै आठ द्वार तुहि ॥ ४३८ ॥ अपना जान करो

बिड़ालाक्ष असुर का वध किया और शुंभ-निशुंभ दानवों को नष्ट किया ॥ ४३२ ॥ ॥ दोहा ॥ दास जानकर मुझ दास पर अपार कृपा कीजिए और मन, कर्म, वचन और विचार से मेरे सिर पर हाथ रखकर मेरी रक्षा कीजिए ॥ ४३३ ॥ ॥ चौपाई ॥ मैं गणेश को पहले नहीं मनाता हूँ और न ही कृष्ण एवं विष्णु का ध्यान करता हूँ । मैंने उनके बारे में केवल कानों से सुना है और मेरी उनसे कोई पहचान नहीं है। मेरी सुरति महाकाल (परमात्मा) के चरणों में लगी है ॥ ४३४ ॥ महाकाल परमात्मा मेरा रक्षक है और हे लौहपुरुष परमात्मा ! मैं तुम्हारा दास हूँ । मुझे अपना जानकर मेरी रक्षा कीजिए और मेरी बाँह पकड़ने का विरद पालन कीजिए ॥ ४३५ ॥ अपना जानकर मेरा पालन कीजिए और चुन-चुनकर मेरे शत्रुओं को नष्ट कीजिए । हे प्रभु ! तुम्हारी कृपा से देग (लंगर) और तेग (गरीबों की रक्षा करने के लिए) सदैव मेरे द्वारा चलती रहे और आपके अतिरिक्त मुझे और कोई न मार सके ॥ ४३६ ॥ आप हमेशा मेरा पालन कीजिए, आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ । अपना जानकर मुझ पर कृपा कीजिए और मेरे सब कार्यों को पूर्ण कीजिए ॥ ४३७ ॥ हे प्रभु ! तुम ही सब राजाओं के राजा हो और गरीबों पर कृपा करनेवाले हो । मुझे अपना दास मानते हुए मुझ पर कृपा कीजिए क्योंकि मैं अब हारकर आपके द्वार पर आ पड़ा हूँ । ४३८ मुझे अपना मानते हुए मेरा पालन कीजिए, आप

प्रतिपारा। तुम साहिबु मै किंकर थारा। दास जान दै हाथ उबारो। हमरे सभ बैरिअन संघारे॥ ४३९॥ प्रथम धरो भगवत को ध्याना। बहुर करो कबिता बिधि नाना। किशन जथा मत चरित्र उचारो। चूक होइ कबि लेहु सुधारो॥४४०॥

॥ इति स्री देवी उसतति समापतम ॥

अथ रास मंडल ॥

॥ स्वैया ॥ जब आई है कातक की रुत सीतल कान्ह तबै अति ही रसिआ। संग गोपन खेल बिचार कर्यो जु हुतो भगवान महा जसिआ। अपवित्रन लोगन के जिह के पग लागत पाप सभै नसिआ। तिह को सुनि ग्रीयन के संग खेल निवारहु कान्ह इहै बसिआ॥ ४४१॥ ॥ स्वैया ॥ आनन जाहि निसापति सो म्रिग कोमल है कमला दल कैसे। है भरटे धन से बरनीसर दूर करैं सम के दुख रैसे। काम की सान के साथ

मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ। मुझे दास मानते हुए अपने हाथों से उद्धार कीजिए और मेरे सब शत्रुओं का नाश कीजिए॥ ४३९॥ सर्वप्रथम मैं भगवत परब्रह्म का ध्यान करता हूँ और फिर बिभिन्न प्रकार की कविता आदि करने का उपक्रम करता हूँ। अपनी बुद्धि के अनुसार मैं कृष्ण-चरित्र का उच्चारण करता हूँ और इसमें यदि कोई चूक रह जाय तो कविवर (कृपया) इसे सुधार लें॥ ४४०॥

॥ इति श्री देवी जी की स्तुति समाप्त ॥

रास-मण्डल

॥ सवैया ॥ जब कातिक मास की शीतल ऋतु आई तब रसिक कृष्ण ने गोपियों के साथ खेल करने का विचार किया। उस कृष्ण के पाँव लगते ही अपवित्र लोगों के पाप भी नष्ट हो जाते हैं। उस कृष्ण का स्त्रियों के साथ मेल का विचार सुनकर सभी उसके चारों ओर इकट्ठी हो गईं॥ ४४१॥ ॥ सवैया ॥ उनका मुख चन्द्रमा के समान, कोमल नेत्र कमल के समान, भौंहें धनुष के समान, बरौनियाँ तीरों के समान हैं। ऐसी सुन्दर स्त्रियों को देखकर तन के सभी दुःख दूर हो जाते हैं। साधुओं के कष्ट को दूर करने के लिए इन कामिनियों के शरीर मानो काम की सान पर घिसकर तेज किये हुए शस्त्रों की तरह

घसे कुछ साधन के फटबे कछु तैसे । कउल के पत्र किधो ससि साथ लगे कबि सुंदर स्याम अरैसे ॥ ४४२ ॥ ॥ स्वैया ॥ बंधक है टटिआ बरुनीधर कोरन की तुत साइक साधे । ठाढे है कान्ह किधो बन मै तन पे सिर पै अंबुवा रंग बांधे । चाल चलै हरए (मू०ग्रं०३१०) हरए मनो सीख दई इह बद्धक पांधे । अउ सभ ही ठट बद्ध कसे मन मोहन जाल पीतंबर कांधे ॥४४३॥ सो उह ठाढि किधे बन मै जुग तीसर मै पति जोऊ सिया । जमना महि खेल के कारन को घस चंदन भाल मै टीको दिया । मिलरा डर नैन के सैनन को सभ गोपन को मन चोर लिया । कबि स्याम कहै भगवान किधो रस कारन को ठग बेस किया ॥ ४४४ ॥ ॥ स्वैया ॥ द्रिग जाहि म्रिगीपति को सम है मुख जाहि निसापति सो छबि पाई । जाहि कुरंगन के रिप सी कट कंचन सो तन मै छबि छाई । पाट बने कदली दल हू जंघआ पर तीरन सो दुत गाई । अंग प्रतंग सु सुंदर स्याम कछू उपमा कहिऐ नही जाई ॥ ४४५ ॥ ॥ स्वैया ॥ मुख जाहि निसापति की सम है बन मै तिन गीत रिझ्यो अरु गायो । ता

हों अथवा वे सब ऐसे लग रहे हैं मानो चन्द्रमा के साथ कमल के पत्र जुड़े हुए हों ॥ ४४२ ॥ ॥ सवैया ॥ कमर में वस्त्र बांधे हुए और बरौनियों की कोरों को तीरों के समान साधे हुए सिर पर पीले रंग का वस्त्र बांधे हुए वन में खड़े हैं । वे धीरे-धीरे चल रहे हैं, मानो उन्हें धीरे-धीरे चलने के लिए किसी ने शिक्षा दी हो । वे कंधे पर पीताम्बर लिये हुए और कमर को कसकर बांधे हुए अत्यन्त ही शोभायमान प्रतीत हो रहे हैं ॥ ४४३ ॥ तीसरे युग (त्रेता) में जो सियापति राम थे वही अब वन में खड़े हैं और यमुना में खेल खेलने के लिए उन्होंने चन्दन का टीका माथे पर लगा रखा है । भील उनके आँखों के संकेतों को देखकर डर रहे हैं और सभी गोपियों का मन श्रीकृष्ण ने चुरा लिया है । कवि श्याम का कथन है कि सबको रस देने के लिए श्रीभगवान ने ठग का वेश धारण किया है ॥ ४४४ ॥ ॥ सवैया ॥ जिनकी आँखें हिरण के समान, मुख की छवि चन्द्र के समान, कमर शेर के समान और मन की छवि कंचन के समान है, उन सुन्दरियों के अंग-प्रत्यंग की उपमा दी नहीं जा सकती । उनकी जंघाएँ कदली के तनों के समान हैं तथा उनकी सुन्दरता तीर के समान बेधनेवाली है ॥ ४४५ ॥ ॥ सवैया ॥ चन्द्रमा के समान मुख वाले श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर वन में गीत गाने प्रारम्भ किये

सुर को धुन स्रउनन मै ब्रिजहूं की त्रिया सभ ही सुन पायो । धाइ चली हरि के मिलबे कहु तउ सभ के मन मै जब भायो । कान्ह मनो म्रिगनी जुबती छलबे कहु घंटक हेर बनायो ।।४४६।। ।। स्वैया ।। मुरली मुख कान्हर के तरुए तर स्याम कहै बिधि खूब फबी । ब्रिज भामन आ पहुची दवरी सुध हिया जु रही न कछू मुख की । मुख को पिख रूप के बस्य भई मत ह्वै अति ही कहि कान्हक की । इक झूम परी इक गाइ उठी तन मै इक ह्वै हरिणी सु जकी ।। ४४७ ।। ।। स्वैया ।। हरि की सुनिकै सुर स्रउनन मै सभ धाइ चली ब्रिज भूम सखी । सभ मैन के हाथ गई बधकै सभ सुंदर स्याम की पेख अखी । निकरी ग्रिह ते म्रिगनी सम मानहु गोपन ते नहि जाहि रखी । इह भाँति हरी पहि आइ गई जनु आइ गई सुध जान सखी ।। ४४८ ।। ।। स्वैया ।। गई आइ दसो दिस ते गुपिआ सभ ही रस कान्ह के साथ पगी । पिख कै मुखि कान्ह को चंद कला सु चकोरन सो मन मै उमगी । हरि को पुन सुद्ध सु आनन पेखि किधौ तिन की

है और उस स्वर को व्रज की सभी स्त्रियों ने अपने कानों से सुना। वे सब कृष्ण से मिलने के लिए दौड़ चली हैं और ऐसा लग रहा है कि मानो कृष्ण तो नादस्वरूप हों और उस नाद से छली हुई युवतियाँ दौड़कर आती हुई मृगियों के समान हों ।। ४४६ ।। ।। सवैया ।। कृष्ण ने मुख में मुरली लगा रखी है और वृक्ष के नीचे वे शोभायमान हो रहे हैं। अपने तन और मन की सुधि भुलाती हुई तथा दौड़ती हुई व्रज की स्त्रियाँ वहाँ आ पहुँची हैं और कृष्ण के मुख को देखकर वे उसके रूप के इतना वशीभूत हो गयी हैं कि कोई तो झूमकर एक ओर जा गिरी, कोई गाते हुए उठ खड़ी हुई और कोई किंकर्तव्यविमूढ़ अवस्था में पड़ी हुई है ।। ४४७ ।। ।। सवैया ।। कृष्ण का स्वर कानों में सुनकर व्रजभूमि की सभी सखियाँ दौड़कर चल पड़ीं। सुन्दर श्रीकृष्ण की सुन्दर आँखों को देखकर वे सब कामदेव के हाथों में बँध गयी हैं। वे घर से मृगों की तरह इस प्रकार दौड़ निकली हैं कि मानो गोपगणों से छूटकर वे भागी हों और इस प्रकार कृष्ण के पास व्याकुल होकर आ पहुँची हैं मानो एक सखी दूसरी सखी का पता पाकर व्याकुल होकर उससे आ मिली हो ।। ४४८ ।। ।। सवैया ।। दसों दिशाओं से गोपियाँ कृष्ण के स्वर रस में पगी हुई आ पहुँची हैं और कृष्ण के मुख को देखकर उनका मन वैसे ही भाव-विभोर हो उठा है जैसे चंद्रकला को देखकर चकोर प्रसन्न हो उठते हैं पुन कृष्ण का सुन्दर

ठग डीठ लगी । भगवान प्रसंन भयो पिख कै कबि स्याम मनो म्रिग वेख म्रिगी ॥ ४४९ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोपन की बरजो न रही सुर कान्हर की सुनबे कहु व्याधी । नाथ चली अपने ग्रिह इउ जिमु मत्त जुगीश्वर इंद्रहि साधी । देखन को मुखि ताहि चली जोऊ काम (मू०ग्रं०३११) कला हू को है फुन बाधी । डार चली सिर के पट इउ जनु डार चली सभ लाज बहाधी ॥४५०॥ कान्ह के पास गई जब ही तब ही सभ गोपन लीन सु संङा । चीर परे गिर कै तन भूखन टूट गई तिन हाथन बंङा । कान्ह को रूप निहार सभै गुपिआ कबि स्याम भई इक रंङा । होइ गई तनमै सभ ही इक रंग मनो सभ छोड कै संङा ॥ ४५१ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोपन भूल गई ग्रिह की सुध कान्ह ही कै रस भीतर राची । भउह मनो मधरी बरनी सभ ही सु ढरी जनु मैन कै साची । छोर दए रस अउरन स्वाद भले भगवान ही सो सभ माची । सोभत ता तन मै हरि के मनो कंचन मै चुनिआ चुन

चेहरा देखकर उन गोपियों की एकटक दृष्टि श्रीकृष्ण के चेहरे पर टिक गई है और श्रीकृष्ण भी उनको देखकर ऐसे प्रसन्न हो गये हैं जैसे मृगी को देखकर मृग आनन्द का अनुभव करता है ॥ ४४९ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपगणों द्वारा मना किये जाने पर भी मना न होनेवाली गोपिकाएँ कृष्ण के स्वर को सुनने के लिए व्याकुल हो उठीं । वे अपने घरों को त्यागकर इस प्रकार मदमस्त होकर चली हैं जिस प्रकार योगेश्वर शिव इन्द्र की भी परवाह किये बिना विचरण करते हैं । वे कृष्ण का मुख देखने के लिए और कामकला से परिपूर्ण होकर सिर पर गिरे जानेवाले वस्त्रों का भी त्याग करते हुए इस प्रकार चली जा रही हैं मानो उन्होंने सब प्रकार की लज्जा का त्याग कर दिया हो ॥ ४५० ॥ कृष्ण के पास जब गोपियाँ पहुँचीं तब गोपियों की चेतना वापस लौटी और उन्होंने देखा कि उनके आभूषण और वस्त्र गिर चुके हैं और व्याकुलता में उनके हाथ की चूड़ियाँ भी खंडित हो चुकी हैं । कृष्ण के स्वरूप को निहारकर सभी गोपियाँ कृष्ण के रंग में रँगकर एक हो गयीं और वे सब तन-मन से सब प्रकार की लज्जा का त्याग कर समरूप से मस्त हो उठीं ॥ ४५१ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण के रस में लीन गोपियों को अपने घरों की सुध भी भूल गयी । उनकी भौंहें और बरौनियाँ मानो मधु की वर्षा कर रही हों और ऐसा लग रहा था जैसे स्वयं कामदेव ने उनकी रचना की हो । वे सभी स्वादों को भूलकर भगवान के रस में लीन हो रही थीं और इस प्रकार मग्न समान हो रही

बाची ॥ ४५२ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह को रूप निहार रही ब्रिज मै जु हुती गुपिआ अति हाछी। राजत जाहि म्रिगोपत नैन बिराजत सुंदर है सम माछी। सोभत है ब्रिजमंडल मै जन खेलबे काज नटी इह काछी। देखनहार किधो भगवान दखावत भाव हमै हिय आछी ॥ ४५३ ॥ ॥ सवैया ॥ सोहत है सम गोपिन के कबि स्याम कहै द्रिग अंजन आँजे। कउलण को जनु सुद्धि प्रभा सर सुंदर साण के ऊपरि माँजे। बैठ घरी इकमै चतुरानन मैन के तात बने कसि साजे। मोहति है मन जोगन के फुन जोगिन के गन बीचक लाजे ॥ ४५४ ॥ ॥ सवैया ॥ ठाढि है कान्ह सोऊ मद्धि गोपन जाहि को अंत मुनी नहि बूझे। कोटि करै उपमा बहु बरखन नैनन सो तऊ नैक न सूझे। ताही के अति लखबे के कारन सूर घने रन भीतर झूझे। सो ब्रिजभूम बिखै भगवान त्रिया गन मै रस बैन अरूझे ॥४५५॥ ॥ सवैया ॥ कान्हर के निकटै जबही सभही गुपिआ मिलि संदर गईयाँ। सो हरि मद्धि सिसानन पेख सभै फुन कंद्रप बेख

थीं, मानो कंचन की प्रतिमाएँ चुन-चुनकर ढेर लगाकर रखी हुई हों ॥ ४५२ ॥ ॥ सवैया ॥ व्रज की सुन्दरतम गोपियाँ कृष्ण का स्वरूप निहार रही हैं। उनके नयन मृग के समान सुन्दर हैं और उनकी रचना और कटाक्ष मछली के समान हैं। वे व्रजमण्डल में घूमनेवाली नटियों के समान चपल हैं और कृष्ण को देखने के बहाने सुन्दर हाव-भाव का प्रदर्शन कर रही हैं ॥ ४५३ ॥ ॥ सवैया ॥ आँखों में अंजन लगाये हुए सब गोपियों के बीच श्रीकृष्ण शोभायमान हो रहे हैं। उनकी सुन्दरता कमलों की शुद्ध सुन्दरता के समान दृष्टिमान हो रही है। ऐसा लग रहा है कि मानो ब्रह्मा ने उन्हें कामदेव का सहोदर बनाया हो और वे इतने सुन्दर हैं कि वे योगियों के भी मन को मोह रहे हैं। अनुपम सौन्दर्य वाले श्रीकृष्ण गोपियों में घिरे हुए ऐसे लग रहे हैं जैसे योगिनियों के बीच घिरा हुआ कोई (शिव का) गण हो ॥ ४५४ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपियों में वही कृष्ण खड़े हैं, जिनका अन्त मुनिगण भी नहीं पा सके। उनकी उपमा करोड़ों प्रकार से की जाती है परन्तु फिर भी उनके बारे में तनिक भी सूझता नहीं। उसी श्रीकृष्ण रूपी परमात्मा का अन्त पाने के लिए अनेकों शूरवीर रणस्थल में जूझ मरे हैं और आज वही भगवान व्रजभूमि में गोपियों के साथ वार्त्ता में रममग्न हैं ॥ ४५५ ॥ ॥ सवैया ॥ जब सभी गोपियाँ कृष्ण के पास पहुँच गयी तो वे श्रीकृष्ण के चन्द्रमुख को देखकर कामदेवस्वरूपा हो गयी

बनइयां। लै मुरली अपने कर कान्ह किधौ अति ही हित साथ बजइयां। घंटक हेरक जिउँ पिखकै म्रिगनी मुहि जात सु है ठहरइयां ॥ ४५६ ॥ ॥ सवैया ॥ मालसिरी अरु रामकली सुभ सारंग भावन साथ बसावै। जैतसिरी अरु सुद्ध मलार बिलावल की धुन कूक सुनावै। लै मुरली अपने कर कान्ह किधौ अति ही हित साथ बजावै। पउन चलै न रहै जमुना थिर मोहि रहै धुन जो सुन पावै ॥ ४५७ ॥ सुन कै मुरली धुनि कान्हर की सभ गोपन की सभ सुद्धि (मू०ग्रं०३१२) छुटी। सभ छाड चली अपने ग्रिह कारज कान्ह ही की धुन साथ जुटी। ठगनीश्वर ह्वै कबि स्याम कहै इन अंतर की सभ मत्त लुटी। म्रिगनी सभ ह्वै चलस्यो इनके मग लाज की बेल तराक टुटी ॥ ४५८ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह को रूपु निहार रही त्रिया स्याम कहै कबि होइ इकाठी। जिउँ मृग की धुन को सुन कै म्रिगनी चल आवत जात न नाठी। मैन सो मत्त ह्वै कूदत कान्ह सु छोरि मनो सभ लाज की गाठी। गोपन को मन यौ चुर गयो जिम खोरर पाथर पै चरनाठी ॥ ४५९ ॥ हसि बात

श्रीकृष्ण ने अपने हाथ मे मुरली लेकर जब प्रेमपूर्वक उसे बजाया तो सभी गोपियाँ इस प्रकार स्थिर हो गयी जैसे घंटियों के नाद को सुनकर मृग स्थिर हो जाते हैं ॥ ४५६ ॥ ॥ सवैया ॥ श्रीकृष्ण मालश्री, रामकली, सारंग, जैतश्री, शुद्ध मलहार और बिलावल आदि रागों की ध्वनि बजाते हुए सुनाने लगे। कृष्ण के हाथ में आयी हुई तथा प्रेमपूर्वक बजती हुई मुरली की ध्वनि को सुनकर पवन भी स्थिर हो गया और मोहवश यमुना की गति भी रुक गयी ॥ ४५७ ॥ कृष्ण की मुरली की ध्वनि को सुनकर सब गोपियाँ सभी गोपियाँ सुध-बुध भूल गयीं। कृष्ण की धुन में लीन वे अपने घर का काम-काज छोड़ चलीं। कवि श्याम का कथन है कि श्रीकृष्ण इस समय सबको ठगनेवाले अधीश्वर के रूप में लग रहे है, और उसके द्वारा छली हुई गोपियों की मति पूर्ण रूप से लुट चुकी है। गोपियाँ मृगियों के समान चल पड़ी हैं और उनकी लज्जा की बेल कृष्ण के स्वर को सुनते ही शीघ्रता से टूट गयीं ॥ ४५८ ॥ ॥ सवैया ॥ स्त्रियाँ इकट्ठी होकर श्रीकृष्ण के स्वरूप को निहार रही हैं और इस प्रकार चली आ रही हैं जैसे नाद को सुनकर मृग चले आते हैं। वे काम से मस्त होकर सब लज्जा को छोड़ते हुए कृष्ण के चारों ओर विचरण कर रही हैं। गोपियों के मन का इस प्रकार हरण हो गया है जैसे पत्थर पर घिसा हुआ

करे हरि सो गुपिआ कबि स्याम कहै जिन भाग बडे। मोहि सभै प्रगट्यो इनको पिखकै हरि पावन जाल लडे। क्रिशनतन मद्धि बधू ब्रिज की मन ह्वैकर आतुर अत्ति गडे। सोऊ सत्ति किधो मन जाहि गडे सुअ धंनि जिनो मन है अगडे॥ ४६०॥ नैन चुराइ महा सुखु पाइ कछू मुसकाइ भयो हरि ठाढो। मोहि रही ब्रिज बाम सभै अति ही तिहकै मन आनंद बाढो। जा भगवान किधो लिय जीत कै मारि डर्यो रिप रावन गाढो। ता भगवान किधो मुख ते मुकता नुकता सम अंम्रित काढो॥४६१॥ ॥ कान्ह जू बाच गोपी प्रति॥ ॥ सवैया॥ आज भयो झड़ है जमना तट खेलन की अब घात बणी। तजकै डरु खेल करै हम सो कबि स्याम कह्यो हसि कान्ह अणी। जोऊ सुंदर है तुम मै सोऊ खेलहु खेलहु नाहि जणी रुकणी। इह भांत कहै हसिकै रस बोल किधो हरिता जोऊ मार फणी॥ ४६२॥ हसिकै सु कही बतिया तिन सो कबि स्याम कहै हरि जो रस रातो। नैन म्रिगीपति से हित कै इम चाल चलै जिम गइयर मातो। देखत मूरत कान्ह की गोपन भूलि

सन्दन विलीन हो जाता है॥ ४५९॥ बड़े भाग्य वाली गोपियाँ श्रीकृष्ण से हँस-हँसकर बात कर रही हैं। कृष्ण को देखकर सभी मोह-रत हो रही हैं। श्रीकृष्ण व्रजवधुओं के मन में गड़ चुके हैं। जिनके मन में कृष्ण बस चुके हैं वे भी सत्य के बोध को प्राप्त हो चुकी हैं और जिनके मन में अभी कृष्ण नहीं गड़े हैं वे भी धन्य हैं, क्योंकि वे अभी असह्य प्रेम-पीड़ा से बची हुई हैं॥ ४६०॥ आँखों को चुराते हुए, तनिक-सा मुस्कुराते हुए श्रीकृष्ण खड़े हो गए हैं। यह देखकर मन में अत्यन्त आनन्द को बढ़ाते हुए व्रज की स्त्रियाँ मोहित हो उठी हैं। जिस भगवान ने घोर शत्रु रावण को मारकर सीता को जीत लिया था, वही भगवान इस समय अपने श्रीमुख से मोतियों के समान सुन्दर और अमृत के समान सुमधुर ध्वनि निकाल रहे हैं॥ ४६१॥ ॥ कृष्ण उवाच गोपियों के प्रति॥ ॥ सवैया॥ आज थोड़े-थोड़े बादल भी आकाश में हैं और आज यमुना-तट पर खेलने को मेरा मन व्याकुल हो रहा है। कृष्ण ने हँसकर कहा कि तुम सब भय त्यागकर मेरे साथ विचरण करो। तुममें से जो सबसे अधिक सुन्दरियाँ हैं, वे ही मेरे साथ आयें, बाकी सब न आयें। इस प्रकार ये बातें कालिय नाग का मान हरनेवाले श्रीकृष्ण ने कहीं॥ ४६२॥ कृष्ण ने हँसकर और रस-मग्न होकर ये बात कही उसके नयन मृग के समान हैं और उसकी चाल

गई ग्रिह की सुध सालो । चीर गए उडकै तन के अरु टूट गयो नैन ते लाज को नातो ॥ ४६३ ॥ कुबि के मधिकैटभ तान मरे मुर दैत मर्‍यो अपने जिन हाथा । जाहि भभीछन राज दयो रिस रावन काट दए जिह माथा । सो तिह की तिहु लोगन मद्ध कहै कबि स्याम चलै जैसे गाथा । सो ब्रिजभूम बिखै रस के हित खेलत है कुन गोपन साथा ॥ ४६४ ॥ हसि कै हरि जू ब्रिजमंडल मै संग गोपन के इक होड बदी । सभ धाइ परै हमहूँ तुमहूँ इह भांत कह्यो मिलि बीच नदी । जब जाइ परे (मू०ग्रं०३१३) जमना जल मै संग गोपन के भगवान जदी । तब लै चुभकी हरि जी त्रिय को मु लयो मुख चूम किधो सु तदी ॥ ४६५ ॥ ॥ गोपी बाच कान्ह सो ॥ ॥ स्वैया ॥ मिलकै सभ ग्वारन सुंदर स्याम सो स्याम कही हसि बात प्रबीनन । राजत जाहि म्रिगीपति से द्रिग छाजत चंचलता सम मीनन । कंचन से तन कउलमुखी रस आतुर ह्वै कह्यो रच्छक दीनन । नेहु बढाइ महा सुख पाइ कह्यो सिर न्याइ कै मात अधीनन ॥ ४६६ ॥ अति ह्वै रिझवंत कह्यो गुपिआ जुग

मस्त हाथी के समान है । श्याम का स्पर्श पाकर गोपियाँ घर-बाहर की सुधि भूल गयी । उनके शरीर के वस्त्र उड़ गये और लज्जा से भी उनका सबंध छूट गया ॥ ४६३ ॥ जिसने क्रुपित होकर मधु कैटभ और मुर नामक राक्षस का वध किया; जिसने विभीषण को राज्य दिया और रावण के दसों सिर काट दिये । उसकी विजय-गाथा तीनों लोकों में चल रही है, वही ब्रजभूमि में इस समय गोपियों के साथ रसमग्न होकर क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ४६४ ॥ श्रीकृष्ण ने हँसकर ब्रजमण्डल में गोपियों के साथ एक शर्त वाला खेल खेलने की बात की और कहा कि आओ, मिलकर हम-तुम नदी में छलाँग लगायें । इस प्रकार जब भगवान कृष्ण गोपियों के साथ यमुना के जल में कूद गये । तो उन्होंने डुबकी लगाकर एक स्त्री का मुख शीघ्रता से चूम लिया ॥ ४६५ ॥ ॥ गोपी उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ सभी गोपियों ने मिलकर और हँसकर चतुरता से उस कृष्ण से कहा, जिसके सुन्दर नेत्र मृग के समान बड़े-बड़े और मछली के समान चंचल हैं, जिसका तन कंचन के समान है । उस कृष्ण को जो दीनों का रक्षक है, उसे प्रसन्न मन से अत्यन्त सुख पाते हुए सिर झुकाकर गोपियों ने अधीन होकर कहा ॥ ४६६ ॥ गोपियों ने प्रसन्न होकर कहा कि जो तीसरे युग में जानकी का स्वामी था जिसने [illegible] रावण [illegible] मारा और

तीसर मै पति भ्यो जु कयो । जिन रावन खेत मर्यो कुप कै जिह रोस भभीछन लंक थपी । जिह की जग बीच प्रसिद्ध कला कबि स्याम कहै कछु नाहि छपी । तिह संग करै रस की चरचा जिनहू तिरिया फुन चंड जपी ॥ ४६७ ॥ जउ रस बात कही गुपिआ तब ही हरि ज्वाब दयो तिन साफी । आई हो छोडि सभै पति को तुम होइ तुमै न मरे फुन माफी । हउ तुम सो नहि हेत करो तुम काहे कउ बात करो रस लाफी । इउ कहि कै हरि मोन भजो सु बजाइ उठ्यो मुरली महि काफी ॥ ४६८ ॥ ॥ कान बाच गोपी सो ॥ ॥ स्वैया ॥ सभ सुंदर गोपिन सो कबि स्याम दयो हसिकै हरि ज्वाब जबै । न गई हरि मान कह्यो ग्रिह को प्रभ मोहि रही मुखि देख सभै । क्रिशनं कर लै अपने मुरली सु बजाइ उठ्यो जुत राग तबै । मनो घाइ लगो तिन के व्रण मै भगवान डर्यो जनु लोन अबै ॥ ४६९ ॥ जिउँ म्रिग बीच म्रिगी दिखिऐ हरि तिउँ गन ग्वारन के मधि सोभै । देखि जिसै रिप रीझ रहै कबि स्याम नहो मन भीतर छोभै । देखि जिसै म्रिग धावत आवत चित्त करै न हमै फुन

प्रसन्न होकर विभीषण को लंका का राज्य दे दिया, जिसकी कलाओं की चर्चा सारे संसार में फैली हुई है। उसके साथ रस की चर्चा वे सब स्त्रियाँ कर रही हैं, जिन्होंने चंडी का जाप कर कृष्ण को पति के रूप में माँगा है ॥ ४६७ ॥ जब गोपियों ने रस की बात की तो कृष्ण ने उन्हें साफ जवाब दिया कि तुम लोग अपने पतियों को छोड़कर आई हो। तुम लोगों को मरने पर भी माफ़ी नहीं मिलेगी। मैं तुमसे प्रेम नहीं करता हूँ और तुम मुझसे प्रेम-रस की बातें क्यों करती हो ! इस प्रकार कहकर कृष्ण चुप हो गये। और मुरली पर राग काफ़ी की धुन बजाने लगे ॥ ४६८ ॥ ॥ कृष्ण उवाच गोपियों के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ सुन्दर गोपियों को जब कृष्ण ने हँसकर यह जवाब दिया तो भी वे कृष्ण का कहना मानकर घर को नहीं गई, और उनके मुख को देखकर मोहित होती रहीं। तब कृष्ण ने हाथ में मुरली लेकर बजाना शुरू कर दिया। मुरली का स्वर गोपियों को इस प्रकार लगने लगा। जैसे भगवान कृष्ण ने उनके घावों पर नमक लगा दिया हो ॥ ४६९ ॥ जैसे मृगियों के बीच मृग दिखाई देता है, उसी प्रकार गोपियों के बीच कृष्ण शोभायमान हो रहे हैं। कृष्ण को देखकर शत्रु भी प्रसन्न हो रहे हैं और ये उनके मन में शोभा बढ़ा रहे हैं जिसे देखकर वन के मृग भी भागे चले आते है और

कोभै । सो बन बीच बिराजत कान्ह जोऊ पिखवै तिह को मन लोभै ।।४७०।। ।। गोपी बाच कान्ह जू सो ।। ।। स्वैया ।। सोऊ ग्वारन बोल उठी हरि सो बचना जिन के सम सुद्ध अमी । तिह साथ लगी चरचा करने हरता मन साधन सुद्ध गमी । तज कै अपने भरता हमरी मति कान्ह जू ऊपरि तोहि रमी । अति ही तन काम करा उपजी तुम को पिखए नहि जात छमी ।। ४७१ ।। ।। कबियो बाच ।। ।। स्वैया ।। भगवान लखी अपने मन मै इह ग्वारन (मू०ग्रं०३१४) मो पिख मैन भरी । तब ही तजि शोक सभै मन को तिन के संग मानुख केल करी । हरि जी करि खेल किधौ इन सो जनु काम जरी इह की न जरी । कबि स्याम कहै पिखवो तुम कौतक कान्ह ठग्यो कि ठगी सु हरी ।। ४७२ ।। जो जुग तीसर-मूरत राम धरी जिह अउर कर्यो अति लीला । शत्रन को सु संघारक है प्रतिपारक साधन को हर हीला । द्वापर मो सोऊ कान भयो मरिआ अरि को धरिआ पट पीला । सो हरि भूमि बिखै ब्रिज की हसि

जिनका चित्त कृष्ण के दर्शनों से भरता नहीं, वही कृष्ण वन के बीच में विराजमान है और जो कोई उनको देखता है उसी का मन लोभ से भर उठता है ।। ४७० ।। ।। गोपी उवाच कृष्ण के प्रति ।। ।। सवैया ।। वह ग्वालिन अमृत के समान वचनों को बोलते हुए कहने लगी कि हम उसके साथ चर्चा कर रही हैं जो सभी साधुओं के कष्टों को दूर करनेवाला है । हम अपने पतियों को छोड़कर कृष्ण के पास इसलिए आयी हैं कि हमारे मन में काम की कलाओं का प्रभाव अत्यन्त विकट रूप से बढ़ रहा है और तुम्हें देखकर हम उन कलाओं को दबा नहीं पा रही हैं ।। ४७१ ।। ।। कवि उवाच ।। ।। सवैया ।। कृष्ण ने मन में समझा कि ये ग्वालिनें मुझे देखकर काम से उन्मत्त हो उठी हैं । तब कृष्ण ने शंका को त्याग कर उनके साथ आम मनुष्य की तरह भोग-विलास किया । कृष्ण ने कामदेव के द्वारा जलाई जा रही गोपियों के साथ रमण किया तथा कवि श्याम का कथन है कि इस लीला में यह समझ में नहीं आ रहा है कि कृष्ण ने गोपियों को ठग लिया अथवा गोपियों ने कृष्ण को ठग लिया है ।। ४७२ ।। जिसने त्रेतायुग में राम का अवतार लेकर अन्य लीलायुक्त कार्य किए, वही शत्रुओं का संहारक और साधुओं की कष्ट दशा में रक्षा करनेवाला है । वही राम द्वापर में पीला वस्त्र धारण कर शत्रुओं को मारनेवाला कृष्ण है, जो हँस-हँसकर ब्रजभूमि में गोपियों के साथ रासलीला रचा रहा

गोपन साथ करैं रस लीला ॥ ४७३ ॥ मालसिरी अरु रामकली सुभ सारंग भावना साथ बसावै । जैतसिरी अरु सुद्ध मलहार बिलावल की धुन कूक सुनावै । लै मुरली अपने कर कान्ह किधो अति भावन साथ बजावै । पउण चलै न रहै जमुना थिर मोहि रहै धुन जो सुन पावै ॥ ४७४ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह बजावत है सुर सो फुन गोपन के मन मै जोऊ भावै । रामकली अरु सुद्ध मलहार बिलावल को अति ही ठट पावै । रीझ रहै सु सुरी असुरी म्रिग छाडि म्रिगी बन की चल आवै । सो मुरली महि स्याम प्रबीन मनो कर रागन रूप दिखावै ॥ ४७५ ॥ सुनकै मुरली धुन कान्हर की मन मै सभ ग्वारन रीझ रही है । जो त्रिह लोगन बात कही तिनहूं फुन ऊपरि सीस सही है । सामुहि धाइ चली हरि के उपमा तिह की कबि स्याम कही है । मानहु पेख ससरन के मुख धाइ चली पिलि जूथ अही है ॥४७६॥ जिम रीझ भभीछन राजु दयो कुप कै दससीस दई जिन पीड़ा । मारत ह्वै दल दैतन को छिन मै घन सो कर दीन उखीड़ा । जाहि मर्‍यो मुर नाम महासुर आपन ही लँघ मारग भीड़ा ।

है ॥ ४७३ ॥ वह मालश्री, रामकली, सारंग, जैतश्री, शुद्ध मल्हार और बिलावल का स्वर मुरली के माध्यम से सबको सुना रहा है । अपने हाथ में बाँसुरी लेकर कृष्ण प्रेमपूर्वक बजा रहे हैं और उसकी आवाज को सुनकर पवन और यमुना स्थिर हो गयी है, तथा जो भी उसकी धुन को सुन लेता है वह मोहित हो जाता है ॥ ४७४ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपियों को जो अच्छा लगता है, कृष्ण वही बजा रहे हैं । रामकली, शुद्ध मल्हार और बिलावल अत्यन्त ही सुन्दर बन पड़ रहे हैं । मुरली की ध्वनि को सुन कर देवस्त्रियाँ तथा राक्षसियाँ सभी प्रसन्न हो रही हैं और वन की मृगियाँ मृगों को छोड़कर दौड़ी चली आ रही हैं । श्याम मुरली बजाने में इतने प्रवीण हैं कि स्वर के माध्यम से रागों को साकार करके दिखा रहे हैं ॥ ४७५ ॥ मुरली की धुन सुनकर सभी ग्वालिनें प्रसन्न हो रही हैं और लोगों की तरह-तरह की बातें वे प्रेमपूर्वक सहन कर रही हैं । वे कृष्ण की ओर इस प्रकार दौड़ी चली जा रही हैं, जैसे लाल रंग के कीड़ों को देखकर नागिनों के झुण्ड उन्हें खाने के लिए लपकते हैं ॥ ४७६ ॥ जिसने प्रसन्न होकर विभीषण को राज दिया और कुपित होकर रावण का नाश किया, जो क्षण भर में दैत्यों के दलों को दीन बनाता हुआ खण्ड-खण्ड कर देता है जिसने मुर नामक राक्षस का वध किया वही कृष्ण

सो फुन भूमि बिखै ब्रिज की संग गोपन कै सु करै रस क्रीड़ा ॥ ४७७ ॥ ॥ सवैया ॥ खेलत कान्ह सोऊ तिन सो जिह की सु करै सभ ही जग आस्त्रा। सो सभ ही जग को पति है तिन जीवन के बल को पर मात्रा। राम ह्वै रावन से जिनहूं कुपि जुद्ध कर्यो करिकै ध्रम छात्रा। सो हरि बीच अहीरन के करिबे कहु कउतक कीन सु जात्रा ॥ ४७८ ॥ ॥ दोहरा ॥ जबै क्रिशन संग गोपिअन करी मानुखी बात। सभ गोपी तब यौ लख्यो भयो बस्य (मू०ग्रं०३१५) भगवान ॥ ४७९ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह तबै संग गोपिन के तब ही फुन अंतरिध्यान ह्वै गय्यो। खे कहु ग्यो धरनी धसि ग्यो किधो मद्धि रह्यो समझ्यो नही पय्यो। गोपिन की अब यौ गत भी तब ता छबि को कबि स्याम कहय्यो। जिउँ संग मीनन के लरकै तिन त्याग सभो मनो बारध रय्यो ॥ ४८० ॥ गोपिन को तन की छुटगी सुधि डोलत है बन मै जनु बउरी। एक उठै इक झूम गिरै ब्रिज की महरी इक आवत दउरी। आतुर ह्वै अति ढूंढत है तिनकै सिर की गिर गी सु पिछउरी। कान्ह को ध्यान

अब व्रजभूमि में गोपियों के साथ रस-क्रीड़ा कर रहा है ॥ ४७७ ॥ ॥ सवैया ॥ वही कृष्ण खेल खेल रहा है। जिसकी सारा संसार प्रशंसा करता है, वही सारे संसार का स्वामी है और सारे संसार के जीवन का आधार है। उसी ने राम बनकर अत्यन्त क्रोधित होकर क्षत्रिय-धर्म का पालन करते हुए रावण के साथ युद्ध किया था। वही रासलीला करने के लिए ग्वालिनों के बीच रमण कर रहा है ॥ ४७८ ॥ ॥ दोहा ॥ जब कृष्ण ने गोपियों के साथ मनुष्यों जैसा व्यवहार किया, तो सभी गोपियों ने मन में ये मान लिया कि अब उन्होंने भगवान को वश में कर लिया है ॥ ४७९ ॥ ॥ सवैया ॥ तब पुनः कृष्ण गोपियों से अलग होकर अन्तर्धान हो गये। वे आकाश में चले गये या धरती में धँस गये या कहीं बीच में ही रह गये, कोई भी इस तथ्य को समझ नहीं पाया। गोपियों की जो गति हुई, उसे कवि श्याम ने कहते हुए बताया है कि वे ऐसी लग रही थीं, मानो समुद्र से लड़कर मछलियाँ अलग होकर तड़प रही हैं ॥ ४८० ॥ गोपियों को शरीर का होश नहीं रहा और वे पागलों की भाँति दौड़ी फिर रही हैं। कोई उठकर बेहोश होकर गिर पड़ती है और कहीं कोई व्रज की स्त्री दौड़ी चली आ रही है। वे व्याकुल होकर कृष्ण को ढूंढ रही हैं और उनके सिर के वस्त्र बिखर गये हैं। कृष्ण का ध्यान

बस्यो मन मै सोऊ जान गहै फुन रूखन कउरी ॥ ४८१ ॥ ॥ सवैया ॥ फेर तजै तिन रूखन को इह भांति कहै नंदलाल कहारे । चंपक मउलसिरी बट ताल लवंगलता कचनार जहारे । पै जिह के हम कारन को पग कंटक का सिर धूप सहारे । मो: हम को तुम देहु बताइ परैं तुम पाइन जाव तिहारे ॥ ४८२ ॥ बेल बिराजत है जिह जागुल चंपक का सु प्रभा अति पाई । मौलिसिरी गुल लाल गुलाब धरा तिन फूलन सो छब छाई । चंपक मउलसिरी बट ताल लवंगलता कचनार सुहाई । बार झरैं झरना गिर ते कबि स्याम कहै अति ही सुखदाई ॥ ४८३ ॥ ॥ सवैया ॥ तिन कानन को हरि के हित ते गुपिआ ब्रिज की इह भांत कहै । बर पीपर हेरहि या न कहूं इह के हित सो सिर धूप सहै । अहो किउ तजि आवत हो भरता बिन कान्ह पिखे नहि धाम रहै । इक बात करैं सुन कै इक बोल बरूखन को हरि जान गहै ॥ ४८४ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह बियोग को मान बधू ब्रिज

उनके मन में भ्रम हुआ है और वे वृक्षों को आलिंगन करते हुए कृष्ण का पुकार रही हैं ॥ ४८१ ॥ ॥ सवैया ॥ फिर वृक्षों को छोड़कर वे नन्दलाल कृष्ण के लिए चम्पक, मौलिश्री, ताल के वृक्षों, लवंगलता एवं कचनार आदि को ताड़ियों में पूछ रही हैं कि हम जिसके लिए सिर पर धूप आदि सहन करती हुई तथा पैरों में कांटों की पीड़ा को झेलती हुई घूम रही हैं, तुम बताओ वे कृष्ण कहां हैं। हम तुम्हारे पांव पड़ती हैं ॥ ४८२ ॥ वे गोपियां कृष्ण को ढूंढ़ने हुए वहां घूम रही हैं जहां बेल के पेड़, चम्पा की झाड़ियां, मौलिश्री और लाल गुलाब के पौधे शोभा पा रहे हैं। चम्पक, मौलिश्री, लवंगलता, कचनार आदि के वृक्ष शोभायमान हो रहे हैं और अत्यन्त सुखदाई झरने बह रहे हैं ॥ ४८३ ॥ ॥ सवैया ॥ उस कृष्ण के प्रेम में व्रज की गोपियां इस प्रकार कह रही हैं कि कहीं वह पीपल के पेड़ के पास तो नहीं है और इस प्रकार कहती हुई वे सिर पर धूप सहन करती हुई इधर-उधर दौड़ रही हैं। पुनः वे आपस में भी विचार-विमर्श करती हैं कि हम क्यों अपने पतियों को त्यागकर इधर-उधर डोल रही हैं, परन्तु साथ-ही-साथ वे अपने मन से इसका उत्तर पाती हैं कि हम इसलिए दौड़ रही हैं क्योंकि हम कृष्ण के बिना रह नहीं सकती। इस प्रकार कोई बात कर रही है और कोई वृक्ष को ही कृष्ण समझकर उसका आलिंगन कर रही है ॥ ४८४ ॥ सवैया ॥ कृष्ण

डोलत है बन बीच दिवानी । कूँजन ज्यों कुरलात फिरैं तिह जा जिह जा कछु खान ना पानी । एक गिरैं मुरझाइ धरा पर एक उठै कहि कै इह बानी । नेह बढाइ महा हम सो कत जात भयो भगवान गुमानी ॥ ४८५ ॥ ॥ सवैया ॥ नैन नचाइ मनो म्रिग से सभ गोपनि को मन चोर लयो है । ताही कै बीच रह्यो गडिकै तिह ते नहि छूटन नैक भयो है । ताही के हेत फिरैं बन मै तजि कै ग्रिह स्वास न एक लयो है । सो बिरथा हम सो बन भ्रात कहो हरि जी किह ओर गयो है ॥ ४८६ ॥ जिनहूँ बन बीच मरीच मर्यो (मू०ग्रं०३१६) पुर रावन सेवक जाहि हर्यो है । ताही सो हेत कर्यो हमहूँ बहु लोगन को उपहास सह्यो है । वा मरसे द्रिग सुंदर सो मिलि ग्वारनियों इह भाति कह्यो है । ताही की चोट चटाक लगे हमरो मनूआ म्रिग ठउर रह्यो है ॥ ४८७ ॥ ॥ सवैया ॥ बेद पड़े सम को फल है बहु मंगन को जोऊ दान दिवावै । कौन अतीथ लखै फल हो जोऊ आथित लोगन अंनु जिवावै । दान लहै हमरे जिय को इह कै सम को न सोऊ फल पावै ।

के वियोग में व्रजवधुएँ दीवानी होकर वन में इस प्रकार घूम रही हैं जैसे क्रौंच पक्षी चीत्कार करता हुआ घूमता है । उन्हें खाने और पानी की भी कोई सुधि नहीं है । कोई मुरझाकर धरती पर गिरती है और कोई यह कहते हुए उठती है कि वह अभिमानी कृष्ण हमसे प्रेम बढ़ाकर कहाँ चला गया है ॥ ४८५ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने मानो अपने मृग के समान नयनों को नचाते हुए सभी गोपियों का मन चुरा लिया है । उनका मन उसी के नयनों में गड़कर रह गया है और वह क्षण भर के लिए भी इधर-उधर नहीं होता । उसी के लिए साँस रोके हुए वे वन में इधर-उधर दौड़ती फिर रही हैं और कह रही हैं कि, हे वन के बन्धुओ ! कोई बताओ, श्रीकृष्ण किस ओर गये हैं ? ॥ ४८६ ॥ जिसने वन में मारीच को मारा और रावण के अन्य सेवकों को नष्ट किया, उसी से हमने प्रेम किया है तथा बहुत से लोगों के उपहासों को सहन किया है । उसके सुन्दर नेत्रों के बारे में सभी ग्वालिनें एक स्वर से इस भाँति कह रही हैं कि उन्हीं नेत्रों के चोट के कारण हम सबका मन रूपी मृग (घायल होकर) एक ही स्थान पर निश्चल हो गया है ॥ ४८७ ॥ ॥ सवैया ॥ जो माँगनेवालों को दान देता है, उसे वेदपाठ के समान फल प्राप्त होता है । जो अतिथि को भोजन खिलाता है उसे भी अनेकों फल प्राप्त होते हैं जो [illegible]

जो बन मै हमको जरता इक एक घरी भगवान दिखावै ।।४८८।। ।। सवैया ।। जाहि भभीछन लंक दई अरु दैतन के कुपि कै गन मारे । पै तिनहू कबि स्याम कहै सभ साधन राख असाध संघारे । सो इह जा हम ते छप गयो अतही करकै संग प्रीत हमारे । पाइ परी कहियो बन भ्रात कहो हरि जी किह ओर पधारे ।। ४८६ ।। ।। सवैया ।। ग्वारन खोजि रही बन मै हरि जी बन मै नही खोजत पाए । एक बिचार कर्‌यो मन मै फिरकै न गयो कबहूं उहु जाए । फेर फिरी मन मै गिनती कर पारथ सूत की डोर लगाए । यौ उपजी उपमा चकई जनु आवत है कर मै फिर धाए ।। ४९० ।। आइकै ढूढ रही सोऊ ठउर तहा भगवान न ढूढत पाए । इउ जु रही सभ ही चकि कै जनु चित्र लिखी प्रितिमा छबि पाए । अउर उपाव कर्‌यो पुन ग्वारन कान्ह ही भीतरि चित्त लगाए । गाइ उठी तिहके गुन एक बजाइ उठी इक स्वांग लगाए ।। ४९१ ।। होत बकी इक होत त्रिणावत एक अघासुर ह्वै कर धावै । होइ हरी तिन

के लिए भी भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन करा दे, वह बेशक हमारे प्राणों का भी दान हमसे ले ले। इससे बढ़कर उसे अन्य कोई फल नही मिलेगा ।। ४८८ ।। ।। सवैया ।। जिसने विभीषण को लंका दे दी और क्रोधी होकर दैत्यों को मार दिया; कवि श्याम का कथन है कि उसी ने साधुओं की रक्षा की है और असाधुओं का संहार किया है । वही अब हम से प्रेम करके हमारी आंखों से ओझल हो गया है । हे वनवासियो ! हम तुम्हारे पाँव पड़ती हैं । तुम हमें बता दो कि श्रीकृष्ण किस ओर गये हैं ।। ४८९ ।। ।। सवैया ।। ग्वालिनें वन में खोजती रहीं, परन्तु वे कृष्ण को न पा सकीं । फिर उनके मन में विचार आया कि कहीं वे उस ओर न गये हों । पुनः वे फिर मन में सोचती हैं और अपने मन की डोरी को उस कृष्ण के साथ लगाती हैं । कवि उनके इस प्रकार सोचने और दौड़ने की उपमा देते हुए कहता है कि वे चकोरी के समान कभी इधर, कभी उधर दौड़ती फिर रही हैं ।। ४९० ।। जिस स्थान पर वे कृष्ण को ढूंढने के लिए जाती हैं, वहाँ वे उसे नही पाती और इस प्रकार पत्थर की प्रतिमा के समान चकित-सी होकर लौट पड़ती हैं, तब गोपियों ने एक उपाय और किया और कृष्ण में ही अपना मन लगा दिया । कोई उसके गुणों का गायन कर उठी और कोई कृष्ण का ही वेश धारण कर शोभायमान हो उठी ।। ४९१ ।। किसी ने बकासुर का किसी ने तृणावर्त का तथा किसी ने अघासुर का वेश

कान्ह चरित्र सभै करकै सभ ग्वारन फेर लगी गुन गावन । ताल बजाइ बजा मुरली कबि स्याम कहै अति ही करि भावन । फेरि चितार कह्यो हमरे संग खेल कर्यो हरि जी इह ठावन । ग्वारन स्याम की भूल गई सुध बीच लगी मन के दुख पावन ॥ ४९६ ॥ अति होइ गई तनमै हरि साथ सु गोपन की सभ ही घरनी । तिह रूप निहारकै बस भई जु हुती अति रूपन की धरनी । इह भांत परी मुरझाइ धरी कबि ने उपमा तिह की बरनी । जिम घंटक हेर मै भूम के बीच परै गिर बान लगे हरनी ॥ ४९७ ॥ ॥ स्वैया ॥ बरुनीसर भउहन को धन कै सु सिगार के साजन साल करी । रस को मन मै अति ही कर कोप सु कान्ह के सामुहि जाइ अरी । अति ही करि नेह को क्रोधु मनै तिह ठउर ते पंग न एक टरी । मनो मैन ही सो अति ही रन कै धरनी पर ग्वारन झूझ परी ॥ ४९८ ॥ तिह ग्वारन को अति ही जिअ प्रेम तबै प्रगटे भगवान सिताबी । जोति भई धरनी पर इउ रजनी महि छूटत जिउं महताबी । चउक परी तबही इह इउ जैसे चउक परै तम मै डरि ख्वाबी ।

गाने लगीं और ताल बजाकर, मुरली बजाकर प्रसन्न होने लगीं । कोई कह रही है कि कृष्ण ने इस स्थान पर मेरे साथ खेल खेला था और यह कहते-कहते ग्वालिनों को कृष्ण की सुधि भी भूल गयी और वे कृष्ण के वियोग के दुःख में दुःखी हो उठीं ॥ ४९६ ॥ इस प्रकार गोपों की स्त्रियाँ श्रीकृष्ण के ध्यान में तन्मय हो गयीं और जो स्वयं इतनी रूपवान थीं वे श्रीकृष्ण के स्वरूप के वशीभूत हो गईं । उनको मुरझाई हुई पड़ी देखकर कवि ने कहा है कि वे ऐसी पड़ी हुई है मानो हिरणी को बाण लगा हुआ हो और वह भूमि पर पड़ी हुई हो ॥ ४९७ ॥ ॥ सवैया ॥ बरौनियों को तीर बनाते हुए, भौंहों को धनुष मानते हुए, शृंगार करके और अत्यन्त क्रोधित होकर मानो गोपियाँ कृष्ण के सम्मुख अड़कर खड़ी हो गयीं । वे प्रेम रूपी क्रोध को दिखाते हुए एक भी पाँव पीछे नहीं हट रही हैं और ऐसी लग रही हैं कि मानो सभी ग्वालिनें कामदेव से युद्ध करते हुए रणस्थल पर जूझकर गिर पड़ी हों ॥ ४९८ ॥ ग्वालिनों का उत्कट प्रेम देखकर भगवान श्रीकृष्ण शीघ्र ही प्रकट हुए । उनके प्रकट होते ही धरती पर इस प्रकार प्रकाश हो गया मानो रात्रि में फुलझड़ियाँ चल निकली । सभी उनको देखकर इस प्रकार चौंक उठी जैसे कोई स्वप्न में डरकर चौंक उठता है । उन सबका मन इस प्रकार शरीर को छोड़कर दौड़

छाडि चल्यो तन को मन इउ जिम भाजन है ग्रिह छाडि शराबी ॥ ४९९ ॥ ॥ स्वैया ॥ ग्वारन धाइ चली मिलबे कहु जो पिखए भगवान गुमानी । जिउँ म्रिगनी म्रिग पेख चलै उ हुती अति रूप त्रिखै अभिमानी । ता छबि की अति ही उपमा कबि नै मुख ते इह भांत बखानी । जिउँ जल चात्रिक बूंद परै जिम कूदि परै मछली पिख पानी ॥ ५०० ॥ ॥ स्वैया ॥ राजत है पीअरो पट कंध बिराजत है म्रिग सो म्रिग दोऊ । छाजत है मन सो उर मैं नदिआ पति साथ लिए फुन जोऊ । कान्हू फिरै तिन गोपन मै जिह को जग मै सम तुलि न कोऊ । ग्वारन रीझ रही ब्रिज की सोऊ रीझत है चक देखत सोऊ ॥ ५०१ ॥ ॥ कबित ॥ (मू०ग्रं०३१८) कउल जिउँ प्रभात तैं बिछर्यो मिलो रात तैं गुनी जिउँ सुर सात तैं बचायो चोर गात तैं । जैसे धनी धन तैं अउ रिनी लोक मन तैं लरय्या जैसे रन तैं तजय्या जिउँ नसात तैं । जैसे दुखी सुख तैं अभूखो जैसे भूख तैं सु राजा शत्र आपने को सुने जैसे

चला जैसे कुछ शराबी घर को छोड़कर दौड़ पड़ता है ॥ ४९९ ॥ ॥ सवैया ॥ अभिमानी भगवान को देखकर सभी ग्वालिनें उनसे मिलने के लिए वैसे ही दौड़ चली जैसे अभिमानी मृगिणी मृग को देखकर उसकी ओर दौड़ पड़ती है । उस छवि की उपमा का वर्णन इस प्रकार किया है और कहा है कि वे इस प्रकार प्रसन्न हो रही हैं मानो पपीहे को बादल की बूँद मिल गयी हो अथवा मछली पानी को देखकर उसमें कूद पड़ रही हो ॥ ५०० ॥ ॥ सवैया ॥ श्रीकृष्ण के कंधे पर पीताम्बर विराजमान है और उनके मृग के समान दोनों नेत्र शोभायमान हो रहे हैं । वे नदियों के स्वामी के रूप में शोभायमान हो रहे हैं । श्रीकृष्ण उन गोपियों में विचरण कर रहे हैं जिनकी तुलना का संसार में अन्य कोई नहीं है । व्रज की ग्वालिनें श्रीकृष्ण को देखकर प्रसन्न और आश्चर्यचकित हो रही हैं ॥ ५०१ ॥ ॥ कबित्त ॥ कमल का फूल जैसे सुबह होने पर प्रसन्न होकर रात का बिछड़ा हुआ सूर्य से मिलता है और आनन्दित होता है, जैसे गायक सात स्वरों में प्रसन्न रहता है, जैसे चोर अपने शरीर को बचाकर खुश होता है, जैसे धनवान धन को देखकर और क़र्ज़दार मन-ही-मन बचने के उपाय सोचकर प्रसन्न होता है, जैसे योद्धा लड़ने के अवसर को और भागनेवाला भागने के अवसर को देखकर प्रसन्न होता है जैसे दुखी सुख को पाकर प्रसन्न होता है अपने का रागी

घात तें । होत है प्रसंन जैसे एते एती बातन तैं होत है प्रसंन्य गोपी तैसे कान्ह बात तैं ॥ ५०२ ॥ ॥ कान्ह जू बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ हसि बात कही संगि गोपिन कान्ह चलो जमना तट खेल करैं । छिटकारन सो छिरकै तिह आ तुमहूं तरो हमहूं तरैं । गुहि कै बन फूलन सुंदर हार सु कंठ करैं तिन डार गरैं । बिरहा छुध को तिह ठउर बिखै हस कै रस कै संग पेट भरैं ॥ ५०३ ॥ आइस मान तबै हरि को सभ धाइ चली गुपिआ तिह ठउरैं । एक चलै मुसकाइ चली इक एक चलैं हरए इक बउरैं । स्याम कहै उपमा तिहकी जल मै जमुना कहु ग्वारन हउरैं । रीझ रहे बन के म्रिग देख सु अउर पिखै गज गामन सउरैं ॥ ५०४ ॥ स्याम समेत सभै गुपिआ जमुना जल को तरि पारि परय्या । पार भई जब ही हित सो घिरबा करकै तिह को तिसटय्या । ता छबि को अतिही उपमा कबि नै मुख ते इह भांत सुनय्या । कान्ह भयो ससि मुख मनो सम राजत ग्वारन तोर तरय्या ॥ ५०५ ॥ ॥ स्वैया ॥ बात लगी कहने मुख ते कबि स्याम कहै मिल कै

भूख लगने पर प्रसन्न होता है और राजा अपने शत्रु के मारे जाने का समाचार सुनकर प्रसन्न होता है, वैसे ही सभी गोपियाँ कृष्ण की बातों को सुन-सुनकर प्रसन्न हो रही हैं ॥ ५०२ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने गोपियों से हँसकर कहा कि आओ, यमुना के तट पर खेल खेलें । एक-दूसरे को पानी के छींटे मारें । तुम भी तैरो और हम भी तैरें । सुन्दर फूलों के हार गले में डालकर हम क्रीड़ा करें । विरह की भूख का हम लोग हँस-खेलकर पेट भर दें ॥ ५०३ ॥ कृष्ण की आज्ञा मानकर सभी गोपियाँ उस स्थान की तरफ़ चल पड़ीं । एक मुस्कुराकर चल रही है, दूसरी धीरे-धीरे चल रही है और कोई दौड़कर जा रही है । कवि श्याम कहता है कि ग्वालिनें यमुना के जल में तैर रही हैं और उन्हें गजगामिनियों के इच्छानुसार विचरण को देखकर वन के मृग भी प्रसन्न हो रहे हैं ॥ ५०४ ॥ कृष्ण के समेत सभी गोपियाँ यमुना को पार करके दूसरी ओर चली गयीं और पार होते ही गोल घेरा बनाकर खड़ी हो गयीं, यह छवि इस प्रकार लग रही थी कि मानो कृष्ण तो बीच में चन्द्र के समान हों और ग्वालिनें चन्द्र के परिवार के तारागों के समान उसे घेरे खड़ी हों ५०५ ॥ ॥ सवैया ॥ सभी गोपियाँ, जो कि चन्द्रमुखिय और मृगनयनियाँ थीं, मिलकर बातें कहने लगीं व्रज की

करै हूक कौन जु आनै । एकन प्रीत के भेद जनै ओऊ
प्रीति करै अरकौ तिह मानै । सो नर मूड़ बिखै कहिऐ जग जो
नर रंच न प्रीत पछानै । सो चरचा रस की इह भाँत सु
ग्वारनियाँ संग कान्ह बखानै ॥ ५०९ ॥ ॥ गोपी बाच ॥
॥ सवैया ॥ ग्वारनिया इह भाँत कहै करि नेह को अंत दगा
कोऊ दैहै । छोरन छाडि परी हरि ज्यो जन को छल सो तिह
को हरि लैहै । जो बटहा जन धावत है कोऊ भ्रात बह्यो पिखकै
मधि लैहै । पै खिझकै अत ही गुपिआ इह भाँत कह्यो तिन
को सम ह्वैहै ॥ ५१० ॥ जब ही इह ग्वारन बात कही तब ही
तिनके संग कान्ह हसे । जिह नाम के लेत जरा मुख ते तजकै
गनका सभ पाप नसे । न जप्यो जिह जाप सोऊ उजरे जिह
जाप जप्यो सोऊ धाम बसे । तिन गोपिन सो इह भाँत कह्यो
हमहूँ अत ही रस बीच फसे ॥ ५११ ॥ ॥ सवैया ॥ कहिकै
इह बात हसे हरि जू उठकै जमुना जल बीच तरे । छिन एक
लग्यो न तबै तिह को लखिकै जमुना कह पार परे । लखिकै

प्रेम करते हैं । दूसरे ऐसे हैं जो प्रेम करने पर ही प्रेम करते हैं और किये हुए प्रेम का उपकार मानते हैं । एक ऐसे होते हैं जो प्रेम के भेद भी जानते हैं और प्रेम को मन में स्वीकार करते हैं । चौथे प्रकार के पुरुष जगत में ऐसे होते हैं जिनको मूर्ख कहा जा सकता है, क्योंकि इनको तनिक भी प्रेम की पहचान नहीं होती । इस प्रकार की चर्चा ग्वालिनें और कृष्ण आपस में कर रहे हैं ॥ ५०९ ॥ ॥ गोपी उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ ग्वालिनें यह कह रही हैं कि देखें, प्रेम का अन्त करके धोखा कौन देता है । कृष्ण तो ऐसा है जो सामने शत्रु को छोड़कर दूसरे की भलाई करने जाने के लिए तैयार रहता है और छल से स्वयं छला जाता है । यह तो ऐसा है जैसे कोई वर्षाकाल में साथ चला जा रहा हो और घात लगाकर डाकू का रूप धारण कर रास्ते में ही किसी साथी को मार दे । गोपियों ने खीझकर कहा कि यह कृष्ण तो ऐसा ही है ॥ ५१० ॥ जब गोपियों ने यह बात कही तो उनके साथ कृष्ण हँसने लगे । जिसका नाम लेने से गणिका जैसी पापिन के पाप नष्ट हो गये, जहाँ उसका नाम-स्मरण नहीं किया गया, वहाँ उजाड़ हो गयी और उसके नाम का जाप करनेवालों के घर बस गये, उस कृष्ण ने गोपियों से यह कहा कि मैं भी भीषण रूप से (तुम लोगों के) प्रेम-रस में फंस गया हूँ ॥ ५११ ॥ ॥ सवैया ॥ यह बात कहकर हँसते हुए कृष्ण जी उठ और यमुना में कूद पड़े एक क्षण में वे यमुना को पार कर

जल को संग गोपिन के भगवान महा उपहास करे । बहु होरनि तें अरु बहुयनि तै कुरमालन तें अति सोक खरे ॥ ५१२ ॥
॥ कान्ह बाच ॥ ॥ सवैया ॥ रजनी पय गी तबही भगवान कह्यो हसिकै हम रास करें । ससि राजत है सित गोपिन के मुख सुंदर सेत ही हार करें । हित सो भिजभूमि विखै सबही रस खेल करें कर डार गरें । तुमको ओऊ शोक बढ्यो बिछुरे हम सो मिलिकै अब शोक हरें ॥ ५१३ ॥ ऐहो त्रिया कहि स्यो जदुबीर सबै तुम रास को खेल करो । गहिकै कर सो कर मंडलकै न कछू मन भीतर लाज धरो । हमहूं तुमरे संग रास करें नचिहै भखियो नह नैकु डरो । सब ही मन शोक अशोक करो अरु ही मम शोकन को सु हरो ॥ ५१४ ॥
॥ सवैया ॥ तिन सो भगवान कहो फिर यौं सजनी हमरी बिनती सुन लीजै । आनंद चोख करो मन के जिह ते हमरे तन के मन भीजै । मिलथा जिह ते हित मानत है सब ही उठकै सोऊ कारज कीजै । वै रस को सिर पाव तिसै मन (मू०ग्रं०३२०) को सभ शोक बिदा करि दीजै ॥ ५१५ ॥ हसि कै भगवान

गये । श्रीकृष्ण गोपियों और जल को देखकर खिलखिलाकर हँसने लगे । बहुत रोकने पर भी और परिवार की मान-मर्यादा का ध्यान दिलाने पर भी गोपियों को कृष्ण ही अच्छा लगता है ॥ ५१२ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥
॥ सवैया ॥ रात हो गयी तब भगवान ने हँसकर कहा कि आओ, रासलीला करें । श्वेत चन्द्रमा गोपियों के मुख पर विराजमान है और श्वेत फूलों के हार भी उन्होंने गले में डाल रखे हैं । ये सब बड़े प्रेम से एक-दूसरे के गले मे हाथ डालकर खेल खेल रहे हैं और कृष्ण कह रहे हैं कि मुझसे बिछुड़ने पर जो शोक तुम लोगों को हुआ था, आओ, अब हम लोग मिलकर उस दुःख को दूर करें ॥ ५१३ ॥ स्त्रियाँ कहने लगीं कि हे यदुवीर ! अब तुम रास का खेल खेलते हो तो अपने हाथ से दूसरों का हाथ पकड़ते हुए इस मण्डली मे तुम्हें तनिक भी लाज नहीं आती । हम भी तुम्हारे साथ अभय होकर रास एवं नृत्य करती हैं । हम सबके मन को शोक-रहित करते हुए हम सबों के दुःख को दूर करो ॥ ५१४ ॥ ॥ सवैया ॥ उन स्त्रियों से भगवान कृष्ण ने यह कहा कि हे सजनी ! मेरी प्रार्थना सुनो और अपने मन में आनन्द भर लो जिससे तुम लोगों का मन मेरे तन में लगा रहे । हे मित्रो ! जिसमें तुम लोगों का हित हो और जो तुम्हारे मन को भाये वही काम करो और सिर से पाँव तक प्रेम रस मे अपने-आपको डुबोते हुए

कहो फिरि यो रस की बतिया हम ते सुन लइयै। जा के लिए मिलवा हित मानन सो सुनकै उठ कारज कइऐ। गोपिन साथ किया करिकै कबि स्याम कह्यो मुसलीधर भइयै। जा संग हेत महा करियै बिन दामन ताही के हाथ बिकइयै ॥५१६॥ कान्र की सुनकै बतिआ मन मै तिन ग्वारन धीर गह्यो है। सोक जिती मन भीतर थो रस पावक मो त्रिण तुलिल बह्यो है। रास करो सभ ही मिलिकै जसुधा सुध को तिन मात कह्यो है। रीझ रही प्रिथमी प्रिथमीगन अउ नभिमंडल रीझ रह्यो है॥ ५१७॥ गावत एक बजावत ताल सभै ब्रिजनार महा हित सो। भगवान को मान कह्यो तबही कबि स्याम कहै अति ही चित सो। इन सीख लई गति गामन ते सुर भामन ते कि किधो कित सौ। अब मोह इहै समझ्यो सु परै जह कान सिखे इनहूं तित सौ॥ ५१८॥ ॥ सवैया॥ मोर को पंख बिराजत सीस सु राजत कुंडल कानन दोऊ। लाल की माल सु छाजत कंठहि ता उपमा सभ है नहि कोऊ। जो रिप पै मग आस चल्यो सुनकै उपमा चलि देखत ओऊ। अउर की बात

मन के सभी दुःखों को विदा कर दो॥ ५१५॥ भगवान ने हँसकर फिर कहा कि मुझसे रस की बातें सुन लो और मित्रो! जो तुम्हें अच्छा लगे वही कार्य करो। गोपियों के साथ भाई बलराम से भी श्याम ने कहा कि जिसके साथ प्रेम कर लिया जाय उसके हाथों तो बिना मोल के बिक जाया जाता है॥ ५१६॥ कृष्ण की बातें सुनकर उन ग्वालिनों को धैर्य हुआ और उनके मन में दुःख रूपी तिनके रस रूपी अग्नि से जलकर नष्ट हो गये। यशोदा ने भी सबसे कहा कि सब मिलकर रासलीला करो और यह दृश्य देखकर पृथ्वी के निवासी और नभमण्डल भी प्रसन्न हो रहा है॥ ५१७॥ ब्रज की सभी नारियाँ अत्यन्त प्रेम से गा-बजा रही हैं और चित्त में भगवान श्रीकृष्ण पर गर्व कर रही हैं। इनकी चाल को देखने से ऐसा लगता है कि यह गति इन्होंने हाथियों से अथवा देव-स्त्रियों से सीखी है। कवि का कथन है कि मुझे तो ऐसा लगता है, मानो यह सब इन्होंने कृष्ण से सीखा हो॥ ५१८॥ ॥ सवैया॥ सिर पर मोर का पंख और कानों में कुण्डल शोभायमान हो रहे हैं। गले में लालों की माला विराज रही है और इसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। शत्रु भी अपने मार्ग पर चलता हुआ कृष्ण को देखने के लिए विचलित हो उठता है अब अन्य लोगों की बात क्या कहें देवगण भी कृष्ण को देख

कहा कहियै कबि स्याम सुरादिक रीझत लोऊ ॥ ५१९ ॥ गोपन संग तहा भगवान मनै अति ही हित को कर गावै । रीझ रहे खग ठउर समेत सु या बिधि ग्वारनि कान रिझावै । जा कहु खोजि कई गण गंध्रब किनर भेव न रंचक पावै । गावत सो हरि जू तिह जा तम कै म्रिगनी चलि कै म्रिग आवैं ॥ ५२० ॥ गावत सारंग सुद्ध मलार बिभास बिलावल अउ फुन गउरी । जा सुर स्रोनन मै सुनकै सुर भामन धावत आर पिछउरी । सो सुनकै सभ ग्वारनिया रस के संग होइ गई जन बउरी । त्याग कै कानन ता सुन कै म्रिग लै म्रिगनी चलि आवत दउरी ॥ ५२१ ॥ ॥ सवैया ॥ एक नचै इक गावत गीत बजावत ताल बितावत भावन । रास बिखै अति ही रस सो सु रिझावत काज सभै मनभावन । चांदनी सुंदर रात बिखै कबि स्याम कहै सु बिखै रुत सावन । ग्वारनिया तजि कै पुर को मिलि खेलि करै रस नीकनि ठावन ॥ ५२२ ॥ सुंदर ठउर बिखै कबि स्याम कहै मिलि ग्वारन खेल (मू०ग्रं०३२१) कर्‌यो है । मानहु आप ही ते ब्रहमा सुरमंडल सुद्धि बनाइ

देखकर प्रसन्न हो रहे हैं ॥ ५१९ ॥ गोपियों के संग कृष्ण अत्यन्त प्रेम-पूर्वक गा रहे हैं और कृष्ण ग्वालिनों को इस प्रकार रिझा रहे हैं कि उन्हें देखकर पक्षी भी अपने स्थान पर स्थिर हो गये । जिस प्रभु का रहस्य गण, गन्धर्व, किन्नर आदि भी नहीं जान सकते, वे प्रभु गा रहे हैं और उनके गायन को सुनकर मृगियाँ मृगों को छोड़कर चली आ रही हैं ॥ ५२० ॥ वे सारंग, शुद्ध मल्हार, विभास, बिलावल और गौड़ी राग गा रहे हैं और उनके स्वर को सुनकर देवस्त्रियाँ भी सिर के वस्त्रों का त्याग करती हुई दौड़ी चली आ रही हैं । ग्वालिनें भी उस स्वरध्वनि को सुनकर बावली हो गयी हैं और मृग-मृगियों को साथ लेकर जंगल त्यागकर कृष्ण का स्वर सुनने के लिए दौड़े चले आ रहे हैं ॥ ५२१ ॥ ॥ सवैया ॥ कोई नाच रहा है, कोई गा रहा है और कोई भिन्न प्रकार से भावों का प्रदर्शन कर रहा है । उस रासलीला में सभी मनमोहक ढंग से एक-दूसरे को रिझा रहे हैं । कवि श्याम का कथन है कि चांदनी रातों में और सावन की ऋतु में ग्वालिनें नगर को छोड़कर अच्छे स्थानों में मिलकर कृष्ण के साथ खेल खेल रही हैं ॥ ५२२ ॥ कवि श्याम का कथन है कि सुन्दर स्थानों पर मिलकर ग्वालिनों ने कृष्ण के साथ खेल खेला है और यह ऐसा लग रहा है मानो ब्रह्मा ने देवमण्डलों की रचना की हो इस दृश्य

धर्यो है । ज्यों बिख के खग रीझ रहे भ्रिग त्याग तिसै नही चारो चर्यो है । अउर की बात कहा कहिये जिहके पिखए भगवान छर्यो है ।। ५२३ ।। इत ते नंदलाल सखा लिए संग उतै फुन ग्वारन जूथ सबैं । बहसा बहसी तह होन लगी रस बातन सो कबि स्याम तबैं । जिह को ब्रहमा नही अंत लखैं नह नारद पावत जाहि छबैं । भ्रिग जिउं भ्रिगनी महि राजत है हरि तिउं गन ग्वारन बीच फबैं ।। ५२४ ।। ।। स्वैया ।। नंदलाल लला इत गावत है उत ते सभ ग्वारनिया मिलि गावें । फागुन की रुत ऊपरि अंबन मानहु कोकिलका कुहकावैं । तीर नदी सोऊ गावत गीत जोऊ उनके मन भीतर भावैं । नैन मछत्र पसार पिखैं सुरदेववधू मिलि देखनि आवैं ।। ५२५ ।। मंडल रास बचित्र महा सम जे हरि को भगवान नच्यो है । ताही के बीच कहै कबि इउ रस कंचन की सम तुलि मच्यो है । तासो बनाइबे को ब्रहमा न बनो करिकै जुग कोटि पच्यो है । कंचन कै तनि गोपनि कै तिह मद्धि मनी मन तुल्लि गच्यो है ।। ५२६ ।। जल मै सफरी जिम केल करैं

को देखकर पक्षी प्रसन्न हो रहे हैं, मृग चारा और पानी की सुध भूल गये हैं तथा और क्या कहा जाय, इस दृश्य को देखकर भगवान भी धोखा खा गए हैं ।। ५२३ ।। इधर श्रीकृष्ण जी ने सखाओं को साथ लिया और उधर से ग्वालिनें भी झुण्ड बांधकर चल पड़ीं । रसयुक्त बातों को लेकर वाद-विवाद होने लगा । भगवान का रहस्य ब्रह्मा और नारद भी नहीं पा सके । जैसे मृगियों में मृग शोभायमान होता है, वैसे श्रीकृष्ण गोपियों के बीच विराजमान है ।। ५२४ ।। ।। सवैया ।। इधर कृष्ण गा रहे हैं, उधर ग्वालिनें गा रही हैं । वे ऐसे लग रहे हैं जैसे फागुन की ऋतु में आम के वृक्षों पर कोयलें कूक रही हों । नदी के तट पर वे मनमाने गीत गा रहे हैं । उन सबकी शोभा को आकाश के नक्षत्र भी आँखें फाड़कर देख रहे हैं और देवपत्नियाँ भी उन्हें देखने के लिए चली आ रही हैं ।। ५२५ ।। जहाँ भगवान ने नृत्य किया, वह रासमण्डल भी विचित्र है । उस रासमंडल में कंचन के समान शोभायुक्त मण्डली ने रासलीला की धूम मचा दी है । ऐसा अद्भुत रासमण्डल करोड़ों युगों तक ब्रह्मा भी प्रयत्न करके नहीं बना सकता है । गोपियों के तन सोने के समान हैं और उनके मन मणियों के समान शोभायमान हैं ।। ५२६ ।। जैसे जल में मछली विचरण करती है, वैसे ही गोपियाँ कृष्ण के साथ रमण कर

तिम ग्वारनियां हरि के संगि डोलैं । जिउँ जन फाग कौ खेलत है तिह भाँत ही कान्ह के साथ कलोलैं । कोकिलका जिम बोलत है तिम गावत ताकी बराबर बोलैं । स्याम कहै सभ ग्वारनिया इह भाँतन सो रस कान्हहि घोलैं ॥ ५२७ ॥ रस की चरचा तिन सो भगवान करी तिन को न कछू डर कै । इह भाँति कहयो कबि स्याम कहै तुमरे हित खेल बन्यो हम कै । कहिकै इह बात हस्यो हरिजू प्रभा सुभ दंतन यौं चमकै । जनु बिजुल घटे बिच सावन की अति अभ्रन मैं चपला चमकै ॥ ५२८ ॥ ॥ सवैया ॥ ऐहो सखा नंदलाल कहै ग्वारनियां अति मैन भरी । हमरे संग आवहु खेल करो न कछू मन भीतरि संक करी । नैन नचाइ कछू मुसकाइकै भउह दोऊ करि टेढ धरी । मन यौं उपजी उपमा रस की मनो कान्ह के कंठहि फांस डरी ॥ ५२९ ॥ ॥ सवैया ॥ खेलत ग्वारन मध सोऊ कबि स्याम कहै हरिजू छबि वारो । खेलत है सोऊ मैन भरी इनहूँ पर मानहु चेटक डारो । तीर नदी ब्रिजभूमि बिखै अति होत है (मू०ग्रं०३२२) सुंदर भाँत अखारो । रीझ रहे प्रिथमी के सबै जन रीझ रहयो सुरमंडल सारो ॥ ५३० ॥ गावत एक नचै इक ग्वारनि तारिन किंकन की धुन बाजै ।

रही हैं । जैसे लोग अभय होकर होली खेलते हैं, ऐसे ही गोपियाँ कृष्ण के साथ किलोल कर रही हैं । कोयल की तरह सभी चहक रही हैं और ये गोपियाँ कृष्ण के रस का पान कर रही हैं ॥ ५२७ ॥ श्रीभगवान ने उनसे रस-चर्चा खूब खुलकर की । कवि कहता है कि श्याम ने गोपियों से कहा कि मैं भी तुम लोगों के लिए एक खेल ही बन गया हूँ । यह कहकर श्रीकृष्ण हँस पड़े और उनके दाँतों की चमक ऐसे पड़ने लगी जैसे सावन की घटा में बिजली चमक रही हो ॥ ५२८ ॥ ॥ सवैया ॥ कामोन्मत्त गोपियाँ श्रीकृष्ण को बुलाती हैं और कहती हैं कि आओ कृष्ण ! हमारे संग शंका-रहित होकर क्रीड़ा करो । गोपियाँ नयनों को नचा रही हैं, भौंहों को टेढ़ा कर रही हैं और ऐसा लग रहा है मानो कृष्ण के गले में (मोह-) पाश पड़ गया हो ॥ ५२९ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपियों के बीच खेल रहे कृष्ण की छवि पर मैं (कवि) न्योछावर हूँ । वे काम से भरी हुई ऐसे खेल रही हैं मानो उन पर किसी ने जादू कर दिया हो । ब्रजभूमि में नदी के किनारे यह सुन्दर अखाड़ा बना हुआ है और इसे देखकर पृथ्वी के निवासी और समूचा सुरम[illegible] प्रसन्न हो रहा है । ५३[illegible]

जिउँ म्रिग राजत बीच म्रिगी हरि तिउ मन ग्वारनि बीच बिराजैं । नाचत सोऊ महा हित सों कबि स्याम प्रभा तिन की इम छाजैं । गाइब देखि रिसैं गन गंध्रब नाचब देख बधू सुर लाजैं ॥ ५३१ ॥ रस कारन को भगवान तहा कबि स्याम कहै रस खेल कर्‍यो । मन यौ उपजी उपमा हरिजू इम पै जनु चेटक मंत्र डर्‍यो । जिह कै जिह को सुर अछ्रन के गिर कंदर लाज सु धर्‍यो । गुपिआ संगि कान्ह के डोलत है इनको मनुआ जब कान्ह हर्‍यो ॥ ५३२ ॥ ॥ स्वैया ॥ स्याम कहै सभ ही गुपिआ हरि के संगि डोलत है सभ हुइआ । गावत एक फिरैं इक नाचत एक फिरैं रस रंग अछुइआ । एक कहै भगवान हरो इक लै हरि नाम परै गिर भुइआ । यौ उपजी उपमा जिउ चुंबक लागी फिरैं तिहके संग सुइआ ॥५३३॥ ॥ स्वैया ॥ सग ग्वारन कान कही हसिकै कबि स्याम कहै अध रात समै । हमहूं तुमहूं तजिकै सभ खेल सभै मिलकै हम धाम रमै । हरि आइस मान चली ग्रिह को सभ ग्वारनिया करि दूरि गमै । अब आइ बिछै सभ आसन मै करिकै सभ प्रात को नेह लमै ॥ ५३४ ॥

कोई गोपी नाच रही है, कोई गा रही है, कोई तारों वाला वाद्य तो कोई किंकनी बजा रही है । जैसे मृग मृगियों में शोभा देता है, वैसे ही कृष्ण गोपियों में शोभायमान हो रहे हैं । बड़े प्रेम से सभी नाच रहे हैं और सुन्दर लग रहे हैं । उनके गायन को देखकर गण-गंधर्वों को ईर्ष्या हो रही है और नृत्य को देखकर देवस्त्रियाँ लजायमान हो रही हैं ॥ ५३१ ॥ प्रेम-रस में मस्त होकर श्रीभगवान ने वहाँ रासलीला की । ऐसा लग रहा है जैसे भगवान ने सबको मंत्र से वश में कर लिया हो । उनको देखकर अप्सराएँ लजाकर कन्दराओं में चुपचाप छुप गयीं । कृष्ण ने गोपियों का मन चुरा लिया है और वे सब कृष्ण के साथ डोल रही हैं ॥ ५३२ ॥ ॥ सवैया ॥ कवि कहता है कि सारी गोपियाँ कृष्ण के साथ घूम रही हैं । कोई गा रही है, कोई नाच रही है और कोई चुपचाप चली आ रही है । कोई कृष्ण का नाम ले रही है और कोई उसका नाम लेकर धरती पर गिर पड़ रही है । वे ऐसी लग रही हैं मानो चुम्बक के साथ सुइयाँ लगी हों ॥ ५३३ ॥ ॥ सवैया ॥ आधी रात के समय कृष्ण ने गोपियों को कहा कि हम और तुम खेल को छोड़कर भाग चलें और घर में जाकर रमण करें । कृष्ण की आज्ञा मानकर अपने दुःखों को भूलती हुई सभी गोपियाँ घर को चल दीं सब आकर अपने घरों में सो गयीं और प्रातःकाल को

हरि सो अरु गोपनि खेलि किधौं कबि स्याम कहै अति खेल भयो है । लै हरि जी तिन को संग आपन त्याग कै खेल को धाम गयो है । ता छबि को जसु उच्च महा कबि नै अपनै मन चीन लयो है । कागजिए रस को अति ही सु मनो गनती करि जोर दयो है ॥ ५३५ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथे कृशनावतारे ॥

अथ करि पकर खेलबो कथनं ॥ रास मंडल ॥

॥ सवैया ॥ प्रात भए हरिजू तजिकै ग्रिह धाइ गए उठ ठउर कहा को । फूल रहे जिह फूल भली बिधि तीर बहै जमना सु तहा को । खेलत है सोऊ भांति भली कबि स्याम कहै कछु त्रास न ताको । संग बजावत है मुरली सोऊ गउअन के मिस ग्वारनिया को ॥ ५३६ ॥ ॥ सवैया ॥ रास कथा कबि स्याम कहै सुनकै ब्रिखभान सुता सोऊ धाई । जा मुख सुध्र निसापति सो (पृ०ग्रं०३२३) जिह के तन कंचन सी छबि छाई । ताकी प्रभा कबि देत सभै सोऊ तामै रचै बरनी नहि जाई । स्याम की सोभ सु गोपन ते सुनिकै तरनी हरनी जिम

प्रतीक्षा करने लगीं ॥ ५३४ ॥ कवि श्याम का कथन है कि इस प्रकार गोपियाँ और कृष्ण का क्रीड़ा-क्रम चला । कृष्ण ने गोपियों को साथ लिया और खेल छोड़कर घर आ गये । इस दृश्य की शोभा बताते हुए कवि कहता है कि यह ऐसा लग रहा है, मानो सारे हिसाब-किताब का जोड़ लगाकर चरम फल प्राप्त किया जा रहा है ॥ ५३५ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक ग्रंथ में कृष्णावतार की समाप्ति ॥

हाथ पकड़कर खेलने का कथन । रास-मण्डल

॥ सवैया ॥ प्रातः होते ही श्रीकृष्ण घर छोड़कर उस स्थान पर गये, जहाँ फूल खिले हुए थे और यमुना बह रही थी । वहाँ वह भलीभाँति अभय होकर खेलने लगे । खेलते-खेलते गोपियों को बुलाने के लिए गायों को सुनाने के बहाने से मुरली बजाने लगे ॥ ५३६ ॥ ॥ सवैया ॥ कवि श्याम का कथन है कि रास-कथा को सुनकर वृषभान की पुत्री राधा दौड़ी चली आई । राधा का मुख चन्द्रमा के समान और शरीर सोने के समान सुन्दर है । उसके शरीर की सुन्दरता का वर्णन किया नहीं जा सकता

धाई ॥ ५३७ ॥ ॥ कबित्तु ॥ सेत धरे सारी ब्रिखभान की कुमारी जस ही की मनो बारी ऐसी रची है न को दई । रंभा उरबसी अउर सची सु मदोदरी पै ऐसी प्रभा का की जगबीच न कहू भई । मोतिन के हार गरे डार रुच सो सुधार कान्हजू पै चली कबि स्याम रस के लई । सेत साज साज चली सावरे की प्रीत काज चांदनी मै राधा मानो चांदनी सी ह्वै गई ॥ ५३८ ॥ ॥ सवैया ॥ अंजन आंख सु धार भले पट भूखन अंग सुधार चली । जनु दूसर चंद्रकला प्रगटी जन राजत कंज की सेत कली । हरि के पग भेटन काज चली कबि स्याम कहै संग राधे अली । जनु जोत लरीयन ग्वारन ते इह चंद की चांदनी बाल भली ॥ ५३९ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह सो प्रीत बढी तिह की मन मै अति ही नहि नैकु घटी है । रूप सची अरु पै रति लै मन तीयन ते नहि नैकु लटी है । रास मै खेलन काज चली सजि साज सभै कबि स्याम नटी है । सुंदर ग्वारन कै घन मै मनो राधका चंद्रकला प्रगटी है ॥ ५४० ॥

वह गोपियों के मुख से कृष्ण की शोभा का वर्णन सुनके हिरणी की तरह, दौड़ी चली आई ॥ ५३७ ॥ ॥ कवित्त ॥ वृषभान की पुत्री सफ़ेद साड़ी पहन रखी है और ऐसा लगता है कि उसके समान सुन्दर परमात्मा ने और किसी को नहीं बनाया है । रंभा, उर्वशी, शचि और मन्दोदरी की सुन्दरता भी राधा के सामने कुछ नहीं है । वह गले में मोतियों के हार डालकर और तैयार होकर प्रेम-रस पाने के लिए कृष्णजी की ओर चल पड़ी । वह सज-धजकर चांदनी रात में चांदनी के समान दिखती हुई कृष्ण के प्रेमवश कृष्ण की ओर चल पड़ी ॥ ५३८ ॥ ॥ सवैया ॥ आंखों में अंजन डाल के और रेशमी वस्त्र तथा आभूषण पहनकर वह चलती हुई ऐसे लग रही है मानो चन्द्रकला साकार होकर अथवा श्वेतकली प्रकट होकर आ रही है । राधिका अपनी सहेली के साथ श्रीकृष्ण के चरण-स्पर्श करने के लिए आ रही है और ऐसी लग रही है कि जैसे अन्य गोपियाँ दीपक की ज्योति के समान हों और राधा चन्द्रमा की चांदनी के समान हो ॥ ५३९ ॥ ॥ सवैया ॥ उसका प्रेम कृष्ण के प्रति बढ़ता हो गया और वह थोड़ा भी पीछे नहीं हटी । उसका रूप इन्द्र की पत्नी शची और रति के समान है और उससे अन्य स्त्रियों को ईर्ष्या हो रही है । वे सभी नटियों के समान सज-धजकर रासलीला करने के लिए चली हैं और सुन्दर गोपियों रूपी बादलों में राधा बिजली के

ब्रहमा पिखि कै जिह रीझ रह्यो जिह को सिव कै सिर ध्यान छुटा है। जा निरखे रति रीझ रही रति के पति को पिखि मान टुटा है। कोकिल कंठ चुराइ लियो जिन भावन को सभ भाव लुटा है। ग्वारन के घन बीच बिराजत राधका मानहु बिज्ज छटा है ॥ ५४१ ॥ कान्ह के पूजन पाइ चली ब्रिखभान सुता सभ साज सजै। जिह को लखि कै मन मोहि रहै कबि स्याम कहै दुति सीस रजै। जिन अंग प्रभा करि बेल लखै सोऊ अंग धरे त्रीय राज छजै। जिह को पिखि कंद्रप रीझ रहै जिह को लखि चांदनी चंद लजै ॥ ५४२ ॥ ॥ सवैया ॥ मिल सुंदर साज सभै सजि कै ब्रिखभान सुता इह भांति बनी। मुख राजत सुद्ध निसापति सो जिम पै अति चांदनी रूप घनी। रस को करि राधका कोप चली मन मान सो साम कै मैन अनी। तिह पेख भए भगवान खुसी सोऊ त्रीयन तै त्रिय राज गनी ॥५४३॥ ॥ राधे बाच गोपिन सो ॥ ॥ सवैया ॥ ब्रिखभान सुता हरि पेख हसी इह भांति कह्यो संग ग्वारन कै। सभ बारिन (मू०ग्रं०३२९) बीच निकास कियो सभ चंद्रमुखी

समान प्रकट हुई दिखाई पड़ रही है ॥ ५४० ॥ ब्रह्मा भी राधा को देखकर प्रसन्न हो रहे हैं और राधा को देखकर ही शिव का ध्यान भी भंग हो गया है, इसे देखकर रति भी रीझ रही है और कामदेव का गर्व भी टूट गया है। उसकी वाणी को सुनकर कोयल भी चुप हो गयी है और अपने-आप को लुटी हुई अनुभव कर रही है। गोपियां रूपी बादलों में विराजमान बिजली के समान सुन्दर लग रही है ॥ ५४१ ॥ कृष्ण के चरणों की पूजा करने के लिए राधा सब भांति से सज-धजकर चली है। उसको देखकर सबका मन मोहित हो रहा है तथा उसका सौन्दर्य उसके मस्तक से प्रकट हो रहा है। उसके अंगों की शोभा ऐसी है कि वह स्त्रियों की राजा प्रतीत हो रही है। उसको देखकर कामदेव भी मोहित हो रहा है और चांदनी भी लजा रही है ॥ ५४२ ॥ ॥ सवैया ॥ सुन्दर सज-धज में राधा इस प्रकार लग रही है कि मानो उसका मुख घनी चांदनी समेटे हुए चन्द्रमा हो। राधा व्याकुल होकर काम के बाणों को चलाती हुई प्रेम-रस के लिए चल पड़ी और उसे देखकर भगवान कृष्ण भी प्रसन्न हो उठे और उन्होंने उसको स्त्रियों की राजा के समान अनुभव किया। ५४३ ॥ राधा उवाच गोपियों के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ राधा कृष्ण को देखकर हँसते हुए गोपियों से कहने लगी हँसकर [illegible]

ब्रिज बारन कै । हम अउ हरि जी अति होड परी रस ही के सु बीच महा रन कै । तजिके सभ शंकि निशंक भिरो संग ऐसे कह्यो हसि ग्वारन कै ॥ ५४४ ॥ हसि बात कही संग गोपिन के कबि स्याम कहै त्रिखभान जई । मनो आपही ते ब्रहमा सु रची रुच सो इह रूप अनूप मई । हरि को पिखि कै निहुराइ गई उपमा तिह को कबि भाख दई । मनो जोबन भार सह्यो न गयो तिह तो ब्रिज भामन नीची भई ॥ ५४५ ॥ सभ ही मिलि रास को खेल करै सभ ग्वारनिया अति ही हित ते । ब्रिखभान सुता सुभ साज सजे सु बिराजत साज सभै सित ते । फुन ऊच प्रभा अति ही तिन की कबि स्याम बिचार कही चित ते । उत ते घनस्याम बिराजत है हरि राधिका बिद्दुलता इत ते ॥ ५४६ ॥ ॥ सवैया ॥ ब्रिखभान सुता तिह खेलत रास सु स्याम कहै सखिया संग लै । उत चंद्रभगा सभ ग्वारन को तन चंदन के संग लेपहि कै । जिनके म्रिग से द्रिग सुंदर राजत छाजत गामनि पै जिन गै । मन यौ उपजी उपमा नहि चंद की चांदनी जोबन वारन कै ॥ ५४७ ॥ ॥ चंद्रभगा बाच राधे प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ बतियां फुन चंद्रभगा मुख ते इह भांति

दाँत अनार की भाँति और मुख चन्द्रमा की भाँति दिखाई दे रहा था। मेरे और कृष्ण के बीच इस चर्चा को लेकर एक शर्त लगी है, इसलिए तुम सब बिना भय के कृष्ण के साथ भिड़ जाओ ॥ ५४४ ॥ राधा ने हँसकर गोपियों से यह बात कही और कृष्ण को देखकर सभी गोपियाँ प्रसन्न हो उठीं । वे सब ऐसी लग रही थीं कि मानो ब्रह्मा ने स्वयं उनका निर्माण किया हो । वे यौवन के भार को न सह पाने के कारण कृष्ण के ऊपर झुकी हुई प्रतीत हो रही थीं ॥ ५४५ ॥ सभी ग्वालिनें प्रेम से तथा उत्साह से रासलीला में भाग ले रही थीं । राधा ने सुन्दर तरीके से श्वेत रंग में अपने को सजा रखा था और इस सुन्दर दृश्य की छवि ने विचार कर कहा है कि उधर तो बादल के समान कृष्ण विराजमान हैं और इधर बिजली के समान राधिका दिखाई दे रही है ॥ ५४६ ॥ ॥ सवैया ॥ राधा के साथ इधर श्रीकृष्ण रास रचा रहे हैं, उधर चन्द्रभगा नामक गोपी सभी ग्वालिनों के तन पर चन्दन का लेप लगा रही है, इन गोपियों के नेत्र मृगों के समान हैं और वे हाथी की मस्त चाल के साथ चल रही हैं । ऐसा लग रहा है कि उनको देखकर चन्द्रमा भी अपनी चाँदनी का यौवन न्योछावर कर रहा हो । ५४७ चन्द्रभगा उवाच राधा के प्रति । सवैया चन्द्रभगा

कै ब्रिख त्याग छिगी छिन अउ चलि आवै ॥ ५५६ ॥ तिन सेंधर मांग दई सिर पै रस को तिन सो अति ही मन भीनो । बेसर आड सु कंठसिरी अरु मोतिसिरी हूं को साज नवीनो । भूखन अंग सभै सजि सुंदर अंजन भीतर कानर दीनो । ताही सु लै कबि स्याम कहै भगवान को चित्त चुराइ कै लीनो ॥५५७॥ ॥ सवैया ॥ चंद की चांदनी मै कबि स्याम जबै हरि खेलन रास लग्यो है । राधे को आनन सुंदर देखि कै चंद सो ताही के बीच पर्यो है । हरि को तिन चित्त चुराइ लियो सु किधो कबि को मन यौ उमग्यो है । नैनन को रस दै छिनता ब्रिखभान ठगो भगवान ठग्यो है ॥ ५५८ ॥ जिह को पिखि कै मुखि मैन लजै जिह को बिखकै मुखि चंद्र लजै । कबि स्याम कहै सोऊ खेलत है संग कान्हर के सुभ साज सजै । सोऊ मूरतवंत रची ब्रहमा करकै अति ही हथ कै न कजै । (पृ० ३२६) मन माल के बीच बिराजत जिउ तिम गोपन मै त्रियराज रजै ॥ ५५९ ॥ गाइ कै गीत भलो बिधि सुंदर रीझ बजावत भी फिर तारी । अंजन आड सुधार भले पट साजन के सजकै सु गुआरी । ता

लगी तथा जो कोई उस ध्वनि को सुनता वह प्रसन्न हो उठता । उस स्वर को सुनकर वन के मृग-मृगियाँ भी चली आ रही थीं ॥ ५५६ ॥ गोपियों ने माँगों में सिंदूर भर लिया और उनका मन रस से सराबोर हो उठा । नाक का गहना, कंठहार एवं मोतियों के हार से उन सबने अपने-आपको सजाया । गोपियों ने सभी अंगों पर आभूषणों को सजाते हुए, आँखों में काजल लगाया । कवि श्याम का कथन है कि इस प्रकार उन्होंने भगवान के मन को भी चुरा लिया ॥ ५५७ ॥ ॥ सवैया ॥ चन्द्रमा की चाँदनी में जब श्रीकृष्ण रासलीला करने लगे तो राधिका का सुन्दर मुख उन्हें चन्द्र के समान दिखाई देने लगा । उसने श्रीकृष्ण का चित्त चुरा लिया और कवि ने कहा है कि अपने नयनों के छल से वृषभानु की पुत्री राधा ने कृष्ण को ठग लिया ॥ ५५८ ॥ जिसको देख कामदेव और चन्द्रमा लजाते हैं, कवि श्याम का कथन है कि वही राधा कृष्ण के साथ सज-धजकर खेल रही है । ऐसा लगता है कि ब्रह्मा ने उस मूर्ति को स्वयं सोच लेकर बनाया है । जैसे माला में मणि विराजमान होती है वैसे राधा त्रियराज की भाँति शोभायमान हो रही है ॥ ५५९ ॥ सुन्दर गीत गाती हुई वे प्रसन्न होकर तालियाँ भी बजा रही हैं उन गोपियों ने अंजन आँखों में लगा रखा है और भलीभाँति आभूषण-वस्त्र धारण कर रखे हैं उस

छबि को अति ही सु प्रभा कबिनै मुखि ते इह भांत उचारी। मानहु कान्ह ही के रस ते इह फूल रही त्रिय आनंद बारी ॥ ५६० ॥ ॥ स्वैया ॥ ताकी प्रभा कबि स्याम कहै जोऊ राजत रास बिखै सखियाँ है। जा मुख उपमा चंद्रछटा सम छाजत कउलन सी अखियाँ है। ताकी किधौ अति ही उपमा कबि नै मन भीतर यौ लखियाँ है। लोगन के मन को हरता सु मुनीनन के मन को चखियाँ है ॥ ५६१ ॥ रूप सची इक चंद्रप्रभा इक मैनकला इक मैन की मूरत। बिज्जु छटा इक दारन दांत बराबर जाही की है न कछू रत। दामिन्ह अउ म्रिग की म्रिगनी शरमाइ जिसै पिखि होत है चूरत। सोऊ कथा कबि स्याम कहै सम रीझ रही हरि को पिख मूरत ॥५६२॥ ब्रिखभान सुता हसि बात कही तिह के संग जो हरि अंति अगाधो। स्याम कहै बतिया हरि के संग ऐसे कही पट को तजि राधो। रास बिखै तुम नाचहु जो तजकै अति ही मन लाज को बाधो। ता मुख की छबि यौ प्रगटी मनो अभ्रन ते निकस्यो ससि आधो ॥ ५६३ ॥ जिनके सिर सेंधर मांग बिराजत राजत

छवि की प्रभा को कवि ने इस भाँति कहा है कि ऐसा लग रहा है मानो कृष्ण के आनन्द में यह स्त्रियों की फुलवारी फल-फूल रही हो ॥ ५६० ॥ ॥ सवैया ॥ उस सौंदर्य का वर्णन करता हुआ सखियों की शोभा का वर्णन कवि श्याम करता है और कहता है कि उनके मुखों की उपमा चन्द्रकला के समान है और उनकी आँखें कमल के समान हैं। कवि उस सौंदर्य को देखता हुआ कहता है कि वे आँखें लोगों के मन के क्लेशों को दूर करने वाली और मुनियों के मनों को भी लुभानेवाली हैं ॥ ५६१ ॥ कोई शचि, कोई चन्द्रप्रभा, कोई कामकला तथा कोई साक्षात् काम की मूर्ति है। कोई विद्युच्छटा के समान है, किसी के दाँत अनार के समान हैं और कोई तो ऐसी है जिसकी कोई तुलना नहीं है। विद्युत् और मृग की मृगी भी लजाकर अपने ही गर्व को चूर कर रही है। वही कथा कहता हुआ श्याम कवि कहता है कि सभी स्त्रियाँ श्रीकृष्ण की मूर्ति को देखकर मोहित हो रही हैं ॥ ५६२ ॥ वृषभानु-सुता राधा ने अगम-अगाध कृष्ण से हँसकर एक बात कही और बात कहते समय अपने वस्त्र का भी त्याग कर दिया और कहा कि नृत्य के समय यदि तुम भी नृत्य करो तो अच्छा हो अन्यथा हमें लाज लगती रहती है। यह कहते हुए राधा का मुख ऐसा लगने लगा मानो बादलों से आधा चन्द्रमा बाहर आया हो ५६३ गोपियों

लोचन अउहल लै धनु भैनन सैन सु कंज से बानन ॥ ५६७ ॥
कान सो प्रीत बढी तिन की न घटी कछु पै बढही सु भई है ।
लाज कै लाज सभै मन की हरि के संग खेलण की उमई है ।
स्याम कहै तिन की उपमा अति ही जु तिया अति रूप रई है ।
सुंदर कान्हर की पिखि कै तनमै सभ ग्वारन होइ गई है ॥५६८॥
॥ सवैया ॥ नैन म्रिगी तन कंचन के सम चंद्रमुखी मनो सिधरची
है । जा सम रूप न राजत है रति रावन लोय न अउर सची
है । ता महि रीझ महा करतार क्रिपा कट केहर कै सु मची है ।
ता संग प्रीत कहै कबि स्याम महा भगवानहि की सु मची
है ॥ ५६६ ॥ ॥ सवैया ॥ रागन अउर सुभावन की अति
ग्वारन की तह भीड परी । ब्रिज गीतन की अति हासन सो
अह खेलत भी कई एक घरी । गावत एक बजावत ताल कहै
इक नाचहु आइ अरी । कबि स्याम कहै तिह ठउर बिखै जिह
ठउर बिखै हरि रास करी ॥ ५७० ॥ जदुराइ को आइस पाइ
त्रिया सभ खेलत रास बिखै बिधि आछी । इंद्रसभा जिह सिध
सुना मिध खेलन के हित काछन काछी । कै इह किन्नर की
दुहिता किधौ नागन की किधौ है इह ताछी । रास बिखै इम

के सकेत फूलों के बाण जैसे ॥ ५६७ ॥ कृष्ण के साथ राधा की प्रीति घटने के बजाय बढती ही गयी और राधा का मन लज्जा को त्यागकर कृष्ण के साथ खेलने के लिए उत्साहित हो उठा। श्याम कवि का कथन है कि वे सभी स्त्रियाँ रूपवती हैं और श्रीकृष्ण के सौन्दर्य को देखकर सभी उसमें तन्मय हो गयी हैं ॥ ५६८ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपियों के नयन मृगियों के समान, उनका तन सोने का बना हुआ, मुख चन्द्रमा के समान तथा वे स्वयं लक्ष्मी के समान हैं। उनके समान मन्दोदरी, रति और शचि का भी रूप नहीं है। उस पर परमात्मा ने कृपा कर उनकी कटि शेर के समान पतली बनाई है। उन सबके साथ भगवान का प्रेम अत्यन्त विकट रूप से बन रहा है ॥ ५६९ ॥ ॥ सवैया ॥ रागों और विभिन्न वेशों की वहाँ भीड़ लगी हुई है। व्रज के गीतों और हँसी में लोटपोट सभी वहाँ कई घड़ियों तक मस्त रहे हैं। कोई गा रही है, कोई ताल बजा रही है और कोई वहाँ आकर नृत्य कर रही है जहाँ श्याम कृष्ण ने रासलीला की ॥ ५७० ॥ यदुराज कृष्ण की आज्ञा पाकर सभी स्त्रियाँ भली प्रकार से वहाँ प्रकार रासलीला करने लगीं जैसे इन्द्रसभा में अप्सरा नृत्य करती है ये सब मानो किन्नरों की पुत्रियाँ हैं अथवा नागकन्याएँ हैं

नाचत हैं जिम केल करैं जल भीतर माछी ॥ ५७१ ॥ जिह के मुखि देखि छटा सुभ सुंदर मद्धिम लागत जोति ससी है। भउहन भाइ सो जानत है मद लै मनो तान कमान कसी है। ताही के आनन सुंदर ते सुर रागहु की सभ भांति बसी है। जिउँ मधु बीच फसैं मखियां मन लोगन को इह भांत फसी है ॥ ५७२ ॥ ॥ सवैया ॥ फिरि सुंदर आनन ते हरिजू बिधि सुंदर सो इक तान बजायो। सोरठ सारंग सुद्ध मलार बिलावल को सुर भीतर गायो। सो अपने सुण स्रवनन मै ब्रिज ग्वारनिया अति ही सुखु पायो। मोहि रहे बन के खग अउ म्रिग रीझ रहे जिनहू सुनि पायो ॥ ५७३ ॥ ॥ सवैया ॥ तह गावत गीत भले हरिजू कबि स्याम कहै करि भाव छवै। मुरली जुतु ग्वारनि भीतर (मू०ग्रं०१२८) राजत ज्यो म्रिगनी म्रिग बीच फबै। जिह को सभ लोगन मै जसु गावत छूटत है तिनते न कबै। तिन खेलन को मन गोपिन को छिन बीच लियो कुन चोर सबै ॥ ५७४ ॥ ॥ सवैया ॥ कबि स्याम कहै उपमा तिन की जिम जोबन रूप अनूप गहयो है। जा मुख देख अनंद

ये सभी रासलीला में ऐसे नृत्य कर रही हैं जैसे जल में मछली विचरण कर रही हो ॥ ५७१ ॥ इन गोपियों के सौन्दर्य को देखकर चन्द्रमा की ज्योति भी फीकी लग रही है। उनकी भौंहें ऐसे कसी हुई हैं मानो कामदेव ने अपनी कमान को कस रखा हो। उनके सुन्दर मुख में सभी स्वर बसे हुए हैं और लोगों का मन उनकी वाणी में ऐसा फंसा है जैसे मधु के बीच मक्खियाँ फँस जाती हैं ॥ ५७२ ॥ ॥ सवैया ॥ फिर श्रीकृष्ण ने अपने सुन्दर मुख से एक सुन्दर तान बजाई और सोरठ, सारंग, शुद्ध मल्हार और बिलावल का सस्वर गायन किया। इसे सुनकर ब्रज की ग्वालिनों ने अत्यन्त सुख प्राप्त किया। सुन्दर ध्वनि को पक्षी और मृग भी सुनकर मोहित हो गये और जिसने भी उनके रागों को सुना प्रसन्न हो उठा ॥ ५७३ ॥ ॥ सवैया ॥ वहाँ सुन्दर भावों के साथ गीत गाते हुए कृष्ण शोभायमान हो रहे हैं। मुरली से युक्त वे गोपियों के मध्य ऐसे शोभायमान हो रहे हैं जैसे मृगियों के बीच मृग शोभा पाता है। जिसके यश का गुणानुवाद सभी करते हैं, वह कभी भी लोगों से दूर नहीं हो सकता। उसने गोपियों से खेलने के लिए उनका मन चुरा लिया है ॥ ५७४ ॥ ॥ सवैया ॥ कवि श्याम उसकी प्रशंसा कर रहा है जिसका रूप अनुपम है, जिसके दर्शन करने से आनन्द बढ़ता है और जिसकी बात को सुनकर

बहूयो जिह को सुन सज्जन शोक बह्यो है। आनंद कै बिखभान सुता हरि के संग ज्वाब सु ऐस कह्यो है। ताके सुनि त्रिय मोहि रही सुनि कै जिह को हरि रीझ रह्यो है॥ ५७५ ॥ ॥ सवैया ॥ ग्वारनिया मिलकै संगि कान्ह के खेलत है कबि स्याम सबै। न रही तिन को सुध अंगन की नहि चीरन की तिन को पु तबै। सु गनो कहु लउ तिन की उपमा अति ही गमकै मन ताकी छबै। मन भावन गावन की चरचा कछु थोरी यहै सुन लेहु अबै ॥५७६॥ ॥ कान बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ बात कही तिन सो क्रिशन अति ही बिहसि कै चीत। मीत रसहि की रीत सो कह्यो सु गावहु गीत ॥ ५७७ ॥ ॥ सवैया ॥ बतिआ सुनि कै सभ ग्वारनिया सुभ गावत सुंदर गीत सभै। स्रिग्र सुता र घ्रिताची त्रिया इनसी नही नाचत इंद्र सभै। बिख्या इनके संगि खेलत है गज को कबि स्याम सु बान अभै। चड़ कै सु बिमानन सुंदर मै सुर देखत आवत त्याग नभै ॥५७८॥ ॥ सवैया ॥ त्रेतहि मो जिम राम बली जग जीत मर्यो सु धर्यो अति सीला। गाइ कै गीत भली बिध सो फुन ग्वारनि बीच करै रस लीला। राजत है जिह को तन स्याम

सभी प्रकार के शोकों का नाश होता है। वृषभानु की पुत्री राधा आनन्दित होकर श्रीकृष्ण से वार्तालाप कर रही है और उसे सुनकर स्त्रियाँ भी मोहित हो रही हैं और श्रीकृष्ण भी प्रसन्न हो रहे हैं॥ ५७५ ॥ ॥ सवैया ॥ कवि श्याम का कथन है कि सभी ग्वालिनें मिलकर कृष्ण के साथ खेल रही हैं और उनको न अंगों की तथा न वस्त्रों की सुध है। उनकी शोभा का वर्णन कहाँ तक करूँ, उनकी छवि मन में गड़ गयी है। अब मैं थोड़ी चर्चा उनके मनभावन की करूँगा ॥ ५७६ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण ने मन में मुस्कुराकर गोपियों से कहा कि हे मित्रो ! रस की रीति निभाते हुए कुछ गीत गाओ ॥ ५७७ ॥ ॥ सवैया ॥ बात को सुनकर सभी ग्वालिनें सुन्दर गीत गाने लगीं। लक्ष्मी और इन्द्र के दरबार की अप्सरा घृताची भी इनके समान नृत्य-गान नहीं कर सकती। ये गजगामिनियाँ अभय होकर दिव्य रूप से कृष्ण के संग खेल रही हैं और इनकी रासलीला को देखने के लिए आकाश छोड़कर विमानों पर बैठकर देवगण भी आ रहे हैं॥ ५७८ ॥ ॥ सवैया ॥ त्रेतायुग में जिस राम बली ने जगत को जीतकर शील-धर्म का निर्वाह किया था, वही अ भलीभाँति गीत गाता हुआ ग्वालिनों के संग रासलीला कर रहा है

बिराजत ऊपर को पट पीला। खेलत सो संगि गोपन के कबि स्याम कहै जदुराइ हठीला॥ ५७६॥ ॥ सवैया॥ बोलत है जह कोकिलका अरु शोर करै चहुँ ओर रटा सी। स्याम कहै तिह स्याम की देह रजै अति सुंदर सैन घटा सी। ता गिख कै मन ग्वारन के उपजी अति ही मनो घोर घटा सी। ता महि यौ ब्रिखभान सुता दमकै मनो सुंदर बिज्जु छटा सी॥ ५८०॥ ॥ सवैया॥ अंजन है जिह आंखन मै अरु बेसर को जिह नाक नवीनो। जा मुख की सम चंद्र प्रभा अस ता छबि को कबि ने लख लीनो। साज सभै सजकै शुभ सुंदर भाल बिखै बिंदुआ इक दीनो। देखत ही हरि रीझ (मू०ग्रं०३२६) रहै मन को सभ शोक बिदा करि दीनो॥ ५८१॥ ॥ सवैया॥ ब्रिखभान सुता संग खेलन की हसि कै हरि सुंदर बात कही। सुनऐ जिह के मन आनंद बाढत जा सुनकै सभ शोक दहीं। तिह कउतक कौ मन गोपिन को कबि स्याम कहै बिखबोई चहै। नभि मै पिखिकै सुर गंध्रब जाइ चल्यो नही जाइ सु रीझ रहै॥ ५८२॥ ॥ सवैया॥ कबि स्याम कहै तिह की उपमा जिह के तन ऊपर पीत पिछउरी। ताही के आवत है चलिकै ढिग सुंदर गावत

उसके सुन्दर शरीर पर पीताम्बर शोभायमान हो रहा है और गोपियों के साथ क्रीड़ा करनेवाला वह हठीला यदुराज कहला रहा है॥ ५७९॥ ॥ सवैया॥ जिसको देखकर कोयल बोल रही है और मोर भी रट लगा रहा है, उस श्याम का शरीर कामदेव की घटाओं के समान लग रहा है। कृष्ण को देखकर गोपियों के मन में भी घनघोर घटाएँ उठने लगीं और इन सबमें राधा बिजली के समान दमक रही है॥ ५८०॥ ॥ सवैया॥ जिन आँखों में अंजन है और नाक में नाक का गहना है, जिस मुख की शोभा कवि ने चन्द्रप्रभा के समान देखी है, जिसने सब प्रकार से सज-धजकर माथे पर बिन्दी लगा रखी हो, उस राधा को देखते ही श्रीकृष्ण मोहित हो गये और उनके मन का सारा शोक समाप्त हो गया॥ ५८१॥ ॥ सवैया॥ श्रीकृष्ण ने हँसकर राधा के साथ खेलने की वह बात कही, जिसको सुनकर मन आनन्दित होता है और शोक का नाश हो जाता है। गोपियों का मन इस लीला को देखते ही रहना चाहता है। गगनमंडल में भी देवता और गन्धर्व यह देखकर आगे नहीं बढ़ रहे हैं और मोहित हो रहे हैं॥ ५८२॥ ॥ सवैया॥ कवि श्याम उसकी प्रशंसा करता है जिस पर पीताम्बर है उसी के पास सारंग और गौड़ी राग गाती हुई

सारंग मउरी । सावलियाँ हरि के ढिग आइ रही अति रीझ इकावत दउरी । इउ उपमा उपजी लखि फूल रही लपटाइ मनो ब्रिध भउरी ॥ ५८३ ॥ ॥ सवैया ॥ स्याम कहै तिह की उपमा जोऊ दैतन को रिपु बीर जसी है । जो तप बीच बडो तपिआ रस बालन मै अति ही जू रसी है । जाही को कंठ कपोत सो है जिह चा मुख की सम जोति ससी है । ता ब्रिगनी ब्रिय मारन को हरि भउहनि की अर पंच कसी है ॥ ५८४ ॥ ॥ सवैया ॥ फिरिकै हरि ग्वारन के संग ही फुन गावत सारंग रामकली है । गावत है मन आनंद कै ब्रिखभान सुता संग जूथ अली है । ता संग डोलत है भगवान जोऊ अति सुंदर राधे भली है । राजत है जिह को सस सो मुख छाजत मा द्रिग कंज कली है ॥ ५८५ ॥ ॥ सवैया ॥ ब्रिखभान सुता संग बात कही कबि स्याम कहै हरि जू रस वारे । जा मुख की सम चंद्रप्रभा जिह के म्रिग से द्रिग सुंदर कारे । केहरि सी जिह की कट है तिनहूं बचना इह भांत उचारे । सो सुनि कै सभ ग्वारनिया मन के सभि शोक बिदा करि डारे ॥ ५८६ ॥ ॥ सवैया ॥ हसि कै तिह बात कही रस की सु प्रभा जिनहू

स्त्रियाँ चली आ रही है । श्याम रंग की सुन्दरियों में मोहित होकर (धीरे-धीरे) और कोई दौड़कर चली आ रही है । वे ऐसी लग रही मानो कृष्ण रूपी फूल को देखकर भौंरों के रूप में स्त्रियाँ दौड़कर फूल से लिपट रही हों ॥ ५८३ ॥ ॥ सवैया ॥ श्याम कवि उसकी प्रशंसा करता है जो दैत्यों का शत्रु है, यशस्वी है, जो तपियों में बड़ा तपी और रसिकों में महान् रसिक है । जिसका कंठ कपोत (कबूतर) के समान है और मुख की आभा चन्द्र के समान है । उसी ने मृगी रूपी स्त्रियों को मारने के लिए भौंहों के बाण कसे हुए हैं ॥ ५८४ ॥ ॥ सवैया ॥ श्रीकृष्ण ग्वालिनों के साथ घूमते हुए सारंग और रामकली राग गा रहे हैं । इधर राधा भी सखियों के झुंड के साथ आनन्दित होकर गा रही है । उसी झुंड में अत्यन्त सुन्दर राधा के साथ भगवान विचरण कर रहे हैं । उस राधिका का मुख चन्द्र के समान है और नेत्र कमल की कलियों के समान हैं ॥ ५८५ ॥ ॥ सवैया ॥ रसिक श्रीकृष्ण ने राधा के साथ बात की । राधा के मुख की शोभा चन्द्र के समान और आँखें मृग की काली आँखों के समान हैं । जिस राधा की कमर शेर के समान पतली है उसको जब इस भाँति श्रीकृष्ण ने कहा तो ग्वालिनों के मन के सब शोक नष्ट हो गये ॥ ५८६

बड़वानल लीली । जो जग बीच रह्यो रवि कै नर कै तरु कै गज अउर पपीली । मुख ते तिन सुंदर बात कही संग ग्वारन के अति ही सु रसीली । ता सुनिकै सभ रीझ रही सुन रीझ रही ब्रिखभान छबीली ॥ ५८७ ॥ ॥ सवैया ॥ ग्वारनिया सुनि स्रउनन मै बतिआ हरि की अति ही मन भीनो । कंठसिरी अरु बेसर मांग धरे जोऊ सुंदर साज नवीनो । जो अवतारन के अवतार कहै कबि स्याम जु है सु नगीनो । ताहि छिपी अति ही (मू०ग्रं०३३०) छलकै सु चुराइ मनै मन गोपिन लीनो ॥ ५८८ ॥ कान्हर सो ब्रिखभान सुता हसि बात कही संग सुंदर ऐसे । नैन नचाइ महा म्रिग से कबि स्याम कहै अति ही सु रचे से । ता छबि की अति ही उपमा उपजी कबि के मन ते उमगैसे । मानहु आनंद कै अति ही मनो केल करै पति सो रति जैसे ॥ ५८९ ॥ ॥ सवैया ॥ ग्वारन को हरि कंचन से तन मै मन को मन तुल्लि खुभा है । खेलत है हरि के संग सो जिनकी बरनी नही जात सुभा है । खेलन को भगवान रची रस के हित चित्र बचित्र सभा है । यो उपजी उपमा तिन मैं

॥ सवैया ॥ जिस भगवान ने बड़वानल को भी पी लिया था, उसने हँसकर बात की । वह भगवान, जो सारे जगत में और जगत के समस्त पदार्थों, सूर्य, नर, हाथी और कीड़े तक में विराजमान है, उसने ग्वालिनों के साथ अत्यन्त रसदायक बातें कीं । उनकी बातों को सुनकर सभी गोपियाँ और राधा मोहित हो रहीं ॥ ५८७ ॥ ॥ सवैया ॥ ग्वालिनें कृष्ण की बातें सुनकर अत्यन्त ही आनन्दित हुईं । वे गले में हार, माँग में बेसर धारण करके सज-धज गयीं । उन सबने अवतारों के अवतार श्रीकृष्ण रूपी नगीने को भी धारण कर रखा है और अत्यन्त छलपूर्वक उसको चुराकर गोपियों ने अपने मन में छिपा रखा है ॥ ५८८ ॥ राधा ने कृष्ण के साथ हँसकर बात करते हुए नयनों को नचाया । उसके नयन मृग के समान अत्यन्त सुन्दर हैं । उस छबि की प्रशंसा करते हुए कवि कहता है कि वह इस प्रकार से प्रेम-क्रीड़ा आनन्दपूर्वक कर रही है जैसे रति कामदेव के साथ रमण कर रही है ॥ ५८९ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपियों का मन कृष्ण के तन के साथ नग की तरह जड़ गया है । वे उस कृष्ण के साथ खेल रही हैं जिसके स्वभाव का वर्णन नहीं किया जा सकता न भी खेलने के लिए इस विचित्र सभा की रचना की है और इसमें राधा चन्द्रकला के

ब्रिखभान सुता मनो चंद्रप्रभा है ॥५९०॥ ॥ सवैया ॥ ब्रिखभान सुता हरि आइस मान कै खेलत सो अति ही स्रम कै । गहि हाथ सो हाथ लिया सभ सुंदर नाचत रास बिखै भ्रम कै । तिह की सु कथा मन बीच बिचार करै कबि स्याम कही क्रम कै । मनो गोपिन के घन सुंदर मै ब्रिज भामन दामन जिउं दमकै ॥ ५९१ ॥ ॥ दोहरा ॥ पिखिकै नाचत राधका क्रिशन मनै सुख पाइ । अति हुलास जुत प्रेम छक मुरली उठ्यो बजाइ ॥ ५९२ ॥ ॥ सवैया ॥ नट नाइक सुध मलहार बिलावल ग्वारन बीच धमारन गावै । सोरठ सारंग रामकली सु बिभास भले हित साथ बसावै । गावहु ह्वै म्रिगनी त्रिय को सु बुलावत है उपमा जिय भावै । मानहु भउहन को कसिकै धनु नैनन के मनो तीर चलावै ॥५९३॥ ॥ सवैया ॥ मेघ मलहार अउ देवगंधार भले गवरी करिकै हित गावै । जैतसिरी अरु मालसिरी नट नाइक सुंदर भांत बसावै । रीझ रही ब्रिज की सभ ग्वारनि रीझ रहे सुर जो सुनि पावै । अउर की बात कहा कहियै तज इंद्रसभा सभ आसन आवै ॥ ५९४ ॥ खेलत रास मै स्याम कहै अति ही रस संग लिया मिलि तीनो । चंद्रभगा अरु

समान शोभायमान हो रही है ॥ ५९० ॥ ॥ सवैया ॥ राधा कृष्ण की आज्ञा मानकर पूर्ण मन लगाकर श्रम के साथ खेल रही है । सभी स्त्रियाँ हाथ में हाथ पकड़कर रासलीला में घूम-घूमकर नृत्य कर रही हैं। उनकी कथा को कहते हुए कवि कहता है कि गोपियों के झुंड रूपी बादलों में ब्रज की वे सुन्दरतम स्त्रियाँ बिजली के समान दमक रही हैं ॥ ५९१ ॥ ॥ दोहा ॥ राधिका को नृत्य करते देखकर कृष्ण को मन में सुख प्राप्त हुआ और अत्यन्त उल्लसित तथा प्रेम-पूर्ण होकर वे मुरली बजा उठे ॥ ५९२ ॥ ॥ सवैया ॥ नटनायक कृष्ण शुद्ध मलहार, बिलावल, सोरठ, सारंग, रामकली तथा विभास आदि राग गाने और बजाने लगे। वे गाकर मृग रूपी स्त्रियों को बुलाने लगे और ऐसा लगने लगा कि मानो भौंहों के धनुष पर नयनों के बाणों को कसकर वे चला रहे हैं ॥ ५९३ ॥ ॥ सवैया ॥ मेघमलहार, देवगन्धर्व, गौड़ी, जैतश्री, मालश्री आदि सुन्दर रागों को श्रीकृष्ण गा रहे हैं और बजा रहे हैं। ब्रज की सभी गोपियाँ और सभी देवगण जो भी इसको सुन रहे हैं, सभी मोहित हो रहे हैं और क्या कहा जाय इन्द्रसभा भी अपने आसनों को [illegible] इन रागों को सुनने के लिए चली आ रही है ५९४ । रास मे खेलते हुए श्रीकृष्ण

चंद्रमुखी त्रिखभान सुता सभ साज नवीनों । अंजन आंखन दै बिंदुआ इक भाल मैं सेंधर सुंदर दीनो । यों उपजी उपमा त्रिय के सुभ भाग प्रकाश अबै मनो कीनो ॥ ५९५ ॥ ॥ सवैया ॥ खेलत कान्ह सों चंद्रभगा कबि स्याम कहै रस जो उमह्यो है । प्रीत करी अति ही तिह सों बहु लोगन को उपहास सह्यो है । मोतिन माल ढरी गर ते (मू०ग्रं० ३३१) कबि ने तिह को जस ऐसे कह्यो है । आनन चंद्र मनो प्रगटे छपि कै अंधिआर पतार गयो है ॥ ५९६ ॥ ॥ दोहरा ॥ ग्वारन रूप निहार कै इउ उपज्यो जिय भाव । राजत ज्यों महि चांदनी कंजन सहित तलाव ॥ ५९७ ॥ ॥ सवैया ॥ लोचन है जिन के सु प्रभा धर आनन है जिन को सम मैना । कै कै कटाछ चुराइ लयो मन पै तिन को गोऊ रच्छक धैना । केहरि सी जिन की कट है सु कपोत सो कंठ सु कोकिल बैना । ताहि लयो हरि कै हरि को मन भउह नचाइ नचाइकै नैना ॥ ५९८ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह बिराजत ग्वारन मै कबि स्याम कहै जिन को कछु भउ ना । तात की बात को नेक सुनै जिय के संग भ्रात

सजी-धजी चन्द्रभगा, चन्द्रमुखी और राधा से अत्यन्त रसपूर्ण बातें कर रहे हैं । इन गोपियों की आँखों में अंजन, माथे पर बिंदिया और सिन्दूर शोभायमान हो रहा है और ऐसा लग रहा है कि इन स्त्रियों का भाग्य मानो अभी-अभी उदित हुआ हो ॥ ५९५ ॥ ॥ सवैया ॥ चन्द्रभगा और कृष्ण के साथ-साथ खेलने पर घनघोर रस-वर्षा हुई । इन गोपियों ने भी श्रीकृष्ण से प्रेम करके बहुत से लोगों के उपहास को सहा । इनके गले से मोतियों की माला गिर गयी है और कवि कहता है कि ऐसा लग रहा है मानो चन्द्रमुख प्रकट होते ही अन्धकार पाताललोक में जा छिपा है ॥ ५९६ ॥ ॥ दोहा ॥ गोपियों के रूप को देखकर ऐसा लगता है मानो चाँदनी रात में कमल के फूलों वाला सरोवर शोभायमान हो रहा है ॥ ५९७ ॥ ॥ सवैया ॥ जिनके नेत्र कमल के समान हैं और बाकी शरीर कामदेव के समान है । उन सबका गायों के रक्षक श्रीकृष्ण ने संकेत कर-करके मन चुरा लिया है । जिनकी कमर शेर के समान, कंठ कपोत के समान और वाणी कोयल के समान है, उनके मन को श्रीकृष्ण ने भौंहों और नयनों के संकेत कर-करके हर लिया है ॥ ५९८ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण उन गोपियों में वि[illegible] है जिनको किसी का भय नहीं है । वे सब राम रूपी कृष्ण के साथ रमण कर रही हैं, जो पिता की बात सुनते ही

कर्‌यो बन गउना । ताकी लटै लटकै तन मो ओऊ साधन के मन ग्यान दिवउना । संदल पै उपजी उपमा मनो लाग रहे अहिराजन छउना ॥ ५९९ ॥ ॥ सवैया ॥ खेलत है सोऊ ग्वारन मै ओऊ ऊपर पीत धरेअ परउना । जो सिर शत्रन के हरिता ओऊ साधन को बरदान दिवउना । बीच रह्‌यो जग के रवि के कबि स्याम कहै जिह को पुन खउना । राजत यौं अलकै तिनकी मनो चंदन लाग रहे अहि छउना ॥ ६०० ॥ ॥ सवैया ॥ कीर से नाक कुरंग से नैनन डोलत है सोऊ बीच त्रिया मै । जो मन शत्रन बीच रह्‌यो जु रह्‌यो रवि साधन बीच हिया मै । ता छबि को जस उचच महाँ इह भाँतन सो फुन उचरी या मै । ता रस की हम बात कही ओऊ रावन के सु बस्यो है जिया मै ॥ ६०१ ॥ ॥ सवैया ॥ खेलत संग ग्वारन के कबि स्याम कहै ओऊ कान्हर काला । राजत है सोइ बीच खरो सु बिराजत है गिरदे तिह बाला । फूल रहे जह फूल भली बिधि है अति ही जह चंद उजाला । गोबिन नैनन की सु मनो पहरी भगवान सु कंजन माला ॥ ६०२ ॥

भाई के साथ वन को गमन कर गया था । उसकी केशराशि की लटें ऐसी हैं, जो साधुओं को भी ज्ञान से प्रकाशित करनेवाली हैं और वे ऐसी भी लग रही हैं, मानो चन्दन पर काले नागों के बच्चे चढ़े हुए हैं ॥ ५९९ ॥ ॥ सवैया ॥ जिसने पीताम्बर धारण कर रखा है वह गोपियों के साथ खेल रहा है । यही शत्रुओं का नाश करनेवाला और साधुओं को वरदान देनेवाला है । वह जगत में, आकाश में, सूर्य, में सबमें विराजमान है और कभी भी उसका क्षय नहीं होता । उसकी अलकें मस्तक पर ऐसे शोभायमान हो रही हैं, मानो चन्दन पर साँप के बच्चे लटक रहे हैं ॥ ६०० ॥ ॥ सवैया ॥ जिसकी नासिका तोते के समान, नेत्र हिरण के समान है, वह स्त्रियों के साथ विचरण कर रहा है । जो हमेशा शत्रुओं के मन में भी तथा साधुओं के मन में भी बना रहता है, उसकी छवि का वर्णन करता हुआ मैं कहता हूँ कि यह वही (राम) है जो रावण के हृदय में भी विराजमान था ॥ ६०१ ॥ ॥ सवैया ॥ श्याम वर्णवाले कृष्ण गोपियों के साथ खेल रहे हैं । वे बीच में खड़े हैं और उनके चारों ओर बालिकाएँ हैं । वे ऐसे लग रहे हैं, मानो फूल भली प्रकार खिले हुए हों अथवा चन्द्रमा की चाँदनी बिखरी हुई हो । ऐसा प्रतीत होता है कि मानो श्री भगवान ने गोपियों के नयन रूपी फूलों की माला धारण कर रखी हो ६०२

॥ दोहरा ॥ बरनन चंद्रभगा कह्यो अति निरमल कै बुध ।
उपमा ताहि तनउर की सूरज सी है सुध ॥ ६०३ ॥
॥ सवैया ॥ स्याम के जा बिखि स्याम कहै अति लाजहि के फुन जाल अटे हूं । जाकी प्रभा अति सुंदर पै सुभ भावन भाव सु वार सुटे हूं । जिह को बिखि कै जन रीझ रहे सु मुनीन के देखि धिआन छुटे हूं । राजत राधे अहीर तनउर कै मानहु सूरज से प्रगटे हूं (मू०ग्रं०३३२) ॥ ६०४ ॥ ॥ सवैया ॥ खेलत है सोऊ ग्वारन मै जिह को ब्रिज हूं अति सुंदर डेरा । जाही के नैन कुरंग से है जसुधा जू को बालक नंदहि केरा । ग्वारन को तहि घेर लयो कहिबे जस को उमग्यो मन मेरा । मानहु मैन सो खेलन काज कर्यो मिल कै ससो चांदन घेरा ॥ ६०५ ॥ ग्वारन रीझ रही हरि देखि सभै तजि लाजि सु अउ डर सासो । आई है त्याग सोऊ ग्रिह पै भरतार कहे न कछू कहि मासो । डोलत हैं सोऊ ताल बजाइ कै गावत हैं करि कै उपहासो । मोहि गिरै धर पै सु जिया कबि स्याम कहै चितवै हरि जासो ॥ ६०६ ॥ ॥ सवैया ॥ जो जुग तीसर है करता ओऊ

॥ दोहा ॥ अति निर्मल बुद्धि वाली चन्द्रभगा का वर्णन किया गया है, उसका तन सूर्य के समान शुद्ध रूप से देदीप्यमान है ॥ ६०३ ॥ ॥ सवैया ॥ श्याम के पास जाकर वे कृष्ण नाम लेकर अत्यन्त लजायमान होकर पुकार रही है । उसकी सुन्दर प्रभा पर अनेकों भाव न्योछावर हो रहे हैं, जिसको देखकर सभी लोग प्रसन्न हो रहे हैं और मुनियों के भी ध्यान छूट गये हैं । वह राधिका सूर्य के समान प्रकट होकर शोभायमान हो रही है ॥ ६०४ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपियों के साथ वे कृष्ण खेल रहे हैं, जिनका सुन्दर घर ब्रज में है । उसी के नेत्र हिरण के समान हैं और वही नन्द और यशोदा का बालक है । गोपियों ने उसको घेर लिया है और मेरा मन भी उसकी प्रशंसा करने के लिए उत्साहित हो उठा है । वे ऐसे लग रहे हैं मानो कामदेव के साथ खेलने के लिए अनेकों चन्द्रमाओं ने कामदेव को घेर लिया है ॥ ६०५ ॥ सास इत्यादि का डर और लज्जा को त्यागते हुए कृष्ण को देखकर सभी गोपियाँ मोहित हो रही हैं । वे अपने घरों पर बिना कुछ कहे पतियों को भी त्यागकर चली आई और हँसती हुई तथा ताल बजाती-गाती हुई इधर-उधर घूम रही हैं । जिसको भी श्रीकृष्ण देख लेते हैं, वही मोहित होकर धरती पर गिर पड़ती है ॥ ६०६ ॥ ॥ सवैया ॥ जो त्रेतायुग का स्वामी है और जिसने पीताम्बर धारण कर रखा है, जिसने महाबली

है तन पै धरिया पट पीले । जाहि छल्यो बलिराज बली जिन शत्रु हने कर कोप हठीले । ग्वारन रीझ रही धरनी सु धरे पट पीलन पै सु रंगीले । जिउं मृगनी सर लाग गिरै इह तिउं हरि देखत नैन रसीले ॥ ६०७ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्हर के संग खेलत सो अति ही सुख को करकै तन मै । स्याम ही सो अति ही हित कै चित कै नहि बंधन अउ धन मै । धर रंगनि बस्त्र सभै तहि डोलत यौं उपमा उपजी मन मै । जोउ फूल मुखी सह फूल कै खेलत फूल सी होइ गई बन मै ॥ ६०८ ॥ ॥ सवैया ॥ सभ खेलत है मन आनंद कै भगवान को धार सभै मन मैं । हरि के चितवे की रही सुध एक न अउर रही न कछू तन मैं । नही भूतलु मैं अरु मातलु मैं इन सो नहि देवन के गन मैं । सोऊ रीझ सो स्याम कहै अति ही फुन डालत ग्वारन के गन मैं ॥ ६०९ ॥ ॥ सवैया ॥ हसिकै भगवान कहो बतिया बिखभान सुता पिख रूप नवीनो । अंगन आउ धरे पुन बेसर भाव सभै जिन भाखन कीनो । सुंदर सेंधर को जिन लै करि भाल बिखै बिंदुआ इक दीनो । नैन नचाइ मनै सुख पाइ चितै

राजा बलि को छला था और क्रोधित होकर हठीले शत्रुओं का नाश किया था; उसी पर ये गोपियाँ मोहित हो रही हैं, जिसने रँगीले पीले वस्त्र धारण कर रखे हैं। जिस प्रकार मृगियाँ बाण लगने से गिर पड़ती हैं, उसी प्रकार का प्रभाव श्रीकृष्ण के रसिक नेत्रों का हो रहा है ॥ ६०७ ॥ ॥ सवैया ॥ मन में अत्यन्त सुख मानते हुए गोपियाँ श्रीकृष्ण के साथ खेल रही हैं और कृष्ण के साथ प्रेम करने में किसी भी प्रकार का बन्धन नहीं मान रही हैं। उनके वस्त्र और वे सब इस प्रकार डोलती फिर रही हैं, जिस प्रकार फूलों का रस लेनेवाली मक्खी फूलों के साथ खेलते हुए वन में फूलों के साथ ही एकात्म हो जाती है ॥ ६०८ ॥ ॥ सवैया ॥ मन में भगवान को धारण किए हुए आनन्दित होकर सभी खेल रही हैं और उनको केवल कृष्ण को देखने के अलावा किसी और की सुधि नहीं रही। इनका मन न तो पाताल में, न इस मृत्युलोक में और न देवलोक में है, अपितु वे मोहित होकर गोपीराज कृष्ण के साथ ही डोल रही हैं ॥ ६०९ ॥ ॥ सवैया ॥ राधा का नवीन सुन्दर रूप देखकर भगवान श्रीकृष्ण ने उससे बातें कीं। उसने अंगों पर विभिन्न भावों को दर्शानेवाले आभूषण धारण कर रखे थे। उसने सिन्दूर की बिन्दी मुख पर लगा रखी थी और नयनों को नचाते हुए मन को अत्यन्त सुख दे रही थी उसको देखकर

जदुराइ तबै हसि दीनो ॥ ६१० ॥ ॥ सवैया ॥ बीन सौं ग्वारनि गावत है सुनवै कहु सुंदर कान्हर कारे । आनन है जिनको ससि सो सुभ लोचन कंजन से म्रिग बारे । छाजत ताकी उठी धुन ता छबि को कबि स्याम उचारे । ढोलक संग तंबूरन होइ उठे तह बाज म्रिदंग नगारे ॥ ६११ ॥ खेलत ग्वारनि प्रेम (मू०ग्रं०३३३) छको कबि स्याम कहै संग कान्हरे कारे । सोभत जा मुख चंद्रप्रभा सम लोचन कंजन से म्रिग बारे । जा पिखि कंद्रप रीझ रहै पिखिए जिह के म्रिग आदिक हारे । केहरि कोकिल के सभ भाव किधौ इन पै गन ऊपर वारे ॥६१२॥ ॥ सवैया ॥ जाहि भभीछन राज दियो जिनहूँ बर रावन सो रिपु साधो । खेलत है सोऊ भूमि बिखै ब्रिज लाज अकाजन को तज बाधो । जाहि निकास लयो मुर प्रान सु नाप लियो बलि को तन आधो । स्याम कहै संग ग्वारन के अत ही रस सों सोऊ खेलत माधो ॥६१३॥ ॥ सवैया ॥ जो मुर नाम महा रिप दै तुप कै अति ही डरिया फुन भौरनि । जो गज संकट को कटिया हरिता जोऊ साधन के दुखदौरनि । सो ब्रिज मै जमुना तट पै

यदुराज श्रीकृष्ण मुस्करा दिये ॥ ६१० ॥ ॥ सवैया ॥ वीणा की-सी मधुर वाणी में गोपियाँ गा रही हैं और कृष्ण सुन रहे हैं । उनका मुख चन्द्रमा के समान और नेत्र बड़े-बड़े कमलों के समान, उनकी रागिनी की झंकार ऐसी उठी है कि उसी में ढोलक, तानपूरा, मृदंग, नगाड़े आदि बाजों के स्वर सुनाई पड़ रहे हैं ॥ ६११ ॥ गोपियाँ प्रेम-पूर्वक उन्मत्त होकर श्रीकृष्ण के साथ खेल रही हैं । उनके मुख की शोभा चन्द्रमा के समान और उनके नेत्र बड़े-बड़े कमलों के समान हैं, जिनको देखकर कामदेव भी मोहित हो रहा है और मृग आदि भी हृदय हार बैठे हैं । शेर और कोयल में अवस्थित सभी भाव श्रीकृष्ण इन पर न्योछावर कर रहे हैं ॥ ६१२ ॥ ॥ सवैया ॥ जिसने विभीषण को राज्य दिया और रावण जैसे शत्रु का नाश किया, वही सब प्रकार की लज्जा को त्यागकर ब्रजभूमि में खेल रहा है । जिसने मुर नामक राक्षस का प्राण निकाल लिया था और बलि का आधा तन नाप लिया था श्याम कवि कहता है कि वही माधव गोपियों के साथ रसपूर्वक क्रीड़ा कर रहा है ॥ ६१३ ॥ ॥ सवैया ॥ महा शत्रु मुर नामक दैत्य जिससे भयभीत हो उठा था । जिसने गज के संकट को काटा और जो साधुओं के दुखों का हरण करनेवाला है उसी ने ब्रज में यमुना के तट पर गोपियों के वस्त्र चुराये हैं और रस के वश में क्रीड़ा

कबि स्याम कहै हरिया तिय औरनि । सा करकै रस को चस सो इह भांत कह्यो मन बीच अहीरनि ॥ ६१४ ॥ ॥ कानजू बाच गुवारन सो ॥ ॥ सवैया ॥ केल करो हम संग कह्यो अपने मन मै कछु शंक न आनो । झूठ कह्यो नहि मानहु री कहियो तुमसो तुम साच पछानो । ग्वारनिया हरि की सुन बात गई तज लाज करै जस ठानो । ताल बिखै तज सीलहि को नभ बीच चल्यो जिम जात टनानो ॥ ६१५ ॥ ॥ सवैया ॥ सिखबान सुता हरि के हित गावत ग्वारन के सु किशो गन मै । इक नाचत है अति प्रेम भरी बिजली जिह भांत घने घन मै । कबि ने उपमा तिह गाइब की सु बिचार कही अपने मन मै । रुत चैत की मै मन आनंद कै कुहकै मनो कोकिलका बन मै ॥ ६१६ ॥ ॥ सवैया ॥ हरि के संग खेलत रंग भरी सु त्रिया सभ साज सभै तन मै । अति ही कर कै हित कान्हर सो कर कै नही बंधन औ धन मै । पुन ता छबि की अति ही उपमा उपजी कबि स्याम के यो मन मै । मनो सावन मास के मद्ध बिखै चमकै जिम बिज्जुलता घन मै ॥ ६१७ ॥ स्याम सो सुंदर खेलत है कबि स्याम कहै अति ही रंग राची । रूप सची

हुई अहीर लड़कियों के बीच रमण कर रहा है ॥ ६१४ ॥ ॥ कृष्ण उवाच गोपियों के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ मेरे साथ निःशंक होकर क्रीड़ा करो । मैं तुमसे सच कह रहा हूँ, झूठ नहीं कह रहा हूँ । गोपियों ने कृष्ण की बात सुनकर लज्जा का त्याग कर कृष्ण के साथ क्रीड़ा करने की मन में ठान ली । वह ऐसी लग रही थी जैसे रात्रि के समय कोई जुगनू झील के किनारे से उड़कर आकाश की ओर बढ़ता है, इस प्रकार गोपियाँ कृष्ण की ओर बढ़ चली हैं ॥ ६१५ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपियों के झुण्ड में राधा कृष्ण के लिए गा रही है और इस प्रकार नृत्य कर रही है मानो बादलों में बिजली चमक रही हो । कवि उसके गायन की प्रशंसा करते हुए कहता है कि वह ऐसी लग रही है मानो चैत्र ऋतु में वन में कोयल कूक रही है ॥ ६१६ ॥ ॥ सवैया ॥ सभी स्त्रियाँ सज-धजकर कृष्ण के साथ अत्यन्त प्रेम करते हुए और सब बन्धनों का त्याग करते हुए प्रेम के रंग में रँगकर खेल रही हैं । पुनः कवि कहता है कि वे ऐसी लगती हैं, मानो सावन के महीने में बादलों में बिजलियाँ चमक रही हों ॥ ६१७ ॥ कृष्ण के रंग में रंगी हुई वे सुन्दरियाँ सुन्दर खेल खेल रही हैं उनका रूप शचि और रति के समान है और हृदय में सच्चा प्रेम है यमुना के

अरु पै रत की मन मै कर प्रीत सो खेलत साची। रास को खेल तटै जमना रजनी अरु द्योस बिडुरक माची। चंद्रभगा अरु चंद्रमुखी ब्रिखभान सुता तज लाजहि नाची ॥ ६१८ ॥ रास को खेल सु ग्वारनिया अति ही तह सुंदर भांति रची है। लोचन है (मू०ग्रं०३३५) जिनके म्रिग से जिन के सम तुल्ल न रूप सची है। कंचन सो तिन को तन है मुख है ससि सो तह राधि गची है। मानो करी कर ले करता सुध सुंदर ते जोऊ बाकी बची है ॥ ६१९ ॥ आई है खेलन रास बिखै सजकै सु त्रिया तन सुंदर बाने। पीत रंगे इक रंग कसुंभ के एक हरे इक केसर साने। ता छबि के जस उच्च महा कबि नै अपने मन मै पहिचाने। नाचत झूम गिरी धरनी हरि देख रही नही नैन अघाने ॥ ६२० ॥ ॥ सवैया ॥ तिनको इतनो हित देखत ही अति आनंद सो भगवान हसे है। प्रीत बढी अति ग्वारन सो अति ही रस के फुन बीच फसे है। जा तन देखत पुंनि बढै जिह देखत ही सभ पाप नसे है। जिउँ ससि अग्र लसै चपला हरि दारम से तिम दांत लसे है ॥ ६२१ ॥ संग गोपिन बात कही रस की जोऊ कान्ह रहै सभ दैत मरइया। साधन को

तट पर दिन-रात इनके रासलीला की धूम मची हुई है और वहीं पर लज्जा का त्याग कर चन्द्रभगा, चन्द्रमुखी और राधा नृत्य कर रही है ॥ ६१८ ॥ रासलीला का खेल इन गोपियों ने भली प्रकार से प्रारम्भ कर दिया है। इनकी आँखें मृग के समान हैं और शचि भी रूप मे इनके तुल्य नहीं है। इनका तन सोने के समान है और मुख चन्द्र के समान है। ऐसा लगता है कि जैसे समुद्र से निकले हुए बचे हुए अमृत से इनकी रचना की है ॥ ६१९ ॥ सुन्दर वस्त्र पहनकर स्त्रियाँ खेल खेलने आयी हैं। किसी का वस्त्र पीले रंग का है, किसी का लाल रंग का है और किसी का केसर के साथ भीगा हुआ है। कवि कहता है कि नाचते-नाचते गोपियाँ धरती पर गिर जाती, परन्तु फिर भी उनका मन कृष्ण को देखने से नहीं भरता है ॥ ६२० ॥ ॥ सवैया ॥ उनका इतना प्रेम देखकर भगवान कृष्ण हँस रहे हैं। उनका प्रेम गोपियों से इतना बढ़ गया है कि अब वे उनके प्रेम-रस में फँस गये हैं। कृष्ण के शरीर को देखने से पुण्य की वृद्धि होती है और पापों का नाश होता है। जैसे चन्द्रमा शोभायमान होता है अथवा बिजली चमकती है अथवा अनार के दाने सुन्दर प्रतीत होते हैं, वसे प्रकार श्रीकृष्ण के दांत अच्छे लग रहे हैं ॥ ६२१ दैत्यों का नाश करनेवाले श्रीकृष्ण गोपियों के साथ प्रेम की

जोऊ है बरता अउ असाधन को जोऊ नास करइया। रास बिखै सोऊ खेलत है जसुधा सुत जो मुसलीधर भइया। नैनन के कर कै सु कटाछ चुराइ मनो मति गोपिन लइया ॥ ६२२ ॥ देवगंधार बिलावल सुद्ध मलार कहै कबि स्याम सुनाई। जैतसिरी गुजरी की भली धुन रामकली हूँ की तान बसाई। सयाबर ते सुन कै सुरजो जड़ जंगम ते सुरजा सुन पाई। रास बिखै संग ग्वारनि के इह भांत सो बंसुरी कान्ह बजाई ॥ ६२३ ॥ दीपक अउ नट नाइक राग भलो बिधि गउरी की तान बसाई। सोरठ सारंग रामकली सुर जैतसिरी सुभ भाँत सुनाई। रीझ रहै प्रिथमी के सभै जन रीझ रह्यो सुन कै सुर राई। तीर नदी संग ग्वारनि के मुरली करि आनंद स्याम बजाई ॥ ६२४ ॥ ॥ सवैया ॥ जिहके मुख को सम चंद्रप्रभा तन की तिह भा मनो कंचन सी है। मानहु लै कर मै करता सु अनूप सी मूरत याकी कसी है। चाँदनी सै गन गारनि के इह ग्वारन गोपिन ते सु हुछी है। बात जु थी मन कान्हर के त्रिखभान सुता सोऊ पै लख ली है ॥६२५॥ ॥ कान्ह जू बाच राधे सो ॥ ॥ दोहरा ॥ क्रिशन राधका तन निरख कही बिहसि कै बात। म्रिग के अरु

बातें की। श्रीकृष्ण साधुओं के रक्षक और असाधुओं के नाश करनेवाले हैं। रासलीला में यही यशोदा के पुत्र और बलराम के भाई खेल खेल रहे हैं तथा इन्होंने ही आँखों के संकेतों से गोपियों के मन को चुरा लिया है ॥ ६२२ ॥ राग देवगंधारी, बिलावल, शुद्ध मल्हार, जैतश्री, गूजरी और रामकली की तान श्रीकृष्ण ने सुनाई, जिसे जड़, जंगम, देवकन्याओं आदि सबने सुना। कृष्ण ने इस प्रकार गोपियों के साथ मुरली को बजाया ॥ ६२३ ॥ राग दीपक, गौड़ी, नट नायक, सोरठ, सारंग, रामकली और जैतश्री की धुन श्रीकृष्ण ने भलीभाँति सुनाई, इसे सुनकर पृथ्वी के निवासी और देवराज इन्द्र भी मोहित हो उठे। इस प्रकार गोपियों के साथ आनन्दित होकर कृष्ण ने नदी के तट पर मुरली बजाई ॥ ६२४ ॥ ॥ सवैया ॥ जिसके मुख की शोभा चन्द्रप्रभा के समान है और जिसका शरीर सोने के समान है, जिसको परमात्मा ने मानो स्वयं अनुपम रूप से बनाया हो, वह गोपियों के झुण्ड में सबसे सुन्दर गोपी राधा है और उसने कृष्ण के मन में जो बात थी उसको जान लिया है ॥ ६२५ ॥ ॥ कृष्ण उवाच राधा के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण ने राधा के तन को देखकर हँसते हुए कहा कि तुम्हारा तन मृग और कामदेव के समान सुन्दर

कुल मैन के लो मै सभ है गाल ॥ ६२६ ॥ ॥ सवैया ॥ भाग को भाल (मू०ग्रं०३३५) हर्यो सुन ग्वारन छीन लई मुख जोत ससी है । नैन मनो सर तीछन है भ्रिकुटी मनु जान कमान कसी है । कोकिल बैन कपोत सो कंठ कह्यो हमरे मन जोऊ बसी है । ऐसे पै चोर लयो हमरो चित दामन ज्यों मन बीच लसी है ॥ ६२७ ॥ कानर लै ब्रिखभान सुता संग गीत भली बिधि सुंदर गावैं । सारंग देवगंधार बिभास बिलावल भीतर तान बसावैं । जो जड़ ब्रजनन मै सुन कै धुन त्याग कै धाम तहा कहु धावैं । जो खग जात उडे नभि मै सुन ठाढ रहै धुन जो सुन पावैं ॥ ६२८ ॥ ग्वारन संग भले भगवान सु खेलत है अरु नाचत ऐसे । खेलत है मन आनंद कै म कछू अरहा मन धार कै भै से । गावत सारंग ताल बजावत ग्वाल कहै अति ही सु हुलै से । सावन की रुत मै मनो नाचत मोरनि मै सुरवानर जैसे ॥ ६२९ ॥ ॥ सवैया ॥ नाचत है सोऊ ग्वारनि मै जिह को ससि सो अति सुंदर आनन । खेलत है रजनी सित मै जह राजत थो जमुना तट कानन । भान सुता बिध को अरु

है ॥ ६२६ ॥ ॥ सवैया ॥ हे राधा ! सुनो, इन सबने तो भाग्य का भाग्य भी छीन लिया है और चन्द्रमा की ज्योति चुरा ली है । इनके नयन तीक्ष्ण बाणों के समान और भृकुटी कमान के समान है । इनकी वाणी कोयल के समान और गला कपोत के समान है । मुझे जो जैसे अच्छा लग रहा है, मैं कह रहा हूँ । इस सबसे बढ़कर बात तो यह है कि बिजली के समान शोभायमान होनेवाली स्त्रियों ने मेरा मन चुरा लिया है ॥ ६२७ ॥ कृष्ण राधा को साथ लेकर सुन्दर गीत गा रहे हैं तथा सारंग, देवगंधारी, विभास, बिलावल आदि की स्वरलहरी निकाल रहे हैं । बेजान वस्तुएँ भी इसे सुनकर अपना स्थान त्यागकर दौड़ पड़ी हैं तथा जो पक्षी आकाश में उड़ रहे हैं, वे भी इस ध्वनि को सुनकर स्थिर हो गये हैं ॥ ६२८ ॥ ग्वालिनों के साथ भगवान खेल और गा रहे हैं । वे बिलकुल अभय होकर तथा आनन्दित होकर खेल रहे हैं । गा रहे हैं और ताल बजा रहे हैं और ऐसे लग रहे हैं, मानो सावन की ऋतु में मोर मोरनियों के साथ क्रीड़ा कर रहा हो ॥ ६२९ ॥ ॥ सवैया ॥ जिसका चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख है, वह ग्वालिनों के साथ नृत्य कर रहा है । चाँदनी रात में वह यमुना के तट पर जंगल में शोभायमान हो रहे हैं । यहाँ अभिमानिनी चन्द्रभगा और राधा हैं और श्रीकृष्ण ऐसे शोभायमान

श्री सु छुती जह चंद्रभगा अभिमानन। छाजत ता महि श्री हरिजू जिउँ बिराजत बीच पनानग खानन॥ ६३०॥ सु संगीत नचै हरि जू तिह ठउर सु स्याम कहै रस के संग भीनो। स्वेत हए फुन केसर की धुतिया कसि कै पट ओढ नवीनो। राधका चंद्रमगा मुख चंद लए जह ग्वारन श्री संग तीनो। काम मधाहुकै नैनन को सभ गोपिन को मनुआ हरि लीनो॥ ६३१॥ घ्रिथ्रमान सुता की बराबर मूरति स्याम कहै सु नही घ्रितची है। जा सम है नही काम त्रिया नही जिसको सम तुल्लि सची है। मानहु कै ससि को सभ सार प्रभा करतार इही मै गची है। नंद के लाल बिलासन को इह मूरत चित्र बचित्र रची है॥६३२॥ राधिका चंद्रभगा मुख चंद सु खेलत है मिलि खेल सभै। मिलि सुंदर गावत गीत सभै सु बजावत है कर ताल तबै। पिखवै इह को सोऊ मोह रहे सभ देखत है सुर याहि छबै। कबि स्याम कहै मुरली धर मैन की मूरति गोपिन मद्धि फबै॥६३३॥ ॥ सवैया॥ जिह की सम तुल्लि न है कमला दुति जा पिखि कै कट केहर लाजे। कंचन देखि लजै तन को तिह देखत ही मन को दुखु भाजै। जा सम रूप न कोऊ त्रिया (मू०ग्रं०३३९) कबि

हो रहे हैं, मानो खान में पन्ना तथा अन्य नग (हीरे) शोभायमान हो रहे हों॥ ६३०॥ श्याम कवि का कथन है कि संगीत रस में भीगकर श्रीकृष्ण उस स्थान पर नृत्य कर रहे हैं। केसर से रँगा हुआ श्वेत वस्त्र उन्होंने कसकर पहन रखा है। वहाँ राधा, चन्द्रमुखी और चन्द्रभगा तीनों ही गोपियाँ हैं और श्रीकृष्ण ने नयनों के संकेत से तीनों का मन हर लिया है॥ ६३१॥ घृताची नामक अप्सरा भी राधा के समान सौन्दर्य-शालिनी नहीं है। उसके समकक्ष तो रति और शचि (इन्द्राणी) भी नहीं है। ऐसा लगता है कि चन्द्रमा का सम्पूर्ण तेज ब्रह्मा ने इसी राधा में व्याप्त कर दिया हो और नन्दलाल कृष्ण के विलास के लिए इसकी विचित्र रचना की हो॥ ६३२॥ राधिका, चन्द्रभगा और चन्द्रमुखी सभी मिलकर खेल खेल रही हैं। सभी मिलकर सुन्दर गीत गा रही हैं और ताल बजा रही हैं। देवगण भी इस छवि को देखकर मोहित हो रहे हैं। कवि श्याम का कथन है कि मुरलीधारी कामदेव की मूर्ति गोपियों के मध्य शोभायमान हो रही है॥ ६३३॥ ॥ सवैया॥ जिसके समान लक्ष्मी भी नहीं है और जिसकी कमर को देखकर शेर भी लज्जित होता है। जिसके तन की शोभा देखकर स्वर्ण भी लजायमान होता है और जिसको देखकर

घरी इक नीर नदी को चले सु कछू ना । जे ब्रिजभामन आई हुती धरधासन अंग बिखै अरु मूना । सो सुन कै धुन बासुरी को सम बीच रही तिन के सुध हू ना । ता सुध गी सुर के सुन ही रहगी इह मानहु चित्र नमूना ॥ ६३९ ॥ रीझ बजावत है मुरली हरि पै मन मै करि शंक कछू ना । जा की सुने धुन स्रउनन मै करके खग आवत है बन सूना । सो सुन ग्वारनि रीझ रही मन भीतर शंक करी कछहू ना । नैन पसार रही चित्र कै जिम घंटक हेर बजे मिलि मूना ॥ ६४० ॥
॥ सवैया ॥ सुर बासुरी की कबि स्याम कहै मुख कानर के अति ही सु रसी है । सोरठ देवगंधार बिभास बिलावल हू की सु तान बसी है । कंचन सो जिहको तन है जिह के मुख की सम सोभ ससी है । ता के बजाइबे को सुन कै मति ग्वारनि की तिह बीच फसी है ॥ ६४१ ॥ देवगंधार बिभास बिलावल सारंग की धुन तां मै बसाई । सोरठ सुद्ध मलार किधो सुर (मू०ग्रं०३३७) मालसिरी की महा सुखदाई । मोहि रहे सभ ही सुर अउ नर ग्वारन रीझ रही सुन धाई । यौ उपजी

एक घड़ी तक पवन उलझन में पड़ गया और नदी का जल भी आगे नहीं बढ़ा । जितनी भी ब्रज की स्त्रियाँ वहाँ आईं, उनकी धड़कन बढ़ी हुई और अंग थरथरा रहे थे । उन्हें बाँसुरी सुनकर तन की तनिक भी सुधि न रही । वे बाँसुरी के स्वर को सुनकर चित्रवत् होकर रह गयीं ॥ ६३९ ॥ कृष्ण निर्भय होकर हाथ में मुरली लेकर बजा रहे हैं और उसकी ध्वनि सुनकर बन के पक्षी जंगल को सूना करके चले आ रहे हैं । उसे सुनकर ग्वालिनें भी रीझ रही हैं और अभय हो रही हैं । जिस प्रकार नाद को सुनकर काले हिरण की मादा मंत्रमुग्ध हो जाती है, उसी प्रकार बाँसुरी को सुनकर गोपियाँ मुँह फैलाए आश्चर्यचकित खड़ी हैं ॥ ६४० ॥
॥ सवैया ॥ बाँसुरी का स्वर कृष्ण के मुख से निकलकर शोभा दे रहा है और उसमें सोरठ, देवगन्धार, विभास तथा बिलावल की तान बसी हुई है । कृष्ण का तन कंचन के समान और उसके मुख की शोभा चन्द्रमा के समान, बाँसुरी-वादन को सुनकर गोपियों का मन उसी में उलझकर रह गया है ॥ ६४१ ॥ देवगंधारी, विभास, बिलावल, सारंग, सोरठ, शुद्ध मल्हार तथा मालश्री की सुखदायक ध्वनि बाँसुरी में बज रही है । उसको सुनकर सभी सुर और नर प्रसन्न होकर दौड़ रहे हैं और सभी उस स्वर के मोह मे इस प्रकार बँध गये हैं मानो भगवान श्रीकृष्ण ने कोई प्रेम-पाश

सुर चेटक की भगवान मनो धर फास चलाई ॥ ६४२ ॥ आनन है जिह को अति सुंदर कंध धरे जोऊ है पट पीलो। जाहि मर्यो अघ नाम बडो रिपु तास रख्यो अहि ते जिन लीलो। असाधन को सिर जो कटिया अरु साधन को हरता जोऊ हीलो। चोर लयो सुर सो मन तास बजाइ भली बिधि साथ रसीलो ॥ ६४३ ॥ जाहि भभीछन राज दयो अरु रावन जाहि मर्यो करि कोहै। चक्र के साथ किधो जिनहू सिसपाल को सीस कट्यो कर छोहै। मैन सु अउ सिय को भरता जिह मूरत को सम तुलित न कोहै। सो कर लै अपने मुरली अब सुंदर गोपिन के मन मोहै ॥ ६४४ ॥ ॥ सवैया ॥ राधिका चंद्रभगा मुख चंद सु खेलत है मिलि खेल सबै। मिलि सुंदर गावत गीत भले सु बजावत है कर ताल तबै। फुन त्याग सभै सुरमंडल को सभ कउतक देखत देव सबै। अब राकस मारन को सु कथा कछु थोरी अहै सुन लेहु अबै ॥ ६४५ ॥ नाचत थी जिह ग्वारनिया अरु फूल खिरे अरु भउर गुंजारैं। नीर बहै जमुना अरु सुंदर कान्ह हली मिलि गीत उचारैं। खेल करै

चलाकर सबको बाँध लिया है ॥ ६४२ ॥ जिसका मुख अत्यन्त सुन्दर है और जिसने कंधे पर पीताम्बर धारण कर रखा है, जिसने अघासुर का नाश किया और जिसने सर्प से बन्धुगण की रक्षा की थी, जो असाधुओं का नाश करनेवाला और साधुओं के दुःखों को दूर करनेवाला है, उस श्रीकृष्ण ने रसदायक बाँसुरी बजाकर देवताओं का मन मोह लिया है ॥ ६४३ ॥ जिसने विभीषण को राज्य दिया, रावण को क्रोधित होकर मारा, शिशुपाल का अपने चक्र से वध किया तथा जो कामदेव के समान रूपवान तथा सीता का पति राम है, जिसके स्वरूप के समान अन्य कोई नहीं है, वही श्रीकृष्ण अपने हाथों में बाँसुरी लेकर अब सुन्दर गोपियों के मन को मोह रहा है ॥ ६४४ ॥ ॥ सवैया ॥ राधा, चन्द्रभगा और चन्द्रमुखी सभी मिलकर सुन्दर गीत गा-बजा रही हैं और खेल रही हैं। देवमण्डली भी अपना स्थान त्यागकर इनकी लीला को देख रही है। अब राक्षस के मारने की थोड़ी-सी कथा है, उसे भी सुन लो ॥ ६४५ ॥ जहाँ गोपियाँ नृत्य कर रही थीं वहाँ फूल खिले हुए थे तथा भौंरे गुंजार कर रहे थे, वहीं पर यमुना बह रही थी और कृष्ण तथा बलराम मिलकर गीत गा

अति ही हित सो न कछू मन भीतर शंकहि धारैं। रीझ कबित्त पढ़ै रस के बहुसै दोऊ आहस मैं नही हारैं॥ ६४६॥

अथ जखच्छ गोपिन कौ नभ को ले उडा॥

॥ सवैया॥ आवत थो इक जच्छ बडो इह रास को कउतक ताहि बिलोक्यो। ग्वारनि देखिकै मैन बढ्यो तिहते तन मै नही रंचक रोक्यो। ग्वारनि लै सु चल्यो नभि को किनहू तिह भीतर ते नही टोक्यो। जिउं मधि भीतरि सैं मुसली हरि केहर है म्रिग सो रिपु रोक्यो॥ ६४७॥ ॥ सवैया॥ जच्छ के संग किधौ मुसली हरि जुद्ध कर्‌यो अति कोपु संभार्‌यो। लै तर बीर दोऊ कर भीतर भीम भए अति ही बल धार्‌यो। दैत पछार लयो इह भांत कबै जसु ता छबि ऐस उचार्‌यो। ढोके छुटे ते महां छुधवान किधौ चकवा उठि बाजहि मार्‌यो॥ ६४८॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिशनावतारे गोपि छुराइबो जखछ बधह॥

रहे थे। वे अभय होकर प्रेमपूर्वक खेल रहे थे और दोनों प्रसन्न होकर कविता आदि कहने में एक-दूसरे से हार नहीं रहे थे॥ ६४६॥

यक्ष का गोपियों को आकाश में ले उड़ना

॥ सवैया॥ एक यक्ष आया और उसने यह लीला देखी। गोपियों को देखकर वह कामातुर हो उठा और तनिक भी अपने को रोक नहीं पाया। वह बिना रोक-टोक गोपियों को लेकर आकाश में उड़ चला। उसी समय बलराम और कृष्ण ने उसको ऐसे रोक लिया, जैसे शेर मृग को रोक लेता है॥ ६४७॥ ॥ सवैया॥ अत्यन्त क्रोधित होकर बलराम और कृष्ण ने यक्ष के साथ युद्ध किया। दोनों वीरों ने भीम के समान बल धारण करके वृक्षों को हाथ में लेते हुए युद्ध किया। इस प्रकार उन्होंने दैत्य को पछाड़ दिया। यह दृश्य ऐसा लग रहा था कि मानो भूखा बाज क्रौंच पक्षी को झपटकर मार देता है॥ ६४८॥

श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार में गोपी-हरण यक्ष वध समाप्त

॥ सवैया ॥ मारकै ताहि किधौ मुसली हरि बंसी बजाई न कै (मू०ग्रं०११८) कछु शंका । रावन छेत मर्‍यो कुप कै जिन रीझ भभीछन दीन सु लंका । जाको लख्यो कुबजा बल ग्राहन जाको लख्यो मुर दैत असंका । रीझ बजाइ उठ्यो मुरली सोई जीति लियो जस को मनो डंका ॥ ६४९ ॥ द्रुमन ते रस चूवन लाग झरैं झरना गिर ते सुखदाई । घास चुगै न म्रिगा बनके खग रीझ रहे धुन आ सुन पाई । देवगंधार बिलावल सारंग की रिझ कै जिह तान बसाई । देव सभै मिलि देखत कउतक जउ मुरली नंदलाल बजाई ॥ ६५० ॥
॥ सवैया ॥ ठाढ रही जमुना सुनकै धुन राग भले सुनबे को चहे है । मोहि रहे बन के गज अउ इकठे मिलि आवत सिंघ सहे है । आवत है सुरमंडल के सुर त्याग सभै सुर ध्यान फहे है । सो सुनिकै बन के खगवा तर ऊपर पंख पसार रहे है ॥ ६५१ ॥ ओऊ ग्वारनि खेलत है हरि सो अति ही हित कै न कछू घन मै । अति सुंदर पै जिह सोभ लसे कुन कंचन की सु प्रभा तन मै । ओऊ चंद्रमुखी कट केहरि सी सु बिराजत ग्वारनि के गनि मै ।

॥ सवैया ॥ यक्ष को मारकर बिना किसी डर के कृष्ण और बलराम ने बाँसुरी बजाई । कृष्ण ने ही कुपित होकर रावण को मारा था और विभीषण को लंका का राज्य दिया था । उसी की दृष्टि से कुब्जा दासी का उद्धार हुआ था और उसी की दृष्टि से मुर नामक दैत्य आतंकित हुआ था । वही कृष्ण यश का डंका बजवाते हुए मुरली बजा उठा ॥ ६४९ ॥ मुरली की ध्वनि को सुनकर वृक्षों से रस चूने लगा और सुखदायक झरने बहने लगे । मुरली को सुनकर मृगों ने घास चरना छोड़ दिया और वन के पक्षी भी मोहित हो उठे । मुरली से देवगन्धार, बिलावल, सारंग की तान बजने लगी और नन्दलाल कृष्ण को मुरली बजाता हुआ देखकर देवगण भी इस लीला को मिलकर देखने लगे ॥ ६५० ॥
॥ सवैया ॥ राग सुनने की इच्छा से यमुना भी स्थिर हो गई । वन के गज, सिंह और खरगोश आदि भी मोहित हो रहे हैं तथा देवगण भी देवलोक को त्यागकर मुरली की ध्वनि के वश में होकर चले आ रहे हैं । इसी मुरली को सुनकर वन के पक्षी भी पेड़ों पर पंख पसारकर ध्यानावस्थित हो गये हैं ॥ ६५१ ॥ जो ग्वालिनें कृष्ण के साथ खेल रही हैं, उनके मन में अत्यन्त प्रेम-भाव है । वे स्वर्ण के तन की शोभा वाली अत्यन्त सुन्दर हैं । और सिंह के समान पतली कमर वाली जो चन्द्रमुखी नायक

सुनि कै मुरली धुन स्रउनन मै अति रीझ गिरी सु मनो बन मै ॥ ६५२ ॥ इह कउतक कै सु चले ग्रिह को फुन गावत गीत हली हरि आछे । सुंदर बीच अखारे किधौ कबि स्याम कहै नटूआ जन काछे । राजत है बलभद्र के नैन यों मानों ढरे इह मैन के साछे । सुंदर है रति के पति तै अति मानहु डारत मैनहि पाछे ॥ ६५३ ॥ बीच मनैं सुख पाइ तबै ग्रिह को सु चले रिप को हनि दोऊ । चंद्रप्रभा सम जा मुख उपम जा सम उपम है नहि कोऊ । देखत रीझ रहै जिह को रिप रीझति सो इन देखत सोऊ । मानहु लछमन राम बडे भट मार चले रिप को घर ओऊ ॥ ६५४ ॥

अथ कुंजगलीन को खेलबो ॥

॥ सवैया ॥ हरि संग कह्यो इम ग्वारन के अब कुंज गलीन मै खेल मचइयै । नाचत खेलत भांत भली सु कह्यो यौं सुंदर गीत बसइयै । जाके किए मनु होत खुशी सुनियै उठिकै

गोपी है, वह गोपियों के मध्य विराजमान है तथा मुरली की ध्वनि को सुनकर मोहित होकर बन में गिर पड़ी ॥ ६५२ ॥ यह लीला करके कृष्ण और बलराम गाते हुए घर को चले आये । नगर में सुन्दर अखाड़े और नटों के क्रीड़ास्थान शोभायमान हो रहे हैं । बलराम के नेत्र ऐसे शोभायमान हो रहे है, मानो कामदेव के साँचे में ढले हुए हों और इतने सुन्दर हैं कि कामदेव को भी पीछे छोड़ रहे हैं ॥ ६५३ ॥ मन में प्रसन्न होकर और शत्रु को मारकर दोनों घर की ओर चले हैं । चन्द्रकला के समान उनका मुख है और उनके मुख की तुलना किसी अन्य से नहीं की जा सकती । उनको देखकर शत्रु भी मोहित हो रहे हैं और वे ऐसे लग रहे है मानो राम-लक्ष्मण बड़े शत्रु को मारकर वापस घर को आ रहे हों ॥ ६५४ ॥

कुंजगलियों में खेल

॥ सवैया ॥ कृष्ण ने गोपियों से कहा कि अब कुंज तथा गलियो मे खेल खेला जाय । नाचते, खेलते हुए सुन्दर गीत गाये जायँ । जिस कार्य को करने से मन को प्रसन्नता होती हो वही कार्य करना चाहिए । नदी के किनार हमारी शिक्षा लेकर जैसा किया था उसी प्रकार से सुख का

सोऊ कारज कइयै। और नदी हमरो लिख लै सुख आपन दै हमहूँ सुख दइयै ॥ ६५५ ॥ कान्ह को आइस मान त्रिया ब्रिज कुंजगलीन मै खेल मचायो। गाइ उठी सोई गीत भलो ब्रिजि को हरि के मन भीतर (मू॰ग्रं॰३१८) भायो। देवगंधार अउ सुध मलहार बिखै सोऊ भाखि खिआल बनायो। रीझ रहयो धुर मंडल अउ सुरमंडल पै जिनहूँ सुन पायो ॥ ६५६ ॥ कान्ह कहयो सिर पै धर कै मिलि कुंजन मै सुभ भांत गई है। कंजमुखी तन कंचन से सभ रूप बिखै मनो मैन मई है। खेल बिखै रसकी सो त्रिया सभ स्याम के आगे ह्वै ऐसे धई है। यौ कबि स्याम कही उपमा गजगामन कामन रूप भई है ॥ ६५७ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह छुहयो चहै ग्वारनि कौ सोऊ आग चलै नही देत छुहाई। जिउँ म्रिगनी अपने पति को रति केल समै नही देत मिलाई। कुंजन भीतर और नदी बिखभान सुता सु फिरै तह धाई। ठउर तहा कबि स्याम कहै इह भांत सो स्याम जू खेल मचाई ॥ ६५८ ॥ रात करी छठ मासन की अति उज्जल पै सोऊ अयध अंधेरी। ताही समै तिह ठउर बिखै कबि स्याम सभै हरि ग्वारनि घेरी। नैन की कोर

उपभोग करो और मुझे भी सुख दो ॥ ६५५ ॥ कृष्ण की आज्ञा मानकर स्त्रियों ने ब्रज की कुंजगलियों में खेल प्रारम्भ कर दिया और जो कृष्ण को अच्छे लगते थे, वही गीत गाने शुरू कर दिये। वे गन्धार और शुद्ध मल्हार में ख्याल का गायन शुरू कर दिया और धरती तथा देवलोक में जिसने भी सुना वह मोहित हो उठा ॥ ६५६ ॥ कृष्ण की सभी गोपियाँ कुंजों में मिल गईं। उनका मुख कमल के समान, तन कंचन के समान और पूर्ण स्वरूप कामोन्मत्त है। खेल के मध्य ही स्त्रियाँ कृष्ण के आगे-आगे दौड़ रही हैं और कवि का कथन है कि वे सभी गजगामिनियाँ अत्यन्त कमनीय स्वरूप वाली दिखाई दे रही हैं ॥ ६५७ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण गोपियों का जो भाग छूना चाहते हैं, वे उन्हें उसी प्रकार नहीं छूने दे रही हैं जिस प्रकार मृगी अपने पति मृग को रति के रतिक्रीड़ा समय हाथ नहीं आती। कुंजों के भीतर नदी के किनारे राधा भी इधर-उधर दौड़ी फिर रही है और इस प्रकार कवि-कथनानुसार श्रीकृष्ण ने खेल की धूम मचा दी ॥ ६५८ ॥ छः माह की उजियाली रात अब कृष्ण के खेल की धूम के साथ अंधेरी रात में बदल गयी। उसी समय श्रीकृष्ण ने सभी गोपियों को घर लिया कोई जो उनके नयनों के कटाक्ष को देखकर

कटाछन पेखत झूम गिरी इक ह्वै गई चेरी । यौ उपजी उपमा जिय मै सर सो म्रिगनी जिम धावत हेरी ॥ ६५९ ॥ फेर उठै उठते ही भगं जदुरा को न ग्वारन देत मिलाई । पाछै परै तिन के हरि जू चड़ कै रस कै हय ऊपर धाई । राधे को नैनन के सर संग बधे मनो भउह कमान चड़ाई । झूम गिरें धरनी पर सो म्रिगनी म्रिगहा मनो मार गिराई ॥ ६६० ॥ सुध लै ब्रिखभान सुता तब ही हरि अग्रज कुंजन मै उठ भागै । रस सो जदुराइ महा रसिआ तब ही तिह के पिछुआन सो लागै । मोछ लहै नर सो छिन मै हरि के इह कउतक जो अनुरागै । यौ उपजै उपमा मन मै म्रिगनी जिम घाइल स्वार के आगै ॥६६१॥ ॥ सवैया ॥ अति भागत कुंजगलीन बिखै ब्रिखभान सुता को गहे हरि ऐसे । कैधौ नवाइ धवाइ महा जमना तट हारत मानक जैसे । पै चढ़िकै रस है मन नैनन भउह तनाइकै मारत तैसे । यौ उपजी उपमा जिम स्वार मनो जित लेत म्रिगी कहु तैसे ॥ ६६२ ॥ गहि कै ब्रिखभान सुता जदुराइ जू बोलत ता संग अंम्रित बानी । भागत काहे के हेत सुनो हमहूँ ते तूं किउ

मदमस्त होने लगी और कोई लक्षण दासी बन गयी । वे इस प्रकार चली आ रही थीं जिस प्रकार तालाब की तरफ़ मृगियाँ झुंड बाँधकर चली आ रही हों ॥ ६५९ ॥ श्रीकृष्ण उठे और दौड़ पड़े, परन्तु फिर भी गोपियाँ उनकी पकड़ में नहीं आ सकीं । श्रीकृष्ण प्रेम-रस के घोड़े पर सवार होकर उनके पीछे पड़ गये । राधा उनकी भौंहों के कमान से छूट रहे नयन-बाणों से बिंध गयी है और वह इस प्रकार पृथ्वी पर गिर पड़ी है जैसे शिकारी द्वारा मृगी को मार गिराया गया हो ॥ ६६० ॥ पुनः चेतनावस्था में आते ही राधा कृष्ण के आगे-आगे कुंजगलियों में दौड़ने लगी । महारसिक कृष्ण तभी फिर उसके पीछे हो गये । इस लीला को देखकर प्राणी मुक्त हो गए और राधा इस प्रकार लग रही थी मानो किसी घुड़सवार के आगे-आगे घायल मृगी चली जा रही हो ॥ ६६१ ॥ ॥ सवैया ॥ कुंजगलियों में भागते हुए श्रीकृष्ण ने राधा को इस प्रकार पकड़ लिया जैसे यमुना तट पर कोई मणियों को धोकर प्रेम-पूर्वक धारण कर लेता है । अथवा ऐसा लगता है कि कामदेव रूपी कृष्ण अपनी भौंहों को तानकर रस के बाण मार रहा हो । कवि उस दृश्य की उपमा देते हुए कहता है कि जिस प्रकार घुड़सवार वन में मृगी को जीत लेता है, उसी प्रकार कृष्ण ने राधा को पकड़ लिया । ६६२ राधा को पकड़कर

सुन ग्वारनि रानी । कंजमुखी तन कंचन से हम ट्वै मन की सम बात पछानी । स्याम के प्रेम छकी मन (मू०ग्रं०३४०) सुंदर ह्वै बन खोजत स्याम बिवानी ॥ ६६३ ॥ भिन्नभान सुता पिखि ग्वारन को निहराइ कै नीचे रही अखियाँ । मनो या त्रिगमा सम छीन लई कि मनो इह कंजम की पखियाँ । सम अंम्रित की हसि के त्रिया यो बतिया हरि के संग है अखियाँ । हरि छाडि दै मोहि कह्यो हम को सु निहारत है सम ही सखियाँ ॥ ६६४ ॥ सुनकै हरि ग्वारनि की बतियाँ इह भांत कह्यो नही छोरत तोकौ । देखत है तो कहा भयो ग्वारनि पै इनते कछु शंक न मोकौ । अउ हमरो रस खेलन को इह ठउर बिखै को नही सुध लोकौ । काहे कउ मोसो बिबाद करै सु डरै इन ते बिनही सु तू टोकौ ॥ ६६५ ॥ ॥ सवैया ॥ सुनिकै अहुराइ की बात त्रिया न्रतियाँ हरि के इम संग उचारी । चांदनी राति रही छकि कै बिनियै हरि होवन दैन अंध्यारी । सुनकै हमहूं तुमरी बतियाँ अपने मन मै इह भांत बिचारी । शंक करो नही ग्वारन की सु मनो तुम लाज बिदा करि डारी ॥६६६॥ भाखत हो बतियाँ हम सो हसि कै हरि कै अति ही हित धारो ।

कृष्ण अमृत-वचन बोलते हुए कहने लगे कि हे गोपियों की रानी ! तुम मुझसे दूर क्यों भाग रही हो ? हे कमलमुखी और कंचन के समान देह वाली ! मैंने तुम्हारे मन की बात को जान लिया है, तुम प्रेम-रस में मग्न होकर वनों में कृष्ण को खोजती फिर रही हो ॥ ६६३ ॥ गोपियों को साथ देखकर राधा ने आँखें नीची कर लीं । वह ऐसी लग रही थी मानो उसके कमलवत नेत्रों की आभा छिन गई हो । श्रीकृष्ण की आँखों की ओर देखते हुए वह मुस्कुराकर कहने लगी कि हे कृष्ण ! मुझे छोड़ दो, क्योंकि सभी सखियाँ देख रही हैं ॥ ६६४ ॥ राधा की बात सुनकर कृष्ण ने कहा कि मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा । ये गोपियाँ यदि देख रही हैं तो क्या हुआ । मुझे इनसे कोई भय नहीं है और क्या लोग नहीं जानते हैं कि यह हम लोगों का रासलीला-स्थल है । तुम मुझसे व्यर्थ ही विवाद कर रही हो और बिना कारण इनसे डर रही हो ॥ ६६५ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण की बातें सुनकर राधा ने कहा कि हे कृष्ण ! अभी तो पूर्ण चाँदनी रात है, थोड़ी अँधेरी रात हो लेने दीजिए । मैंने भी तुम्हारी बातों को सुनकर अपने मन में विचार किया है कि तुम इन गोपियों का विचार न करो और यह मानो कि लज्जा को बिदा कर दिया गया है ॥ ६६६ । हे कृष्ण ! इधर

मुसकात है ग्वारन हेर उतै पिखि कै हमरो इह कउतक सारो । छोर दै कान कह्यो हमको अपने मन बुद्धि अकाम की धारो । ताही ते तो संग मो सो कहो जदुराइ घनो तुम शंक बिचारो ।। ६६७ ।। भूख लगे सुनियै सजनी लगरा कहूँ छोरत जात बगो को । तात की स्याम सुनी तं कथा बिरही नहि छोरत प्रीत लगी को । छोरत है सु नहो कुटवार किधौ गहिकै पुरहू को ठगी को । ताते न छोरत हउ तुमको कि सुन्यो कहूँ छोरत सिंघ म्रिगी को ।। ६६८ ।। कहो बतिया इह बाल के संग जु थी अत जोबन के रस भीनी । चंद्रभगा अरु ग्वारन ते अति रूप के बीच हुती जु नवीनी । जिउँ म्रिगराज म्रिगी को गहै कबि ने उपमा बिधि या लखि लीनी । कान्ह लवै करवा गहिकै अपने बल संगि सोऊ बसि कीनी ।। ६६९ ।। ।। सवैया ।। करिकै बसि या संगि ऐसे कहो कबि स्याम कहै अनुराइ कहानो । पै रस रीतिह की अत ही जु हुती सम मानहु अंम्रित बानी । तेरो कहा बिगरै ब्रिज नारि कह्यो इह भांत सियाम गुमानी । अउर सबै त्रिय चेरन है ब्रिखभान सुता तिन मै हैं तूं रानी ।। ६७० ।। जहाँ चंद की चाँदनी

तुम हमारे साथ बात कर रहे हो और उधर सारी लीला देखकर गोपियाँ मुस्करा रही हैं । हे कृष्ण ! तुम अकाम होकर, मेरी बात मानकर मुझे छोड़ दो । इसीलिए हे कृष्ण ! मैं तुमसे प्रेम करती हूँ, परन्तु तुम फिर भी मन में शंका कर रहे हो ।। ६६७ ।। हे सजनी ! भूख लगने पर कहीं बन्दर बाग में लगे फलों को छोड़ देता है । इसी प्रकार प्रेमी प्रेमिका को, कोतवाल ठग को नहीं छोड़ता है । इसीलिए मैं तुमको भी नहीं छोड़ रहा हूँ । क्या तुमने कभी सिंह द्वारा मृगी को छोड़े जाते सुना है ।। ६६८ ।। इस प्रकार उस यौवन के रस में सनी हुई बालिका को कृष्ण ने कहा । राधा चन्द्रभगा और गोपियों के बीच नवीन रूप से शोभायमान हो रही थी । जिस प्रकार मृगराज मृगी को पकड़ लेता है, कवि का कथन है कि उसी प्रकार कृष्ण ने राधा की कलाई पकड़कर बल-पूर्वक उसे अपने वश में कर लिया ।। ६६९ ।। ।। सवैया ।। इस प्रकार राधा को वश में करते हुए श्रीकृष्ण ने रस-कथा को आगे बढ़ाया और इस रस-रीति को अपनी अमृत वाणी से और रससिक्त कर दिया । गर्वीले कृष्ण ने कहा कि हे राधा ! तुम्हारा इसमें क्या बिगड़ेगा । सभी स्त्रियाँ तो तुम्हारी दासियाँ हैं और इन सबमें तुम्ही एक रानी

छाजत (पू०अं०२४१) है जह पात चंबेली के सेज बछी है । सेत जहा गुल राजत है जिह के जमुना जिह आइ बही है । ताही समै हरि राधे गही उपमा तिह की कबि स्याम कही है । सेत त्रिया तन स्याम हरी मनो सोमकला इह राह गही है ।। ६७१ ।। तिह को हरि जू फिर छोर दयो सोऊ कुंज गली कै बिखै बन मै । फिर ग्वारनि मै सोऊ जाइ मिली अति आनंद कै अपने मन मै । अति ता छबि की उपमा है कही उपजी जु कोऊ कबि के मन मै । मनो केहरि ते छुटवाइ मिली म्रिगनी को मनो म्रिगिया बन मै ।। ६७२ ।। फिरि जाइकै ग्वारनि मै हरिजू अति ही इक सुंदर खेल मचायो । चंद्रभगा हू के हाथ पै हाथ धर्यो अति ही मन मै सुखु पायो । गावत ग्वारन है सभ गीत जोऊ उनके मन भीतर भायो । स्याम कहै मन आनंद कै मन को कुल शोक सभै बिसरायो ।। ६७३ ।। ।। सवैया ।। हरि नाचत नाचत ग्वारन मै हसि चंद्रभगा हू की ओर निहार्यो । सोऊ हसी इत ते ए हसे जदुरा तिह सो बचना है उचार्यो । मेरो महा हित है तुम सो ब्रिखभान सुता इह हेर बिचार्यो । आन त्रिया संग हेत कर्यो हम ऊपरि ते हरि हेत बिसार्यो ।। ६७४ ।।

हो ।। ६७० ।। जहाँ चन्द्रमा की चाँदनी शोभायमान है और चंबेली के फूलों की शय्या बनी हुई है, जहाँ श्वेत पुष्प शोभायमान हैं और पास में यमुना बह रही है, वहीं पर कृष्ण ने राधा को आलिंगनबद्ध कर लिया । श्वेतवर्ण राधा और श्यामवर्ण कृष्ण दोनों मिले हुए ऐसे लग रहे हैं मानो चन्द्रकला इस मार्ग पर चली जा रही है ।। ६७१ ।। तब श्रीकृष्ण ने उसको कुंजगली में छोड़ दिया और वह प्रसन्न होती हुई फिर गोपियों में जा मिली । उस छवि का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वह इसी प्रकार गोपियों से जा मिली जैसे शेर के पंजे से छूटने पर मृगी मृगों के झुण्ड में जा मिलती है ।। ६७२ ।। कृष्ण ने गोपियों के बीच में एक सुन्दर खेल खेलना शुरू कर दिया । उन्होंने चन्द्रभगा के हाथ पर हाथ रख दिया, जिससे उसे अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ । गोपियाँ मन को आनंददायक गीत गाने लगीं और श्याम कवि का कथन है कि उनका मन अत्यन्त प्रसन्न हो उठा और उनके मन का सम्पूर्ण शोक समाप्त हो गया ।। ६७३ ।। ।। सवैया ।। नाचते-नाचते श्रीकृष्ण ने गोपियों में से हँसकर चन्द्रभगा की ओर देखा । इधर से ये हँसी और उधर से श्रीकृष्ण हँसते हुए उससे बात करने लगे यह देखकर राधा ने विचार किया कि अब श्रीकृष्ण दूसरी स्त्री के प्रेम

हरि राधका आनन देखत ही अपने मन मै इह भांत उचार्यो । स्याम भए बसि अउर त्रिया तिह ते अति पै मनसा नही धार्यो । आनंद थो जितनो मन मै तितनो इह भाव त्रिदा करि डार्यो । चंद्रभगा मुख चंदु तुलं सभ ग्वारनि ते घट मोहि बिचार्यो ॥ ६७५ ॥ कहिकै इह भांत सोऊ तब ही अपने मन मै इक बात बिचारी । प्रीत करी हरि आनहि सो तजि खेल सभै उठ धाम सिधारी । ऐसि करी गनती मन मै उपमा तिह को कबि स्याम उचारी । त्रीयन बीच चलैगी कथा ब्रिखभान सुता ब्रिजनाथ बिसारी ॥ ६७६ ॥

अथ राधका को मान कथनं ॥

॥ सवैया ॥ इह भांत चली कहिकै सु त्रिया कबि स्याम कहै सोऊ कुंजगली है । चंद्रमुखी तन कंचन के सभ ग्वारन ते सोऊ खूब भली है । मान कियो तिखरी तिन ते म्रिगनी सी मनो सु बिना ही अली है । यों उपजी उपमा मन मै पति सो

कर रहे है और मुझ पर से उनका प्रेम समाप्त हो गया है ॥ ६७४ ॥ राधा ने कृष्ण का मुख देखते ही अपने मन में कहा, श्रीकृष्ण अब अन्य स्त्रियों के वश में हो गये है। इसीलिए वे अब मन से हमें स्मरण नही करते। इतना कहकर उसने अपने मन से आनन्द के भाव को विदा कर दिया। वह सोचने लगी कि श्रीकृष्ण के लिए चन्द्रभगा का मुख ही चन्द्रमा के समान है और मुझे श्रीकृष्ण सब गोपियों में से कम मानते हैं ॥ ६७५ ॥ इस प्रकार कहते हुए अपने मन में कुछ विचार किया और यह सोचते हुए कि श्रीकृष्ण अब किसी अन्य से प्रेम करते हैं, वह अपने घर को चल पड़ी। कवि श्याम का कथन है कि अब स्त्रियों के बीच में यह बात चलेगी कि राधा को कृष्ण भूल गये ॥ ६७६ ॥

राधा का मान-कथन

॥ सवैया ॥ इस प्रकार कहकर राधा कुंजगली में से जा रही है। गोपियों में से सबसे सुन्दर राधा का मुख चन्द्रमा के समान है और तन सोने के समान है। वह मान करते हुए अपनी सहेलियों से ऐसे अलग हो गयी, जैसे मृगियों के झुण्ड से कोई मृगी अलग हो जाती है। उसको देखने से ऐसा भी लगता था कि मानो रति कामदेव से रूठकर चली जा रही

कन्हाई। खेलहु ताही तिया संग लालरी को जिहके अंग प्रीत लगाई॥ ६८१॥ सजनी नंदलाल बुलावत है अपने मन मै हठ रंच न कीजै। आई हौ हउ चलिकै तुम पै तिह ते सु कह्यो अब मानही लीजै। बेग चलो जदुराइ के पास कछू तुमरो इह ते नही छीजै। ताही ते बात कही तुम सो सुख आपन लै सुख अउरन दीजै॥ ६८२॥ ता ते करो नही मान सखी उठ बेग चलो सिख मान हमारी। मुरली जिह कान्ह बजावत है बहलै तह ग्वारन सुंदर गारी। ताही ते तोसो कही चलिए कछु शंक करो न मनै ब्रिजनारी। पाइन तोरे परो तजि शंक निशंक चलो हरि पास हहारी॥ ६८३॥ शंक कछू न करो मन मै तजि शंक निशंक चलो सुनि माननि। तेरे मै प्रीत महा हरि को तिह ते हउ कही तुहि संग गुमाननि। नैन बने तुमरे सरसे सु धरे मनो तीछन मैन की साननि। तोही सो प्रेम महा हरि को इह बात ही ते कछु हउहूं अजाननि॥ ६८४॥ ॥ सवैया॥ मुरली जदुबीर बजावत है कबि स्याम कहै अति

जिसे कन्हैया भी कहते हैं। तब राधा ने कहा कि ये कन्हैया कौन है? तब विद्युच्छटा ने कहा कि वही जिसके साथ तुमने खेल खेले हैं और सभी स्त्रियों ने प्रीति की है॥ ६८१॥ हे सखी! तुम तनिक भी मन में हठ न करो, तुम्हें नन्दलाल बुला रहे हैं। मैं तुम्हारे पास इसी काम के लिए चलकर आई हूँ। इसलिए मेरा कहना तुम मान ही जाओ। तुम शीघ्र ही कृष्ण के पास चलो, इससे तुम्हारा कुछ कम नहीं हो जायेगा। इसीलिए मैं तुमको कह रही हूँ ताकि तुम स्वयं भी सुख लो और दूसरों को भी सुख प्रदान करो॥ ६८२॥ हे सखी! तुम ज्यादा मान मत करो और मेरी शिक्षा को मानते हुए शीघ्र वहाँ चलो जहाँ कृष्ण मुरली बजा रहे हैं और गोपियों की सुन्दर गालियाँ सुन रहे हैं। इसीलिए मैं तुमसे कह रही हूँ। हे ब्रजनारी! तुम अभय होकर वहाँ चलो। मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ और तुमसे कहती हूँ कि श्रीकृष्ण के पास चली चलो॥ ६८३॥ हे मानिनि! तुम शंका को त्यागकर चलो, क्योंकि श्रीकृष्ण की प्रीति तुममें बहुत अधिक है। तुम्हारे नयन रस-पूर्ण हैं और ऐसा लग रहा है जैसे कामदेव के बाणों के समान तीखे हों। हमें तो पता भी नहीं है कि श्रीकृष्ण का तुम्हीं से सबसे अधिक प्रेम क्यों है॥ ६८४॥ ॥ सवैया॥ कवि श्याम का कथन है कि सुन्दर स्थान पर खड़े होकर श्रीकृष्ण मुरली बजा

है जिम ग्वारनिआँ नचियै तिम अउ तिह भाँत ही गईयै। अउर अनेकिक बात करो पर राधे बलाइ लिउ सउह न खईयै ॥६८८॥
॥ राधे बाच ॥ ॥ सवैया ॥ जंहउ न हउ सुन री सजनी तुहि सो हरि ग्वारनि कोट पठावै। बंसी बजावै तहा तु कहा अरु आप कहा भयो मंगल गावै। मै न चलो तिह ठउर बिखै ब्रहमा हमको कह्यो आन सुनावै। अउर सखी की कहा गनती नही जाउ री जाउ हरि आपन आवै ॥ ६८९ ॥ ॥ दूती बाच राधे सो ॥ ॥ सवैया ॥ काहे को मान करै सुन ग्वारनि स्याम कहै उठकै कर सोऊ। जाके किए हरि होइ खुशी सुनियै बल काज करो अब सोऊ। तउ तुहि बोलि पठावत है जब प्रीत लगी तुमसो तब कोऊ। नातर रास बिखै सुन री तुहिसी नहि ग्वारनि सुंदर कोऊ ॥ ६९० ॥ संग तेरे ही प्रीत घनी हरि की सभ जानत है कछु नाहि नई। जिह को मुख उज्जल चंद प्रभा जिह को तन भामनो रूप मई। तिह संग को त्याग सुनो सजनी ग्रिह को उठ कै तुहि बाट लई। ब्रिजनाथ के संग सखी बहु तेरी री तो सी गुवार भई न भई ॥ ६९१ ॥
॥ कबियो बाच ॥ ॥ सवैया ॥ (मू०ग्रं०३४४) सुन कै इह

नाच-गा रही हैं, तुम भी नाचो, गाओ। हे राधा! तुम और सब बातें करो परन्तु न जाने की क़सम मत खाओ ॥ ६८८ ॥ ॥ राधा उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ हे सखी! तुम्हारे जैसे करोड़ों गोपियाँ भी यदि कृष्ण भेजें तो भी मैं नहीं जाऊँगी। जहाँ वह वंशी बजा रहा है और मंगल-गीत गा रहा है, मुझे ब्रह्मा भी आकर कहे, तो मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। मैं किसी सखी-सहेली को कुछ नहीं गिनती। तुम सब जाओ और यदि कृष्ण चाहें तो खुद आयें ॥ ६८९ ॥ ॥ दूती उवाच राधा के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ अरी गोपी! क्यों मान कर रही है, जो कृष्ण ने कहा है वही कर। जिसको करने से कृष्ण प्रसन्न हों, वही कार्य करो। तुमसे उनकी प्रीति है, इसीलिए तुमको बुलाने के लिए हमें भेजा है, अन्यथा क्यों तुम्हारे समान सुन्दर गोपी सारी रासलीला में और कोई नहीं है ? ॥ ६९० ॥ तुम्हारे साथ उसकी गहरी प्रीति है, इसे सब जानते हैं और यह कोई नई बात नहीं है। जिसके मुख की शोभा चन्द्रमा के समान है और जिसका शरीर सौंदर्यमय है, उसके साथ को छोड़कर, हे सखी! तुम घर का रास्ता पकड़कर चली आई हो ब्रजनाथ कृष्ण के संग तो बहुत सी सखियाँ हैं, परन्तु तेरे जैसी गँवार अन्य कोई नहीं है ६९१ कवि उवाच

ग्वारन की बतिया ब्रिखभान सुता मन कोप भई है । कान्ह बिना पठए री त्रिया हमरे उनके बिच बीच पई है । आई मनावन है हमको सु कही बतिया जु नही रुचई है । कोप कै उत्तर देत भई चल री चल तूं किन बीच दई है ॥ ६९२ ॥ ॥ दूती बाच कान्ह सो ॥ ॥ सवैया ॥ कोप कै उत्तर देत भई इन आइ कह्यो फिरि संग सुजानै । बैठ रही हठ मान त्रिया हउ मनाइ रही जड़ किउहू न मानै । साम दिए न मनै नही डंड मनै नही भेद दिए अरु दानै । ऐसी गुवार सो हेत कहा तुमरी जोऊ प्रीत को रंग न जानै ॥ ६९३ ॥ ॥ मैनप्रभा बाच कान्ह जू सो ॥ ॥ सवैया ॥ मैनप्रभा हरि पास हुती सुनकै बतिया सब बोल उठी है । ल्याइहौ हउ इह भांति कह्यो तुमसे हरि जू जोऊ ग्वार रुठी है । कान्ह को पाइन पै तबही सु लिआवन ताही के काज उठी है । सुंदरता मुख ऊपर ते मनो कंजप्रभा सभ वार सुटी है ॥ ६९४ ॥ हरि पाइन पै इह भांति कह्यो हरिजू उहके ढिग हउ चलि जैहौ । जाही उपाइ ते आइ है सुंदरि ताही उपाइ मनाइ लिऐहौ । पाइन पै छिनसोअम

॥ सवैया ॥ गोपी की ये बातें सुनकर राधा कुपित हो उठी और कहने लगी कि तुम कृष्ण के भेजे बिना ही हमारे और कृष्ण के बीच में आ पड़ी हो । तुम आई तो हमको मनाने हो, परन्तु जो बातें तुमने की हैं मुझे अच्छी नहीं लगी हैं । राधा क्रोधित होकर कहने लगी, तुम यहां से चली जाओ और व्यर्थ ही हमारे बीच में मत पड़ो ॥ ६९२ ॥ ॥ दूती उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ क्रोधित होकर उस दूती ने कृष्ण को कहा कि राधा कुपित होकर उत्तर दे रही है । वह स्त्री हठ मानकर बैठ गयी है और वह जड़-बुद्धि किसी प्रकार भी नहीं मान रही है । वह साम, दाम, दण्ड और भेद में से किसी प्रकार भी नहीं मानी है । तुम्हारे प्रेम के रंग को भी जो नहीं समझ रही है, ऐसी गँवार गोपी से प्रेम करने का क्या अर्थ है ॥ ६९३ ॥ ॥ मैनप्रभा उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ मैनप्रभा नामक गोपी, जो कृष्ण के पास थी, सुनकर बोल पड़ी कि हे कृष्ण ! जो गोपी तुमसे रूठ गयी है, उसे मैं लेकर आऊँगी । उसे कृष्ण के पास लाने के लिए यह गोपी उठ खड़ी हुई है । इसके सौन्दर्य को देखकर ऐसा लगता है, मानो कमल ने अपना सब सौन्दर्य इस पर न्योछावर कर दिया है ॥ ६९४ ॥ कृष्ण के पास खड़ी होकर मैनप्रभा ने कहा कि मैं स्वयं उसके पास चलकर जाऊँगी और जिस उपाय से भी वह सुन्दरी

कै रिझवाइकै सुंदर ग्वार मनैहो । आज ही तो ढिग आन मिलैहो जू न्याइ बिना तुमरी न कहैहो ॥ ६९५ ॥
॥ सवैया ॥ हरि पाइन पै तिह ठउर चली कबि स्याम कहै फुन मैनप्रभा । जिह के नही तुल्लि मदोदर है जिह तुल्लि त्रिया नहि इंद्रसभा । जिह को मुख सुंदर राजत है इह भांत लसै त्रिया वाको प्रभा । मनो चंद कुरंगन केहर कीर प्रभा को समो धन याहि लभा ॥ ६९६ ॥ ॥ प्रतिउत्तर बाच ॥
॥ सवैया ॥ चलि चंद्रमुखी हरि के ढिग ते ब्रिखभान सुता पहि पै चलि आई । आइकै ऐसे कह्यो तिह सो चल बेग चलो नंदलाल बुलाई । मै न चलो हरि पाह हहा चलु ऐसे कह्यो न करो दुचिताई । काहे को बैठ रही इह ठउर मै मोहन को मनो चित्त चुराई ॥ ६९७ ॥ जिह घोर घटा घन आए घनै चहू ओरन मै जह मोर पुकारै । नाचत है जह ग्वारनिया तिह पेखि घनो बिरही तन वारै । तउन समै जदुराइ सुनो मुरली को बजाइ कै तोहि चितारै । ताही ते बेग चलो सजनी तिह कउतक कौ हम जाइ निहारै (मू०ग्रं०३४५) ॥ ६९८ ॥

यहाँ आयेगी, मनाकर ले आऊँगी । मैं पाँव पकड़कर, प्रार्थना करके, प्रसन्न करके उस सुन्दर गोपी को मना लूँगी । आज ही मैं उसे आपके पास ले आऊँगी अन्यथा आपकी नहीं कहलाऊँगी ॥ ६९५ ॥ ॥ सवैया ॥ श्रीकृष्ण के चरणों के पास से उठकर पुनः मैनप्रभा चल पड़ी । मन्दोदरी भी सुन्दरता में इसके तुल्य नहीं है तथा इन्द्रसभा की कोई भी स्त्री सौन्दर्य में इसके समकक्ष नहीं है । सुन्दर मुख की शोभावाली इस स्त्री की आभा इस भांति लग रही है मानो चन्द्रमा, हिरण, शेर और तोता, सबने सौन्दर्य का धन इसी से प्राप्त किया ॥ ६९६ ॥ ॥ प्रतिउत्तर उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ वह चन्द्रमुखी गोपी कृष्ण के पास से चलकर राधा के पास आ पहुँची । उसने आते ही कहा कि शीघ्र चलो, नन्दलाल ने तुम्हें बुलाया है । तुमने यह क्यों कहा कि मैं कृष्ण के पास नहीं जाऊँगी । तुम यह दुविधा छोड़ो । तुम क्यों स्थान पर मनमोहन कृष्ण से चित्त चुराकर बैठी हुई हो ॥ ६९७ ॥ जब घनघोर घटाएँ छा जाती हैं, चारों ओर मोर पुकारते हैं, गोपियाँ नृत्य करती हैं और विरही जन उन पर न्योछावर होते हैं, उस समय हे सखी ! सुनो, श्रीकृष्ण मुरली बजाकर तुम्हारा स्मरण करते हैं । हे सखी ! तुम शीघ्र चलो ताकि हम भाग पहुँचकर इस लीला को देख सकें ६९८ सवैया इसलिए

॥ सवैया ॥ ता ते न मान करो सजनी हरि पास चलो नहि संक बिचारो । बात धरो रस हूं की मनै अपने मन मै न कछू हठ धारो । कउतक कान्ह को देखन को तिह को जस पै कबि स्याम उचारो । काहे कउ बैठ रही हठ कै कह्यो देखन कउ उमग्यो मन सारो ॥ ६९९ ॥ हरि पास न मै चल हो सजनी दिखबै कहु कउतक जोय न मेरो । स्याम रचे संग अउर त्रिया तजकै हम सो कुन नेहु घनेरो । चंद्रभगा हूं के संग कह्यो नहि नारी कहा मुहि नैनन हेरो । ताते न पास चलो हरि हउ उठि जाहि कोऊ उमग्यो मन तेरो ॥ ७०० ॥ ॥ दूती बाच ॥ ॥ सवैया ॥ मै कहा देखन जाउ त्रिया तुहि स्यावन को अनुराइ पठाई । ताही ते हउ सभ ग्वारनि ते उठकै तब ही तुमरे पहि आई । तूं अभिमान कै बैठ रही नही मानत है कछु सीख पराई । बेग चलो तुहि संग कहो तुमरो मगु हेरत ठाढ कन्हाई ॥ ७०१ ॥ ॥ राधे बाच ॥ ॥ सवैया ॥ हरि पास न मै चलहों री सखी तू कहा भयो जो तुहि बात बनाई । स्याम न मोरे तूं पास पठी यह बातन ते कपटी लखि पाई ।

हे सखी ! तुम मान न करते हुए शंका का त्याग करो और कृष्ण के पास चलो । तुम मन में रस की भावना को भरो और हठ को धारण मत करो । कवि श्याम का कथन है कि उस कृष्ण की लीला को देखे बिना क्यों यहाँ हठ करके तुम बैठी हुई हो । हमारा मन तो उसकी लीला को देखने के लिए उछल रहा है ॥ ६९९ ॥ राधा ने कहा कि हे सखी ! मैं कृष्ण के पास नहीं जाऊँगी और उसकी लीला देखने की मेरी कोई इच्छा नहीं है । कृष्ण मेरे साथ प्रेम को त्यागकर अन्य स्त्रियों के प्रेम में लीन हैं । वह चन्द्रभगा के साथ प्रेम में लीन है और मेरी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते । इसलिए तुम्हारे मन की उछाल के बावजूद मैं कृष्ण के पास नहीं जाऊँगी ॥ ७०० ॥ ॥ दूती उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ मैं स्त्रियों को देखने के लिए क्या जाऊँगी । मुझे तो कृष्ण ने तुम्हें लाने के लिए भेजा है । इसीलिए तो मैं सभी गोपियों से दूर होकर तुम्हारे पास आयी हूँ । इधर तुम अभिमानवश बैठी हो और किसी की भी शिक्षा नहीं सुन रही हो । तुम शीघ्र चलो क्योंकि तुम्हारा रास्ता श्रीकृष्ण देख रहे होंगे ॥ ७०१ ॥ ॥ राधिका उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ हे सखी ! मैं कृष्ण के पास नहीं जाऊँगी । तुम क्यों व्यर्थ में ही बातें बना रही हो । कृष्ण ने तुम्हें मेरे पास नहीं भेजा है, क्योंकि मुझे तुम्हारी इन बातों में

'औ कपटी तु कहा भयो ग्वारनि तूँ न लखै कछु पीर पराई। यों कहिकै सिर न्याइ रही कहि ऐसो न मान पिख्यो कहूँ माई ॥ ७०२ ॥ ॥ दूती बाच ॥ ॥ सवैया ॥ फिरि ऐसे कह्यो बलियं री हहा बल मै हरि के पहि यों कहि आई। होहु न आतर स्री ब्रिजनाथ हउ ल्यावत हों वह जाइ मनाई। इत तूँ करि मान रही सजनी हरि पै तु चलो तजिकै दुचिताई। तो बिन मो पै न आत गयो कह्यो जानत है कछु बात पराई ॥ ७०३ ॥ ॥ राधे बाच ॥ ॥ सवैया ॥ उठ आई दूती तु कहा भयो ग्वारन आई न पूछ कहयो कछु सोरी। जाहि कह्यो फिरिकै हरि पै इह ते कछु लाज न लागत तोरी। मो बतिया जदुराइ जू पै कबि स्याम कहै कहियो सु अहोरी। चंद्रभगा संग प्रीत करो तुम सो नही प्रीत कहयो प्रभ मोरी ॥ ७०४ ॥ सुनिकै इह राधका की बतिया तब सो उठ ग्वारन पाइन लागी। प्रीत कह्यो हरि की तुम सो हरि चंद्रभगाहू सों प्रीत तिआगी। उनकी कबि स्याम सबुद्ध कहै तुहि बेखन के रस मै अनुरागी। ताही ते बाल

कपट लगता है। हे गोपी ! तुम भी छलिया हो गयी हो और पराई पीड़ा को अनुभव नही कर रही हो। यह कहते हुए राधा सिर झुकाकर बैठी रही और कवि का कथन है कि मैंने ऐसा अभिमान अन्यत्र कहीं नही देखा ॥ ७०२ ॥ ॥ दूती उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ फिर उसने ऐसा कहा कि हे सखी ! तुम चलो, क्योंकि मैं कृष्ण से वादा करके आई हूँ। मैं कृष्ण से कहकर आई हूँ कि हे ब्रजनाथ ! आप व्याकुल न हों, मैं अभी राधा को मनाकर लाती हूँ, परन्तु इधर तुम मान करके बैठी हुई हो। हे सखी ! तुम दुविधा को छोड़कर श्रीकृष्ण के पास चली चलो। मैं तुम्हारे बिना नही जा सकूँगी। तुम कुछ पराई बात का भी विचार करो ॥ ७०३ ॥ ॥ राधिका उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ हे गोपी ! तुम वैसे ही क्यों चली आई। किसी जादूगर से कुछ जादू पूछकर तुम्हें आना चाहिए था। तुम जाकर कृष्ण से कह दो कि राधा को तुम्हारी कुछ भी लज्जा नहीं है। मेरी सब बातें तुम बिना किसी रोक-टोक के यदुराज से कह देना और साथ-ही-साथ यह भी कह देना कि हे कृष्ण ! तुम्हारी प्रीति केवल चन्द्रभगा से है, मेरे साथ तुम्हारा कोई प्रेम नही है ॥ ७०४ ॥ राधा की इन बातों को सुनकर वह गोपी राधा के पाँव पर पड़ गयी और कहने लगी कि हे राधा ! कृष्ण का प्रेम केवल तुम्हारे साथ है और उन्होंने चन्द्रभगा के प्रेम का त्याग

बलाह्न (मू०ग्रं०३४६) लिउ तेरी मै बेग चलो हरि पै बडभागी ॥ ७०५ ॥ ॥ सवैया ॥ बिज लाल बुलावत है चलियै कछु जानत हैं रस बात इयानी । तोही को स्याम निहारत हैं तुमरै बिन री नहीं पीवत पानी । तूं इह भांत कही मुख ते नही जाउगी हउ हरि पै इह बानी । ताही ते जानत हौं सजनी अब जोबन पाइ भई है दिवानी ॥७०६॥ ॥ सवैया ॥ मान कर्‍यो मन बीच त्रिया तज बैठ रही हित स्याम जू केरो । बैठ रही बक ध्यान धरे सम जानत प्रीत को भावन नेरो । तो संग तौ मै कह्यो सजनी कहबे कछु जो उमग्यो मन मेरो । आवत है इम मो मन मै दिन चारकु पाहुन जोबन तेरो ॥७०७॥ ताके न पास चलैं उठकै कबि स्याम जोऊ सभ लोगन भोगी । ता ते रही हठ बैठ त्रिया उनको कछु जैगो न आपन खोगी । जोबन को जु गुमान करै तिह जोबन की सु दशा इह होगी । तो तजिकै सोऊ यों रमि है जिम कंध पै डार बघंबर जोगी ॥ ७०८ ॥ नैन कुरंगन से तुमरे सम केहरि को कटिरी

दिया है । कवि श्याम का कथन है कि वह दूती कह रही है कि मैं तुम्हें देखने के लिए व्याकुल हूँ । हे रूपवती कन्या ! मैं तुम पर न्योछावर हूँ, अब तुम शीघ्र ही श्रीकृष्ण के पास चली चलो ॥ ७०५ ॥ ॥ सवैया ॥ हे सखी ! तुम अनजान हो और रस की बात को कुछ समझ भी नहीं रही हो, तुम्हें श्रीकृष्ण बुला रहे हैं, चलो । तुम्हीं को ही श्रीकृष्ण इधर-उधर ढूंढ रहे हैं और तुम्हारे बिना पानी नहीं पी रहे हैं । तुमने तो यह कह दिया है कि मैं कृष्ण के पास नहीं जाऊँगी । मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम यौवन को प्राप्त कर पगला गई हो ॥ ७०६ ॥ ॥ सवैया ॥ वह गोपी (राधा), कृष्ण के प्रेम को त्यागकर मन में अहंकार करते हुए बैठ गयी है । उसने बगुले के समान ध्यान लगा रखा है । वह जानती है कि प्रेम का घर अब पास ही है । तब मैनप्रभा ने पुनः कहा कि हे सखी ! मेरे मन में जो आया था वह मैंने कह दिया है । परन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम्हारा यौवन केवल चार दिन का मेहमान है ॥ ७०७ ॥ जो सब लोगों को भोगनेवाला है । तुम उसके पास उठकर नहीं आ रही हो । हे गोपी ! तुम हठ करके बैठी हो परन्तु कृष्ण का तो कुछ नहीं जाएगा, तुम्हारी ही हानि होगी । यौवन का जो अभिमान करता है, उसकी यह दशा होगी कि उसे कृष्ण उसी प्रकार छोड़कर चला जाएगा जिस प्रकार योगी शेर की खाल कंधे पर डालकर घर बार छोड़कर चल देता है ७०८ । तम्हारे

सुभ दवै है। आनन सुंदर है ससि सो जिह की पुन कंज बराबर दवै है। बैठ रही हठ बाँध घनो तिह ते कछु आप नही मुन ख्वैहै। ए तन सो तुहि बैर कर्यो हरि सिउँ हठि ए तुमरो कहु ह्वैहै॥ ७०९॥ ॥ सवैया॥ सुनकै इह ग्वारन की बतिया बिखभान सुता अति रोस भरी। नैन नचाइ चड़ाइकै भउहन पै मन मै संग क्रोध जरी। जोऊ आई मनावन ग्वारनि थी तिह सो बतिया इम पै उचरी। सखी काहे को हउ हरि पास चलौ हरि की कछु मो परवाह परी॥ ७१०॥ यौ इह उत्तर देत भई सम या बिधि सो उन बात करी है। राधे बुलाइ लिउ रोस करो नहि किउ करि कोप के संग भरी है। तू इत मान रही करिकै उत हेरत पै रिपु चंद हरी है। तूं न करै परवाह हरी हरि को तुमरी परवाह परी है॥ ७११॥ ॥ सवैया॥ यौ कहि बात कही फिरि यौ उठ बेग चलो बलि होइ संजोगी। ताही के नैन लगे इह ठउर जोऊ सभ लोगन को रस भोगी। ताके न पास चलै सजनी उनको कछु जैहै न आवन जोगी। स्यौ मुख री बल देखन को जदुराइ के

नेत्र हिरण के समान और कमर शेरनी के समान पतली है। तुम्हारा मुख चन्द्रमा और कमल के समान सुन्दर है। तुम हठ बाँधकर बैठी हो। इसमें उसका कुछ भी नहीं जाएगा। कुछ न खा-पीकर तुम स्वयं अपने शरीर म शत्रुता कर रही हो, क्योंकि कृष्ण के साथ तुम्हारा हठ चल नहीं पायेगा॥ ७०९॥ ॥ सवैया॥ गोपी की यह बात सुनकर राधा क्रोध से भरकर, नयन नचाते हुए, भौंहों और मन में क्रोध भरते हुए जो गोपी उसे मनाने आई थी, उससे कहने लगी कि हे सखी! मैं कृष्ण के पास क्यों जाऊँ, मुझे कृष्ण की क्या परवाह पड़ी है॥ ७१०॥ जब इस प्रकार का उत्तर राधा ने दिया तो सखी ने पुनः कहा, हे राधा! तुम कृष्ण को बुला लो। तुम व्यर्थ ही क्रोध से भरी हुई हो। तुम इधर अहंकार करके अड़ी हुई हो और उधर श्रीकृष्ण को चन्द्रमा की चाँदनी भी शत्रु के समान दिखाई दे रही है। तुम्हें बेशक कृष्ण की कोई परवाह नहीं, परन्तु कृष्ण को तुम्हारी पूरी परवाह है॥ ७११॥ ॥ सवैया॥ यह कहकर उस सखी ने फिर कहा, हे राधा! तुम जल्दी चलो और कृष्ण से जल्दी मिलो। जो सब लोगों के रस को भोगनेवाला है। उसकी आँखें तुम्हारे इस निवास स्थान पर लगी हुई हैं। हे सखी! उसके पास न जाओगी तो उनका तो कुछ नहीं जाएगा अपितु तुम्हारी ही हानि होगी। तुम्हारा मुख

नैन भे दोऊ बिओगी ॥ ७१२ ॥ देखत है नही (मू०ग्रं०३४७)- अउर त्रिया तुमरो ई सुनो बलि पंथि निहारै । तेरे ही ध्यान बिखै अटके तुमरी ही किधौ बलि बात उचारै । झूम गिरै कबहूं धरनी पर ह्वै सुधि आपन आप सँभारै । तउन सखी तोहि चितारि कै स्याम जू मैन को मान निवारै ॥ ७१३ ॥

॥ सवैया ॥ ता ते न मान करो सजनी उठि बेग चलो कछु संक न आनो । स्याम की बात सुनो हम ते तुमरे चित मै अपनो चित मानो । तेरे ही ध्यान फसे हरि जू करि कै मन सोक असोक बहानो । मूड़ रही अबला करि मान कछू हरि को नही हेत पछानो ॥ ७१४ ॥ ग्वारनि की सुन कै बतिया तब राधका उत्तर देत भई । किह हेत कह्यो तजि कै हरि पास मनावन मोहू के काज धई । नहि हउ चलिहौ हरि पास कह्यो तुमरो धउ कहा गति ह्वैहै दई । सखी अउरन नाम सु मूड़ धरै न लखै इह हउहूं कि मूड़ मई ॥ ७१५ ॥ सुन कै ब्रिखभान सुता को कह्यो इह भांति सो ग्वारन उत्तर दीनो । री सुन ग्वारनि मो बतिया तिहकूं सुन मौन सुनैबे कउ कीनो ।

देखने के लिए कृष्ण की दोनों आँखें वियोगी हो गयी हैं ॥ ७१२ ॥ हे राधा ! वह अन्य किसी स्त्री की ओर नहीं देखते हैं, अपितु तुम्हारी ही राह देख रहे हैं । उनको तुम्हारा ही ध्यान लगा हुआ है और तुम्हारी ही बातें करते हैं । कभी वे अपने-आप को सँभाल लेते हैं और कभी झूमकर धरती पर गिर पड़ते हैं । हे सखी ! जिस समय कृष्ण तुम्हें याद करते हैं तो ऐसा लगता है कि वे मानो कामदेव का गर्व चूर कर रहे हैं ॥ ७१३ ॥ ॥ सवैया ॥ इसलिए हे सखी ! तुम मान मत करो और शंका को त्यागकर शीघ्र चलो । हमसे अगर श्याम की बात पूछती हो तो यह समझो, उसका चित्त तुम्हारे चित्त में ही लगा हुआ है । वे कई बहाने करके तुम्हारे ही ध्यान में फँसे हुए हैं । हे मूर्ख स्त्री ! तुम व्यर्थ ही मान कर रही हो और कृष्ण के हित को पहचान नहीं रही हो ॥ ७१४ ॥ गोपी की बात सुनकर राधा ने उत्तर दिया कि तुमसे किसने कहा था जो तुम हरि को छोड़कर मुझे मनाने के लिए चल पड़ी हो । मैं कृष्ण के पास नहीं जाऊँगी । तुम्हारी तो बात ही क्या, यदि विधाता की भी यही इच्छा हो तब भी मैं नहीं जाऊँगी । हे सखी ! उसके मन में औरों का नाम बसा हुआ है और वह मुझ मूर्ख को नहीं देख रहा है ॥ ७१५ ॥ राधा की बात सुनकर गोपी ने उत्तर दिया कि हे गोपी ! तुम मेरी बात सुनो ।

मोहि कही मुख ते कि तूं मूड़ मै मूड़ तुही मन मै करि चीनो । मै जदुराइ की भेजी अई सुनि तै जदुराइ हूँ सो हठ कीनो ॥ ७१६ ॥ यों कहि कै इह भांत कह्यो चलियै उठ कै अलि शंक न आनो । तोही सों हेतु घनो हरि को तिह ते तुमहूं कह्यो साच ही जानो । पाइन तोरे परो ललना हठ दूर करो कबहूं फुन मानो । ता ते निशंक चले तजि शंक किधो हरि की वह प्रीति पछानो ॥ ७१७ ॥ ॥ सवैया ॥ कुंजन मै सखी रास समै हरि केल करे तुम सो बन मै । जितनो उनको हित है तुहि सो हित ते नही अधिक है उन मै । मुरझाइ गए बिन त्वै हरिजू नहि खेलत है फुन ग्वारनि मै । तिह ते सुन बेग निशंक चलो करकै सुध पै बन की मन मै ॥ ७१८ ॥ स्याम बुलावत है चलियै बल पै मन मै न कछू हठु कीजै । बैठ रही करि मान घनो कछु अउरनहू को कह्यो सुन लीजै । ता ते हउ बात करो तुम सो इह ते न कछू तुमरो कह्यो छीजै । मैकु निहार कह्यो हम ओर सभै तजि मान अबै हसि दीजै ॥ ७१९ ॥ ॥ राधे बाच दूती सो ॥ ॥ सवैया ॥ मै

उसने भी मुझे तुमसे कुछ कहने-सुनने को कहा है । तुम मुझे मूर्ख कह रही हो, परन्तु तुम मन में समझो कि वास्तव में मूर्ख तुम ही हो । मैं तो कृष्ण की भेजी हुई यहाँ आई हूँ और तुमने कृष्ण से हठ ठान रखा है ॥ ७१६ ॥ इस प्रकार कहकर गोपी ने कहा कि हे राधा ! तुम शंका मत करो और चलो । तुम सत्य जानो कि श्रीकृष्ण का प्रेम सबसे अधिक तुम्हीं से है । हे ललना ! मैं तुम्हारे पाँव पकड़ती हूँ, तुम हठ का त्याग करो और कृष्ण के प्रेम को पहचानते हुए शंकारहित होकर चलो ॥ ७१७ ॥ ॥ सवैया ॥ हे सखी ! कुंजों में और वन में कृष्ण तुम्हारे साथ ही क्रीडा करते थे । जितना उनका प्रेम तुममें है उतना अधिक और गोपियों में नहीं है । श्रीकृष्ण तुम्हारे बिना मुरझा गये और अब गोपियों में खेलते भी नहीं । इसलिए तुम वन की रासलीला को स्मरण करते हुए निःसंकोच चली चलो ॥ ७१८ ॥ हे सखी ! तुम्हें कृष्ण बुला रहे हैं, तुम हठ छोड़ो और चलो । तुम मन में अभिमान करके बैठ गयी हो, परन्तु तुम्हें दूसरों का कहा भी सुन लेना चाहिए । इसी से मैं तुमसे कह रही हूँ कि तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा यदि तुम थोड़ा सा मेरी ओर देखकर और अभिमान को त्यागकर हँस दो ॥ ७१९ ॥ ॥ राधिका उवाच दूती के प्रति ॥ सवैया ॥ न तो मैं हँसूगी और बेशक तुम्हारे जैसी करोड़ो सखियाँ

न हलों हरि (मू०ग्रं०१४८) पास चलो नही अउ तुहि सी सखी कोटक आवैं। आइ उपाव अनेक करें अरु पाइन ऊपर सीस झिआवैं। मै कबहूँ नही आउ तहाँ तुह सी कहि कोटक बात बनावैं। अउर की कउन गनो गनती बल आपन कानजू सीस झुकावैं ॥ ७२० ॥ ॥ प्रतिउत्तर बाचु ॥ ॥ सवैया ॥ जो इन ऐसी कही बतिया तबही उह ग्वारनि यौ कह्यो होरी। जउ हम बात कही चलियै तु कहै हम स्याम सो प्रीत ही छोरी। स्याम सो माई कहा कहियै इह साथ करै हितवा बर जोरी। भेजत है हम को इह पै इह सो तिहके पहि ग्वारन थोरी ॥७२१॥ भेजत है इह पै हमको इह ग्वारनि रूप को मान करै। इह जानत है घट है हम ते तिहते हठ बाधि रही न टरै। कबि स्याम पिखो इह ग्वारनि की मत स्याम के कोप ते पै न डरै। तिह सो बलि जाउ कहा कहियै निह ल्यावहु यौ मुख ते उचरै ॥ ७२२ ॥ ॥ सवैया ॥ स्याम करै सखी अउर सो प्रीत तबै इह ग्वारनि भूल पछानै। वाके किए बिन री सजनी सु रही कहिकै सु कह्यो नही मानै। वाको सिंगार इरै मन ते

आवें, न तो मैं चलूँगी। तुम्हारी जैसी सखियाँ चाहे अनेक उपाय करें और मेरे पाँव पर सिर झुकावें, मैं वहाँ नही आऊँगी। चाहे कोई करोड़ों बातें बनाये। मैं अन्य किसी की गणना नही करती हूँ और कहती हूँ कि कृष्ण जी (स्वयं आकर) मेरे सामने सिर को झुकायें ॥ ७२० ॥ ॥ प्रतिउत्तर उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ जब इस प्रकार राधा ने कहा तो गोपी ने उत्तर दिया कि हे राधा ! जब मैंने चलने की बात कही तो तुमने यह कह दिया कि मुझे कृष्ण के पास प्रेम ही नही है। हे सखी माँ ! मैं क्या कहूँ, कृष्ण तो इसके साथ जबरदस्ती प्रेम कर रहे हैं और हमको इसके पास भेज रहे हैं। क्या हम जैसी गोपियाँ कृष्ण के पास कम हैं ? ॥ ७२१ ॥ हमको इसके पास भेजते हैं और यह अपने रूप का अभिमान कर रही है। यह भी जानती है कि सभी गोपियाँ सौंदर्य में मुझसे कम हैं, इसीलिए यह हठ बाँधे हुए बैठी है। कवि श्याम का कथन है कि देखो इस गोपी (राधा) को कृष्ण के क्रोध का जरा भी भय नहीं है। मैं इसकी बहादुरी पर न्योछावर हूँ जो मुख से कह रही है कि कृष्ण को लेकर आओ ॥ ७२२ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण किसी अन्य से प्रीति करते हैं, इस बात को यह गोपी समझ नही रही है। उसके द्वारा कुछ किए जाने के बिना ही यह कहे जा रही है और मान नहीं रही है इसको जब कृष्ण

तबही इह मानहि को फल जानै। अंत खिसाइ घनी अकुलाइ कह्यो तब ही इह मानै सु मानैं ॥ ७२३ ॥ यौ सुनकै ब्रिखभान सुता तिह ग्वारनि को इम उत्तर दीनो। प्रीत करी हरि चंद्रभगा संग तउ हमहूं अपमान सु कीनो। तउ सजनी कह्यो रूठ रहो अति क्रोध बढ्यो हमरे जब चीनो। तोरे कहे बिनरी हरि आगे हूं मोहू सो नेहु बिदा कर दीनो ॥ ७२४ ॥ ॥ सवैया ॥ यौ कहि ग्वारनि सो बतिया कबि स्याम कहै फिर ऐसे कह्यो है। जाहि री काहे को बैठी है ग्वारनि तेरो कह्यो अति ही मै सह्यो है। बात कही अति ही रस की सुहि ताको न सो सखी चित्त चह्यो है। ताही ते हउ न चलो सजनी हम सो हरि सो रस कउन रह्यो है ॥ ७२५ ॥ यौं सुन उत्तर बैल भई कबि स्याम कहै हरि के हित केरो। कान्ह के भेजे ते या पहि आइकै कै कै मनावन को अति झेरो। स्याम चकोर भयंक्रन जो सुन री इह भाँत कहै मन मेरो। ताही निहार निहार सुनो सखि सो मुख देखत ह्वैहै री तेरो ॥ ७२६ ॥ ॥ राधे बाच ॥ ॥ सवैया ॥ बेखत है तु कहा भयो (मू०ग्रं०३५६)

भुला देगा तभी यह ऐसा मानने का फल जान पाएगी और अन्त में खिसियाकर फिर उसको मनाएगी। फिर वह मानेगा कि नहीं (कुछ कहा नहीं जा सकता) ॥ ७२३ ॥ यह सुनकर राधा ने उसको उत्तर दिया कि कृष्ण ने चन्द्रभगा से प्रेम कर लिया है, इसी से मैंने भी उसका अपमान किया है। इस पर तुमने इतना सब कहा, इसलिए मेरे मन में क्रोध बढ़ गया। तुम्हारे ही कहने पर मैंने कृष्ण से प्रेम किया और अब उसी ने मुझसे प्रेम छोड़ दिया है ॥ ७२४ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपी से इस प्रकार कहते हुए राधा ने कहा कि हे गोपी ! तुम जाओ, मैंने तुम्हारा कहा बहुत सहन किया है। तुमने बहुत सी रस की बातें की हैं, जिन्हें मेरा चित्त नहीं चाहता था। हे सखी ! मैं इसीलिए कृष्ण के पास नहीं जाऊँगी, क्योंकि मेरे और कृष्ण के बीच में अब कौन सा प्रेम बाक़ी रह गया है ॥ ७२५ ॥ राधा का यह उत्तर सुनकर कृष्ण के हित की बात करते हुए गोपी ने कहा कि कृष्ण के कहने पर इसको आ-आकर मनाना एक बहुत बड़ा संकट है। हे राधा ! मेरा मन कह रहा है कि चकोर रूपी कृष्ण तुम्हारा चन्द्रमुखी मुख देखने के लिए बेचैन है ॥ ७२६ ॥ ॥ राधा उवाच । सवैया बेचैन है तो मैं क्या करूँ ? मैंने जो कह दिया है कि मैं वहाँ नहीं जाऊँगी किसके लिए मैं व्यंग्य सहन करूँ ! मैं तो

ग्वारनि मै न कह्यो तिह के पहि जैहो । काहे के काज बराहन री सहौहि अपनो पति सेंग अघैहो । स्याम रचै संग अउर त्रिया तिहके पहि जाइ कहा सुख पैहो । ता ते पधारहु री सजनी हरि को नहि जोबन रूप दिखैहो ॥ ७२७ ॥

अथ मैनप्रभा क्रिशन की पास फिर आई ॥

॥ दूती बाच कान्ह जू सो ॥ ॥ सवैया ॥ यौं जब बाहि सुनी बतिया उठकै सोऊ नंदलला पहि आई । आइके ऐसे कह्यो हरि पै हरि जू नहि मानत मूड़ मनाई । कै तजि वाहि रचो इनसो नही आपन जाइ कै ल्याउ मनाई । यौ सुन बात चल्यो तिह को कबि स्याम कहै हरि आपही धाई ॥ ७२८ ॥ ॥ सवैया ॥ अउर न ग्वारनि कोऊ पठी चलिकै हरि जू तब आप ही आयो । ताही को रूपु निहारत ही ब्रिखभान सुता मन मै सुख पायो । पाइ घनो सुखु पै मन मै अति ऊपर मान सो बोल सुनायो । चंद्रभगाहूं सो केल करो इह ठउर कहा तजि लाजहि आयो ॥ ७२९ ॥ ॥ राधे बाच कान्ह जू सो ॥

अपने पति के साथ ही प्रसन्न रहूंगी । कृष्ण तो अन्य स्त्रियों के साथ रमण कर रहे हैं, उनके पास जाकर मुझे कौन सा सुख प्राप्त होगा । इसलिए हे सखी ! तुम जाओ, मैं जीते-जी अब कृष्ण को दिखाई नही पड़ूंगी ॥ ७२७ ॥

मैनप्रभा का कृष्ण के पास आगमन

॥ दूती उवाच श्रीकृष्ण जी के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ मैनप्रभा ने जब ये सब बातें सुनीं तो वह उठकर नन्दलाल के पास आ गयी और कहने लगी कि हे कृष्ण ! उस मूर्ख को बहुत मनाया गया पर वह नही मान रही है । आप अब उसको छोड़कर इन्हीं गोपियों के साथ रमण करो अन्यथा स्वयं जाकर उसे मनाकर ले आओ । यह सुनकर कवि श्याम का कथन है कि कृष्ण स्वयं उस ओर चल पड़े ॥ ७२८ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने और किसी गोपी को नहीं भेजा और स्वयं ही चलकर आये । उसको देखते ही राधा को परमसुख प्राप्त हुआ । मन में तो उसे बहुत सुख हुआ, परन्तु फिर भी ऊपर-ऊपर से अभिमान दिखाते हुए राधा बोली कि आप चन्द्रभगा के साथ क्रीड़ा करो । आप यहाँ लज्जा त्यागकर क्यों चले आये हैं ७२९ । राधा उवाच कृष्ण के प्रति सवैया । हे कृष्ण ! तुम

॥ सवैया ॥ रासहि किउ तजि चंद्रभगा चलिकै हमरे पहि किउ कह्यो आयो । किउ इह ग्वारनि की सिख मान कै आवन ही उठ कै सखी धायो । जानत थी कि बडो ठगु है इह बातन ते अब ही लख पायो । किउ हमरे पहि आइ कह्यो हम तो तुम को नही बोल पठायो ॥ ७३० ॥ ॥ कान्ह जू बाच राधे सो ॥ ॥ सवैया ॥ यौं सुन उत्तर देत भयो नहि री तुहि ग्वारनि बोल पठायो । नैनन के करि बाव घने सर सो हमरो मनुआ म्रिग घायो । ता बिरहागनि सो सुनियै बल अंग जर्यो सु गयो न बचायो । तेरो बुलायो न आयो हो री सिह ठउर जरे कहु मे किनि आयो ॥ ७३१ ॥ ॥ राधे बाच कान्ह सो ॥ ॥ सवैया ॥ संग फिरी तुमरे हरि खेलत स्याम कहै कबि आनंद भीनी । लोगन को उपहास सह्यो तुहि मूरत चीन कै अउर न चीनी । हेत कर्यो अति ही तुम सों तुमहू तजि हेत बसा इह कीनी । प्रीत करी संग अउर त्रिया कहि स्वास लयो अखियाँ भर लीनी ॥ ७३२ ॥ ॥ कान्ह जू बाच ॥ ॥ सवैया ॥ मेरो घनो हितु है तुम सों सखी अउर किसी नहि ग्वारनि माही ।

चन्द्रभगा को रासलीला में छोड़कर क्यों मेरे पास चले आये। इन गोपियों की बात मानकर तुम क्यों स्वयं चल पड़े हो। मैं जानती थी कि तुम बहुत बड़े ठग हो और अब यह तुम्हारी इन बातों से स्पष्ट हो गया है। तुम मुझे क्यों बुला रहे हो, मैंने तो तुम्हें बुलाया नहीं ॥ ७३० ॥ ॥ कृष्ण उवाच राधा के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ यह उत्तर सुनकर कृष्ण ने कहा कि तुम्हें तुम्हारी सखी गोपियाँ वहाँ बुला रही हैं। तुम्हारे नयनों के घने बाणों के कारण मेरा मन रूपी मृग घायल हो गया है। मैं विरह की अग्नि में जल रहा हूँ और अपने-आपको बचा नहीं पा रहा हूँ। मैं तुम्हारे बुलाने पर नहीं आया हूँ, मैं तो वहाँ जल रहा था, इसलिए यहाँ आ गया हूँ ॥ ७३१ ॥ ॥ राधा उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ कवि श्याम का कथन है कि राधा ने कहा कि हे कृष्ण ! मैं परम आनन्दित होकर तुम्हारे साथ खेलती और घूमती रही। मैंने लोगों का उपहास सहन किया और तुम्हारे सिवा और किसी को नहीं पहचाना। मैंने केवल तुम्हीं से प्रेम किया, परन्तु तुमने मेरा प्रेम त्यागकर मेरी यह दशा कर दी। तुमने अन्य स्त्रियों के साथ प्रेम किया है। यह कहते हुए राधा ने लम्बी साँस लिया और उसकी आँखें भर आयीं ७३२ कृष्ण उवाच

। सवैया हे सखी राधा मेरा तुम्हारे मे ही प्रेम है अन्य किसी गोपी

तैसे डरे तुहि देखत हौं बिन रहै तुहि सूरत की परछाही। यौं कहि कान्ह गही बहियाँ चलियै हमसों (सू०पं०३५०) बन दै सुख पाही। हहा बलु मेरी सौ मेरी सौ मेरी सौ तेरी सौ तेरी सौ नाही जू नाही ॥ ७३३ ॥ यौं कहि कान्ह गही बहियाँ तिहु लोगन को सुखिया रस जो है। केहरि सी जिह की कट है जिह आनन पै ससि कोटक को है। ऐसे कह्यो चलियै हमरे संग जो सभ ग्वारनि को मन मोहै। यौं कहि काहे करो बिनती सुन कै तुहि लाल हिऐ कछि जो है ॥ ७३४ ॥ काहे उराहन देत सखी कह्यो प्रीत घनी हमरी संग तेरे। नाहक ही भरमी मन मै कछु बात न चंद्रभगा मन मेरे। ता ते उठो तजि मान सबै चल खेलहि पै जमुना तट केरे। मानत है नहि बात हठी बिरहातुर ह्वै बिरही जन टेरे ॥ ७३५ ॥ त्याग कह्यो अब मान सखी हमहूँ तुमहूँ बन बीच पधारें। नाहक ही तूं रिसी मन मै नही आन त्रियाबल बात हमारें। तौ ते अनंद के साथ सुनो चल तीर नदी सभ यौं कहि हारें। या ते न अउर भली

से नहीं। तुम रहती हो तो मैं तुम्हें देखता हूँ और तुम नहीं रहती हो तो तुम्हारी परछाईं देखता हूँ। यह कहकर कृष्ण ने राधा की बाँह पकड़ ली और कहा कि चलो हम वन में सुख प्राप्त करें। तुम्हें मेरी कसम है, मेरी कसम है, तुम चलो। राधा कहने लगी, मुझे तुम्हारी कसम है, मैं नहीं जाऊँगी ॥ ७३३ ॥ इस प्रकार कहकर तीनों लोकों के रस को भोगने वाले कृष्ण ने राधा की बाँह पकड़ ली। कृष्ण की कमर शेर के समान पतली और उसका मुख करोड़ों चन्द्रमा के समान सुन्दर है। गोपियों के मन को मोहित करनेवाले कृष्ण ने कहा कि तुम हमारे साथ चलो। तुम ऐसा क्यों कर रही हो। मेरी प्रार्थना है कि तुम्हारे मन में जो है, मुझसे कहो ॥ ७३४ ॥ हे सखी राधा! तुम क्यों मुझ पर व्यंग्य कर रही हो। मेरी प्रीति तो तुम्हारे साथ ही है। तुम तो व्यर्थ ही भ्रम में पड़ गयी हो। चन्द्रभगा के लिए तो मेरे मन में कोई बात नहीं। इसलिए तुम अभिमान को त्यागकर यमुना-तट पर खेलने के लिए चलो। हठी राधा बात मान नहीं रही है, जबकि विरह में व्याकुल कृष्ण उसे बुला रहे हैं ॥ ७३५ ॥ हे सखी! तुम मान को त्यागो और आओ, हम-तुम दोनों वन में चलें। तुम व्यर्थ ही मन में नाराज हो, क्योंकि मेरे मन में अन्य कोई स्त्री नहीं है। इसलिए तुम प्रसन्नता के साथ सुनो और चलो नदी के किनारे चलकर हम यही बात कह देते हैं कि तुमसे भली और कोई गोपी नहीं है, तत्पश्चात

कछु है मिलि कै हम मैन को मान निवारैं ॥ ७३६ ॥
कान्ह रसातुर ह्वै अति ही ब्रिखभान सुता ढिग बात उचारी ।
ताहि मनी हरि बात सोऊ तिन मान की बात बिदा करि डारी ।
हाथ लिसो बहिआ गहि स्याम सु ऐसे कह्यो अब खेलहि प्यारी ।
कान्ह कह्यो तब राधका सो हमरे संग केल करो मोरी प्यारी ॥ ७३७ ॥ ॥ राधे बाच कान्ह सो ॥ ॥ सवैया ॥ यौं सुनिकै ब्रिखभान सुता नंदलाल लला कहु उतर दीनो ।
ताही सो बात कहो हरिजू जिह के संग नेहु घनो तुम कीनो ।
काहे कउ मोरी गही बहिआ सु दुखावत काहे कउ हो मुहि जीनो ।
यौं कहि बात भरी अखिआं करि कै दुखु स्वास उसास सु लीनो ॥ ७३८ ॥ ॥ सवैया ॥ केल करो उन ग्वारनि सो जिन संग रच्यो मन है सु तुमारो । स्वासन लै अखिआं भरकै ब्रिखभान सुता इह भांत उचारो । संग चलो नहि हउ तुमरे कर आयुध लै कह्यो किउ नही मारो । साच कहो तुम सों बतियां तजिकै हम को अनुओर पधारो ॥ ७३९ ॥ ॥ कान्ह जू बाच राधे सो ॥ ॥ सवैया ॥ संग चलो हमरे उठकै सखी मान कछू मन मै नही आनो । आइहो हउ तजि शंक निशंक

आओ हम दोनों मिलकर कामदेव के गर्व को चूर करें ॥ ७३६ ॥
कृष्ण ने अत्यन्त व्याकुल होकर जब राधा के साथ बातें कीं तो उसने कृष्ण की बात मान ली और मान को त्याग दिया । कृष्ण ने राधा का हाथ पकड़कर कहा कि आओ मेरे मित्र और प्यारी राधा ! तुम हमारे साथ खेलो और क्रीड़ा करो ॥ ७३७ ॥ ॥ राधा उवाच कृष्ण के प्रति ॥
॥ सवैया ॥ कृष्ण की बात सुनकर राधा ने कृष्ण को उत्तर दिया कि हे कृष्ण ! तुम उसी के साथ बातें करो । जिसके साथ तुमने प्रेम किया है । तुमने मेरी बाँह क्यों पकड़ ली है और मेरे हृदय को क्यों दुखा रहे हो ? यह बात कहकर राधा ने आँखें भर लीं और उसने लम्बी साँस ली ॥ ७३८ ॥ ॥ सवैया ॥ लम्बी साँस लेते हुए और आँखें भरते हुए राधा ने कहा कि हे कृष्ण ! तुम उन्हीं गोपियों के साथ रमण करो, जिनके साथ तुम्हारा मन लगा हुआ है । तुम मुझे हाथों में शस्त्र लेकर चाहे मार ही क्यों न दो, परन्तु मैं तुम्हारे साथ नहीं आऊँगी । हे कृष्ण ! मैं तुमसे सत्य कह रही हूँ कि तुम मुझे छोड़कर यहाँ से चले जाओ ॥ ७३९ ॥
॥ कृष्ण उवाच राधा के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे प्रिये ! तुम मान का त्याग करते हुए मेरे साथ चलो । मैं तुम्हारे पास सब शंकाओं को त्याग

कछू तिहू ते रस रीत पछानो । मित्र के बेचे बिकौ बिकियै इह स्रउन सुनी सखी प्रीत कहानो । ताते हउ तेरी करो (मू०ग्रं०३५१) बिनती कहिबो मुहि मान सखी अब मानो ॥ ७४० ॥ ॥ राधे बाच ॥ ॥ सवैया ॥ यौं सुनिकै हरि की बतिया हरि को तिन या बिध उत्तर दीनो । प्रीत रही हम सो तुमरी कहाँ यौं कहिकै द्रिग बार भरीनो । प्रीत करी संग चंद्रभगा अति कोप कहयो तिह ते मुहि झीनो । यौं कहिकै भरि स्वास लयो कबि स्याम कहै अलही कपटीनो ॥७४१॥ ॥ सवैया ॥ क्रोध भरी फिरि बोल उठी ब्रिखभान सुता मुख सुंदर सिउ । तुम सौं हम सौं रस काउ न रहयो कबि स्याम कहै बिध के पहि जिउ । हरि यौ कहो मोहित है तनि सो उन कोप कहयो हम सो कहु किउ । तुमरे संग केल करै बन मै सुनियै बतिया हमरी बल इउ ॥७४२॥ ॥ कान्ह जू बाच राधे सो ॥ ॥ सवैया ॥ मोहयो हउ तेरो सखी बतिबो पिख मोहयो सु हउ द्रिग पेखत तेरे । मोहि रहयो अलकै तुमरी पिखि जात गयो

कर चला आया हूँ । अब तुम कुछ तो प्रेम की रीति पहचानो । मित्र तो बेचने पर भी बिकने के लिए तैयार रहता है । तुमने यह प्रीति की कहानी अपने कानों से अवश्य सुनी होगी । इसलिए हे प्रिये ! मैं तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि अब तुम मेरा कहना मान जाओ ॥ ७४० ॥ ॥ राधा उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण की बातें सुनकर राधा ने इस प्रकार उत्तर दिया और कहा कि हे कृष्ण ! हमारी और तुम्हारी प्रीति रही ही कब है ? यह कहते हुए राधा की आँखों में आँसू भर आये । उसने पुन: कहा कि तुम्हारा प्रेम तो चन्द्रभगा के साथ है और तुमने तो क्रोधित होकर मुझे रासमण्डली से चले जाने के लिए विवश किया था । कवि श्याम का कथन है कि इतना कहकर उस ललना ने एक लम्बी साँस ली ॥ ७४१ ॥ ॥ सवैया ॥ क्रोध से भरकर अपने सुन्दर मुख से राधा बोल उठी कि हे कृष्ण ! तुम्हारे और मेरे में अब प्रेम-रस नहीं रह गया । शायद विधाता को यही मंजूर था । कृष्ण कहते हैं कि हम तुम्हारे पर मुग्ध हैं, परन्तु वह क्रोधित होकर कहती है कि तुम अब हम पर मोहित क्यों हो । तुम्हारे साथ तो (चन्द्रभगा) वन में क्रीड़ा करती है ॥ ७४२ ॥ ॥ कृष्ण उवाच राधा के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे प्रिये ! मैं तुम्हारी चाल देखकर तथा नयन देखकर तुम पर मुग्ध हूँ । मैं तुम्हारी केशराशि को देखकर मोहित हूँ, इसलिए इसे त्याग करके मैं अपने घर तक नहीं

सजि या नही डेरे । मोहि रह्यो तुहि अंग निहारत प्रीत बढी तिह ते मन मेरे । मोहि रह्यो मुख तेरो निहारत जिउँ गन चंद चकोरन हेरे ।। ७४३ ।। ता ते न मान करो सजनी मुहि संग चलो उठके अब ही । हमरी तुम सो सखी प्रीत घनी कुपि बात कहो तजि कै सभ ही । तिह ते इह छद्रन बात की रीत कह्यो न अरी तुमको फब ही । तिह ते सुन मो बिनती चलियै इह काज किए न कछू लभ ही ।। ७४४ ।। ।। सवैया ।। अत ही जब कान्ह करी बिनती तब ही मन रंक तिया सोऊ मानी । दूर करी मन की गनती अबही हरि की तिन प्रीत पछानी । तउ इम उत्तर देत भई जोऊ सुंदरता महि स्त्रीयन रानी । त्याग दई दुचितई मन की हरि सो रस बातन सो निज कानी ।।७४५।। मोहि कहो चलियै हमरे संग जानत हो रस साथ छरोगे । रास बिखै हमको संग लै सखी आनत ग्वारनि संग अरोगे । हउ नही हारिहउ पै तुमते तुम ही हम ते हरि हारि परोगे । एक न जानत कुंजगलीन लवाइ कह्यो कछु काज करोगे ।। ७४६ ।।

जा सका । तुम्हारे अंगों को देखकर ही मैं मोहित हूँ । इसीलिए मेरे मन में तुम्हारे लिए प्रेम बढ़ा है । मैं तुम्हारा मुख देखकर उसी प्रकार विमोहित हूँ, जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर चकोर मुग्ध हो जाता है ।। ७४३ ।। इसलिए हे सजनी ! तुम अब मान मत करो और मेरे साथ अभी उठकर चलो । मेरी तुम्हारे साथ गहरी प्रीति है । तुम क्रोध का परित्याग कर मुझसे बात करो । तुमको यह छद्म ढंग से बात करना शोभा नहीं देता है । तुम मेरी प्रार्थना सुनकर चलो, क्योंकि इस प्रकार बने रहने से कुछ लाभ नहीं होगा ।। ७४४ ।। ।। सवैया ।। जब कृष्ण ने बहुत बार प्रार्थना की तो वह गोपी (राधा) थोड़ा-सा मानी । उसने मन का भ्रम दूर करके कृष्ण के प्रेम को पहचाना तथा सुन्दरता में स्त्रियों की रानी राधा ने कृष्ण को उत्तर दिया । उसने मन की दुविधा को त्याग दिया और कृष्ण से प्रेम-रस की बातें प्रारम्भ कर दीं ।। ७४५ ।। राधा ने कहा, तुमने मोहित होकर मुझे साथ चलने के लिए कह दिया, परन्तु मैं जानती हूँ कि तुम प्रेम-रस के द्वारा मुझे छलोगे । रासलीला में साथ तो तुम मुझे लेकर चलोगे, परन्तु मैं जानती हूँ कि वहाँ तुम अन्य गोपियों के साथ विहार करोगे । हे कृष्ण ! मैं तो तुमसे नहीं हारी हूँ, परन्तु भविष्य में भी तुम ही मुझसे हारोगे । किसी भी कुंजगली के बारे में तुम कुछ जानते नहीं हो मुझे वहाँ ले जाकर क्या करोगे । ७४६ कवि श्याम

ब्रिखभान सुता कबि स्याम कहै अति जो हरि के रस भीतर भीनी । री ब्रिजनाथ कह्यो हसि कै छबि दातन की अति सुंदर चीनी । ता छबि की अति ही उपमा मन मै जु भई कबि के सोऊ कीनी । जिउँ घन बीच लसै (मू०ग्रं०७५८) चपला तिह को ठग गे ठगनी ठग लीनी ।। ७४७ ।। ब्रिखभान सुता कबि स्याम कहै अति जो हरि के रस भीतर भीनी । बीच हुलास बढ्यो मन के जब कान्ह की बात सभै मन लीनी । कुंजगलीन मै खेलहिगे हरि के तिम संग कह्यो सोऊ कीनी । यौं हसि बात निसंग कह्यो मन की दुबिताई सभ ही तजि दीनी ।। ७४८ ।। ।। सवैया ।। दोऊ जउ हसि बातन संग ढरे तु हुलास बिलास बढे सगरो । हसि कंठ लगाइ लई ललना गहि गाड़े अनंग ते अंक भरे । तरकी है तनी दरकी अंगिआ गर माल ते टूटकै लाल परे । प्रिय के मिल ए त्रिय के हिय ते अंगरा बिरहागिन के निकरे ।। ७४९ ।। हरि राधिका संग चले बन लै कबि स्याम कहै मन आनंद पायो । कुंजगलीन मै केल करे मन को सभ सोक हुते बिसरायो । ताही कथा को

कवि का कथन है कि राधा कृष्ण के रस में विभोर हो गयी । उसने हँसकर ब्रजनाथ से कहा और उसके हँसने से उसके दाँतों की सुन्दर चमक कवि के कथनानुसार इस प्रकार दिखाई देने लगी जैसे बादलों में बिजली चमक रही हो । इस प्रकार उस ललना ने उस ठग (श्रीकृष्ण) को ठग लिया ।। ७४७ ।। राधा कृष्ण के प्रेम-रस में सराबोर हो गयी और उनकी बातों को स्मरण करते हुए उसके मन में आनन्द भर उठा । उसने कहा कि मैं कुंजगलियों में कृष्ण के साथ खेलूँगी और वह जो कहेंगे वही करूँगी । यह कहते हुए निःसंकोचभाव से उसने मन की सभी दुविधाओं का त्याग कर दिया ।। ७४८ ।। ।। सवैया ।। अब दोनों हँसकर बातें करते हुए फिर पड़े तो उनका प्रेम और विलास बढ़ चला । कृष्ण ने हँसकर उस ललना को गले से लगा लिया और बलपूर्वक उसे अंक में भर लिया । इसी क्रम में राधा की चोली खिंच गयी और उसकी तनी टूट गयी तथा उसके गले की माला के लाल टूटकर गिर पड़े । प्रियतम से मिलकर राधा के अंग विरह की अग्नि से बाहर निकल आये ।। ७४९ ।। कवि का कथन है कि मन में आनन्दित होते हुए कृष्ण राधा को लेकर वन की ओर चले गये । वे कुंजगलियों में विचरण करते हुए मन के शोक को विस्मरण करने लगे । इसी प्रेम-कथा को शुकदेव आदि ने गाकर सुनाया है जिस कृष्ण का

किधौ जग मै मन मै सुक आदिक गाइ सुनायो। जोऊ सुनै सोऊ रीझ रहै जिह को सभ ही ब्रर मै जस छायो ॥ ७५० ॥
॥ कान्ह जू बाच राधे सो ॥ ॥ सवैया ॥ हरि जू इम राधका संग कही जमना मै तरो तुमको गहिहै। जल मै हम केल करैंगे सुनो रस बात सभै सु तहीं कहिहै। जिह ओर निहार बधू ब्रिज की ललचाइ मनै पिखिबो चहिहै। पहुचैंगी नही तिह ग्वारनि ए हमहूं तुम रीझ तहा रहिहै ॥ ७५१ ॥
॥ सवैया ॥ ब्रिखभान सुता हरि के मुख ते जल पैठन की बतिया सुन पाई। धाइकै जाइ परी सर मै करिकै अति ही ब्रिजनाथ बडाई। ताही के पाछे ते स्याम परे कबि के मन मै उपमा इम आई। मानहु स्याम जू बाज पर्यो पिखि कै ब्रिज नार को ब्रिउ मुरगाई ॥ ७५२ ॥ ब्रिजनाथ तबै धसिकै जलि मै ब्रिखभान सोऊ तब आइ गही। हरि को तन भेट हुलास बढ्यो गिनती मन की जल भांत बही। जोऊ आनंद बीच बढ्यो मन के कबि तउ मुख ते कथ भाख कही। पिख्यो जिनहूं सोऊ रीझ रह्यो पिखि कै जमुना जिह रीझ रही ॥ ७५३ ॥ जल ते कढिकै फिर ग्वारन सो कबि स्याम कहै फिर रास मचायो। बाहर को ब्रिखभान सुता अति ही मन भीतर आनंद पायो।

वह संपूर्ण पृथ्वी पर छाया हुआ है, उसकी कथा जो भी सुनता है मोहित हो उठता है ॥ ७५० ॥ ॥ कृष्ण उवाच राधा के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ राधा को कृष्ण ने कहा कि हम तुमको पकड़ते हैं, तुम यमुना में तैरो। जल में ही हम जल-क्रीड़ा करेंगे और वहीं तुमसे प्रेम की सभी बातें करेंगे। इधर ब्रज की स्त्रियाँ ललचाकर तुम्हे देखना चाहेंगी तो वे वहाँ तक पहुँच नहीं पायेंगी। हम तुम प्रसन्नतापूर्वक वहीं रहेंगे ॥ ७५१ ॥ ॥ सवैया ॥ जल में जाने की कृष्ण की बात को सुनकर राधा दौड़कर राधा जल में कूद गयी। उसी के पीछे कृष्ण भी कूद पड़े और कवि के कथनानुसार वे ऐसे लगे जैसे राधा रूपी पक्षी को पकड़ने के लिए कृष्ण रूपी बाज ने झपट्टा मारा हो ॥ ७५२ ॥ कृष्ण ने जल में तैरते हुए राधा को आ पकड़ा। कृष्ण को शरीर समर्पित करते हुए राधा का उल्लास बढ़ गया और मन के भ्रम जल की भाँति बह गये। उनके मन का उल्लास बढ़ गया तथा कवि के कथनानुसार जिसने भी उन्हें देखा, वह मोहित हो उठा। यमुना भी विभोर हो उठी ॥ ७५३ ॥ जल से निकलकर श्रीकृष्ण ने फिर गोपियों के साथ रासलीला प्रारम्भ कर दी

ब्रिजनारिन सो मिल कै ब्रिजनाथ जू सारंग (मू०ग्रं०३५३) मै इक तान बसायो । सो सुनकै म्रिग आवत धावत ग्वारनिया सुनकै सुखु पायो ॥ ७५४ ॥ ॥ दोहरा ॥ सत्रह सै पताल मै कीनो कथा सुधार । चूक होइ जह तह सु कबि लीजहु सकल सुधार ॥ ७५५ ॥ बिनती करो दोऊ जोरि करि सुनो जगत के राइ । मो मसतक हवै पग सदा रहै दास के भाइ ॥ ७५६ ॥

॥ इति स्री दसम सिकंधे पुराणे बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिसनावतारे
रास मंडल बरननं धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥

सुदरशन नाम ब्रहमणु भुजंग जोनि ते उधार करन कथनं ॥

॥ सवैया ॥ दिन पूजा को आइ लग्यो तिह को जोऊ ग्वारनिया हितकै अति सेवी । जा रिप सुंभ निसुंभ मर्यो कबि स्याम कहै जगमात अभेवी । नाम भए जग मै जन सो जिनहू मन मै कुपकै नहि सेवी । ताही के हेत चले तजिकै पुर ग्वारन गोप सु पूजन देवी ॥ ७५७ ॥ आठ भुजा जिहू की जग

राधा भी मन में आनन्दित होकर गाने लगी । ब्रज की स्त्रियों में मिलकर ब्रजनाथ श्रीकृष्ण ने राग सारंग में एक तान छेड़ी जिसे सुनकर मृग दौड़ते हुए आने लगे और गोपियों को सुख प्राप्त होने लगा ॥ ७५४ ॥ ॥ दोहा ॥ संवत् १७४५ में इस काव्य की कथा में सुधार किया गया और यदि इसमें कोई भूल-चूक रह गयी हो, तो कविगण (कृपापूर्वक) इसे सुधार लेंगे ॥ ७५५ ॥ मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि हे जगत के स्वामी ! इस दास की भावना सदैव यही बनी रहे कि मेरा मस्तक हो और इसका प्रेम तुम्हारे चरणों में सदा बना रहे ॥ ७५६ ॥

॥ इति श्री दशम स्कंध पुराण के बचित्र नाटक ग्रंथ के कृष्णावतार के रासमंडल-
वर्णन अध्याय की शुभ सत् समाप्ति ॥

सुदर्शन नामक ब्राह्मण का सर्प-योनि से उद्धार करना

॥ सवैया ॥ गोपियों ने जिस देवी की पूजा की थी, उसकी पूजा का दिन आ गया । यह वही देवी थी, जिसने शुंभ-निशुंभ राक्षसों को मारा था और जो जगत में अभेद जगत्माता के नाम से जानी जाती है । जिन लोगों ने उसका स्मरण नहीं किया, संसार में उनका नाश हो गया । उसी की पूजा करने के लिए गोपियाँ तथा गोप नगर से बाहर जा रहे हैं । ७५७ जिसकी आठ भुजाएँ हैं और जो शुंभ का संहार करनेवाली

सालम सूम संघारन नाम जिसी को। साधन दोखन को हरता कबि स्याम न मानत त्रास किसी को। सात अकाश पतालन सालन फैल रह्यो जस नाम इसी को। ताही को पूजन द्योस लग्यो सभ गोप चले हित मान तिसो को॥ ७५८॥
॥ दोहरा॥ महा रुद्र अरु चंड के चले पूजबे काज। जसुधा लिय बलभद्र अउ संग लिए ब्रिजराज॥ ७५९॥ ॥ सवैया॥ पूजन काज चले तजकै पुर गोप सभै मन मै हरखे। गहि अच्छत धूप पचांब्रित दीपक सामुहे चंड सिवैह रखे। अति आनंद प्रापति भै तिन को दुख थे जु जिते सभ ही घरखे। कबि स्याम अहीरन के जु हुते सुभ भाग घरी इह मै परखे॥ ७६०॥
॥ सवैया॥ एक भुजंगन कान्ह बबा कहु लील लयो तन नैक न छोरै। स्याह मनो अबनूसहि को तर कोप डस्यो अत ही कर जोरै। जिउ पुर के जन लालन मारत जोर करै अति ही झख झोरै। हारि परे सभनो मिलिकै तब कूक करी भगवान की ओरै॥ ७६१॥ ॥ सवैया॥ गोप पुकारत है मिलिकै सभ स्याम कहै मुसलीधर भय्ये। दोखन को हरता करता सुख आवहु टेरत बैत मरय्ये। मोहि ग्रस्यो अहि स्याम बडे

है, जो साधुओं के दुःखों को दूर करनेवाली तथा अभय है, जिसका सातों आकाशों और पातालों में यश फैला हुआ है, सभी गोप आज के दिन उसकी पूजा करने के लिए जा रहे हैं॥ ७५८॥ ॥ दोहा॥ महारुद्र और चंडी की पूजा करने के लिए यशोदा और बलराम को साथ लिये कृष्ण जा रहे हैं॥ ७५९॥ ॥ सवैया॥ गोपगण प्रसन्न होकर नगर छोड़कर पूजा करने के लिए गये। उन्होंने चंडी और शिव के सामने दीपक, पंचामृत, धूप और चावल चढ़ाये। उनको अत्यन्त आनन्द हुआ और उनके सभी दुःखों का नाश हो गया। कवि श्याम के कथनानुसार यही समय उन सबके लिए शुभ भाग्य का समय है॥ ७६०॥ ॥ सवैया॥ इधर एक सर्प ने कृष्ण के पिता का सारा तन मुँह में डालकर निगल लिया। वह सर्प आबनूस की लकड़ी के समान काला था। उसने क्रोधित होकर नन्द को हाथ जोड़ते हुए डस लिया। नगर के सभी लोगों ने मार-पीटकर नन्द बाबा को उससे छुड़ाना चाहा, परन्तु जब सभी थक गये और न छुड़ा सके तो वे सब भगवान कृष्ण की ओर देखकर पुकारने लगे॥ ७६१॥ ॥ सवैया॥ गोप और बलराम सब मिलकर कृष्ण को पुकारने लगे तुम दुःखों को दूर करनेवाले हो, दैत्यों को मारनेवाले हो और सुखों को देनेवाले हो नन्द भी कहने

हमरो वह या बध कारज कय्ये। रोग भए जिम बैद बुलइअत (मू०ग्रं०३५४) भीर परे जिम बीर बुलय्ये ॥७६२॥ सुन अउनन मै हरि बात पिता उहि सांपहि को तन छेद कर्‌यो है। साप की देह तजी उनहूं इक सुंदर मानुख देह धर्‌यो है। ता छबि को अस उकत महा कबि नें बिधि या मुख ते उचर्‌यो है। मानहु पुंनि प्रताप ते ससि छीन भयो रिपु दूर कर्‌यो है ॥ ७६३ ॥ ॥ सवैया ॥ बामन होइ गयो सु वहै फुन नाम सुदरशन है पुन जाको। कान्ह कही बतियां हसि कै तिह सो कहु रे ते ठउर कहा को। नैन निवाइ मनै सुख पाइ सु और प्रनाम कर्‌यो कर ताको। लोगन को करता हरता दुख स्याम कहै पति लो सबहू धा को ॥ ७६४ ॥ ॥ दिज बाच ॥ ॥ सवैया ॥ अत्र रखीशर के सुत को अति हासि कर्‌यो तिन स्राप दयो है। जाहि कह्यो तुम साप सु हो वचना उन या बिधि मोहि कर्‌यो है। ताही कै स्राप लगे हमरो तन बामन ते अहि स्याम भयो है। कान्ह तुमै तन छूवत ही तन को सभ पाप पराइ गयो है ॥ ७६५ ॥ पूजत ते जगमात सभै जन पूज

लगे कि हे कृष्ण ! मुझे सर्प ने पकड़ लिया है या तो तुम इसका बध करो अन्यथा मैं मारा जाऊंगा। जिस प्रकार रोगी होने पर वैद्य को बुलाया जाता है, उसी प्रकार मुसीबत पड़ने पर वीरों का स्मरण किया जाता है॥ ७६२ ॥ पिता की बात सुनकर कृष्ण ने सर्प के शरीर को छेद डाला। सर्प ने देह त्यागकर एक सुन्दर मनुष्य का रूप धारण कर लिया। उस छवि की उच्च महिमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि ऐसा लग रहा है मानो पुण्य प्रताप के प्रभाव से चन्द्रमा की आभा छिनकर उस मनुष्य में आ गई हो और शत्रु समाप्त हो गया हो ॥ ७६३ ॥ ॥ सवैया ॥ अब वह ब्राह्मण पुन. सुदर्शन नामक मनुष्य बन गया तो कृष्ण ने हँसकर उससे पूछा कि तुम्हारा घर कहाँ है ? उसने आँखें झुकाकर मन में सुख प्राप्त कर तथा हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा कि प्रभु ! आप लोगों के पालक और दु.खों को दूर करनेवाले हैं और आप ही सर्वलोकों के स्वामी हैं ॥ ७६४ ॥ ॥ द्विज उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ अत्रि ऋषि के पुत्र का मैंने उपहास किया था, अतः उसने मुझे श्राप दिया था और सर्प हो जाने के लिए कहा था। उसी का वचन सत्य हुआ और मेरा तन ब्राह्मण से काले सर्प का हो गया। हे कृष्ण ! तुम्हारे द्वारा मेरा तन छुए जाने पर मेरे तन का सभी पाप दूर हो गया है। ७६५। जगत्‌माता की पूजा कर सभी

सभै तिह डेरन आए। कान्ह पराक्रम को उरधार सभो मिलिकै उपमा जस गाए। सोरठि सारंग सुद्ध मलहार बिलावल भीतर तान बसाए। रीझ रहे ब्रिजके जु सभै जन रीझ रहे जिनहूँ सुन पाए ॥ ७६६ ॥ ॥ दोहरा ॥ पूज चंड को भट बडे घर आए मिलि दोइ। अंन खाइकै मात ते रहे सदन मै सोइ ॥ ७६७ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके ग्रंथे क्रिसना अवतारे दिज उधार चंड पूज धिआइ समापतम ॥

अथ ब्रिखभासुर दैत बध कथनं ॥

॥ सवैया ॥ भोजन कै जसुधा पहि ते भट रात परे सोऊ सोइ रहे है। प्रात भए बन बीच गए उठ सेजह डोलत सिंघ सहे है। बिखभासुर को तिह ठउर खरो जिह के दोऊ सींग अकाश छुहे है। देखिकै सो कुप कै हरिजू दुहूँ हाथन सो कर जोर गहे है ॥ ७६८ ॥ ॥ सवैया ॥ सींगन ते गहि डार दयो सु अठारह पैग पै जाइ पर्यो है। फेरि उठ्यो कर कोप मनै हरि के फिर सामुहि जुद्ध कर्यो है। फेरि बगाइ

लोग अपने घरों को लौट आए। सभी ने कृष्ण के पराक्रम का गुणानुवाद किया। सोरठ, सारंग, शुद्धमल्हार और बिलावल की तान बजने लगी, जिसे सुनकर व्रज के सभी नर-नारी तथा जिसने भी सुना प्रसन्न होने लगे ॥ ७६६ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार चंडी की पूजा कर दोनों महावीर (कृष्ण और बलराम) वापस घर आए और अन्न-जल ग्रहण कर घर में सो गए ॥ ७६७ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक ग्रंथ में कृष्णावतार में द्विज-उद्धार, चंडी-पूजा अध्याय समाप्त ॥

वृषभासुर दैत्य-वध-कथन

॥ सवैया ॥ रात का भोजन यशोदा माता के हाथ से ग्रहण कर दोनों वीर सो गए हैं। प्रातः होते ही वे वहाँ वन में जा पहुँचे, जहाँ सिंह-खरगोश विचरण कर रहे थे। वहाँ वृषभासुर नामक दैत्य खड़ा था जिसके दोनों सींग आकाश को छू रहे थे। उसे देखकर श्रीकृष्ण ने कुपित होकर जोर से उसके सींगों को हाथ से पकड़ लिया है ॥ ७६८ ॥ ॥ सवैया ॥ सींगों से पकड़कर कृष्ण ने उसे अठारह क़दम दूर फेंक दिया। वह फिर कुपित होकर उठा और कृष्ण के समक्ष युद्ध करने लगा। कृष्ण ने उसे एक बार फिर उठाकर गिरा दिया और वह पुन नहीं उठ सका। उसका

कंस प्रनाम कहो करिकै सुनियै रिख जू तुम सत्ति कही है। याकी बिथा रजनी दिन मै हमरै मन मै बसिकै सु रही है। जाहि मर्यो अघ दैत बली बक पूतना जा थन जाइ गही है। ता मरिये छल कै किधो संग कि कै बल के इह बात सही है ॥ ७७२ ॥ ॥ कंस बाच केसी सो ॥ ॥ सवैया ॥ मुन तउ मिलिकै न्रिप सो ग्रिह ग्यो तब कंस बली इक दैत बुलायो। मारहु आइ कह्यो जसुधा सुत पै कहिकै इह भाँत पठायो। पाछे ते पै भगनी भगनीपति डार जंजीरन धाम रखायो। संग चंडूर कह्यो इह भेद सबै कुबिलयागिर बोल पठायो ॥ ७७३ ॥ ॥ कंस बाच अक्रूर सो ॥ ॥ सवैया ॥ भाख कही संग भ्रित्तन सो इक खेलन को रंगभूम बनइयै। संग चंडूर कह्यो मुसटे दरवाजे बिखै गज को थिर कइयै। बोलि अक्रूर कही हमरो रथ लैकरि नंद पुरी महि जइयै। जग्गि अबै हमरे ग्रिह है इह बातन को करकै हरि ल्यइयै ॥ ७७४ ॥ ॥ सवैया ॥ जाहि कह्यो अक्रूरहि को ब्रिज के पुर मै अति कोपहि सिउता। जग्गि अबै हमरे ग्रिह है रिझवाइ कै ल्यावहु वाकहि इउता।

कंस ने प्रणाम करते हुए कहा कि हे ऋषिवर! आपने सत्य कहा है। इन सबों की कहानी तो मेरे हृदय रूपी दिन में रात्रि की छाया के समान व्याप्त है। जिसने अघ और बली बक तथा पूतना को मार डाला और छल-बल या किसी भी तरीके से मार डालना ठीक ही है ॥ ७७२ ॥ ॥ कंस उवाच केशी के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ जब मुनि कंस से मिलकर गए तो कंस ने केशी नामक एक बलशाली दैत्य को बुलाया और उससे कहा कि जाओ यशोदा के पुत्र कृष्ण को मार डालो। इधर कंस ने बहिन और उसके पति वसुदेव को जंजीरों से जकड़कर घर में रखा। चंडूर को कंस ने भेद की कुछ बातें बताईं और कुवलयापीड़ (नामक हाथी) को मँगवा भेजा ॥ ७७३ ॥ ॥ कंस उवाच अक्रूर के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ कंस ने अपने अनुचरों से कहा कि एक रंगभूमि का निर्माण करो। चंडूर से कहा कि रंगभूमि के द्वार पर (कुवलयापीड़) हाथी को खड़ा किया जाय। अक्रूर से कहा कि तुम हमारा रथ लेकर नंदपुरी में जाओ और यह कहकर कि हमारे घर में एक यज्ञ का आयोजन है, कृष्ण को यहाँ ले आओ ॥ ७७४ ॥ ॥ सवैया ॥ कंस ने क्रोधित होकर अक्रूर से कहा कि ब्रज में जाकर कहो कि हमारे घर में यज्ञ है। इस प्रकार रिझाकर कृष्ण को यहाँ ले आओ। कवि के कथनानुसार यह छवि ऐसी लग रही

ता छबि को जस उच्च महा उपज्यो (पु०पं०३५६) कबि के मन मै इह बिउता । जिउ बन खीब हरे सिंघ के सु पठ्यो सिगवा कहि के हरि निउता ॥ ७७५ ॥ ॥ कबियो बाच ॥
॥ दोहरा ॥ न्रिप भेज्यो अक्रूर कहु हरि मारन के घात । अब बध केसी को कथा भई कहो सोई बात ॥ ७७६ ॥
॥ सवैया ॥ प्रात चल्यो तह को उठ सो रिप ह्वै हय दीरघ दै तह आयो । देखत जाहि बिनोद भर्यो मघवा जिह पेखत ही डरपायो । ग्वार डरे तिह देखत ही हरि पाइन ऊपर सीस झुकायो । धीर भयो अबुराइ तबै तिह सो कुप कै रन दुंद मचायो ॥ ७७७ ॥ कोप भयो रिप के मन मै तब पाव को कान्ह को चोट चलाई । दैन न लागन स्याम तनै सु भली बिधि सो अबुराइ बचाई । फेर गहयो सोऊ पाइन ते कर सो न रह्यो सु दयो है बगाई । जिउ लरका बट फेंकत है तिम चार सै पंग पर्यो सोऊ जाई ॥ ७७८ ॥ ॥ सवैया ॥ फेर सँभार तबै बल धारि पतंड पसारि हरि ऊपरि धायो । लोचन काढ बडे डरबान कियो जिन ते जमलोक डरायो । स्याम दयो तिहके मुख मै करि ता छबि को मन मै जसु पायो । कान्ह

है, मानो शेर को मारने के लिए मृग को अग्रिम रूप से शेर को ललकारने के लिए भेजा जा रहा हो ॥ ७७५ ॥ ॥कवि उवाच॥ ॥ दोहा ॥ कंस ने अक्रूर को कृष्ण के मारने की घात लगाने के लिए भेजा । अब इसी के साथ केशी-वध की कथा कहता हूँ ॥ ७७६ ॥ ॥ सवैया ॥ केशी प्रातः होते ही चला और एक बड़े घोड़े का रूप धारण करके व्रज पहुँचा । इसे देखकर सूर्य और इन्द्र भी डर जाते थे । डरे हुए ग्वालों ने भी उसे देखकर कृष्ण के पैरों पर सिर झुका दिया । कृष्ण यह सब देखकर धैर्य से स्थिर हो गए और इधर केशी ने भीषण युद्ध मचा दिया ॥ ७७७ ॥ केशी शत्रु ने कुपित होकर पाँव से कृष्ण पर प्रहार किया, जिसे कृष्ण ने अपने तन से लगने नहीं दिया और अपने-आपको भलीभाँति बचा लिया । फिर कृष्ण ने केशी के पैर पकड़कर उसे उठाकर इस प्रकार दूर फेंक दिया, जैसे लड़के लकड़ी को फेंकते हैं । केशी चार सौ कदम दूर जा गिरा ॥ ७७८ ॥ ॥ सवैया ॥ पुनः सँभलकर और मुँह फैलाकर कृष्ण पर टूट पड़ा । वह यमलोक को भी डराने में सक्षम बड़ी-बड़ी आँखें निकालकर डराने लगा । कृष्ण ने उसके मुँह में हाथ डाल दिया और वह ऐसा लग रहा था मानो कृष्ण काल-रूप होकर केशी के तन से प्राण

को हवंकर कान्ह मनो तन केसी ते प्रान निकासन आयो ॥७७९॥ तिन बाहु कटी हरि दांतन सो तिहके सभ दांत तबै झरगे । जोऊ आइ मनोरथ कै मन मै सभ ओरन की सोऊ है गरगे । तब ही सोऊ जूझ परो छित पै न सोऊ फिरकै अपने घरगे । अब कान्हर के करि लागत ही मरि ग्यो वह पाप सभै हरगे ॥ ७८० ॥ ॥ सवैया ॥ रावन जा बिधि राम मर्यो बिधि जो करकै नरकासुर मार्यो । जिउँ प्रहलाद के रच्छन को हरनाकश मारि बर्यो न उबार्यो । जिउँ मधु कैट मरे कर चक्र लै पावक लील लई डर टार्यो । तिउँ हरि संतन रावन को करिकै अपनो बल दैत पछार्यो ॥७८१॥ ॥ सवैया ॥ मारि बडो रिप को हरि जू संगि गउअन लै सु गए बन मै । मन सोक सभै हर कै सभ ही अति कै फुन आनंद पै तन मै । फुन ता छबि की अति ही उपमा उपजी कबि स्याम के इउ मन मै । जिम सिंघ बडो म्रिग जान बध्यो छल सो म्रिगवा के मनो गन मै ॥ ७८२ ॥ (मू०ग्रं०३५७)

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिसनावतारे केसी बधहि धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥

निकाल रहे हों ॥ ७७९ ॥ उसने दाँतों से बाँह को काटा, परन्तु उसके (केशी के) दाँत तत्क्षण झड़ गए। जिस मनोरथ को लेकर वह आया था, उसका मनोरथ विफल हो गया। वह वापस घर न गया और जूझकर धरती पर गिर पड़ा। कृष्ण के हाथ लगते ही वह (केशी) मर गया और उसके सभी पाप नष्ट हो गये ॥ ७८० ॥ ॥ सवैया ॥ राम ने जिस विधि से रावण को मारा और नरकासुर जिस विधि से मरा; जिस विधि से प्रह्लाद की रक्षा के लिए हिरण्यकशिपु को भगवान ने मारा; जिस प्रकार मधु-कैटभ को मारा और दावानल को प्रभु ने पी लिया, उसी प्रकार संतों की रक्षा करने के लिए अपने बल से कृष्ण ने (केशी) दैत्य को पछाड़ दिया (और मार दिया) ॥ ७८१ ॥ ॥ सवैया ॥ बड़े शत्रु को मारकर कृष्ण गायों को लेकर वन में गए। मन से सभी शोकों का त्याग करते हुए वे आनन्दित हो उठे। कवि के कथनानुसार वह छवि ऐसी लग रही थी मानो मृगों के झुंड में से शेर ने एक बड़े मृग को मार दिया हो ॥ ७८२ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार में केशी-वध अध्याय की शुभ सत् समाप्ति।

अथ नारद जू किशन पहि आए

॥ अड़िल ॥ तब नारद चलि गयो निकटि प्रट किशन के। करी उचर पूरना मनो हित रिसन के। रह्यो मुनी सिर न्याइ स्याम तर पगन के। हो मन बिचार कह्यो स्याम महौ संग लगन के ॥ ७८३ ॥ ॥ मुन नारद जू बाच कान्ह जू सो ॥ ॥ सवैया ॥ अक्रूर के अग्र हो जा हरि सो सुन पा परि कै इह बात सुनाई। रीझ रह्यो अपने मन मै मुनि हारि के सुंदर रूप कन्हाई। बीर बडो रन बीच बधो तुम ऐसे कह्यो अति ही छबि पाई। आयो हो इउ सु घने रिप घेरि शिकार को भांत बधो तिन जाई ॥ ७८४ ॥ ॥ सवैया ॥ तब हउ उपमा तुमरी करहो कुवलियागिर को तुम जौ मरिहो। मुसटक बल साथ चंडूरहि सों रंगभूम बिखै बध जो करिहो। फिरि कंस बडे अपने रिपु को गहि केस ते प्रानन को हरिहो। रिप मार घने बन आसुर को कर काट सभै धर पै धरिहो ॥७८५॥ ॥ दोहरा ॥ इह कहि नारद किशन सो बिदा

नारद जी का कृष्ण के पास आगमन

॥ अड़िल ॥ तब नारद चलकर सुभट कृष्ण के पास गए। उन्होंने पूर्ण रूप से ऋषि की उच्च-स्तुति करवाई। मुनि नारद श्रीकृष्ण के पैरों पर सिर झुकाकर खड़े रहे और मन-बुद्धि में विचारकर उन्होंने श्रद्धापूर्वक श्रीकृष्ण को कहा ॥ ७८३ ॥ ॥ मुनि नारद उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ अक्रूर के पहुँचने से पहले ही मुनि ने कृष्ण जी को सब कुछ बता दिया। कृष्ण सब सुनकर अपने मन-ही-मन प्रसन्न हो उठे। नारद ने कहा कि हे कृष्ण! आपने बड़े-बड़े वीरों को रण में मार गिराया है और छवि को प्राप्त किया है। मैं आपके दर्शन के शत्रुओं को घेरकर छोड़ आया हूँ। आप (मथुरा जाकर) उनका वध करें ॥ ७८४ ॥ ॥ सवैया ॥ मैं आपका गुणानुवाद करूँगा यदि आप कुवलयापीड़ (हाथी) को मार दें, मुष्टिकों से रंगभूमि में चंडूर को मार दें, कंस जैसे बड़े शत्रु को केशों से पकड़कर मार दें और नगर तथा वन के बड़े असुरों को काट कर धरती पर डाल दें ॥ ७८५ ॥ दोहा ॥ यह कहकर नारद कृष्ण से विदा लेकर चले गये वे मन में सोचने लगे कि अब कंस के

भयो मन माहि । अब दिन कंसहि के कहयो फ्रितु के फुन निज काहि ॥ ७८६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिशनावतारे मुन नारद जू किशन जू को सभ भेद दे फिर बिदिआ भए धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥

अथ बिस्वासुर दैत जुद्ध ॥

॥ दोहरा ॥ खेलत ग्वारनि सो किशन आदि निरंजन सोइ । ह्वै मेढ़ा तसकर कोऊ कोऊ पहरुआ होइ ॥ ७८७ ॥ ॥ सवैया ॥ केसव जू संगि ग्वारनि के ब्रिजभूम बिखै सुभ खेल मचायो । ग्वारनि देखि तबै बिस्वासुर ह्वै चुरवा तिन भच्छन आयो । ग्वार हरे हरि के बहुते तिह को फिरकै हरि जू लखि पायो । धाइकै ताही को ग्रीव गही बल सो धरनी पर मार गिरायो ॥७८८॥ ॥ दोहरा ॥ बिस्वासुर को मारकै कर साधन के काम । हली संग सभ ग्वार लै आए निस को धाम ॥७८९॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके क्रिशना अवतारे बिस्वासुर दैत बधह धिआइ समापत ॥

मृत्यु के दिन थोड़े ही उसके अपने हैं अर्थात् वह शीघ्र ही समाप्त हो जायगा ॥ ७८६ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथ के कृष्णावतार में मुनि नारद जी कृष्ण जी को सब भेद देकर बिदा हुए अध्याय समाप्त ॥

विश्वासुर दैत्य-युद्ध-कथन

॥ दोहा ॥ आदिनिरंजन कृष्ण गोपियों के साथ खेलने लगे । कोई बकरा, कोई चोर और कोई सिपाही बनकर सभी खेलने लगे ॥ ७८७ ॥ ॥ सवैया ॥ केशव जी कृष्ण ने ग्वालिनों के साथ व्रजभूमि में खेल की धूम मचा दी । विश्वासुर दैत्य ग्वालिनों को देखकर उनका भक्षण करने के लिए चोर का रूप धारण करके आया । उसने कई गोपों का हरण कर लिया और कृष्ण ने घूम-फिरकर उसको पहचान लिया । कृष्ण ने दौड़कर उसकी गर्दन पकड़ ली और पटककर उसे धरती पर मार गिराया ॥ ७८८ ॥ ॥ दोहा ॥ विश्वासुर को मारकर इस प्रकार सतों का कार्य करते हुए बलराम को साथ लेकर श्रीकृष्ण रात में घर आ गए ॥ ७८९ ॥

इति श्री बचित्र नाटक के कृष्णावतार में विश्वासुर दैत्य वध अध्याय समाप्त

अथ हरि को अक्रूर मथुरा को लै जैबो ॥

॥ सवैया ॥ रिपु को हरि मार गए जबही अक्रूर किधौ चलिकै तिह आयो । स्याम को देखि प्रनाम कर्यो (मू०ग्रं०३५८) अपने मन मै अति ही सुखु पायो । कंस कही सोऊ पै बिनती जदुरा अपने हित साथ रिझायो । अंकस सो गज जिउं फिरियै हरि को तिम तातन ते फिर ल्यायो ॥ ७९० ॥ सुनिकै बतिया तिह की हरिजू पित धाम गए इह बात सुनाई । मोहि अबै अक्रूर के हाथ बुलाइ पठ्यो मथुरा हू के राई । पेखत ही तिह मूरत नंद कही तुमरे तन है कुसलाई । काहे की है कुसलात कह्यो इह भांत चल्यो मुसलीधर भाई ॥ ७९१ ॥

अथ मथुरा मै हरि को आगम ॥

॥ सवैया ॥ सुनिकै बतिया संगि ग्वारनि लै ब्रिजराज चल्यो मथुरा को तबै । बकरे अति लै पुन छीर घनो धरकै मुसलीधर स्याम अबै । तिह देखत ही सुख होत घनो तन को

हरि को अक्रूर द्वारा मथुरा ले जाया जाना

॥ सवैया ॥ जब शत्रु को मारकर कृष्ण चले तो उसी समय अक्रूर वहाँ आ पहुँचे । उसने कृष्ण को देखकर अत्यन्त सुखी होते हुए उन्हें प्रणाम किया । जैसा कि कंस ने कहा था वैसा ही करके उसने कृष्ण को प्रसन्न कर लिया । जिस प्रकार अंकुश के द्वारा हाथी को इच्छानुसार घुमा लिया जाता है, इसी तरह अक्रूर ने कृष्ण को बातों के बल से अपना कहना मना लिया ॥ ७९० ॥ उसकी बातें सुनकर कृष्ण पिता नन्द के पास गए और कहा कि मुझे मथुरा के राजा कंस ने अक्रूर के साथ बुला भेजा है । कृष्ण को देखते ही नन्द ने कहा कि कुशल तो है कृष्ण ने कहा कि कुशलता क्या है (आप चिन्ता न करें) । यह कहते हुए कृष्ण ने हलधर को भी बुला लिया ॥ ७९१

जिह देखत पाप भगै। मनो ग्वारनि को बन सुंदर मै सभ केहरि को अनुराद्ध लगै ॥ ७९२ ॥ ॥ दोहरा ॥ मथुरा हरि के जान की सुनी जसोधा बात। तबै लगी रोवनि करन भूल गई सुध सात ॥ ७९३ ॥ ॥ सवैया ॥ रोवन लाग जबै जसुधा अपुने मुखि ते इह भांत सो भाखै। को है हितू हमरो ब्रिज मै चलते हरि को ब्रिज मै फिरि राखै। ऐसो को ढीठ करै जिय मो न्रिप सामुहि जा बतिया इह भाखै। शोक भरी मुरझाइ गिरी धरनी पर सो बतियो नहि भाखै ॥७९४॥ ॥ सवैया ॥ बारह मास रख्यो उदरो महि तेरहि मास भए जोऊ जइया। पाल बडो सु कर्यो तबही हरि को सुन मै मुसलीधर भइया। ताही के काज किधौ न्रिपवा बसुदेव को कै सुत बोल पठइया। पै हमरे घट भागन के घर भीतर पै नही स्याम रहइया ॥ ७९५ ॥ ॥ दोहरा ॥ रथ ऊपर महराज गे रथ चढकै तजि गेह। गोपिनि कथा बिलाप की भई संत सुन लेह ॥ ७९६ ॥ ॥ सवैया ॥ जब ही चलिबे की सुनी बतिया सब ग्वारनि नैन ते नीर ढर्यो। गिनती तिन के मन बीच

आदि लिये। बलराम और कृष्ण आगे-आगे चल पड़े। उन्हें देखकर अत्यन्त सुख प्राप्त होता है और सब पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रीकृष्ण ग्वालों के वन में शेर के समान दिखाई दे रहे हैं ॥ ७९२ ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण के मथुरा जाने की बात जब यशोदा ने सुनी तो वह सुधि भूलकर रुदन करने लगी ॥ ७९३ ॥ ॥ सवैया ॥ रोती हुई यशोदा ने इस प्रकार कहना शुरू किया कि क्या कोई ब्रज में ऐसा है, जो जाते हुए कृष्ण को ब्रज में रोके। कोई ऐसा साहसी है जो राजा के समक्ष जाकर मेरा दुःख रखे। इतना कहकर शोक से मुरझा यशोदा धरती पर गिर पड़ी और चुप हो गयी ॥ ७९४ ॥ ॥ सवैया ॥ मैंने बारह मास तक कृष्ण को उदर में रखा। हे बलराम! सुनो, मैंने तुम्हारे भाई कृष्ण को पाल-पोसकर बड़ा किया। क्या इसी कारण से कंस ने उसे वसुदेव का पुत्र जानकर बुलवा भेजा है। क्या मेरा भाग्य वास्तव में क्षीण हो गया है, जो अब श्याम मेरे घर में नहीं रहेगा ॥ ७९५ ॥ ॥ दोहा ॥ अपने घर को छोड़कर श्रीकृष्ण रथ पर चढ़ गये। अब, हे सज्जनो! गोपियों के विलाप की कथा भी सुन लीजिए ॥ ७९६ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण के चले जाने की बात जब गोपियों ने सुनी तो उनकी आँखों में आँसू भर आए उनके मन में अनेक शंकाएँ उठने लगीं और उनके मन का आनन्द समाप्त

भई मन की सम आनंद दूर कर्यो । जितनो तिन मै रस जोबन थो दुख की सोई ईंधन माहि जर्यो । तिन ते नही खोल्यो जात कछू मन कान्ह की प्रीत की संग जर्यो ॥ ७९७ ॥ ॥ सवैया ॥ जा संग गावत थी मिलि गीत करैं मिलिकै जिह सग अखारे । जा हित लोगन हास सह्यो तिह संगि फिरैं नहि शंक बिचारे । जा हमरी अति ही हित कै सरि (पृ० १५६) आप बली तिन दैत पछारे । सो तजिकै ब्रिजमंडल कउ सजनी मथुरा हू को ओर पधारे ॥ ७९८ ॥ ॥ सवैया ॥ जाही के संग सुनो सजनी हमरो जमुना तट नेहु भयो है । ताही के बीच रह्यो गड़ कै तिह ते नही छूटन नैकु गयो है । ता चलबे की सुनी बतिया अति ही मन भीतर शोक छयो है । सो सुनियै सजनी हम कउ तजिकै ब्रिज कउ मथुरा को गयो है ॥ ७९९ ॥ अति ही हित सिउ संग खेलत जा कबि स्याम कहै अति सुंदर कामन । रास के भीतर यौ लशकै जिम सावन की चमकै जिम दामन । चंदमुखी तन कंचन से म्रिग कंजप्रभा जु चलैं गज गामन । स्याग तिनै मथुरा को चल्यो जदुराइ सुनो सजनी अब भामन ॥ ८०० ॥ कंजमुखी तन कंचन मै बिरलाप करैं

हो गया । उनका जितना भी प्रेम रस और यौवन था, वह दुःख की अग्नि में जलकर भस्म हो गया । उनका मन कृष्ण के प्रेम में इतना झुलस चुका है कि अब उसमें कुछ बोला नहीं जा रहा है ॥ ७९७ ॥ ॥ सवैया ॥ जिसके साथ के अखाड़े में मिलकर गीत गाती थीं, जिसके कारण उन्होंने लोगों का उपहास सहा परन्तु फिर भी वे निःसंकोच उसके साथ घूमती रहीं, जिसने हमारे हित के लिए बली दैत्यों को पछाड़ दिया, हे सखी ! वही कृष्ण ब्रजमण्डल को त्यागकर मथुरा की ओर जा रहे हैं ॥ ७९८ ॥ ॥ सवैया ॥ हे सखी ! यमुना तट पर जिसके साथ हमने प्रेम किया है, वह अब हमारे मन में गड़कर रह गया है और निकल नहीं रहा है । उसके चलने की बातें सुनकर अब हमारे मन में अत्यन्त शोक व्याप्त हो गया है । हे सजनी ! सुनो, वही श्रीकृष्ण अब हमको छोड़कर मथुरा की ओर चला जा रहा है ॥ ७९९ ॥ कवि का कथन है कि जिसके साथ अत्यन्त प्रेम-पूर्वक सभी सुन्दर स्त्रियाँ खेलती थीं । वह रासलीला में ऐसा चमकता था जैसे सावन की घटा में बिजली चमकती हो । चन्द्रमुखियाँ, कंचन के समान शरीर वाली, हाथियों के समान मस्त चाल वाली स्त्रियों को छोड़कर हे सखियो अब देखो श्रीकृष्ण मथुरा जा रहे हैं । ८०० ॥

हरि सों हित लाई। सोक भयो तिन के मन बीच अशोक गयो तिनहूं ते नसाई। भाखत है इह भांत सुनो सजनी हम त्याग गयो है कन्हाई। आप गए मथुरा पुर मै जदुराइ न जानत पीर पराई॥ ८०१॥ अंग बिखै सजकै भगवो पट हाथन मै खिपिआ हम लैहैं। सीस धरैंगी जटा अपने हरि मूरति भिछ्छ कउ मांग अघैहैं। स्याम चलै जिह ठउर बिखै हमहूं तिह ठउर बिखै चलि जैहैं। त्याग कहयो हम धामन को सभ ही मिलकै हुव जोगन ऐहैं॥ ८०२॥ बोलत ग्वारनि आपसि मै सुनियै सजनी हम काम करैंगी। स्याम कहयो हम धामन कउ खिपिआ गहि सीस जटान धरैंगी। कै बिख खाइ मरैंगी कहयो नही बूड मरैं नही आग जरैंगी। मान बयोग कहे सभ ग्वारनि कान्ह के साथ ते पै न टरैंगी॥ ८०३॥ जिनहू हमरे संग केल करे बन बीच दए हम कउ सुख भारे। जा हमरे हित हास सहै हमरे हित के जिह दैंत पछारे। रास बिखै जिह ग्वारनि के मन के सभ सोक दिवा कर टारे। सो सुनियै हमरे हित कौ तजिकै सु अबै मथुरा को पधारे॥ ८०४॥ मुंद्रक का पहरै

स्वर्ण के समान शरीर वाली और कमल के समान मुख वाली कृष्ण के प्रेम में विलाप कर रही हैं। उनके मन में शोक व्याप्त हो गया है और सुख उनसे दूर भाग गया है। सभी कह रही हैं कि हे सजनी! देखो कृष्ण हम सबको छोड़कर चला गया है। स्वयं यदुराज तो मथुरा चले गये हैं और हम लोगों की पराई पीड़ा को नहीं अनुभव कर रहे हैं॥ ८०१॥ हम भगवा वस्त्र धारण करके हाथों में खप्पर ले लेंगी; सिर पर जटाएँ धारण कर लेंगी और कृष्ण की ही भिक्षा माँगकर प्रसन्नता का अनुभव करेंगी। जहाँ कृष्ण गये हैं हम भी वहीं चली जाएँगी। हमने कह दिया है कि हम घर छोड़कर योगिन बन जायँगी॥ ८०२॥ गोपियाँ आपस में कह रही हैं कि हे सखी! हम एक काम करेंगी कि घर को त्यागकर सिर पर जटाएँ और हाथों में खप्पर धारण कर लेंगी। हम लोग जहर खाकर मर जायँगी, डूब जायँगी, नहीं तो जलकर मर जायँगी। वियोग को मानकर सभी कहने लगीं कि हम कृष्ण का साथ कभी नहीं छोड़ेंगी॥ ८०३॥ जिसने हमारे साथ केलि-क्रीड़ा की और वन में भारी सुख दिया, जिसने हमारे लिए व्यंग्य सहे और दैत्यों को पछाड़ दिया, जिसने रासलीला में गोपियों के सभी शोकों को दूर कर दिया, वही कृष्ण अब हमारे प्रेम को त्यागकर मथुरा को चले गये हैं ८०४

सु कहै तजिकै ग्रिह काउ हम जोगन ह्वैहैं ॥ ८०८ ॥ कै अपने मन को फुन माल कहै कबि वाही को नामु जपैहैं । कै इह भांत करैं पै उपमा ह्वित सो तिह ते जदुराइ रिझैहैं । मांग सबै तिह ते मिलिकै बर पाइन पै तिह ते हम ल्यैहैं । याते बिचार कहै गुपिया तजिकै हम धामन जोगन ह्वैहैं ॥ ८०९ ॥ ठाढी है होइ इकत्र त्रिया जिम घंटक हेर बजै मिरगाइल । स्याम कहै कबि चित हरै हरि को हरि ऊपर ह्वै अति घाइल । ध्यान लगै द्रिग मूंद रहो उघरै निकटै तिह जान बताइल । यौं उपजी उपमा मन मै जिम मोचत आंख उघारत घाइल ॥ ८१० ॥ ॥ सवैया ॥ कंचन के तन जो सम थी सु हुती सम स्यारन चंद्रक रासी । मैन की साम सो साम बनी दोऊ भउह मनो अखिया सम गासी । देखत जा अति ही सुखहो नहि देखत ही तिह होत उदासी । स्याम बिना सस पै जल की समो कंजमुखी भई सूक अरा सी ॥ ८११ ॥ ॥ सवैया ॥ रथ ऊपरि स्याम चड़ाइ कै सो संगि लै सभ गोप तहां को गए है ।

योगिनियाँ हो जाएँगी ॥ ८०८ ॥ अपने मन को माला बनाकर हम उसी के नाम का जाप करेंगी । इस प्रकार तपस्या कर हम यदुराज कृष्ण को प्रसन्न करेंगी । उसका वरदान मिलने पर हम उसी को उससे माँगकर ले आएँगी । यही विचार करके गोपियाँ कह रही हैं कि हम घर-बाहर छोड़कर योगिनियाँ हो जाएँगी ॥ ८०९ ॥ वे स्त्रियाँ इस प्रकार इकट्ठी होकर खड़ी हो गयीं जैसे नाद की आवाज सुनकर मृगों का झुंड स्थिर हो जाता है । ये गोपियों के झुंड का दृश्य सर्वचिन्ताओं को दूर करनेवाला है । ये सभी गोपियाँ श्रीकृष्ण पर आसक्त हैं । वैसे वे आँखों को बन्द किए हुए हैं, परन्तु भ्रमवश कृष्ण को पास अनुभव कर वे कभी-कभी शीघ्रता से आँखें खोलती हैं । वे ऐसा कर रही हैं मानो कोई घायल कभी आँख बन्द करता हो तथा कभी आँख खोलता हो ॥ ८१० ॥ ॥ सवैया ॥ जिनका तन कंचन के समान और रूपराशि चन्द्रमा के समान थी; जिनकी शोभा कामदेव के समान बनी थी और जिनकी दोनों भौंहें तीरों के समान थीं, जिन्हें देखने पर अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती थी और न देखने पर मन उदास हो जाता था, वे गोपियाँ उसी प्रकार मुरझा गईं जैसे जल में कजमुखी (कुमुदिनी) चन्द्रमा की किरणों के बिना मुरझा जाती है ॥ ८११ ॥ ॥ सवैया ॥ सभी गोपों को रथ पर चढ़ाकर श्याम वहाँ से चल पड़े हैं । गोपियाँ घरों में ही रहीं और उनके मन का शोक

स्वारनिया सु रही पह मैं जिनकै मन बीच सु सोक मए है। ठाढ उडीकत गोपि जहाँ तिह ठउर बिखै दोऊ एसु भए है। सुंदर है सस से जिनके मुख कंचन से तन रूप छए है॥ ८१२॥ ॥ सवैया॥ जब ही अक्रूर के संग किधौ जमना पैं गए ब्रिज लोक सबै। (मू०पं०१६१) अक्रूर ही चित करी मन मै अति पाप कर्‌यो हमहू सु अबै। तब ही तजकै रथ बीच चल्यो जल कौ संध्या करबे को लबै। इह को मरि है रिपु कंस बली सु भई इह की अति चिंत जबै॥ ८१३॥ ॥ दोहरा॥ न्हात जबै अक्रूर मन हरि को कर्‌यो बिचार। तब तिह को जल मै सबै दरशन दयो मुरार॥ ८१४॥ ॥ सवैया॥ मूंड हजार भुजा सहसे बस शेश के आसन पैं सु बिराजै। पीत लसे पट चक्र अरे जिहके कर भीतर संख छाजै। बीच लखै जमुना प्रगट्यो फुन साधनि के दुखवे डर काजे। जाको कह्यो सम ही जग है जिह देखत ही घन सावन लाजै॥ ८१५॥ ॥ सवैया॥ जल ते कढकै मन मै सुख कै मथुरा को चल्यो मन आनंद पाई। धाइ

बहुत बढ़ गया है। जहाँ गोपियाँ मिलकर श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रही थीं, वहाँ ये दोनों भाई (कृष्ण और बलराम) गये हैं। दोनों भाइयों के मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर और तन कंचन के समान शोभायमान हो रहे हैं॥ ८१२॥ ॥ सवैया॥ जब सब लोगों के साथ अक्रूर यमुना तट पर पहुँचे तो अक्रूर को भी (उन सबका प्रेम देखकर) मन में पश्चात्ताप होने लगा। वे सोचने लगे कि मैंने भी व्यर्थ ही में पाप किया (जो कृष्ण को यहाँ से ले जा रहा हूँ)। यह सोचता हुआ वह संध्या करने के लिए जल में प्रवेश कर गया और यह सोचकर चिन्तित होने लगा कि बली कंस अब कृष्ण को मार डालेगा॥ ८१३॥ ॥ दोहा॥ स्नान करते समय जब अक्रूर ने कृष्ण भगवान का स्मरण किया, तब मुरारि ने अक्रूर को (भगवान रूप में) दर्शन दिये॥ ८१४॥ ॥ सवैया॥ (अक्रूर ने देखा कि) हजारों सिर और हजारों भुजाओं वाले कृष्ण शेषनाग की शय्या पर विराजमान हैं। पीताम्बर, शंख, चक्र और तलवार उनके हाथ में शोभायमान हैं। इसी रूप में कृष्ण यमुना में अक्रूर के सामने प्रकट हुए। अक्रूर ने देखा कि संतों के दुःखों को दूर करनेवाले श्रीकृष्ण के ही नियन्त्रण में सारा संसार है और वह ऐसा तेजवान है कि उसे देखकर सावन के बादल भी लजायमान हो रहे हैं॥ ८१५॥ ॥ सवैया॥ तब अक्रूर जल से निकलकर सुख प्राप्त कर मथुरा की ओर चल पड़े वे दौड़कर राजा

बाधो त्रिय के पुर मै हुइ मारन कौन करी दुचिताई । कान्ह को रूप निहारन को मथुरा की पुरी सभ आन लुकाई । जाके कछू तन मै दुख है हरि देखत ही सोऊ पार पराई ॥ ८१६ ॥ हरि आगम को सुनकै बनिता उठकै मथुरा की सभै त्रिय धाई । आवत थो रथ जौन चड़्यो बनिकै तिह ठउर तिबै सोऊ आई । मूरत देखकै रीझ रही हरि आनन ओर रही लिव लाई । सोक कथा जितनी मन थी इह ओर निहार दई बिसराई ॥ ८१७ ॥

॥ इति स्री दसम सिकंधे पुराणे बचित्र नाटक ग्रिशनावतारे कानजू नंद अरु गोपन सहत मथुरा प्रवेस करणं ॥

कंस बध कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ मथुरा पुर की प्रभा कबि मन मै कही बिचार । सोभा जिह देखत सु कबि करि नहि सकति उचार ॥ ८१८ ॥ ॥ सवैया ॥ जिह के जट से नग भीतर है दमकै दुत मानहु बिज्ज छटा । जमुना जिह सुंदर तीर बहै सु

के महल में पहुँचे और अब उन्हें कृष्ण के मारे जाने का कोई भय नहीं था । कृष्ण के आगमन को देखकर सभी मथुरावासी उन्हें देखने के लिए आ जुटे । जिसके शरीर में ज़रा-सा भी कोई दुःख था वह कृष्ण को देखते ही दूर हो गया ॥ ८१६ ॥ कृष्ण के आगमन की बात सुनकर मथुरा की सभी स्त्रियाँ दौड़ी हुई आईं । जिधर से रथ आ रहा था, सभी उसी ओर आकर एकत्र हो गयीं । वे कृष्ण की सुन्दर छवि को देखकर रीझ गयीं और उसी ओर देखने लगीं । उनके मन में जितना भी शोक था, वह सब कृष्ण को देखकर दूर हो गया ॥ ८१७ ॥

॥ श्री दशम स्कन्ध पुराण में बचित्र नाटक के कृष्णावतार में कृष्ण का नन्द और गोपियों-सहित मथुरा-प्रवेश समाप्त ॥

कंस-वध-कथन

॥ दोहा ॥ कवि ने विचारकर मथुरा नगरी की छटा का वर्णन किया है । उसकी शोभा ऐसी है कि कवि उसका वर्णन नहीं कर सकते ॥ ८१८ ॥ ॥ सवैया ॥ मणियों से जटित नगरी ऐसी है मानो विद्युत्छटा चमक रही हो । उसके पास से यमुना बह रही और उसकी अट्टालिकाएँ शोभायमान हो रही हैं । उसे देखकर शिव और ब्रह्मा भी

बिराजत है जिह धाम अटा । बसुधा जिह देखत रीझ रहै रिझवै पिख ता घर सोभ अटा । इह भांत प्रभा घर है पुर धाम सु बात करै संग मेघ घटा ॥ ८१९ ॥ हरि आवत थो मग बीच चल्यो रिपु के धुबिआ मग एक निहार्यो । जउ सु गहे तिह ते पट तउ कुपि कै न्रिप को तिह नाम उचार्यो । कान्ह तबै रिसकै मन मै संग अंगुलका तिह के मुख (पृ०सं०४१२) मार्यो । इउ गिर गयो धरनी पर सो पट जिउँ धुबिआ पट संग प्रहार्यो ॥ ८२० ॥ ॥ दोहरा ॥ सभ ग्वारन सों हरि कही रिप धुबिआ कहु कूट । बसत्र जिते न्रिप के सकल लेहु सभन को लूट ॥ ८२१ ॥ ॥ सोरठा ॥ ब्रिज के ग्वार अजान बसत्र पहर जानत नही । धोबनता तिय आन सोउ पैनाए तिन तबै ॥८२२॥ ॥ राजा प्रीछत बाच सुक सो ॥ ॥ दोहरा ॥ दै बर ता तिय को क्रिशन मूंड रहे निहुराइ । तब सुक सो पूछ्यो न्रिपै कहो हमै किह भाइ ॥ ८२३ ॥ ॥ सुक बाच राजा सो ॥ ॥ सवैया ॥ बसुरानुज को बर ताहि दयो बर पाइ सुखी रहु ताहि कहे । हरि बाक को होवत पै तिनहूं त्रभवण पुर के फल है सु लहे । बहु दैकर लजवत होत बडो इम लोक ए नीत लिखे

रीझ रहे हैं । नगरी के घर इतने ऊँचे हैं, मानो घटाओं से बात कर रहे हों ॥ ८१९ ॥ जब कृष्ण चले आ रहे थे तो उन्होंने मार्ग में एक धोबी को देखा । जब कृष्ण ने उससे कपड़े लिये तो वह क्रोधित होकर राजा का नाम लेने लगा । कृष्ण ने मन में क्रोधित होकर एक चपाड़ उसे दे मारा । वह मार खाकर वैसे ही धरती पर गिर पड़ा जैसे धोबी कपड़े को पृथ्वी पर दे मारता है ॥ ८२० ॥ ॥ दोहा ॥ धोबी को पीटकर कृष्ण ने सभी गोपों से कहा कि राजा के जितने वस्त्र हैं सभी लूट लो ॥ ८२१ ॥ ॥ सोरठा ॥ ब्रज के अनजान गोप वस्त्र पहनना नहीं जानते थे । धोबी की स्त्री ने उन्हें आकर वस्त्र पहनाये ॥ ८२२ ॥ ॥ राजा परीक्षित उवाच शुक के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण उस धोबी की स्त्री को वर देकर सिर हिलाते हुए बैठ गये । तब परीक्षित ने शुक से पूछा कि हे ऋषि ! यह बताओ ऐसा क्यों हुआ कि कृष्ण सिर हिलाते हुए बैठ गए ? ॥ ८२३ ॥ ॥ शुक उवाच राजा के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ वसुर्नुज श्रीकृष्ण ने उसे वर दिया कि तुम सुखी रहो । प्रभु के वाक्य से तो तीनों लोकों के अमरफल प्राप्त होते हैं, परन्तु यह रीति है कि बड़ा व्यक्ति कुछ देकर भी लज्जा का यह सोचकर अनुभव करता है कि मैंने कुछ नहीं

है कहे । हरि जान कि मै इह थोर दयो तिहते मुँडिआ निहुराइ रहे ॥ ८२४ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटके ग्रंथे धोबी को बध ता त्रिय को बर देत भए ॥

अथ बागवान को उधार ॥

॥ दोहरा ॥ बध कै धोबी को क्रिशन करि ता त्रिय को काम । रथ धवाइ तब ही चले न्रिप के सामुहि धाम ॥८२५॥ ॥ सवैया ॥ आगे ते स्याम मिल्यो बगवान सु हार गरे हरि के तिन डार्यो । पाइ पर्यो हरि के बहु बारन भोजन धाम लिवाइ जिवार्यो । ताको प्रसंनि कै मांगत भ्यो बर साध की संगति को जिय धार्यो । जान लई जिय की घनस्याम तबै बरदा इह भांत उचार्यो ॥ ८२६ ॥ ॥ दोहरा ॥ बर जब माली कउ दयो रीझ मनै घनस्याम । फिर पुर हाटन मै गए करन कूबरी काम ॥ ८२७ ॥

॥ इति बागवान को उधार कीआ ॥

दिया । श्रीकृष्ण भी यह जानकर कि मैंने इसे थोड़ा ही दिया है, सिर हिलाकर पछताने लगे ॥ ८२४ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक ग्रंथ में धोबी-वध तथा उसकी स्त्री को वरदान-प्रदान समाप्त ॥

माली का उद्धार-कथन

॥ दोहा ॥ धोबी का वध करके और उसकी स्त्री का कार्य करके श्रीकृष्ण रथ चलवाकर राजा के महल के समक्ष जा पहुँचे ॥ ८२५ ॥ ॥ सवैया ॥ आगे से कृष्ण को माली मिला जिसने उनके गले में हार डाला । वह बहुत बार कृष्ण के पैरों पर पड़ा और उन्हें ले जाकर उसने भोजन ग्रहण करवाया । उससे श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए और वर माँगने को कहा तो उसने मन-ही-मन साधु-संगति का वरदान माँगने का विचार किया । कृष्ण ने उसके मन की बात जान ली और उसे यही वरदान दिया ॥ ८२६ ॥ ॥ दोहा ॥ मन में प्रसन्न होकर कृष्ण ने माली को वरदान दिया और फिर नगर में कुब्जा का कार्य करने के लिए चल दिये ॥ ८२७ ॥

इति माली का उद्धार किया ॥

अथ कुबजा को उधार करन

॥ सवैया ॥ हरि आवत अग्र मिली कुबजा हरि को तिन सुंदर रूप निहार्यो ॥ गंध लए न्रिप लावन को सु लगाऊं इहै या मन बीच बिचार्यो ॥ प्रीत लगी हरि सांगि लगी हमरे तब ही इह भांत उचार्यो ॥ ल्यावहु ल्यावहु री हमको कबि नै जसु ता छबि को इम साध्यो ॥ ८२८ ॥ ॥ सवैया ॥ जदुराइ को आइस मान लिया न्रिप को इह चंदन देह लगायो ॥ स्याम को रूपु निहारत ही कबि स्याम मनै अति ही सुखु पायो ॥ जा को न अंत लह्यो ब्रहमा (पृ०पं०८५३) करिकै मन प्रेम कई दिन गायो ॥ भाग बडो इह मालन कै हरि के तन को जिन हाथ छुहायो ॥ ८२९ ॥ ॥ सवैया ॥ हरि एक धर्यो पग पाइन पै अरु हाथ सो हाथ गह्यो कुबजा को ॥ सीधी करी कुबरी ते सोऊ इतनो बल है जग मै कहु का को ॥ जाहि मर्यो बक बीर अबै करिहै बध सो पति पै मथुरा को ॥ भाग बडे इह को जिह को उपचार कर्यो हरि बैद हुवै ताको ॥ ८३० ॥

कुब्जा का उद्धार करना

॥ सवैया ॥ कृष्ण को आगे मार्ग में कुब्जा मिली जिसने कृष्ण के सुन्दर स्वरूप को देखा । वह नृप को लगाने के लिए लेप ले जा रही थी । उसने मन में यह सोचा कि कितना अच्छा हो यदि मुझे कृष्ण को यह लेप लगाने का अवसर मिले । तब कृष्ण ने उसकी प्रीति को देखा तो स्वयं कहा कि लाओ, लाओ (और यह मुझे लगाओ) । कवि ने उस छवि का वर्णन किया है ॥ ८२८ ॥ ॥ सवैया ॥ यदुराज की आज्ञा मानकर उस स्त्री ने राजा का लेप उन्हें लगा दिया । कृष्ण के रूप को देखकर कवि श्याम को अत्यन्त ही सुख प्राप्त हुआ है । यह वही भगवान है, जिसके लिए गायन करने पर भी ब्रह्मा तक उसके रहस्य को नहीं जान पाये । यह दासी बड़े भाग्य वाली है, जिसने अपने हाथ से कृष्ण के शरीर का स्पर्श किया है ॥ ८२९ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने कुब्जा के पैर पर पैर रखा और हाथ में उसका हाथ पकड़ा । उस कुबड़ी को सीधा कर दिया और ऐसा करने की शक्ति संसार में अन्य किसी के पास नहीं । जिसने बकासुर का वध किया, वही अब मथुरानरेश कंस को मार डालेगा । इस कुबड़ी का भाग्य सराहनीय है जिसका उपचार स्वयं भगवान ने वैद्य बनकर किया ॥ ८३० ॥ ॥ सविउतर बचाच ॥

॥ प्रतिउत्तर बाच ॥ ॥ सवैया ॥ ग्रिह स्याम अबै चलियै हमरे इह भांत कह्यो कुबजा हरि सों। अति ही मुख देखकै रीझ रही सु डर्यो न्रिप के जिय मै डर सों। हरि जान्यो कि मो मै रही बस ह्वै इह भांति कह्यो तिह सो छर सों। करिहो तुमरो सु मनोरथ पूरन कंस को कै बध हउ बर सों ॥ ८३१ ॥
॥ सवैया ॥ कुबजा को सुधार कै काज तबै पुर देखन के रस मै अनुराग्यो। धाइ गयो तिह ठउर बिखै जन सुंदर कौं सोऊ देखन लाग्यो। भ्रितन ले कर ते सु मनै हरि कै मन मै अतही क्रुधि जाग्यो। गाढो कसीस दई धनको त्रिइकै जिह ते न्रिप को धन भाग्यो ॥ ८३२ ॥ गाढो कसीस दई कुपिकै धप ठाढ भयो तिह ठउर बिखे। बर सिंह मनो म्रिग मार कै ठाढो है देखै कोऊ गिरै भूम बिखे। देखत ही डरप्यो मघवा डरप्यो ब्रहमा कोऊ लेख लिखे। धन के टूकरे संग जो धन मारत स्याम कही अति ही सु तिखे ॥ ८३३ ॥ ॥ कबियो बाच ॥
॥ दोहरा ॥ धनख तेज मै बरनियो क्रिशन कथा के काज। अति ही चूक भी ते भई छिमियै सो महाराज ॥ ८३४ ॥
॥ सवैया ॥ धन को टूकरा करि लै हरि जी बरबीरन को सोऊ

॥ सवैया ॥ कुब्जा ने भगवान से अपने घर चलने के लिए कहा। वह श्रीकृष्ण का मुख देखकर मोहित हो रही थी, परन्तु उसे राजा का डर भी बना हुआ था। कृष्ण समझ रहे थे कि यह मुझ पर मुग्ध हो रही है, इसलिए उसे भ्रम में डाले रखने के लिए भगवान ने कहा कि मैं कंस के वध के बाद तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा ॥ ८३१ ॥ ॥ सवैया ॥ कुब्जा का कार्य कर श्रीकृष्ण नगर को देखने में लीन हो गये। जहाँ स्त्रियाँ खड़ी थीं वहाँ पहुँचकर उन्हें देखने लगे। राजा के अनुचरों द्वारा मना करने पर श्रीकृष्ण के मन में क्रोध भर उठा। उन्होंने अपने धनुष को जोर से खींचा और उसकी टंकार से राजा की स्त्रियाँ भय से भाग गयीं ॥ ८३२ ॥ क्रोधित होकर कृष्ण ने भय उत्पन्न कर दिया और उसी स्थान पर खड़े हो गए। वे ऐसे खड़े थे, जैसे कोई सिंह आँखें निकालता हुआ खड़ा है, उसे जो भी देखता है भूमि पर गिर पड़ता है। यह दृश्य देखते ही ब्रह्मा और इन्द्र भी डर गए। धनुष को तोड़कर कृष्ण उन तोड़े टुकड़ों से मारने लगे ॥ ८३३ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण-कथा के निमित्त मैंने धनुष-तेज का वर्णन किया है। हे महाराज ! मुझसे अत्यन्त बड़ी भूल हो गयी है, मुझे क्षमा कीजिए ॥ ८३४ सवैया। धनुष

मारन लाग्यो । धाइ परे न्रिप बीर सबै जिनके मन मै अति ही क्रुधि जाग्यो । फेरि लर्यो तिनको हरि मारन जुद्ध ह्वै फेर सभो अनुराग्यो । शोर भयो अति ठउर तहा सुनकै जिहको शिवजू उठ भाग्यो ॥ ८३५ ॥ ॥ कबितु ॥ तीन लोक पति अति क्रुद्ध करि कोप भरै लरै ठउर अरी बरबीर अति ह्वै रहे । ऐसे बीर गिरे जैसे बाढी के कटे ते तरु गिरैं बिसंभर असहायन नही गहे । अति ही तरंगनी उठी है तहां स्रोणत की सीस सम बटे असि नक्र मीन ह्वै बहे । गोरे दै बरद चढि आए थे बरदपति गोरी गउरा (मू०ग्रं०३६४) गोरे रुद्र राते राते ह्वै रहे ॥ ८३६ ॥ ॥ कबितु ॥ क्रोध भरे कान्ह बलभद्र जू ने कीनो रन भाग गए भटन सुभट ठाढ ह्वै रह्यो । ऐसे भूम परे बीर मारे धन टूकन के मानो कंस राजा जू के मारो दल ह्वै रह्यो । केते उठ भागे केते जुध ही को फेर लागे क्रोध सम बनहरि हरि तातो ह्वै रह्यो । गजन के सुंडन ते ऐसे छीटैं छुटी जाते अंबर अनूप लाल छीट छबि ह्वै रह्यो ॥ ८३७ ॥ ॥ दोहरा ॥ क्रिशन हली धन टूक सों सभ दल दयो खिपाइ ।

का टुकड़ा हाथ में लेकर श्रीकृष्ण वहाँ बड़े-बड़े वीरों को मारने लगे । वहाँ के वीर भी कुपित होकर कृष्ण पर टूट पड़े । श्रीकृष्ण भी युद्ध में लिप्त होते हुए उन्हें मारने लगे । वहाँ पर इतना भयंकर शोर हुआ कि उसे सुनकर शंकर भी उठकर भाग गए ॥ ८३५ ॥ ॥ कबित्त ॥ जहाँ बड़े-बड़े वीर स्थित हैं, तीनों लोकों के पति श्रीकृष्ण कुपित होकर वहाँ युद्ध कर रहे हैं । वीर ऐसे गिर रहे हैं जैसे बढ़ई के काटने से वृक्ष गिरते हैं । यहाँ रक्त की बाढ़ आ गयी है और सिर एवं तलवारें मगर व मछली बनकर बह रही हैं । शिवजी और गौरी श्वेत वर्ण के बैल पर सवार होकर आये थे, परन्तु यहाँ आकर वे लाल रंग में रँग गए ॥ ८३६ ॥ ॥ कबित्त ॥ क्रोधित कृष्ण और बलराम ने युद्ध किया, जिससे सभी शूरवीर भाग खड़े हुए । धनुष के टुकड़ों की मार खाकर वीर ऐसे गिरे कि मानो राजा कंस का सारा दल वहीं धराशायी हो गया । कितने ही योद्धा उठ भागे और कितने ही पुनः युद्ध में लग गये । ईश्वर कृष्ण भी जंगल में गर्म अग्नि के समान क्रोध से तमतमाने लगे । हाथियों की सूँडों से रक्त के छींटे छूट रहे हैं और सारा आकाश लाल छींट के समान छविमान दिखाई दे रहा है ॥ ८३७ ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण और बलराम ने धनुष के टुकड़ों से सारी सेना को नष्ट कर दिया । सेना के वध की बात सुनकर कंस ने पुनः और सैनिकों

तिन तुमकै संग अउर न्रिप अउ पुन दयो पठाइ ॥ ८३८ ॥
॥ सवैया ॥ कोप चमूं पर बीरन की धन टूकन सो बहु बीर संघारे । भाग गए सु बचे तिन ते जोऊ फेरि लरे सोऊ फेरि ही मारे । जूझ परी चतुरंग चमूं तह स्रउनत के सु चले परनारे । यौ उपजी उपमा जिय मै रनभूम मनो तन भूखन धारे ॥८३९॥
॥ सवैया ॥ जुद्ध करयो अति कोप दुहूं रिप बीर के बीर घने हनि दीने । हान भिखै जोऊ ज्वान हुते सजि आए हुते जोऊ साज नवीने । सो झट भूम गिरे रन की तिह ठउर बिखै अति सुंदर चीने । यौं उपमा उपजी जिय मै रन भूम को मानहु भूखन दीने ॥ ८४० ॥ ॥ सवैया ॥ धन टूकन सो रिप मार घने चलकै सोऊ नंद बबा पहि आए । आवत ही सभ पाइ लगे अति आनंद सो तिह कंठ लगाए । गे थे कहा पुर देखन को बतना सम पै इह भांत सुनाए । रैन परी तिह सोइ रहे अति ही मन भीतर आनंद पाए ॥ ८४१ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुपन पिखा इक कंस ने अति भयानक रूप । अति ब्याकुल जिय होइकै भ्रित बुलाए भूप ॥ ८४२ ॥ ॥ कंस बाच भ्रितन सों ॥
॥ सवैया ॥ भ्रित बुलाइकै राजै कही इक खेलन को रंगभूम

को यहाँ भेज दिया ॥ ८३८ ॥ ॥ सवैया ॥ वीरों की चतुरंगिणी सेना को धनुष के टुकड़ों से कृष्ण ने मार डाला । जो उनमें से भाग गये वे बच गये और जो पुनः लड़े वे मारे गए । चतुरंगिणी सेना का घमासान युद्ध हुआ और रक्त की नदियाँ बहने लगीं । युद्धस्थली ऐसा दिखाई दे रही थी जैसे किसी स्त्री ने आभूषण धारण कर रखे हों ॥ ८३९ ॥
॥ सवैया ॥ दोनों भाइयों ने क्रोधित होकर युद्ध किया और अनेकों वीरों को नष्ट कर दिया । जितने वीरों का नाश हुआ, उतने ही वीर नई सज्जा के साथ आ पहुँचे । आये हुए वीर भी शीघ्र ही मारे गए और उस स्थान पर यह सौंदर्य ऐसा दिखाई दे रहा है, मानो रणभूमि को आभूषणों का दान किया जा रहा है ॥ ८४० ॥ ॥ सवैया ॥ धनुष के टुकड़ों से शत्रुओं को मार कर श्रीकृष्ण नन्दलाल के पास आ गये । आते ही वे चरण-स्पर्श किए और नन्दलाल ने उन्हें गले से लगा लिया । कृष्ण ने बताया कि हम लोग नगर देखने गये थे । इस प्रकार मन में आनन्दित होते हुए रात होने पर सभी सो रहे ॥ ८४१ ॥ ॥ दोहा ॥ इधर कंस ने रात्रि में भयानक स्वप्न देखा और व्याकुल होकर उसने सबको बुलवाया ॥ ८४२ ॥ ॥ कंस उवाच सेवकों के प्रति । । सवैया । सेवकों को बुलाकर राजा ने

बनावहु । गोपन को इकठो रखियो हमरे सभ ही दल को सो बुलावहु । कारज शीघ्र करो सु इहै हमरे इक पैग न कउ तिनटावहु । खेल बिखै तुम मल्लन टाढ कै आप सभै कसिकै कट आवहु ॥ ८४३ ॥ ॥ सवैया ॥ भ्रित सभै न्रिप को बतिया सुनकै उठकै सोऊ कारज कीनो । ठाढ कियो गज पउर बिखै सु रच्यो रंगभूम को ठउर नवीनो । मल्ल जहा रिप बीर घने बिखिए रिप आवत जाहि पसीनो । ऐसो बनाइकै ठउर सोऊ (मू०ग्रं०३६५) हरि के पित्र मान सभै जनु दीनो ॥ ८४४ ॥ ॥ सवैया ॥ न्रिप सेवक लै इन संग चल्यो चलिकै न्रिप कांस के पउर पै आयो । ऐसे कह्यो न्रिप को घर है तिह ते सभ ग्वारन सीस झुकायो । आगे पिख्यो गज मत्त मही कह्यो दूर करो गजबान रिसायो । धाइ पर्यो हरि ऊपरि यो मनो पुंन के ऊपरि पाप सिधायो ॥ ८४५ ॥ कोप भरे गज मत्त महा भर सूंड लए भट सुंदर सोऊ । सो तब ही घन सो गरज्यो जिहको सम उपम अउर न कोऊ । पेट तरे तिह के पसरे कबि स्याम कहै बधिया अर दोऊ । यो उपजी उपमा जिय मै अपने

कहा कि खेलने के लिए एक रंगभूमि का निर्माण किया जाय । गोपों को एक स्थान पर इकट्ठा रखो और हमारे सम्पूर्ण दल को भी बुला लो । यह कार्य शीघ्र करो और इससे एक भी कदम पीछे मत हटो । उस खेल में मल्लों को भी तैयार होकर आने के लिए कहो और उन्हें वहीं खड़ा रखो ॥ ८४३ ॥ ॥ सवैया ॥ सेवकों ने राजा की बात सुनकर वही सब कार्य किया । हाथी को द्वार पर खड़ा करते हुए एक नई रंगभूमि का निर्माण किया । उस रंगभूमि में महाबली वीर खड़े थे, जिन्हें देखकर शत्रुओं को भी पसीना आ जाता । सेवकों ने ऐसे स्थान का निर्माण किया कि उससे उनको सब प्रकार का यश प्राप्त हुआ ॥ ८४४ ॥ ॥ सवैया ॥ राजा का सेवक इन सबको लेकर राजा कंस के महल में आया । उसने सबको बताया कि यह राजा का घर है, इसलिए सभी ग्वालों ने अपने सिर झुकाकर अभिनन्दन किया । आगे देखा कि मदमस्त हाथी खड़ा है और पीलवान इन सबको दूर जाने के लिए कह रहा है । हाथी दौड़कर इस प्रकार कृष्ण पर टूट पड़ा जैसे पुण्य को नष्ट करने के लिए उस पर पाप टूट पड़ता है ॥ ८४५ ॥ कुपित गज ने दोनों सुन्दर भटों (कृष्ण-बलराम को) सूंड में भर लिया और अनुपम तरीके से गर्जन करने लगा । दोनों भाई, जो कि शत्रुओं का वध करनेवाले हैं, हाथी के पेट के

रिप सो मनो खेलत दोऊ ॥ ८४६ ॥ ॥ सवैया ॥ कोपु कर्यो मन मै हरि जू तिह को तब दांत उखार लयो है । एक दई गज सुंड बिखै कुपि दूसर सीस के बीच दयो है । चोट लगै सिर छीन भयो धरनी पर सो मुरझाइ पयो है । सो मर गयो रिप के बध को मथरा हूं को आगम आज भयो है ॥ ८४७ ॥

॥ इति स्री दसम सकंधे बचित्र नाटक ग्रंथ क्रिसनावतारे गज बधहि धिआइ समापत ॥

अथ चंडूर मुसट जुद्ध ॥

॥ सवैया ॥ कंध धर्यो गज दांत उखार कै बीच गए रंगभूम के दोऊ । बीरन बीर बडोई बिलयो बलवान लख्यो सम मल्लन सोऊ । साधन देखि लख्यो करता जग या सम दूसर अउर न कोऊ । तात लख्यो करकैं लरका न्रिप कंस लख्यो मम मै घरि खोऊ ॥ ८४८ ॥ तौ न्रिप बैठ सभा हू के भीतर मल्लन सो जदुराइ लरायो । मुसट के साथ लर्यो मुसली सु चंडूर सो स्याम जू जुद्धु मचायो । भूमि परै रन

नीचे झूमने लगे और गिरे लगने लगे मानो दोनों भाई अपने शत्रु से खेल खेल रहे हों ॥ ८४६ ॥ ॥ सवैया ॥ तब कृष्ण ने कुपित होकर हाथी का दांत उखाड़ लिया । एक प्रहार उन्होंने हाथी की सूँड़ पर किया और दूसरा वार उसके सिर पर किया । भीषण आघात लगने पर हाथी निस्तेज होकर धरती पर गिर पड़ा । हाथी मर गया और ऐसा लग रहा था कि कंस के वध के लिए ही आज कृष्ण का आगमन मथुरा में हुआ है ॥ ८४७ ॥

॥ श्री दशम स्कंध के बचित्र नाटक के कृष्णावतार में गज-वध अध्याय समाप्त ॥

चाणूर-मुष्टिक-युद्ध

॥ सवैया ॥ हाथी के दांत को उखाड़कर उसे कंधे पर रखते हुए दोनों भाई रंगभूमि में पहुँचे । वीरों को वे बड़े वीर दिखाई दिये और वहाँ के पहलवानों ने भी उन्हें बलवान समझा । साधुओं ने उन्हें अद्वितीय मानते हुए जगत के कर्ता के रूप में देखा, पिता ने उन्हें पुत्रों के समान देखा और राजा कंस को वे अपने (कंस के) घर को नाश करनेवाले लगे ॥ ८४८ ॥ राजा ने सभा में बैठकर यदुराज को अपने मल्लों के साथ लड़ाया । बलराम ने मुष्टिक नामक मल्ल से युद्ध किया और इधर कृष्ण ने चाणूर के साथ लड़ाई मचा दी जैसे ही कृष्ण

की सिरि सो हरि जौ मन भीतर कोपु बढायो । एक लगी न लहा धरका धरनी पर ताकहु मार गिरायो ॥ ८४६ ॥

॥ इति स्री दसम सिकंधे पुराणे बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिसनावतारे चंडूर मुसट मल बधहि धयाइ समापतम सतु ॥

अथ कंस बध ॥

॥ सवैया ॥ मार लए रिप और दोऊ न्रिप तउ मन भीतरि क्रोध भर्यो । इन को अब मारहु भ्रात अबै इह भाति कह्यो अर शोर कर्यो । जमुरा भगवान् तब पान गही अपने मन मै नही नैकु डर्यो । जोऊ आइ पर्यो हरि पै कुपकै हरि धा पर सो सोऊ (मू०ग्रं०३६१) मार डर्यो ॥ ८५० ॥ ॥ सवैया ॥ हरि कूद तबै रंगभूमहि ते न्रिप थो सु जहाँ पग ही पगु धार्यो । काल लई कर ढाल संभार कै कोप भर्यो अस खैंच निकार्यो । बउर दई तिह के तन पै हरि फाध गए अति दाव संभार्यो । केसन ते गहिकै रिप को धरनी पर कै बल ताहि पछार्यो ॥ ८५१ ॥ गहि केसन ते पटक्यो धर सों गहि

क्रोधित हुए वे सब पहलवान गवैनों के समान धरती पर गिर पड़े और श्रीकृष्ण ने घड़ी भर में उन सबको मार गिराया ॥ ८४९ ॥

॥ श्री दशम स्कंध में बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार के चाणूर-मुष्टिक वध का अध्याय समाप्त ॥

कंस-वध

॥ सवैया ॥ दोनों वीरों ने जब शत्रुओं को मार दिया तो राजा क्रोध से भर उठा । उसने शोर मचाते हुए अपने वीरों ने कहा कि इन दोनों को अभी मार डालो । यदुराज और उनका भाई एक-दूसरे का हाथ पकड़ अभय हो वहाँ खड़े रहे तथा जो भी क्रोधित हो उन पर टूट पड़ा उसे उसी स्थान पर कृष्ण-बलराम ने मार गिराया ॥ ८५० ॥ ॥ सवैया ॥ अब श्रीकृष्ण ने रंगभूमि से कूदकर अपने पाँव वहाँ जा जमाये जहाँ राजा कंस बैठा था । कंस ने क्रोधित होकर ढाल सम्हालते हुए तलवार खींच ली और दौड़कर श्रीकृष्ण पर वार किया । श्रीकृष्ण कूदकर अलग हो गये और उन्होंने इस दाँव को बचा लिया तथा शत्रु को केशों से पकड़कर बलपूर्वक धरती पर पछाड़ दिया ॥ ८५१ ॥ केशों को पकड़कर उसे धरती पर फेंका और टाँग पकड़कर उसे घसीट दिया